

# विवेकानन्द साहित्य

जन्मशती संस्करण

द्वितीय खंड



अद्वैत आश्रम  
५ डिही एप्टाली रोड  
कलकत्ता १४

प्रकाशक

स्वामी गम्भीरानन्द

अध्यक्ष अहिंसित वासव

मायावती अस्मीडा हिमाचल

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण

5M30—१९९६

मूल्य रु. रुपये

मुद्रक  
सम्प्रेक्षित मुद्रकात्म्य  
प्रयाग भारत

## विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
ज्ञानयोग	
मनुष्य का यथार्थ स्वरूप	३
मनुष्य का वास्तविक और प्रातिभासिक स्वरूप	२१
माया और भ्रम	४३
माया और ईश्वर-धारणा का क्रमविकास	६०
माया एव मुक्ति	७३
ब्रह्म एव जगत्	८५
विश्व बृहत् ब्रह्माण्ड	९९
विश्व सूक्ष्म ब्रह्माण्ड	१०८
अमरत्व	१२२
बहुत्व मे एकत्व	१३३
सभी वस्तुओं मे ब्रह्मदर्शन	१४८
अपरोक्षानुभूति	१५९
आत्मा की मुक्ति	१७८
धर्म की आवश्यकता	१९१
आत्मा	२०२
आत्मा उसके बन्धन तथा मुक्ति	२१६
व्याख्यान, प्रवचन एव कक्षालाप-२	
धर्म सामान्य	
आत्मा, ईश्वर और धर्म	२२७
धर्म उसकी विधियाँ और प्रयोजन	२३७
धर्म एव विज्ञान	२५१
भागवत्प्राप्ति ही धर्म है	२५३
स्वार्थोन्मूलन ही धर्म है	२५४

विषय

धर्म का प्रमाण  
धर्म का सार-सत्त्व  
धर्म के हाथे  
तर्क और धर्म  
धर्म क्या है ?

पन्नासठ—२

अनुक्रमविषय

ज्ञानयोग



स्वामी विवेकानन्द

## मनुष्य का यथार्थ स्वरूप

(लन्दन में दिया हुआ भाषण)

इस पचेन्द्रियग्राह्य जगत् से मनुष्य बड़ी आसक्ति से चिपका रहना चाहता है। किन्तु वह इस बाह्य जगत् को, जिसमें वह जीता और क्रिया-कलाप करता है, चाहे जितना ही सत्य क्यों न समझे, प्रत्येक व्यक्ति और जाति के जीवन में एक समय ऐसा अवश्य आता है, जब वे सहज ही जिज्ञासा करते हैं—‘क्या यह जगत् सत्य है?’ जिन व्यक्तियों को अपनी इन्द्रियों की विश्वसनीयता में शका करने का तनिक भी समय नहीं मिलता, जिनके जीवन का प्रत्येक क्षण किसी न किसी प्रकार के विषय-भोग में ही व्यस्त रहता है, मृत्यु एक दिन उनके भी सिरहाने आकर खड़ी हो जाती है और विवश होकर उन्हें भी कहना पड़ता है—‘क्या यह जगत् सत्य है?’ इसी एक प्रश्न से धर्म का आरम्भ होता है और इसके उत्तर में ही धर्म की इति है। इतना ही क्यों, सुदूर अतीत काल में, जहाँ इतिहास की कोई पहुँच नहीं, उस रहस्यमय पौराणिक युग में, सभ्यता के उस अस्फुट उषाकाल में भी, हम देखते हैं कि यही एक प्रश्न उस समय भी पूछा गया है—‘इसका क्या होता है? क्या यह सत्य है?’

कवित्वमय कठोपनिषद् के प्रारम्भ में हम यह प्रश्न देखते हैं—‘कोई कोई लोग कहते हैं कि मनुष्य के मरने पर उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है, और कोई कहते हैं कि नहीं, उसका अस्तित्व फिर भी रहता है, इन दोनों बातों में कौन सी सत्य है?’—येयं प्रेतैर्विचिकित्सा मनुष्ये, अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके। ससार में इस सम्बन्ध में अनेक प्रकार के उत्तर मिलते हैं। जितने प्रकार के दर्शन या धर्म ससार में हैं, वे सब वास्तव में इसी प्रश्न के विभिन्न उत्तरों से परिपूर्ण हैं। अनेक बार तो इन प्रश्नों का—‘परें क्या है? सत्य क्या है?’ प्राणों की इस महती अशांति का—अवदमन करने की चेष्टा की गयी है। किन्तु जब तक मृत्यु नामक वस्तु जगत् में है, तब तक इस प्रश्न को दबा देने की सारी चेष्टाएँ विफल रहेगी। यह कहना सरल है कि हम जगदातीत सत्ता का अन्वेषण नहीं करेंगे, इसके प्रति सौचना बंद करने के लिए कठिन सघर्ष करेंगे और अपनी समस्त आशा और आकांक्षा को प्रस्तुत क्षण में ही सीमित रखेंगे, वहिर्जगत् की सारी वस्तुएँ भी हमें

इन्द्रियों की सीमा के भीतर बन्द करने में सहायता पहुँचाती हैं। सारा संसार भी एक हो हमें वर्तमान की मूत्र सीमा के बाहर दृष्टि डालने से रोक सकता है। पर जब तक जगत् में मृत्यु रहेगी तब तक यह प्रश्न बार बार उठेगा—‘हम जो इन सब वस्तुओं को सत्य का भी सत्य सार का भी सार समझकर इनमें मथानक रूप से आसक्त हैं तो क्या मृत्यु ही इन सबका अन्तिम परिणाम है? जगत् तो एक क्षण में ही भस्म होकर न जाने कहाँ चला जाता है। उमर है आधुनिक पणपुम्बी पर्वत और भीचे हैं महीरी बाई, मानो मुँह फँसाये जीव को निगलने के लिए आ रही हो। इस पर्वत के किनारे बड़े होने पर, कितावा ही कठोर बन्तकरण क्यों न हो निरन्तर ही सिहर उठेगा और पूछेगा—‘यह सब क्या सत्य है? कोई वैजम्बी हृदय जीवन भर बड़े प्रयत्न के साथ जिस आशा को अपने हृदय में संजोये रहा वह एक मुहूर्त में ही छड़कर न जाने कहाँ चली गयी तो क्या हम इस सब आशा को सत्य कहेये? इस प्रश्न का उत्तर देना होगा। काल प्राणों की इस आकांक्षा की हृदय के इस गम्भीर प्रश्न की शक्ति का कमी भी ह्रास नहीं कर सकता प्रत्युत काल का शोच क्यों क्यों माने बढ़ता जाता है क्यों क्यों इस प्रश्न की शक्ति भी बढ़ती जाती है।

फिर मनुष्य को सुखी होने की इच्छा होती है। अपने को सुखी करने के लिए वह सभी ओर बीड़ता फिरता है—इन्द्रियों के पीछे पीछे भागता रहता है—पानक की भाँति बाह्य जगत् में कर्म करता जाता है। जो मुकक जीवन-संश्राम में सफल हुए हैं, उनसे यदि पूछो तो कहेंगे ‘यह जगत् सत्य है’—उन्हें सभी बातें सत्य प्रतीत होती हैं। ये ही व्यक्ति जब बड़े हो जायेंगे जब सीमात्म-कम्पनी उन्हें बार बार बोला देयी तब उनसे यदि पूछो तो शायद यही कहेंगे ‘बरे घाई, सब भ्राम्य का कैल है। इतने दिनों बाद वे जान सके कि वास्तवता की प्रीति नहीं होती। वे जिबर पाते हैं, उमर ही मानो बय के समान कुछ बीजार उनके घामने लड़ी हो जाती है, जिसे लीजना उनके बस की बात नहीं। प्रत्येक इन्द्रिय-कर्मभ्यस्त के परिणामस्वरूप प्रतिबिम्ब होती ही है। हर वस्तु धमस्वायी है। विकास वैभव शक्ति शक्तिम यहाँ तक कि जीवन भी धमस्वायी है।

मनुष्य के लिए जो उत्तर रह जाते हैं। एक है— दृश्यबाहियों की भाँति विरवास करना कि सब कुछ धूम्य है हम कुछ भी नहीं जान सकते—मृत मविष्य या वर्तमान के भी सम्बन्ध में कुछ नहीं जान सकते क्योंकि जो व्यक्ति मृत-मविष्य को आस्तीकार कर बेबल वर्तमान को स्वीकार करते हुए जहाँमें अपनी दृष्टि को सीमित रखना चाहता है वह निरा पामल है। यह तो बस बीसे ही हुआ जैसे माता-पिता के अस्तित्व को आस्तीकार करते हुए सम्मान के अस्तित्व को स्वीकार



करना। दोनों समान रूप से युक्तिसगत हैं। भूत और भविष्य को अस्वीकार करने का अर्थ है, वर्तमान को भी अस्वीकार करना। यह एक भाव हुआ—यह शून्यवादियों का मत। पर मैंने ऐसा मनुष्य आज तक नहीं देखा, जो एक मुहूर्त के लिए भी शून्यवादी हो सके, मुंह से कहना अवश्य बड़ा सरल है।

दूसरा उत्तर यह है कि इस प्रश्न के वास्तविक उत्तर की खोज करो—सत्य की खोज करो—इस नित्य परिवर्तनशील नश्वर जगत् में क्या सत्य है, इसकी खोज करो। कुछ भौतिक परमाणुओं के समष्टिस्वरूप इस देह के भीतर क्या कोई ऐसी चीज है, जो सत्य हो? मानव जीवन के इतिहास में सदैव इस तत्त्व का अन्वेषण किया गया है। हम देखते हैं कि अति प्राचीन काल से ही मनुष्य के मन में इस तत्त्व का अस्पष्ट प्रकाश उद्भासित हो गया था। हम देखते हैं कि उसी समय से मनुष्य ने स्थूल देह से अतीत एक अन्य देह का भी पता पा लिया था, जो अनेक अशो में इस स्थूल देह के ही समान होने पर भी पूर्ण रूप से वैसा नहीं है, वह स्थूल देह से श्रेष्ठ है—शरीर का नाश हो जाने पर भी उसका नाश नहीं होता। हम ऋग्वेद के एक सूक्त में, मृत शरीर को दग्ध करनेवाले अग्निदेव के प्रति यह मन्त्र पाते हैं—‘हि अग्नि! तुम इसे अपने हाथों में लेकर धीरे धीरे ले जाओ—इसे सर्वांगसुन्दर, ज्योतिर्मय देह से सम्पन्न करो—इसे उसी स्थान में ले जाओ, जहाँ पितृगण वास करते हैं, जहाँ दुःख नहीं है, जहाँ मृत्यु नहीं है।’ तुम देखोगे कि सभी धर्मों में यह भाव विद्यमान है, और इसके साथ ही हम और एक विचार पाते हैं। आश्चर्य की बात है कि सभी धर्म एक स्वर से घोषणा करते हैं कि मनुष्य पहले निष्पाप और पवित्र था, पर आज उसकी अवनति हो गयी है। इस भाव को फिर वे रूपक की भाषा में, या दर्शन की स्पष्ट भाषा में अथवा कविता की सुन्दर भाषा में क्यों न प्रकाशित करें, पर वे सब के सब अवश्य इस एक तत्त्व की घोषणा करते हैं। सभी शास्त्रों और पुराणों में यही एक तत्त्व पाया जाता है कि मनुष्य जैसा पहले था, वैसा अब नहीं है—आज वह पहले से गिरी हुई दशा में है। यहूदियों के धर्मग्रन्थों में आदम के पतन की जो कथा है, उसका भी मर्म वास्तव में यही है। हिन्दू शास्त्रों में इसका बार बार उल्लेख हुआ है। हिन्दुओं ने सतयुग कहकर जिस युग का वर्णन किया है—जब कि मनुष्य की मृत्यु उसकी इच्छानुसार होती थी, जब मनुष्य जितने दिन चाहे अपने शरीर को धारण कर सकता था, जब मनुष्यों का मन शुद्ध और दृढ था—उसमें भी इसी सार्वभौमिक सत्य का सकेत मिलता है। वे कहते हैं कि उस समय मृत्यु नहीं थी, किसी प्रकार का अशुभ या दुःख नहीं था, और वर्तमान युग उसी उन्नत अवस्था का भ्रष्ट भाव मात्र है। इस वर्णन के साथ साथ हम सभी धर्मों में जल-प्लावन अर्थात् प्रलय का वर्णन भी पाते हैं।

यह बात सिद्ध नहीं होती। कमबिकाम कहने क साथ ही साथ कमसंकाष की प्रथिया को भी मानना पड़ेगा। विज्ञानवेत्ता ही तुमसे कहते हैं कि किसी यन्त्र में तुम जितनी शक्ति का प्रयोग करोये उसमे से तुम्हें बस उतनी ही शक्ति मिल सकती है। असत् (कुछ नहीं) से कभी भी सत् (कुछ) की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि मानव—पूर्व मानव—बुद्ध-मानव ईसा-मानव एक मात्र मांससक्त यन्त्र का ही विकास हो तब तो इस दुःख यन्त्र को भी संशुद्धित या अप्यक्त बुद्ध कहना पड़ेगा। यदि ऐसा न हो तो ये सब महापुरुष फिर कहाँ से उत्पन्न हुए? असत् से तो कभी सत् की उत्पत्ति नहीं होती। इसी प्रकार हम शास्त्र के साथ आधुनिक विज्ञान का समन्वय कर सकते हैं। जो शक्ति धीरे धीरे माना सोपानों में से होती हुई पूर्ण मनुष्य के रूप में परिणत होती है वह कभी भी सूक्ष्म से उत्पन्न नहीं हो सकती। वह कहीं न कहीं मकरन्द वर्तमान की और यदि तुम विश्लेषण करते करते इस प्रकार के दुःख मांससक्त यन्त्रविशेष या जीविसार (protoplasm) तक ही पहुँचकर, उसीको आदि कारण सिद्ध करते हो तो यह निश्चित है कि इस जीविसार में ही यह शक्ति किसी न किसी रूप में विद्यमान थी।

आपकम यह विचार बल रहा है कि क्या पंचभूतों की समष्टि यह देह ही आत्मा चिन्तन-शक्ति या विचार आदि नामों से परिचित शक्तियों के विकास का कारण है? अथवा चिन्तन-शक्ति ही देहोत्पत्ति का कारण है? निश्चय ही सद्यः के सभी धर्म कहते हैं कि विचार नामक शक्ति ही शरीर की प्रकाशक है और ये इसके विपरीत मत में आस्था नहीं रखते। अनेक आधुनिक विचारवाचक (Comte Positivism) मानती हैं कि चिन्तन-शक्ति केवल शरीर नामक यन्त्र के विभिन्न अंशों के एक समायोजन से उत्पन्न होती है। यदि इस द्वितीय मत को मान लिया जाय अर्थात् वह स्वीकार कर लिया जाय कि यह आत्मा या मन या इसे किसी भी नाम से क्यों न पुकारो इस बड़ बेहकम मशीन का ही फलस्वरूप है—जिन बड़ परमाणुओं से मस्तिष्क और शरीर का गठन होता है यह उन्हींके रासायनिक अथवा भौतिक योग से उत्पन्न होनेवाली वस्तु है, तब तो यह प्रश्न ही असमाभेय रह जायगा। शरीर की रचना कौन करता है कौन सी शक्ति इन भौतिक अणुओं को शरीर के रूप में परिणत करती है? कौन सी शक्ति प्रकृति में पड़ी हुई अड़ वस्तु के डेर में से कुछ अंश लेकर तुम्हारा शरीर एक प्रकार का और भेद शरीर दूसरे प्रकार का बना सकती है? ये सब अत्यन्त विवेक कैसे होते हैं? यह कहना कि आत्मा नामक शक्ति शरीर के भौतिक परमाणुओं के विभिन्न संघटनों से उत्पन्न होती है ठीक वैसे ही है जैसे बैल के जाने बाड़ी ओठना। ये सचात कैसे उत्पन्न हुए? किस शक्ति ने ऐसा कर

दिया ? यदि तुम कहो कि अन्य किसी शक्ति ने यह सघात कर दिया है और आत्मा, जो इस समय एक विशेष जडराशि के साथ सहत दिखायी दे रही है, इन्हीं सब जड परमाणुओं के सघात का फल है, तब तो यह कोई उत्तर न हुआ। जो मत अन्यान्य मतों का विना खण्डन किये, चाहे सबकी न हो, पर अधिकतर घटनाओं की, अधिकतर विषयों की व्याख्या कर सकता है, वही ग्राह्य है। अतएव यही बात अधिक युक्तिसंगत है कि जो शक्ति जड तत्त्व को लेकर उससे शरीर का निर्माण करती है और जो शक्ति शरीर के भीतर व्यक्त है, वे दोनों एक ही हैं। अतः यह कहना कि 'जो चिन्तन-शक्ति हमारे शरीर में व्यक्त है, वह केवल जड अणुओं के संयोग से उत्पन्न होती है और इसीलिए शरीर से पृथक् उसका कोई अस्तित्व नहीं' बिल्कुल निरर्थक है—इस कथन में कोई तथ्य नहीं। फिर, शक्ति कभी जड तत्त्व से उत्पन्न हो नहीं सकती। बल्कि यह प्रमाणित करना अधिक सम्भव है कि हम जिसे जड कहकर पुकारते हैं, उसका अस्तित्व ही नहीं है, वह केवल शक्ति की एक विशेष अवस्था है। यह सिद्ध किया जा सकता है कि ठोसपन, कठिनता आदि जो सब जड के गुण हैं, वे गति के फल हैं। द्रवों को प्रचुर शीर्षीय गति देने से वे ठोस हो जायेंगे। वायुपुंज में यदि अतिशय शीर्षीय गति उत्पन्न कर दी जाय, जैसे तूफ़ान में, तो वह ठोस सा हो जाता है और अपने आघात से ठोस पदार्थों को तोड़ या काट सकता है। यदि मकड़ी के जाले के एक तंतु को अनंत वेग दिया जाय तो, वह लोहे की जज़ीर जैसा सशक्त हो जायगा और भीक पेंड को काटकर पार हो जायगा। इस प्रकार से विचार करने पर यह सिद्ध करना सहज है कि हम जिसे जड तत्त्व कहते हैं, उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। किन्तु दूसरा मत सिद्ध नहीं किया जा सकता।

शरीर के भीतर यह जो शक्ति की अभिव्यक्ति देखी जाती है, यह है क्या ? हम सभी यह बात सरलता से समझ सकते हैं कि यही शक्ति, फिर वह चाहे जो हो, जड परमाणुओं को लेकर उनसे एक विशेष आकृति—मनुष्य देह—तैयार कर रही है। अन्य कोई आकर तुम्हारे या मेरे शरीर को नहीं बना देता। ऐसा मैंने कभी नहीं देखा कि दूसरा कोई मेरे लिए भोजन कर लेता हो। मुझे ही इस भोजन का सार शरीर में लेकर उससे रक्त, मांस, अस्थि आदि का गठन करना पड़ता है। यह अद्भूत शक्ति क्या है ? बहुतो को भूत और भविष्य सम्बन्धी सिद्धान्त भयावह प्रतीत होते हैं, बहुतो को तो वे केवल आनुमानिक व्यापार ही प्रतीत होते हैं।

हम प्रस्तुत विषय को ही लेंगे। वह शक्ति क्या है, जो इस समय हममें काम कर रही है ? हम देख चुके हैं कि सभी प्राचीन शास्त्रों में इस शक्ति को,

इसी शक्ति की अभिव्यक्ति को शारीरिक आकृतिवाला एक ऐसा व्योतिर्मय पदार्थ माना गया है जो इस शरीर के मष्ट हो जाने पर भी बचा रहता है। जमस हम बसते हैं कि केवल व्योतिर्मय देह कहने से सन्तोष नहीं होता—एक और भी उच्चतर भाव लोगों के मन पर अधिकार करता विलायी देता है। यह यह है कि किसी भी प्रकार का शरीर शक्ति का स्थान नहीं ले सकता। जिस किसी वस्तु की आकृति है वह बहुत से परमाणुओं की एक संहति मात्र है अतएव उसको बचाने के लिए दूसरी कोई चीज चाहिए। यदि इस शरीर का गठन और परिचासन करने के लिए इस शरीर से भिन्न अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता होती हो तो इसी तर्क के बल पर, इस व्योतिर्मय देह का गठन और परिचासन करने के लिए भी इससे भिन्न अन्य कोई वस्तु चाहिए। यह 'अन्य कोई वस्तु' ही संस्कृत भाषा में आत्मा नाम से सम्बोधित हुई। यह आत्मा ही इस व्योतिर्मय देह में से मानो सूक्ष्म शरीर पर काम कर रही है। यह व्योतिर्मय शरीर ही मन का आधार कहा जाता है, और आत्मा इससे अतीत है। आत्मा मन भी नहीं है, वह मन पर कार्य करती है और मन के माध्यम से शरीर पर। तुम्हारे एक आत्मा है, मेरे भी एक आत्मा है—सभी के अलग अलग आत्मा है और एक एक सूक्ष्म शरीर भी इस सूक्ष्म शरीर की सहायता से हम सूक्ष्म शरीर पर कार्य करते हैं। अब प्रश्न उठने लगा—आत्मा और उसके स्वस्म के सम्बन्ध में। शरीर और मन से पूर्व इस आत्मा का क्या स्वस्म है? बहुत से वाद प्रतिवाद होने लगे माना प्रकार के सिद्धान्त और अनुमान होने लगे अनेकविध धार्मिक अनुसन्धान होने लगे। इस आत्मा के सम्बन्ध में वे जिन सिद्धान्तों पर पहुँचे हैं तुम्हारे समझ उत्तक वर्णन करने का प्रयत्न करेंगे।

भिन्न भिन्न वर्तनों का इस विषय में मूर्तम देखा जाता है कि आत्मा का स्वस्म जो कुछ भी हो उसका कोई स्थाकार नहीं होता और जिसका स्थाकार नहीं वह अवश्य सर्वव्यापी होगा। काल का आस्म मन से होता है—वेद्य भी मन के अन्तर्गत है। काल को छोड़ कार्य-कारणवाद नहीं रह सकता। भ्रम की भावना के बिना कार्य-कारणवाद नहीं रह सकता। अतएव वेद्य-काल-निमित्त मन के अन्तर्गत है और यह आत्मा मन से अतीत और निराकार होने के कारण वेद्य-काल-निमित्त के परे है। और जब यह वेद्य-काल-निमित्त से अतीत है, तो अवश्य अनन्त होगी। अब हमारे वर्तन का उच्चतम विचार आता है। अनन्त कभी हो नहीं हो सकता। यदि आत्मा अनन्त है तो केवल एक ही आत्मा हो सकती है और यह जो अनेक आत्माओं की धारणा है—तुम्हारी एक आत्मा मेरी दूसरी आत्मा—यह सत्य नहीं है। अतएव मनुष्य का प्रकृत स्वस्म एक ही है, यह

अनन्त और सर्वव्यापी है, और यह प्रातिभासिक जीव मनुष्य के इस वास्तविक स्वरूप का एक सीमाबद्ध भाव मात्र है। इसी अर्थ में पूर्वोक्त पौराणिक तत्त्व भी सत्य हो सकते हैं कि प्रातिभासिक जीव, चाहे वह कितना ही महान् क्यों न हो, मनुष्य के इस अतीन्द्रिय, प्रकृत स्वरूप का धुँधला प्रतिबिम्ब मात्र है। अतएव मनुष्य का प्रकृत स्वरूप—आत्मा—कार्य-कारण से अतीत होने के कारण, देश-काल से अतीत होने के कारण, अवश्य मुक्तस्वभाव है। वह कभी बद्ध नहीं थी, न ही बद्ध हो सकती थी। यह प्रातिभासिक जीव, यह प्रतिबिम्ब, देश-काल-निमित्त के द्वारा सीमाबद्ध होने के कारण बद्ध है। अथवा हमारे कुछ दार्शनिकों की भाषा में, 'प्रतीत होता है, मानो वह बद्ध हो गयी है, पर वास्तव में वह बद्ध नहीं है।' हमारी आत्मा के भीतर जो यथार्थ सत्य है, वह यही कि आत्मा सर्वव्यापी है, अनन्त है, चैतन्यस्वभाव है, हम स्वभाव से ही वैसे हैं—हमें प्रयत्न करके वैसा नहीं बनना पड़ता। प्रत्येक आत्मा अनन्त है, अतः जन्म और मृत्यु का प्रश्न उठ ही नहीं सकता। कुछ बालक परीक्षा दे रहे थे। परीक्षक कठिन कठिन प्रश्न पूछ रहे थे। उनमें यह भी प्रश्न था—“पृथ्वी गिरती क्यों नहीं?” वे गुरुत्वाकर्षण के नियम आदि सम्बन्धी उत्तर की आशा कर रहे थे। अधिकांश बालक-बालिकाएँ कोई उत्तर न दे सके। कोई कोई गुरुत्वाकर्षण या और कुछ कह कहकर उत्तर देने लगे। उनमें से एक बुद्धिमती बालिका ने एक और प्रश्न करके इस प्रश्न का समाधान कर दिया—“पृथ्वी गिरेगी कहाँ पर?” यह प्रश्न ही तो गलत है! पृथ्वी गिरे कहाँ? पृथ्वी के लिए गिरने और उठने का कोई अर्थ नहीं। अनन्त देश में ऊपर और नीचे नहीं होता, ये दोनों तो सापेक्ष देश में हैं। जो अनन्त है, वह कहाँ जायगा और कहाँ से आयेगा?

जब मनुष्य भूत और भविष्य की चिन्ता का—उसका क्या क्या होगा, इस चिन्ता का—त्याग कर देता है, जब वह देह को सीमाबद्ध और इसलिए उत्पत्ति-विनाशशील जानकर देहाभिमान का त्याग कर देता है, तब वह एक उच्चतर आदर्श में पहुँच जाता है। देह भी आत्मा नहीं और मन भी आत्मा नहीं, क्योंकि इन दोनों में ह्रास और वृद्धि होती है। जब जगत् से अतीत आत्मा ही अनन्त काल तक रह सकती है। शरीर और मन सतत परिवर्तनशील हैं। वे दोनों परिवर्तनशील कुछ घटना-श्रेणियों के केवल नाम हैं। वे मानो एक नदी के समान हैं, जिसका प्रत्येक जल-परमाणु सतत चलायमान है, फिर भी वह नदी सदा एक अविच्छिन्न प्रवाह सी दिखती है। इस देह का प्रत्येक परमाणु सतत परिणामशील है, किसी भी व्यक्ति का शरीर, कुछ क्षण के लिए भी, एक समान नहीं रहता। फिर भी मन पर एक प्रकार का सस्कार बैठ गया है, जिसके कारण-

हम इसे एक ही शरीर समझते हैं। मन के सम्बन्ध में भी यही बात है। क्षण में सुखी क्षण में दुःखी क्षण में सबल और क्षण में दुर्बल। वह सतत परिणाम शील भँवर के समान है। अतएव मन भी आत्मा नहीं हो सकता आत्मा तो अनन्त है। परिवर्तन केवल सहीम वस्तु में ही सम्भव है। अनन्त में किसी प्रकार का परिवर्तन हो, यह एक असम्भव बात है। यह कभी हो नहीं सकता। शरीर की दृष्टि से तुम और मैं एक स्नान से दूसरे स्नान को जा सकते हैं। जगत् का प्रत्येक अणु-परमाणु नित्य परिणामशील है। पर जगत् को एक समष्टि के रूप में लेने पर उसमें गति या परिवर्तन असम्भव है। गति सर्वत्र सापेक्ष है। मैं जब एक स्नान से दूसरे स्नान को जाता हूँ तब किसी वस्तु के संघर्ष में ही। जगत् का कोई परमाणु किसी दूसरे परमाणु की तुलना में ही परिणाम को प्राप्त हो सकता है। किन्तु सम्पूर्ण जगत् को एक समष्टिरूप में लेने पर फिर किसकी तुलना में उसका स्नान-परिवर्तन होगा? इस समष्टि के व्यतिरिक्त और कुछ तो है नहीं। अतएव यह अनन्त इकार, अपरिणामी अचल और निरपेक्ष है और यही पारमार्थिक सत्ता है। अतः हमारा सत्य सर्वव्यापकता में है सान्तरता में नहीं। यह धारणा कि मैं एक सुदृढ सान्द्र सतत परिणामी जीव हूँ, कितनी ही सुखद क्यों न हो फिर भी यह एक पुराना भ्रम ही है। यदि किसीसे कहो कि 'तुम सर्वव्यापी अनन्त पुरुष हो' तो वह डर जायगा। सबके माध्यम से तुम कार्य कर रहे हो सब पैरों द्वारा तुम चल रहे हो, सब मुँहों से तुम बातचीत कर रहे हो सब हृदयों से अनुभव कर रहे हो।

ऐसी बातें यदि तुम किसीसे कहो तो वह डर जायगा। वह तुमसे बार बार पूछेगा कि क्या फिर उसका अपना व्यक्तित्व नहीं रह जायगा? क्या मैं नहीं रह जाऊँगा? यह व्यक्तित्व—मैं—क्या है? यदि जान पाऊँ, तो अच्छा हो। छोटे बालक के मूँठ नहीं होतीं। बड़े होने पर उसके दाढ़ी-मूँठ निकल आती है। यदि 'जह' शरीर में रहता होता तब तो बालक का 'व्यक्तित्व' नष्ट हो गया होता। यदि 'जह' का व्यक्तित्व शरीरगत होता तब तो हमारी एक जीव जगत् शाय नष्ट हो जाने पर वह नष्ट हो जाता। फिर सराबी का सदाब छोड़ना ठीक नहीं क्योंकि तब तो उसका व्यक्तित्व ही नष्ट हो जायगा। शेर का शत्रु बमना भी ठीक नहीं क्योंकि इससे वह अपना व्यक्तित्व खो बैठेगा। तब तो फिर कोई भी अपना व्यसन छोड़ना न चाहेगा। पर बात यह है कि अनन्त को छोड़कर और किसीमें व्यक्तित्व है ही नहीं। केवल इस अनन्त का ही परिवर्तन नहीं होता और शेष सभी का सतत परिवर्तन होता रहता है। 'व्यक्तित्व-भाव' स्मृति में भी नहीं है। स्मृति में यदि 'व्यक्तित्व-भाव' रहता तो मस्तिष्क में गहरी चोट

लगने से स्मृति-लोप हो जाने पर, वह नष्ट हो जाता और हमारा विल्कुल लोप हो जाता। वचपन के, पहले दो-तीन वर्षों का मुझे कोई स्मरण नहीं है और यदि स्मृति और अस्तित्व एक है, तो फिर कहना पड़ेगा कि इन दो-तीन वर्षों में मेरा अस्तित्व ही नहीं था। तब तो, मेरे जीवन का जो अंश मुझे स्मरण नहीं, उस समय मैं जीवित ही नहीं था—यही कहना पड़ेगा। यह बात 'व्यक्तित्व' के बहुत सकीर्ण अर्थ में है।

हम अभी तक 'व्यक्ति' नहीं हैं। हम इसी 'व्यक्तित्व' को प्राप्त करने के लिए सघर्ष कर रहे हैं, और वह अनन्त है, वही मनुष्य का प्रकृत स्वरूप है। जिनका जीवन सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त किये हुए है, वे ही जीवित हैं, और हम जितना ही अपने जीवन को शरीर आदि छोटे छोटे सान्त पदार्थों में बद्ध करके रखेंगे, उतना ही हम मृत्यु की ओर अग्रसर होंगे। जितने क्षण हमारा जीवन समस्त जगत् में व्याप्त रहता है, दूसरो में व्याप्त रहता है, उतने ही क्षण हम जीवित रहते हैं। इस क्षुद्र जीवन में अपने को बद्ध कर रखना तो मृत्यु है और इसी कारण हमें मृत्यु-भय होता है। मृत्यु-भय तो तभी जीता जा सकता है, जब मनुष्य यह समझ ले कि जब तक जगत् में एक भी जीवन शेष है, तब तक वह भी जीवित है। ऐसे व्यक्तियों को यह उपलब्धि होती है कि मैं सब वस्तुओं में, सब देहों में वर्तमान हूँ। सब प्राणियों में मैं ही वर्तमान हूँ। मैं ही यह जगत् हूँ, सम्पूर्ण जगत् ही मेरा शरीर है। जब तक एक भी परमाणु शेष है, तब तक मेरी मृत्यु कहाँ? कौन कहता है कि मेरी मृत्यु होगी? तब ऐसे व्यक्ति निर्भय हो जाते हैं, तभी यह निर्भीक अवस्था आती है। सतत परिणामशील छोटी छोटी वस्तुओं में अविनाशत्व कहना भारी भूल है। एक प्राचीन भारतीय दार्शनिक ने कहा है कि आत्मा अनन्त है, इसलिए आत्मा ही 'व्यक्ति—अविभाज्य' हो सकती है। अनन्त का विभाजन नहीं किया जा सकता—अनन्त को खण्ड खण्ड नहीं किया जा सकता। वह सदा एक, अविभक्त समष्टिस्वरूप, अनन्त आत्मा ही है और वही मनुष्य का यथार्थ 'व्यक्तित्व' है, वही 'प्रकृत मनुष्य' है। 'मनुष्य' के नाम से जिसको हम जानते हैं, वह इस 'व्यक्तित्व' को व्यक्त जगत् में प्रकाशित करने के प्रयत्न का फल मात्र है, 'क्रमविकास' आत्मा में नहीं है। यह जो सब परिवर्तन हो रहा है—बुरा व्यक्ति भला हो रहा है, पशु मनुष्य हो रहा है—यह सब कभी आत्मा में नहीं होता। कल्पना करो कि एक परदा मेरे सामने है और उसमें एक छोटा सा छिद्र है, जिसमें से मैं केवल कुछ चेहरे देख सकता हूँ। यह छिद्र जितना बड़ा होता जाता है, सामने का दृश्य उतना ही अधिक मेरे सम्मुख प्रकाशित होता जाता है, और जब यह छिद्र पूरे परदे को व्याप्त कर लेता है, तब मैं

हम इसे एक ही घटीर समझते हैं। मन के सम्बन्ध में भी यही बात है। सत्य में सुखी सत्य में दुःखी। सत्य में सबक और सत्य में दुर्बल। यह सतत परिणाम-शील भँवर के समान है। अतएव मन भी आत्मा नहीं हो सकता। आत्मा तो अनन्त है। परिवर्तन केवल ससीम वस्तु में ही सम्भव है। अनन्त में किसी प्रकार का परिवर्तन हो यह एक असम्भव बात है। यह कमी हो नहीं सकता। घटीर की बट्टि से तुम और मैं एक स्थान से दूसरे स्थान को जा सकते हैं। जगत् का प्रत्येक अणु-परमाणु निरन्तर परिणामशील है। पर जगत् को एक समष्टि के रूप में लेने पर उसमें गति या परिवर्तन असम्भव है। गति सर्वत्र सापेक्ष है। मैं जब एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता हूँ तब किसी वस्तु के संदर्भ में ही। जगत् का कोई परमाणु किसी दूसरे परमाणु की तुलना में ही परिणाम को प्राप्त हो सकता है। किन्तु सम्पूर्ण जगत् को एक समष्टिरूप में लेने पर फिर किसीकी तुलना में उसका स्थान-परिवर्तन होमा? इस समष्टि के अतिरिक्त और कुछ तो है नहीं। अतएव यह अनन्त इकाई, अपरिणामी अचल और निरपेक्ष है, और यही पारमार्थिक सत्ता है। अतः हमारा सत्य सर्वव्यापकता में है, सान्द्रता में नहीं। यह धारणा कि मैं एक क्षुद्र सान्द्र सतत परिणामी जीव हूँ, क्षिणी ही सुखक क्यों न हो फिर भी यह एक पुराना भ्रम ही है। यदि किसीसे कहो कि 'तुम सर्वव्यापी अनन्त पुरुष हो' तो वह डर जायगा। सबके माध्यम से तुम कार्य कर रहे हो सब पीरों द्वारा तुम चल रहे हो। सब मुक्तों से तुम बातचीत कर रहे हो। सब हृदयों से अनुभव कर रहे हो।

ऐसी बातें यदि तुम किसीसे कहो तो वह डर जायगा। वह तुमसे बार-बार पूछेगा कि क्या फिर उसका अपना व्यक्तित्व नहीं रह जायगा? क्या मैं नहीं रह जाऊँगा? वह व्यक्तित्व—मैं—क्या है? यदि जान पाऊँ, तो अच्छा हो! छोटे बालक के मुँह नहीं होतीं। बड़े होने पर उसके बाड़ी-मूँह निकल जाती है। यदि 'अहं' घटीर में रहता होता तब तो बालक का 'व्यक्तित्व' मरट हो गया होता। यदि 'अहं' या व्यक्तित्व सरीरगत होता तब तो हमारी एक जीव जगत्वा हाव मरट हो जाने पर वह मरट हो जाता। फिर सद्यही का सद्यः छोड़ना ठीक नहीं क्योंकि तब तो उसका व्यक्तित्व ही मरट हो जायगा! और का साधु बनना भी ठीक नहीं क्योंकि इससे वह अपना व्यक्तित्व खो बैठेगा। तब तो फिर कोई भी अपना अस्वयं छोड़ना न चाहेगा। पर बात यह है कि अनन्त को छोड़कर और किसीमें व्यक्तित्व है ही नहीं। केवल इस अनन्त का ही परिवर्तन नहीं होता, और खेच समी का सतत परिवर्तन होता रहता है। 'व्यक्तित्व-भाव' स्मृति में भी नहीं है। स्मृति में यदि 'व्यक्तित्व-भाव' रहता तो अस्तिष्क में गहरी चोट



का ज्ञातास्वरूप है, सब विषयो का विषयीस्वरूप है, इस विश्व-ब्रह्माण्ड का साक्षी-स्वरूप है, तुम्हारा ही आत्मास्वरूप है। ज्ञान तो मानो एक निम्न अवस्था है—एक अवनत भाव मात्र है। हमी वह आत्मा है, फिर उसे हम किस प्रकार जानेंगे? प्रत्येक व्यक्ति वह आत्मा है और सब लोग विभिन्न उपायो से इसी आत्मा को जीवन मे प्रकाशित करने का प्रयत्न कर रहे हैं? यदि ऐसा न होता, तो ये सब नीति-सहिताएँ कहाँ से आती? सारी नीति-सहिताओ का तात्पर्य क्या है? सभी नीति-सहिताओ मे एक ही भाव भिन्न भिन्न रूप से प्रकाशित हुआ है और वह है—दूसरो का उपकार करना। मनुष्यो के प्रति, सारे प्राणियो के प्रति दया ही मानव जाति के समस्त सत्कर्मों का मूल आधार है, और ये सब 'मैं ही जगत् हूँ, यह जगत् एक अखण्डस्वरूप है', इसी सनातन सत्य के विभिन्न भाव मात्र है। यदि ऐसा न हो, तो दूसरो का हित करने मे भला कौन सी युक्ति है? मैं क्यों दूसरो का उपकार करूँ? परोपकार करने को मुझे कौन बाध्य करता है? सर्वत्र समदर्शन से उत्पन्न जो सहानुभूति का भाव है, उसीसे यह बात होती है। अत्यन्त कठोर अन्त करण भी कभी कभी दूसरो के प्रति सहानुभूति से भर जाता है। और तो और, जो व्यक्ति 'यह आपातप्रतीयमान व्यक्तित्व वास्तव मे भ्रम मात्र है, इस भ्रमात्मक व्यक्तित्व मे आसक्त रहना अत्यन्त नीच कार्य है', ये सब बातें सुनकर भयभीत हो जाता है, वही व्यक्ति तुमसे कहेगा कि सम्पूर्ण आत्मत्याग ही सारी नैतिकता की भित्ति है। किन्तु पूर्ण आत्मत्याग क्या है? सम्पूर्ण आत्मत्याग हो जाने पर क्या शेष रहता है? आत्मत्याग का अर्थ है, इस मिथ्या आत्मा या 'व्यक्तित्व' का त्याग, सब प्रकार की स्वार्थपरता का त्याग। यह अहंकार और ममता पूर्व कुसस्कारो के फल हैं और जितना ही इस 'व्यक्तित्व' का त्याग होता जाता है, उतनी ही आत्मा अपने नित्य स्वरूप मे, अपनी पूर्ण महिमा मे प्रकाशित होती है। यही वास्तविक आत्मत्याग है और यही समस्त नैतिक शिक्षा की भित्ति है, केन्द्र है। मनुष्य इसे जाने या न जाने, समस्त जगत् धीरे धीरे इसी दिशा मे जा रहा है, अल्पाधिक परिमाण मे इसीका अम्यास कर रहा है। बात इतनी है कि अधिकाश लोग इसे अज्ञात भाव से कर रहे हैं। वे इसे ज्ञात भाव से करें। यह 'मैं' और 'मेरा' प्रकृत आत्मा नहीं है, यह जानकर वे इस त्याग-यज्ञ का अनुष्ठान करें। यह व्यावहारिक जीव ससीम जगत् मे आवद्ध है। आज जो मनुष्य नाम से परिचित है, वह जगत् के अतीत उस अनन्त सत्ता का सामान्य आभास मात्र है, उस सर्वस्वरूप अनन्त अग्नि का एक कण मात्र है। किन्तु वह अनन्त ही उसका वास्तविक स्वरूप है।

इस ज्ञान का फल—इस ज्ञान की उपयोगिता क्या है? आजकल सभी विषयो को उनकी उपयोगिता के मापदण्ड से नापा जाता है। अर्थात् सक्षेप मे

तुम सबको एक ही देना है। यहाँ पर, तुममें कोई परिवर्तन नहीं हुआ, तुम जो थे वही रहे। केवल छिद्र का अन्वेषण होता रहा और उगक साप साप तुम्हारी अभिव्यक्ति अन्वेषण क्षीण रही। आत्मा के सम्बन्ध में भी यही बात है। जिमी पूर्णता को उपलब्ध नहीं करना है। तुम मुक्तबन्धन और पूर्ण हो। परम ईश्वर या परमोक्त सम्बन्धी ये सब पारनाएँ नहीं गे जायीं? मनुष्य 'ईश्वर, ईश्वर' करता क्यों घुमता फिरता है? सभी देवों में सभी ममाओं में मनुष्य क्यों पूर्ण आदर्श का अन्वेषण करता फिरता है—भसे ही वह आदर्श मनुष्य में हो अपना ईश्वर में या अन्य किसी वस्तु में? इसलिए कि वह तुम्हारे भीतर ही वर्तमान है। तुम्हारा आत्मा ही हृदय परमेश्वर कर रहा है और तुम सोचते हो कि बाहर की कोई वस्तु यह गन्ध कर रही है। तुम्हारी आत्मा में विराजमान ईश्वर ही तुम्हें अपना अनुमापण करने को—अपनी उपलब्धि करने का प्रेरित कर रहा है। यहाँ वहाँ मन्दिर में विराजापर में स्वर्ग में मर्त्य में विभिन्न स्थानों में अनेक उपायों से अन्वेषण करने के बाद अन्त में हमने वहाँ से आरम्भ किया या नहीं अपना अपनी आत्मा में ही हम एक चक्कर पूरा करके वापस आ जाते हैं और देखते हैं कि जिसकी हम समस्त जगत् में खोज करते फिर रहे थे जिसके लिए हमने मन्दिरों और गिरजाओं में जा जा कातर होकर प्रार्थनाएँ कीं जाँयू वहाँसे जिसको हम सुदूर आकाश में भेषधरि के पीछे छिपा हुआ अस्पष्ट और रहस्यमय समझते रहे, वह हमारे निकट से भी निकट है, प्राणों का प्राण है, हमारा सटीर है, हमारी आत्मा है—तुम्हीं 'मैं' हो, मैं ही 'तुम' है। यही तुम्हारा स्वभाव है—इसीको अभिभ्यस्त करो। तुम्हें पवित्र होना नहीं पड़ेगा—तुम तो स्वयं पवित्रस्वरूप ही हो। तुम्हें पूर्ण होना नहीं पड़ेगा—तुम तो पूर्णस्वरूप ही हो। साथी प्रकृति देश-कालातीत सत्य को परदे के समान ढक़ि हुए है। तुम जो कुछ भी अच्छा विचार या अच्छा कार्य करते हो उससे मानो वह आनन्द भीरे भीरे छिन्न होता रहता है और देश-कालातीत वह सूक्ष्मस्वरूप अनन्त ईश्वर स्वयं अभिव्यक्त होता रहता है।

यही मनुष्य का सारा इतिहास है। यह आनन्द विवश ही प्रथम होता जाता है, अतः ही प्रकृति के अन्तर स्थित प्रकाश भी अपने स्वभाववश अन्वेषण अधिकारिक दीप्त होता जाता है क्योंकि उसका स्वभाव ही इस प्रकार दीप्त होता है। उसको जाना नहीं जा सकता हम उसे जानने का बुद्धि ही प्रयत्न करते रहते हैं। यदि वह शून्य होता तो उसका स्वभाव ही अज्ञान अज्ञान क्योंकि वह जो गिर्य जाता है। ज्ञान सही है किसी वस्तु का ज्ञान-ज्ञान करने के लिए उसका अन्तर्गत शून्य वस्तु के रूप में विषय के रूप में करना पड़ता है। वह तो साथी वस्तुओं

का ज्ञातास्वरूप है, सब विषयो का विषयीस्वरूप है, इस विश्व-ब्रह्माण्ड का साक्षी-स्वरूप है, तुम्हारा ही आत्मास्वरूप है। ज्ञान तो मानो एक निम्न अवस्था है—एक अवनत भाव मात्र है। हमी वह आत्मा हैं, फिर उसे हम किस प्रकार जानेंगे ? प्रत्येक व्यक्ति वह आत्मा है और सब लोग विभिन्न उपायो से इसी आत्मा को जीवन मे प्रकाशित करने का प्रयत्न कर रहे हैं ? यदि ऐसा न होता, तो ये सब नीति-सहिताएँ कहाँ से आती ? सारी नीति-सहिताओ का तात्पर्य क्या है ? सभी नीति-सहिताओ मे एक ही भाव भिन्न भिन्न रूप से प्रकाशित हुआ है और वह है—दूसरो का उपकार करना। मनुष्यो के प्रति, सारे प्राणियो के प्रति दया ही मानव जाति के समस्त सत्कर्मों का मूल आधार है, और ये सब 'मैं ही जगत् हूँ, यह जगत् एक अखण्डस्वरूप है', इसी सनातन सत्य के विभिन्न भाव मात्र है। यदि ऐसा न हो, तो दूसरो का हित करने मे भला कौन सी युक्ति है ? मैं क्यों दूसरो का उपकार करूँ ? परोपकार करने को मुझे कौन बाध्य करता है ? सर्वत्र समदर्शन से उत्पन्न जो सहानुभूति का भाव है, उसीसे यह बात होती है। अत्यन्त कठोर अन्त करण भी कभी कभी दूसरो के प्रति सहानुभूति से भर जाता है। और तो और, जो व्यक्ति 'यह आपातप्रतीयमान व्यक्तित्व वास्तव में भ्रम मात्र है, इस भ्रमात्मक व्यक्तित्व मे आसक्त रहना अत्यन्त नीच कार्य है', ये सब बातें सुनकर भयभीत हो जाता है, वही व्यक्ति तुमसे कहेगा कि सम्पूर्ण आत्मत्याग ही सारी नैतिकता की भित्ति है। किन्तु पूर्ण आत्मत्याग क्या है ? सम्पूर्ण आत्मत्याग हो जाने पर क्या शेष रहता है ? आत्मत्याग का अर्थ है, इस मिथ्या आत्मा या 'व्यक्तित्व' का त्याग, सब प्रकार की स्वार्थपरता का त्याग। यह अहंकार और ममता पूर्व कुसस्कारो के फल हैं और जितना ही इस 'व्यक्तित्व' का त्याग होता जाता है, उतनी ही आत्मा अपने नित्य स्वरूप मे, अपनी पूर्ण महिमा मे प्रकाशित होती है। यही वास्तविक आत्मत्याग है और यही समस्त नैतिक शिक्षा की भित्ति है, केन्द्र है। मनुष्य इसे जाने या न जाने, समस्त जगत् धीरे धीरे इसी दिशा मे जा रहा है, अल्पाधिक परिमाण मे इसीका अम्यास कर रहा है। बात इतनी है कि अधिकांश लोग इसे अज्ञात भाव से कर रहे हैं। वे इसे ज्ञात भाव से करें। यह 'मैं' और 'मेरा' प्रकृत आत्मा नहीं है, यह जानकर वे इस त्याग-यज्ञ का अनुष्ठान करें। यह व्यावहारिक जीव ससीम जगत् मे आवद्ध है। आज जो मनुष्य नाम से परिचित है, वह जगत् के अतीत उस अनन्त सत्ता का सामान्य आभास मात्र है, उस सर्वस्वरूप अनन्त अग्नि का एक कण मात्र है। किन्तु वह अनन्त ही उसका वास्तविक स्वरूप है।

इस ज्ञान का फल—इस ज्ञान की उपयोगिता क्या है ? आजकल सभी विषयो को उनकी उपयोगिता के मापदण्ड से नापा जाता है। अर्थात् सक्षेप मे

यह कि इससे कितने रुपये कितने जाने और कितने पैसों का काम होवा ? लोगों को इस प्रकार प्रश्न करने का क्या अधिकार है ? क्या सत्य को भी उपकार या बल के मापदण्ड से नापा जायगा ? मान लो कि उसकी कोई उपयोगिता नहीं है तो क्या इससे सत्य बट जायगा ? उपयोगिता सत्य की कसौटी नहीं है। जो भी हो इस ज्ञान में बड़ा उपकार तथा प्रयोजन भी है। हम देखते हैं सब लोग मुख की खोज करते हैं पर अधिकतर लोग मत्सर, मिथ्या वस्तुओं में उसको रूढ़ि फिरोते हैं। इन्द्रियों में कभी किसीको मुख नहीं मिलता। मुख तो केवल आत्मा में मिलता है। अतएव आत्मा में इस मुख की प्राप्ति ही मनुष्य का सबसे बड़ा प्रयोजन है। और एक बात यह है कि अज्ञान ही सब दुखों का कारण है और मेरी समझ में सबसे बड़ा अज्ञान तो यही है कि जो अनन्तस्वरूप है, वह अपने को सान्त मानकर रोता है। समस्त अज्ञान की मूल भित्ति नहीं है कि हम अविनाशी मित्य पुरु पूर्ण आत्मा होते हुए भी सोचते हैं कि हम छोटे छोटे मन हैं, छोटी छोटी देह मात्र हैं यही समस्त स्वार्थपरता की पड़ है। ज्यों ही मैं अपने को एक सूर देख समझ बैठता हूँ त्यों ही मैं संसार के अन्धाम्य घरीरों के सुख-दुख की कोई परवाह न करते हुए अपने घरीर की रक्षा में उसे सुन्दर बनाने के प्रयत्न में लग जाता हूँ। उस समय मैं तुमसे पूबक हो जाता हूँ। ज्यों ही यह भेद ज्ञान जाता है, त्यों ही वह सब प्रकार के असुख क हार खोल देता है और सर्वविध दुखों की उत्पत्ति करता है। अतः पूर्वोक्त ज्ञान की प्राप्ति से लाभ यह होगा कि यदि वर्तमान मानव जाति का एक विशुद्ध छोटा सा अंश भी इस सूर सकीर्ण और स्वार्थी भाव का त्याग कर सके तो कम ही यह संसार स्वर्ग में परिणत हो जायगा पर नाना प्रकार की मशीन तथा बाह्य जयस् सम्बन्धी ज्ञान की उत्पत्ति से यह कभी सम्भव नहीं हो सकता। त्रिस प्रकार अग्नि में भी डालने से अग्निशिखा और भी बर्धित होती है उसी प्रकार इन सब वस्तुओं से दुखों की ही वृद्धि होती है। आत्मा के ज्ञान बिना जो कुछ भौतिक ज्ञान उपार्जित किया जाता है वह सब ज्ञान में भी डालने के समान है। उससे दूसरों के लिए प्राण उत्सर्ग कर देने की बात तो दूर ही रही स्वार्थपर लोगों को दूसरों की पीछे हट लेने के लिए, दूसरों के रक्त पर फलने-पूकने के लिए एक और मंत्र—एक और सुविधा मिल जाती है।

एक और प्रश्न है—क्या यह ब्यावहारिक है ? वर्तमान समाज में क्या इसे कार्य-रूप में परिणत किया जा सकता है ? इसका उत्तर यह है कि 'सत्य प्राचीन अथवा आधुनिक किसी समाज का सम्मान नहीं करता। समाज को ही सत्य का सम्मान करना पड़ेगा अन्यथा वह नष्ट हो जायगा। समाजों को सत्य के अनुकूल ढालना चाहिए, सत्य को समाज के अनुसार अपने को ढालना नहीं पड़ता।

यदि नि स्वार्थपरता के समान महान् सत्य समाज में कार्य-रूप में परिणत न किया जा सकता हो, तो ऐसे समाज को छोड़कर वन में चले जाना ही बेहतर है। इसीका नाम साहस है। साहस दो प्रकार का होता है। एक प्रकार का साहस है— तोप के मुँह में दौड़ जाना। दूसरे प्रकार का साहस है—आध्यात्मिक विश्वास। एक बार एक दिग्विजयी सम्राट् भारतवर्ष में आया। उसके गुरु ने उसे भारतीय साधुओं से साक्षात्कार करने का आदेश दिया था। बहुत खोज करने के बाद उसने देखा कि एक वृद्ध साधु एक पत्थर पर बैठे हैं। सम्राट् उनके साथ कुछ देर बातचीत करने से बड़ा प्रभावित हुआ। अतएव उसने साधु को अपने साथ देश ले जाने की इच्छा प्रकट की। साधु ने इसे स्वीकार नहीं किया और कहा, “मैं इस वन में बड़े आनन्द में हूँ।” सम्राट् बोला, “मैं समस्त पृथ्वी का सम्राट् हूँ। मैं आपको असीम ऐश्वर्य और उच्च पद-मर्यादा दूंगा।” साधु बोले, “ऐश्वर्य, पद-मर्यादा आदि किसी बात की मेरी इच्छा नहीं।” तब सम्राट् ने कहा, “आप यदि मेरे साथ न चलेंगे, तो मैं आपको मार डालूंगा।” इस पर साधु बहुत हँसे और बोले, “राजन्, आज तुमने अपने जीवन में सबसे मूर्खतापूर्ण बात कही। तुम्हारी क्या हस्ती कि मुझे मारो? सूर्य मुझे सुखा नहीं सकता, अग्नि मुझे जला नहीं सकती, कोई भी यत्र मेरा सहार नहीं कर सकता, क्योंकि मैं तो जन्मरहित, अविनाशी, नित्य-विद्यमान, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान आत्मा हूँ।” यह आध्यात्मिक साहस है। सन् १८५७ ई० के गदर के समय एक मुसलमान सिपाही ने एक सन्यासी महात्मा को बुरी तरह धायल कर दिया। हिन्दू विद्रोहियों ने उस मुसलमान को पकड़ लिया और उसे स्वामी जी के पास लाकर कहा, “आप कहे, तो इसका वध कर दें।” स्वामी जी ने उसकी ओर देखकर कहा, “भाई, तुम्ही वह हो, तुम्ही वह हो—तत्त्वमसि।” और यह कहते कहते उन्होंने शरीर छोड़ दिया। यह दूसरा उदाहरण है। यदि तुम ऐसे समाज की रचना नहीं कर सकते, जिसमें सर्वोच्च सत्य को स्थान मिले, अपने ब्राह्मण की, अपने पाश्चात्य सस्थानों की श्रेष्ठता की, बात करनी व्यर्थ है। अपनी महत्ता और श्रेष्ठता की तुम क्यों व्यर्थ शेखी बघारते हो, यदि दिन-रात तुम यही कहते रहो कि ऐसा साहस अव्यावहारिक है। पैसे-कौड़ी को छोड़कर क्या और कुछ भी व्यावहारिक नहीं है? यदि ऐसा ही हो, तो फिर अपने समाज पर इतना घमड़ क्यों करते हो? वही समाज सबसे श्रेष्ठ है, जहाँ सर्वोच्च सत्य को कार्य में परिणत किया जा सकता है—यही मेरा मत है। और यदि समाज इस समय उच्चतम सत्य को स्थान देने में समर्थ नहीं है, तो उसे इस योग्य बनाओ। और जितना शीघ्र तुम ऐसा कर सको, उतना ही अच्छा। हे नर-नारियो! उठो, आत्मा के सम्बन्ध में जाग्रत होओ, सत्य में विश्वास

करने का साहस करो सत्य के अभ्यास का साहस करो। संसार की कोई भी साहसी नर-नारियों की आवश्यकता है। अपने में वह साहस लामो जो सत्य को जान सके जो जीवन में निहित सत्य को बिना सके जो मृत्यु से न डरे, प्रसूत उसका स्वागत करे, जो मनुष्य को यह ज्ञान करा दे कि वह आत्मा है और सारे जगत् में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जो उसका विनाश कर सके। तब तुम मुक्त हो जाओगे। तब तुम अपनी आस्तिक आत्मा को जान लोगे। इस आत्मा के सम्बन्ध में पहले श्रवण करना चाहिए, फिर मनन और तत्पश्चात् निर्विषयासन।

आत्मनः के समाज में एक प्रवृत्ति देखी जा रही है और वह है—कार्य पर अधिक जोर देना और विचार की निंदा करना। कार्य आवश्यक ब्रह्म है, पर वह भी तो विचार या चिन्तन से उत्पन्न होता है। मन के भीतर बिन छोटी छोटी शक्तियों का विकास होता रहता है वे जब शरीर द्वारा अनुचित होती है तब इन्हींको कार्य कहते हैं। बिना विचार या चिन्तन के कोई कार्य नहीं हो सकता। मस्तिष्क को ऊँचे ऊँचे विचारों ऊँचे ऊँचे भावनों से भर लो और उनको पिल रात मन के सम्मुख रखो एसा होने पर इन्हीं विचारों से बड़े बड़े कार्य होंगे। अपवित्रता की कोई बात मन में न लामो प्रसूत मन से कहो कि मैं धृष्ट, पवित्र स्वयम् हूँ। हम धृष्ट हैं हमने जन्म लिया है, हम मरेगे इन्हीं विचारों से हमने अपने आपको एकदम सम्मोहित कर रखा है और इसीलिए हम सर्वथा मय से कपिते रहते हैं।

एक सिंही जिसका प्रसव-काळ निकट था एक बार अपने सिकार की खोज में बाहर निकली। उसने दूर भेड़ों के एक झुण्ड को चरते देखा उस पर आक्रमण करने के लिए ज्यों ही कर्जाव मारी त्यों ही उसके प्राणपणेक उड़ गये और एक मादृहीन सिंह-शावक ने जन्म लिया। भेड़ों उस सिंह-शावक की देख-भाल करने लगी और वह भेड़ों के जन्मों के साथ साथ बड़ा होने लगा भेड़ों की सति वास-पाठ साकर रहने लगा और भेड़ों की ही सति 'मै-मै' करने लगा। और यद्यपि वह कुछ समय बाद एक अभिजाती पूर्ण विकसित सिंह हो गया फिर भी वह अपने को भेड़ ही समझता था। इसी प्रकार बिन बीछते गये कि एक दिन एक बड़ा मारी सिंह सिकार के लिए उभर जा निकला। पर उसे यह देख बड़ा आश्चर्य हुआ कि भेड़ों के बीच में एक सिंह भी है और वह भेड़ों की ही सति उरकर बागा था रहा है। तब सिंह उसकी ओर यह समझाने के लिए बड़ा कि तू सिंह है, भेड़ नहीं। पर ज्यों ही वह जाने बड़ा त्यों ही भेड़ों का झुण्ड और भी मारा और उसके साथ साथ वह 'भेड़-सिंह' भी। जो ही उसने उस भेड़-सिंह की उसके अपने यथार्थ स्वभाव को समझा देने का संकल्प नहीं छोड़ा। वह देखने लगा कि वह भेड़-सिंह

कहाँ रहता है, क्या करता है। एक दिन उसने देखा कि वह एक जगह पडा सो रहा है। देखते ही वह छलांग मारकर उसके पास जा पहुँचा और बोला, “अरे, तू भेडो के साथ रहकर अपना स्वभाव कैसे भूल गया? तू भेड नहीं है, तू तो सिंह है।” भेड-सिंह बोल उठा, “क्या कह रहे हो? मैं तो भेड हूँ, सिंह कैसे हो सकता हूँ?” उसे किसी प्रकार विश्वास नहीं हुआ कि वह सिंह है, और वह भेडो की भाँति मिमियाने लगा। तब सिंह उसे उठाकर एक सरोवर के किनारे ले गया और बोला, “यह देख, अपना प्रतिविम्ब, और यह देख, मेरा प्रतिविम्ब।” और तब वह उन दोनों परछाइयो की तुलना करने लगा। वह एक वार सिंह की ओर, और एक वार अपने प्रतिविम्ब की ओर ध्यान से देखने लगा। तब क्षण भर में ही वह जान गया कि ‘सचमुच, मैं तो सिंह ही हूँ।’ तब वह सिंह गर्जना करने लगा और उसका भेडो का सा मिमियाना न जाने कहाँ चला गया। इसी प्रकार तुम सब सिंहस्वरूप हो—तुम आत्मा हो, शुद्धस्वरूप, अनन्त और पूर्ण हो। जगत् की महाशक्ति तुम्हारे भीतर है। ‘हे सखे, तुम क्यों रोते हो? जन्म-मरण तुम्हारा भी नहीं है और मेरा भी नहीं। क्यों रोते हो? तुम्हे रोग-शोक कुछ भी नहीं है, तुम तो अनन्त आकाशस्वरूप हो, उस पर नाना प्रकार के मेघ आते हैं और कुछ देर खेलकर न जाने कहाँ अन्तर्हित हो जाते हैं, पर वह आकाश जैसा पहले नीला था, वैसा ही नीला रह जाता है।’ इसी प्रकार के ज्ञान का अभ्यास करना होगा। हम जगत् में पाप-ताप क्यों देखते हैं? इसलिए कि हम स्वयं असत् हैं। किसी मार्ग में एक ठूँठ खडा था। एक चोर उधर से जा रहा था, उसने समझा कि वह कोई पहरेवाला है। अपनी प्रेमिका की बाट जोहनेवाले प्रेमी ने समझा कि वह उसकी प्रेमिका है। एक बच्चे ने जब उसे देखा, तो भूत समझकर डर के मारे चिल्लाने लगा। इस प्रकार भिन्न भिन्न व्यक्तियों ने यद्यपि उसे भिन्न भिन्न रूपों में देखा, तथापि वह एक ठूँठ के अतिरिक्त और कुछ भी न था। हम स्वयं जैसे होते हैं, जगत् को भी वैसा ही देखते हैं। मान लो, कमरे में भेड पर सोने की एक थैली रखी है और एक छोटा बच्चा वहाँ खेल रहा है। इतने में एक चोर वहाँ आता है और उस थैली को चुरा लेता है। तो क्या बच्चा यह समझेगा कि चोरी हो गयी? हमारे भीतर जो है, वही हम बाहर भी देखते हैं। बच्चे के मन में चोर नहीं है, अतएव वह बाहर भी चोर नहीं देखता। सब प्रकार के ज्ञान के सम्बन्ध में ऐसा ही है। ससार के पाप-अत्याचार आदि की बात मन में न लाओ, पर रोओ कि तुम्हे जगत् में अब भी पाप दिखता है। रोओ कि तुम्हे अब भी सर्वत्र अत्याचार दिखायी पडता है। और यदि तुम जगत् का उपकार करना चाहते हो, तो जगत् पर दोषारोपण करना छोड़ दो। उसे और भी दुर्बल मत करो। आखिर ये सब

पाप कुछ आदि क्या है? वे सब तो दुर्बलता के ही फलस्वरूप हैं। लोग बचपन से ही सिखा पाते हैं कि वे दुर्बल हैं, पापी हैं। इस प्रकार की शिक्षा से संसार दिन पर दिन दुर्बल होता जा रहा है। उनको सिखाओ कि वे सब उसी अमृत की सन्तान हैं—और तो और, त्रिसङ्ग भीतर आत्मा का प्रवास अत्यन्त शीघ्र है, उसे भी यही सिखा दो। बचपन से ही उनके मस्तिष्क में इस प्रकार के विचार प्रविष्ट हो जायें तबसे उनकी सपर्याय सहायता हो सके जो उनकी सबल बना दें तबसे उनका कुछ पथायें हित हो। दुर्बलता और असहायकारक विचार उनके मस्तिष्क में प्रवेश ही न करें। सच्चिदानन्द के श्रोत्र में धरती को बहा दो अपने मन से सबका बहते रहो, 'मैं ही बह हूँ मैं ही बह हूँ। तुम्हारे मन में दिन-रात बह जाय संगीत की भाँति मँडल होती रहे, और मृत्यु के समय भी तुम्हारे अक्षरों पर सोम्हम् सोम्हम् वेकता रहे। यही सत्य है—जगत् की अनन्त शक्ति तुम्हारे भीतर है। जो कुसंस्कार तुम्हारे मन को ढके हुए हैं, उन्हें भग्न दो। साहसी बनो। सत्य को जानो और उसे जीवन में परिणत करो। चरम रूप में ही बहुत दूर हों पर उत्तिष्ठत आप्त प्राप्त प्राप्य बरात्रिबोधत।



## मनुष्य का वास्तविक और प्रातिभासिक स्वरूप

(न्यूयार्क में दिया हुआ भाषण)

हम यहाँ खड़े हैं, परन्तु हमारी दृष्टि दूर, बहुत दूर, और कभी कभी तो, कोसों दूर चली जाती है। जब से मनुष्य ने विचार करना आरम्भ किया, तभी से वह ऐसा करता आ रहा है। मनुष्य सदैव आगे और दूर देखने का प्रयत्न करता है। वह जानना चाहता है कि इस शरीर के नष्ट होने के बाद वह कहाँ चला जाता है। इसकी व्याख्या करने के लिए अनेक सिद्धांतों का प्रचार हुआ, सैकड़ों मतों की स्थापना हुई। इनमें से कुछ मत खण्डित करके छोड़ भी दिये गये। और कुछ स्वीकार किये गये, और जब तक मनुष्य इस जगत् में रहेगा, जब तक वह विचार करता रहेगा, तब तक ऐसा चलेगा। इन सभी मतों में कुछ न कुछ सत्य है, और साथ ही, उनमें बहुत सा असत्य भी है। इस सम्बन्ध में भारत में जो सब अनुसन्धान हुए हैं, उन्हींका सार, उन्हींका फल मैं तुम्हारे सामने रखने का प्रयत्न करूँगा। भारतीय दार्शनिकों के इन सब विभिन्न मतों का समन्वय और, यदि हो सका तो, उनके साथ आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों का भी समन्वय करने का प्रयत्न करूँगा।

वेदान्त दर्शन का एक ही उद्देश्य है और वह है—एकत्व की खोज। हिन्दू लोग किसी विशेष के पीछे नहीं दौड़ते, वे तो सदैव सर्वसामान्य की, यही क्यों, सर्वव्यापी सार्वभौमिक की खोज करते हैं। 'वह क्या है, जिसके जान लेने से सब कुछ जाना जा सकता है?' यही उनका विषय है। जिस प्रकार मिट्टी के एक ढेले को जान लेने पर जगत् की सारी मिट्टी को जान लिया जाता है, उसी प्रकार ऐसी कौन सी वस्तु है, जिसे जान लेने पर जगत् की सारी वस्तुएँ जानी जा सकती हैं? उनकी यही एक खोज है, यही एक जिज्ञासा है। उनके मत से, समस्त जगत् का विश्लेषण करके उसे 'आकाश' में पर्यवसित किया जा सकता है। हम अपने चारों ओर जो कुछ देखते हैं, छूते हैं, आस्वादन करते हैं, और तो और, हम जो कुछ अनुभव करते हैं, वह सब इसी आकाश की विभिन्न अभिव्यक्ति मात्र है। यह आकाश सूक्ष्म और सर्वव्यापी है। ठोस, तरल और वाष्पीय सब प्रकार के पदार्थ, सब प्रकार के रूप, शरीर, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, तारे—सब इसी आकाश से निर्मित हैं।

पाप कुछ आवि क्या है? ये सब तो दुर्बलता के ही फलस्वरूप हैं। खोम बचपन से ही सिखा पाते हैं कि वे दुर्बल हैं, पापी हैं। इस प्रकार की शिक्षा से सत्कार बिन पर बिन दुर्बल होता जा रहा है। उनको सिखाओ कि वे सब सही अमृत की सन्तान हैं—और तो और, जिसके भीतर आत्मा का प्रकाश अत्यन्त क्षीण है उसे भी यही सिखा दो। बचपन से ही उनके मस्तिष्क में इस प्रकार के विचार प्रविष्ट हो जायें जिनसे उनकी मर्यादा सहायता हो सके औ उनको सबसे बड़ा बँ जिनसे उनका कुछ मर्यादा हित हो। दुर्बलता और अवसादकारक विचार उनके मस्तिष्क में प्रवेश ही न करें। सच्चिदानन्द के श्रोत्र में घरीर को बहा दो अपने मन से सर्वथा बहते रहो 'मैं ही वह हूँ, मैं ही वह हूँ। तुम्हारे मन में दिन-रात यह बात संगीत की भाँति संकष्ट होती रहे, और मृत्यु के समय भी तुम्हारे अक्षरों पर सौप्सुम् सौप्सुम् बोलता रहे। यही सत्य है—अगत् की अनन्त शक्ति तुम्हारे भीतर है। जो दुर्बलकार तुम्हारे मन को डके हुए हैं, उन्हें भगा दो। साहसी बनो। सत्य को जानो और उसे जीवन में परिणत करो। चरम तन्त्र्य भस्मे ही बहुत दूर ही पर पल्लिष्ठ आप्त प्राप्य बराभिचीकत।

## मनुष्य का वास्तविक और प्रातिभासिक स्वरूप

(न्यूयार्क में दिया हुआ भाषण)

हम यहाँ खड़े हैं, परन्तु हमारी दृष्टि दूर, बहुत दूर, और कभी कभी तो, कोसो दूर चली जाती है। जब से मनुष्य ने विचार करना आरम्भ किया, तभी से वह ऐसा करता आ रहा है। मनुष्य सदैव आगे और दूर देखने का प्रयत्न करता है। वह जानना चाहता है कि इस शरीर के नष्ट होने के बाद वह कहाँ चला जाता है। इसकी व्याख्या करने के लिए अनेक सिद्धांतों का प्रचार हुआ, सैकड़ों मतों की स्थापना हुई। इनमें से कुछ मत खण्डित करके छोड़ भी दिये गये। और कुछ स्वीकार किये गये, और जब तक मनुष्य इस जगत् में रहेगा, जब तक वह विचार करता रहेगा, तब तक ऐसा चलेगा। इन सभी मतों में कुछ न कुछ सत्य है, और साथ ही, उनमें बहुत सा असत्य भी है। इस समन्वय में भारत में जो सब अनुसन्धान हुए हैं, उन्हींका सार, उन्हींका फल मैं तुम्हारे सामने रखने का प्रयत्न करूँगा। भारतीय दार्शनिकों के इन सब विभिन्न मतों का समन्वय और, यदि हो सका तो, उनके साथ आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों का भी समन्वय करने का प्रयत्न करूँगा।

वेदान्त दर्शन का एक ही उद्देश्य है और वह है—एकत्व की खोज। हिन्दू लोग किसी विशेष के पीछे नहीं दौड़ते, वे तो सदैव सर्वसामान्य की, यही क्यों, सर्वव्यापी सार्वभौमिक की खोज करते हैं। 'वह क्या है, जिसके जान लेने से सब कुछ जाना जा सकता है?' यही उनका विषय है। जिस प्रकार मिट्टी के एक ढेले को जान लेने पर जगत् की सारी मिट्टी को जान लिया जाता है, उसी प्रकार ऐसी कौन सी वस्तु है, जिसे जान लेने पर जगत् की सारी वस्तुएँ जानी जा सकती हैं? उनकी यही एक खोज है, यही एक जिज्ञासा है। उनके मत से, समस्त जगत् का विश्लेषण करके उसे 'आकाश' में पर्यवसित किया जा सकता है। हम अपने चारों ओर जो कुछ देखते हैं, छूते हैं, आस्वादन करते हैं, और तो और, हम जो कुछ अनुभव करते हैं, वह सब इसी आकाश की विभिन्न अभिव्यक्ति मात्र है। यह आकाश सूक्ष्म और सर्वव्यापी है। ठोस, तरल और वाष्पीय सब प्रकार के पदार्थ, सब प्रकार के रूप, शरीर, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, तारे—सब इसी आकाश से निर्मित हैं।

किस शक्ति ने इन आकाश पर कार्य करके इसमें से जगत् की सृष्टि की? आकाश के साथ एक सम्बन्धी शक्ति खड़ी है। जगत में जिसनी भी निम्न निम्न शक्तियाँ हैं—आकर्षण विकर्षण यहाँ तक कि विचार-शक्ति भी सभी 'प्राण' नामक एक महाशक्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं। इसी प्राण ने आकाश पर कार्य करके इस जगत् प्रपञ्च की रचना की है। कल्प के प्रारम्भ में यह प्राण मानो अनन्त आकाश-समुद्र में प्रसुप्त रहता है। प्रारम्भ में यह आनादा प्रतिहीन होकर अद स्थित था। बाद में प्राण के प्रभाव से इस आकाश-समुद्र में गति उत्पन्न होने लगती है। और जैसे जैसे इस प्राण की गति होने लगती है, वैसे वैसे इस आकाश-समुद्र में से नाना ब्रह्माण्ड नाना जगत् कितने ही सूर्य चन्द्र तारे, पृथ्वी मनुष्य पशु, उद्भिद् और नामानिष्ठ शक्तियाँ उत्पन्न होती खड़ी हैं। अतएव हिन्दुओं के मत से सब प्रकार की शक्तियाँ प्राण के और सब प्रकार के द्रव्य पदार्थ आकाश के विभिन्न रूप मात्र हैं। कल्पान्त में सभी जगत् पदार्थ विपन्न जायगी और वह तरल पदार्थ वाष्पीय आकार में परिणत हो जायगा। वह फिर तेज-रूप धारण करेगा। अन्त में सब कुछ जिस आकाश से उत्पन्न हुआ था उसीमें विच्छिन्न हो जायगा। और आकर्षण विकर्षण यति आदि समस्त शक्तियाँ धीरे धीरे मूल प्राण में परिणत हो जायगी। उसके बाद जब तक फिर से कल्पारम्भ नहीं होता तक तक यह प्राण मानो निश्चित अवस्था में रहेगा। कल्पारम्भ होने पर वह जागकर पुनः नाना रूपों को प्रकाशित करेगा और कल्पान्त में फिर से सबका अन्त हो जायगा। जब इसी प्रकार वह जाता है और चला जाता है मानो एक बार पीछे और एक बार आगे झुका रहा है। आधुनिक विज्ञान की भाषा में कहिये कि एक समय वह स्थितिशील (static) रहता है फिर गतिशील (dynamic) हो जाता है एक समय प्रसुप्त रहता है और फिर क्रियाशील हो जाता है। इस इसी प्रकार अनन्त काल से चला आ रहा है।

पर यह विश्लेषण भी अधूरा है। इतना तो आधुनिक भौतिक विज्ञान को भी बात है। इसके अन्तर्गत भौतिक विज्ञान की गति नहीं है। पर इस अनुसन्धान का यही अन्त नहीं हो जाता। हमने अभी तक उस वस्तु को प्राप्त नहीं किया जिसे जान लेने पर सब कुछ जाना जा सके। हमने समस्त जगत् को भूत और शक्ति में अपनया प्राचीन भारतीय दार्शनिकों के शब्दों में आकाश और प्राण में पर्यवसित कर दिया। जब आकाश और प्राण को उनके मूल तरल में पर्यवसित करता होगा। इन्हें मग नामक उच्चतर स्तर में पर्यवसित किया जा सकता है। महत्त्व ब्रह्मा समष्टि विचार-शक्ति से प्राण और आकाश दोनों की उत्पत्ति होती है। विचार-शक्ति ही इन ही शक्तियों के रूप में विभक्त हो जाती है। प्रारम्भ

मे यह सर्वव्यापी मन ही था। इसने परिणत होकर आकाश और प्राण ये दो रूप धारण किये और इन दोनों के सम्मिश्रण से सारा जगत् बना।

अब हम मनोविज्ञान की चर्चा करेंगे। मैं तुमको देख रहा हूँ। आँखें विषय को ग्रहण कर रही हैं और सवेदक नाडियाँ उसे मस्तिष्क में ले जा रही हैं। आँखें देखने का साधन नहीं हैं, वे उसकी केवल बाहरी यन्त्र हैं, क्योंकि देखने का जो वास्तविक साधन है, जो मस्तिष्क में विषय-ज्ञान का सवाद ले जाता है, उसको यदि नष्ट कर दिया जाय, तब बीस आँखें रहते हुए भी मैं तुमसे किसीको भी न देख सकूँगा। नेत्रपट (retina) पर भले ही पूरा प्रतिबिम्ब पड़े, फिर भी मैं तुमको न देख सकूँगा। अतएव वास्तविक इन्द्रिय इस यन्त्र से कोई भिन्न वस्तु है। यथार्थ चक्षुरिन्द्रिय, अवश्य, चक्षुयन्त्र के पीछे अवस्थित है। सब प्रकार की विषयानुभूतियों के सम्बन्ध में ऐसा ही समझना चाहिए। नासिका घ्राणेन्द्रिय नहीं है, वह तो यन्त्र मात्र है, घ्राणेन्द्रिय उसके पीछे है। प्रत्येक इन्द्रिय के सम्बन्ध में समझना चाहिए कि वाह्य यन्त्र इस स्थूल शरीर में अवस्थित हैं और उनके पीछे, इस स्थूल शरीर में ही, इन्द्रियाँ भी मौजूद हैं। पर इतने से ही काम नहीं चलता। मान लो, मैं तुमसे कुछ कह रहा हूँ और तुम बड़े ध्यान से मेरी बात सुन रहे हो। इसी समय यहाँ एक घण्टा बजता है और शायद तुम उस घण्टे की ध्वनि को नहीं सुन पाते। यह शब्द-तरंग तुम्हारे कान में पहुँचकर कान के परदे में आघात करती है, नाडियों के द्वारा यह सवाद मस्तिष्क में पहुँचा, पर फिर भी तुम उसे नहीं सुन सके। ऐसा क्यों? यदि मस्तिष्क में आवेग सवाहित करने से ही सुनने की सारी क्रिया सम्पूर्ण हो जाती है, तो फिर तुम क्यों सुन नहीं सके? किसी अन्य घटक का अभाव था, मन इन्द्रिय से युक्त नहीं था। जिस समय मन इन्द्रियो से पृथक् रहता है, उस समय इन्द्रियो द्वारा लाये गये किसी भी सवाद को मन ग्रहण नहीं करता। जब मन उनसे युक्त रहता है, तभी वह किसी सवाद को ग्रहण करने में समर्थ होता है। पर इससे भी विषयानुभूति पूर्ण नहीं हो जाती। बाहरी यन्त्र भले ही बाहर से सवाद ले आये, इन्द्रियाँ भले ही उसे भीतर ले जायें और मन भी इन्द्रियो से सयुक्त रहे, पर तो भी विषयानुभूति पूर्ण न होगी। एक और वस्तु आवश्यक है—भीतर से प्रतिक्रिया होनी चाहिए। प्रतिक्रिया से ज्ञान उत्पन्न होगा। बाहर की वस्तु ने मानो मेरे अन्दर सवाद-प्रवाह भेजा। मेरे मन ने उसे ले जाकर बुद्धि के निकट अर्पण कर दिया, बुद्धि ने पहले से बने हुए मन के सस्कारों के अनुसार उसे सजाया और बाहर की ओर प्रतिक्रिया-प्रवाह भेजा। वस, इस प्रतिक्रिया के साथ ही विषयानुभूति होती है। जो शक्ति मन में यह प्रतिक्रिया भेजती है, उसे 'बुद्धि'

कहते हैं। किन्तु इससे भी विषयानुभूति पूर्ण नहीं हुई। मान लो एक कैमरा है और एक परदे है। मैं इस परदे पर एक चित्र आकृति चाहता हूँ। तो मुझे क्या करना होगा ? मुझे उस यन्त्र में स माना प्रकार की प्रकाश-किरणों को इस परदे पर आकृति का और उन्हें एक स्थान में एकत्र करने का प्रयत्न करना होगा। इसके लिए एक अच्छा बस्तु की आवश्यकता है जिस पर चित्र आका जा सके। किसी चमकती बस्तु पर ऐसा करना असम्भव है—कोई स्थिर बस्तु चाहिए, क्योंकि मैं जो प्रकाश-किरणें आकृति चाहता हूँ वे सब हैं और इन सबके प्रकाश-किरणों को किसी अच्छे बस्तु पर एकत्र एकीभूत समन्वित और संपूर्ण करना होगा। यही बात उन सबेदों के विषय में भी है जिन्हें इन्द्रियाँ मन के निकट और मन बुद्धि के निकट समर्पित करता है। जब तक ऐसी कोई बस्तु नहीं मिल जाती जिस पर यह चित्र आका जा सके जिस पर ये भिन्न भिन्न भाव एकत्रीभूत होकर मिल सकें तब तक यह विषयानुभूति पूर्ण नहीं होती। वह कौन सी बस्तु है जो समुदाय को एकत्व का भाव प्रदान करती है ? वह कौन सी बस्तु है जो विभिन्न गतियों के भीतर भी प्रतिबन्ध एकत्व की रक्षा किये रखती है ? वह कौन सी बस्तु है जिस पर भिन्न भिन्न भाव मानो एक ही जगह रुके रहते हैं, जिस पर विभिन्न विषय आकर मानो एक जगह बाँध करते हैं और एक अक्षय्य भाव धारण करते हैं ? हमने देखा है कि इस प्रकार की कोई बस्तु आवश्यक चाहिए, और उस बस्तु का शरीर और मन की तुलना में अच्छा होना आवश्यक है। जिस परदे पर यह कैमरा चित्र आकृति है, वह इन प्रकाश-किरणों की तुलना में अच्छा है। यदि ऐसा न हो तो चित्र पड़ेगा ही नहीं। अर्थात् उस बस्तु को उस द्रष्टा को एक व्यक्ति ( individual ) होना चाहिए। जिस बस्तु पर मन यह सब विचारण करवा है जिस पर मन और बुद्धि द्वारा के जायी गयी हमारी सबेदनाएँ स्थापित श्रेणीबद्ध और एकत्रीभूत होती हैं वस उसीको मनुष्य की आत्मा कहते हैं।

तो हमने देखा कि समष्टि-मन या महत् आकाश और प्राण इन दो भागों में विभक्त है। और मन के पीछे है आत्मा। समष्टि-मन के पीछे जो आत्मा है उसे ईश्वर कहते हैं। व्यष्टि में यह मनुष्य की आत्मा मान है। जिस प्रकार जगत् में समष्टि-मन आकाश और प्राण के रूप में परिपक्व हो गया है, उसी प्रकार समष्टि-आत्मा भी मन के रूप में परिपक्व हो गयी है। अब प्रश्न उठता है—क्या इसी प्रकार व्यष्टि-मनुष्य के सम्बन्ध में भी समझना होगा ? मनुष्य का मन जो क्या उसके शरीर का जगत् है और क्या उसकी आत्मा उसके मन की जगत् है ? अर्थात् मनुष्य का शरीर, मन और आत्मा —ये क्या तीन विभिन्न बस्तुएँ हैं,

अथवा ये एक के भीतर ही तीन हैं, अथवा ये सब एक ही पदार्थ की तीन विभिन्न अवस्थाएँ हैं? हम क्रमशः इसी प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे। जो भी हो, हमने अब तक यही देखा कि पहले तो यह स्थूल देह है, उसके बाद हैं इन्द्रियाँ, फिर मन, तत्पश्चात् बुद्धि और बुद्धि के भी बाद आत्मा। तो पहली बात यह हुई कि आत्मा शरीर से पृथक् है तथा वह मन से भी पृथक् है। वस, यही से धर्म-जगत् में मतभेद देखा जाता है। द्वैतवादी कहते हैं कि आत्मा सगुण है अर्थात् भोग, सुख, दुःख आदि सभी यथार्थ में आत्मा के धर्म हैं, पर अद्वैतवादी कहते हैं कि वह निर्गुण है, उसमें ये लक्षण नहीं हैं।

हम पहले द्वैतवादियों के मत का—आत्मा और उसकी गति के सम्बन्ध में उनके मत का—वर्णन करके, उसके बाद उस मत का वर्णन करेंगे, जो इसका सम्पूर्ण रूप से खण्डन करता है, और अन्त में अद्वैतवाद के द्वारा दोनों मतों का सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करेंगे। यह मानवात्मा शरीर और मन से पृथक् होने के कारण एव आकाश और प्राण से गठित न होने के कारण अमर है। क्यों? मृत्यु या विनाश का क्या अर्थ है?—विघटित हो जाना, और जो वस्तु कुछ पदार्थों के संयोग से बनती है, वही विघटित होती है। जो अन्य पदार्थों के संयोग से उत्पन्न नहीं है, वह कभी विघटित नहीं होती, इसलिए उसका विनाश भी कभी नहीं हो सकता। वह अविनाशी है। वह अनन्त काल से है, उसकी कभी सृष्टि नहीं हुई। सृष्टि तो संयोग अथवा सघात मात्र है। शून्य से कभी किसी ने सृष्टि नहीं देखी। सृष्टि के सम्बन्ध में हम वस इतना ही जानते हैं कि वह पहले से वर्तमान कुछ वस्तुओं का नये नये रूपों में एकत्र मिलन मात्र है। यदि ऐसा है, तो फिर यह मानवात्मा भिन्न भिन्न वस्तुओं के संयोग से उत्पन्न नहीं है, अतः वह अवश्य अनन्त काल से है और अनन्त काल तक रहेगी। इस शरीर का नाश हो जाने पर भी आत्मा रहेगी। वेदान्तवादियों के मत से, जब इस शरीर का नाश हो जाता है, तब मनुष्य की इन्द्रियाँ मन में लीन हो जाती हैं, मन का प्राण में लय हो जाता है, प्राण आत्मा में प्रविष्ट हो जाता है और तब मानव की वह आत्मा मानो सूक्ष्म शरीर अथवा लिंगशरीररूपी वस्त्र पहनकर चली जाती है। इस सूक्ष्म शरीर में ही मनुष्य के सारे संस्कार वास करते हैं। संस्कार क्या हैं? मन मानो सरोवर के समान है और हमारा प्रत्येक विचार मानो उस सरोवर की लहर के समान है। जिस प्रकार सरोवर में लहर उठती है, गिरती है, गिरकर अन्तर्हित हो जाती है, उसी प्रकार मन में ये सब विचार-तरंगें लगा-तार उठती और अन्तर्हित होती रहती हैं। किन्तु वे एकदम अन्तर्हित नहीं हो जाती। वे क्रमशः सूक्ष्मतर होती जाती हैं, पर वर्तमान रहती ही हैं। प्रयोजन

होने पर फिर सठ्ठी हैं। जिन विचारों ने सूक्ष्मतर रूप धारण कर लिया है उन्हींमें से कुछ को फिर से तरंगाकार में साने को ही स्मृति कहते हैं। इस प्रकार, हमने जो कुछ सोचा है, जो कुछ किया है, सारा का सारा मन में अवस्थित है। ये सब सूक्ष्म भाव से स्थित रहते हैं और मनुष्य के मर जाने पर भी ये संस्कार उसके मन में विद्यमान रहते हैं—वे फिर सूक्ष्म शरीर पर कार्य करते रहते हैं। आत्मा यह सब संस्कार एवं सूक्ष्मशरीररूपी बस्तु धारण करके चली जाती है और विभिन्न संस्कारों की इन विभिन्न शक्तियों का समवेत फल ही आत्मा के भविष्य को निर्धारित करता है। उनके मत से आत्मा की तीन प्रकार की गति होती है।

जो अत्यन्त धार्मिक है, वे मृत्यु के बाद सूर्यरश्मियों का अनुसरण करते हैं। सूर्यरश्मियों का अनुसरण करते हुए वे सूर्यलोक में जाते हैं। वहाँ से वे चन्द्रलोक और चन्द्रलोक से विद्युत्लोक में उपस्थित होते हैं। वहाँ एक मुक्त आत्मा से उन्मत्ता साक्षात्कार होता है। वह इन जीवात्माओं को सर्वोच्च ब्रह्मलोक में ले जाती है। यहाँ उन्हें सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता प्राप्त होती है। उनकी शक्ति और ज्ञान प्रायः ईश्वर के समान हो जाता है। और ईश्वरशक्तियों के मत से वे अन्त काळ तक वहाँ वास करते हैं। जबवा अंतर्वाकियों के अनुसार, कस्यान्त में ब्रह्म के साथ एकत्व प्राप्त करते हैं। जो लोभ सकाम भाव से सत्कार्य करते हैं, वे मृत्यु के बाद चन्द्रलोक में जाते हैं। वहाँ नाना प्रकार के स्वर्ग हैं। वे वहाँ पर सुदम शरीर—देवशरीर—प्राप्त करते हैं। वे देवता होकर वहाँ वास करते हैं और दीर्घ काल तक स्वर्ग के सुखों का उपभोग करते हैं। इस भोग का अन्त होने पर फिर उनका प्राचीन कर्म बलवान हो जाता है। अतः फिर से उनका मार्गलोक में पतन हो जाता है। वे वायुलोक, मेघलोक आदि लोकों में से होने हुए अन्त में वृष्टिपात के साथ पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। वृष्टि के साथ गिरकर वे किसी वास्तव वा आभय स्थल पर रहते हैं। दृगके बाद जब कोई व्यक्ति छत्र वास्तव को पाता है, तब उसका शीर्ष ग वे फिर से शरीर धारण करते हैं। जो लोभ अत्यन्त दुष्ट हैं वे मरने पर बुरा अथवा बानस हो जाते हैं, एवं चन्द्रलोक और पृथ्वी के बीच किसी स्थान में बानस करते हैं। उनसे कुछ मनुष्यों को बलन करते हैं। और कुछ लोभ मनुष्यों में मैत्री भाव उत्पन्न है। वे कुछ समय तक उन स्थान में रहकर फिर पृथ्वी पर आकर पशु जन्म लेते हैं। कुछ समय पशु-देह में रहकर वे फिर से मनुष्य जन्म में आते हैं—वे और एक बार मूलि-जन्म करने की उपायना अवस्था प्राप्त करते हैं। जो दृग प्रकार हूबने देगा कि जो लोग मूलि की निरालम गौरी पर पहुँच गये हैं किन्तु आदिनात बहूत बन्म रह गयी है वे ही पूर्व की निरालम के महारे ब्रह्मलोक में जाते हैं। जो अत्यन्त कर्म के लोग हैं, जो स्वर्ग जाने की इच्छा



से सत्कर्म करते हैं, वे चन्द्रलोक में जाकर वहाँ के स्वर्गों में वास करते हैं और देवशरीर प्राप्त करते हैं, पर उन्हें मुक्ति की प्राप्ति के लिए फिर से मनुष्य-देह धारण करनी पड़ती है। और जो अत्यन्त दुष्ट हैं, वे भूत, दानव आदि रूपों में परिणत होते हैं, उसके बाद वे पशु होते हैं, और मुक्ति-लाभ के लिए उन्हें फिर से मनुष्य-जन्म ग्रहण करना पड़ता है। इस पृथ्वी को कर्मभूमि कहा जाता है। अच्छा-बुरा सभी कर्म यही करना होता है। मनुष्य स्वर्गकाम होकर सत्कार्य करने पर स्वर्ग में जाकर देवता हो जाता है, इस अवस्था में वह कोई नया कर्म नहीं करता, वह तो वस, पृथ्वी पर किये हुए अपने सत्कर्मों के फलों का ही भोग करता है। और जब ये सत्कर्म समाप्त हो जाते हैं, तो उसी समय जो असत् या बुरे कर्म उसने पृथ्वी पर किये थे, उन सबका संचित फल वेग के साथ उस पर आ जाता है और उसे वहाँ से फिर एक बार पृथ्वी पर घसीट लाता है। इसी प्रकार जो भूत हो जाते हैं, वे उस अवस्था में कोई नूतन कर्म न करते हुए केवल अपने पूर्व कर्मों का फल भोगते रहते हैं, तत्पश्चात् पशु-जन्म ग्रहण कर वे वहाँ भी कोई नया कर्म नहीं करते। उसके बाद वे भी फिर मनुष्य हो जाते हैं। शुभ और अशुभ कर्मों द्वारा जनित पुरस्कार और दंड की अवस्थाओं में नूतन कर्मों की उत्पन्न करने की शक्ति नहीं होती, वे केवल भोगी जाती हैं। अत्यन्त शुभ और अत्यन्त अशुभ कर्मों का फल बहुत शीघ्र प्राप्त होता है। मान लो कि एक व्यक्ति ने जीवन भर अनेक बुरे काम किये, पर एक बहुत अच्छा काम भी किया। ऐसी दशा में उस सत्कार्य का फल उसी क्षण प्रकाशित हो जायगा, और इस सत्कार्य का फल समाप्त होते ही बुरे कार्य भी अपना फल दिखाने लगेंगे। जिन लोगों ने कुछ अच्छे अच्छे, बड़े बड़े कार्य किये हैं, पर जिनके सारे जीवन की गति अच्छी नहीं रही, वे सब देवता हो जायेंगे। देव-देह धारण कर देवताओं की शक्ति का कुछ काल तक भोग करके उन्हें फिर से मनुष्य होना पड़ेगा। जब सत्कर्मों की शक्ति क्षय हो जायगी, तब फिर से उन पुराने असत्कार्यों का फल होने लगेगा। जो अत्यन्त बुरे कर्म करते हैं, उन्हें भूत-योनि, दानव-योनि में जाना पड़ेगा, और जब उनके बुरे कर्मों का फल समाप्त हो जायगा, तो उस समय उनका जितना भी सत्कर्म शेष है, उसके फल से वे फिर मनुष्य ही जायेंगे। जिस मार्ग से ब्रह्मलोक में जाते हैं, जहाँ से पतन होने अथवा लौटने की सम्भावना नहीं रहती, उसे देवमान कहते हैं, और चन्द्रलोक के मार्ग को पितृयान कहते हैं।

अतएव वेदान्त दर्शन के मत से मनुष्य ही जगत् में सर्वश्रेष्ठ प्राणी है और यह कर्मभूमि पृथ्वी ही सर्वश्रेष्ठ स्थान है, क्योंकि एकमात्र यही पर उसके पूर्णत्व प्राप्त करने की सर्वोत्कृष्ट और सर्वाधिक सम्भावना है। देवता आदि को भी

होने पर फिर उठती हैं। त्रिन विचारों ने सूक्ष्मतर रूप धारण कर लिया है, उन्हींमें से कुछ को फिर से तरयाकार में साने को ही स्मृति कहते हैं। इस प्रकार हमने जो कुछ सोचा है जो कुछ किया है, साय का साय मन में अवस्थित है। ये सब सूक्ष्म भाव से स्थित रहते हैं और मनुष्य के मर जाने पर भी ये संस्कार उसके मन में विद्यमान रहते हैं—वे फिर सूक्ष्म धरीर पर कार्य करते रहते हैं। आत्मा यह सब संस्कार एवं सूक्ष्मधरीररूपी बस्त्र धारण करके जन्मी जाती है और विभिन्न संस्कारों की इन विभिन्न शक्तियों का समवेत फल ही आत्मा के अभिव्यक्ति को निर्धारित करता है। उनके मत से आत्मा की तीन प्रकार की गति होती है।

जो अत्यन्त धार्मिक है, वे मृत्यु के बाद सूर्यरश्मियों का अनुसरण करते हैं सूर्यरश्मियों का अनुसरण करते हुए वे सूर्यलोक में जाते हैं वहाँ से वे चन्द्रलोक और चन्द्रलोक से विद्युत्लोक में उपस्थित होते हैं वहाँ एक मुक्त आत्मा से उनका साम्राज्य होता है वह इन जीवात्माओं को सर्वोच्च ब्रह्मलोक में ले जाती है। यहाँ उन्हें सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता प्राप्त होती है उनकी शक्ति और ज्ञान प्रमा ईश्वर के समान हो जाता है और ईश्वरियों के मत से वे अनन्त काळ तक वहाँ वास करते हैं जबवा अद्वैतवासियों के अनुसार, कल्पान्त में ब्रह्म के साथ एकत्व प्राप्त करते हैं। जो लोग सकाम भाव से उत्कर्ष करते हैं वे मृत्यु के बाद चन्द्रलोक में जाते हैं। वहाँ गाना प्रकार के स्वर्ग हैं। वे वहाँ पर सूक्ष्म धरीर—वेवधरीर—प्राप्त करते हैं। वे वैराग्य होकर वहाँ वास करते हैं और बीच काळ तक स्वर्ग के सुखों का उपभोग करते हैं। इस भोग का अन्त होने पर फिर उनका प्राचीन कर्म बलवान हो जाता है अतः फिर से उनका मार्त्यलोक में पतन हो जाता है। वे वायुलोक, मेघलोक आदि छोखों में से होते हुए अन्त में वृष्टिनाथ के साथ पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। वृष्टि के साथ गिरकर वे किसी कस्य का आश्रय लेकर रहते हैं। इसके बाद जब कोई व्यक्ति उस घस्य को जाता है, तब उसके वीर्य से वे फिर से धरीर धारण करते हैं। जो लोग अत्यन्त दुष्ट हैं वे मरने पर भूत जगवा शान्त हो जाते हैं एवं चन्द्रलोक और पृथ्वी के बीच किसी स्वान में वास करते हैं। उनमें से कुछ मनुष्यों को जस्त करते हैं। और कुछ लोग मनुष्यों से मंत्री बन रहते हैं। वे कुछ समय तक बस स्वान में रहकर फिर पृथ्वी पर आकर पशु-जन्म लेते हैं। कुछ समय पशु-वैह में रहकर वे फिर से मनुष्य-योगि में जाते हैं—वे और एक बार मुक्ति-काम करने की उपयुक्त अवस्था प्राप्त करते हैं। जो इस प्रकार हमने देखा कि जो लोग मुक्ति की निकटतम सीढ़ी पर पहुँच बने हैं, त्रिनमें अपवित्रता बहुत कम रह गयी है वे ही सूर्य की किरणों के सहारे ब्रह्मलोक में जाते हैं। जो मध्यम शर्त के लोग हैं, जो स्वर्ग जाने की इच्छा

का ही सघात है। ऐसे किसी आनुमानिक द्रव्य की कल्पना करने की क्या आवश्यकता, जिममे वे सब गुण आश्रित हो? द्रव्य का ज्ञान आता है केवल गुणराशि के त्वरित स्थान-परिवर्तन के कारण, इसलिए नहीं कि कोई अपरिणामी वस्तु वास्तव में उनके पीछे है। हम देखते हैं कि ये युक्तियाँ बड़ी प्रबल हैं और मानवता के सामान्य अनुभव को सत्य लगती हैं। वास्तव में लाखों मनुष्यों में एक व्यक्ति भी इस दृश्य जगत् से अतीत किसी वस्तु की धारणा नहीं कर सकता। अधिकांश लोगों के लिए प्रकृति केवल परिवर्तन की परिणामी, घूर्णित, मिश्रित और परस्पर घुलती हुई राशि मात्र है। हममें से बहुत कम लोगों ने ही अपने पीछे स्थित उस स्थिर समुद्र का थोड़ा सा आभास पाया होगा। हमारे लिए तो वह समुद्र तरंगों से आलोकित रहता है और जगत् हमें तरंगों की चंचल राशि मात्र प्रतीत होता है। इस प्रकार हम दो मत देखते हैं। एक तो यह कि इस शरीर और मन के पीछे एक स्थिर और अपरिणामी सत्ता है, और दूसरा यह कि इस जगत् में स्थिरता और नित्यता जैसा कुछ भी नहीं है, सब कुछ परिवर्तन ही परिवर्तन है। इस मत-वैभिन्न्य का समाधान हमें चिंतन के अगले सोपान, अद्वैत में मिलता है।

अद्वैतवादी कहते हैं, द्वैतवादियों की यह बात कि 'जगत् का एक अपरिणामी आश्रय है', सत्य है। किसी अपरिणामी वस्तु की कल्पना किये बिना हम परिणाम की कल्पना कर ही नहीं सकते। किसी अपेक्षाकृत अल्प परिणामी वस्तु की तुलना में ही किसी वस्तु के परिणाम की बात सोची जा सकती है, और पूर्वोक्त अल्प परिणामी वस्तु भी अपने से कम परिणामवाली वस्तु की तुलना में अधिक परिणामशील है। और इस प्रकार का क्रम चंचल ही रहेगा, जब तक हम बाध्य होकर एक पूर्ण, अपरिणामी वस्तु को स्वीकार नहीं कर लेते। यह समस्त व्यक्त जगत्-प्रपञ्च निश्चय ही एक अव्यक्त, स्थिर और शान्त अवस्था में था, जब वह विरोधी शक्तियों का सामंजस्यस्वरूप था अर्थात् जब कोई भी शक्ति क्रियाशील नहीं थी, क्योंकि साम्यावस्था भंग होने पर ही शक्ति क्रियाशील होती है। यह ब्रह्माण्ड फिर से उसी साम्यावस्था की प्राप्ति के लिए बावमान है। यदि हमारा किसी विषय के सम्बन्ध में निश्चित ज्ञान है, तो वह यही है। द्वैतवादी जब कहते हैं कि कोई अपरिणामी वस्तु है, तब वे ठीक ही कहते हैं, पर उनका यह विश्लेषण कि एक अन्तर्निहित वस्तु है, जो न शरीर है, न मन, बरन् इन दोनों से पृथक् है, भूल है। बौद्ध लोग जो कहते हैं कि समुद्र जगत् परिणाम-प्रवाह मात्र है, तो यह भी पूर्णतया सत्य है, क्योंकि जब तक मैं जगत् से पृथक् हूँ, जब तक मैं अपने अतिरिक्त और कुछ देखता हूँ, जब तक एक द्रष्टा है

पूर्ण होने के लिए अनुप्य-अम ग्रहण करना पड़ेगा। यह मानव-अम एक महान् नेत्र बहुमुत स्थिति और अद्भुत अक्षर है।

अब हम इसके एक अन्य पक्ष पर विचार करेंगे। बीड़ सोम इस आत्मा का जिसकी व्याख्या मैंने अभी की है, अस्तित्व एकदम बस्तीकार करते हैं। हम विचारों के प्रवाह को ही क्यों न बसने दें? शरीर और मन के पीछे आत्मा नामक कोई पदार्थ मानने की क्या आवश्यकता है? इस शरीर और मनस्वी पक्ष से ही क्या यथेष्ट व्याख्या नहीं हो जाती? और एक तीसरे पदार्थ की कल्पना से क्या काम? यह युक्ति है तो बड़ी प्रबल। जहाँ तक वाद्य अनुसन्धान की पहुँच है, वहाँ तक तो यही प्रतीत होता है कि यह शरीर और मनस्वी पक्ष अपनी व्याख्या के लिए स्वयं ही पर्याप्त है। कम से कम हममें से जनेक इस तत्व को इसी दृष्टि से देखते हैं। तब फिर शरीर और मन से भिन्न पर साव ही शरीर और मन के आभयस्वरूप आत्मा नामक एक पदार्थ के अस्तित्व की कल्पना की क्या आवश्यकता? अब शरीर और मन कहना ही तो पर्याप्त है। सतत परिवर्तमान शील अद्भुत प्रवाह का नाम है शरीर, और सतत परिवर्तमानशील विचार प्रवाह का नाम है मन। तब यह जो एकत्व की प्रतीति हो रही है, वह कैसे होती है? बीड़ कहते हैं कि यह एकत्व वास्तविक नहीं है। मान लो एक पसती मसाल को बुझाया जा रहा है। तो इससे वह भाग का एक बूत ही प्रतीत होती है। वास्तव में वहाँ कोई बूत नहीं है। पर मसाल के अलग बूतों से जाग ने यह बूत-रूप भारत कर लिया है। इसी प्रकार हमारे जीवन में भी एकत्व नहीं है। अद्भुत की उभित समाप्तात तक रही है। यदि सम्पूर्ण अद्भुतों की एक कड़कर सम्बोधित करने की इच्छा हो तो करो पर उसके अतिरिक्त वास्तव में कोई एकत्व नहीं है। मन के सम्बन्ध में भी यही बात है। प्रत्येक विचार हमारे विचारों से पुपद् है। यह प्रबल विचार-प्रवाह ही इस अमात्मक एकत्व का भाव उत्पन्न कर देता है। अतएव फिर तीसरे पदार्थ की क्या आवश्यकता? जो कुछ विगत है यह अद्भुत प्रवाह और यह विचार प्रवाह—दोन इन्हीका अस्तित्व है। इनके पीछे और कुछ है यह सोचने की आवश्यकता ही क्या? बहुत से व्यापुक्ति अग्रशायो ने बीड़ों के इन मत को ग्रहण कर लिया है और वे सभी इसे मनी तथा अपनी अपनी भाव बहुरर प्रतिपादित करना चाते हैं। अतिसर बीड़ इन्हीं में से एक भाग मदी है कि यह परिशुभमान अग्र पर्याप्त है। इनके पीछे और कुछ है या नहीं यह अनुसन्धान करने की विपुन मात-वता नहीं। यह अस्तित्व अग्र ही अस्तित्व है—जिसे कानु को इन अग्र के आधरम में बनाया करने की मात-वता ही क्या? यह कुछ नहीं

का ही सघात है। ऐसे किमी आनुमानिक द्रव्य की कल्पना करने की क्या आवश्यकता, जिसमें वे सब गुण आधित हो? द्रव्य का ज्ञान आता है केवल गुणराशि के त्वरित स्थान-परिवर्तन के कारण, इसलिए नहीं कि कोई अपरिणामी वस्तु वास्तव में उनके पीछे है। हम देखते हैं कि ये युक्तियाँ बड़ी प्रबल हैं और मानवता के सामान्य अनुभव को सत्य लगती हैं। वास्तव में लाखों मनुष्यों में एक व्यक्ति भी इस दृश्य जगत् से अतीत किसी वस्तु की धारणा नहीं कर सकता। अधिकांश लोगों के लिए प्रकृति केवल परिवर्तन की परिणामी, घूर्णित, मिश्रित और परस्पर घुलती हुई राशि मात्र है। हममें से बहुत कम लोगों ने ही अपने पीछे स्थित उस स्थिर समुद्र का थोड़ा सा आभास पाया होगा। हमारे लिए तो वह समुद्र तरंगों से आलोकित रहता है और जगत् हमें तरंगों की चंचल राशि मात्र प्रतीत होता है। इस प्रकार हम दो मत देखते हैं। एक तो यह कि इस शरीर और मन के पीछे एक स्थिर और अपरिणामी सत्ता है, और दूसरा यह कि इस जगत् में स्थिरता और नित्यता जैसा कुछ भी नहीं है, सब कुछ परिवर्तन ही परिवर्तन है। इस मत-वैभिन्न्य का समाधान हमें चिंतन के अगले सोपान, अद्वैत में मिलता है।

अद्वैतवादी कहते हैं, द्वैतवादियों की यह बात कि 'जगत् का एक अपरिणामी आश्रय है', सत्य है। किसी अपरिणामी वस्तु की कल्पना किये बिना हम परिणाम की कल्पना कर ही नहीं सकते। किसी अपेक्षाकृत अल्प परिणामी वस्तु की तुलना में ही किसी वस्तु के परिणाम की बात सोची जा सकती है, और पूर्वोक्त अल्प परिणामी वस्तु भी अपने से कम परिणामवाली वस्तु की तुलना में अधिक परिणामशील है। और इस प्रकार का क्रम चलता ही रहेगा, जब तक हम वाध्य होकर एक पूर्ण, अपरिणामी वस्तु को स्वीकार नहीं कर लेते। यह समस्त व्यक्त जगत्-प्रपञ्च निश्चय ही एक अव्यक्त, स्थिर और शान्त अवस्था में था, जब वह विरोधी शक्तियों का सामजस्यस्वरूप था अर्थात् जब कोई भी शक्ति क्रियाशील नहीं थी, क्योंकि साम्यावस्था भंग होने पर ही शक्ति क्रियाशील होती है। यह ब्रह्माण्ड फिर से उसी साम्यावस्था की प्राप्ति के लिए धावमान है। यदि हमारा किसी विषय के सम्बन्ध में निश्चित ज्ञान है, तो वह यही है। द्वैतवादी जब कहते हैं कि कोई अपरिणामी वस्तु है, तब वे ठीक ही कहते हैं, पर उनका यह विश्लेषण कि एक अन्तर्निहित वस्तु है, जो न शरीर है, न मन, वरन् इन दोनों से पृथक् है, भूल है। बौद्ध लोग जो कहते हैं कि समुदय जगत् परिणाम-प्रवाह मात्र है, तो यह भी पूर्णतया सत्य है, क्योंकि जब तक मैं जगत् से पृथक् हूँ, जब तक मैं अपने अतिरिक्त और कुछ देखता हूँ, जब तक एक द्रष्टा है

और ब्रह्म वस्तु है—संक्षेप में जब तक ईतमान है, यह जगत् सर्वत्र परिणाम स्वीक प्रतीत होगा। पर असल बात यह है कि इस जगत् में परिणाम भी है और अपरिणाम भी। आत्मा मन और शरीर, ये तीनों पृथक् पृथक् वस्तुएं नहीं हैं बल्कि वे एक ही हैं, क्योंकि इन तीनों से बना हुआ यह प्राणी वस्तुएँ एक है। एक ही वस्तु कभी देह कभी मन और कभी देह और मन से अतीत आत्मा के रूप में प्रतीत होती है किन्तु वह एक ही समय में यह तीनों नहीं होती। जो शरीर को देखते हैं, वे मन को नहीं देख पाते जो मन को देखते हैं, वे आत्मा को नहीं देख पाते और जो आत्मा को देखते हैं, उनके लिए शरीर और मन दोनों न जाने कहाँ चले जाते हैं! जो लोग केवल गति देखते हैं, वे सम्पूर्ण स्थिर भाव को नहीं देख पाते और जो इस सम्पूर्ण स्थिर भाव को देख पाते हैं, उनके लिए गति न जाने कहाँ चली जाती है। रज्जु में सर्प का भ्रम हुआ। जो व्यक्ति रज्जु में सर्प ही देखता है, उसके लिए रज्जु न जाने कहाँ चली जाती है, और जब भ्रान्ति दूर होने पर वह व्यक्ति रज्जु ही देखता है, तो उसके लिए फिर सर्प नहीं रह जाता।

तो हमने देखा कि सर्वव्यापी वस्तु एक ही है और वह एक ही नामा रूपों में प्रतीत होती है। इसकी जाहे आत्मा कहे अथवा अन्य कोई ब्रह्म कहे जगत् में एकमात्र इसीका अस्तित्व है। अईतभावियों की भाषा में यह आत्मा ही ब्रह्म है, जो नाम-रूप की उपाधि के कारण अनेक प्रतीत हो रहा है। समझ की तरंगों की ओर देखो एक भी तरंग समुद्र से पृथक् नहीं है। फिर भी तरंग पृथक् क्यों प्रतीत होती है? नाम और रूप के कारण—तरंग की आकृति और उसे हमने जो 'तरंग' नाम दिया है उस इन दोनों ने उसे समुद्र से पृथक् कर दिया है। नाम-रूप के गूँथ हो जाने पर वह समुद्र की समुद्र ही रह जाती है। तरंग और समुद्र के बीच क्या कौन भेद कर सकता है? अतएव यह समुद्रय जगत् एकस्वरूप है। जो भी पार्थक्य रिचिता है वह सब नाम-रूप के ही कारण है। जिस प्रकार सूर्य आसों अलककों पर प्रतिबिम्बित होकर अत्येक अलकक में अपनी एक सम्पूर्ण प्रतिकृति सृष्ट कर देता है उसी प्रकार वही एक आत्मा वही एक सत्ता विभिन्न वस्तुओं में प्रतिबिम्बित होकर नामा रूपों में विद्यापी पड़ती है। किन्तु वास्तव में वह एक ही है। वास्तव में 'मैं' अथवा 'तुम' नामक कुछ नहीं है—सब एक ही है। जाहे कह लो—'समी मैं हूँ' या कह लो—'समी तुम हो। यह ईत ज्ञान किन्तु मिथ्या है, और साथ जगत् इसी ईत ज्ञान का फल है। जब विवेक के उदय होने पर मनुष्य देखता है कि जो वस्तुएँ नहीं हैं एक ही वस्तु है तब उसे यह बोध होता है कि वह स्वयं यह अद्वैत ब्रह्माण्डस्वरूप है। मैं ही यह परिवर्तनशील

जगत् हूँ, और मैं ही अपरिणामी, निर्गुण, नित्य पूर्ण, नित्यानन्दमय हूँ।' अतएव नित्य शुद्ध, नित्य पूर्ण, अपरिणामी, अपरिवर्तनीय एक आत्मा है, उसका कभी परिणाम नहीं होता, और ये सब विभिन्न परिणाम उस एक आत्मा में प्रतीत मात्र होते हैं।

उस पर नाम-रूप ने ये सब विभिन्न स्वप्न-चित्र अंकित कर दिये हैं। आकृति ने ही तरंग को समुद्र से पृथक् किया है। मान लो कि तरंग विलीन हो गयी, तो क्या यह रूप रहेगा? नहीं, वह विल्कुल चला जायगा। तरंग का अस्तित्व पूर्ण रूप से समुद्र के अस्तित्व पर निर्भर है, पर समुद्र का अस्तित्व तरंग के अस्तित्व पर निर्भर नहीं है। जब तक तरंग रहती है, तब तक रूप भी रहता है, पर तरंग के विलीन हो जाने पर वह रूप फिर नहीं रह सकता। इस नाम-रूप को ही माया कहते हैं। यह माया ही भिन्न भिन्न व्यक्तियों का सृजन करके उनमें आपस में पार्थक्य का बोध करा रही है। पर वास्तव में इसका अस्तित्व नहीं है। माया का अस्तित्व है, यह नहीं कहा जा सकता। रूप या आकृति का अस्तित्व है, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह तो दूसरे के अस्तित्व पर निर्भर रहती है। और उसका अस्तित्व नहीं है, यह भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसीने तो यह सारा भेद उत्पन्न किया है। अद्वैतवादियों के मत से, इस माया या अज्ञान या नाम-रूप, अथवा यूरोपीय लोगों की भाषा में, इस देश-काल-निमित्त के कारण यह एक अनन्त सत्ता इस वैचित्र्यमय जगत् के रूप में दीख पड़ती है। परमार्थतः यह जगत् एक अखण्डस्वरूप है, जब तक कोई दो परमार्थतः सत्य वस्तुओं की कल्पना करता है, तब तक वह भ्रम में है। जब वह जान जाता है कि सत्ता केवल एक है, तभी वह यथार्थ में जानता है। जितना ही समय बीतता जाता है, उतना ही हमारे निकट यह सत्य प्रमाणित होता जाता है। क्या जब जगत् में, क्या मनोजगत् में और क्या अध्यात्म जगत् में, सर्वत्र यह सत्य प्रमाणित हो रहा है। अब प्रमाणित हो गया है कि तुम, मैं, सूर्य, चन्द्र, तारे—सभी एक ही जडसमुद्र के भिन्न भिन्न अंशों के नाम मात्र हैं और यह जडराशि अपने रूपाकार में सतत परिवर्तित होती रहती है। शक्ति का जो कण कुछ मास पहले सूर्य में था, हो सकता है, आज वह मनुष्य के भीतर आ गया हो, कल शायद वह पशु के भीतर और परसों किसी उद्भिद् के भीतर प्रवेश कर जायगा। आना-जाना निरन्तर हो रहा है। यह सब एक अखण्ड जडराशि है—भेद है केवल नाम और रूप में। इसके एक बिन्दु का नाम है सूर्य, एक का चन्द्र, एक का तारा, एक का मनुष्य, एक का पशु, एक का उद्भिद् आदि आदि। और ये सारे नाम भ्रमात्मक हैं, इसमें कोई वास्तविकता नहीं है, क्योंकि इस जडराशि का लगातार

परिवर्तन हो रहा है। इसी जगत् को एक दूसरे मान से देखने पर यह एक विशाल विचार-समुद्र के समान प्रतीत होगा जिसका एक एक बिन्दु एक एक मन है— तुम एक मन हो मैं एक मन हूँ प्रत्येक व्यक्ति केवल एक एक मन है। फिर इसी जगत् को ज्ञान की दृष्टि से देखने पर, अर्थात् जब आँखों पर से मोह का आवरण हट जाता है, जब मन धुँध हो जाता है तब यही नित्य शुद्ध अपरिणामी अविनाशी अक्षय्य पूर्णस्वस्व पुरुष के रूप में प्रतीत होता है।

तब फिर वृत्तवापियों के परलोकवाद का—मनुष्य मरने के बाद स्वर्ग जाता है अपना समूह लोक में जाता है और बुरा आदमी मृत हो जाता है उसके बाद पक्ष होता है, भावि बातों का—क्या होता है? अद्वैतवादी कहते हैं—'न कोई जाता है न कोई जाता है—तुम्हारे लिए जाना-जाना किस प्रकार सम्भव है? तुम तो ब्रह्मस्वस्व हो तुम्हें जाने के लिए स्थान कहाँ? किसी स्कूल में छोटे बच्चों की परीक्षा हो रही थी। परीक्षक उन छोटे छोटे बच्चों से कठिन कठिन प्रश्न कर रहे थे। उन प्रश्नों में एक प्रश्न यह भी था "पृथ्वी गिरती क्यों नहीं? उन्हें बताया भी कि बच्चों से उत्तर में गुस्तेवाक्य का भाव या दूसरा कोई बहिस वैज्ञानिक उत्तर मिले। उनके बावजूद इस प्रश्न को समझ न सके और अपनी अपनी समझ से उत्तरे—सीधे उत्तर देने लगे। पर एक बुद्धिमती शिक्षिका ने एक दूसरा प्रश्न करते हुए उसका उत्तर दिया "पृथ्वी गिरती क्यों नहीं? यह प्रश्न तो निरर्थक है! विश्व में ऊँचा-नीचा कुछ भी नहीं है। ऊँचा-नीचा तो सापेक्ष ज्ञान मात्र है। आत्मा के सम्बन्ध में भी यही बात है। इसके सम्बन्ध में जन्म-मृत्यु का प्रश्न ही निरी मूर्खता है। कौन जाता है कौन जाता है? तुम कहाँ नहीं हो? वह स्वर्ग कहाँ है, जहाँ तुम पहुँचे थे ही नहीं हो? मनुष्य की आत्मा सर्वव्यापी है। तुम कहाँ जाओगे? कहाँ नहीं जाओगे? आत्मा तो सब जगह है। अतएव पूर्ण जीवन्मुक्त व्यक्ति के लिए यह वाक्यों का सा स्वप्न जन्म-मृत्यु रूप यह वाक्यों का सा भ्रम स्वर्ग-नरक आदि का स्वप्न—सब कुछ एकत्र ही गायब हो जाता है। जिनके भीतर कुछ अज्ञान अवशिष्ट है उनको वह ब्रह्मलोक पर्यन्त माना प्रकार के रूप दिया कर फिर अन्तर्हित होता है। और जो अज्ञानी हैं उनके लिए वह रूपा जाता है।

स्वर्ग पार्थिव मरति वैदा हंगे—'न तब बातों पर धारा धन्य विस्वास क्यों करता है? मैं एक पुस्तक पढ़ रहा हूँ उसके पृष्ठ पर पृष्ठ पढ़े जा रहा हूँ और उन्हें उलटाने जा रहा हूँ। और एक पृष्ठ आया वह भी उलट दिया गया। परिवर्तन जितना ही रहा है? कौन जा-जा रहा है? मैं नहीं इस पुस्तक के पन्ने ही उलटने जा रहे हैं। धारी प्रकृति आत्म के सम्मुख रही एक पुस्तक के समान है। उलटना



इक के बाद दूसरा अध्याय पढा जा रहा है। फिर एक नया दृश्य सामने आता है। पढने के बाद उसे भी उलट दिया जाता है। फिर एक नया अध्याय सामने आता है, पर आत्मा जैसी थी, वैसी ही रहती है—वही अनन्तस्वरूप। परिणाम प्रकृति का हो रहा है, आत्मा का नहीं। आत्मा का कभी भी परिणाम नहीं होता। जन्म-मृत्यु प्रकृति में हैं, तुममें नहीं। फिर भी अज्ञ लोग भ्रान्त होकर सोचते हैं कि हम मर रहे हैं, हम जी रहे हैं, प्रकृति नहीं। यह बात ठीक वैसी ही है, जैसे हम भ्रान्ति-वश समझते हैं कि सूर्य चल रहा है, पृथ्वी नहीं। अतः यह समस्त भ्रान्ति ही है। जैसे रेलगाड़ी के बदले हम खेत आदि को चलायमान समझते हैं, जन्म और मृत्यु की यह भ्रान्ति भी ठीक वैसी ही है। जब मनुष्य किसी विशेष भाव में रहता है, तब वह इसी सत्ता को पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, तारा आदि के रूप में देखता है, और जो लोग इसी मनोभाव से युक्त हैं, वे भी ठीक ऐसा ही देखते हैं। भेरे-तुम्हारे बीच अस्तित्व के विभिन्न स्तरों पर लाखों जीव हो सकते हैं। वे हमें कभी न देख पायेंगे और हम भी उन्हें कभी नहीं। हम केवल अपने ही प्रकार के चित्तवृत्तिसम्पन्न और अपने ही स्तर के प्राणियों को देख सकते हैं। जिन वाद्य-यन्त्रों में एक ही प्रकार का कम्पन है, उनमें से एक के वजने पर शेष सभी वज उठेंगे। मान लो, हम अभी जिस कम्पन से युक्त हैं, उसे हम 'मानव-कम्पन' नाम दे देते हैं। अब यदि यह कम्पन बदल जाय, तो फिर मनुष्य दिखायी नहीं देंगे। मनुष्य के बदले अन्य दृश्य हमारे सामने आ जायगा—हो सकता है, देव-जगत् और देवता आदि आ जायँ, अथवा दुष्ट मनुष्यों के लिए शैतान और शैतान-जगत् आ जाय। पर ये सभी एक ही जगत् के विभिन्न दृष्टिकोण हैं। यह जगत् मानव-दृष्टि से पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, तारा आदि रूपों में दिखाता है, फिर यही दुष्टता की दृष्टि से देखने पर नरक या दण्डालय के रूप में प्रतीत होता है। और जो स्वर्ग जाना चाहते हैं, वे इसी जगत् को स्वर्ग के रूप में देखते हैं। जो व्यक्ति आजीवन यह सोचता रहा है कि मैं स्वर्ग में सिंहासन पर बैठे हुए ईश्वर के निकट जाकर सारा जीवन उनकी उपासना करूँगा, वह मृत्यु के बाद अपने उसी मनोभाव के अनुरूप देखेगा। यह जगत् ही उसके लिए एक वृहत् स्वर्ग में परिणत हो जायगा, वह देखेगा कि नाना प्रकार की अप्सराएँ, किन्नर आदि उड़ते फिर रहे हैं और देवता लोग सिंहासनो पर बैठे हैं। स्वर्ग आदि सब कुछ मनुष्य के गढ़े हुए हैं। अतएव अद्वैतवादी कहते हैं—द्वैतवादियों की बात सत्य तो है, पर यह सब उनका अपना ही बनाया हुआ है। ये सब लोक, शैतान, पुनर्जन्म आदि सभी कात्पनिक हैं, और मानव-जीवन भी ऐसा ही है। ये सब तो कात्पनिक ही और मानव-जीवन सत्य हो, ऐसा कभी नहीं हो सकता। इसी जीवन मात्र को सत्य मानकर मनुष्य सर्वदा एक महान् भूल करता है। अन्यान्य वस्तुओं को तो—जैसे स्वर्ग,

नरक आदि को—कास्पनिक कहने से वह ठीक समझ लेता है, पर अपने अस्तित्व को वह कभी कास्पनिक मानना नहीं चाहता। यह सारा ब्रह्ममान जगत् कस्पना भाव है और सबसे बड़ा मिथ्या ज्ञान तो यह है कि हम घरीर हैं। हम कभी भी घरीर नहीं थे और न कभी हो सकते हैं। हम कल्प मनुष्य हैं, यह कहना सबसे बड़ी मिथ्या बात है। हम तो जगत् के ईश्वर हैं। ईश्वर की उपासना करके हमने सदा अपनी अस्पृश्य आत्मा की ही उपासना की है। अपने को भ्रम से ही द्रुष्ट और पापी सोचना—यही सबसे बड़ी मिथ्या बात है। पापी तो वह है जो दूसरों को पापी देखता है। मान लो यहाँ एक बच्चा है और सोने की मोहरों से भरी एक पैकी तुम यहाँ मेज पर रख बैठे हो। मान लो एक चोर आया और पैकी से गया। बच्चे की दृष्टि में पैकी का रखा जाना और चोरी हो जाना—दोनों समान हैं। उसके भीतर चोर नहीं है इसलिए वह बाहर भी चोर नहीं देखता। पापी और द्रुष्ट मनुष्य को ही बाहर में पाप दिखता है, सच्चे पुरुष को नहीं। अत्यन्त असच्चे व्यक्ति इस जगत् को नरक-स्वरूप देखते हैं मम्मम मेघी के छत्रा इसे स्वर्गस्वरूप देखते हैं और जो पूर्ण सिद्ध पुरुष है, वे इसे साक्षात् मगवान् के रूप में देखते हैं। उस ठनी नेत्रों पर से आवरण हट जाता है और पवित्र एवं शुद्ध हुआ वह व्यक्ति देखता है कि उसकी दृष्टि विकृत बरक गयी है। जो पुःस्वप्न उसे सानों बपों से पीड़ित कर रहे वे वे सब एकत्र समान हो जाते हैं। और जो अपने को इतने दिन मनुष्य देवता जानब आदि समझ रहा था जो अपने को कभी ऊपर, कभी नीचे कभी पृथ्वी पर, कभी स्वर्ग में तो कभी और किसी स्थान में स्थित समझता था वह देखता है कि वह वास्तव में सर्वव्यापी है, वह काळ के अधीन नहीं है। काळ ही उसके अधीन है, सारे स्वर्ग उसके भीतर हैं, वह स्वर्ग किसी स्वर्ग में अवस्थित नहीं है—और मनुष्य ने आज तक जितने देवताओं की उपासना की है, वे सब के सब उसके भीतर ही अवस्थित हैं। वह स्वर्ग किसी देवता में अवस्थित नहीं है। वह देव असुर, मानव पशु, उन्मिषु, प्रस्तर आदि सभी का सृष्टिकर्ता है। और उस समय मनुष्य का असक स्वप्न उसके निकट इस जगत् से श्रेष्ठतर, स्वर्ग से भी श्रेष्ठतर और सर्वव्यापी आकाश से भी अधिक सर्वव्यापी रूप में प्रकाशित होता है। सभी मनुष्य निर्मय हो जाता है, सभी वह मुक्त हो जाता है। सब सारी भ्रान्ति दूर हो जाती है सारे बुद्ध दूर हो जाते हैं, सारा मय एकत्र चिरकाळ के निम्न समाप्त हो जाता है। सब जन्म न जाने कहाँ चला जाता है और उसके साथ मृत्यु भी कुछ न जाने कहाँ मायब हो जाता है और उसके साथ मुख भी। पृथ्वी उड़ जाती है और उसके साथ साथ स्वर्ग भी उड़ जाता है घरीर चला जाता है और उसके साथ मन भी। उस व्यक्ति की दृष्टि में वह सारा जगत् मानो अन्तर्हित हो जाता है। यह

जो शक्तियों का निरन्तर सन्नाम, निरन्तर सघर्ष है, यह सब एकदम समाप्त हो जाता है, और जो, शक्ति और भूत के रूप में, प्रकृति के विभिन्न सघर्षों के रूप में अभिव्यक्त हो रहा था, जो स्वयं प्रकृति के रूप में अभिव्यक्त हो रहा था, जो स्वर्ग, पृथ्वी, उद्भिद्, पशु, मनुष्य, देवता आदि के रूप में प्रकट हो रहा था, वह समस्त एक अनन्त, अच्छेद्य, अपरिणामी सत्ता के रूप में परिणत हो जाता है, और ज्ञानी पुरुष देख पाते हैं कि वे उस सत्ता से अभिन्न हैं। 'जिस प्रकार आकाश में नाना वर्ण के मेघ आकर, कुछ देर खेलकर फिर अन्तर्हित हो जाते हैं,' उसी प्रकार इस आत्मा के सम्मुख पृथ्वी, स्वर्ग, चन्द्रलोक, देवता, सुख, दुःख आदि आते हैं, पर वे उसी अनन्त, अपरिणामी, नील आकाश को हमारे सम्मुख छोड़कर अन्तर्हित हो जाते हैं। आकाश में कभी परिवर्तन नहीं होता, परिवर्तन केवल मेघ में होता है। भ्रम के वश ही हम सोचते हैं कि हम अपवित्र हैं, हम सान्त हैं, हम पृथक् हैं। पर असल में यथार्थ मनुष्य एक अखण्ड सत्तास्वरूप है।

यहाँ पर दो प्रश्न उठते हैं। पहला यह कि 'क्या इसकी उपलब्धि सम्भव है? अब तक तो सिद्धान्त और दर्शन की बात हुई, क्या उसकी अपरोक्षानुभूति सम्भव है?' हाँ, बिल्कुल सम्भव है। ऐसे अनेक व्यक्ति ससार में इस समय भी जीवित हैं, जिनका अज्ञान सदा के लिए चला गया है। तो क्या सत्य की उपलब्धि के बाद उनकी तुरन्त मृत्यु हो जाती है? उत्तनी जल्दी नहीं, जितनी जल्दी हम समझते हैं। मान लो, एक लकड़ी से जुड़े हुए दो पहिये साथ साथ चल रहे हैं। अब यदि मैं एक पहिये को पकड़कर बीच की लकड़ी को कुल्हाड़ी से काट दूँ, तो जिस पहिये को मैंने पकड़ रखा है, वह तो रुक जायगा, पर दूसरा पहिया, जिसमें पहले का वेग अभी नष्ट नहीं हुआ है, कुछ दूर चलेगा और फिर गिर पड़ेगा। पूर्ण शुद्धस्वरूप आत्मा मानो एक पहिया है, और शरीर-मनरूप भ्रान्ति दूसरा पहिया, ये दोनों कर्मरूपी लकड़ी द्वारा जुड़े हुए हैं। ज्ञान मानो कुल्हाड़ी है, जो जोड़नेवाली इस लकड़ी को काट देता है। जब आत्मारूपी पहिया रुक जाता है, तब आत्मा यह सोचना छोड़ देती है कि वह आ रही है, जा रही है, अथवा उसका जन्म होता है, मृत्यु होती है, तब वह इस प्रकार के सभी अज्ञानात्मक भावों का त्याग कर देती है और तब उसका यह भाव कि वह प्रकृति के साथ सयुक्त है, उसके अभाव और वासनाएँ हैं, बिल्कुल चली जाती हैं। तब वह देखती है कि वह पूर्ण है, वासनारहित है। पर शरीर-मनरूपी पहिये में पूर्व कर्मों का वेग बचा रहता है। अतः जब तक पूर्व कर्मों का यह वेग पूरी तरह समाप्त नहीं हो जाता, तब तक शरीर और मन बने रहते हैं। यह वेग समाप्त हो जाने पर इनका भी नाश हो जाता है और तब आत्मा मुक्त हो जाती है। तब फिर स्वर्गलोक जाना या स्वर्ग से पृथ्वी पर लौटना, यहाँ तक

कि ब्रह्मलोक जाना भी समाप्त हो जाता है क्योंकि आत्मा भला नहीं से आयगी और कहाँ आयगी? दिन व्यक्तियों में इस जीवन में ही इस अवस्था को प्राप्त कर लिया है, जिन्हें कम से कम एक मिनट के लिए भी संसार का यह दुःख बहसकर सत्य का ज्ञान मिल गया है, उन्हें जीवनमुक्त कहते हैं। जीवित रहते हुए यह मुक्ति प्राप्त करना ही वेदान्ती का लक्ष्य है।

एक बार मैं पश्चिमी भारत में हिन्दू महासागर के तटवर्ती मस्जिद में भ्रमण कर रहा था। बहुत दिन तक निरन्तर पैदल भ्रमण करता रहा। किन्तु प्रतिदिन यह बेसकर मुझे महान् आश्चर्य होता था कि चारों ओर सुन्दर सुन्दर झीलें हैं वे चारों ओर बूझों से घिरी हैं और बूझों की परछाईं जल में पड़ रही है। मैं अपने मन में कहने लगा 'कैसे अद्भुत दुःख है ये! और लोग इसे रेगिस्तान कहते हैं! एक मास तक नहीं मैं झूमता रहा और प्रतिदिन मुझे वे सुन्दर दृश्य दिखायी देते रहे। एक दिन मुझे बड़ी प्यास लगी। मैंने सोचा कि जहाँ नहीं एक झील पर जाकर प्यास बुझाऊँ। अतएव मैं इन सुन्दर निर्मल झीलों में से एक की ओर अग्रसर हुआ। जैसे मैं जाते बढ़ा कि वह सब दुःख न जाने कहाँ लपट हो गया। और तब मेरे मन में एकदम यह ज्ञान हुआ कि 'जीवन भर जिस मरीचिका की बात पुस्तकों में पढ़ता रहा हूँ यह तो वही मरीचिका है। और उसके साथ साथ यह ज्ञान भी हुआ कि 'इस पिछले मास प्रतिदिन मैं मरीचिका ही देखता रहा पर कभी ज्ञान न पाया कि यह मरीचिका है। दूसरे दिन मैंने पुनः चलना प्रारम्भ किया। फिर से वही सुन्दर दृश्य दिखने लगे पर अब साथ साथ यह ज्ञान भी रहने लगा कि यह सबमूख की झील नहीं है, यह मरीचिका है। बस इस जगत् के सम्बन्ध में भी ठीक यही बात है। हम प्रतिदिन प्रतिमास प्रतिवर्ष इस जगत् की मस्जिद में भ्रमण कर रहे हैं, पर मरीचिका को मरीचिका नहीं समझ पा रहे हैं। एक दिन यह मरीचिका अबुस्य हो आयगी। पर वह फिर से आ आयगी—सरीर को पूर्ण कर्मों के अधीन रहना पड़ता है अतः यह मरीचिका फिर से झूट आयेगी। जब तक हम कर्म से बँध हुए हैं तब तक जगत् हमारे सम्मुख आवेगा ही। तब, तारी पशु, उष्मिद, आसक्ति कर्तव्य—सब कुछ आवेगा पर वे पहले की भाँति हम पर प्रभाव न डाल सकेंगे। इस लक्ष्य ज्ञान के प्रभाव से कर्म की शक्ति का मास हो आयगा उसके बिना के बँध दूट जायेंगे जगत् हमारे लिए एकदम बरल जायगा क्योंकि जैसे ही जगत् दिखायी देना जैसे ही उसके साथ सत्य और मरीचिका के भेद का ज्ञान भी हमारे सामने प्रकाशित हो जायगा।

तब यह जगत् पहले का सा जगत् नहीं रहे जायगा। किन्तु इसमें एक भ्रम की आसक्ति है। हम कहते हैं कि प्रत्येक वेदा में लोग इस वेदान्त मत को अपना-

कर कहते हैं, "मैं धर्माधर्म से अतीत हूँ, मैं नैतिकता के किसी नियम से नहीं बँधा हूँ, अतः मेरी जो इच्छा होगी, वही करूँगा।" इस देश में ही देखोगे, अनेक मूर्ख कहते रहते हैं, "मैं बद्ध नहीं हूँ, मैं स्वयं ईश्वरस्वरूप हूँ, मेरी जो इच्छा होगी, वही करूँगा।" यह ठीक नहीं है, यद्यपि यह बात सच है कि आत्मा भौतिक, मानसिक और नैतिक, सभी प्रकार के नियमों से अतीत है। नियम के अन्दर बन्धन है और नियम के बाहर मुक्ति। यह भी सच है कि मुक्ति आत्मा का जन्मगत स्वभाव है, यह उसका जन्म-सिद्ध अधिकार है और आत्मा का यह वास्तविक मुक्त स्वभाव भौतिक आवरण के भीतर से मनुष्य की प्रतीयमान स्वतन्त्रता के रूप में प्रतीत होता है। अपने जीवन के प्रत्येक क्षण हम अपने को मुक्त अनुभव करते हैं। हम अपने को मुक्त अनुभव किये बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते, बोल नहीं सकते और श्वास-प्रश्वास भी नहीं ले सकते। किन्तु फिर कुछ विचार करने पर यह भी प्रमाणित हो जाता है कि हम एक मशीन के समान हैं, मुक्त नहीं। तब कौन सी बात सत्य मानी जाय ? 'हम मुक्त हैं' यह धारणा ही क्या भ्रमात्मक है ? एक पक्ष कहता है कि 'मैं मुक्त-स्वभाव हूँ', यह धारणा भ्रमात्मक है, और दूसरा पक्ष कहता है कि 'मैं बद्धभावा-पन्न हूँ', यह धारणा भ्रमात्मक है। यह कैसे ? वास्तव में, मनुष्य मुक्त है, मनुष्य परमार्थतः जो है, वह मुक्त के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता, किन्तु ज्यो ही वह माया के जगत् में आता है, ज्यो ही नाम-रूप के भीतर पड़ जाता है, त्यो ही वह बद्ध हो जाता है ? 'स्वाधीन इच्छा' कहना ही भूल है। इच्छा कभी स्वाधीन हो नहीं सकती। होगी कैसे ? जो प्रकृत मनुष्य है, वह जब बद्ध हो जाता है, तभी उसकी इच्छा की उत्पत्ति होती है, उससे पहले नहीं। मनुष्य की इच्छा बद्ध है, किन्तु जो इसका मूल है, वह तो सदा ही मुक्त है। इसीलिए बन्धन की दशा में भी—चाहे मनुष्य-जीवन हो, चाहे देव-जीवन, चाहे पृथ्वी पर हो, चाहे स्वर्ग में—हममें इस स्वतन्त्रता या मुक्ति की स्मृति रहती ही है, जो कि हमारा विधिप्रदत्त अधिकार है। और जान में हो या अज्ञान में, हम सब इस मुक्ति की ओर अग्रसर हो रहे हैं। मनुष्य जब मुक्त हो जाता है, तब वह किस प्रकार नियम में बद्ध रह सकता है ? तब जगत् का कोई भी नियम उसे बाँध नहीं सकता, क्योंकि यह विश्व-ब्रह्माण्ड ही उसका हो जाता है।

वह विश्व-ब्रह्माण्डस्वरूप है। या तो कह लो कि वही विश्व-ब्रह्माण्ड है, या फिर कह लो कि उसके लिए विश्व-ब्रह्माण्ड का अस्तित्व ही नहीं है। तब फिर उसके लिए लिग, देश आदि छोटे छोटे भाव किस प्रकार सम्भव हैं ? वह कैसे कहेगा—मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ अथवा मैं बालक हूँ ? क्या ये सब मिथ्या बातें नहीं हैं ? उसने जान लिया है कि यह सब मिथ्या है। तब वह भला किस तरह कहेगा—ये ये पुरुष

के अधिकार हैं और ये ये सभी के? किसीका कुछ अधिकार नहीं है किसीका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। पुरुष भी नहीं है और स्त्री भी नहीं आत्मा तो सिमहीन है, वह नित्य सुख है। मैं पुरुष या स्त्री हूँ मैं अमुक देखावाही हूँ यह सब कहना केवल मिथ्या है। सभी देव मेरे हैं, सारा जगत् मेरा है क्योंकि मैंने अपने को मानो सारे जगत् से बक किया है, सारा जगत् ही मानो मेरा छीर हो गया है। किन्तु हम देखते हैं कि बहुत से लोग विचार करते समय ये सब बातें मुँह से कहने पर भी आचरण में सभी प्रकार के अपवित्र कार्य करते रहते हैं और यदि उनसे पूछें "तुम ऐसा क्यों कह रहे हो? तो वे उत्तर देंगे "यह तुम्हारी समझ की मूल है। हमसे कोई अपाय होना असम्भव है।" इन सब लोगों का किस कसीटी पर कसों? कसीटी यह है।

यद्यपि क्षुम और अक्षुम दोनों एक ही आत्मा के आधिक प्रकाश मात्र हैं, फिर भी अक्षुम मनुष्य के वास्तविक स्वरूप का उसकी आत्मा का बाह्यतम आवरण है, और क्षुम अपेक्षाकृत निकटतर आवरण है। जब तक मनुष्य अक्षुम के स्तर को छिन्न नहीं कर लेता तब तक वह क्षुम के स्तर पर नहीं पहुँच सकता और जब तक वह क्षुम और अक्षुम दोनों के स्तरों को पार नहीं कर लेता तब तक वह आत्मा तक नहीं पहुँच सकता। आत्मा की प्राप्ति होने पर उसके लिए फिर क्या रह जाता है?—अत्यन्त सरल कर्म अतीत जीवन के कर्मों का अति अल्प वेग पर यह वेग भी क्षुम कर्मों का ही वेग होता है। जब तक अक्षुम-वेग एकजम समाप्त नहीं हो जाता जब तक पहलू की अपवित्रता विस्तृत रूप नहीं हो जाती तब तक कोई भी सत्य का साक्षात्कार और उसकी उपलब्धि नहीं कर सकता। अतएव जिन लोगों में आत्मा की प्राप्ति कर लिया है, जिन्होंने सत्य का साक्षात्कार कर लिया है, उनके लिए अतीत जीवन के क्षुम संस्कार, क्षुम वेग ही बच रहता है। छीर में बाध करते हुए भी और अनवरत कर्म करते हुए भी वे केवल सत्कर्म ही करते हैं उनके मुँह से सबक प्रति केवल आशीर्वाद ही निकलता है उनके हाथ केवल सत्कार्य ही करते हैं उनका मन केवल सच्चिदान्त ही कर सकता है, उनकी उपस्थिति ही जाहे वे नहीं भी रहें सर्वत्र मानव जाति के लिए महान् बरदान होती है। वह स्वयं एक सजीव बरदान होने हैं। यदि वह कुछ भी न बोले तो भी उसका होना मात्र मानवता के लिए एक आशीर्वाद ही है। ऐसा व्यक्ति अपनी उपस्थिति मात्र से पीर दुःखों को भी सत बना देता है। इस प्रकार के व्यक्ति के द्वारा क्या कोई कुछ कार्य सम्भव है? याद रखो 'अप्यसामुत्थि' और 'वैबक मुप से बहने' में आवाय पाताया का जन्म है। अज्ञानी व्यक्ति भी ज्ञान प्रचार की भाव की बातें करना है। लोग भी इन तरह बड़ लेना है। मूढ़ से बहना एक बात है और अनुभव

करना दूसरी बात। दर्शन, मतामत, विचार, शास्त्र, मन्दिर, सम्प्रदाय आदि अपने स्थान पर ठीक हैं। पर प्रत्यक्षानुभूति होने पर यह सब पीछे छूट जाते हैं। जैसे, नक्शा अच्छी चीज है, पर नक्शे में अकित देश को स्वयं देखकर आने के बाद यदि उसी नक्शे को फिर से देखो, तो कितना अन्तर दिखायी पड़ेगा। अतएव जिन्होंने सत्य को प्रत्यक्ष कर लिया है, उन्हें फिर सत्य को समझने के लिए न्याय-युक्ति, तर्क-वितर्क आदि बौद्धिक व्यायामों की आवश्यकता नहीं रह जाती। उनके लिए तो सत्य जीवन का जीवन, प्रत्यक्ष से भी प्रत्यक्ष हो जाता है। वेदान्तियों की भाषा में, वह मानो उनके लिए हस्तामलकवत् हो गया है। प्रत्यक्ष उपलब्धि करने-वाले लोग निःसंकोच भाव से कह सकते हैं, 'यही आत्मा है।' तुम उनके साथ कितना ही तर्क क्यों न करो, वे तुम्हारी बात पर केवल हँसेंगे, वे उसे बच्चे की अण्ड-बण्ड बकवास ही समझेंगे, और उन्हें बकने देंगे। उन्होंने सत्य का साक्षात्कार किया और पूर्ण हो गये। मान लो, तुम एक देश देखकर आये और कोई व्यक्ति तुम्हारे पास आकर यह तर्क करने लगा कि उस देश का कहीं अस्तित्व ही नहीं है। वह फिर कितना ही तर्क क्यों न करे, पर उसके प्रति तुम्हारा भाव यही रहेगा कि वह पागलखाने में भेज देने लायक है। इसी प्रकार, जो धर्म की प्रत्यक्ष उपलब्धि कर चुके हैं, वे कहते हैं, "जगत् में धर्म सम्बन्धी जो बातें सुनी जाती हैं, वे सब केवल बच्चों की सी बातें हैं। प्रत्यक्षानुभूति ही धर्म का सार है।" धर्म की उपलब्धि की जा सकती है। प्रश्न यह है कि क्या तुम इसके अधिकारी हो चुके हो? क्या तुम्हें धर्म की सचमुच में आवश्यकता है? यदि तुम ठीक ठीक प्रयत्न करो, तभी तुम्हें प्रत्यक्ष उपलब्धि होगी, और तभी तुम वास्तव में धार्मिक होगे। जब तक यह उपलब्धि तुम्हें नहीं होती, तब तक तुममें और नास्तिक में कोई भेद नहीं। नास्तिक तो फिर भी निष्कपट होते हैं, किन्तु जो कहता है कि 'मैं धर्म में विश्वास करता हूँ, पर उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति की चेष्टा नहीं करता', वह निश्चय ही निष्कपट नहीं है।

दूसरा प्रश्न यह है कि उपलब्धि के बाद क्या होता है? मान लो कि हमने जगत् का यह अखण्ड भाव—यह भाव कि हमी एकमात्र अनन्त पुरुष हैं—उपलब्धि कर लिया, मान लो, हमने जान लिया कि एकमात्र आत्मा ही विद्यमान है और वही विभिन्न रूपों से प्रकाशित हो रही है। तो अब प्रश्न यह है कि इस प्रकार जान लेने से हमारा क्या हुआ? तब क्या हम निश्चेष्ट हो एक कोने में बैठकर मर जायें? इसमें जगत् का क्या उपकार होगा? वही प्राचीन प्रश्न फिर से घूम-फिक्कर आता है! पहले तो, इसने जगत् का उपकार क्यों हो? क्यों? मैं इसका कारण जानना चाहता हूँ। लोगों को यह प्रश्न करने का अधिकार ही

क्या है कि इससे जगत् का क्या भसा होमा? ऐसा पूछने का अर्थ क्या? छोटे छोटे बच्चे मिठाई पसन्द करते हैं। मान लो तुम बिजुत् के बारे में कुछ खोज कर रहे हो और बच्चा तुमसे पूछता है 'इससे क्या मिठाई मिलेगी? तुम कहते हो 'नहीं। तो वह कह उठता है 'तो फिर इससे क्या काम? उत्पत्तान के अनुसंधान में रत देखकर सोच ठीक इसी प्रकार पूछते हैं, 'इससे जगत् का क्या उपकार होगा? क्या इससे हमें क्या मिलेगा? 'नहीं। 'तो फिर इससे क्या काम? लोमो उपकार का अर्थ बस इतना ही समझते हैं। तो भी धर्म की इस प्रत्यक्षानुभूति से जगत् का पूरा उपकार होता है। लोमो को भय होता है कि जब वे यह अवस्था प्राप्त कर लेंगे जब उन्हें ज्ञान हो जायगा कि सभी एक हैं तब उनके प्रेम का स्रोत मुझ जायगा जीवन में जो कुछ सुखवान है, वह सब बसा जायगा इस जीवन में और पर-जीवन में जो कुछ उन्हें प्रिय था उसमें से कुछ भी न बच रहेगा। पर लोग यह बात एक बार भी नहीं सोच देखते कि जो व्यक्ति अपने मुझ की चिन्ता की ओर से उदासीन हो गये हैं वे ही जगत् में सर्वश्रेष्ठ कर्मी हुए हैं। मनुष्य सभी वास्तव में प्रेम करता है जब वह देखता है कि उसके प्रेम का पाप कोई क्षुद्र मत्स्य जीव नहीं है। मनुष्य सभी वास्तविक प्रेम कर सकता है जब वह देखता है कि उसके प्रेम का पाप एक मिट्टी का डेला नहीं किन्तु स्वयं भगवान् है। स्त्री पति से और अधिक प्रेम करेगी यदि वह समझेगी कि स्वामी साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है। पति भी स्त्री से अधिक प्रेम करेगा यदि वह जानेगा कि स्त्री स्वयं ब्रह्मस्वरूप है। वे माताएँ सन्तान से अधिक स्नेह कर सकेंगी जो सन्तान को ब्रह्मस्वरूप देखेंगी। वे ही लोग अपने महान् सन्तुष्टों के प्रति भी प्रेमभाव रख सकेंगी जो जानेंगे कि वे सन्तुष्ट साक्षात् ब्रह्म स्वरूप हैं। वे ही लोग पवित्र व्यक्तियों से प्रेम करेंगे जो समझेंगे कि सामु व्यक्ति साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हैं। वे ही लोग अल्पज्ञ अपवित्र व्यक्तियों से भी प्रेम करेंगे जो यह जान लेंगे कि इन महा बुद्धों के भी पीछे वे ही प्रभु विद्यमान हैं। बिनाका क्षुद्र अहंकार एकदम मर चुका है और उसके स्वप्न पर ईश्वर ने अधिकार जमा लिया है वे ही लोग जगत के प्रेरक हो सकते हैं। उनके लिए समस्त विश्व दिव्य मान से रुपान्तरित हो जायगा। बुझकर अपना बसेसकर जो कुछ भी है वह सब उनकी दृष्टि से स्रष्ट हो जाता है। सभी प्रकार के इन्द्र और संशय समाप्त हो जाते हैं। तब जगत् बड़ा सुन्दर बन जाता है। ऐसे ही व्यक्ति को यह कहने का अधिकार है कि 'यह जगत् कितना सुन्दर है! 'उन्हींको यह कहने का अधिकार है कि सब भगवत्स्वरूप है। इस प्रकार की प्रत्यक्ष उपलब्धि से जगत् का यह महान्



हित होगा कि ये अविराम विवाद, द्वन्द्व आदि सब दूर होकर जगत् शान्ति का राज्य हो जायगा। यदि जगत् के सभी मनुष्य आज इस महान् सत्य के एक विन्दु की भी उपलब्धि कर सकें, तो उनके लिए यह सारा जगत् एक दूसरा ही रूप धारण कर लेगा और यह सब झगडा समाप्त हो शान्ति का राज्य आ जायगा। यह धिनीना उतावलापन, यह स्पर्धा, जो हमें, अन्य सबों को ठेलकर आगे बढ़ निकलने के लिए बाध्य करती है, इस सन्सार से उठ जायगी। इसके साथ साथ सब प्रकार की अशान्ति, घृणा, ईर्ष्या एव सभी प्रकार का अशुभ मदा के लिए चला जायगा। उस समय देवता लोग इन जगत् में वास करेंगे। उस समय यही जगत् स्वर्ग हो जायगा। और जब देवता देवता से खेलेगा, देवता देवता से मिलकर कार्य करेगा, देवता देवता से प्रेम करेगा, तब क्या अशुभ ठहर सकता है? ईश्वर की प्रत्यक्ष उपलब्धि का यही एक बड़ा सुफल है। समाज में तुम जो कुछ भी देख रहे हो, वह सभी उस समय परिवर्तित होकर एक दूसरा रूप धारण कर लेगा। तब तुम किसी मनुष्य को बुरा नहीं समझोगे। यही प्रथम महालाभ है। उस समय तुम लोग किसी अन्याय करनेवाले वेचारे नर-नारी की ओर घृणापूर्ण दृष्टि से नहीं देखोगे। हे महिलाओ, फिर तुम प्रणयाकाक्षा में रात भर रास्ते में भटकती फिरनेवाली दुखिया स्त्री की ओर घृणा से न देखोगी, क्योंकि तुम वहाँ भी साक्षात् ईश्वर को देखोगी। तब तुममें ईर्ष्या अथवा दूसरो पर शासन करने का भाव उदय नहीं होगा, वह सब चला जायगा। तब प्रेम इतना प्रबल हो जायगा कि मानव जाति को सत्पथ पर चलाने के लिए फिर चावुक की आवश्यकता नहीं रह जायगी।

यदि सन्सार के नर-नारियो का दश-लक्षांश भी विल्कुल चुप रहकर एक क्षण के लिए कहे, "तुम सभी ईश्वर हो, हे मानवो, हे पशुओ, हे सब प्रकार के जीवित प्राणियो। तुम सभी एक जीवन्त ईश्वर के प्रकाश हो," तो आघे घण्टे के अन्दर ही सारे जगत् का परिवर्तन हो जाय। उस समय चारों ओर घृणा के बीज न बोकर, ईर्ष्या और असत् चिन्ता का प्रवाह न फैलाकर सभी देशों के लोग सोचेंगे कि सभी 'वह' हैं। जो कुछ तुम देख रहे हो या अनुभव कर रहे हो, वह सब 'वही' है। तुम्हारे भीतर अशुभ न रहने पर तुम अशुभ किस तरह देखोगे? तुम्हारे भीतर यदि चोर न हो, तो तुम किस प्रकार चोर देखोगे? तुम स्वयं यदि खूनी नहीं हो, तो किस प्रकार खूनी देखोगे। साधु हो जाओ, तो असाधु-भाव तुम्हारे अन्दर से एकदम चला जायगा। इस प्रकार सारे जगत् का परिवर्तन हो जायगा। यही समाज का सबसे बड़ा लाभ है। मनुष्य के लिए यही महान् लाभ है। ये सब भाव भारत में प्राचीन काल में अनेक महात्माओं द्वारा आविष्कृत और कार्य-रूप में परिणत हुए थे। पर आचार्यों की सकीर्णता और देश की पराधीनता आदि अनेकविध कारणों से ये सब

भाव चारों ओर फैल न सके। फिर भी ये सब महान् उद्यम हैं। जहाँ भी इन विचारों का प्रभाव पड़ा है वहीं मनुष्य में श्रेष्ठत्व प्राप्त कर लिया है। ऐसे ही एक श्रेष्ठभाव मनुष्य के स्पर्श द्वारा मेरा समस्त जीवन परिवर्तित हो गया है। इनके सम्बन्ध में आगामी रविवार को मैं तुमसे कहूँगा। आज इन सब भावों का जगत् में प्रचार करने का समय जा गया है। अब मठों की बहारदीवारी में आबद्ध न रहकर, केवल पण्डितों के पढ़ने की शारीरिक पुस्तकों में आबद्ध न रहकर, केवल कुछ सम्प्रदायों के अथवा कुछ पण्डितों के एकाधिकार में न रहकर, इन भावों का समस्त जगत् में प्रचार होना जिससे ये सामु, पापी आत्मानुभवनिता विदित अविदित सभी की साधारण सम्पत्ति हो जाय। तब ये सब भाव इस जगत् के वातावरण को और-और कर देने और हम स्वयं प्रकाश द्वारा जो वायु से रहे हैं वह अपने प्रत्येक स्पर्शन के साथ कहने लगेगी—तत्त्वमसि। असंख्य अन्ध-मूर्खपूर्ण यह समय ब्रह्माण्ड वास्तविकयुक्त प्रत्येक प्राणी के माध्यम से एक स्वर से कहूँ उठेगा—तत्त्वमसि।

## माया और भ्रम

(लन्दन में दिया हुआ भाषण)

माया शब्द प्रायः तुम सभी ने सुना होगा। इसका व्यवहार साधारणतः कल्पना, कुहक अथवा इसी प्रकार के अर्थ में किया जाता है। किन्तु मायावाद उन स्तम्भों में से एक है, जिन पर वेदान्त की स्थापना हुई है, अतः उसका ठीक ठीक अर्थ समझ लेना आवश्यक है। मैं तुम लोगों से तनिक धैर्यपूर्वक सुनने की प्रार्थना करता हूँ, क्योंकि मुझे भय है कि कहीं तुम माया के सिद्धान्त को गलत न समझ बैठो। वैदिक साहित्य में 'माया' शब्द का प्रयोग कुहक के अर्थ में ही देखा जाता है। यही माया शब्द का सबसे प्राचीन अर्थ है। किन्तु उस समय यथार्थ मायावाद-तत्त्व का उदय नहीं हुआ था। हम वेद में इस प्रकार के वाक्य पाते हैं—इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते, अर्थात् इन्द्र ने माया द्वारा नाना रूप धारण किये। यहाँ पर 'माया' शब्द इन्द्रजाल अथवा उसी प्रकार के अर्थ में व्यवहृत हुआ है। वेद के अनेक स्थलों में माया शब्द इसी अर्थ में व्यवहृत देखा जाता है। इसके बाद कुछ समय तक माया शब्द का व्यवहार एकदम लुप्त हो गया। किन्तु इसी बीच उस शब्द द्वारा प्रतिपादित जो अर्थ या भाव था, वह क्रमशः परिपुष्ट हो रहा था। बाद में हम देखते हैं कि एक प्रश्न उठाया गया है, 'हम जगत् के इस रहस्य को क्यों नहीं जान पाते?' और उसका जो उत्तर दिया गया है, वह बड़ा ही अर्थगभीर है 'हम सब थोथी बकवास करते हैं, इन्द्रिय-सुख से ही सन्तुष्ट हैं और वासनाओं के पीछे दौड़ते रहते हैं, इसलिए इस सत्य को हमने मानो कुहरे से ढक रखा है।' यहाँ पर माया शब्द का व्यवहार बिल्कुल नहीं हुआ है, पर उससे यही भाव प्रकट होता है कि हमारी अज्ञता का कारण कुछ कुहरे जैसा है, जो इस सत्य और हमारे बीच आ गया है। इसके बहुत समय बाद, एक अपेक्षाकृत आधुनिक उपनिषद् में, माया शब्द पुनः दीख पड़ता है। पर इस बीच उसका रूप काफी बदल चुका है, उसके साथ कई नये अर्थ संयोजित हो गये हैं। नाना प्रकार के मतवादों का प्रचार हुआ, उनकी पुनरुक्ति हुई, और अन्त में मायाविषयक धारणा ने एक स्थिर रूप

प्राप्त कर लिया। हम स्वैतारवतरोपनिषद् में पढ़ते हैं—'तस्यां तु प्रकृति विद्यात्मा  
 पितृ तु महेश्वरम्—'माया को ही प्रकृति समझो और मायी को महेश्वर जानो।  
 भगवान् संकराचार्य के पूर्ववर्ती दार्शनिक परिदृष्टियों में इस माया शब्द का विभिन्न  
 अर्थों में व्यवहार किया है। बौद्धों ने भी मायाशब्द का उपयोग किया है। किन्तु  
 बौद्धों के हाथों यह बहुत कुछ विज्ञानवाद (idealism) में परिणत हो गया  
 था और अब माया शब्द को साधारणतः यही अर्थ दिया जाता है। हिन्दू लोग  
 अब कहते हैं कि 'संसार माया है' तो साधारण मनुष्य के मन में यही भाव उदित  
 होता है कि 'संसार एक भ्रम मात्र है'। इस प्रकार की व्याख्या का कुछ आधार है  
 क्योंकि बौद्ध दार्शनिकों की एक श्रेणी के दार्शनिकगण बाह्य जगत् के अस्तित्व में  
 बिल्कुल विश्वास नहीं करते थे। किन्तु वेदान्त में माया का जो अन्तिम निश्चित  
 स्वस्म है वह न तो विज्ञानवाद है, न मयार्थवाद (realism) और न किसी  
 प्रकार का सिद्धान्त ही। वह तो तथ्यों का सहज वर्णन मात्र है—हम क्या हैं और  
 अपने चारों ओर हम क्या देखते हैं।

मैं तुमसे पहले ही यह चुका हूँ कि भिन्न पुरुषों के अन्तःकरण से वेद निकले  
 उनकी चिन्तन-शक्ति मूल तत्त्वों के अनुसरण तथा खोज में ही कमी हुई थी।  
 इन तत्त्वों के व्योमों के अनुशीलन के लिए मानो उन्हें समय ही नहीं मिला और  
 उन्होंने प्रतीक्षा भी नहीं की। वे तो बन्धुओं के अन्तःकरण में पहुँचने के लिए व्यग्र  
 थे। इस जगत् से अतीत की कोई वस्तु मानो उन्हें पुकार रही थी वे मानो और  
 अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकते थे। उपनिषदों में यज्ञ-तन्त्र आदि विन्हीं हम आज  
 तक विज्ञान कहते हैं उन विषयों के व्योमों का प्रतिपादन बहुधा बड़ा भ्रमात्मक  
 मिळता है, पर तो भी उनके मूल सिद्धांत बिल्कुल सही हैं। ज्याहूरुआर्य आधुनिक  
 विज्ञान का ईश्वर अर्थात् आकाशविषयक नवीन सिद्धांत उपनिषदों में आधुनिक  
 वैज्ञानिकों के ईश्वर-सिद्धांत की अपेक्षा अधिक विकसित रूप में विद्यमान है। किन्तु  
 यह बस मूल सिद्धांत तक ही सीमित रहा। इस आकाश तत्त्व के कार्य की व्याख्या  
 करने में उन्होंने अनेक त्रुटि की। यह सर्वव्यापी प्राण-तत्त्व जगत् के समस्त  
 जीवन जिसकी विविध अभिव्यक्ति मात्र है वेदों में—ब्राह्मण भाग में पाया जाता

१. हमारी इन्द्रियों से प्राप्त सारा जगत् हमारे मन की ही विभिन्न अनुभूति  
 मात्र है उसकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है, इस मत को विज्ञानवाद या idealism  
 कहते हैं।

२. जगत् हमारे मन की अनुभूति मात्र नहीं है, बल्कि उसकी मयार्थ सत्ता है  
 इस मत को मयार्थवाद या realism कहते हैं।

है। संहिता के एक लम्बे मंत्र में समस्त जीवनी शक्ति के विकासक प्राण की प्रशंसा की गयी है। शायद तुम लोगो में से कुछ को यह जानकर आनन्द हो कि इस पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ आधुनिक यूरोपीय वैज्ञानिकों के जो सिद्धान्त हैं, बहुत कुछ वैसे ही सिद्धान्त वैदिक दर्शन में भी पाये जाते हैं। तुम सभी निश्चित ही जानते हो कि जीवन अन्य ग्रहों से सञ्क्रमित होकर पृथ्वी पर आता है, इस प्रकार का एक मत प्रचलित है। कतिपय वैदिक दार्शनिकों का यह निश्चित मत है कि जीवन इस प्रकार चन्द्रलोक से पृथ्वी पर आता है।

मूल तत्त्वों के सम्बन्ध में हम देखते हैं कि वैदिक विचारकों ने व्यापक सिद्धांतों की व्याख्या करने में अतिशय साहस और आश्चर्यजनक निर्भीकता का परिचय दिया है। इस विश्व के रहस्य के मर्म को बाह्य जगत् से ढूँढ निकालने के प्रयास में उन्हें यथासम्भव सतोषजनक उत्तर मिला। मौलिक सिद्धांतों के असफल हो जाने के कारण आधुनिक विज्ञान का विशद कार्य भी इस प्रश्न के समाधान को एक पग आगे नहीं बढ़ा सका है। जब प्राचीन काल में आकाश तत्त्व विश्व-रहस्य का भेद खोलने में समर्थ नहीं हुआ, तब उसका सविस्तर अनुशीलन भी हमें सत्य की ओर कोई अधिक अप्रसर नहीं करा सकता। यदि यह सर्वव्यापी प्राण-तत्त्व विश्व-रहस्य का भेद खोलने में असमर्थ रहा हो, तो उसका विस्तृत अनुशीलन निरर्थक है, क्योंकि व्योरे मौलिक तत्त्व के सम्बन्ध में कोई परिवर्तन नहीं कर सकते। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि तत्त्वानुशीलन में हिन्दू दार्शनिक आधुनिक विद्वानों की भाँति ही, एव कभी कभी उनसे भी अधिक, साहसी थे। उन्होंने अनेक भव्यतम सिद्धांतों का आविष्कार किया और कुछ अब भी परिकल्पनाओं के रूप में ही विद्यमान हैं, जिन्हें वर्तमान विज्ञान अभी तक परिकल्पना के रूप में भी प्राप्त नहीं कर सका है। उदाहरणार्थ, वे केवल आकाश तत्त्व पर पहुँचकर ही नहीं रुक गये, वरन् आगे बढ़कर मन को भी एक सूक्ष्मतर आकाश के रूप में वर्गीकृत किया। फिर उसके भी परे उन्होंने और भी अधिक सूक्ष्म आकाश की प्राप्ति की। पर वह भी समाधान नहीं था, उससे समस्या का समाधान नहीं हुआ। बाह्य जगत् के बारे में कितना भी ज्ञान क्यों न हो जाय, पर उससे रहस्य का भेद नहीं खुल सकता। किन्तु वैज्ञानिक कहता है, "अरे, हमने अभी ही तो कुछ जानना शुरू किया है। जरा कुछ हज़ार वर्ष ठहरो, देखोगे, हमें समाधान मिल जायगा।" किन्तु वेदान्तवादी ने तो नि सन्दिग्ध रूप से मन की सीमाता को प्रमाणित कर दिया है, अतएव वह उत्तर देता है, "नहीं, सीमा से बाहर जाने की हमारी शक्ति नहीं। हम देश, काल और निमित्त को चहारदीवारी के बाहर नहीं जा सकते।" जिस प्रकार कोई भी व्यक्ति अपनी सत्ता को नहीं लाघ सकता, उसी प्रकार देश और काल के नियम ने

को सीमा खड़ी कर दी है उसका अतिक्रमण करने की क्षमता किसीमें नहीं। देश कास-निमित्त सम्बन्धी रहस्य को खोलने का प्रयत्न ही व्यर्थ है क्योंकि इसकी चेष्टा करते ही इन चीनों की सत्ता स्वीकार करनी होगी। तब मन्ना यह किस प्रकार सम्भव है? और ऐसा होने पर फिर जगत् के अस्तित्वबाध का क्या रूप रहेगा? इस शब्द का अस्तित्व नहीं है 'असत्' मिय्या है—इसका अर्थ क्या है? इसका यही अर्थ है कि उसका निरपेक्ष अस्तित्व नहीं है। मेरे, तुम्हारे और अन्य सबके मन के सम्बन्ध में इसका केवल सापेक्ष अस्तित्व है। हम पाँच इन्द्रियों द्वारा जगत् को बिना रूप में प्रत्यक्ष करते हैं, यदि हमारे एक इन्द्रिय और होती तो हम इसमें और भी कुछ अधिक प्रत्यक्ष करते तथा और अधिक इन्द्रिय सम्पन्न होने पर हम इसे और भी भिन्न रूप में देख पाते। अतएव इसकी मर्याद सत्ता नहीं है—यह अपरिवर्तनीय अचल अनन्त सत्ता इसकी नहीं है। पर इसको अस्तित्वशून्य वा असत् भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह तो वर्तमान है और इसमें तथा इसीके माध्यम से हम कार्य करते हैं। यह सत् और असत् का मिश्रण है।

सूक्ष्म चरकों से केकर जीवन के साधारण दैनिक स्बुद्ध कार्यों तक पर्याप्तोपगत करने पर हम देखते हैं कि हमारा सम्पूर्ण जीवन सत् और असत् इन दो विपक्ष भागों का सम्मिश्रण है। ज्ञान के क्षेत्र में भी यह विपक्ष भाव विज्ञायी पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य यदि जानना चाहे, तो समस्त ज्ञान प्राप्त कर सकता है पर हो-चार पय चलने के बाद ही उसे एक ऐसा अमेघ व्यवधान देखने में आता है, जिसको काँच जाना उसके बंध के बाहर हो जाता है। उसके सभी कार्य एक परिधि के अन्दर घूमते रहते हैं, और वह इस परिधि को कभी काँच नहीं सकता। उसके अन्तरतम एवं श्रेष्ठतम रहस्य उसे समाधान के लिए दिन-रात उत्तेजित करते रहते हैं उसका आह्वान करते रहते हैं, पर उनका उत्तर देने में वह व्यसमर्थ है क्योंकि वह अपनी बुद्धि की सीमा का उल्लंघन नहीं कर सकता। फिर भी वह इच्छा उसके भीतर गहरी जड़ें जमावे हुए हैं। और इस उत्तेजना का बल ही एकमात्र संशुद्ध करण है यह भी हम अच्छी तरह जानते हैं। हमारे हृदय का प्रत्येक सत्य प्रत्येक निस्वास के साथ हमें स्वार्थपर होने का आदेश देता है। पर दूसरी ओर, एक परासक्ति बहती है कि एकमात्र निस्वार्थता ही शुभ का साधन है। अर्थ से ही प्रत्येक शासक आशावादी होता है वह केवल मुनहके स्वप्न देखाता है। जीवन में वह और भी अधिक आशावादी हो जाता है। मृत्यु, पराजय अथवा अपमान नाश की भी कोई भीड़ है यह बात किसी मुक्त की समझ में आनी कठिन है। फिर बुझाया जाता है जीवन एक व्यंतादरोप मात्र यह बात है मुनहके स्वप्न हवा में उड़ जाने हैं और मनुष्य निराशावादी हो जाता है। प्रकृति के बर्षे धाकर हम बस इसी

प्रकार दिशाहीन व्यक्ति की भाँति एक छोर से दूसरे छोर तक दौड़ते रहते हैं। इस सम्बन्ध में मुझे बुद्ध की जीवनी 'ललितविस्तर' का एक प्रसिद्ध गीत याद आता है। वर्णन इस प्रकार है कि बुद्ध ने मनुष्य-जाति के परित्राता के रूप में जन्म ग्रहण किया, किन्तु जब राजप्रासाद की विलासिता में वे अपने को भूल गये, तब उनको जगाने के लिए देवदूतों ने एक गीत गाया, जिसका मर्मार्थ इस प्रकार है— 'हम एक प्रवाह में बहते चले जा रहे हैं, हम अविरत रूप से परिवर्तित हो रहे हैं— कहीं निवृत्ति नहीं है, कहीं विराम नहीं है।' इसी प्रकार हमारा जीवन भी विराम नहीं जानता—अविरत चलता ही रहता है। तब फिर उपाय क्या है? जिसके पास खाने-पीने की प्रचुर सामग्री है, वह तो आशावादी हो जाता है, कहता है, "भय उत्पन्न करनेवाली दुःख की बातें मत कहो, ससार के दुःख-कष्ट की बातें मत सुनाओ।" उसके पास जाकर यदि कहो—“सभी शुभ हैं”, तो वह कहेगा, “सचमुच, मैं मजे में हूँ, यह देखो, कितनी सुन्दर अट्टालिका में मैं वास करता हूँ। मुझे भूख या शीत का कोई भय नहीं। अतएव मेरे सम्मुख ऐसे भयावह चित्र मत लाओ।” पर दूसरी ओर कितने ही लोग ऐसे हैं, जो शीत और अनाहार से मर रहे हैं। उनके पास जाकर यदि कहो कि 'सभी शुभ हैं', तो वे तुम्हारी बात सुनने के नहीं। वे सारा जीवन दुःख-कष्ट से पिसते आ रहे हैं, उनके लिए सुख, सौन्दर्य और शुभ कहाँ? वे तो कहेंगे, “नहीं, मैं यह सब विश्वास नहीं करता। जीवन में केवल रोना है—केवल दुःख है।” बस, हम इसी प्रकार आशावाद से निराशावाद में झूलते रहते हैं।

इसके बाद मृत्युरूपी भयावह तथ्य आता है—सारा ससार मृत्यु के मुख में चला जा रहा है, सभी मरते जा रहे हैं। हमारी उन्नति, हमारे व्यर्थ के आडम्बर-पूर्ण कार्य कलाप, समाज-संस्कार, विलासिता, ऐश्वर्य, ज्ञान—इन सबकी मृत्यु ही एकमात्र गति है। इससे अधिक निश्चित बात और कुछ नहीं। नगर पर नगर बनते हैं और नष्ट हो जाते हैं। साम्राज्य पर साम्राज्य उठते हैं और पतन के गर्त में समा जाते हैं, ग्रह आदि चूर चूर होकर विभिन्न ग्रहों की वायु के झोंकों से इधर-उधर बिखरे जा रहे हैं। इसी प्रकार अनादि काल से चलता आ रहा है। इस सबका आखिर लक्ष्य क्या है? मृत्यु। मृत्यु ही सबका लक्ष्य है। वह जीवन का लक्ष्य है, सौन्दर्य का लक्ष्य है, ऐश्वर्य का लक्ष्य है, शक्ति का लक्ष्य है, और तो और, धर्म का भी लक्ष्य है। साधु और पापी दोनों मरते हैं, राजा और भिक्षुक, दोनों मरते हैं—सभी मृत्यु को प्राप्त होते हैं। फिर भी जीवन के प्रति यह विषम आपत्ति विद्यमान है। हम क्यों इस जीवन से आसक्ति करते हैं? क्यों हम इसका परित्याग नहीं कर पाते? यह हम नहीं जानते। और यही माया है।

माता बड़े यत्न से सन्तान का लालन-पालन करती है। उसका सारा मन-

प्राण सारा जीवन मानो उसी बन्धने में केन्द्रित रहता है। बालक बड़ा हुआ मुवा-बस्ता को प्राप्त हुआ और सायब दुस्वरित्त एवं परावृत्त होकर प्रतिबिल अपनी माता को मारन-पीटने लगा किन्तु माता फिर भी पुत्र से बिपकी रहती है। जब उसकी विचार-शक्ति आपत होती है तब वह उसे अपने स्नेह के आवरण में डक लेती है। किन्तु वह नहीं जानती कि यह स्नेह नहीं है एक अज्ञात शक्ति ने उसके स्नायुओं पर अधिकार कर रखा है। वह इसे पूर नहीं कर सकती। वह कितनी ही बेपटा क्यों न करे, इस बन्धन को तोड़ नहीं सकती। और यही माया है।

हम सभी कल्पित सुवर्ण लोम<sup>१</sup> की खोज में बीड़ते रहते हैं। सभी सोचते हैं कि वह हमें ही मिलेगा किन्तु उनमें से कितने मनुष्य इस संसार में भीषित हैं? प्रत्येक विचारशील व्यक्ति देखता है कि इस सुवर्ण लोम को प्राप्त करने की उसकी को करोड़ों में एक से अधिक सम्भावना नहीं है। तथापि प्रत्येक मनुष्य उसके लिए फ़ोरो संघर्ष करता है। इस यही माया है।

इस संसार में मृत्यु रात-दिन गर्भ से मस्तक उँबा किये भूम रही है पर हम

१ सुवर्ण लोम (Golden Fleece)—ग्रीक पौराणिक साहित्य की कथा है कि प्रोस के अन्तर्गत पेंसाली देश में राजर्षि के आचामात की पत्नी मेड्रेक के पर्व से फ़िन्सस नामक पुत्र और हेल् नाम की कन्या ने जन्म लिया। कुछ दिन के बाद मेड्रेक की मृत्यु होने पर आचामात ने कैंडलस की कन्या ईबो के साथ विवाह कर लिया। ईबो का मेड्रेक की सन्तानों के प्रति विधेव रहने के कारण उसने नाना कपार्यों से अपने पति की वैधताओं के लिए फ़िन्सस की पति से देने के लिए राखी कर लिया। किन्तु बकिरान के पुत्र ही फ़िन्सस की स्वर्गीया माता की अस्ता फ़िन्सस के सम्पुन आबिर्भूत हुई और एक सुवर्ण लोमपुस्त मेड़े की पतके निकट लाकर भाई-बहन को उस पर बड़रुत समुद्र-पार भाव जाने का आदेश देने लगी। मार्ग में उसकी बहन हेल् मिरकर भूज गयी—फ़िन्सस ने कासे समुद्र की पुर्व दिशा में कलचित नामक स्थान में उतरकर वहाँ के जिउस देवता की पत मेड़े की उलि पड़ा की और उसकी जाल की मार्स (संगल) वैधता के कुँज में डीन दिया। एक रीम पतकी रीक भास के लिए निपुस्त हुआ। कुछ दिन बाद इस सुवर्ण लोम की जाल की लाने के लिए आचामात का भतीजा वीसन अपने प्रनिउन्नी वेल्थिस द्वारा निपुस्त किया गया और वह जार्यों नामक एक बड़े जहाज में अनेक प्रतिष्ठ और पुस्त्यों सहित बैठकर नाना प्रकार के वाया-बिलों को बार करता हुआ पत सुवर्ण लोम को लाने में सफल हुआ। ग्रीक पुराणों में यह कथा Argonautic Expedition नाम से विख्यात है।



तोचते हैं कि हम सदा जीवित रहेंगे। किसी समय राजा युधिष्ठिर से यह प्रश्न पूछा गया, "इस पृथ्वी पर सबसे आश्चर्य की बात क्या है?" राजा ने उत्तर दिया, "हमारे चारों ओर प्रतिदिन लोग मर रहे हैं, फिर भी जो जीवित हैं, वे समझते हैं कि वे कभी मरेंगे ही नहीं।" बस, यही माया है।

हमारी बुद्धि में, हमारे ज्ञान में, यही क्यों, हमारे जीवन की प्रत्येक घटना में ये विषम विरुद्ध भाव दिखायी पड़ते हैं। सुख दुःख का पीछा करता है और दुःख सुख का। एक सुधारक उठता है और किसी राष्ट्र के दोषों को दूर करना चाहता है। पर इसके पहले कि वे दोष दूर हो, हजार नये दोष दूसरे स्थान में उत्पन्न हो जाते हैं। यह बस एक ढहते हुए पुराने मकान के समान है। तुम उस मकान के एक भाग की मरम्मत करते हो, तो उसका कोई दूसरा भाग ढह जाता है। भारत में हमारे समाज-सुधारक जीवन भर जबरन वैषम्य-धारण रूपी दोष के विरुद्ध आवाज उठाते हैं और उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं। तो पश्चिमी देशों में विवाह न होना ही सबसे बड़ा दोष है। एक ओर अविवाहिताओं का कष्ट दूर करने में सहायता करनी होगी, तो दूसरी ओर विधवाओं के आँसू पोछने का प्रयत्न करना होगा। यह तो बस पुरानी गठिया की बीमारी के समान है—उसे सिर से भगाओ, तो कमर में आ जाती है, कमर से भगाओ, तो पैर में उतर जाती है। सुधार करने-वाले उठते हैं और शिक्षा देते हैं कि विद्या, धन, सस्कृति कुछ इने-गिनो के हाथों ही नहीं रहनी चाहिए, और वे इनको सर्वसाधारण तक पहुँचा देने का भरसक प्रयत्न करते हैं। ही सकता है, इससे कुछ लोग अधिक सुखी हो जायें, पर जैसे जैसे ज्ञानानुशीलन बढ़ता जाता है, वैसे वैसे शारीरिक सुख भी कम होने लगता है। सुख का ज्ञान अपने साथ ही दुःख का ज्ञान भी लाता है। तब हम फिर किस मार्ग का अवलम्बन करें? हम लोग जो कुछ थोड़ा सा सुख भोगते हैं, दूसरे स्थान में उससे उतने ही परिमाण में दुःख भी उत्पन्न होता है। बस, यही नियम है—सब वस्तुओं पर यही नियम लागू होता है। जो युवक हैं, जिनका खून अभी गरम है, वे इस बात को शायद स्पष्ट रूप से समझ न पायें, पर जिन्होंने धूप में बाल पकाये हैं, अपने जीवन में आँधी और तूफान के दिन देखे हैं, वे इसे सहज ही समझ लेंगे। बस, यही माया है। दिन-रात ये बातें घट रही हैं, पर इनका ठीक ठीक समाधान करना असम्भव है। ऐसा भला क्यों होता है? इस प्रश्न का उत्तर पाना सम्भव नहीं, क्योंकि प्रश्न ही तर्कसगत नहीं है। जो बात घट रही है, उसमें न 'कैसे' है, न 'क्यों', हम बस इतना ही जानते हैं कि वह है और हमारा उसमें कोई हाथ नहीं। यहाँ तक कि उसकी धारणा करना—अपने मन में उसका ठीक ठीक चित्र खींचना भी हमारी शक्ति के बाहर है। तब हम भला उसे कैसे सुलझायें?

अतः इस संसार की गति के तथ्यार क बर्नन का नाम माया है। साधारणतया भाग यह बात सुनकर भयभीत हो जाते हैं। हमें साहसी होना पड़ेगा। घटनाओं पर परदा डालना राग का प्रतिवार नहीं है। कुत्तों से पीछा किये जाने पर जिस प्रकार खरगाय अपने मुँह को टाँपों में छिपाकर अपने को सुरक्षित समझ बैठता है, उसी प्रकार हम लोग भी आसावादी होकर छिप-छुप कर खरयोत के समान आचरण करते हैं। पर यह कोई उपाय नहीं है। दूसरी ओर, सांसारिक जीवन की प्रचुरता सुख और स्वच्छन्दता भोगनेवाले इस मायावाद के सम्बन्ध में बड़ी आपत्तियाँ उठाते हैं। इस वेद (ईसाई) में निराशावादी होना बहुत कठिन है। सभी मुझसे कहते हैं—संसार का कार्य कितने सुन्दर रूप से चाल रहा है, संसार कितना उपलब्धिहीन है! किन्तु उनका अपना जीवन ही उनका संसार है। एक पुण्य प्राप्त उठता है—ईसाई धर्म ही एकमात्र धर्म है। क्यों? इसलिए कि ईसाई धर्म को माननेवाले सभी राष्ट्र समृद्धिप्राप्ति हैं। पर इस प्रकार की युक्ति से तो यह सिद्धान्त स्वयं ही भ्रामक सिद्ध हो जाता है क्योंकि अन्य राष्ट्रों का दुर्भाग्य ही तो ईसाई धर्मावलम्बी राष्ट्रों की समृद्धि का कारण है और एक का सौभाग्य बिना दूसरे का शून्य बूधे नहीं बनता। यदि सारी पृथ्वी ही ईसाई धर्म को मानने लग जाय तब तो महमत्स्वरूप कोई अ-ईसाई राष्ट्र न रहने के कारण ईसाई राष्ट्र स्वयं पतित हो जायगा। अतः यह युक्ति अपना ही सङ्घन कर लेती है। पशु उद्भिन्न पर भीवित रहते हैं, मनुष्य पशुओं पर, और सबसे खराब बात तो यह है कि मनुष्य एक दूसरे पर भीवित रहते हैं—बलवान दुर्बल पर। यह ऐसा ही सर्वत्र हो रहा है। और यही माया है। इसका समाधान तुम क्या करते हो? हम प्रतिदिन नयी नयी युक्तियाँ सुनते हैं। कोई कोई कहते हैं कि अन्त में सबका सम्भार होगा। मान लो कि हमने यह बात स्वीकार कर ली तो अब प्रश्न यह है कि धूम की साधना का क्या केवल वैसाविक उपाय ही है? वैसाविक रीति को छोड़कर क्या धूम डाल धूम नहीं हो सकता? वर्तमान मनुष्यों के संबंध सुधी होंगे किन्तु इस समय इस भीषण दुःख-कष्ट का होना क्यों जरूरी है? इसका समाधान नहीं है। यही माया है।

किन्तु, हम बहुधा सुनते हैं कि अधुन विकास के क्रम में क्रमशः धीरे धीरे दूर होते जायेंगे और संसार से बोध के इस प्रकार क्रमशः दूर हो जाने पर अन्त में केवल धूम ही धूम रहे जायगा। यह बात सुनने से तो बड़ी अच्छी लगती है। इस संसार में जिनके पास किसी बात का समाधान नहीं जिन्हें रोब एड़ी चोटी का पसीना एक करना नहीं पड़ता जिन्हें क्रमविकास की चक्की में घिसना नहीं पड़ता उन

— के अन्त में इस प्रकार के सिद्धान्त बढा सकते हैं, और उनके लिए ये सिद्धान्त

सचमुच अत्यन्त हितकर और शान्तिप्रद है। साधारण जनसमूह दुःख-कष्ट भोगे—उससे उनका क्या? वे मर मर भी जायें—उसके लिए वे क्या छटपट करे? ठीक है, पर यह युक्ति आदि से अन्त तक भ्रमपूर्ण है। पहले तो, इन लोगो ने बिना किसी प्रमाण के ही यह धारणा कर ली है कि मसार में अभिव्यक्त शुभ और अशुभ, दोनो विल्कुल निरपेक्ष सत्य है। और दूसरे, इससे भी अधिक दोषयुक्त धारणा तो यह है कि शुभ का परिमाण क्रमशः बढ़ता जा रहा है और अशुभ क्रमशः घटता जा रहा है। अतएव एक समय ऐसा आयेगा, जब अशुभ का अंश विकास द्वारा इस प्रकार घटते घटते अन्त में विल्कुल शून्य हो जायगा और केवल शुभ ही बच रहेगा। ऐसा कहना है तो बड़ा सरल, पर क्या यह प्रमाणित किया जा सकता है कि अशुभ परिमाण में घटता जा रहा है? क्या अशुभ की भी क्रमशः वृद्धि नहीं हो रही है? उदाहरणार्थ, एक जगली मनुष्य को ले लो। वह मन का सस्कार करना नहीं जानता, एक अक्षर तक नहीं पढ़ सकता, लिखना किसे कहते हैं, उसने कभी सुना तक नहीं। यदि उसे कोई गहरी चोट लग जाय, तो वह शीघ्र चगा हो उठता है। पर हम हैं, जो खरोच लगते ही मर जाते हैं। मशीनो से चीजें सुलभ और सस्ती होती जा रही हैं, उनसे उन्नति और विकास के मार्ग की बाधाएँ दूर होती जा रही हैं, पर साथ ही, एक के धनी होने के लिए लाखों लोग पिसे जा रहे हैं—उधर एक के धनी होने के लिए इधर हजारों लोग दरिद्र से दरिद्रतर होते जा रहे हैं, और असंख्य मानव-समूह क्रीतदास बनाया जा रहा है। जगत् की रीति ही ऐसी है। पाशवी प्रकृतिवाले मनुष्य का सुख-भोग इन्द्रियो में आवद्ध रहता है, उसके सुख और दुःख इन्द्रियो में ही रहते हैं। यदि उसे पर्याप्त भोजन न मिले, तो वह दुःखी हो जाता है। यदि उसका शरीर अस्वस्थ हो जाय, तो वह अपने को अभागा समझता है। इन्द्रियो में ही उसके सुख और दुःख दोनो का आरम्भ और अन्त होता है। जैसे जैसे वह उन्नति करता जाता है, जैसे जैसे उसके सुख की सीमा-रेखा विस्तृत होती जाती है, वैसे वैसे उसका दुःख भी, उसी परिमाण में, बढ़ता जाता है। जगल में रहनेवाला मनुष्य ईर्ष्या के वश में होना नहीं जानता, वह नहीं जानता कि कचहरी में जाना, नियमित रूप से कर अदा करना, समाज द्वारा निन्दित होना, पैशाचिक मानव-प्रकृति से उत्पन्न भीषण अत्याचार से अहर्निश शासित होना, जो एक दूसरे के हृदय के गुप्त से गुप्त भावों का अन्वेषण करने में लगा हुआ है, वह नहीं जानता। वह नहीं जानता कि भ्रान्त ज्ञान से सम्पन्न, गर्वीला मानव किस प्रकार पशु से भी सहस्र गुना पैशाचिक स्वभाव-वाला हो जाता है। बस, इसी प्रकार हम ज्यो ज्यो इन्द्रियपरायणता से ऊपर उठते जाते हैं, त्यो त्यो हमारी सुख अनुभव करने की शक्ति बढ़ती जाती है, और

उसके साथ ही कुछ अनुभव करने की शक्ति भी बढ़ती रहती है। नाड़ियाँ और भी सूझ होकर अधिक यत्रया के अनुभव में समर्थ हो जाती हैं। सभी समाजों में हम देखते हैं कि एक साधारण मूर्ख मनुष्य तिरस्कृत होने पर उतना दुःखी नहीं होता पर पिटा जाने पर अबस्य दुःखी हो जाता है। किन्तु सम्य पुण्य एक साधारण सी बात भी सहन नहीं कर सकता उसकी नाड़ियाँ इतनी सूझ हो गयी हैं। उसकी सुख प्रवणता बढ़ जाने के कारण उसका दुःख भी बढ़ गया है। इससे तो शार्ङ्गिकों के क्रमिकासबाद की कोई पुष्टि नहीं होती। हम अपनी सुखी होने की शक्ति को जितना ही बढ़ाते हैं, हमारी दुःख-भोग की शक्ति भी उसी परिमाण में बढ़ जाती है। मेरा तो विनीत मत यह है कि हमारी सुखी होने की शक्ति यदि 'गणितीय क्रम' (arithmetical progression) के नियम से बढ़ती है, तो दुःखी होने की शक्ति 'ज्यामितीय क्रम' (geometrical progression) के नियम से बढ़ेगी। जंपसी मनुष्य समाज के सम्बन्ध में अधिक नहीं जानता। किन्तु हम उत्पत्तिशील लोग जानते हैं कि हम जितने ही उन्नत होये हमारे सुख और दुःख की शीघ्रता और भी अधिक बढ़ती चार्येगी। और यही माना है।

अतएव हम देखते हैं कि माया विश्व की व्याख्या करने के निमित्त कोई सिद्धांत नहीं है। बहु संसार की वस्तु-स्थिति का वर्णन मात्र है—विद्वद् भाव ही हमारे अस्तित्व की मिति है सर्वत्र इन्हीं मयानक विद्वद् भावों में से होकर हम जा रहे हैं। जहाँ धुम है, वहीं अशुभ भी है और जहाँ अशुभ है वहीं अबस्य धुम है। जहाँ पीबन है वहीं मृत्यु छाया की भाँति उसका अनुसरण कर रही है। जो हँस रहा है उसीको रोना पड़ेगा और जो रो रहा है, बहु भी हँसेगा। यह क्रम बदल नहीं सकता। हम भसे ही ऐसे स्वाम की कल्पना करें, जहाँ केवल धुम रहेगा अशुभ नहीं जहाँ हम भेचक हँसेये रोसेये नहीं—पर जब वे सब चारण समान रूप से सर्वत्र विद्यमान हैं तो दग प्रसार होना स्वभावतः अनम्भव है। जहाँ हमें हँसाने की शक्ति विद्यमान है वही फिर रमाने की भी शक्ति निहित है। जहाँ मृग उत्सव चरनेवाली शक्ति विद्यमान है दुःख देनेवाली शक्ति भी वही छिपी हुई है।

अतएव वेदान्त दर्शन आशावादी भी नहीं है और निराशावादी भी नहीं। बहु तो सोना ही चारो वर प्रचार करना है गापी चरनाएँ जिस रूप में दानी है वर उन्हें वस उमी रूप में प्रदान करना है अर्थात् उनसे मन से यह गणार नाम

१ 'गणितीय क्रम' अंश ३।५।३। इत्यादि; यहाँ पर प्रायेक चरवर्ती अंक जाने पूर्ववर्ती अंक से दो दो अधिक है। 'ज्यामितीय क्रम' अंश ३।६।१२।२४ इत्यादि; यहाँ पर प्रायेक चरवर्ती अंक अपने पूर्ववर्ती अंक का दुगुणा है। त

और अशुभ, सुख और दुःख का मिश्रण है, एक को बढ़ाओ, तो दूसरा भी साथ साथ बढ़ेगा। केवल सुख का ससार अथवा केवल दुःख का ससार हो नहीं सकता। इस प्रकार की धारणा ही स्वतः विरोधी है। किन्तु इस प्रकार का मत व्यक्त करके और इस विश्लेषण के द्वारा वेदान्त ने इस महान् रहस्य का भेद किया है कि शुभ और अशुभ, ये दो एकदम विभिन्न, पृथक् सत्ताएँ नहीं हैं। इस ससार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं, जिसे एकदम शुभ या एकदम अशुभ कहा जा सके। एक ही घटना, जो आज शुभजनक मालूम पड़ती है, कल अशुभजनक मालूम पड़ सकती है। एक ही वस्तु, जो एक व्यक्ति को दुःखी करती है, दूसरे को सुखी बना सकती है। जो अग्नि बच्चे को जला देती है, वही भूख से मरते व्यक्ति के लिए स्वादिष्ट खाना भी पका सकती है। जिस स्नायुमण्डल के द्वारा दुःख का संवेदन हमारे अन्दर पहुँचता है, सुख का संवेदन भी उसीके द्वारा भीतर जाता है। अशुभ को दूर करना चाहो, तो साथ ही तुम्हें शुभ को भी दूर करना होगा। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। मृत्यु को दूर करने के लिए जीवन को भी दूर करना पड़ेगा। मृत्युहीन जीवन और दुःखहीन सुख, ये बातें परस्पर विरोधी हैं, इनमें कोई सत्य नहीं है, क्योंकि दोनों एक ही वस्तु की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। कल जो शुभप्रद लगता था, आज वह वैसा नहीं लगता। जब हम बीते जीवन पर नज़र डालते हैं और भिन्न भिन्न समय के अपने आदर्शों की आलोचना करते हैं, तो इस बात की सत्यता हमें तुरन्त दीख पड़ती है। एक समय था, जब शक्तिशाली घोड़ों के जोड़े हाँकना ही मेरा आदर्श था। अब वैसी भावना नहीं होती। बचपन में सोचता था कि यदि मैं अमुक मिठाई बना सकूँ, तो मैं पूर्ण सुखी होऊँगा। कभी सोचता था, स्त्री-पुत्र और धन-धान्य से भरा घर होने से मैं सुखी होऊँगा। अब लड़कपन की ये सब निरर्थक बातें सोचकर हँसी आती है।

वेदान्त कहता है कि एक समय ऐसा अवश्य आयेगा, जब हम पीछे नज़र डालेंगे और उन आदर्शों पर हँसेंगे, जिनके कारण अपने इस क्षुद्र व्यक्तित्व का त्याग करते हममें भय का संचार होता है। सभी अपनी अपनी देह की रक्षा करने में व्यस्त हैं। कोई भी उसे छोड़ना नहीं चाहता। हम सोचते हैं कि इस देह की यथेच्छ समय तक रक्षा कर लेने से हम अत्यन्त सुखी होंगे, पर समय आने पर हम इस बात पर भी हँसेंगे। अतएव, यदि हमारी वर्तमान अवस्था सत् भी न हो और असत् भी नहीं—पर दोनों का सम्मिश्रण हो, दुःख भी न हो और सुख भी नहीं—पर दोनों का सम्मिश्रण हो, अर्थात् हम यदि ऐसे निराशाजनक अन्तर्विरोध की स्थिति में हों, तो फिर वेदान्त तथा अन्यान्य दर्शनशास्त्र और धर्म-मत आदि की क्या आवश्यकता है? और सर्वोपरि, शुभ कर्म आदि करने

का भी मसा क्या प्रयोजन है? यही प्रश्न मन में उठता है, क्योंकि सोम यही पूछेंगे कि यदि सुभ कर्म करने पर भी असुभ रहता ही हो और सुख उत्पन्न करने का प्रयत्न करने पर भी जोर दुःख बना ही रहता ही तो फिर इस प्रकार के प्रयत्न की आवश्यकता ही क्या? तो इसका उत्तर यह है कि पहले तो हमें सुख को कम करने के लिए कर्म करना ही चाहिए, क्योंकि स्वयं सुखी होने का यही एकमात्र उपाय है। हममें से प्रत्येक अपने अपने जीवन में बेर-सबेर इस बात की यथार्थता समझ लेते हैं। तीरथ बुद्धिवाले कुछ शीघ्र समझ पाते हैं और मन्द बुद्धिवाले कुछ देरी से। मन्द बुद्धिवाले कड़ी यातना भोगने के बाद इसे समझ पाते हैं, तो तीरथ बुद्धिवाले थोड़ी ही यातना भोगने के बाद। और दूसरे, यद्यपि हम जानते हैं कि ऐसा समय कभी न आयेगा जब यह जगत् केवल सुख से भरा रहेगा और सुख विस्तृत न रहेगा फिर भी हमें यही कार्य करना होगा। अन्तर्निरोध से बचने के लिए यही एकमात्र उपाय है। ये दोनों शक्तियाँ—सुभ एवं असुभ जगत् को जीमित रखेंगी और अन्त में एक दिन ऐसा आयेगा जब हम स्वयं से जाग जायेंगे और यह सब मिट्टी के बरतरे बगाना बन्द कर देंगे। सचमुच हम विरक्तान्त से बरतरे बगाने में ही जमे हुए हैं। हमें यह शिक्षा लेनी ही होगी और इसके लिए समय भी बहुत कम आयेगा।

जर्मनी में इस भित्ति पर कि—असीम ससीम हो गया है—बर्सेतसास्त्र रचने की चेष्टा की गयी है। ईसापूर्व में जब भी इस प्रकार की चेष्टा चल रही है। पर इन सब शार्शनिकों के मत का विस्लेषण करने पर यही पता जाता है कि असीम अपने को जगत् में व्यक्त करने की चेष्टा कर रहा है और एक समय आयेगा जब वह ऐसा करने में सफल हो जायगा। बहुत ठीक है और हमने 'असीम' 'विकास' 'अभिभ्यक्ति' आदि शार्शनिक शब्दों का भी प्रयोग किया। किन्तु ससीम किस प्रकार असीम को पूर्ण रूप से व्यक्त कर सकता है इस सिद्धान्त की स्पष्टता मूल भित्ति क्या है, यह प्रश्न शार्शनिक मन स्वभावतः ही पूछ सकते हैं। निरपेक्ष और असीम सत्ता सोपाधिक होकर ही इस जगत् में प्रकाशित हो सकती है। जो कुछ इन्द्रिय मन और बुद्धि के माध्यम से आयेगा उसे स्वतः ही सीमाबद्ध होना पड़ेगा अतएव ससीम का असीम होना निवृत्त असम्भव है, ऐसा ही नहीं सकता। दूसरी ओर, बेवान्त बहता है, यह ठीक है कि निरपेक्ष या असीम सत्ता अपने को ससीम रूप में व्यक्त करने की चेष्टा कर रही है, किन्तु एक समय ऐसा आयेगा जब इस प्रयत्न को अक्षम्य जालझट जले पीछे लौटना पड़ेगा। यह पीछे लौटना ही धर्म का यथार्थ आरम्भ है जिसका अर्थ है वैराग्य। आधुनिक मनुष्य से वैराग्य की बात बहना अत्यन्त कठिन है। अमेरिका में मेरे बारे में जोष कहे

थे कि मैं पाँच हजार वर्ष तक मृत और विस्मृत एक देश से आकर वैराग्य का उपदेश दे रहा हूँ। इग्लैण्ड के दार्शनिक भी शायद ऐसा ही कहे। पर यह भी सत्य है कि धर्म का एकमात्र पथ यही है। त्याग दो और विरक्त बनो। ईसा ने क्या कहा है? 'जो मेरे निमित्त अपने जीवन का त्याग करेगा, वही जीवन को प्राप्त करेगा।' बार बार पूर्णता की प्राप्ति के लिए त्याग ही एकमात्र साधन है, इसकी शिक्षा उन्होंने बारबार दी है। ऐसा समय आता है, जब अन्तरात्मा इस लम्बे विषादमय स्वप्न से जाग उठती है, बच्चा खेल-कूद छोड़कर अपनी माता के निकट लौट जाने को अघोर हो उठता है। तब इस उक्ति की यथार्थता सिद्ध होती है—

न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति ।

हविषा कृष्णवर्त्मैव भूय एवाभिवर्धते ॥

—'काम्य वस्तु के उपभोग से कभी वासना की निवृत्ति नहीं होती, वरन् घृताहुति के द्वारा अग्नि के समान वह तो और भी बढ जाती है।'

इस प्रकार, इन्द्रिय-विलास, बौद्धिक आनन्द, मानवात्मा का उपभोग्य सब प्रकार का सुख—सभी मिथ्या है—सभी माया के अधीन है। सभी इस ससार के बन्धन के अन्तर्गत हैं, हम उसका अतिभ्रमण नहीं कर सकते। हम उसके अन्दर भले ही अनन्त काल तक दौड़ते फिरें, पर उसका अन्त नहीं पा सकते, और जब कभी हम थोड़ा सा सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, तभी दुःख का ढेर हमारे सिर पर आ गिरता है। कितनी भयानक अवस्था है यह! जब मैं इस पर विचार करता हूँ, तो मैं निस्सन्दिग्ध रूप से यह अनुभव करता हूँ कि यह मायावाद, यह कथन कि सब कुछ माया है, इसकी एकमात्र ठीक ठीक व्याख्या है। इस ससार में कितना दुःख है! यदि तुम विभिन्न देशों में भ्रमण करो, तो तुम समझ सकोगे कि एक राष्ट्र अपने दोषों को एक उपाय के द्वारा दूर करने की चेष्टा कर रहा है, तो दूसरा राष्ट्र किसी अन्य उपाय द्वारा। एक ही दोष को विभिन्न राष्ट्रों ने विभिन्न उपायों से दूर करने का प्रयत्न किया है, पर कोई भी कृतकार्य न हो सका। यदि किसी स्थान पर दोष कुछ कम हो भी गया, तो किसी दूसरे स्थान पर दोषों का एक ढेर खड़ा हो जाता है। वस, ऐसा ही चलता रहता है। हिन्दुओं ने अपने जातीय जीवन में सतीत्व धर्म को पुष्ट करने के लिए बाल-विवाह के प्रचलन द्वारा अपनी सन्तान को, और धीरे धीरे सारी जाति को, अघोगामी कर दिया है। पर यह बात भी मैं अस्वीकार नहीं कर सकता कि बाल-विवाह ने हिन्दू जाति को सतीत्व-धर्म से विभूषित किया है। तुम क्या चाहते हो? यदि जाति को सतीत्व-धर्म से थोड़ा-बहुत विभूषित करना चाहो, तो इस भयानक बाल-विवाह द्वारा सारे स्त्री-

पुरुषों को पारिरीक दृष्टि से दुर्बल करना पड़ेगा। दूसरी ओर, क्या तुम्हारी स्थिति इन्हीं में कुछ भी अच्छी है? नहीं क्योंकि सतीत्व ही तो जाति की जीवनी शक्ति है। क्या तुमने इतिहास में नहीं पढ़ा है कि देश की मृत्यु का चिह्न असतीत्व के भीतर से होकर आया है—जब यह किसी जाति में प्रवेश कर जाता है तो समझना कि उसका विनाश निकट आ गया है। हम सब दुःखजनक प्रश्नों की भीमंसा कहाँ मिलेंगी? यदि माता-पिता अपनी सम्पत्ति के लिए बर-बहु का निर्वाचन करें, तो यह दोष कम हो सकता है। भारत की बेटियाँ शायद होने की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक होती हैं। किन्तु उनके जीवन में फिर कविता बहुत कम रह जाती है। पर यदि लोग स्वयं पति और पत्नी का निर्वाचन करते हैं तो इससे भी उन्हें कोई अधिक सुख नहीं मिलता। भारतीय नारियाँ अधिक मुसी हैं। स्त्री और स्वामी के बीच कलह अधिकतर नहीं होता। दूसरी ओर, अमेरिका में जहाँ स्वाधीनता की अधिकता है, सुखी परिवार बहुत कम देखने में आते हैं। पुत्र यहाँ यहाँ सभी बचक हैं। इससे क्या सिद्ध होता है? यही कि इन सब आँखों के द्वारा अधिक सुख प्राप्त नहीं हो सका। हम सभी सुख के लिए उत्कट चर्च कर रहे हैं पर एक ओर कुछ प्राप्त होने के पहले ही दूसरी ओर पुत्र आ उपस्थित होता है।

तब क्या हम कोई धूम कर्म न करें? बचक्य करें, और पहले की अपेक्षा अधिक उत्साहित होकर हम ऐसा करें। हम बापों के ज्ञान से इतना होगा कि हमारी बर्मान्धता कट्टरता मष्ट हो जायगी। तब अनेक लोग उत्तेजित होकर 'बोह पैदायिक हिन्दू! नारियों के प्रति कैसा दुर्व्यवहार करता है! —ऐसा कहते हुए हिन्दू की ओर अगुबी नहीं उठायेंगे। तब वे विभिन्न देशों के रीति-रिवाजों का आदर करना सीखेंगे। बर्मान्धता कम होगी कार्य अधिक होगा। बर्मान्ध अधिक कार्य नहीं कर पाता। वह अपनी समिति का तीन चौथाई धर्म ही मष्ट कर देता है। जो भीर, प्रसास्तचित्त 'नाम के आदमी' कहे जाते हैं, वे ही कर्म करते हैं। बोधी बकवास करनेवाला बर्मान्ध व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता। अतएव यह जान लेने से कि बस्तु-स्थिति ऐसी ही है, हमारी चिन्ता अधिक होगी। कुछ और बसुम के बसुम हमें साम्यमात्र से व्युत् न कर सकेंगे और छात्रा के पीछे पीछे दौड़ा न सकेंगे। अतएव यह जानकर कि संसार की गति ही ऐसी है हम दीर्यघाती बनें। जवाहरपस्वरूप हम कह सकते हैं कि सभी मनुष्य शोषण्य हो जायेंगे पशु भी क्रमशः मनुष्यत्व प्राप्त कर इन्हीं अवस्थाओं में से होकर गुजरेंगे और बन्धनस्थितियों की भी मही बसा होगी। पर यह एक बात निश्चित है—यह मही नहीं प्रबल वेग से समुद्र की ओर बह रही है पून पत्ते जादि सब इसके



स्रोत में बहे जा रहे हैं और सम्भवतः विपरीत दिशा में बहने की चेष्टा कर रहे हैं, किन्तु ऐसा समय आयेगा, जब प्रत्येक वस्तु उस अनन्त सागर के वक्षस्थल में समा जायगी। अतएव यह निश्चित है कि जीवन सारे दुःख और क्लेश, आनन्द, हास्य और क्रन्दन के साथ उस अनन्त सागर की ओर प्रबल वेग से प्रवाहित हो रहा है, और यह केवल समय का प्रश्न है, जब तुम, मैं, जीव, उद्भिद् और सामान्य जीवाणु कण तक, जो जहाँ पर है, सब कुछ उसी अनन्त जीवन-समुद्र में—मुक्ति और ईश्वर में आ पहुँचेगा।

मैं एक बार फिर कहता हूँ कि वेदान्त का दृष्टिकोण न तो आशावादी है और न निराशावादी ही। वह ऐसा नहीं कहता कि ससार केवल शुभ ही शुभ है अथवा केवल अशुभ ही अशुभ। वह कहता है कि हमारे शुभ और अशुभ, दोनों का मूल्य बराबर है। ये दोनों इसी प्रकार हिल-मिलकर रहते हैं। ससार ऐसा ही है, यह समझकर तुम धैर्यपूर्वक कर्म करो। पर क्यों? क्यों हम कर्म करें? यदि घटना-चक्र ही इस प्रकार का हो, तो हम क्या करें? हम अज्ञेयवादी क्यों न हो जायें? आजकल के अज्ञेयवादी भी तो कहते हैं कि इस समस्या का कोई समाधान नहीं है, वेदान्त की भाषा में कहेंगे कि इस मायापाश से छुटकारा नहीं है। अतएव सन्तुष्ट रहो और सबका उपभोग करो। पर यहाँ भी एक अत्यन्त असंगत और महान् भ्रम है। और वह यह है। तुम जिस जीवन से चारों ओर से घिरे हुए हो, उस जीवन के विषय में तुम्हारा ज्ञान किस प्रकार का है? क्या 'जीवन' शब्द से तुम केवल पाँच इन्द्रियों में आवृद्ध जीवन को ही लेते हो? यदि ऐसा हो, तो हम पशुओं से कोई अधिक भिन्न नहीं हैं। किन्तु मुझे विश्वास है कि यहाँ बैठे हुए लोगों में से एक भी ऐसा नहीं है, जिसका जीवन सम्पूर्ण रूप से केवल इन्द्रियों में आवृद्ध हो। अतएव हमारे वर्तमान जीवन का अर्थ इन्द्रियों की अपेक्षा और भी कुछ अधिक है। सुख-दुःख अनुभव करानेवाली हमारी मनोवृत्ति और हमारे विचार भी तो हमारे जीवन के अगस्वरूप हैं। और उस महान् आदर्श, उस पूर्णता की ओर अग्रसर होने की कठोर चेष्टा भी क्या हमारे जीवन का उपादान नहीं है? अज्ञेयवादी कहते हैं कि जीवन जैसा है, वस, वैसा ही उसका भोग करो। पर जीवन कहने से सर्वोपरि इस आदर्श के अन्वेषण की, इस पूर्णता की ओर अग्रसर होने की कठोर चेष्टा का बोध होता है। हमें इसीको प्राप्त करना होगा। अतएव हम अज्ञेयवादी नहीं हो सकते और अज्ञेयवादी के ससार को नहीं अपना सकते। अज्ञेयवादी तो जीवन के आदर्शात्मक उपादान को छोड़कर अवशिष्ट अंश को ही सर्वस्व मानते हैं। वे इस आदर्श को ज्ञान का अगोचर समझकर इसका अन्वेषण त्याग देते हैं। वस, इस प्रकृति, इस जगत् को ही माया कहते हैं।

सभी धर्म इसी प्रकृति के बन्धन को तोड़ने की अत्याधिक चेष्टा कर रहे हैं। चाहे देवोपासना द्वारा हो चाहे प्रतीकोपासना द्वारा चाहे धार्मिक विचारों द्वारा हो अपना देव-परिचय प्रेता-परिचय साधु-परिचय ऋषि-परिचय महात्मा-परिचय भक्त-परिचय सन्त-परिचय की सहायता से अनुप्वित हो सभी धर्मों का चाहे वे निश्चित हों चाहे अनिश्चित उद्देश्य एक ही है—सभी सीमाओं के परे जाना। संश्लेष में सभी धर्म स्वाधीनता की ओर अग्रसर होने का क्रोड प्रयत्न कर रहे हैं। जाने या अनजाने मनुष्य समझ गया है कि वह बड़ है। वह जो कुछ होने की इच्छा करता है, सो मही है। जिस क्षण से उसने अपने चारों ओर दृष्टि फेरी उसी क्षण से उसे यह ज्ञान हो गया। उसी क्षण से उसे अनुभव हो गया कि वह बन्दी है। उसने यह भी जाना कि इस सीमा से बकड़ा हुआ कोई मानो उसके अन्दर में विद्यमान है जो देह के भी अमल्प स्थान में उड़ जाना चाहता है। संसार के उन निम्नतम धर्मों में भी जहाँ दुर्भाग्य मनुष्य जातियों के बरों में लक्ष्मणकर फिरनेवाले हवा और सुराग्रिय मृत पितरों या अन्य भूत-प्रेतों की पूजा की जाती है, हम स्वाधीनता का यह भाव पाते हैं। जो छोटी देवताओं की उपासना करते हैं, वे उन देवताओं को अपनी अपेक्षा अधिक स्वाधीन देखते हैं। उनका ऐसा विश्वास रहता है कि द्वार बन्द होने पर भी देवता कोप घर की दीवारों को भेदकर जा सकते हैं। दीवारें उनके मार्ग में बाधा नहीं डाल सकती। स्वाधीनता का यह भाव क्रमशः बढ़ते बढ़ते अन्त में समुच्च ईश्वर के आदर्श में परिणत हो जाता है। इस आदर्श का केन्द्रीय भाव यह है कि ईश्वर माया से अतीत है। मैं मानो अपने मनबन्धु के सामने मारत के उन प्राचीन जातियों को अरुणस्थित धामम में इन्हीं सब प्रश्नों पर विचार करते देख रहा हूँ और सुन रहा हूँ उनके स्वर बड़े बड़े वयोवृद्ध पवित्र महाविद्वान् भी इन प्रश्नों का समाधान करने में असमर्थ हो रहे हैं, पर एक मुझ तक उनके बीच खड़ा हो बोलना करता है—हे विष्वक्नामवासी अमृत के पुत्रगण! मुनो मुझे मार्ग मिल गया है। जो अन्धकार या अज्ञान से अतीत है उसे जान लेने पर अन्धकार के बाहर जाने का मार्ग मिल जाता है।

यह माया हमें चारों ओर से घेरे हुए है और वह अति व्यर्थकर है। फिर भी हमें माया में से होकर ही कार्य करना पड़ता है। जो कहता है, 'संसार को पूर्ण

१. भुक्त्वा विद्ये अनुत्तमं पुत्रा वा वै वासति विद्यानि तस्य ।

विद्याहर्षितं पुत्रं ज्ञान्तम् आदित्यवर्षं तमसः परस्तम् ।

तमेव विदित्वाऽस्तिमृत्युमेति वाच्यः वाचा विद्यतेऽज्जाय ॥

शुभमय हो जाने दो, तब मैं कार्य करूँगा और आनन्द भोगूँगा”, तो उसकी बात उसी व्यक्ति की तरह है, जो गगातट पर बैठकर कहता है कि जब इसका सारा पानी समुद्र में पहुँच जायगा, तब मैं इसके पार जाऊँगा। दोनों बातें असम्भव हैं। रास्ता माया के साथ नहीं है, वह तो माया के विरुद्ध है—यह बात भी हमें जान लेनी होगी। हम प्रकृति के सहायक होकर नहीं जन्मे हैं, वरन् हम तो प्रकृति के विरोधी होकर जन्मे हैं। हम बाँधनेवाले होकर भी स्वयं बंधे जा रहे हैं। यह मकान कहाँ से आया? प्रकृति ने तो दिया नहीं। प्रकृति कहती है, ‘जाओ, जंगल में जाकर बसो।’ मनुष्य कहता है, ‘नहीं, मैं मकान बनाऊँगा और प्रकृति के साथ युद्ध करूँगा।’ और वह ऐसा कर भी रहा है। मानव जाति का इतिहास प्राकृतिक नियमों के साथ उसके युद्ध का इतिहास है और अन्त में मनुष्य ही प्रकृति पर विजय प्राप्त करता है। अन्तर्जगत् में आकर देखो, वहाँ भी यही युद्ध चल रहा है—पशु-मानव और आध्यात्मिक मानव का, प्रकाश और अन्धकार का यह सग्राम निरन्तर जारी है। मानव यहाँ भी जीत रहा है। मुक्ति की प्राप्ति के लिए प्रकृति के बन्धन को चीरकर मनुष्य अपने गन्तव्य मार्ग को प्राप्त कर लेता है।

हमने अभी तक देखा कि वेदान्ती दार्शनिकों ने इस माया के परे ऐसी किसी वस्तु को जान लिया है, जो माया के अधीन नहीं है, और यदि हम उसके पास पहुँच सकें, तो हम भी माया से बंध नहीं जायेंगे। किसी न किसी रूप में यह भाव सभी धर्मों की सामान्य सम्पत्ति है। किन्तु वेदान्त के मत में यह धर्म का केवल प्रारम्भ है, अन्त नहीं। जो विश्व की सृष्टि तथा पालन करनेवाले हैं, जो मायाधिष्ठित हैं, जिन्हें माया या प्रकृति का कर्ता कहा जाता है, उन सगण ईश्वर का ज्ञान ही वेदान्त का अन्त नहीं है, केवल आदि है। यह ज्ञान क्रमशः बढ़ता जाता है और अन्त में वेदान्ती देखता है कि जिसे वह बाहर खड़ा हुआ समझता था, वह उसके अन्दर ही है और वह स्वयं वस्तुतः वही है। जिसने अपने को अध्यास के कारण बद्ध समझ रखा था, वह वास्तव में वही मुक्तस्वरूप है।

## माया और ईश्वर धारणा का क्रमविकास

(२० अक्टूबर, १८९६ को लन्दन में दिया हुआ व्याख्यान)

हमने देखा कि अद्वैत वेदान्त का एक व्यापारिक सिद्धान्त मायावाद बीज रूप से संहिताओं में भी मिळता है और जिन विचारों का विकास उपनिषदों में हुआ है, वे किसी न किसी रूप में संहिताओं में विद्यमान हैं। तुममें से बहुत से लोग अब माया की धारणा से परिचित हो गये होंगे और यह भी जान गये होंगे कि प्रायः लोग भ्रामिकत्व माया को 'भ्रम' कहकर उसकी व्याख्या करते हैं। अतएव जब जगत् को माया कहते हैं, तब उसे भी भ्रम ही कहकर उसकी व्याख्या करनी पड़ती है। किन्तु माया को 'भ्रम' के अर्थ में लेना ठीक नहीं। माया कोई विशेष सिद्धान्त नहीं है, वह तो यह संसार जैसा है, केवल उसीका तत्त्वात्मक रूप है। इस भाषा को समझने के लिए हमें संहिताओं तक जाना होगा और उसके मूल बीज का अर्थ समझना होगा।

हम यह देख चुके हैं कि कामों में देवताओं का ज्ञान किस प्रकार आया। हमें समझना होगा कि ये देवता पहले केवल सक्तिधामी सत्ताएँ मात्र थे। तुम लोगों में से अनेक ग्रीक सिद्ध, पारसी जबदा अन्य जातियों के प्राचीन शास्त्रों में यह पढ़कर अचम्बित हो जाते हों कि देवता लोग कभी कभी ऐसा काम करते थे जो हमारी दृष्टि में अत्यन्त श्रेष्ठ है। पर हम यह भूल जाते हैं कि हम लोग अभीसारी सत्ताओं के हैं और देवताएँ सहास्रों वर्ष पहले के बीज थे और हम यह भी भूल जाते हैं कि इन सब देवताओं के उपासक लोग उनके चरित्र में कुछ भी असंगत बात नहीं देख पाते थे और वे जिस ढंग से अपने उन देवताओं का वर्णन करते थे उससे उन्हें कुछ भी भय नहीं होता था क्योंकि वे सब देवता सन्दीके अनुसूच्य थे। हम लोगों को आजीवन यह बात सीखनी होगी कि प्रत्येक व्यक्ति की परब उसके अपने आदर्शों के अनुसार करनी चाहिए, दूसरों के आदर्शों के अनुसार नहीं। ऐसा न करके हम दूसरों को अपने आदर्शों की दृष्टि से देखते हैं। यह ठीक नहीं। अपने आसपास रहनेवाले लोगों के साथ व्यवहार करते समय हम सब यही भूल करते हैं, और मेरे मतानुसार, दूसरों के साथ हमारी जो कुछ भी अनबन हो जाती है, वह अधिकतर इसी एक कारण से होती है कि

हम दूसरो के देवता को अपने देवता के द्वारा, दूसरो के आदर्शों को अपने आदर्शों के द्वारा और दूसरो के उद्देश्य को अपने उद्देश्य के द्वारा परखने की चेष्टा करते हैं। कुछ विशेष परिस्थितियों से वाध्य हो, मान लो, मैंने कोई एक विशेष कार्य किया, और जब मैं देखता हूँ कि एक दूसरा व्यक्ति वही कार्य कर रहा है, तो मैं सोच लेता हूँ कि उसका भी वही उद्देश्य है, मेरे मन में यह बात एक बार भी नहीं उठती कि यद्यपि फल एक हो सकता है, तथापि उस एक फल के उत्पन्न करनेवाले भिन्न भिन्न सहस्रो कारण हो सकते हैं। मैं जिस हेतु से उस कार्य को करने में प्रवृत्त होता हूँ, अन्य सब लोग उन्ही कार्य को अन्य हेतुओं से कर सकते हैं। अतएव इन सभी प्राचीन धर्मों पर विचार करते समय हम सामान्यतया जिस तरह दूसरो के सम्बन्ध में विचार करते हैं, वैसा न करके अपने को प्राचीन काल के लोगों के जीवन और विचार की स्थिति में रखकर विचार करना चाहिए।

प्राचीन व्यवस्थान (Old Testament) में क्रूर और निष्ठुर जिहोवा के वर्णन से बहुत से लोग भयभीत हो उठते हैं, पर क्यों? लोगों को यह कल्पना करने का क्या अविकार है कि प्राचीन यहूदियों का जिहोवा आधुनिक रूढ़िगत कल्पना के ईश्वर के समान होगा? और हमें यह भी न भूलना चाहिए कि हमारे वाद जो लोग आयेंगे, वे उसी तरह हमारे धर्म और ईश्वर की धारणा पर हँसेंगे, जिस तरह हम प्राचीन लोगों के धर्म एव ईश्वर की धारणा पर हँसते हैं। यह सब होने पर भी, इन सब विभिन्न ईश्वर सम्बन्धी धारणाओं का संयोग करनेवाला एक स्वर्ण सूत्र है, और वेदान्त का उद्देश्य है—इस सूत्र की खोज करना। भगवान् कृष्ण ने कहा है—“भिन्न भिन्न मणियाँ जिस प्रकार एक सूत्र में पिरोयी हुई रहती हैं, उसी प्रकार इन सब विभिन्न भावों के भीतर भी एक सूत्र विद्यमान है।” और आजकल की धारणाओं की दृष्टि में वे सब प्राचीन धारणाएँ कितनी ही बीभत्स, मयानक अथवा घृणित क्यों न मालूम पड़ें, वेदान्त का कर्तव्य उन सभी प्राचीन धारणाओं एव सभी वर्तमान धारणाओं के भीतर इस संयोग-सूत्र की दृढ़ प्रतिष्ठा करनी है। प्राचीन काल की भूमिका में वे धारणाएँ सामंजस्यपूर्ण मालूम पड़ती हैं और ऐसा लगता है कि हमारी वर्तमान धारणाओं से वे शायद अधिक बीभत्स नहीं थी। उनकी बीभत्सता हमारे सामने तभी प्रकट होती है, जब हम उनको उनकी भूमिका से अलग करके उन पर अपनी परिस्थितियाँ लागू करते हैं। जिस प्रकार प्राचीन यहूदी आज के तीक्ष्ण-बुद्धि यहूदी में और प्राचीन आर्य आज के बौद्धिक हिन्दू में परिणत हो गया है, उसी प्रकार जिहोवा की और अन्य देवताओं की भी क्रमोन्नति हुई है।

हम इतनी ही भूल करते हैं कि हम उपासक की क्रमोन्नति तो स्वीकार

करते हैं, परन्तु उपास्य की नहीं। हम उपासकों को जिस प्रकार उन्नति का भय देते हैं, उस प्रकार उपास्य को नहीं देना चाहते। तात्पर्य यह कि हम-तुम जिस प्रकार कुछ विशिष्ट भावों के चोतक होने के माते उन भावों की उन्नति के साथ साथ उन्नत हुए हैं, उसी प्रकार बेबताग्य भी विशेष विशेष भावों के चोतक होने के कारण उन भावों की उन्नति के साथ उन्नत हुए हैं। तुम प्रायः यह आश्चर्य करो कि ईश्वर की भी कहीं उन्नति होती है? तो इस पर ऐसा भी कहा जा सकता है कि क्या मनुष्य की भी कभी उन्नति होती है? भाये चलकर हम देखते कि इस मनुष्य के पीछे जो यथार्थ पुंस्य है वह अचरु अपरिणामी बुद्ध और नित्य मुक्त है। जिस प्रकार यह मनुष्य उस यथार्थ मनुष्य की छाया साथ है उसी प्रकार हमारी ईश्वर सम्बन्धी चारणाएँ केवल हमारे मन की सृष्टि हैं—वे उस प्रकृत ईश्वर की आधिक अभिव्यक्ति आभास मात्र हैं। इन समस्त आधिक अभिव्यक्तियों के पीछे प्रकृत ईश्वर है जो नित्य सृष्ट अपरिणामी और अजर है। किन्तु ये आधिक अभिव्यक्तियाँ सर्वथा ही परिणामहीन हैं—ये अपने अस्तित्वस्य सत्य की अभावित्य मात्र हैं वह सत्य जब अधिक परिमाण में अभिव्यक्त होता है, तब उसे उन्नति और जब उसका अधिकाल बना हुआ या अभावित्य रहता है तब उसे अवनति कहते हैं। इस प्रकार, जैसे जैसे हमारी उन्नति होती है, वैसे ही वैसे बेबताग्यों की भी होती है। सीधे-सादे चर्यों में जैसे जैसे हमारी उन्नति होती है जैसे जैसे हमारा स्वरूप प्रकाशित होता है वैसे ही वैसे बेबताग्य भी अपना स्वरूप प्रकाशित करते जाते हैं।

अब हम मायावाद को समझ सकेंगे। संसार के सभी जर्मों ने इस प्रश्न को उठाया है—संसार में यह अज्ञान-जन्म क्यों है? संसार में यह अज्ञान क्यों है? आदिम धर्मशास्त्र के आदिमार्ग के समय हम इस प्रश्न को उठाने नहीं देखते इसका कारण यह है कि आदिम मनुष्य को जगत् अज्ञान-जन्मपूर्वक नहीं लगा। उसके ज्ञान और कोई अज्ञान-जन्म नहीं था किसी प्रकार का मन-विरोध नहीं था अज्ञान-जन्म की कोई प्रतिउत्थिता नहीं थी। उसके हृदय में केवल दो बातों का प्रकाश हो रहा था। एक जगत् की—यह जगत् और दूसरी जगत् को करने का नियम जगत् की। आदिम मानव भावनाओं का ज्ञान था। उसके मन में जो ज्ञान था वही जगत् के कर जानना था। वह इन भावनाओं के सम्बन्ध में विश्वास करने अथवा उनका प्रकाश करने का शिष्ट प्रमाण नहीं करता था। इन सब भावनाओं के सम्बन्ध में भी वही ज्ञान है। वे लोग भी अपनी भावनाओं के अर्थों में। इन भावनाओं के जगत् अज्ञान-जन्म को विश्व-विषय कर दिया। विशेषता विशेषता ही अज्ञान-जन्म या न। किसी-किसी रूपों यह कोई भी नहीं जानना जानना

भी नहीं चाहता। इसका कारण यह है कि उस समय लोगो में अनुसन्धान की प्रवृत्ति ही नहीं जगी थी, इसलिए वे जो कुछ भी करते, वही ठीक था। उस समय भले-बुरे की कोई धारणा नहीं थी। हम जिन्हें बुरा कहते हैं, ऐसे बहुत से कार्य देवता लोग करते थे, हम वेदों में देखते हैं कि इन्द्र और अन्यान्य देवताओं ने अनेक बुरे कार्य किये हैं, पर इन्द्र के उपासकों की दृष्टि में पाप या बुरा काम कुछ भी न था, अतः वे इस सम्बन्ध में कोई प्रश्न नहीं करते थे।

नैतिक भाव की उत्पत्ति के साथ-साथ मनुष्य के मन में एक सग्राम प्रारम्भ हुआ, मनुष्य में ज्ञानों एक नयी इन्द्रिय का आविर्भाव हुआ। भिन्न भिन्न भाषाओं और भिन्न भिन्न जातियों ने इसे भिन्न भिन्न नाम दिये हैं, कोई कहता है—यह ईश्वर की वाणी है, और कोई यह कि वह पहले की शिक्षा का फल है। जो भी हो, उसने प्रवृत्तियों को दमन करनेवाली शक्ति के रूप में काम किया। हमारे मन की एक प्रवृत्ति कहती है, यह काम करो, और दूसरी कहती है, मत करो। हमारे भीतर एक प्रकार की प्रवृत्तियाँ हैं, जो इन्द्रियों के द्वारा बाहर जाने की चेष्टा करती रहती हैं। और उनके पीछे, चाहे कितना ही क्षीण क्यों न हो, एक स्वर कहता रहता है—बाहर मत जाना। इन दो बातों के संस्कृत नाम हैं—प्रवृत्ति और निवृत्ति। प्रवृत्ति ही हमारे समस्त कर्मों का मूल है। निवृत्ति से धर्म का आरम्भ है। धर्म आरम्भ होता है—इस 'मत करना' से, आध्यात्मिकता भी इस 'मत करना' से ही आरम्भ होती है। जहाँ यह 'मत करना' नहीं है, वहाँ जानना कि धर्म का आरम्भ ही नहीं हुआ। इस 'मत करना' से ही निवृत्ति का भाव आ गया, और परस्पर युद्ध में रत देवतागण आराधित होने के दावजूद भी मनुष्य की धारणाएँ विकसित होने लगीं।

अब मानवता के हृदय में कुछ प्रेम जाग्रत हुआ। अवश्य उसकी मात्रा बहुत थोड़ी थी और आज भी वह मात्रा कोई अधिक नहीं है। पहले-पहल यह प्रेम कबीले तक सीमित रहा। ये सब देवता केवल अपने कबीले से प्रेम करते थे। प्रत्येक देवता एक एक कबीले का देवता था और उस विशिष्ट कबीले का रक्षक मात्र था। और जिस प्रकार भिन्न भिन्न देशों के विभिन्न वंशीय लोग अपने को उस एक पुरुषविशेष का वंशज कहते हैं, जो उस वंश का प्रतिष्ठाता होता है, उसी प्रकार कभी कभी किसी कबीले के लोग अपने को अपने देवता का वंशधर समझते थे। प्राचीन काल में कुछ ऐसी जातियाँ थी, और आज भी हैं, जो अपने को चन्द्र या सूर्य का वंशधर कहती थीं। संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में तुमने बड़े बड़े सूर्यवंशी वीर सम्राटों की कथाएँ पढ़ी होंगी। ये लोग पहले चन्द्र या सूर्य के उपासक थे, और बाद में ये अपने को चन्द्र या सूर्य का वंशज कहने लगे।

अतः जब यह कबीलीय भाव जाने गया तब किंचित् प्रेम जाया एक दूसरे के प्रति बोझा कर्तव्य-भाव आया कुछ सामाजिक मूल्यों की उत्पत्ति हुई और इसके साथ ही साथ यह भावना भी जाने लगी कि एक दूसरे का श्रेय सहन मा समा किये बिना हम कैसे एक साथ रह सकेंगे ? एक न एक समय अपनी प्रवृत्तियों का संयम किये बिना मनुष्य समा किस प्रकार दूसरों के साथ यहाँ तक कि एक भी व्यक्ति के साथ रह सकता है ? यह असम्भव है। अब इसी प्रकार संयम की भावना आयी। इस संयम की भावना में ही सम्पूर्ण समाज गुँपा हुआ है, और हम जानते हैं कि जो तर मा नापी ने इस सहिष्णुता या क्षमास्फी महान् पाठ को नहीं पढ़ा है वे अत्यन्त कष्ट में जीवन बिताते हैं।

अतएव जब इस प्रकार धर्म का भाव आया तब मनुष्य के मन में एक अपेक्षाकृत उच्चतर एवं अधिक नीतिसंमत भाव उदित हुआ। तब वे अपने-उन्हीं प्राचीन देवताओं में—ब्रह्म, इन्द्र, अग्नि, सूर्य, वायु, शिव, गौ-माँसाहारी देवताओं में जिनको उनके मांस की गन्ध और तीव्र सुगंध की माहुरि से ही परम मान्य मिळता था—कुछ असंपत्ति देखने लगे। बुध्दान्तस्वरूप वेदों के वर्णन आता है कि कभी कभी इन्द्र इतना मद्यपान कर लेता था कि वह बेहोश होकर गिर पड़ता और अर्ध-अर्ध बकने लगता था। इस प्रकार के देवता अब अटल हो गये। तब सभी के उद्देश्यों की सोच आरम्भ हो गयी और देवताओं के कार्यों के उद्देश्य भी पूछे जाने लगे। अमुक देवता के अमुक कार्य का क्या उद्देश्य है ? कोई उद्देश्य नहीं मिळा। अतएव लोगों ने उन सब देवताओं का त्याग कर दिया अथवा दूसरे शब्दों में वे ठिठ देवताओं के विषय में और भी उच्च चारणाएँ बनाने लगे। उन्होंने देवताओं के उन सब गुणों तथा कार्यों को जो अच्छे थे वित्ते वे समस्त सकते थे एकत्र किया और जिन कार्यों को उन्होंने अच्छा नहीं समझा अथवा समझा ही नहीं उन्हें अलग कर दिया। इन अच्छे अच्छे भावों की समष्टि को उन्होंने एक नाम देव-देव या देवताओं का देवता दे दिया। तब उनके उपास्य देवता केवल शक्ति के परिचायक मात्र नहीं रहे शक्ति से अधिक और भी कुछ उनके लिए आवश्यक हो गया। अब वे नीतिपरमय देवता हो गये वे मनुष्यों से प्रेम करने लगे मनुष्यों का हित करने लगे। पर देवता सम्बन्धी चारणा ठिठ भी असुन्न रही। उन लोगों ने देवता की नीतिपरमयता तथा शक्ति को केवल बढ़ा भर दिया। अब वे देवता विश्व में सर्वश्रेष्ठ नीतिपरमयता तथा एक प्रकार से सर्वशक्तिमान भी हो गये।

किन्तु यह बोझ-नाँठ कब तक बर सक्ती थी ? जैसे जैसे व्याख्याएँ सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती गयी जैसे जैसे यह कठिनाई मानो और भी कठिन होती गयी। देवता अथवा ईश्वर के गुण यदि 'अधितीय क्रम' (arithmetical



progression) के नियम से बढ़ने लगे, तो सन्देह और कठिनाइयाँ 'ज्यामितीय क्रम' (geometrical progression) के नियम से बढ़ने लगी। निष्ठुर जिहोवा के साथ जगत् का सामंजस्य स्थापित करने में जो कठिनाई होती थी, उससे भी अधिक कठिनाई ईश्वर मन्वन्धी नवीन धारणा के साथ होने लगी। और यह कठिनाई आज तक बनी रही। सर्वशक्तिमान और प्रेममय ईश्वर के राज्य में ऐसी पैशाचिक घटनाएँ क्यों घटती हैं? सुख की अपेक्षा दुःख इतना अधिक क्यों है? साधु-भाव जितना है, असाधु-भाव उससे इतना अधिक क्यों है? ससार में कुछ भी अशुभ नहीं है, ऐसा समझकर भले ही हम आँखें बन्द करके बैठे रहे, पर उससे ससार की बीभत्सता में कुछ भी अन्तर नहीं आता। बहुत हुआ, तो यह समार बस टैण्डालस के नरक' के समान है, उससे यह किसी अश में अच्छा नहीं। यहाँ हम हैं प्रबल प्रवृत्तियाँ लिये और इन्द्रियो को चरितार्थ करने की प्रबलतर वासनाएँ लिये, पर उनकी पूर्ति का कोई उपाय नहीं। अपनी इच्छा के विरुद्ध हममें एक तरफ उठती है, जो हमें आगे बढ़ने को बाध्य करती है, परन्तु जैसे ही हम एक पाँव आगे बढ़ाते हैं, वैसे ही एक धक्का लगता है। हम सभी टैण्डालस की भाँति इस जगत् में जीवित रहने और मरने को मानो विधि-विधान से अभिशप्त हैं। पंचेन्द्रिय द्वारा सीमाबद्ध जगत् से अतीत के आदर्श हमारे मस्तिष्क में आते हैं, पर बहुत प्रयत्न करने पर भी हम देखते हैं कि उन्हें हम कभी भी कार्य-रूप में परिणत नहीं कर सकते। प्रत्युत हम अपने चारों ओर की परिस्थिति के चक्र में पिसकर चूर चूर हो परमाणुओं में परिणत हो जाते हैं। और दूसरी ओर, यदि मैं आदर्श-प्राप्ति की चेष्टा का परित्याग कर केवल सासारिक भाव को लेकर रहना चाहूँ, तो भी मुझे पशु-जीवन विताना पड़ता है और मैं अपने को पतित और गहित कर लेता हूँ। अतएव किसी भी ओर सुख नहीं। जो लोग इस ससार में जिस अवस्था में उत्पन्न हुए हैं, उसी अवस्था में रहना चाहते हैं, तो उनके भाग्य में भी दुःख है। और जो लोग सत्य तथा उच्चतर आदर्श के लिए—इस पाशविक जीवन की अपेक्षा कुछ उन्नत जीवन के लिए—प्राण देने को आगे बढ़ते हैं, उनके लिए तो और भी सहस्र

१ प्रीक लोगों की एक पौराणिक कथा है कि टैण्डालस नामक राजा पाताल के एक तालाब में गिर पड़ा था। तालाब का पानी उसके ओठों तक आता था, परन्तु जैसे ही वह अपनी प्यास बुझाने का प्रयत्न करता, वैसे ही पानी कम हो जाता था। उसके सिर के ऊपर नाना प्रकार के फल लटकते थे, और जैसे ही वह उन्हें पकड़ने जाता कि वे गायब हो जाते थे। १०

पुत्रा पुत्र है। यही वस्तु-स्थिति है पर इसकी कोई व्याख्या नहीं। और व्याख्या ही भी नहीं सकती। पर वेदान्त इससे बाहर निकलने का मार्ग बतलाता है। ये सब भावण वेते समय सायब मुझे कुछ ऐसी भी बातें कहनी पड़ें जिनसे तुम भ्रमभीत हो जाओ पर जो कुछ मैं कह रहा हूँ उसे यदि तुम याद रखो सभी माँति आत्मसात कर जो और उसके सम्बन्ध में दिन-रात चिन्तन करो तो वह तुम्हारे अन्दर बैठ जायगी तुम्हारी उन्नति करेगी और सत्य को समझने तथा सत्य में प्रतिष्ठित होने में तुमको समर्थ करेगी।

जब यह एक तथ्यात्मक वर्णन है कि यह संसार एक दृष्टासप्त का नरक है और हम इस जगत् के बारे में कुछ भी नहीं जानते पर साथ ही हम यह भी तो नहीं कह सकते कि हम नहीं जानते। जब मैं सोचता हूँ कि मैं इस जगत् सृष्टिका के बारे में नहीं जानता तो मैं यह नहीं कह सकता कि इसका अस्तित्व है। वह मेरे अस्तित्व का पूर्ण भ्रम हो सकता है। हो सकता है, मैं केवल स्वप्न देख रहा हूँ। मैं स्वप्न देख रहा हूँ कि मैं तुमसे बातें कर रहा हूँ और तुम मेरी बातें सुन रहे हो। कोई भी यह सिद्ध नहीं कर सकता कि यह स्वप्न नहीं है। मेरा अस्तित्व भी तो एक स्वप्न हो सकता है और सचमुच अपना अस्तित्व देना किसने है? वह तो हमने केवल मान लिया है। सभी विषयों के सम्बन्ध में यही बात है। अपने शरीर को भी तो हम मान ही लेते हैं। फिर यह भी नहीं कह सकते कि हम नहीं जानते। ज्ञान और अज्ञान के बीच की यह अवस्था वह रहस्यमय पहेली यह सत्य और मिथ्या का मिश्रण—कहाँ जाकर इनका मिश्रण हुआ है कौन जाने? इस स्वप्न में विचरण कर रहे हैं—अर्थ निरहित अर्थ अप्रयत्—जीवन भर एक पहेली में जाबूड हममें से प्रत्येक की बस यही दशा है। सारे इन्द्रिय-ज्ञान की यही दशा है। सारे वर्णनों की सारे विज्ञान की सब प्रकार के मानवीय ज्ञान की—जिनको लेकर हमें इतना अहंकार है—सबकी बात यही बसा है—यही परिणाम है। बस यही संसार है।

बाहे परार्थ नहीं बाहे मन बाहे आत्मा बाहे किसी भी नाम से क्यों न पुकारो बात एक ही है—हम यह नहीं कह सकते कि ये सब हैं और यह भी नहीं कह सकते कि ये सब नहीं हैं। हम इन सबको एक भी नहीं कह सकते और अनेक भी नहीं। यह प्रकाश और अल्पकार का खेल—यह नागाविम दुर्बलता यह अविदित अज्ञान और अविभाज्य मिश्रण जिसमें सारी जगत्वाएँ कमी सत्य मानम होती हैं सभी मिथ्या—सदा से बक रहा है। इनके कारण कभी लगता है कि हम जायत हैं कभी लगता है कि सोये हुए हैं। बस यही माया है, यही वस्तु-स्थिति है। इसी माया में हमारा जन्म हुआ है, इसी में हम जीवित हैं

इसीमें सोच-विचार करते हैं, इसीमें स्वप्न देखते हैं। इसीमें हम दार्शनिक हैं, इसीमें साधु हैं, यही नहीं, हम इस माया में ही कभी दानव और कभी देवता हो जाते हैं। विचार के रथ पर चढ़कर चाहे जितनी दूर जाओ, अपनी धारणा को ऊँचे से ऊँचा बनाओ, उसे अनन्त या जो इच्छा हो, नाम दो, पर तो भी यह सब माया के ही भीतर है। इसके विपरीत हो ही नहीं सकता, और मनुष्य का जो कुछ ज्ञान है, वह बस, इस माया का ही साधारण भाव है। इस माया के दिखनेवाले रूप का ज्ञान ही सारे मानवीय ज्ञान की सीमा है। यह माया नाम-रूप का कार्य है। जिस किसी वस्तु का रूप है, जो भी कुछ तुम्हारे मन में किसी प्रकार के भाव का उद्दीपन कर देता है, वह सब माया के ही अन्तर्गत है। जो कुछ देश-काल-निमित्त के नियम के अधीन है, वही माया के अन्तर्गत है।

अब हम पुनः यह विचार करेंगे कि उस प्रारम्भिक ईश्वर-धारणा का क्या हुआ। यह धारणा कि एक ईश्वर अनन्त काल से हमें प्यार कर रहा है, अनन्त, सर्वशक्तिमान और नि स्वार्थ पुरुष है और इस विश्व का शासन कर रहा है, स्पष्ट ही हमें सतुष्ट नहीं कर सकती। दार्शनिक साहस के साथ इस सगुण ईश्वर-धारणा के विरुद्ध खड़ा होता है। वह पूछता है—तुम्हारा न्यायशील, दयालु ईश्वर कहाँ है? क्या वह अपनी मनुष्य और पशुरूप लाखों सन्तानों का विनाश नहीं देखता? कारण, ऐसा कौन है, जो एक क्षण भी दूसरों की हिंसा किये बिना जीवन धारण कर सकता है? क्या तुम सहस्रों जीवन का सहार किये बिना एक साँस भी ले सकते हो? लाखों जीव मर रहे हैं, इसीसे तुम जीवित हो। तुम्हारे जीवन का प्रत्येक क्षण, तुम्हारा प्रत्येक निश्वास सहस्रों जीवों के लिए मृत्यु है, तुम्हारी प्रत्येक हलचल लाखों का काल है। तुम्हारा प्रत्येक ग्राम लाखों की मौत है। वे क्यों मरें? इस सम्बन्ध में एक प्राचीन कुतर्क है—'वे तो अति क्षुद्र जीव हैं।' पर यह तो एक सन्दिग्ध विषय है। कौन कह सकता है कि चीटी मनुष्य से श्रेष्ठ है, अथवा मनुष्य चीटी से? कौन सिद्ध कर सकता है कि यह ठीक है अथवा वह? यदि मान भी लिया जाय कि वे अति क्षुद्र जीव हैं, तो भी वे मरें क्यों? यदि वे क्षुद्र हैं, तो उनको बचे रहने का तो और भी अधिकार है। वे क्यों न जीवित रहे? उनका जीवन इन्द्रियों में ही अधिक आवद्ध है, अतः वे हमारी-तुम्हारी अपेक्षा सहस्र गुना अधिक दुःख-सुख का बोध करते हैं। कुत्ता या भेड़िया जिस चाव के साथ भोजन करता है, उस तरह कौन मनुष्य कर सकता है? इसका कारण यह है कि हमारी समस्त कार्य-प्रवृत्ति इन्द्रियों में नहीं है—वह बुद्धि में है, आत्मा में है। पर कुत्ते के प्राण इन्द्रियों में ही पड़े रहते हैं, वह

## विश्वप्रेम और उससे आत्मसमर्पण का उदय

समष्टि से प्रेम किये बिना हम व्यक्ति में कर्म प्रेम कर सकते हैं? ईश्वर ही वह समष्टि है, सारे विश्व का यदि एक अलग-थलग रूप में विस्तृत किया जाय तो वही ईश्वर है और उस पुरुष पुरुषक रूप में देखने पर वही वह वृक्षमान संसार है—व्यक्ति है। समष्टि वह इकार्ड है जिसमें सारा छोटी छोटी इकार्डों का योग है। इस समष्टि के माध्यम से ही सारे विश्व को प्रेम करना सम्भव है। भारतीय दार्शनिक व्यक्ति पर ही नहीं रुक जाने के ता व्यक्ति पर एक सारगर्भित दृष्टि आसकर तुलना एक ऐसे व्यापक या समष्टि भाव की शोख में रूप प्राप्त है जिसमें सब व्यक्तियों या विशयों का अन्तर्भाव हो। इस समष्टि की छात्र ही भारतीय दार्शनिक और कर्म का उदय है। ज्ञानी पुरुष ऐसी एक समष्टि की ऐसे एक निरपेक्ष और व्यापक तत्त्व की कामना करता है जिसे जानने से वह सब कुछ जान सके। अन्त उस एक सर्वव्यापी पुरुष की साक्षात् उपलब्धि कर लेना चाहता है जिससे प्रेम करने में वह सारे विश्व से प्रेम कर सके। योही उस मूलमूल व्यक्ति को अपने अविचार में लाना चाहता है, जिसके नियमन से वह इस सम्पूर्ण विश्व का नियमन कर सके। यदि हम भारतीय विचार-धारा के इतिहास का अध्ययन करें, तो देखेंगे कि भारतीय धर्म सदा से हर विषय में—भौतिक विज्ञान मनोविज्ञान भक्तितत्त्व दर्शन आदि सभी में—एक समष्टि या व्यापक तत्त्व की इस अपूर्व शोख में लगा रहता है। अतएव अन्त इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि तुम केवल एक के बाद दूसरे व्यक्ति से प्रेम करते चले जाओ तो भी अन्त काल में भी संसार को एक समष्टि के रूप में प्यार करने में समर्थ न हो सकोगे। पर अन्त में जब वह मूल तत्त्व प्राप्त हो जाता है कि समस्त प्रेम की समष्टि ईश्वर है संसार के मुक्त बद्ध या मुमुक्षु सारे जीवात्माओं की आदर्श-समष्टि ही ईश्वर है, तभी यह विश्वप्रेम सम्भव होता है। ईश्वर ही समष्टि है और यह परिकल्पित अभाव उत्तीका परिच्छिन्न भाव है—उत्तीकी अभिव्यक्ति है। यदि हम इस समष्टि को प्यार करें, तो इससे सभी को प्यार करना हो जाता है। तब अन्त को प्यार करना और उसकी सहाई करना सहज हो जाता है। पर पहले मनःशुद्धि के द्वारा हमें यह शक्ति प्राप्त कर लेनी होगी अन्यथा संसार की सहाई करना कोई हँसी-बोह नहीं है। अन्त कहता है, 'सब कुछ उत्तीका है, वह मेरा प्रियतम है मैं उससे प्रेम करता हूँ। इस प्रकार अन्त को सब

कुछ पवित्र प्रतीत होने लगता है, क्योंकि वह सब आखिर उसीका तो है। सभी उसकी सन्तान है, उसके अगस्वरूप हैं, उसके रूप हैं। तब फिर हम किसीको कैसे चोट पहुँचा सकते हैं? दूसरो को बिना प्यार किये हम कैसे रह सकते है? भगवान् के प्रति प्रेम के साथ ही, उसके निश्चित फलस्वरूप, सर्व भूतो के भी प्रति प्रेम अवश्य आयेगा। हम ईश्वर के जितने समीप आते जाते है, उतने ही अधिक स्पष्ट रूप से देखते है कि सब कुछ उसीमे है। जब जीवात्मा इस परम प्रेमानन्द को आत्मसात करने मे सफल होती है, तब वह ईश्वर को सर्व भूतो मे देखने लगती है। इस प्रकार हमारा हृदय प्रेम का एक अनन्त स्रोत बन जाता है। और जब हम इस प्रेम की और भी उच्चतर अवस्थाओ मे पदार्पण करते हैं, तब ससार की वस्तुओ मे क्षुद्र भेद की भावनाएँ हमारे हृदय से सर्वथा लुप्त हो जाती हैं। तब मनुष्य मनुष्य के रूप मे नही दीखता, वरन् साक्षात् ईश्वर के रूप मे ही दीख पडता है, पशु मे पशु-रूप नही दिखायी पडता, वरन् उसमे स्वयं भगवान् ही दीख पडते हैं, यहाँ तक कि ऐसे प्रेमी की आँखो से वाघ का भी वाघ-रूप लुप्त हो जाता है और उसमे स्वयं भगवान् प्रकाशमान दीख पडता है। इस प्रकार, भक्ति की इस प्रगाढ अवस्था मे सभी प्राणी हमारे लिए उपास्य हो जाते हैं। 'हरि को सब भूतो मे अवस्थित जानकर ज्ञानी को सब प्राणियो के प्रति अव्यभिचारिणी भक्ति रखनी चाहिए।'

इस प्रगाढ, सर्वग्राही प्रेम के फलस्वरूप पूर्ण आत्मसमर्पण की अवस्था उपस्थित होती है। तब यह दृढ विश्वास हो जाता है कि ससार मे भला-बुरा जो कुछ होता है, कुछ भी हमारे लिए अनिष्टकर नही। शास्त्रो ने इसीको 'अप्रातिकूल्य' कहा है। ऐसा प्रेमी जीव दुःख उपस्थित होने पर कहता है, "दुःख ! स्वागत है तुम्हारा।" यदि कष्ट आये, तो कहेगा, "आओ कष्ट ! स्वागत है तुम्हारा। तुम भी तो मेरे प्रियतम के पास से ही आये हो।" यदि सर्प आये, तो कहेगा, "विराजो, सर्प ! " यहाँ तक कि यदि मृत्यु भी आये, तो वह अघरो पर मुस्कान लिये उसका स्वागत करेगा। "धन्य हूँ मैं, जो ये सब मेरे पास आते हैं, इन सबका स्वागत है।" भगवान् और जो कुछ भगवान् का है, उस सबके प्रति प्रगाढ प्रेम से उत्पन्न होनेवाली इस पूर्ण निर्भरता की अवस्था मे भक्त अपने को प्रभावित करनेवाले सुख और दुःख का भेद भूल जाता है। दुःख-कष्ट आने पर वह तनिक भी विचलित नही होता। और प्रेमस्वरूप ईश्वर की इच्छा पर यह जो स्थिर, खेदशून्य निर्भरता

१ एव सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी।

कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमय हरिम्॥

## विश्वप्रेम और उससे आत्मसमर्पण का उदय

समष्टि में प्रेम किय बिना हम व्यक्ति में प्रेम कर सकते हैं? ईश्वर ही वह समष्टि है। सारे विश्व का यदि एक अणुएक अणु में चिन्तन किया जाय तो बही ईश्वर है और उसे पुष्प पुष्प रूप में बनाने पर बही यह दूरदमास संगार है—व्यक्ति है। समष्टि वह इनाई है जिसमें साया छोटी छोटी इकाइया का योग है। इस समष्टि के माध्यम में ही सारे विश्व को प्रेम करना सम्भव है। भारतीय दार्शनिक व्यक्ति पर ही नहीं रुक जाने के ता व्यक्ति पर एक सरलरी दृष्टि सम्पन्न हुए एक ऐसे व्यापक या समष्टि भाव की शोख में लग जाने हैं जिसमें सब व्यक्तियों या विवेकों का अन्तर्भाव हो। इस समष्टि की शोख ही भारतीय दर्शन और धर्म का मूल्य है। मानी पुष्प ऐसी एक समष्टि की ऐम एक निरपेक्ष और व्यापक तत्व की कामना करता है जिसे जानने में वह सब कुछ जान सके। मन्त उस एक सर्वव्यापी पुष्प की मायागु उपस्थित कर केना चाहता है जिसमें प्रेम करने में वह सारे विश्व से प्रेम कर सके। योमी उस मूमभूत व्यक्ति को अपने अपिचार में कामना चाहता है जिसके नियमन में वह इस सम्पूर्ण विश्व का नियमन कर सके। यदि हम भारतीय विचार-धारा के इतिहास का अध्ययन करें, तो देखेंगे कि भारतीय मन सदा से हर विषय में—औद्योगिक विज्ञान मनोविज्ञान मस्तिष्कतत्व दसान भाषि सभी में—एक समष्टि या व्यापक तत्व की इस अपूर्व शोख में लगा रहा है। अतएव भक्त इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि तुम केवल एक के बाद दूसरे व्यक्ति से प्रेम करते चके जाओ तो भी अनन्त काल में भी संसार को एक समष्टि के रूप में प्यार करने में समर्थ न हो सकोगे। पर अन्त में जब वह मूल सत्य प्राप्त हो जाता है कि समस्त प्रेम की समष्टि ईश्वर है संसार के मुक्त बन्ध या मुमुक्षु सारे जीवात्माओं की आदर्श-समष्टि ही ईश्वर है, तभी यह विश्वप्रेम सम्भव होता है। ईश्वर ही समष्टि है और वह परिदूरदमास जगत् सचीका परिच्छिन्न भाव है—उसीकी अभिव्यक्ति है। यदि हम इस समष्टि का प्यार करते, तो इससे सभी को प्यार करना हो जाता है। सब जगत् को प्यार करना और उसकी सहाई करना सहज हो जाता है। पर पहले समयक्रम के द्वारा हमें यह क्षिति प्राप्त कर लेनी होगी जस्यवा संसार की सहाई करना कोई हँसी-ठेक नहीं है। भक्त कहता है, "सब कुछ सचीका है, वह मेरा प्रियतम है मैं उससे प्रेम करता हूँ। इस प्रकार भक्त को सब

कुछ पवित्र प्रतीत होने लगता है, क्योंकि वह सब आखिर उसीका तो है। सभी उसकी सन्तान हैं, उसके अगस्वरूप हैं, उसके रूप हैं। तब फिर हम किसीको कैसे चोट पहुँचा सकते हैं? दूसरो को बिना प्यार किये हम कैसे रह सकते है? भगवान् के प्रति प्रेम के साथ ही, उसके निश्चित फलस्वरूप, सर्व भूतो के भी प्रति प्रेम अवश्य आयेगा। हम ईश्वर के जितने समीप आते जाते हैं, उतने ही अधिक स्पष्ट रूप से देखते हैं कि सब कुछ उसीमे है। जब जीवात्मा इस परम प्रेमानन्द को आत्मसात करने मे सफल होती है, तब वह ईश्वर को सर्व भूतो मे देखने लगती है। इस प्रकार हमारा हृदय प्रेम का एक अनन्त स्रोत बन जाता है। और जब हम इस प्रेम की और भी उच्चतर अवस्थाओ मे पदार्पण करते हैं, तब ससार की वस्तुओ मे क्षुद्र भेद की भावनाएँ हमारे हृदय से सर्वथा लुप्त हो जाती हैं। तब मनुष्य मनुष्य के रूप मे नही दीखता, वरन् साक्षात् ईश्वर के रूप मे ही दीख पडता है, पशु मे पशु-रूप नही दिखायी पडता, वरन् उसमे स्वयं भगवान् ही दीख पडते हैं, यहाँ तक कि ऐसे प्रेमी की आँखो से बाघ का भी बाघ-रूप लुप्त हो जाता है और उसमे स्वयं भगवान् प्रकाशमान दीख पडता है। इस प्रकार, भक्ति की इस प्रगाढ अवस्था मे सभी प्राणी हमारे लिए उपास्य हो जाते हैं। 'हरि को सब भूतो मे अवस्थित जानकर ज्ञानी को सब प्राणियों के प्रति अव्यभिचारिणी भक्ति रखनी चाहिए।'<sup>१</sup>

इस प्रगाढ, सर्वग्राही प्रेम के फलस्वरूप पूर्ण आत्मसमर्पण की अवस्था उपस्थित होती है। तब यह दृढ विश्वास हो जाता है कि ससार मे भला-बुरा जो कुछ होता है, कुछ भी हमारे लिए अनिष्टकर नही। शास्त्रो ने इसीको 'अप्रातिकूल्य' कहा है। ऐसा प्रेमी जीव दुःख उपस्थित होने पर कहता है, "दुःख ! स्वागत है तुम्हारा।" यदि कष्ट आये, तो कहेगा, "आओ कष्ट ! स्वागत है तुम्हारा। तुम भी तो मेरे प्रियतम के पास से ही आये हो।" यदि सर्प आये, तो कहेगा, "विराजो, सर्प !" यहाँ तक कि यदि मृत्यु भी आये, तो वह अधरो पर मुस्कान लिये उसका स्वागत करेगा। "धन्य हूँ मैं, जो ये सब मेरे पास आते हैं, इन सबका स्वागत है।" भगवान् और जो कुछ भगवान् का है, उस सबके प्रति प्रगाढ प्रेम से उत्पन्न होनेवाली इस पूर्ण निर्भरता की अवस्था मे भक्त अपने को प्रभावित करनेवाले सुख और दुःख का भेद भूल जाता है। दुःख-कष्ट आने पर वह तनिक भी विचलित नही होता। और प्रेमस्वरूप ईश्वर की इच्छा पर यह जो स्थिर, खेदशून्य निर्भरता

१ एव सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी।

कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमय हरिम् ॥

## विश्वप्रेम और उससे आत्मसमर्पण का उदय

समष्टि से प्रेम किये बिना हम व्यक्ति में कैसे प्रेम कर सकते हैं? ईश्वर ही वह समष्टि है, सारे विश्व का यदि एक अगण्ड रूप में विस्तृत किया जाय तो वही ईश्वर है, और उसे पूजन पूजक रूप से देगने पर वही यह इत्यमान संसार है—व्यक्ति है। समष्टि वह इकाई है जिसमें सारों छोटी छोटी इकाइयों का योग है। इस समष्टि के माध्यम से ही सारे विश्व को प्रेम करना सम्भव है। भारतीय दार्शनिक व्यष्टि पर ही नहीं रुक जाते वे तो व्यष्टि पर एक सरसरी दृष्टि डालकर तुरन्त एक ऐसे व्यापक या समष्टि भाव की शोख में लग जाते हैं, जिसमें सब व्यष्टियों या कियेपों का अन्तर्भाव हो। इस समष्टि की शोख ही भारतीय दर्शन और धर्म का लक्ष्य है। ज्ञानी पुरुष ऐसी एक समष्टि की ऐसे एक निरक्षर और व्यापक तत्त्व की कामना करता है जिसे जानने से वह सब कुछ जान सके। भक्त उस एक सर्वव्यापी पुरुष की साक्षात् उपसम्पि कर लेना चाहता है, जिससे प्रेम करने से वह सारे विश्व से प्रेम कर सके। योही उस मूलभूत शक्ति को अपने अधिकार में लाना चाहता है, जिसके नियमन से वह इस सम्पूर्ण विश्व का नियमन कर सके। यदि हम भारतीय विचार-धारा के इतिहास का अध्ययन करें तो देखेंगे कि भारतीय मन सदा से हर विषय में—भौतिक विज्ञान मनोविज्ञान भक्तितत्त्व धर्म आदि सभी में—एक समष्टि या व्यापक तत्त्व की इस अपूर्व शोख में लगा रहा है। अतएव भक्त इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि तुम केवल एक के साथ दूसरे व्यक्ति से प्रेम करते बने जाओ तो भी अनन्त काल में भी संसार को एक समष्टि के रूप में प्यार करने में समर्थ न हो सकोगे। पर अन्त में जब यह मूल तत्त्व प्राप्त हो जाता है कि समस्त प्रेम की समष्टि ईश्वर है, संसार के मूल ब्रह्म या मूलभूत सारे पीढा-माओं की आदर्श-समष्टि ही ईश्वर है, तभी यह विश्वप्रेम सम्भव होता है। ईश्वर ही समष्टि है और यह परिवृक्षमान जगत् उसीका परिच्छिन्न भाग है—उसीकी अधिष्ठाता है। यदि हम इस समष्टि का प्यार करें, तो इससे सभी को प्यार करना हो जाता है। तब जगत् को प्यार करना और उसकी भलाई करना सहज हो जाता है। पर पहले भगवत्प्रेम के द्वारा हम यह शक्ति प्राप्त कर लेनी होगी अन्यथा संसार की भलाई करना कोई हँसी-खेल नहीं है। भक्त कहता है, "उब कुछ उसीका है, वह मेरा प्रियतम है, मैं उससे प्रेम करता हूँ। इस प्रकार भक्त को धर्म



कुछ पवित्र प्रतीत होने लगता है, क्योंकि वह सब आखिर उसीका तो है। सभी उसकी सन्तान हैं, उसके अगस्वरूप हैं, उसके रूप हैं। तब फिर हम किसीको कैसे चोट पहुँचा सकते हैं? दूसरों को बिना प्यार किये हम कैसे रह सकते हैं? भगवान् के प्रति प्रेम के साथ ही, उसके निश्चित फलस्वरूप, सर्व भूतों के भी प्रति प्रेम अवश्य आयेगा। हम ईश्वर के जितने समीप आते जाते हैं, उतने ही अधिक स्पष्ट रूप से देखते हैं कि सब कुछ उसीमें है। जब जीवात्मा इस परम प्रेमानन्द को आत्मसात करने में सफल होती है, तब वह ईश्वर को सर्व भूतों में देखने लगती है। इस प्रकार हमारा हृदय प्रेम का एक अनन्त स्रोत बन जाता है। और जब हम इस प्रेम की और भी उच्चतर अवस्थाओं में पदार्पण करते हैं, तब ससार की वस्तुओं में क्षुद्र भेद की भावनाएँ हमारे हृदय से सर्वथा लुप्त हो जाती हैं। तब मनुष्य मनुष्य के रूप में नहीं दीखता, वरन् साक्षात् ईश्वर के रूप में ही दीख पड़ता है, पशु में पशु-रूप नहीं दिखायी पड़ता, वरन् उसमें स्वयं भगवान् ही दीख पड़ते हैं, यहाँ तक कि ऐसे प्रेमी की आँखों से बाघ का भी बाघ-रूप लुप्त हो जाता है और उसमें स्वयं भगवान् प्रकाशमान दीख पड़ता है। इस प्रकार, भक्ति की इस प्रगाढ़ अवस्था में सभी प्राणी हमारे लिए उपास्य हो जाते हैं। 'हरि को सब भूतों में अवस्थित जानकर ज्ञानी को सब प्राणियों के प्रति अव्यभिचारिणी भक्ति रखनी चाहिए।'

इस प्रगाढ़, सर्वग्राही प्रेम के फलस्वरूप पूर्ण आत्मसमर्पण की अवस्था उपस्थित होती है। तब यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि ससार में भला-बुरा जो कुछ होता है, कुछ भी हमारे लिए अनिष्टकर नहीं। शास्त्रों ने इसीको 'अप्रातिकूल्य' कहा है। ऐसा प्रेमी जीव दुःख उपस्थित होने पर कहता है, "दुःख! स्वागत है तुम्हारा।" यदि कष्ट आये, तो कहेगा, "आओ कष्ट! स्वागत है तुम्हारा। तुम भी तो मेरे प्रियतम के पास से ही आये हो।" यदि सर्प आये, तो कहेगा, "विराजो, सर्प।" यहाँ तक कि यदि मृत्यु भी आये, तो वह अघरों पर मुस्कान लिये उसका स्वागत करेगा। "धन्य हूँ मैं, जो ये सब मेरे पास आते हैं, इन सबका स्वागत है।" भगवान् और जो कुछ भगवान् का है, उस सबके प्रति प्रगाढ़ प्रेम से उत्पन्न होनेवाली इस पूर्ण निर्भरता की अवस्था में भक्त अपने को प्रभावित करनेवाले सुख और दुःख का भेद भूल जाता है। दुःख-कष्ट आने पर वह तनिक भी विचलित नहीं होता। और प्रेमस्वरूप ईश्वर की इच्छा पर यह जो स्थिर, खेदशून्य निर्भरता

१ एव सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी।

कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमय हरिम् ॥

है वह तो सबमुच महान् वीरतापूय किया-कलापीं स मिलनेवासे नाम-वत की अपेक्षा कहीं अधिक वाछनीय है।

अधिकतर मनुष्यों के लिए बेह ही सब कुछ है। बेह ही उनकी सारी बुनिया है। वैहिक सुख-भोग ही उनका सर्वस्व है। देह और बेह से सम्बन्धित वस्तुओं की उपासना करने का मूल हम सबमें प्रविष्ट हो गया है। भले ही हम सम्बी चीड़ी बातें करें बड़ी ऊँची ऊँची उड़ानें लें पर आखिर हँ हम गिद्धों के ही समान हमारा मन सदा नीचे पड़ हुए सड़े-मसे मास के टुकड़े में ही पड़ा रहता है। हम घेर स अपने शरीर की रक्षा क्यों करें? हम उसे घेर को क्यों न दे दें? कम से कम उससे घेर की तो तृप्ति होगी और यह कार्य आत्मत्याग और उपासना से अधिक भिन्न न होना। क्या तुम ऐसे एक भाव की उपलब्धि कर सकते हो जिससे स्वार्थ की चिन्ता भी मन्व न हो? क्या तुम अपना यह भाव सम्पूर्ण रूप से नष्ट कर सकते हो? यह प्रेम-बर्ष के पितर की यह सिर चकरा देनेवाली ऊँचाई है और बहुत जोड़े लोग ही उस तक पहुँच सके हैं। पर जब तक मनुष्य इस प्रकार के आत्मत्याग के लिए सारे समय पूरे हृदय के साथ प्रस्तुत नहीं रहता तब तक वह पूर्ण मक्त नहीं हो सकता। हम अपने इस शरीर को अल्प अवकाश अधिक समय तक के लिए भले ही बनाये रखा ले पर उससे क्या? हमारे शरीर का एक न एक दिन नाश होना तो अबसम्भावी है। उसका अस्तित्व विरह्यायी नहीं है। वे कस्य है जिसका शरीर दूसरों की सेवा में अर्पित हो जाता है। एक छात्र पुत्र्य केवल अपनी सम्पत्ति ही नहीं बरन् अपने प्राण भी दूसरों की सेवा में उत्सर्ग कर देने के लिए सर्वत्र उद्यत रहता है। इस सत्कार में जब मृत्यु निश्चित है तो श्रेष्ठ यही है कि यह शरीर किसी नीच कार्य की अपेक्षा किसी उत्तम कार्य में ही अर्पित हो जाय। हम भले ही अपने जीवन को पचास वर्ष या बहुत हुआ तो सौ वर्ष तक जीव क कार्य पर उसके बाद? उसके बाद क्या होता है? जो वस्तु संसार से उत्पन्न होती है वह विघटित होकर नष्ट भी होती है। ऐसा समय अवश्य आता है, जब उसे विघटित होना पड़ता है। ईसा बुद्ध और मुहम्मद सभी विवगत हो गये। संसार के सारे महापुरुष और आचार्यजन आज इस बरती से उठ गये हैं।

मक्त कहता है "इस शरणगुर संसार में जहाँ प्रत्येक वस्तु टुकड़े टुकड़े हो चुक यं मिली जा रही है। हमें अपने समय का अनुपयोग कर लेना चाहिए। और वास्तव में जीवन का सर्वश्रेष्ठ उपयोग यही है कि उसे सर्वमृतों की सेवा में लगा दिया जाय। हमारा सर्वश्रेष्ठ काम यह है कि हमारा यह शरीर ही हम है और जिसकी किसी प्रकार से हो इसकी रक्षा करनी होनी इसे सुखी रक्षना होना। और यह मयागत बेहात्म बुद्धि ही संसार में सब प्रकार की स्वार्थपट्टा की बड़ है। यदि तुम यह निश्चित

रूप से जान सको कि तुम शरीर से विल्कुल पृथक् हो, तो फिर इस दुनिया में ऐसा कुछ भी नहीं रह जायगा, जिसके साथ तुम्हारा विरोध हो सके। तब तुम सब प्रकार की स्वार्थपरता के अतीत हो जाओगे। इसीलिए भक्त कहता है कि हमें ऐसा रहना चाहिए, मानो हम दुनिया की सारी चीजों के लिए मर से गये हों। और वास्तव में यही यथार्थ आत्मसमर्पण है—यही सच्ची शरणागति है—‘जो होने का है, हो।’ यही ‘तेरी इच्छा पूर्ण हो’ का तात्पर्य है। उसका तात्पर्य यह नहीं कि हम यत्र-तत्र लड़ाई-झगडा करते फिरें और सारे समय यही सोचते रहे कि हमारी ये सारी कमजोरियाँ और सासारिक आकाशाएँ भगवान् की इच्छा से हो रही हैं ॥ हो सकता है कि हमारे स्वार्थपूर्ण प्रयत्नों से भी कुछ भला हो जाय, पर वह ईश्वर देखेगा, उसमें हमारा-तुम्हारा कोई हाथ नहीं। यथार्थ भक्त अपने लिए कभी कोई इच्छा या कार्य नहीं करता। उसके हृदय के अन्तरतम प्रदेश से तो वस यही प्रार्थना निकलती है, “प्रभो, लोग तुम्हारे नाम पर बड़े बड़े मन्दिर बनवाते हैं, बड़े बड़े दान देते हैं, पर मैं तो निर्बल हूँ, मेरे पास कुछ भी नहीं है। अतः मैं अपने इस शरीर को ही तुम्हारे चरणों में अर्पित करता हूँ। मेरा परित्याग न करना, मेरे प्रभो।” जिसने एक बार इस अवस्था का आस्वादन कर लिया है, उसके लिए प्रेमास्पद भगवान् के चरणों में यह चिर आत्मसमर्पण कुवेर के धन और इन्द्र के ऐश्वर्य से भी श्रेष्ठ है, नाम-यश और सुख-सम्पदा की महान् आकाशा से भी महत्तर है। भक्त के शान्त आत्मसमर्पण से हृदय में जो शान्ति आती है, उसकी तुलना नहीं हो सकती, वह बुद्धि के लिए अगोचर है। इस अप्रातिकूल्य अवस्था की प्राप्ति होने पर उसका किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं रह जाता, और तब फिर स्वार्थ में वाधा देनेवाली कोई वस्तु भी ससार में नहीं रह जाती। इस परम शरणागति की अवस्था में सब प्रकार की आसक्ति समूल नष्ट हो जाती है और रह जाती है सर्वभूतों की अन्तरात्मा और आधारस्वरूप उस भगवान् के प्रति सर्वाविगाहिनी प्रेमात्मिका भक्ति। भगवान् के प्रति प्रेम की यह आसक्ति ही सचमुच ऐसी है, जो जीवात्मा को नहीं बाँधती, प्रत्युत उसके समस्त बन्धन मार्यक रूप से छिन्न कर देती है।

## सच्चे मक्त के लिए पराविद्या और परामक्ति एक हैं

उपनिषदों में परा और अपरा विद्या में भेद बतलाया गया है। मक्त के लिए पराविद्या और परामक्ति दोनों एक ही हैं। मुख्य उपनिषद् में कहा है, 'ब्रह्म-ज्ञानी के मतानुसार परा और अपरा ये दो प्रकार की विद्याएँ जानने योग्य हैं। अपरा विद्या में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा (उच्चारणार्थि की विद्या) कल्प (मन्त्रपद्धति) व्याकरण निरुक्त (वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति और अर्थ बतानेवाला शास्त्र) छन्द और ज्योतिष आदि हैं तथा पराविद्या द्वारा उस अक्षर ब्रह्म का ज्ञान होता है।<sup>१</sup> इस प्रकार पराविद्या स्पष्टतः ब्रह्मविद्या है।

द्वैतीभाष्यगत में परामक्ति की निम्नलिखित व्याख्या है—'एक वर्तन से दूसरे वर्तन में ठेक डालने पर जिस प्रकार एक अविच्छिन्न धारा में प्रवाहित होता है उसी प्रकार जब मन भगवान् के सतत चिन्तन में लस जाता है, तो परामक्ति की अवस्था प्राप्त हो जाती है।<sup>१</sup> भगवान् के प्रति अविच्छिन्न आसक्ति के साथ हृदय और मन का इस प्रकार अनिरत और नित्य स्थिर भाव ही मनुष्य के हृदय में भगवत्प्रेम का सर्वोच्च प्रकाश है। अस्य सर्व प्रकार की भक्ति इस परामक्ति अवधि उपायानुमा भक्ति की प्राप्ति के लिए केवल उपायस्वरूप है। जब इस प्रकार का अपरा अनुराग मनुष्य के हृदय में उत्पन्न हो जाता है तो उसका मन निरन्तर भगवान् के स्मरण में ही लसा रहता है उसे और किसीका ध्यान ही नहीं जाता। भगवान् के अतिरिक्त वह अपने मन में अन्य विचारों को स्थान तक नहीं देता और अस्वरूप उसकी आत्मा परित्याग के अनेक कथन से रक्षित हो जाती है तथा मानसिक एवं भौतिक समस्त बन्धनों को तोड़कर शांत और मुक्त भाव धारण कर लेती है। ऐसा ही व्यक्ति अपने हृदय में भगवान् की उपासना कर सकता है। उसके

१ इति विद्वे वैदित्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो बध्मि परा विद्यापरा च ।  
 तत्रापरा, ऋग्वेदो यजुर्वेदो सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो  
 ज्योतिषमिति । अथ परा, यस्या तद्व्यकरणवियम्यते ॥ मुख्योपनिषद् ॥१॥१४५५॥

२ वैतसो वर्तनञ्चैव तद्व्यकरणस्य स्या ॥ द्वैतीभाष्यगत ॥७॥३७११॥

लिए अनुष्ठान-पद्धति, प्रतिमा, शास्त्र और मत-मतान्तर आदि अनावश्यक हो जाते हैं, उनके द्वारा उसे और कोई लाभ नहीं होता। भगवान् की इस प्रकार उपासना करना सहज नहीं है। साधारणतया मानवी प्रेम वही लहलहाते देखा जाता है, जहाँ उसे दूसरी ओर से बदले में प्रेम मिलता है, और जहाँ ऐसा नहीं होता, वहाँ उदासीनता आकर अपना अधिकार जमा लेती है। ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं, जहाँ बदले में प्रेम न मिलते हुए भी प्रेम का प्रकाश होता हो। उदाहरणार्थ, हम दीपक के प्रति पतिंगे के प्रेम को ले सकते हैं। पतिंगा दीपक से प्रेम करता है और उसमें गिरकर अपने प्राण दे देता है। असल में इस प्रकार प्रेम करना उसका स्वभाव ही है। केवल प्रेम के लिए प्रेम करना ससार में निस्सन्देह प्रेम की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है और यही पूर्ण नि स्वार्थ प्रेम है। इस प्रकार का प्रेम जब आध्यात्मिकता के क्षेत्र में कार्य करने लगता है, तो वही हमें पराभक्ति की उपलब्धि कराता है।

## प्रेम का त्रिकोण

प्रेम की उपमा एक त्रिकोण से ही की जा सकती है जिसका प्रत्येक कोण प्रेम के एक एक अविभाज्य गुण का सूचक है। जिस प्रकार बिना तीनों कोनों के त्रिकोण नहीं बन सकता उसी प्रकार निम्नलिखित तीन गुणों के बिना यथार्थ प्रेम का हुना असम्भव है। इस प्रेमकामी त्रिकोण का पहला कोण तो यह है कि प्रेम में किसी प्रकार का स्व-विक्रय नहीं होता। वहाँ कहीं किसी बदले की भासा रहती है वहाँ यथार्थ प्रेम कमी नहीं हो सकता वह तो एक प्रकार की इकानवासी सी हो जाती है। जब तक हमारे हृदय में इस प्रकार की बोझी सी भी भावना रहती है कि भयवान् की आराधना के बदले में हमें उससे कुछ मिले तब तक हमारे हृदय में यथार्थ प्रेम का संचार नहीं हो सकता। जो लोग किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए ईश्वर की उपासना करते हैं उन्हें यदि वह चीज न मिले तो निश्चय ही वे उसकी आराधना करना छोड़ दगे। मन्त भगवान् से इसलिए प्रेम करता है कि वह प्रेमास्पद है अपने मन्त के इस ही प्रेम का और कोई हेतु नहीं रखा।

एक बार एक राजा किसी बन में गया। वहाँ उसे एक साधु मिले। साधु से बोझी बैर बातचीत करके राजा उनकी पवित्रता और ज्ञान पर बड़ा मुग्ध हो गया। राजा ने उनसे प्रार्थना की "महाशय यदि आप मुझसे कोई भेंट ग्रहण करने की कृपा करें, तो बन्ध हो जाऊँ। पर साधु ने इन्कार कर दिया और कहा "इस जगत् के फल मेरे लिए पर्याप्त है, पहाड़ों से निकले हुए शुद्ध पानी के शरने पीने को पर्याप्त जल है बेटे है वृक्षों की छाँव मेरे शरीर को ढकने के लिए काफी है और पर्वतों की कन्दारों सुन्दर कर का काम देती हैं। मैं तुमसे अबका क्या किसीस कोई भेंट क्यों लूँ? राजा ने कहा महाशय केवल मुझे कृतार्थ करने के लिए कृपया कुछ अवसर स्वीकार कर लीजिए, और दया कर मेरे साथ बैठकर मेरी राजधानी तथा महल को पवित्र लीजिए। विराय आग्रह के बार साधु ने अन्त में राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसके साथ उसके महल को गये। साथ को भेंट देने के पहले राजा नियमानुसार अपनी दैनिक प्रार्थना करने लगा। उसने कहा है ईश्वर, मुझ और अधिक सन्तान को मेरा बन और भी बड़े मेरा राज्य अधिकाधिक पैदा जाय मेरा शरीर स्वस्थ और मीरोग रह जाय। राजा अपनी प्रायश्च समाप्त भी न कर पाया था कि साधु उठ लगे हुए

गौर चुपके से कमरे के बाहर चल दिये। यह देखकर राजा बड़े असमजस में पड़ गया और चिल्लाता हुआ साधु के पीछे भागा, “महाराज, आप कहाँ जा रहे हैं, आपने तो मुझसे कोई भी भेंट ग्रहण नहीं की।” यह सुनकर वे साधु पीछे घूमकर राजा से बोले, “अरे भिखारी, मैं भिखारियों से भिक्षा नहीं माँगता। तू तो स्वयं एक भिखारी है, मुझे किस प्रकार भिक्षा दे सकता है। मैं इतना मूर्ख नहीं कि तुझ जैसे भिखारी से कुछ लूँ। जा, भाग जा, मेरे पीछे मत आ।”

इस कथा से ईश्वर के सच्चे प्रेमियों और साधारण भिखारियों में भेद बड़े सुन्दर ढंग से प्रकट हुआ है। भिखारी की भाँति गिड़गिड़ाना प्रेम की भाषा नहीं है। यहाँ तक कि, मुक्ति के लिए भगवान् की उपासना करना भी अधम उपासना में गिना जाता है। प्रेम कोई पुरस्कार नहीं चाहता। प्रेम सर्वदा प्रेम के लिए ही होता है। भक्त इसलिए प्रेम करता है कि बिना प्रेम किये वह रह ही नहीं सकता। जब तुम किसी मनोहर प्राकृतिक दृश्य को देखकर उस पर मोहित हो जाते हो, तो उस दृश्य से तुम किसी फल की याचना नहीं करते और न वह दृश्य ही तुमसे कुछ माँगता है। फिर भी उस दृश्य का दर्शन तुम्हारे मन को बड़ा आनन्द देता है, वह तुम्हारे मन के घर्षणों को हल्का कर तुम्हें शान्त कर देता है और उस समय तक के लिए मानो तुम्हें अपनी नश्वर प्रकृति से ऊपर उठाकर एक स्वर्गीय आनन्द से भर देता है। सच्चे प्रेम का यह भाव उक्त त्रिकोणात्मक प्रेम का पहला कोण है। अपने प्रेम के बदले में कुछ मत माँगो। सदैव देते ही रहो। भगवान् को अपना प्रेम दो, परन्तु बदले में उससे कुछ भी माँगो मत।

प्रेम के इस त्रिकोण का दूसरा कोण है प्रेम का भय से नितान्त रहित होना। जो लोग भयवश भगवान् से प्रेम करते हैं, वे अधम मनुष्य हैं, उनमें अभी तक मनुष्यत्व का विकास नहीं हुआ। वे दण्ड के भय से ईश्वर की उपासना करते हैं। उनकी दृष्टि में ईश्वर एक महान् पुरुष है, जिसके एक हाथ में दण्ड है और दूसरे में चाबुक। उन्हें इस बात का डर रहता है कि यदि वे उसकी आज्ञा का पालन नहीं करेंगे, तो उन्हें कोड़े लगाये जायेंगे। पर दण्ड के भय से ईश्वर की उपासना करना सबसे निम्न कोटि की उपासना है। एक तो, वह उपासना कहलाने योग्य है ही नहीं, फिर भी यदि उसे उपासना कहे, तो वह प्रेम की सबसे मही उपासना है। जब तक हृदय में किसी प्रकार का भय है, तब तक प्रेम कैसे हो सकता है? प्रेम, स्वभावतः सब प्रकार के भय पर विजय प्राप्त कर लेता है। उदाहरणार्थ, यदि एक युवती माँ सड़क पर जा रही हो और उस पर कुत्ता भौंक पड़े, तो वह डरकर समीपस्थ घर में घुस जायगी। परन्तु मान लो, दूसरे दिन वही स्त्री अपने बच्चे के साथ जा रही है और उसके बच्चे पर शेर झपट पड़ता है। तो वताओ, वह क्या

करेगी? बच्चे की रक्षा के लिए वह स्वयं घर के मुँह में बसी बायबी। सबकुछ प्रेम समस्त भय पर विजय प्राप्त कर लेता है। भय इस स्वार्थपर भावना से उत्पन्न होता है कि मैं दुनिया से अलग हूँ। और जितना ही मैं अपने को सुरक्षित और स्वार्थपर बनाऊँगा मेरा भय उतना ही बढ़ेगा। यदि कोई मनुष्य अपने को एक छोटा सा तुच्छ चीज समझे तो भय उसे अवश्य चेर लेगा। और तुम अपने को जितना ही कम तुच्छ समझोते तुम्हारे लिए भय भी उतना ही कम होगा। अब तक तुममें बड़े-सा भी भय है तब तक तुम्हारे मानस-सरोवर में प्रेम की तरंगें नहीं उठ सकती। प्रेम और भय दोनों एक साथ कभी नहीं रह सकते। जो मनवान् से प्रेम करते हैं, उन्हें उससे डरना नहीं चाहिए। 'ईश्वर का नाम ध्येय में न लो' इस आदेश पर ईश्वर का सच्चा प्रेमी रहता है। प्रेम के धर्म में ईश्वर-मित्या किस प्रकार सम्भव है? ईश्वर का नाम तुम जितना ही छोड़ो फिर वह किसी भी प्रकार से क्यों न हो तुम्हारा उतना ही संभव है। उससे प्रेम होने के कारण ही तुम उसका नाम लेते हो।

प्रेमरूपी त्रिकोण का तीसरा कोण है प्रेम में किसी प्रतिद्वन्द्वी का न होना क्योंकि इस प्रेम में ही प्रेमी का सर्वोच्च आदर्श मूढ रहता है। सच्चा प्रेम तब तक नहीं होता जब तक हमारे प्रेम का पात्र हमारा सर्वोच्च आदर्श नहीं बन जाता। हो सकता है कि अनेक धर्मों में मनुष्य का प्रेम अनुचित दिशा में और अपात्र बना जाता हो पर जो प्रेमी है उसके लिए तो उसका प्रेमपात्र ही उच्चतम आदर्श है। हो सकता है, कोई व्यक्ति अपना आदर्श सबसे निकृष्ट मनुष्य में देखे और कोई दूसरा किसी देव-मानव में पर प्रत्येक दशा में वह आदर्श ही है, जिसे सच्चे और प्रगाढ़ रूप से प्रेम किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के उच्चतम आदर्श को ही ईश्वर कहते हैं। जानी हो या अजानी साधु हो या पापी पुरुष हो अबदा स्त्री चिह्नित हो अबदा अचिह्नित प्रत्येक दशा में मनुष्य मात्र का परमोच्च आदर्श ही ईश्वर है। सौन्दर्य उदात्तता और शक्ति के उच्चतम आदर्शों के योग में ही हमें प्रेममय एवं प्रेमास्पद ईश्वर का पूर्वतम भाव मिलता है।

स्वभावतः ही ये आदर्श किसी न किसी रूप में प्रत्येक व्यक्ति के मन में वर्तमान रहते हैं। वे मानो हमारे मन के अंग या अंगविशेष हैं। उन आदर्शों को व्यक्तिगत जीवन में परिपक्व करने के लिये सब प्रयत्न हैं, वे ही मानवीय प्रवृत्ति की नाता विभिन्न विधाओं के रूप में प्रकट होते हैं। विभिन्न जीवात्माओं में जो विविध आदर्श निहित हैं वे बाहर आकर मूर्त रूप धारण करने की लालन के लिये प्रयत्न करते हैं, और इसके अन्तर्गत ही हम अपने चारों ओर समाज के नाता प्रकार की परिधि और हस्तक्षेप देखते हैं। जो कुछ भीतर है वही बाहर जाने का प्रयत्न करता है।



आदर्श का यह नित्य प्रबल प्रभाव ही एक ऐसी कार्यकारी शक्ति है, जो मानव जीवन में सतत क्रियाशील है। हो सकता है, सैकड़ों जन्म के बाद, हज़ारों वर्ष संघर्ष करने के पश्चात्, मनुष्य समझे कि अपना अभ्यन्तरस्थ आदर्श बाहरी वातावरण और अवस्थाओं के साथ पूरी तरह मेल नहीं खा सकता। और जब वह यह समझ जाता है, तब बाहरी जगत् को अपने आदर्श के अनुसार गढ़ने की फिर अधिक चेष्टा नहीं करता। तब वह इस प्रकार के सारे प्रयत्न छोड़कर प्रेम की उच्चतम भूमि से, स्वयं आदर्श की आदर्श-रूप से उपासना करने लगता है। यह पूर्ण आदर्श अपने में अन्य सब छोटे छोटे आदर्शों को समा लेता है। सभी लोग इस बात की सत्यता स्वीकार करते हैं कि प्रेमी इथियोपिया की भाँहो में भी हेलेन का सौन्दर्य देखता है। तटस्थ लोग कह सकते हैं कि यहाँ प्रेम स्थान-भ्रष्ट हो गया है, पर जो प्रेमी है, वह अपनी हेलेन को ही सर्वदा देखता है, इथियोपिया को विल्कुल नहीं देखता। हेलेन हो या इथियोपिया, वास्तव में हमारे प्रेम के आधार तो मानो कुछ केन्द्र हैं, जिनके चारों ओर हमारे आदर्श मूर्त होते हैं। ससार साधारणतः किसकी उपासना करता है?—अवश्य उच्चतम भक्त और प्रेमी के सर्वाविगाही पूर्ण आदर्श की नहीं। स्त्री-पुरुष साधारणतः उसी आदर्श की उपासना करते हैं, जो उनके अपने हृदय में है। प्रत्येक व्यक्ति अपना अपना आदर्श बाहर प्रक्षिप्त करके उसके सम्मुख भूमिष्ठ हो प्रणाम करता है। इसीलिए हम देखते हैं कि जो लोग निर्दयी और खूनी होते हैं, वे एक रक्तपिपासु ईश्वर की ही कल्पना करते तथा उसे भजते हैं, क्योंकि वे अपने सर्वोच्च आदर्श की ही उपासना कर सकते हैं। और इसीलिए साधुजनों का ईश्वर सम्बन्धी आदर्श बहुत ऊँचा होता है, और वास्तव में वह अन्य लोगों के आदर्श से बहुत भिन्न है।

## प्रेममय ईश्वर स्वयं ही अपना प्रमाण है

जो प्रेमी स्वार्थपरता और भय के परे हो गया है जो फसाकांशासून्य हो गया है उसका आदर्श क्या है? वह परमेश्वर से भी नहीं कहेगा 'मैं तुम्हें अपना सर्वस्व अर्पित करता हूँ मैं तुमसे कोई चीज नहीं चाहता। वास्तव में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे मैं अपना कह सकूँ। जब मनुष्य इस प्रकार की अवस्था प्राप्त कर लेता है तब उसका आदर्श पूर्ण प्रेम के प्रेमजनित पूर्ण निर्भीकता के आदर्श में परिणत हो जाता है। इस प्रकार के व्यक्ति के सर्वोच्च आदर्श में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं रह जाती—वह किसी विशेष भाव द्वारा सीमित नहीं रहता। वह आदर्श तो सार्वभौमिक प्रेम अनन्त और असीम प्रेम पूर्ण स्वतन्त्र प्रेम का आदर्श होता है यही क्यों वह साम्राज्य प्रेमस्वरूप होता है। तब प्रेम-बर्म के इस महान् आदर्श की उपासना किसी प्रतीक या प्रतिमा के सहारे नहीं करनी पड़ती बरन् तब तो वह आदर्श के रूप में ही उपासित होता है। इस प्रकार के एक सार्वभौमिक आदर्श की उपासना सबसे उत्कृष्ट प्रकार की परामर्शिता है। भक्ति के अन्य सब प्रकार तो इस परामर्शिता की प्राप्ति में केवल सोपानस्वरूप हैं।

इस प्रेम-बर्म के पथ में चढ़ते चढ़ते हमें जो सफलताएँ और असफलताएँ मिलती हैं वे सबकी सब उस आदर्श की प्राप्ति के मार्ग पर ही बटती हैं—अर्थात् प्रकाशान्तर से वे उसमें सहायता ही पहुँचाती हैं। चाबक एक के बाद दूसरी बस्तु देता जाता है और उस पर अपना आन्तरिक आदर्श प्रक्षिप्त करता जाता है। जमरा में सारी बाह्य वस्तुएँ इस सतत विस्तारशील आन्तरिक आदर्श को प्रकाशित करने के लिए अनुपयुक्त सिद्ध होती हैं और इसीलिए स्वभावतः एक एक करके उनका परिणाम कर दिया जाता है। अन्त में सामक समझ जाता है कि बाह्य वस्तुओं में आदर्श की उपलब्धि करने का प्रयत्न व्यर्थ है और ये सब बाह्य वस्तुएँ तो आदर्श की तुलना में बहुतकुल तुच्छ हैं। कामान्तर में वह उस सर्वोच्च और सम्पूर्ण निर्दोष भावात्मक मूढम आदर्श को अन्तर में ही जीवन्त और सत्य रूप में अनुभव करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। जब मनुष्य इस अवस्था में पहुँच जाता है तब उसमें ये सब तर्क-विचार नहीं उठते कि मनुष्यात् को मित्र किया जा सकता है अथवा नहीं मनुष्यात् सर्वत्र और सर्वव्यक्तिमान है या नहीं। उत्तम लिए तो मनुष्यात् प्रथम है—प्रेम का सर्वोच्च आदर्श है और वह यह जानना ही उसके लिए यथ्य

है। भगवान् प्रेमरूप होने के कारण स्वतः सिद्ध है, वह अन्य किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं रखता। प्रेमी के पास प्रेमास्पद का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए किसी बात की आवश्यकता नहीं। अन्यान्य धर्मों के न्यायकर्ता भगवान् का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए बहुत से प्रमाणों की आवश्यकता हो सकती है, पर भक्त तो ऐसे भगवान् की बात मन में भी नहीं ला सकता। उसके लिए तो भगवान् केवल प्रेम-स्वरूप है। 'हे प्रिये, कोई भी स्त्री पति से, पति के लिए प्रेम नहीं करती, वरन् पति में स्थित आत्मा के लिए ही वह पति से प्रेम करती है। हे प्रिये, कोई भी पुत्र पत्नी से, पत्नी के लिए प्रेम नहीं करता, वरन् पत्नी में स्थित आत्मा के लिए ही प्रेम करता है।'

कोई कोई कहते हैं कि स्वार्थपरता ही समस्त मानवीय कार्यों की एकमात्र प्रेरक शक्ति है। किन्तु वह भी तो प्रेम है, पर हाँ, वह प्रेम विशिष्ट होने के कारण निम्न भावापन्न हो गया है—बस, इतना ही। जब मैं अपने को ससार की सारी वस्तुओं में अवस्थित सोचता हूँ, तब निश्चय ही मुझमें किसी प्रकार की स्वार्थपरता नहीं रह सकती। किन्तु जब मैं भ्रम में पड़कर अपने आपको एक छोटा सा प्राणी सोचने लगता हूँ, तब मेरा प्रेम सकीर्ण हो जाता है—एक विशिष्ट भाव से सीमित हो जाता है। प्रेम के क्षेत्र को सकीर्ण और मर्यादित कर लेना ही हमारा भ्रम है। इस विश्व की सारी वस्तुएँ भगवान् से निकली हैं, अतएव वे सभी हमारे प्रेम के योग्य हैं। पर हम यह सर्वदा स्मरण रखें कि समष्टि को प्यार करने से ही अशो को भी प्यार करना हो जाता है। यह समष्टि ही भक्त का भगवान् है। अन्यान्य प्रकार के ईश्वर—जैसे, स्वर्ग में रहनेवाले पिता, शास्ता, स्रष्टा—तथा नानाविध मतवाद और शास्त्र-ग्रन्थ भक्त के लिए कुछ अर्थ नहीं रखते—उसके लिए इन सबका कोई प्रयोजन नहीं, क्योंकि वह तो पराभक्ति के प्रभाव से पूर्णतया इन सबके ऊपर उठ गया है। जब हृदय शुद्ध और पवित्र हो जाता है, तथा दैवी प्रेमामृत से आप्लावित हो जाता है, तब ईश्वर सम्बन्धी अन्य सब धारणाएँ बन्धों की बात सी प्रतीत होने लगती हैं और वे अपूर्ण एवं अनुपयुक्त समझकर त्याग दी जाती हैं। सचमुच, पराभक्ति का प्रभाव ही ऐसा है। तब वह पूर्णताप्राप्त भक्त अपने भगवान् को मन्दिरों और गिरजों में खोजने नहीं जाता, उसके लिए तो ऐसा कोई स्थान ही नहीं, जहाँ वह न हो। वह उसे मन्दिर के भीतर और बाहर सर्वत्र देखता है। साधु की साधुता में और दुष्ट की दुष्टता में भी वह उसके दर्शन करता है, क्योंकि उसने तो उस महिमामय प्रभु को पहले से ही अपने हृदय-सिंहासन पर बिठा लिया है और वह जानता है कि वह एक सर्वशक्तिमान एवं अनिर्वाण प्रेमज्योति के रूप में उनके हृदय में नित्य दीप्तिमान है और सदा से वर्तमान है।

## प्रेममय ईश्वर स्वयं ही अपना प्रमाण है

जो प्रेमी स्वार्थपरता और भय कं परे हो गया है, जो फटाफटासाधुत्व हो गया है, उसका आदर्श क्या है? वह परमेश्वर से भी नहीं कहेगा मैं तुम्हें अपना सर्वस्व समर्पित करता हूँ मैं तुमसे कोई भीख नहीं चाहता। वास्तव में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे मैं अपना कहूँ। जब मनुष्य इस प्रकार की अवस्था प्राप्त कर लेता है, तब उसका आदर्श पूर्ण प्रेम के प्रेमबन्धित पूर्ण निर्भीकता के आदर्श में परिणत हो जाता है। इस प्रकार के व्यक्ति के सर्वोच्च आदर्श में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं रह पाती—वह किसी विशेष भाव द्वारा सीमित नहीं रहता। वह आदर्श तो सार्वभौमिक प्रेम अनन्त और असीम प्रेम पूर्ण स्वतन्त्र प्रेम का आदर्श होता है यही क्यों वह साक्षात् प्रेमस्वरूप होता है। तब प्रेम-बन्ध के इस महान् आदर्श की उपासना किसी प्रतीक या प्रतिमा के सहारे नहीं करनी पड़ती बल्कि तब तो वह आदर्श के रूप में ही उपासित होता है। इस प्रकार के एक सार्वभौमिक आदर्श की आदर्शरूप से उपासना सबसे उत्कृष्ट प्रकार की परात्मिका है। भक्ति के अन्य सब प्रकार तो इस परात्मिका की प्राप्ति में केवल उपासकस्वरूप हैं।

इस प्रेम-बन्ध के पथ में चलते चलते हमें जो सफलताएँ और असफलताएँ मिलती हैं वे सबकी सब उस आदर्श की प्राप्ति के मार्ग पर ही पड़ती हैं—जबकि प्रकारान्तर से वे उसमें सहायता ही पहुँचती हैं। चायक एक के बाद दूसरी वस्तु लेता जाता है और उस पर अपना आत्मन्तरिक आदर्श प्रकट करता जाता है। अन्त में सारी बाह्य वस्तुएँ इस सतत विस्तारशील आत्मन्तरिक आदर्श को प्रकट करने के लिए अनुपमूक्त सिद्ध होती हैं और इसीलिए स्वभावतः एक एक करके उनका परित्याग कर दिया जाता है। अन्त में सायक समझ जाता है कि बाह्य वस्तुओं से आदर्श की उपसम्पत्ति करने का प्रयत्न व्यर्थ है और वे सब बाह्य वस्तुएँ तो आदर्श की तुलना में विस्तृत तुच्छ हैं। कालान्तर में वह उस सर्वोच्च और सम्पूर्ण निर्विशेष-भावापन्न सूक्ष्म आदर्श को अन्तर में ही बीजन्त और सत्य रूप से अनुभव करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। जब अन्त इस अवस्था में पहुँच जाता है तब उसमें वे सब तर्क-वितर्क नहीं उठते कि मयवान् को सिद्ध किया जा सकता है अपना नहीं मयवान् सर्वज्ञ और सर्वसक्तिमान् है या नहीं। उसके लिए तो मयवान् प्रेममय है—प्रेम का सर्वोच्च आदर्श है और उस यह जानना ही उसके लिए बड़े

इसके बाद है 'सख्य' प्रेम। इस सख्य प्रेम का साधक भगवान् से कहता है, 'तुम मेरे प्रिय सखा हो।' जिस प्रकार एक व्यक्ति अपने मित्र के सम्मुख अपना हृदय खोल देता है और यह जानता है कि उसका मित्र उसके अवगुणों पर कभी ध्यान न देगा, वरन् उसकी सदा सहायता ही करेगा—उन दोनों में जिस प्रकार समानता का एक भाव रहता है, उसी प्रकार सख्य प्रेम के साधक और उसके सखा भगवान् के बीच भी मानो एक प्रकार की समानता का भाव रहता है। इस तरह भगवान् हमारा अन्तरंग मित्र हो जाता है, जिसको हम अपने जीवन की सारी बातें दिल खोलकर बता सकते हैं, जिसके समक्ष हम अपने हृदय के गुप्त से गुप्त भावों को भी बिना किसी हिचकिचाहट के प्रकट कर सकते हैं। उस पर हम पूरा भरोसा—पूरा विश्वास रख सकते हैं कि वह वही करेगा, जिससे हमारा मंगल होगा, और ऐसा सोचकर हम पूर्ण रूप से निश्चिन्त रह सकते हैं। इस अवस्था में भक्त भगवान् को अपनी बराबरी का समझता है—भगवान् मानो हमारा सगी हो, सखा हो। हम सभी इस ससार में मानो खेल रहे हैं। जिस प्रकार बच्चे अपना खेल खेलते हैं, जिस प्रकार बड़े बड़े राजा-महाराजा और सम्राट् अपना अपना खेल खेलते हैं, उसी प्रकार वह प्रेमस्वरूप भगवान् भी इस दुनिया के साथ खेल खेल रहा है। वह पूर्ण है—उसे किसी चीज का अभाव नहीं। उसे सृष्टि करने की क्या आवश्यकता है? जब हमें किसी चीज की आवश्यकता होती है, तभी हम उसकी पूर्ति के लिए क्रियाशील होते हैं, और अभाव का तात्पर्य ही है अपूर्णता। भगवान् पूर्ण है—उसे किसी बात का अभाव नहीं। तो फिर वह इस नित्य कर्ममय सृष्टि में क्यों लगा है? उसका उद्देश्य क्या है? भगवान् के सृष्टि-निर्माण के सम्बन्ध में जो सब भिन्न भिन्न कल्पनाएँ हैं, वे किंवदन्तियों के रूप में ही भली हो सकती हैं, अन्य किसी प्रकार नहीं। सचमुच, यह समस्त उसकी लीला है। यह सारा विश्व उसका ही खेल है—वह तो उसके लिए एक तमाशा है। यदि तुम निर्धन हो, तो उस निर्धनता को ही एक बड़ा तमाशा समझो, यदि धनी हो, तो उस धनीपन को ही एक तमाशा के रूप में देखो। यदि दुःख आये, तो वही एक सुन्दर तमाशा है, और यदि सुख प्राप्त हो, तो सोचो, यह भी एक सुन्दर तमाशा है। यह दुनिया वस, एक खेल का मैदान है, और हम सब यहाँ पर नाना प्रकार के खेल-खिलवाड़ कर रहे हैं—मीज कर रहे हैं। भगवान् सारे समय हमारे साथ खेल रहा है और हम भी उसके साथ खेलते रहते हैं। भगवान् तो हमारा चिरकाल का सगी है—हमारे खेल का साथी है। कैसा सुन्दर खेल रहा है वह ! खेल खत्म हुआ कि कल्प का अन्त हो गया !

फिर अल्प या अधिक समय तक विश्राम—उसके बाद फिर से श्रेष्ठ का आरम्भ—  
 पुनः शक्ति की सृष्टि ! जब तुम मूल खाते हो कि यह सब एक श्रेष्ठ है और तुम  
 इस श्रेष्ठ में सहामता कर रहे हो। सभी दुःख और कष्ट तुम्हारे पास आते हैं। तब  
 हृदय भारी हो जाता है और संसार अपने प्रचण्ड बीज से तुम्हें बसा देता है।  
 पर ज्यों ही तुम इस दो पक्ष के जीवन की परिवर्तनशील घटनाओं को सत्य समझना  
 छोड़ देते हो और इस संसार को एक श्रेष्ठामूर्ति तथा अपने आपको भगवान् की शीशा  
 में एक सच्चा-समी सोचने लगते हो त्यों ही दुःख-कष्ट बसा जाता है। वह तो प्रत्येक  
 जन्म-परमाणु में श्रेष्ठ रहा है। वह तो श्रेष्ठते श्रेष्ठते ही पृथ्वी सूर्य चन्द्र आदि का  
 निर्माण कर रहा है। वह तो मानव-हृदय प्राणियों और पौध-पौधों के साथ श्रेष्ठ  
 कर रहा है। हम मानते उसके सत्त्व-रज के मोहरे हैं। वह मोहरो को सत्त्व-रज  
 के जालों में बिठाकर इधर-उधर बसा रहा है। वह हमें कभी एक प्रकार से  
 सजाता है और कभी दूसरे प्रकार से—हम भी जाने या धनजाने उसके श्रेष्ठ  
 में सहामता कर रहे हैं। महा कैसा परमानन्द है ! हम सब उसके श्रेष्ठ के साथी  
 जो हैं !

इसके बाद है वात्सल्य प्रेम। उसमें भगवान् का चिन्तन पिता-स्व से न  
 करके सन्तान-स्व से करना पड़ता है। हो सकता है यह कुछ अभीष्ट सा मामूला  
 हो पर उसका उद्देश्य है—अपनी भगवान् सम्बन्धी भावना से ऐश्वर्य के समस्त  
 भाव दूर कर देना। ऐश्वर्य की भावना के साथ ही मय आता है। पर प्रेम में मय  
 का कोई स्थान नहीं। यह सत्य है कि चरित्र-गठन के लिए शक्ति और आत्म-  
 पालन आवश्यक हैं पर जब एक बार चरित्र पठित हो जाता है—जब प्रेमी वास्तव  
 प्रेम का आस्वादन कर लेता है और जब प्रेम की प्रबल उत्पत्ति का भी उसे जोड़ा  
 सा अनुभव हो जाता है, तब उसके लिए नीतिशास्त्र और शासन-नियम आदि की  
 कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। प्रेमी कहता है कि भगवान् को महामहिम  
 ऐश्वर्यशाही प्रसन्नता या श्रेष्ठते के रूप में सोचने की मेरी इच्छा ही नहीं होती।  
 भगवान् के साथ सम्बन्धित यह जो मयोत्पादक ऐश्वर्य की भावना है, उसीको  
 दूर करने के लिए वह भगवान् को अपनी सन्तान के रूप में प्यार करता है। माता  
 पिता अपने बच्चे से ममता नहीं होती उसके प्रति उनकी मर्यादा नहीं होती। वे  
 उस बच्चे से कुछ माँगना नहीं करते। बच्चा तो सदा पानेबाजा ही होता है और  
 उसके लिए वे लोभ ही बार भी मरने को तैयार रहते हैं। अपने एक बच्चे के लिए  
 वे लोभ इतना जीवन भी त्योछाकर करम को प्रस्तुत करते हैं। बस इसी प्रकार  
 भगवान् से वात्सल्य-भाव से प्रेम किया जाता है। जो सम्प्रदाय भगवान् के  
 अवतार में विश्वास करते हैं, जमीने यह वात्सल्य भाव की उत्पत्ति आध्यात्मिक

रूप से आती और पनपती है। मुसलमानों के लिए भगवान् को एक सन्तान के रूप में मानना असम्भव है, वे तो डरकर इस भाव से दूर ही रहेंगे। पर ईसाई और हिन्दू इसे सहज ही समझ सकते हैं, क्योंकि उनके तो बाल ईसा और बाल कृष्ण हैं। भारतीय रमणियाँ बहुधा अपने आपको श्री कृष्ण की माता के रूप में सोचती हैं। ईसाई माताएँ भी अपने आपको ईसा की माता के रूप में सोच सकती हैं। इससे पाश्चात्य देशों में ईश्वर के मातृभाव का प्रचार होगा, और इसीकी आज उन्हें विशेष आवश्यकता है। भगवान् के प्रति भय और भक्ति के कुसस्कार हमारे हृदय में बहुत गहरे जमे हुए हैं और भगवत्सम्बन्धी इन भय और भक्ति तथा महिमा-ऐश्वर्य के भावों को प्रेम में विलकुल निमग्न कर देने में बहुत समय लगता है।

प्रेम का यह दिव्य रूप एक और मानवीय भाव में प्रकाशित होता है। उसे 'मधुर' कहते हैं और वही सब प्रकार के प्रेमों में श्रेष्ठ है। इस ससार में प्रेम की जो उच्चतम अभिव्यक्ति है, वही उसकी नींव है और मानवीय प्रेमों में वही सबसे प्रबल है। पुरुष और स्त्री के बीच जो प्रेम रहता है, उसके समान और कौन सा प्रेम है, जो मनुष्य की सारी प्रकृति को बिल्कुल उलट-पलट दे, जो उसके प्रत्येक परमाणु में संचरित होकर उसको पागल बना दे, उसकी अपनी प्रकृति को ही भुला दे, और उसे चाहे तो देवता बना दे, चाहे दैत्य ? दैवी प्रेम के इस मधुर भाव में भगवान् का चिन्तन पतिरूप में किया जाता है—ऐसा विचार कि हम सभी स्त्रियाँ हैं, इस ससार में और कोई पुरुष नहीं, एक ही पुरुष है और वह है हमारा प्रेमास्पद भगवान्। जो प्रेम पुरुष स्त्री के प्रति और स्त्री पुरुष के प्रति प्रदर्शित करती है, वही प्रेम भगवान् को देना होगा।

हम इस ससार में जितने प्रकार के प्रेम देखते हैं, जिनके साथ हम अल्प या अधिक परिमाण में क्रीडा मात्र कर रहे हैं, उन सबका एक ही लक्ष्य है और वह है भगवान्। पर दुख की बात है कि मनुष्य उस अनन्त समुद्र को नहीं जानता, जिसकी ओर प्रेम की यह महान् सरिता सतत प्रवाहित हो रही है, और इसलिए अज्ञानवश वह इस प्रेम-सरिता को बहुधा छोटे छोटे मानवी पुतलों की ओर वहाने का प्रयत्न करता रहता है। मानवी प्रकृति में सन्तान के प्रति जो प्रबल स्नेह देखा जाता है, वह सन्तान-रूपी एक छोटे से पुतले के लिए ही नहीं है। यदि तुम आँखें बन्द कर उसे केवल सन्तान पर ही न्योछावर कर दो, तो तुम्हें उसके फलस्वरूप दुःख अवश्य भोगना पड़ेगा। पर इस प्रकार के दुःख से ही तुममें यह चेतना जाग्रत होगी कि यदि तुम अपना प्रेम किसी मनुष्य को अर्पित करो, तो उसके फलस्वरूप कभी न कभी दुःख-

फिर बस्य या अधिक समय तक बिभ्राम—उसके बाद फिर से बेस का आरम्भ—  
 पुनः जन्म की सृष्टि ! जब तुम भूल जाते हो कि यह सब एक बेस है और तुम  
 इस बेस में सहायता कर रहे हो तभी कुछ और कष्ट तुम्हारे पास आते हैं तब  
 हृदय घारी हो जाता है और संसार अपने प्रबन्ध बोस से तुम्हें घना देता है।  
 पर ज्यों ही तुम इस बोस के जीवन की परिवर्तनशील घटनाओं को सत्य समझना  
 छोड़ देते हो और इस संसार को एक श्रीकामूमि तथा अपने आपको भयवान् की क्रीड़ा  
 में एक सच्चा-संघी सोचने लगते हो त्यों ही दुःख-कष्ट चला जाता है। वह तो प्रत्येक  
 भक्त-परमात्मा में बेस रहा है। वह तो बेकठे बेकठे ही पृथ्वी सूर्य चन्द्र आदि का  
 निर्माण कर रहा है। वह तो मानव-हृदय प्राणियों और पेड़-पौधों के साथ श्रीक्रीडा  
 कर रहा है। हम मानो उसने धातुरूप के मोहरे हैं। वह मोहरों को धातुरूप  
 के लानो में बिछकर इधर-उधर चला रहा है। वह हमें कभी एक प्रकार से  
 सजाता है और कभी दूसरे प्रकार से—हम भी जाने या अनुजाने उसके बेस  
 में सहायता कर रहे हैं। अहा कैसा परमात्मन् है ! हम सब उसके बेस के साथी  
 जो हैं।

इसके बाद है 'वात्सल्य' प्रेम। उसमें भगवान् का चिन्तन पिता-स्व से न  
 करके सन्तान-स्व से करना पड़ता है। हो सकता है यह कुछ अजीब सा भाव  
 हो पर उसका उद्देश्य है—अपनी भगवान् सम्बन्धी धारणा से ऐश्वर्य के समस्त  
 भाव दूर कर देना। ऐश्वर्य की भावना के साथ ही मम आता है। पर प्रेम में मम  
 का कोई स्थान नहीं। यह सत्य है कि अरिज-गठन के लिए भक्ति और आत्मा  
 पावन आवश्यक है पर जब एक बार अरिज मलिन हो जाता है—जब प्रेमी सन्त  
 प्रेम का आस्वादन कर लेता है और जब प्रेम की प्रबल उन्मत्तता का भी उसे जोड़ा  
 सा अनुभव हो जाता है, तब उसके लिए नीतिशास्त्र और साधन-नियम आदि की  
 कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। प्रेमी कहता है कि भगवान् का महामहिम  
 ऐश्वर्यघाती जगन्नाथ या देवदेव के रूप में सोचने की मेरी इच्छा ही नहीं होती।  
 भगवान् के साथ सम्बन्धित यह जो मयोत्पादक ऐश्वर्य की भावना है, उसीको  
 दूर करने के लिए वह भगवान् को अपनी सन्तान के रूप में प्यार करता है। माता  
 पिता अपने बच्चे से मयमिष्ट नहीं होते उनके प्रति उनकी यत्ना नहीं होती। वे  
 उस बच्चे से कुछ माचना नहीं करते। बच्चा तो सरा पानेवाला ही होता है और  
 उसके लिए वे लोग ही बार भी मरने को तैयार रहते हैं। अपने एक बच्चे के लिए  
 वे लोग हजार जीवन भी म्योछाकर करने को प्रस्तुत रहते हैं। वस इसी प्रकार  
 भगवान् से वात्सल्य भाव से प्रेम किया जाता है। जो सम्प्रदाय भगवान् के  
 अवतार में विरवास करते हैं, उन्हींमें यह वात्सल्य-भाव की उपासना स्वाभाविक



उपयोगी मानकर ग्रहण करते हैं। पर मूर्ख लोग इसे नहीं समझते—और वे कभी ममझेंगे भी नहीं। वे उसे केवल भौतिक दृष्टि से देखते हैं। वे इस आध्यात्मिक प्रेमोन्मत्तता को नहीं समझ पाते। और वे समझ भी कैसे सके? 'हे प्रियतम, तुम्हारे अधरो के केवल एक चुम्बन के लिए! जिसका तुमने एक बार चुम्बन किया है, तुम्हारे लिए उसकी पिपासा बढ़ती ही जाती है। उसके समस्त दुःख चले जाते हैं। वह तुम्हें छोड़ और सब कुछ भूल जाता है।' प्रियतम के उस चुम्बन के लिए—उनके अधरो के उस स्पर्श के लिए व्याकुल होओ, जो भक्त को पागल कर देता है, जो मनुष्य को देवता बना देता है। भगवान् जिसको एक बार अपना अधरामृत देकर कृतार्थ कर देते हैं, उसकी सारी प्रकृति विलकुल बदल जाती है। उसके लिए यह जगत् उड़ जाता है, सूर्य और चन्द्र का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता और यह सारा विश्व-ब्रह्माण्ड एक बिन्दु के समान प्रेम के उस अनन्त सिन्धु में न जाने कहाँ विलीन हो जाता है। प्रेमोन्माद की यही चरम अवस्था है।

पर सच्चा भगवत्प्रेमी यहाँ पर भी नहीं रुकता, उसके लिए तो पति और पत्नी की प्रेमोन्मत्तता भी यथेष्ट नहीं। अतएव ऐसे भक्त अवध (परकीय) प्रेम का भाव ग्रहण करते हैं, क्योंकि वह अत्यन्त प्रबल होता है। पर देखो, उसकी अवैधता उनका लक्ष्य नहीं है। इस प्रेम का स्वभाव ही ऐसा है कि उसे जितनी बाधा मिलती है, वह उतना ही उग्र रूप धारण करता है। पति-पत्नी का प्रेम अबाध रहता है—उसमें किसी प्रकार की विघ्न-बाधा नहीं आती। इसीलिए भक्त कल्पना करता है, मानो कोई स्त्री परपुरुष में आसक्त है और उसके माता, पिता या स्वामी उसके इस प्रेम का विरोध करते हैं। इस प्रेम के मार्ग में जितनी ही बाधाएँ आती हैं, वह उतना ही प्रबल रूप धारण करता जाता है। श्री कृष्ण वृन्दावन के कुंजों में किस प्रकार लीला करते थे, किस प्रकार सब लोग उन्मत्त होकर उनसे प्रेम करते थे, किस प्रकार उनकी वाँसुरी की मधुर तान सुनते ही चिरघन्य गोपियाँ सब कुछ भूलकर, इस ससार और इसके समस्त बन्धनों को भूलकर, यहाँ के सारे कर्तव्य तथा सुख-दुःख को विसराकर, उन्मत्त सी उनसे मिलने के लिए छूट पड़ती थी—यह सब मानवी भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। मानव, हे मानव, तुम दैवी प्रेम की बातें तो करते हो, पर

१ सुरतवर्धन शोकनाशन स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।

द्वतररागविस्मरण नृणा वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥

—श्रीमद्भागवत ॥१०।३१॥

कष्ट अवश्य प्राप्त होमा। बतएव हमे अपना प्रेम उसी पुष्पोत्तम को देना होया जिसका बिनास नहीं जिसमें कमी परिवर्तन नहीं और जिसके प्रेम-समुद्र में कमी उबार-माटा नहीं। प्रेम को अपने प्रकृत सक्षय पर पहुँचना चाहिए—उस तो उसके निकट जाना चाहिए, जो वास्तव में प्रेम का अनन्त सागर है। सभी नदियाँ समुद्र में ही जाकर गिरती हैं। यही तक कि पर्वत से गिरनेवाली पानी की एक बूँद भी वह फिर कितनी भी बड़ी क्यों न हो किसी क्षरते या नदी में पहुँचकर बस बही नहीं रुक जाती बरन् वह भी अन्त में किसी न किसी प्रकार समुद्र में ही पहुँच जाती है। भगवान् हमारे सब प्रकार के माँहों का एकमात्र सक्षय है। यदि तुम्हें श्लेष करना है, तो भगवान् पर श्लेष करो। उकाहना देना है, तो अपने प्रेमास्पद को उकाहना दो—अपने सखा को उकाहना दो। मला अस्य किसे तुम बिना उर के उकाहना दे सकते हो? मर्त्य बीच तुम्हारे श्लेष को न सह सकेगा। वही तो प्रतिक्रिया होगी। यदि तुम मूल पर श्लेष करो तो निश्चित है मैं तुरन्त प्रतिक्रिया करूँगा क्योंकि मैं तुम्हारे श्लेष को सह नहीं सकता। अपने प्रेमास्पद से क्यों प्रियतम तुम भरे वास क्यों नहीं करते? तुमने क्यों मुझे इस प्रकार अकेला छोड़ रखा है? उसको छोड़ मला और किसमें जानन्द है? मिट्टी के छोटे छोटे कौरा में मला कीन सा जानन्द हो सकता है? हमें तो अनन्त जानन्द के बनीमूत सार को ही श्लेषना है—और भगवान् ही जानन्द का वह बनीमूत सार है। माँहो हम अपने समस्त माँहों और समस्त प्रवृत्तियों को उसकी ओर मोड़ दें। वे सब उसीके लिए हैं। वे यदि अपना कर्म बूक जायें तो वे फिर कुत्सित रूप धारण कर लेंगे। पर यदि वे अपने ठीक कर्म-स्वरूप ईश्वर में जाकर पहुँचें तो उनसे अत्यन्त नीच वृत्ति भी पूर्वश्लेष परिवर्तित हो जायगी। भगवान् ही मनुष्य के मन और शरीर की समस्त सक्तियों का एकमात्र सक्षय है—एकामन है—फिर वे शक्तियाँ किसी भी रूप से क्यों न प्रकट हो। मानव-हृदय का समस्त प्रेम—सारे मान भगवान् की ही ओर जायें। वही हमारा एकमात्र प्रेमास्पद है। यह मानव-हृदय भला और किसे प्यार करेगा? वह परम सुन्दर है, परम महान् है—बहा! वह साक्षात् सौन्दर्यस्वरूप है दिव्यता स्वल्प है। इस ससार में भला और कीन है जो उससे अधिक सुन्दर हो? उसे छोड़ इन दुनिया में भला और कीन पति होने के उपयुक्त है? उसके सिवा इस जगत् में भला और कीन हमारा प्रेम-पात्र हो सकता है? अन वही हमारा पति ही, वही हमारा प्रेमास्पद हो।

बहुधा ऐसा होता है कि भयबलप्रम में उनके भक्तगण जब इस भयबलप्रम का वर्णन करते जाते हैं तो इसके लिए वे सब प्रकार के मानवी प्रेम की मापा को

## उपसंहार

जब प्रेम का यह उच्चतम आदर्श प्राप्त हो जाता है, तो ज्ञान फिर न जाने कहाँ चला जाता है। तब भला ज्ञान की इच्छा भी कौन करे? तब तो मुक्ति, उद्धार, निर्वाण की बातें न जाने कहाँ गायब हो जाती हैं। इस दैवी प्रेम में छके रहने से फिर भला कौन मुक्त होना चाहेगा? 'प्रभो! मुझे धन, जन, सौन्दर्य, विद्या, यहाँ तक कि, मुक्ति भी नहीं चाहिए। वस, इतनी ही साध है कि जन्म जन्म में तुम्हारे प्रति मेरी अहैतुकी भक्ति बनी रहे।' भक्त कहता है, "मैं शक्कर हो जाना नहीं चाहता, मुझे तो शक्कर खाना अच्छा लगता है।" तब भला कौन मुक्त हो जाने की इच्छा करेगा? कौन भगवान् के साथ एक हो जाने की कामना करेगा? भक्त कहता है, "मैं जानता हूँ कि मैं ही वह हूँ, तो भी मैं उससे अपने को अलग रखूँगा और उससे पृथक् रहूँगा, ताकि मैं उस प्रियतम में आनन्द ले सकूँ।" प्रेम के लिए प्रेम—यही भक्त का सर्वोच्च सुख है। प्रियतम में आनन्द लेने के लिए कौन हजार बार भी बद्ध होने को तैयार न होगा? एक सच्चा भक्त प्रेम को छोड़ और किसी वस्तु की कामना नहीं करता। वह स्वयं प्रेम करना चाहता है, और चाहता है कि भगवान् भी उससे प्रेम करे। उसका निष्काम प्रेम नदी के प्रवाह की विरुद्ध दिशा में जानेवाले ज्वार के समान है। वह मानो नदी के उद्गम-स्थान की ओर, स्रोत की विपरीत दिशा में जाता है। ससार उसको पागल कहता है। मैं एक ऐसे महापुरुष<sup>३</sup> को जानता हूँ, जिन्हें लोग पागल कहते थे। इस पर उसका उत्तर था, "भाइयो, सारा ससार ही तो एक पागलखाना है। कोई सासारिक प्रेम के पीछे पागल है, कोई नाम के पीछे, कोई यश के लिए, तो कोई पैसे के लिए। फिर कोई ऐसे भी हैं, जो उद्धार पाने या स्वर्ग जाने के लिए पागल हैं। इस विराट् पागलखाने में मैं भी एक पागल हूँ—मैं भगवान् के लिए पागल हूँ। तुम पैसे के लिए पागल हो, और मैं भगवान् के लिए। जैसे तुम पागल हो, वैसा ही मैं भी। फिर भी मैं सोचता हूँ कि मेरा ही पागलपन सबसे उत्तम है।" यथार्थ भक्त के प्रेम में इसी प्रकार की तीव्र उन्मत्तता रहती है और

साथ ही इस सभार की बभार बस्तुओं में भी मन विये रहते हो—क्या तुम सन्ने हो? 'जहाँ राम हैं वहाँ काम नहीं और जहाँ काम है वहाँ राम नहीं। वे दोनों कभी एक साथ नहीं रह सकते—मकास और मन्वकार क्या कभी एक साथ रहे हैं?'<sup>१</sup>

---

१ जहाँ राम तर्ह काम नहीं जहाँ काम तर्ह राम।

तुलसी कबहूँ होत नहीं, रवि रजनी इक ठाम ॥ तुलसीदास ॥

## उपसंहार

जब प्रेम का यह उच्चतम आदर्श प्राप्त हो जाता है, तो ज्ञान फिर न जाने कहाँ चला जाता है। तब भला ज्ञान की इच्छा भी कौन करे? तब तो मुक्ति, उद्धार, निर्वाण की बातें न जाने कहाँ गायब हो जाती हैं। इस दैवी प्रेम में छके रहने से फिर भला कौन मुक्त होना चाहेगा? 'प्रभो! मुझे धन, जन, सौन्दर्य, विद्या, यहाँ तक कि, मुक्ति भी नहीं चाहिए। वस, इतनी ही साध है कि जन्म जन्म में तुम्हारे प्रति मेरी अहैतुकी भक्ति बनी रहे।' भक्त कहता है, "मैं शक्कर हो जाना नहीं चाहता, मुझे तो शक्कर खाना अच्छा लगता है।" तब भला कौन मुक्त हो जाने की इच्छा करेगा? कौन भगवान् के साथ एक हो जाने की कामना करेगा? भक्त कहता है, "मैं जानता हूँ कि मैं ही वह हूँ, तो भी मैं उससे अपने को अलग रखूँगा और उससे पृथक् रहूँगा, ताकि मैं उस प्रियतम में आनन्द ले सकूँ।" प्रेम के लिए प्रेम—यही भक्त का सर्वोच्च सुख है। प्रियतम में आनन्द लेने के लिए कौन हज़ार बार भी बद्ध होने को तैयार न होगा? एक सच्चा भक्त प्रेम को छोड़ और किसी वस्तु की कामना नहीं करता। वह स्वयं प्रेम करना चाहता है, और चाहता है कि भगवान् भी उससे प्रेम करे। उसका निष्काम प्रेम नदी के प्रवाह की विरुद्ध दिशा में जानेवाले ज्वार के समान है। वह मानो नदी के उद्गम-स्थान की ओर, स्रोत की विपरीत दिशा में जाता है। ससार उसको पागल कहता है। मैं एक ऐसे महापुरुष<sup>१</sup> को जानता हूँ, जिन्हें लोग पागल कहते थे। इस पर उसका उत्तर था, "भाइयो, सारा ससार ही तो एक पागलखाना है। कोई सासारिक प्रेम के पीछे पागल है, कोई नाम के पीछे, कोई यश के लिए, तो कोई पैसे के लिए। फिर कोई ऐसे भी हैं, जो उद्धार पाने या स्वर्ग जाने के लिए पागल हैं। इस विराट् पागलखाने में मैं भी एक पागल हूँ—मैं भगवान् के लिए पागल हूँ। तुम पैसे के लिए पागल हो, और मैं भगवान् के लिए। जैसे तुम पागल हो, वैसा ही मैं भी। फिर भी मैं सोचता हूँ कि मेरा ही पागलपन सबसे उत्तम है।" यथार्थ भक्त के प्रेम में इसी प्रकार की तीव्र उन्मत्तता रहती है और

१ शिक्षाष्टक ॥४॥

२ श्री रामकृष्ण परमहंस ।

इसके सामने अन्य सब कुछ उड़ जाता है। उसके लिए तो यह साधक अन्तःकरण प्रेम से भरता है—प्रेमी को बस ऐसा ही वीक्षता है। जब मनुष्य में यह प्रेम प्रवेश करता है तो वह चिरकाल के लिए सुखी चिरकाल के लिए मुक्त हो जाता है। और ईश्वरी प्रेम को यह पवित्र उन्मत्तता ही हममें समाप्ती हुई सत्कार-व्याधि को सब के लिए दूर कर दे सकती है। उससे वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं और वासनाओं के साथ ही स्वार्थपरता का भी नाश हो जाता है। तब अन्तःकरण मनुष्य के समीप बसा जाता है क्योंकि उसने उन सब असार वासनाओं को फेंक दिया है, जिससे वह पहले भरता हुआ था।

प्रेम के बर्णन में हमें ईश्वर-भाव से आरम्भ करना पड़ता है। उस समय हमारे लिए मनुष्य हमसे भिन्न रहता है और हम भी अपने को उससे भिन्न समझते हैं। फिर प्रेम बीच में आ जाता है। तब मनुष्य मनुष्य की ओर अग्रसर होने लगता है और मनुष्य भी अन्तःकरण मनुष्य के अधिकाधिक निकट आने लगता है। मनुष्य सत्कार के सारे सम्बन्ध—पिता माता पुत्र सत्ता स्वामी प्रेमी आदि भाव—फैला है और अपने प्रेम के आदर्श मनुष्य के प्रति उन सबको आरोपित करता जाता है। उसके लिए मनुष्य इन सभी रूपों में विद्यमान है और उसकी उन्नति की चरम अवस्था तो यह है, जिसमें वह अपने अस्वभाव में सम्पूर्ण रूप से निमग्न हो जाता है। हम सबका पहले अपने प्रति प्रेम रहता है, और इस शुद्ध अहं-भाव का असंगत बाधा प्रेम को भी स्वार्थपर बना देता है। परन्तु अन्त में ज्ञान-व्योमि का मरुपुर प्रकाश जाता है, जिसमें यह शुद्ध अहं उस अन्त के साथ एक हो जाता है। इस प्रेम के प्रकाश में मनुष्य स्वयं सम्पूर्ण रूप से परिवर्तित हो जाता है और अन्त में इस सुन्दर और प्राणी को उन्मत्त बना देने वाले सत्य का अनुभव करता है कि प्रेय प्रेमी और प्रेयास्पद तीनों एक ही हैं।

व्याख्यान, प्रवचन एवं कक्षालाप-४  
(राजयोग)

## राजयोग पर छः पाठ<sup>१</sup>

ससार के अन्य विज्ञानों की भाँति राजयोग भी एक विज्ञान है। यह विज्ञान मन का विश्लेषण तथा अतीन्द्रिय जगत् के तथ्यों का सकलन करता है और इस प्रकार आध्यात्मिक जगत् का निर्माता है। ससार के सभी महान् उपदेष्टाओं ने कहा है, “हमने देखा और जाना है।” ईसा, पॉल और पीटर सभी ने जिन सत्यों की शिक्षा दी, उनका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने का दावा किया है।

यह प्रत्यक्ष अनुभव योग द्वारा प्राप्त होता है।

हमारे अस्तित्व की सीमा चेतना अथवा स्मृति नहीं हो सकती। एक अति-चेतन भूमिका भी है। इसमें और सुषुप्ति में सवेदनाएँ नहीं प्राप्त होती। किन्तु इन दोनों के बीच ज्ञान और अज्ञान जैसा आकाश-पाताल का भेद है। यह आलोच्य योगशास्त्र ठीक विज्ञान के ही समान तर्कसंगत है।

मन की एकाग्रता ही समस्त ज्ञान का उत्स है।

योग हमें जड-तत्त्व को अपना दास बनाने की शिक्षा देता है, और उसको हमारा दास होना ही चाहिए। योग का अर्थ जोड़ना है अर्थात् जीवात्मा को परमात्मा के साथ जोड़ना, मिलाना।

मन चेतना में और उसके अधीन कार्य करता है। हम लोग जिसे चेतना कहते हैं, वह हमारे स्वरूप की अनन्त श्रृंखला की एक कड़ी मात्र है।

हमारा यह ‘अहम्’ किंचित् मात्र चेतना और अचेतनता के विपुल परिणाम को आच्छादित करता है, जब कि उसके परे, और उसकी प्रायः अज्ञात, अतिचेतन की भूमिका है।

श्रद्धाभाव से योगाभ्यास करने पर मन का एक के बाद एक स्तर खुलता जाता है और प्रत्येक, नये तथ्यों को प्रकाशित करता है। हम अपने सम्मुख नये जगतों

---

१ इन पाठों की रचना स्वामी विवेकानन्द द्वारा अमेरिकन भक्त शिष्या श्रीमती सारा सी० वुल के निवास-स्थान पर कुछ घनिष्ठ श्रोताओं के सम्मुख दिये गये कक्षालापों के आधार पर हुई है, जो उनके द्वारा सुरक्षित रखे गये थे और जो अन्त में सन् १९१३ में निजी मडली में वितरित करने के लिए मुद्रित किये गये थे। स०



की सृष्टि होती थी देखत हैं नयी पक्षियाँ हमारे हाथों में आ जाती हैं किन्तु हमें माय में ही नहीं रुक जाना चाहिए, और जब हमारे सामने हीरों की खान पड़ी हो तो हीरों के बानों से हमें चौबिया नहीं जाना चाहिए।

केवल ईश्वर ही हमारा सख्य है। उसकी प्राप्ति न ही पाना ही हमारी मृत्यु है।

मकसदाकाशी साधक के लिए तीन बातों की आवश्यकता है।

पहली है ऐहिक और पारलौकिक इन्द्रिय भोग-वासना का त्याग और केवल भगवान् और सत्य का सख्य बनाना। हम यहाँ सत्य की उपलब्धि के लिए हैं, भोग के लिए नहीं। भोग पशुओं के लिए छोड़ दो जिनको हमारी अपेक्षा उसमें कहीं अधिक खानम्ब मिलता है। मनुष्य एक विचारशील प्राणी है, और मृत्यु पर विजय तथा प्रकाश को प्राप्त कर लेने तक उसे संघर्ष करते ही रहना चाहिए। उस क्रिष्ण की बातचीत में अपनी पक्षि नष्ट नहीं करनी चाहिए। समाज की पूजा एवं लोकप्रिय जनमत मूर्ति-पूजा ही है। आत्मा का सिद्ध देण त्याग या काम नहीं होता।

दूसरी है सत्य और समत्वप्राप्ति की तीव्र आकांक्षा। जब मैं बूढ़ता मनुष्य जैसे शायु के लिए व्याकुल होता हूँ, वैसे ही व्याकुल हो जाओ। केवल ईश्वर की ही चाहो और कुछ भी स्वीकार न करो जो आभासी मात्र है। उससे बोझा न जाओ। सबसे विमुख होकर केवल ईश्वर की खोज करो।

तीसरी बात में छः अभ्यास हैं

(१) मन को बहिर्मुख न होने देना।

(२) इन्द्रिय-निग्रह।

(३) मन की मन्तर्मुख बनाना।

(४) निजिरोध सहिष्णुता या पूर्ण तितिक्षा।

(५) मन को एक मात्र में स्थिर रखना। ज्येष्ठ को सम्मुख रखो और उसका चिन्तन करो। कभी अक्षय न करो। समय की गणना न करो।

(६) अपने स्वरूप का सतत चिन्तन करो।

अंधविश्वास का परित्याग कर दो। अपनी तुच्छता के विश्वास में अपने को सम्मोहित न करो। जब तक तुम ईश्वर के साथ एकात्मकता की अनुभूति (वास्तविक अनुभूति) न करो तो तब तक रात-दिन अपने आपको बतते रहो कि तुम यथार्थतः क्या हो।

इन साधनाओं के बिना कोई भी फल प्राप्त नहीं हो सकता।

इस ज्ञान की धारणा कर सकते हैं, पर उसे भाषा के द्वारा व्यक्त करना

असम्भव है। जैसे ही हम उसे अभिव्यक्त करने की चेष्टा करते हैं, वैसे ही हम उसे सीमित बना डालते हैं और वह ब्रह्म नहीं रह जाता।

हमें इन्द्रिय-जगत् की सीमाओं के परे जाना है और बुद्धि से भी अतीत होना है। ऐसा करने की हममें शक्ति है।

[एक सप्ताह तक प्राणायाम के प्रथम पाठ का अभ्यास करने के पश्चात् शिष्य को चाहिए कि वह गुरु को अपना अनुभव बताये।]

### प्रथम पाठ

इस पाठ का उद्देश्य व्यक्तित्व का विकास है। प्रत्येक व्यक्तित्व का विकास आवश्यक है। सभी एक केन्द्र में मिल जायेंगे। 'कल्पना प्रेरणा का द्वार और समस्त विचार का आधार है।' सभी पैगम्बर, कवि और अन्वेषक महती कल्पना-शक्ति से सम्पन्न थे। प्रकृति की व्याख्या हमारे भीतर है, पत्थर बाहर गिरता है, लेकिन गुस्त्वाकर्षण हमारे भीतर है, बाहर नहीं। जो अति आहार करते हैं, जो उपवास करते हैं, जो अत्यधिक सोते हैं, जो अत्यल्प सोते हैं, वे योगी नहीं हो सकते। अज्ञान, चंचलता, ईर्ष्या, आलस्य और अतिशय आसक्ति योग-सिद्धि के महान् शत्रु हैं। योगी के लिए तीन बड़ी आवश्यकताएँ हैं

प्रथम—शारीरिक और मानसिक पवित्रता, प्रत्येक प्रकार की मलिनता तथा मन को पतन की ओर ढकेलनेवाली सभी बातों का परित्याग आवश्यक है।

द्वितीय—धैर्य प्रारम्भ में आश्चर्यजनक दृश्य प्रकट होंगे, पर बाद में वे सब अन्तर्हित हो जायेंगे। यह सबसे कठिन समय है। पर दृढ़ रहो, यदि धैर्य रखोगे, तो अन्त में सिद्धि सुनिश्चित है।

तृतीय—लगन सुख-दुःख, स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य सभी दशाओं में साधना में एक दिन का भी नागा न करो।

साधना का सर्वोत्तम समय दिन और रात की सधि का समय है। यह हमारे शरीर की हलचल के शान्त रहने का समय है—दो दशाओं के मध्य का शून्य-स्थल है। यदि इस समय न हो सके, तो उठने के ही बाद और सोने के पूर्व अभ्यास करो। नित्य स्नान—शरीर को अधिक से अधिक स्वच्छ रखना—आवश्यक है।

स्नान के पश्चात् बैठ जाओ। आसन दृढ़ रखो अर्थात् ऐसी भावना करो कि तुम चट्टान की भाँति दृढ़ हो, कि तुम्हें कुछ भी विचलित करने में समर्थ नहीं है। कंधे, सिर और कमर एक सीधी रेखा में रखो, पर भ्रूण के ऊपर जोर न डालो,

घारी क्रिया हमीके सहारे होती है अतः इसको धारि पहुँचानेवाला कोई कार्य न होना चाहिए।

अपने पैर की अँगुलियों से आरम्भ करके अगल घरीर के प्रत्येक अंग की स्थिरता की भावना करो। इस भावना अपने में चिन्तन करो और यदि चाहो तो प्रत्येक का स्पर्श करो। प्रत्येक का पूर्ण अर्माण उसमें कोई विकार नहीं है, सोचते हुए धीरे धीरे ऊपर चढ़कर सिर तक आओ। तब समस्त घरीर के पूर्व होने के भावना चिन्तन करो यह सोचते हुए कि मुझे सत्य का साक्षात्कार करने के हेतु यह ईश्वर द्वारा प्रदत्त सम्पत्ति है। यह वह नीका है जिस पर बैठकर तुम्हें ससार समुद्र पार करके अमल सत्य के तट पर पहुँचना है। इस क्रिया के पश्चात् अपनी नासिका के दोनों छिद्रों से एक शीर्ष द्वास लो और फिर उसे बाहर निकालो। इसके पश्चात् जितनी बेर तक सरलतापूर्वक बिना द्वास लिये रहु सको रहो। इस प्रकार के चार प्राणायाम करो और फिर स्वाभाविक रूप से द्वास लो और भगवान् से ज्ञान के प्रकाश के लिए प्रार्थना करो।

"मैं उस सत्ता की महिमा का चिन्तन करता हूँ जिसने विश्व की रचना की है वह मेरे मन की प्रबुद्ध करे। बैठो और दस-पन्द्रह मिनट इस भावना का ध्यान करो।

अपनी अनुभूतियों को अपने मुख के अतिरिक्त और किसीको न बताओ। यथासम्भव कम से कम बात करो।

अपना चिन्तन सबसुनो पर बनावो हम जैसा सोचते हैं वैसे ही बन जाते हैं।

पवित्र चिन्तन हमें अपनी समस्त मानसिक सक्रियताओं को भस्म करने में सहायता देता है। जो ओमी नहीं है, वह बास है। मुक्ति-काम के हेतु एक एक करके सभी बन्धन काटने होंगे।

इस जगत् के परे जो सत्य है, उसको सभी लोग जान सकते हैं। यदि ईश्वर की सत्ता सत्य है तो अबस्य ही हमें उसको एक तन्त्र के रूप में अनुभव करना चाहिए और यदि आत्मा जैसी कोई सत्ता है, तो हमें उसे देखने और अनुभव करने से समर्थ होना चाहिए।

यदि आत्मा है, तो उसका साक्षात्कार करने के लिए हमें कुछ ऐसा बनना पड़ेगा जो घरीर नहीं है।

योयी इन्द्रियों को दो मुख्य वर्गों में विभाजित करते हैं ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ अबका ज्ञान और कर्म।

अन्तरिन्द्रिय या मन के चार स्तर हैं प्रथम—मनस् अर्थात् मनन अबका चिन्तन-कर्म। इसको समझ न करने पर प्रायः इसकी समस्त शक्ति लुप्त हो

जाती है। उचित समय किये जाने पर यह अद्भुत शक्ति बन जाती है। द्वितीय—बुद्धि अर्थात् इच्छा-शक्ति (इसको बोध-शक्ति भी कहा जाता है)। तृतीय—अहंकार अर्थात् आत्मचेतन अहंबुद्धि। चतुर्थ—चित्त अर्थात् वह तत्त्व, जिसके आधार और माध्यम से समस्त शक्तियाँ क्रियाशील होती हैं, मानो यह मन का धरातल है अथवा वह समुद्र है, जिसमें समस्त क्रिया-शक्तियाँ तरंगों का रूप धारण किये हुए हैं।

योग वह विज्ञान है, जिसके द्वारा हम चित्त को अनेक क्रिया-शक्तियों का रूप धारण करने अथवा उनमें रूपान्तरित होने से रोकते हैं। समुद्र में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जिस प्रकार तरंगों के कारण अस्पष्ट अथवा विच्छिन्न हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा अर्थात् सत्स्वरूप का प्रतिबिम्ब भी मन की तरंगों से विच्छिन्न हो जाता है। केवल जब समुद्र दर्पण की भाँति तरंगशून्य होकर शान्त हो जाता है, तभी चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ता है। उसी प्रकार जब चित्त अर्थात् मनस्समय के द्वारा सम्पूर्ण रूप से शान्त हो जाता है, तभी स्वरूप का साक्षात्कार होता है।

यद्यपि चित्त सूक्ष्मतर रूप में जड़ है, तथापि वह देह नहीं है। वह देह द्वारा चिरकाल तक आबद्ध नहीं रहता। पर इस बात से सिद्ध होता है कि हम कभी कभी देहभाव से परे हो जाते हैं। अपनी इन्द्रियों को वशीभूत करके हम इच्छानुसार इस बात का अभ्यास कर सकते हैं।

यदि हम ऐसा करने में पूर्ण समर्थ हो जायँ, तो समस्त विश्व हमारे वश में हो जाय, क्योंकि हमारी इन्द्रियों को लेकर ही यह जगत् है। स्वाधीनता ही उच्च जीवन की कसौटी है। आध्यात्मिक जीवन उस समय प्रारम्भ होता है, जिस समय तुम अपने को इन्द्रियों के बधन से मुक्त कर लेते हो। जो इन्द्रियों के अधीन हैं, वही ससारी हैं, वही दास हैं।

चित्त को तरंगों का रूप धारण करने से रोकने में पूर्ण समर्थ होने पर हमारी देह का नाश हो जाता है। इस देह को तैयार करने में करोड़ों वर्षों से हमें इतना कड़ा परिश्रम करना पड़ा है कि उसी चेष्टा में व्यस्त रहते रहते हम यह भूल गये कि इस देह की प्राप्ति का वास्तविक उद्देश्य पूर्णता-प्राप्ति है। हम सोचने लगे हैं कि हमारी समस्त चेष्टाओं का लक्ष्य इस देह की तैयारी है। यही मामा है। हमें इस भ्रम को मिटाना होगा और अपने मूल उद्देश्य की ओर जाकर इस बात का अनुभव करना होगा कि हम देह नहीं हैं, यह तो हमारा दास है।

मन को अलग करके उसे देह से पृथक् देखना सीखो। हम देह के ऊपर सवेदना और प्राण को आरोपित करते हैं और फिर सोचते हैं कि वह चेतन और मत्य

है। हम इतने दीर्घकाल से यह खोल पहने हुए हैं कि भूल जाते हैं कि हम और वेह एक नहीं हैं। योग हमें देह को दृष्टानुसार बलन करने तथा उसे अपने हाथ अपने सामन न कि स्वामी के रूप में देखने में सहायता करता है। योगाभ्यास का प्रथम प्रमुख उद्देश्य मानसिक शक्तियों का नियंत्रण करना है। दूसरा उन्हें पूर्ण शक्ति लगाकर किसी एक विषय पर केन्द्रित करना है।

यदि तुम बहुत बात करते हो तो तुम योगी नहीं हो सकते।

### द्वितीय पाठ

इस योग का नाम अष्टांग योग है, क्योंकि इसको प्रथमतः आठ भागों में विभक्त किया गया है। वे हैं

प्रथम—सम। यह सर्वांगिक महत्त्वपूर्ण है और सारा जीवन इसके द्वारा शासित होना चाहिए। इसके पाँच विभाग हैं

- (१) मन कर्म बचन से हिंसा न करना।
- (२) मन कर्म बचन से झोम न करना।
- (३) मन कर्म और बचन की पवित्रता।
- (४) मन कर्म और बचन की पूर्ण सत्यता।
- (५) अपरिग्रह (किसीसे कोई बात न लेना)।

द्वितीय—नियम। शरीर की देहमात्र नित्य स्नान परिमित आहार इत्यादि।

तृतीय—वासन। मेरुदण्ड के ऊपर जोर न देकर कमर, घुँव और सिर सीधा रखना।

चतुर्थ—प्राणायाम। प्राणायाम बचन जीवन-शक्ति को बसीमूठ करने के लिए स्वाद्य-प्रश्वास का संयम।

पंचम—सत्याहार। मन को अस्तमुक्त करना तथा उसे बहिर्मुक्ती होने से रोकना अङ्ग-तत्त्व की समझने के लिए उसे मन में बुझाना बचाने उस पर बार बार विचार करना।

षष्ठ—धारणा। एक विषय पर ध्यान केन्द्रित करना।

सप्तम—ध्यान।

अष्टम—समाधि ज्ञानाकोक हमारी समस्त साधना का कर्म।

हमें सम-नियम का अभ्यास जीवनपर्यन्त करना चाहिए। जहाँ तक दूसरे अभ्यासों का सम्बन्ध है हम ठीक वैसा ही करते हैं, वैसा कि जोक बिना दूसरे

तिनके को दृढतापूर्वक पकडे पहलेवाले को नही छोडती है। दूसरे शब्दो मे हमे अपने पहले कदम को भली भाँति समझकर अम्यास कर लेना है और तब दूसरा उठाना है।

इस पाठ का विषय प्राणायाम अर्थात् प्राण का नियमन है। राजयोग मे प्राण-वायु चित्तभूमि मे प्रविष्ट होकर हमे आध्यात्मिक राज्य मे ले जाती है। यह समस्त देह्यत्र का मूल चक्र है। प्राण प्रथम फुफ्फुस पर क्रिया करता है, फुफ्फुस हृदय को प्रभावित करते हैं, हृदय रक्त-प्रवाह को और वह क्रमानुसार मस्तिष्क को तथा मस्तिष्क मन पर क्रिया करता है। जिस प्रकार इच्छा-शक्ति बाह्य सवेदन उत्पन्न करती है, उसी प्रकार बाह्य सवेदन इच्छा-शक्ति जाग्रत कर देता है। हमारी इच्छा-शक्ति दुर्बल है, हम जड-तत्त्व के इतने बधन मे हैं कि हम उसकी शक्ति को नही जान पाते। हमारी अधिकांश क्रियाएँ बाहर से भीतर की ओर होती हैं। बाह्य प्रकृति हमारे आन्तरिक साम्य को नष्ट कर देती है, किन्तु जैसा कि हमे चाहिए, हम उसके साम्य को नष्ट नही कर पाते। किन्तु यह सब भूल है। वास्तव मे प्रबलतर शक्ति तो भीतर की शक्ति है।

वे ही महान् सत और आचार्य है, जिन्होंने अपने भीतर के मनोराज्य को जीता है। और इसी कारण उनकी वाणी मे शक्ति थी। एक ऊँची मीनार पर बदी किये गये एक मन्त्री की कहानी<sup>१</sup> है। वह अपनी पत्नी के प्रयत्न से मुक्त हुआ। पत्नी भृगु, मधु, रेशमी सूत, सुतली और रस्सी लायी थी। यह रूपक इस बात को स्पष्ट करता है कि किस प्रकार हम रेशमी धागे की भाँति प्रथम प्राणवायु का नियमन करके अन्त मे एकाग्रतारूपी रस्सी पकड सकेंगे, जो हमे देहरूपी कारागार से निकाल देगी और हम मुक्ति प्राप्त करेंगे। मुक्ति प्राप्त कर लेने पर उसके हेतु प्रयुक्त साधनों का हम परित्याग कर सकते हैं।

प्राणायाम के तीन अंग हैं

- (१) पूरक—श्वास लेना।
- (२) कुम्भक—श्वास रोकना।
- (३) रेचक—श्वास छोटना।

मस्तिष्क मे से होकर मेरुदण्ड के दोनों ओर बहनेवाले दो शक्ति-प्रवाह हैं, जो मूलाधार मे एक दूसरे का अतिक्रमण करके मस्तिष्क मे लौट आते हैं। इन दोनों मे एक का नाम 'सूर्य' (पिंगला) है, जो मस्तिष्क के वाम गोलार्ध से प्रारम्भ होकर मेरुदण्ड के दक्षिण पाद मे मस्तिष्क के आधार (सहस्रार) पर एक दूसरे को लाँच-

१. कहानी के हेतु 'दिव्यमानन्द साहित्य', प्रथम खंड द्रष्टव्य। स०

कर पुनः मूलाधार पर अंग्रेजी के आठ (8) अंक के अर्ध भाग के आकार के समान एक दूसरे का फिर अतिक्रमण करती है।

दूसरे सक्ति-प्रवाह का नाम 'बन्ध' (बद्धा) है, जिसकी क्रिया उपर्युक्त क्रम के ठीक विपरीत है और जो इस आठ (8) अंक को पूर्ण बनाती है। हाँ इसका निम्न भाग ऊपरी भाग से कहीं अधिक लम्बा है। ये सक्ति प्रवाह दिन-रात सतिधीन रहते हैं और विभिन्न क्षेत्रों में जिन्हें हम 'बन्ध' कहते हैं बड़ी बड़ी जीवनी-सक्तियों का संघम क्रिया करते हैं। पर ध्यान ही हमें उनका ज्ञान हो। एकाग्रता हाथ हम उनका अनुभव कर सकते हैं और शरीर के विभिन्न अंगों में उनका पता लगा सकते हैं। इस 'सूर्य' और 'बन्ध' के सक्ति-प्रवाह स्वास-क्रिया के साथ अनिष्ट रूप से सम्बद्ध हैं और इसीके नियमन हाथ हम शरीर को नियमित करते हैं।

कठोपनिषद्<sup>1</sup> में वेद को रथ मन को अश्व इन्द्रियों को घोड़े विषय को पशु और बुद्धि को सारथी कहा गया है। इस रथ में बड़ी हुई आत्मा रथी है। यदि रथी समझदार नहीं है और सारथी से घोड़ों को नियंत्रित नहीं कर सकता तो वह कभी भी अपने ध्येय तक नहीं पहुँच सकता। अफिर, दुष्ट बस्वों के समान इन्द्रियाँ उसे नहीं चाहेंगी जीव के धर्मों। यही तक कि उसकी जान भी ले सकती हैं। वे जो सक्ति-प्रवाह सारथी के हाथों में रोकथाम के हेतु अश्वम हैं और बस्वों को अपने बस में करने के लिए उसे इनका ऊपर नियंत्रण करना आवश्यक है। नीतिपरायण होने की सक्ति हमें प्राप्त करनी ही है। जब तक हम उसे प्राप्त नहीं कर लेते हम अपने कर्मों को नियंत्रित नहीं कर सकते। नीतिविद्यार्थियों को कार्यक्षम में परिणत करने की सक्ति हमें केवल योग से ही प्राप्त हो सकती है। नीतिपरायण होता योग का उद्देश्य है। अमत् के सभी बड़े बड़े आचार्य योगी थे और उन्होंने प्रत्येक सक्ति प्रवाह को बस में कर रखा था। योगी इन दोनों प्रवाहों को मेरुदण्ड के तले में संयत करके उनको मेरुदण्ड के भीतर के केंद्र से होकर परिष्कार करते हैं। तब वे प्रवाह ज्ञान के प्रवाह बन जाते हैं। यह स्थिति केवल योगी की ही होती है।

प्राणावायु की द्वितीय शिक्षा कोई एक प्रवाही सभी के लिए नहीं है। प्राणा वायु का अत्युत्पन्न क्रमबद्धता के साथ होना आवश्यक है और इसकी सबसे सहज विधि गणना है। चूँकि यह (गणना) पूर्णरूपेण संभव ही जाती है, हम इसके बजाय एक निश्चित संख्या में पवित्र मंत्र ॐ का अपन करते हैं।

प्राणायाम की क्रिया इस प्रकार है दायें नथुने को अँगूठे से दबाकर चार वार 'ॐ' का जप करके धीरे धीरे दायें नथुने से श्वास लो।

तत्पश्चात् दायें नथुने पर तर्जनी रखकर दोनो नथुनो को कसकर बन्द कर दो और 'ॐ' का मन ही मन आठ वार जप करते हुए श्वास को भीतर रोके रहो।

पश्चात्, अँगूठे को दाहिने नथुने से हटाकर चार वार 'ॐ' का जप करते हुए उसके द्वारा धीरे धीरे श्वास को बाहर निकालो।

जब श्वास बाहर हो जाय, तब फुफ्फुस से समस्त वायु निकालने के लिए पेट को दृढतापूर्वक सकुचित करो। फिर दायें नथुने को बंद करके चार वार 'ॐ' का जप करते हुए दाहिने नथुने से श्वास भीतर ले जाओ। इसके बाद दाहिने नथुने को अँगूठे से बंद करो और आठ वार 'ॐ' का जप करते हुए श्वास को भीतर रोको। फिर दायें नथुने को खोलकर चार वार 'ॐ' का जप करते हुए पहले की भाँति पेट को सकुचित करके धीरे धीरे श्वास को बाहर निकालो। इस सारी क्रिया को प्रत्येक बैठक में दो वार दुहराओ अर्थात् प्रत्येक नथुने के लिए दो के हिसाब से चार प्राणायाम करो। प्राणायाम के लिए बैठने के पूर्व सारी क्रिया प्रार्थना से प्रारम्भ करना अच्छा होगा।

एक सप्ताह तक इस अभ्यास को करने की आवश्यकता है। फिर धीरे धीरे श्वास-प्रश्वास की अवधि को बढ़ाओ, किन्तु अनुपात वही रहे। अर्थात् यदि तुम श्वास भीतर ले जाते समय छ वार 'ॐ' का जप करते हो, तो उतना ही श्वास बाहर निकालते समय भी करो और कुम्भक के समय बारह बार करो। इन अभ्यासो के द्वारा हम और अधिक पवित्र, निर्मल और आध्यात्मिक होते जायेंगे। किसी विपथ में पडने से अथवा कोई शक्ति (सिद्धि) की चाह से बचे रहो। प्रेम ही एक ऐसी शक्ति है, जो चिरकाल तक हमारे साथ रहती है और बढ़ती जाती है। राजयोग के द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले व्यक्ति को मानसिक, शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से सबल होना आवश्यक है। अपना प्रत्येक कदम इन बातों को ध्यान में रखकर ही बढ़ाओ।

लाखों में कोई विरला ही कह सकता है, "मैं इस ससार के परे जाकर ईश्वर का साक्षात्कार करूँगा।" शायद ही कोई सत्य के सामने खड़ा हो सके। किन्तु अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए हमें मरने के लिए भी तैयार रहना पड़ेगा।



## तृतीय पाठ

कुंडलिनी आत्मा का अनुभव बड़ ब रूप में न करो बल्कि उसके सपार्थ स्वरूप को जानो। हम सोच आत्मा को बेह समझते हैं किन्तु हमारे लिए इसको इन्द्रिय और बुद्धि से अलग करके सोचना आवश्यक है। तभी हमें इस बात का ज्ञान होगा कि हम अमृतस्वरूप हैं। परिवर्तन से बाध्य है कार्य और कारण का ईत और जो कुछ भी परिवर्तित होता है, उसका नष्ट होना अवश्यम्भावी है। इससे यह सिद्ध होता है कि न तो शरीर और न मन अविनाशी हो सकते हैं क्योंकि दोनों में निरंतर परिवर्तन हो रहा है। केवल जो अपरिवर्तनीय है, वही अविनाशी हो सकता है क्योंकि उसे कुछ भी प्रभावित नहीं कर सकता।

हम शय्यस्वरूप हो नहीं पाते बल्कि हम शय्यस्वरूप हैं किन्तु हमें सत्य को आवृत्त करनेवाके अज्ञान के पदों को हटाना होता है। देह विचार का ही रूप है। 'सूर्य' और 'चन्द्र' शक्ति प्रवाह शरीर के सभी अंगों में शक्ति-संचार करते हैं। अवशिष्ट अतिरिक्त शक्ति सुषुम्ना के अन्तर्गत विभिन्न चक्रों अपना सामान्यतया विहित स्नायु-केन्द्र में संचित रहती है।

ये शक्ति-प्रवाह मृत देह में वृष्टिमत नहीं होते और केवल स्वल्प शरीर में ही देखे जा सकते हैं।

योगी को एक विशेष धुमिषा रहती है क्योंकि वह केवल इनका अनुभव ही नहीं करता अपितु उन्हें प्रत्यक्ष देखता भी है। वे उसके जीवन में ज्योतिर्मय हो उठते हैं। ऐसे ही उसके महान् स्नायु-केन्द्र भी हैं।

कार्य ज्ञात तथा अज्ञात दोनों वसाजों में होते हैं। योगियों की एक बुराई बधा भी होती है वह है ज्ञानातीत या अतिचेतन अवस्था को सभी देशों और सभी युगों में समस्त कामिक ज्ञान का झोटा रही है। ज्ञानातीत बधा में कभी भूक नहीं होती किन्तु जब अस्मत्प्रवृत्ति के द्वारा प्रेरित कार्य पूर्वस्वेष पंगवत् होता है, तब पूर्ववर्ती (ज्ञानातीत बधा) ज्ञान की बधा के परे की स्थिति होती है। इसे अन्तःप्रेरणा कहते हैं परन्तु बोधी कहता है 'मह शक्ति प्रत्यक्ष अनुभूति में अन्तर्निहित है और अन्ततोगत्वा सभी ज्ञान इसका आनन्द प्राप्त करेगी।

हमें 'सूर्य' और 'चन्द्र' की शक्तियों को एक नये रास्ते से परिचायित करना होगा और उनके लिए सुषुम्ना का मुख जोरकर एक नया रास्ता देना होगा। जब हम इस सुषुम्ना से होकर शक्ति-प्रवाह को मस्तिष्क तक ले जाने में सफल हो पाते हैं, उस समय हम शरीर से बिल्कुल अलग हो पाते हैं।

मेरुदंड के तले त्रिकास्थि (sacrum) के निकट स्थित मूलाधार चक्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह स्थल काम-शक्ति के प्रजनन-तत्त्व का निवास है, और योगी इसको एक त्रिकोण के भीतर छोटे से कुडलीकृत सर्प के प्रतीक के रूप में मानते हैं। इस प्रसुप्त सर्प को कुडलिनी कहते हैं। इसी कुडलिनी को जाग्रत करना ही राजयोग का प्रमुख उद्देश्य है।

महती काम-शक्ति को पशुमुलभ क्रिया से उन्नत करके मनुष्य शरीर के महान् डाइनेमी मस्तिष्क में परिचालित करके वहाँ संचित करने पर वह ओजस् अर्थात् महान् आध्यात्मिक शक्ति बन जाती है। समस्त सत् चिन्तन, समस्त प्रार्थनाएँ उस पशुमुलभ शक्ति के एक अंश को ओजस् में परिणत करने में सहायता करती हैं और हमें आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करती हैं। यह ओजस् ही मनुष्य का सच्चा मनुष्यत्व है, और केवल मनुष्य के शरीर में ही इस शक्ति का सग्रह सम्भव है। जिसकी समस्त पशुमुलभ काम-शक्ति ओजस् में परिणत हो गयी है, वही देवता है। उसकी वाणी में शक्ति होती है और उसके वचन जगत् को पुनरुज्जीवित करते हैं।

योगी मन ही मन कल्पना करता है कि यह कुडलिनी क्रमशः धीरे धीरे उठकर सर्वोच्च स्तर अर्थात् सहस्रार में पहुँच रही है। जब तक मनुष्य अपनी सर्वोच्च शक्ति, काम-शक्ति को ओज में परिणत नहीं कर लेता, कोई भी स्त्री या पुरुष, वास्तविक रूप में आध्यात्मिक नहीं हो सकता।

कोई शक्ति उत्पन्न नहीं की जा सकती, उसे केवल एक दिशा में परिचालित किया जा सकता है। अतः हमें चाहिए कि हम अपनी महती शक्तियों को अपने वश में करना सीखें और अपनी इच्छा-शक्ति से उन्हें पशुवत् रखने के बजाय आध्यात्मिक बना दें। अतः यह स्पष्ट है कि पवित्रता ही समस्त धर्म और नीति की आधारशिला है। विशेषतः राजयोग में मन, वचन की पूर्ण पवित्रता परमावश्यक है। विवाहित और अविवाहित, सभी लोगों के लिए एक ही नियम लागू होता है। देह के इस सार अंश को वृथा नष्ट कर देने पर आध्यात्मिकता की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

इतिहास बताता है कि सभी युगों में बड़े बड़े द्रष्टा महापुरुष या तो सन्यासी और तपस्वी थे अथवा विवाहित जीवन का परित्याग कर देनेवाले थे। केवल पवित्रात्मा ही भगवत्साक्षात्कार कर सकते हैं।

प्राणायाम से पूर्व इस त्रिकोणमंडल को ध्यान में देखने की चेष्टा करो। आँखें बन्द करके इसके चित्र की मन ही मन स्पष्ट कल्पना करो। सोचो कि इसके चारों ओर अग्निशिखा है और उसके बीच में कुडलिनी सोयी पड़ी है। जब तुम्हें कुडलिनी

स्पष्ट रूप से बीसने लगे अपनी कल्पना में इसे मूलाधार चक्र में स्थित करो और कुम्भक में श्वास को धबकड़ा करके कुंडलिनी को जमाने के हेतु श्वास के द्वारा उसके मस्तक पर आघात करो। चितनी ही क्षणिकामी कल्पना होगी उतनी शीघ्रता से वास्तविक फल की प्राप्ति होगी और कुंडलिनी आग्रत हो जायगी। जब तक वह आग्रत नहीं हुई, तब तक यही सोचो कि वह आग्रत हो गयी है, तथा सक्ति प्रवाहों को अनुभव करने की चेष्टा करो और उन्हें सुपुण्या पथ में परिबाधित करने का प्रयास करो। इससे उसकी क्रिया में शीघ्रता होती है।

### चतुर्थ पाठ

मन को बध में करने की शक्ति प्राप्त करने के पूर्व हमें उसका मसी प्रकार अभ्यसन करना चाहिए।

बचक मन को धवत करके हमें उसे विचारों से खीचना होगा और उसे एक विचार में केन्द्रित करना होगा। बार बार इस क्रिया को करना आवश्यक है। इच्छा सक्ति द्वारा मन को बध में करके उसकी क्रिया रोककर ईश्वर की महिमा का चिन्तन करना चाहिए।

मन को स्थिर करने का सबसे सरल उपाय है चुपचाप बैठ जाना और उसे कुछ क्षण के लिए वह जहाँ जाय जाने देना। दृष्ट्यापूर्वक इस भाव का चिन्तन करो 'मैं मन को विचरण करते हुए देखनेवाला छात्री हूँ। मैं मन नहीं हूँ।' परन्तु मन को ऐसा सोचता हुआ कल्पना करो कि मानो वह तुमसे विस्तृत भिन्न है। अपने को ईश्वर से अभिन्न मानो मन जबवा जड़ पदार्थ के साथ एक करके कदापि न सोचो।

सोचो कि मन तुम्हारे सामने एक विस्तृत तारंगहीन सरोवर है और जाने जानेवाले विचार इसके तल पर चठनेवासे बुलबुले हैं। विचारों को रोकने का प्रयास न करो वरन् उनको देखो और जैसे जैसे वे विचरण करते हैं जैसे जैसे तुम भी उनके पीछे चलो। यह क्रिया बीरे बीरे मन के बृत्तों को सीमित कर देगी। कारण यह है कि मन विचार की विस्तृत परिधि में भ्रमता है और ये परिधियाँ विस्तृत होकर गिरलार बढ़नेवासे बृत्तों में फैलती रहती हैं ठीक जैसे ही जैसे किसी सरोवर में डेढा फेंकने पर होता है। हम इस विद्या को चण्ट देना चाहते हैं और बड़े बृत्तों से प्रारम्भ करके उन्हें छोटा बनाते जैसे जाते हैं—यहाँ तक कि अन्त में हम मन को एक बिन्दु पर स्थिर करके उसे बड़ी रोक धरें। दृष्ट्यापूर्वक इस भाव का चिन्तन

करो, "मैं मन नहीं हूँ, मैं देखता हूँ कि मैं सोच रहा हूँ। मैं अपने मन तथा अपनी क्रिया का अवलोकन कर रहा हूँ।" प्रतिदिन मन और भावना से अपने को अभिन्न ममत्तने का भाव कम होता जायगा, यहाँ तक कि अन्त में तुम अपने को मन में विलकुल अलग कर सकोगे और वास्तव में इसे अपने से भिन्न जान सकोगे।

इतनी सफलता प्राप्त करने के बाद मन तुम्हारा दास हो जायगा और उसके ऊपर इच्छानुसार शासन कर सकोगे। इन्द्रियों से परे हो जाना योगी की प्रथम स्थिति है। जब वह मन पर विजय प्राप्त कर लेता है, तब सर्वोच्च स्थिति प्राप्त कर लेता है।

जितना सम्भव हो सके, एकान्त सेवन करो। तुम्हारा आसन सामान्य ऊँचाई का होना चाहिए। प्रथम कुशासन विद्याओ, फिर भृगुचर्म और उसके ऊपर रेशमी कपड़ा। अच्छा होगा कि आसन के साथ पीठ टेकने का साधन न हो और वह दृढ़ हो।

चूँकि विचार एक प्रकार के चित्र है, अतः हमें उनकी रचना न करनी चाहिए। हमें अपने मन से सारे विचार दूर हटाकर रिक्त कर देना चाहिए। जितनी ही शीघ्रता से विचार आयें, उतनी ही तेजी से उन्हें दूर भगाना चाहिए। इसे कार्यरूप में परिणत करने के लिए हमें जड-तत्त्व और देह के परे जाना परमावश्यक है। वस्तुतः मनुष्य का समस्त जीवन ही इसको सिद्ध करने का प्रयास है।

प्रत्येक ध्वनि का अपना अर्थ होता है। हमारी प्रकृति में इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध है।

हमारा उच्चतम आदर्श ईश्वर है। उसका चिन्तन करो। यही नहीं कि हम ज्ञाता को जान सकते हैं, अपितु हम तो वही हैं।

अशुभ को देखना तो उसकी सृष्टि ही करना है। जो कुछ हम है, वही हम बाहर भी देखते हैं, क्योंकि यह जगत् हमारा दर्पण है। यह छोटा सा शरीर हमारे द्वारा रचा हुआ एक छोटा सा दर्पण है, बल्कि समस्त विश्व हमारा शरीर है। इस बात का हमें सतत चिन्तन करना चाहिए, तब हमें ज्ञान होगा कि न तो हम मर सकते हैं और न दूसरों को मार सकते हैं, क्योंकि वह तो हमारा ही स्वरूप है। हम अजन्मा और अमर हैं और प्रेम ही हमारा कर्तव्य है।

'यह समस्त विश्व हमारा शरीर है। समस्त स्वास्थ्य, समस्त सुख हमारा सुख है, क्योंकि यह सब कुछ विश्व के अन्तर्गत है।' कहो, "मैं विश्व हूँ।" अन्त में हमें ज्ञात हो जाता है कि सारी क्रिया हमारे भीतर से इस दर्पण में प्रकट हो रही है।

तो ये वो क्लोक है। कृष्ण के उपदेश के सारस्वरूप इन क्लोकों से बड़ा भारी बक प्राप्त होता है

सर्वं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेस्वरम्।  
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥ १३।२७॥

जीर,

सर्वं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।  
न हिनस्तात्मनात्मानं क्लृप्तो याति परां गतिम् ॥ १३।२८॥

—'विनाश होमेवासे सब मूर्खों में जो लोग जविनाशी परमात्मा को स्थित देखते हैं यथार्थ में उन्हींका देखना सार्थक है क्योंकि ईश्वर को सर्वत्र समान भाव से देखकर वे आत्मा के द्वारा आत्मा की हिंसा नहीं करते इसलिये वे परमगति को प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार इस देश और अन्त्याय देशों में कस्याप्य कार्य की दृष्टि से बेबाल के प्रचार और प्रसार के लिए विस्तृत क्षेत्र है। इस देश में और विदेशों में भी मनुष्य जाति के दुःख दूर करने के लिए तथा सामन्य-समाज की उन्नति के लिए हम परमात्मा की सर्वव्यापकता और सर्वत्र समान रूप से उसकी विद्यमानता का प्रचार करना होगा। जहाँ भी बुवाई दिखाई देती है, वहीं अज्ञान भी मौजूद रहता है। मैंने अपने ज्ञान और अनुभव द्वारा साबूत किया है और मही साक्ष्यों में भी कहा गया है कि भेद-बुद्धि से ही संसार में सारे अद्युम और अभेद-बुद्धि से ही सारे भुम फलते हैं। यदि सारी विभिन्नताओं के अन्दर ईश्वर के एकत्व पर विश्वास किया जाय तो सब प्रकार से संसार का कस्याप्य किया जा सकता है। यही बेबाल का सर्वोच्च आदर्श है। प्रत्येक विषय में आदर्श पर विश्वास करना एक बात है और प्रतिदिन के छोटे छोटे कार्यों में उसी आदर्श के अनुसार काम करना विस्फुल्ल दूसरी बात है। एक ऊँचा आदर्श दिना देना अच्छी बात है इसमें मन्त्रेह नहीं पर उस आदर्श तक पहुँचने का उपाय कौन सा है?

स्वभावतः यहाँ यही कठिन और उद्दिग्ध करने वाला जाति-भेद तथा समाज सुधार का सवाल आ उपस्थित होता है, जो कर्म सदियों से सर्वसाधारण क मन में उठना रहा है। मैं तुमसे यह बात स्पष्ट शब्दों में कह देना चाहता हूँ कि मैं केवल जानि-जानि का भेद मिटानेवाला कबचा समाज-सुधारक मान नहीं हूँ। सीमे कार्य में जानि भेद या समाज-सुधार में भेद कुछ मतलब नहीं। तुम जादे जित जानि या समाज के क्यों न हो उनमें कुछ बदला-बिगड़ना नहीं पर तुम जिन्नी भीर जानिबानि को पूजा की दृष्टि से क्यों देखो? मैं केवल प्रेम और भाव प्रेम की

का आदर्श विशिष्ट रूप से प्रतिष्ठित है। यूरोप के बड़े बड़े धर्माचार्य भी यह प्रमाणित करने के लिए हजारों रुपये खर्च कर रहे हैं कि उनके पूर्वपुरुष उच्च वंशों के थे और तब तक वे सन्तुष्ट नहीं होंगे जब तक अपनी वंशपरम्परा किसी भयानक क्रूर शासक से स्थापित नहीं कर लेंगे, जो पहाड़ पर रहकर राहूँ बटोहियों की ताक में रहते थे और मौका पाते ही उन पर आक्रमण कर लूट लेते थे। अभिजात्य प्रदान करने वाले इन पूर्वजों का यही पेशा था और हमारे धर्माध्यक्ष कार्डिनल इनमें से किसीसे अपनी वंशपरम्परा स्थापित किये बिना सन्तुष्ट नहीं रहते थे। फिर दूसरी ओर भारत के बड़े से बड़े राजाओं के वंशघर इस बात की चेष्टा कर रहे हैं कि हम अमुक कौपीनधारी, सर्वस्वत्यागी, वनवासी, फल-मूलाहारी और वेदपाठी ऋषि की सन्तान हैं। भारतीय राजा भी अपनी वंशपरम्परा स्थापित करने के लिए वही जाते हैं। अगर तुम अपनी वंशपरम्परा किसी महर्षि से स्थापित कर सकते हो, तो ऊँची जाति के माने जाओगे, अन्यथा नहीं।

अतएव, हमारा उच्च वंश का आदर्श अन्यान्य देशवासियों के आदर्श से बिल्कुल भिन्न है। आध्यात्मिक साधनासम्पन्न महात्यागी ब्राह्मण ही हमारे आदर्श हैं। इस ब्राह्मण-आदर्श से मेरा क्या मतलब है? आदर्श ब्राह्मणत्व वही है, जिसमें सासारिकता एकदम न हो और असली ज्ञान पूर्ण मात्रा में विद्यमान हो। हिन्दू जाति का यही आदर्श है। क्या तुमने नहीं सुना है, शास्त्रों में लिखा है कि ब्राह्मण के लिए कोई कानून-कायदा नहीं है—वे राजा के शासनाधीन नहीं हैं, और उनके लिए फाँसी की सजा नहीं हो सकती? यह बात बिल्कुल सच है। स्वार्थपर मूढ़ लोगों ने जिस भाव से इस तत्त्व की व्याख्या की है, उस भाव से उसको मत समझो; सच्चे वेदान्ती भाव से इस तत्त्व को समझने की चेष्टा करो। यदि ब्राह्मण कहने से ऐसे मनुष्य का बोध हो, जिसने स्वार्थपरता का एकदम नाश कर डाला है, जिसका जीवन ज्ञान और प्रेम की शक्ति को प्राप्त करने में तथा इनका विस्तार करने में ही बीतता है, जो देश ऐसे ही सच्चरित्र, नैष्ठिक तथा आध्यात्मिक ब्राह्मणों, स्त्री तथा पुरुषों से परिपूर्ण है, वह देश यदि विविधनिषेध के परे हो, तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है? ऐसे लोगों पर शासन करने के लिए सेना या पुलिस इत्यादि की क्या आवश्यकता है? ऐसे आदमियों पर शासन करने का ही क्या काम है? अथवा ऐसे लोगों को किसी शासन-तन्त्र के अधीन रहने की ही क्या जरूरत है। ये लोग साधुस्वभाव महात्मा हैं—ईश्वर के अन्तरंगस्वरूप हैं, ये ही हमारे आदर्श ब्राह्मण हैं और हम शास्त्रों में देखते हैं—सत्ययुग में पृथ्वी पर केवल एक जाति थी और वह ब्राह्मण थी। महाभारत में हम देखते हैं, पुराकाल में सारी पृथ्वी ब्राह्मणों का ही निवास था। क्रमशः ज्यो ज्यो जनकी अवनति होने लगी,

तुमने किया है अच्छा ही किया है पर इससे भी अच्छा करने की चेष्टा करो। पुराने जमाने में इस देश में बहुतेरे अच्छे काम हुए हैं पर अब भी उससे बड़ बड़े काम करने का पर्याप्त समय और अवकाश है। मैं निश्चित हूँ कि तुम जानते हो कि हम एक जगह एक अवस्था में चुपचाप बैठे नहीं रह सकते। यदि हम एक जगह स्थिर रहे, तो हमारी मृत्यु अनिवार्य है। हमें या तो जान बचना होना या पीछे हटना होना—हमें उन्नति करते रहना होगा नहीं तो हमारी अवनति आप से आप होती जायगी। हमारे पूर्व पुरुषों ने प्राचीन काल में बहुत बड़े बड़े काम किए हैं, पर हमें उनकी अपेक्षा भी उत्कृष्टतर जीवन का विकास करना होगा और उनकी अपेक्षा और भी महान् कार्यों की ओर अग्रसर होना पड़ेगा। अब पीछे हटकर अवनति को प्राप्त होना यह कैसे हो सकता है? ऐसा कभी नहीं हो सकता। नहीं हम कदापि वैसा होने नहीं देंगे। पीछे हटने से हमारी जाति का अम-पतन और मरन होगा। अतएव 'अग्रसर होकर महत्तर कर्मों का अनुष्ठान करो'—तुम्हारे सामने यही मेरा वक्तव्य है।

मैं किसी अधिक समाज-सुधार का प्रचारक नहीं हूँ। मैं समाज के लोगों का सुधार करने की चेष्टा नहीं कर रहा हूँ। मैं तुमसे केवल इतना ही कहता हूँ कि तुम आगे बढ़ो और हमारे पूर्वपुरुष समस्त मानव जाति की उन्नति के लिए जो सर्वज्ञ सुन्दर प्रणाली बता गये हैं उसीका अचम्बन कर उनके उद्देश्य को सम्पूर्ण रूप से कार्य में परिवर्तित करो। तुमसे मेरा कहना यही है कि तुम जो मानव के एकत्व और उसके नैसर्गिक ईश्वरत्व-मावण्यी बेवार्ती भावों के अधिकारिक समीप पहुँचते जाओ। यदि मेरे पास समय होता तो मैं तुम लोगों को बड़ी प्रसन्नता के साथ यह दिखाता और बताता कि आज हमें जो कुछ कार्य करना है उसे हजारी वर्ष पहले हमारे स्मृतिकारों ने बता दिया है। और उनकी बातों से हम यह भी जान सकते हैं कि आज हमारी जाति और समाज के आचार-व्यवहार में जो सब परिवर्तन हुए हैं और होय उन्हें भी उन लोगों ने आज से हजारों वर्ष पहले जान लिया था। वे भी जाति भेद को तोड़ने वाले थे पर आजकल की तरह नहीं। जाति-भेद को तोड़ने से उनका मतलब यह नहीं था कि सड़क भर के लोग एक साथ मिलकर सराब कबाब उठावें या बिल्ले मुर्ख और पागल हूँ वे सब चाहे जिसके साथ घासी कर से और सारे देश को एक बहुत बड़ा पागलखाना बना दें और न उनका यही विश्वास था कि जिस देश में बिल्ले ही अधिक विषय-विषाह है वह देश उतना ही उन्नत समझा जायगा। इस प्रकार से किसी जाति को उन्नत होते मुझे अभी देखना है।

ब्राह्मण ही हमारे पूर्वपुरुषों के आदर्श थे। हमारे सभी शास्त्रों में ब्राह्मण

का आदर्श विशिष्ट रूप से प्रतिष्ठित है। यूरोप के बड़े बड़े धर्माचार्य भी यह प्रमाणित करने के लिए हज़ारों रुपये खर्च कर रहे हैं कि उनके पूर्वपुरुष उच्च वंशों के थे और तब तक वे सन्तुष्ट नहीं होंगे जब तक अपनी वंशपरम्परा किसी भयानक क्रूर शासक से स्थापित नहीं कर लेंगे, जो पहाड़ पर रहकर राही बटोहियों की ताक में रहते थे और मौका पाते ही उन पर आक्रमण कर लूट लेते थे। आभिजात्य प्रदान करने वाले इन पूर्वजों का यही पेशा था और हमारे धर्माध्यक्ष कार्डिनल इनमें से किसीसे अपनी वंशपरम्परा स्थापित किये बिना सन्तुष्ट नहीं रहते थे। फिर दूसरी ओर भारत के बड़े से बड़े राजाओं के वंशधर इस बात की चेष्टा कर रहे हैं कि हम अमुक कौपीनधारी, सर्वस्वत्यागी, वनवासी, फल-मूलाहारी और वेदपाठी ऋषि की सन्तान हैं। भारतीय राजा भी अपनी वंशपरम्परा स्थापित करने के लिए वही जाते हैं। अगर तुम अपनी वंशपरम्परा किसी महर्षि से स्थापित कर सकते हो, तो ऊँची जाति के माने जाओगे, अन्यथा नहीं।

अतएव, हमारा उच्च वंश का आदर्श अन्यान्य देशवासियों के आदर्श से बिल्कुल भिन्न है। आध्यात्मिक साधनासम्पन्न महात्यागी ब्राह्मण ही हमारे आदर्श हैं। इस ब्राह्मण-आदर्श से मेरा क्या मतलब है? आदर्श ब्राह्मणत्व वही है, जिसमें सासारिकता एकदम न हो और असली ज्ञान पूर्ण मात्रा में विद्यमान हो। हिन्दू जाति का यही आदर्श है। क्या तुमने नहीं सुना है, शास्त्रों में लिखा है कि ब्राह्मण के लिए कोई कानून-कायदा नहीं है—वे राजा के शासनाधीन नहीं हैं, और उनके लिए फाँसी की सज़ा नहीं हो सकती? यह बात बिल्कुल सच है। स्वार्थपर मूढ़ लोगो ने जिस भाव से इस तत्त्व की व्याख्या की है, उस भाव से उसको मत समझो, सच्चे वेदान्ती भाव से इस तत्त्व को समझने की चेष्टा करो। यदि ब्राह्मण कहने से ऐसे मनुष्य का बोध हो, जिसने स्वार्थपरता का एकदम नाश कर डाला है, जिसका जीवन ज्ञान और प्रेम की शक्ति को प्राप्त करने में तथा इनका विस्तार करने में ही बीतता है, जो देश ऐसे ही सच्चरित्र, नैष्ठिक तथा आध्यात्मिक ब्राह्मणों, स्त्री तथा पुरुषों से परिपूर्ण है, वह देश यदि विधिनिषेध के परे हो, तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है? ऐसे लोगो पर शासन करने के लिए सेना या पुलिस इत्यादि की क्या आवश्यकता है? ऐसे आदिमियों पर शासन करने का ही क्या काम है? अथवा ऐसे लोगो को किसी शासन-तन्त्र के अधीन रहने की ही क्या जरूरत है। ये लोग साधुस्वभाव महात्मा हैं—ईश्वर के अन्तरंगस्वरूप हैं, ये ही हमारे आदर्श ब्राह्मण हैं और हम शास्त्रों में देखते हैं—सत्ययुग में पृथ्वी पर केवल एक जाति थी और वह ब्राह्मण थी। महाभारत में हम देखते हैं, पुराकाल में सारी पृथ्वी पर केवल ब्राह्मणों का ही निवास था। क्रमशः ज्यो ज्यो उनकी अवनति होने लगी,



बहु जाति मिश्र मिश्र जातियों में विभक्त होती गयी। फिर, जब कस्य चक्र बूमता बूमता सत्ययुग या पतुंवेमा तब फिर से सभी ब्राह्मण ही हो जायेंगे। वर्तमान मुन चक्र भविष्य में सत्ययुग के जाने की सूचना दे रहा है, इसी बात की ओर मैं तुम्हारा ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। ऊँची जातियों को नीची करने मगचाहे बाहार विहार करने और शक्ति मुक्त-भोग के लिए अपने अपने वर्णाश्रम-धर्म की मर्यादा छोड़ने से इस जातिभेद की समस्या हल नहीं होगी। इसकी मीमांसा सभी होगी जब हम लोगों में से प्रत्येक मनुष्य देवान्ती धर्म का आदेश पासन करने लयेगा जब हर कोई सच्चा पामिक होने की चेष्टा करेगा और प्रत्येक व्यक्ति आदर्श बन जायगा। तुम आर्य हो या अनार्य ऋषि-सन्तान हो ब्राह्मण हो या अत्यन्त नीच मन्त्रमज जाति के ही क्यों न हो माण्डूक्य के प्रत्येक निवासी के प्रति तुम्हारे पूर्वपुरुषों का दिया हुआ एक महान् आदेश है। तुम सबके प्रति वस एक ही आदेश है कि चुपचाप बैठे रहने से काम न होगा। निरन्तर उन्नति के लिए चेष्टा करते रहना होगा। ऊँची से ऊँची जाति से लेकर नीची से नीची जाति के लोगों (वैश्या) को भी ब्राह्मण होने की चेष्टा करनी होगी। वेदान्त का यह आदर्श केवल भारतवर्ष के लिए ही नहीं बल्कि सारे संसार के लिए उपयुक्त है। हमारे जातिभेद का लक्ष्य यही है कि बीरे बीरे सारी मानव जाति आध्यात्मिक मनुष्य के महान् आदर्श को प्राप्त करने के लिए अग्रसर हो जो ब्रुति दामा शौच शान्ति उपासना और ध्यान का अम्बासी है। इस आदर्श में ईश्वर की स्थिति स्वीकृत है।

इस उद्देश्य को कार्यरूप में परिणत करने का उपाय क्या है? मैं तुम लोगों को फिर एक बार याद दिला देना चाहता हूँ कि कोसने निम्ना करने या शक्तियों की शोषण करने से कोई सद्गुरुय पुन नहीं हो सकता। लगातार क्यों तक इस प्रकार की कितनी ही चेष्टाएँ की गयी हैं, पर कभी अच्छा परिणाम प्राप्त नहीं हुआ। केवल पारस्परिक सम्मान और प्रेम के द्वारा ही अच्छे परिणाम की प्राप्ति की जा सकती है। यह महान् नियम है और मेरी दृष्टि में जो योजनार्य हैं उनकी व्याख्या के लिए कई भाषणों की आवश्यकता होती। जिनमें मैं प्रतिदिन उठनेबाल अपने विचारों को व्यक्त कर चूकूँ। अतएव आज मैं यहीं पर अपनी बकलुता का उपहार करता हूँ। हिन्दुओ! मैं तुम्हें केवल इतनी ही याद दिला देना चाहता हूँ कि हमारा यह राष्ट्रीय वेद हमें सबियों से हम पार से उस पार करता जा रहा है। सामर्य आजकल इसमें कुछ छेद हो गये हैं चायब बहु कुछ पुराना भी पड़ गया है। यदि यही बात है, तो हम सारे भारतवासियों को प्राणों की बाजी लगाकर इन छेदों को बन्द कर देने और इसका जीर्णोद्धार करने की चेष्टा करनी चाहिए। हम अपने सभी देवमाइयों को हम लाने की सूचना दे देनी चाहिए। वे प्राणों और

हमारी सहायता करें। मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक जोर से चिल्लाकर लोगों को इस परिस्थिति और कर्तव्य के प्रति जागरूक करूँगा। मान लो, लोगो ने मेरी बात अनसुनी कर दी, तो भी मैं इसके लिए उन्हें न तो कोसूँगा और न भर्त्सना ही करूँगा। पुराने जमाने में हमारी जाति ने बहुत बड़े बड़े काम किये हैं, और यदि हम उनसे भी बड़े बड़े काम न कर सकें, तो एक साथ ही शान्तिपूर्वक डूब मरने में हमें सन्तोष होगा। देशभक्त बनो—जिस जाति ने अतीत में हमारे लिए इतने बड़े बड़े काम किये हैं, उसे प्राणों से भी अधिक प्यारी समझो। हे स्वदेशवासियो! मैं ससार के अन्यान्य राष्ट्रों के साथ अपने राष्ट्र की जितनी ही अधिक तुलना करता हूँ, उतना ही अधिक तुम लोगो के प्रति मेरा प्यार बढ़ता जाता है। तुम लोग शुद्ध, शान्त और सत्स्वभाव हो, और तुम्हीं लोग सदा अत्याचारों से पीड़ित रहते आये हो—इस मायामय जड जगत् की पहली ही कुछ ऐसी है। जो हो, तुम इसकी परवाह मत करो। अन्त में आत्मा की ही जय अवश्य होगी। इस बीच आओ हम काम में सलग्न हो जायँ। केवल देश की निन्दा करने से काम नहीं चलने का। हमारी इस परम पवित्र मातृभूमि के काल-जर्जर कर्मजीर्ण आचारों और प्रथाओं की निन्दा मत करो। एकदम अधविश्वासपूर्ण और अतार्किक प्रथाओं के विरुद्ध भी एक शब्द मत कहो, क्योंकि उनके द्वारा भी अतीत में हमारी जाति और देश का कुछ न कुछ उपकार अवश्य हुआ है। सदा याद रखना कि हमारी सामाजिक प्रथाओं के उद्देश्य ऐसे महान् हैं, जैसे ससार के किसी और देश की प्रथाओं के नहीं हैं। मैंने ससार में प्रायः सर्वत्र जाति-पाँति का भेदभाव देखा है, पर उद्देश्य ऐसा महिमामय नहीं है। अतएव, जब जातिभेद का होना अनिवार्य है, तब उसे घन पर खड़ा करने की अपेक्षा पवित्रता और आत्मत्याग के ऊपर खड़ा करना कही अच्छा है। इसलिए निन्दा के शब्दों का उच्चारण एकदम छोड़ दो। तुम्हारा मुँह वन्द हो और हृदय खुल जाय। इस देश और सारे जगत् का उद्धार करो। तुम लोगो में से प्रत्येक को यह सोचना होगा कि सारा भार तुम्हारे ही ऊपर है। वेदान्त का आलोक घर घर ले जाओ, प्रत्येक जीवात्मा में जो ईश्वरत्व अन्तर्निहित है, उसे जगाओ। तब तुम्हारी सफलता का परिमाण जो भी हो, तुम्हें इस बात का सन्तोष होगा कि तुमने एक महान् उद्देश्य की सिद्धि में ही अपना जीवन बिताया है, कर्म किया है और प्राण उत्सर्ग किया है। जैसे भी हो, महत्-कार्य की सिद्धि होने पर मानव जाति का दोनो लोको में कल्याण होगा।

## मद्रास अभिनन्दन का उत्तर

शर्मा जी जब मद्रास गये तो वहाँ मद्रास गवर्नर-जार्जिंग द्वारा उन्हें एक मातृत्व धरा दिया गया। वह इस प्रकार का

ब्रह्म बुध स्वामी जी

आज हम सब भारत गवर्नर-जार्जिंग में शर्मा जी के ब्रह्म पर आने मद्रास-गवर्नर-जार्जिंग की ओर में आकरा जार्जिंग गवर्नर करते हैं। आज आती मेरा म जी हम का ब्रह्म जार्जिंग कर रहे हैं उनका अर्थ का नहीं है कि वह एक प्रकार का गौतमचार ब्रह्म गवर्नर है, बल्कि हमने आज हम आती गवर्नर में आने आगर्जिक एक जार्जिंग प्रेम की भेंट है। तथा आने जार्जिंग की एक में आगर्जिक क उच्च पार्जिक आगर्जिक का प्रचार कर गवर्नर के प्रतिगर्जिक का जो महान् कार्य किया है उगर्जिक जार्जिक जार्जिक प्रकट करत है।

जब गवर्नरों गवर्नर में ब्रह्म-महासमा का आचरण किया गया उन समय तथा भावित्वा जकारे देना के कुछ आदर्शों के मन में इस बात की उल्लेखना उत्पन्न हुई कि हमने भेंट तथा प्राचीन ब्रह्म का भी प्रतिनिधित्व वही योग्यतापूर्वक किया जाय तथा उनका उचित रूप में अभिविद्यन गवर्नर में भीर जित उगर्जिक द्वारा ब्रह्म नमस्त पाचार्य देना में प्रचार हो। उस अवसर पर हमारा यह नीमाय्य था कि हमारी आपसे भेंट हुई और पुन हम उन बात का अनुभव हुआ जो ब्रह्मा विभिन्न उद्देश्यों के इतिहास में साथ मिल हुआ है अर्थात् समय आने पर एसा व्यक्ति स्वयं आविर्भूत हो जाना है जो समय के प्रचार में महापक होता है। और जब आपने उस पर्व महाममा में हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि रूप में जाने का बीड़ा उठाया तो हममें से ब्रह्म कांच सोचों के मन में यह निश्चित भावना उत्पन्न हुई कि उस विरहमयीय ब्रह्म महाममा में हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व बड़ी योग्यतापूर्वक हीगा क्योंकि आपकी अनेकानेक शक्तियों को इन लोग बीड़ा बहुत जान चुके थे। हिन्दू धर्म के सनातन विद्यालया का प्रतिपादन आपने जिस स्पष्टता सुदृढता तथा प्रायायिकता से किया उससे केवल ब्रह्म-महासमा पर ही एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा बल्कि उसके द्वारा ब्रह्म पाचार्य वेदों के स्त्री-मुक्तों को भी यह अनुभव हो गया कि भारतवर्ष के इस आध्यात्मिक ओष्ठ में कितना ही ब्रह्मरत्न तथा प्रेम का सुदृढ पान किया जा सकता है और उसके फलस्वरूप मानव जाति का इतना सुन्दर, पूर्ण व्यापक

तथा शुद्ध विकास हो सकता है, जितना कि इस विश्व में पहले कभी नहीं हुआ। हम इस बात के लिए आपके विशेष कृतज्ञ हैं कि आपने ससार के महान् धर्मों के प्रतिनिधियों का ध्यान हिन्दू धर्म के उस विशेष सिद्धान्त की ओर आकर्षित किया, जिसको 'विभिन्न धर्मों में वन्वुत्व तथा सामजस्य' कहा जा सकता है। आज यह सम्भव नहीं रहा है कि कोई वास्तविक शिक्षित तथा सच्चा व्यक्ति इस बात का ही दावा करे कि सत्य तथा पवित्रता पर किसी एक विशेष स्थान, सम्प्रदाय अथवा वाद का ही स्वामित्व है या वह यह कहे कि कोई विशेष धर्म-मार्ग या दर्शन ही अन्त तक रहेगा और अन्य सब नष्ट हो जायेंगे। यहाँ पर हम आप ही के उन सुन्दर शब्दों को दुहराते हैं, जिनके द्वारा श्रीमद्भागवद्गीता का केन्द्रीय सामजस्य भाव स्पष्ट प्रकट होता है कि 'ससार के विभिन्न धर्म एक प्रकार के यात्रास्वरूप हैं, जहाँ तरह तरह के स्त्री-पुरुष इकट्ठे हुए हैं तथा जो भिन्न भिन्न दशाओं तथा परिस्थितियों में से होकर एक ही लक्ष्य की ओर जा रहे हैं।'

हम तो यह कहेंगे कि यदि आपने सिर्फ इस पुण्य एव उच्च उद्देश्य को ही, जो आपको सौंपा गया था, अपने कर्तव्य रूप में निवाहा होता, तो उतने से ही आपके हिन्दू भाई बड़ी प्रसन्नता तथा कृतज्ञतापूर्वक आपके उस अमूल्य कार्य के लिए महान् आभार मानते। परन्तु आप केवल इतना ही न करके पाश्चात्य देशों में भी गये, तथा वहाँ जाकर आपने जनता को ज्ञान तथा शान्ति का सदेश सुनाया जो भारतवर्ष के सनातन धर्म की प्राचीन शिक्षा है। वेदान्त धर्म के परम युक्तिसम्मत होने को प्रमाणित करने में आपने जो यत्न किया है उसके लिए आपको हार्दिक धन्यवाद देते समय हमें आपके उस महान् सकल्प का उल्लेख करते हुए बड़ा हर्ष होता है, जिसके आचार पर प्राचीन हिन्दू धर्म तथा हिन्दू दर्शन के प्रचार के लिए अनेकानेक केन्द्रों वाला एक सक्रिय मिशन स्थापित होगा। आप जिन प्राचीन आचार्यों के पवित्र मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं, एव जिस महान् गुरु ने आपके जीवन और उसके उद्देश्यों को उत्प्रेरित किया है, उन्हींके योग्य अपने को सिद्ध करने के लिए आपने इस महान् कार्य में अपनी सारी शक्ति लगाने का सकल्प किया है। हम इस बात के प्रार्थी हैं कि ईश्वर हमें वह सुअवसर दे जिसमें कि हम आपके साथ इस पुण्य कार्य में सहयोग दे सकें। साथ ही हम उम सर्व-शक्तिमान दयालु परमपिता परमेश्वर से करवद्ध होकर यह भी प्रार्थना करते हैं कि वह आपको चिरजीवी करे, शक्तिशाली बनाए तथा आपके प्रयत्नों को वह गौरव तथा सफलता प्रदान करे जो सनातन मत्य के ललाट पर सदैव अंकित रहती है।

इसके बाद खेतड़ी के महाराजा का निम्नलिखित मानपत्र भी पढा गया

पुण्यपाद स्वामी जी

इस अवसर पर जब कि आप महास पधारे हैं, मैं यथासक्ति धीमातिधीम आपकी सेवा में उपस्थित होकर, विशेष से आपके कुशलपूर्वक वापस लौट जाने पर अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करता हूँ तथा पादचार्य देशों में आपके निस्वार्थ प्रयत्नों को जो सफलता प्राप्त हुई है, उस पर आपको हार्दिक बधाई देता हूँ। हम जानते हैं कि ये पादचार्य देश वे ही हैं, जिनके विद्वानों का यह दावा है कि 'यदि किसी क्षेत्र में विज्ञान ने अपना अधिकार जमा किया तो फिर धर्म की मजाल भी नहीं है कि वह वहाँ अपना पैर रख सके' यद्यपि सच बात तो यह है कि विज्ञान ने स्वयं अपने को कभी भी सच्चे धर्म का विरोधी नहीं ठहराया। हमारा यह पवित्र आदीर्घ देश इस बात में विशेष माग्यसाक्षी है कि सिकानो की धर्म-महाधरमा में प्रतिनिधि के रूप में आने के लिए उसे आप वैसे एक महापुण्य मित्र सखा और, स्वामी जी यह केवल आपकी ही विद्वता साहसिकता तथा अदम्य उत्साह का फल है कि पादचार्य देश बासे भी यह बात मछी भाँति जान गए कि आज भी भारत के पास आध्यात्मिकता की कौसी असीम निधि है। आपके प्रयत्नों के फलस्वरूप आज यह बात पूर्ण रूप से सिद्ध हो गई है कि संसार के अनकनेक मतमतान्तरों के विरोधाभास का साम्यस्य वैशान्त के सार्धमीम प्रकाश में हो सकता है। और संसार के लोगों की यह बात मछी भाँति समझ लेने तथा इस महान् सत्य को कार्यान्वित करने की आवश्यकता है कि विश्व के विकास में प्रकृति की सर्वत्र योजना रही है 'विविधता में एकता'। साथ ही विभिन्न धर्मों में समन्वय बन्धुत्व तथा पारस्परिक सहानुमृति एवं सहामता द्वारा ही मनुष्य जाति का जीवनव्रत उद्यापित एवं उसका चरमोद्देश्य सिद्ध होना सम्भव है। आपके महान् तथा पवित्र तत्त्वावधान में तथा आपकी श्रेष्ठ विद्वानों के स्तुतिदायक प्रभाव के आकार पर हम वर्तमान पीढ़ी के लोगों को इस बात का सीमास्य प्राप्त हुआ है कि हम अपनी ही जीवों के सामने संसार के इतिहास में एक उस युग का प्रादुर्भाव देख सकेंगे जिसमें बमन्धिता बुधा तथा संघर्ष का नाश होकर, मुझे आशा है कि प्राप्त सहानुमृति तथा प्रेम का साम्राज्य होगा। और मैं अपनी प्रजा के साथ ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूँ कि उसकी कृपा आप पर तथा आपके प्रयत्नों पर सर्वत्र बनी रहे।

जब यह मामला पड़ा या बुझा तो स्वामी जी सामर्थ्य से उन गवै और एक पाड़ी में चढ़ गये जो जग्ही के लिए लड़ी थी। स्वामी जी ने स्वामत के लिए धाई हुई जलता की भीड़ जग्ही चरदस्त की तथा उत्तम ऐना वीरा समामा का कि उस अवसर पर तो स्वामी जी केवल निम्नलिखित संक्षिप्त उत्तर ही दे सके।

जाना पूर्ण उत्तर जग्हीने किसी दूसरे अवसर के लिए स्वयं रखा।

## स्वामी जी का उत्तर

बन्धुओ, मनुष्य की इच्छा एक होती है परन्तु ईश्वर की दूसरी। विचार यह था कि तुम्हारे मानपत्र का पाठ तथा मेरा उत्तर ठीक अंग्रेजी शैली पर हो, परन्तु यही ईश्वरेच्छा दूसरी प्रतीत होती है—मुझे इतने बड़े जनसमूह से 'रथ' में चढ़कर गीता के ढग से बोलना पड़ रहा है। इसके लिए हम कृतज्ञ ही हैं, अच्छा ही है कि ऐसा हुआ। इससे भाषण में स्वभावतः ओज आ जायगा तथा जो कुछ मैं तुम लोगो से कहूँगा उसमें शक्ति का संचार होगा। मैं कह नहीं सकता कि मेरी आवाज तुम सब तक पहुँच सकेगी या नहीं, परन्तु मैं यत्न करूँगा। इसके पहले शायद खुले मैदान में व्यापक जनसमूह के सामने भाषण देने का अवसर मुझे कभी नहीं मिला था।

जिस अपूर्व स्नेह तथा उत्साहपूर्वक उल्लास से मेरा कोलम्बो से लेकर मद्रास पर्यन्त स्वागत किया गया है तथा जैसा लगता है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष में किये जाने की सम्भावना है, वह मेरी सर्वाधिक स्वप्नमयी रगिन आशाओं से भी अधिक है। परन्तु इससे मुझे हर्ष ही होता है। और वह इसलिए कि इसके द्वारा मुझे अपना वह कथन प्रत्येक वार सिद्ध होता दिखाई देता है जो मैं कई वार पहले भी व्यक्त कर चुका हूँ कि प्रत्येक राष्ट्र का एक ध्येय उसके लिए सजीवनीस्वरूप होता है, प्रत्येक राष्ट्र का एक विशेष निर्धारित मार्ग होता है, और भारतवर्ष का विशेषत्व है धर्म। ससार के अन्य देशों में धर्म तो केवल कई बातों में से एक है, असल में वहाँ तो वह एक छोटी सी चीज़ गिना जाता है। उदाहरणार्थ, इंग्लैंड में धर्म राष्ट्रीय नीति का केवल एक अंश है, इंग्लिश चर्च शाही घराने की एक चीज़ है और इसलिए उनकी चाहे उसमें श्रद्धा-भक्ति हो अथवा नहीं, वे उसके सहायक सदैव बने रहेंगे, क्योंकि वे तो यह समझते हैं कि वह उनका चर्च है। और प्रत्येक भद्र पुरुष तथा महिला से यही आशा की जाती है कि वह उसी चर्च का एक सदस्य बनकर रहे, और वही मानो भद्रता का चिह्न है। इसी प्रकार अन्य देशों में भी एक एक प्रबल राष्ट्रीय शक्ति होती है, यह शक्ति या तो ज़बरदस्त राजनीति के रूप में दिखाई देती है अथवा किसी बौद्धिक खोज के रूप में। इसी प्रकार कहीं या तो यह सैन्यवाद के रूप में दिखाई देती है अथवा वाणिज्यवाद के रूप में। कह सकते हैं कि उन्हीं क्षेत्रों में राष्ट्र का हृदय स्थित रहता है और इस प्रकार धर्म तो उस राष्ट्र की अन्य बहुत सी चीज़ों में से केवल एक ऊपरी सजावट की सी चीज़ रह जाती है।

पर भारतवर्ष में धर्म ही राष्ट्र के हृदय का मर्मस्थल है, इसीको राष्ट्र की रीढ़ कह लो अथवा वह नीव समझो जिसके ऊपर राष्ट्ररूपी इमारत खड़ी है। इस देश

में राजनीति बस यही तक कि बुद्धिबिभाग भी गौण समझे जाने हैं। भारत में धर्म को सर्वोपरि समझा जाता है। मैंने यह बात संकटांशु बार मुनी है कि भारतीय जनता सामारण जागरणी की बातां म भी अविगत मर्दा है और यह बात मबमुब ठीक भी है। जय में कोलम्बो में उतरा तो मुझे यह पना जना कि वहाँ किमी को भी इस बात का ज्ञान न था कि यूरोप में कौनी राजनीतिक उन्नतगुपस मर्दा हुई है वहाँ क्या क्या परिवर्तन हो रहे हैं मविमंडल की कौनी हार हो रही है, आदि आदि। एक नी भ्यक्ति को यह ज्ञान न था कि समाजवाद अराजकतावाद आदि धर्मों का अथवा यूरोप के राजनीतिक जातावरण में अमुक परिवर्तन का क्या अर्थ है। परन्तु दूसरी ओर यदि तुम संका के ही लोगों को के सो तो वहाँ के प्रत्यक स्त्री-पुरुष तथा बच्चे बच्चे को मासम था कि उनसे देश में एक भारतीय सम्पामी आया है जो सिन्हागो की धर्म-महासमा में भाग लेने के लिए भेजा गया था तथा जिसने वहाँ अपने धर्म में सफलता प्राप्त की। इससे निश्च होता है कि उस देश के लोग वहाँ तक एसी सूचना से सम्बन्ध है जो उनके मतमब की है अथवा जिसने उनके वैदिक जीवन का तास्कर है उसने वे जबर अथमत हैं तथा जानने की इच्छा करते हैं। राजनीति तथा उस प्रकार की अन्य बातें भारतीय जीवन के अत्या अत्यन्त विषय कमी नहीं रहे हैं। परन्तु धर्म एवं आध्यात्मिकता ही एक ऐसा मुख्य आधार रहे है जिसके ऊपर भारतीय जीवन निर्भर रहा है तथा फला-फूला है और इनका ही नहीं भविष्य में भी इसे इसीपर निर्भर रहना है।

संसार के राष्ट्रों द्वारा बड़ी समस्याओं का समाधान हो रहा है। भारत ने सर्वैक एक का पसा ग्रहण किया है तथा अन्य समस्त संसार ने दूसरे का पसा। यह समस्या यह है कि भविष्य में कौन टिक सकेगा? क्या कारण है कि एक राष्ट्र जीवित रहता है तथा दूसरा नष्ट हो जाता है? जीवनसंग्राम में पूजा टिक सकती है अथवा प्रेम भोगविनास विरस्वाधी है अथवा त्याग भौतिकता टिक सकती है या आध्यात्मिकता। हमारी विचारवादा उसी प्रकार की है जैसी हमारे पूर्वजों की अति प्राचीन प्रायैतिहासिक काल में थी। जिस अन्धकारमय प्राचीन काल तक पीछाधिक परम्पराएँ भी पहुँच नहीं सकतीं उसी समय हमारे पधस्त्री पूर्वजों ने अपनी समस्या के पसा का ग्रहण कर लिया और संसार को नुनीटी दे दी। हमारी समस्या को हल करने का रास्ता है वैराग्य त्याग निर्मीकता तथा प्रेम। बस ये ही सब टिकने योग्य हैं। जो राष्ट्र इन्धियों की आसक्ति का त्याग कर देता है, वही टिक सकता है। और इसका अभाव यह है कि आज हमें इतिहास इस बात की बतानी दे रहा है कि प्रायः प्रत्येक धर्म में बरसाती मेइकों की तरह मने राष्ट्रों का उत्थान तथा पतन हो रहा है—अन्यमब मूल्य से प्रारम्भ करते हैं कुछ दिनों तक नुराकात

मचाते हैं और फिर समाप्त हो जाते हैं। परन्तु यह भारत का महान् राष्ट्र जिसको अनेकानेक ऐसे दुर्मर्गियों, खतरों तथा उथलपुथल की कठिनतम समस्याओं से उलझना पडा है, जैसा कि ससार के किसी अन्य राष्ट्र को करना नहीं पडा, आज भी कायम है, टिका हुआ है, और इसका कारण है सिर्फ वैराग्य तथा त्याग क्योंकि यह स्पष्ट ही है कि बिना त्याग के धर्म रह ही नहीं सकता। इसके विपरीत यूरोप एक दूसरी ही समस्या के सुलझाने में लगा हुआ है। उसकी समस्या यह है कि एक आदमी अधिक से अधिक कितनी सम्पत्ति इकट्ठा कर सकता है, वह कितनी शक्ति जुटा सकता है, भले ही वह ईमानदारी से हो या वेईमानी से, नेकनामी से हो या वदनामी से। क्रूर, निर्दय, हृदयहीन, प्रतिद्वन्द्विता, यही यूरोप का नियम रहा है। पर हमारा नियम रहा है वर्ण-विभाग, प्रतिस्पर्धा का नाश, प्रतिस्पर्धा के बल को रोकना, इसके अत्याचारों को रौंद डालना तथा इस रहस्यमय जीवन में मानव का पथ शुद्ध एवं सरल बना देना।

स्वामी जी का भाषण इस प्रकार हो ही रहा था कि इस अवसर पर जनता की ऐसी भीड़ उमड़ी कि उनका भाषण सुनना कठिन हो गया। इसलिए स्वामी जी ने यह कहकर ही सक्षेप में अपना भाषण समाप्त कर दिया।

मित्रो, मैं तुम्हारा जोश देखकर बहुत प्रसन्न हूँ, यह परम प्रशंसनीय है। यह मत सोचना कि मैं तुम्हारे इस भाव को देखकर नाराज़ हूँ, बल्कि मैं तो खुश हूँ, बहुत खुश हूँ—वस ऐसा ही अदम्य उत्साह चाहिए, ऐसा ही जोश हो। सिर्फ इतना ही है कि इसे चिरस्थायी रखना—इसे बनाये रखना। इस आग को बुझ मत जाने देना। हमें भारत में बहुत बड़े बड़े कार्य करने हैं। उसके लिए मुझे तुम्हारी महायत्ना की आवश्यकता है। ठीक है, ऐसा ही जोश चाहिए। अच्छा, अब इस ममा को जारी रखना असम्भव प्रतीत होता है। तुम्हारे सद्य व्यवहार तथा जोशीले स्वागत के लिए मैं तुम्हें अनेक धन्यवाद देता हूँ। किसी दूसरे मौके पर शान्ति में हम-तुम फिर कुछ और बातचीत तथा भावविनिमय करेंगे—मित्रो, अभी के लिए नमस्ते।

चूँकि तुम लोगों की भीड़ चारों ओर है और चारों ओर घूमकर व्याख्यान देना असम्भव है, इसलिए इस समय तुम लोग केवल मुझे देखकर ही सतुष्ट हो जाओ। अपना विस्तृत व्याख्यान मैं फिर किसी दूसरे अवसर पर दूँगा। तुम्हारे उत्साहपूर्ण स्वागत के लिए पुन धन्यवाद।



## मेरी क्रान्तिकारी योजना

[मद्रास के बिक्टोरिया हॉल में दिया गया भाषण]

उस दिन अधिक भीड़ के कारण मैं व्याख्यान समाप्त नहीं कर सका था अतएव मद्रास निवासी मेरे प्रति जो निरन्तर सख्त व्यवहार करते आये हैं उनके लिए आज मैं उन्हें अनेकामेक बख्शवाद देता हूँ। मैं यह नहीं जानता कि अमितन्त्र-पत्रों में मेरे लिए जो सुन्दर सुन्दर विरोधपत्र प्रयुक्त हुए हैं, उनके लिए मैं किस प्रकार अपनी इच्छाप्रकट करूँ। मैं प्रभु से इतनी ही प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे इन कृपापूर्ण तथा उदार प्रवृत्तियों के बोध बना दें और इस बोध भी कि मैं अपना साध जीवन अपने धर्म और मातृभूमि की सेवा में अर्पण कर सकूँ प्रभु मुझे इनके बोध बनाये।

मैं समझता हूँ कि मुझमें अनेक दोषों के होते हुए भी बड़ा साहस है। मैं माछ से पाश्चात्य देशों में कुछ सम्बन्ध के समा था और उसे मैंने निर्भीकता से अमरिका और इन्डो-एशियासियों के सामने प्रकट किया। आज का विषय आरम्भ करने के पूर्व मैं साहसपूर्वक दो सम्बन्ध तुम लोगों से कहना चाहता हूँ। कुछ दिनों से मेरे चारों ओर कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित हो रही हैं, जो मेरे कार्य की उत्पत्ति में विशेष रूप से विघ्न डालने की चेष्टा कर रही हैं यहाँ तक कि यदि सम्भव हो सके तो वे मुझे एकबारगी कुचक्र कर मेरा अस्तित्व ही नष्ट कर दें। पर ईश्वर की शक्ति-वाक कि वे सारी चेष्टाएँ विफल हो गयी हैं, और इस प्रकार की चेष्टाएँ सबैक विफल ही सिद्ध होती हैं। मैं गण तीन वर्षों से बैक रहा हूँ कुछ लोग मेरे एवं मेरे कार्यों के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्त धारणाएँ बनाये हुए हैं। जब तक मैं विशेष से वा मैं चुप रहा मैं एक शब्द भी नहीं बोलता। पर आज मैं अपने देश की भूमि पर खड़ा हूँ मैं स्पष्टीकरण के रूप में कुछ शब्द कहना चाहता हूँ। इन सबों का क्या फल होगा जबवा ये सम्बन्ध तुम लोगों के हृदय में किन किन भावों का संचक करोगे इसकी मैं परवाह नहीं करता। मुझे बहुत कम चिन्ता है क्योंकि मैं वहीं संन्यासी हूँ जिधने लगभग चार वर्ष पहले अपने बंध और कर्मचर के साथ तुम्हारे नगर में प्रवेश किया था और वहीं सारी बुनियाद इस समय भी मेरे सामने पड़ी है।

बिना और अधिक भूमिका के मैं अब अपने विषय को आरम्भ करता हूँ। सबसे पहले मुझे थियोसॉफिकल सोसायटी के सम्बन्ध में कुछ कहना है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त सोसायटी से भारत का कुछ भला हुआ है और इसके लिए प्रत्येक हिन्दू उक्त सोसायटी और विशेषकर श्रीमती वेसेट का कृतज्ञ है। यद्यपि मैं श्रीमती वेसेट के सम्बन्ध में बहुत कम ही जानता हूँ, पर जो कुछ भी मुझे उनके बारे में मालूम है, उसके आधार पर मेरी यह वारणा है कि वे हमारी मातृभूमि की सच्ची हितचिन्तक हैं और यथाशक्ति उसकी उन्नति की चेष्टा कर रही हैं, इसलिए वे प्रत्येक सच्ची भारत-सन्तान की विशेष कृतज्ञता की अधिकारिणी हैं। प्रभु उन पर तथा उनसे सम्बन्धित सब पर आशीर्वाद की वर्षा करें! परन्तु यह एक बात है, और थियोसॉफिकल सोसायटी में सम्मिलित होना एक दूसरी बात। भक्ति, श्रद्धा और प्रेम एक बात है, और कोई मनुष्य जो कुछ कहे, उसे बिना विचारे, बिना तर्क किये, बिना उसका विश्लेषण किये निगल जाना सर्वथा दूसरी बात। एक अफवाह चारों ओर फैल रही है और वह यह कि अमेरिका और इंग्लैंड में जो कुछ काम मैंने किया है, उसमें थियोसॉफिस्टों ने मेरी सहायता की है। मैं तुम लोगों को स्पष्ट शब्दों में बता देना चाहता हूँ कि इसका प्रत्येक शब्द गलत है, प्रत्येक शब्द झूठ है। हम लोग इस जगत् में उदार भावों एवं भिन्न मतवालों के प्रति सहानुभूति के सम्बन्ध में बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें सुना करते हैं। यह है तो बहुत अच्छी बात, पर कार्यत हम देखते हैं कि जब कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य की सब बातों में विश्वास करता है, केवल तभी तक वह उससे सहानुभूति पाता है, पर ज्यों ही वह किसी विषय में उससे भिन्न विचार रखने का साहस करता है, त्यों ही वह सहानुभूति गायब हो जाती है, वह प्रेम खत्म हो जाता है। फिर, कुछ ऐसे भी लोग हैं, जिनका अपना अपना स्वार्थ रहता है। और यदि किसी देश में ऐसी कोई बात हो जाय, जिससे उनके स्वार्थ में कुछ घक्का लगता हो, तो उनके हृदय में इतनी ईर्ष्या और घृणा उत्पन्न हो जाती है कि वे उस समय क्या कर डालेंगे, कुछ कहा नहीं जा सकता। यदि हिन्दू अपने घरों को साफ करने की चेष्टा करते हो, तो इससे ईसाई मिशनरियों का क्या बिगड़ता है? यदि हिन्दू प्राणपण से अपना सुधार करने का प्रयत्न करते हो, तो इसमें ब्राह्मणसमाज और अन्यान्य सुधारसंस्थाओं का क्या जाता है? ये लोग हिन्दुओं के सुधार के विरोध में क्यों खड़े हो? ये लोग इस आन्दोलन के प्रबलतम शत्रु क्यों हो? क्यों? — यही मेरा प्रश्न है। मेरी समझ में तो उनकी घृणा और ईर्ष्या की मात्रा इतनी अतिक्रम है कि इस विषय में उनसे किसी प्रकार का प्रश्न करना भी सर्वथा निरर्थक है।

आज से चार वर्ष पहले जब मैं अमेरिका जा रहा था—सात समुद्र पार, बिना किसी परिचय-पत्र के बिना किसी बान-पहचान के एक अनजान मित्रहीन अज्ञात सन्दाची के रूप में—तब मैंने बियोसॉफिस्टो सोसायटी के नेता से मेंट की। स्वभावतः मैंने सोचा था कि जब ये अमेरिकावासी हैं और भारत-भक्त हैं तो सम्भवतः अमेरिका के किसी संरजन के नाम मुझे एक परिचय-पत्र दे देंगे। किन्तु जब मैंने उनके पास जाकर इस प्रकार के परिचय-पत्र के लिए प्रार्थना की तो उन्होंने पूछा “क्या आप हमारी सोसायटी के सदस्य बनने के लिए उत्तर दिया नहीं मैं किस प्रकार आपकी सोसायटी का सदस्य हो सकता हूँ? मैं तो आपके अधिकार सिद्धांतों पर विश्वास नहीं करता। उन्होंने कहा “तब मुझे खेद है मैं आपके लिए कुछ भी नहीं कर सकता। क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? जो हो मैं अपने कतिपय मित्रों की सहायता से अमेरिका गया। उन मित्रों में से अनेक यहाँ पर उपस्थित हैं, केवल एक ही अनुपस्थित है, स्वामीजीसुब्रह्मण्य अम्बर जिसके प्रति अपनी परम इतच्छात्रा प्रकट करना श्रेय है। उनमें प्रतिभासाक्षी पुरुष की अल्पवृष्टि विद्यमान है। इस जीवन में मेरे सच्चे मित्रों में से मे एक हूँ के भारत माता के सच्चे सपूत हूँ। अस्तु, बर्म-महासभा के कई मास पूर्व ही मैं अमेरिका पहुँच गया। मेरे पास रुपये बहुत कम थे और वे खीझ ही समाप्त हो गये। इपर जाबा भी जा गया और मेरे पास वे सिर्फ़ गरमी के कपड़े। उस बोर शीतप्रवास केव भ मैं बाहिर क्या करूँ यह कुछ सूझता न था। यदि मैं मार्च में भीक माँगने लगता तो परिणाम यही होता कि मैं जेक भेज दिया जाता। उस समय मेरे पास केवल कुछ ही डाकर बचे थे। मैंने अपने मारासवासी मित्रों के पास तार भेजा। वह बात बियोसॉफिस्टो को माकूम हो गयी और उनमें से एक ने लिखा अब सैतान चीस ही मर जायगा ईस्वर की इन्सा से बच्चा ही हुआ। बडा टली! ता क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? मैं ये बातें इस समय कहता नहीं चाहता था किन्तु मेरे बेरावासी मह सब जानने के इच्छुक थे अत कहनी पड़ी। मर तीन वर्षों तक इस सम्बन्ध में एक शब्द भी मैंने मुँह से नहीं निकाला। बुधबाप रहता ही मेरा मूलमन रहा किन्तु आज मैं बातें मुँह से निकल पड़ी। पर बात यही पर पूरी नहीं हो जाती। मैंने बर्म-महासभा में कई बियोसॉफिस्टों को बेजा। मैंने उनसे बातचीत करने और मिलने-जुलने की चेष्टा की। उन लोगों ने जिस अज्ञान भरी दृष्टि से मेरी बोर देना वह आज भी मरी मजहों पर नाच रही है—मातो कह कह रही की “यह कहाँ का धुत्र कीड़ा यहाँ बेवताओं के बीच आ गया? मैं पूछता हूँ क्या यहाँ मेरे लिए रास्ता बना देना था? हाँ तो बर्म-महासभा से मेरा बहुत नाम तथा मय हो गया और तब से मेरे ऊपर अत्यधिक कार्य भार जा गया। पर प्रत्येक स्वान

पर इन लोगो ने मुझे दवाने की चेष्टा की। थियोसॉफिकल सोसायटी के मदस्यो को मेरे व्याख्यान सुनने की मनाही कर दी गयी। यदि वे मेरी वक्तृता सुनने आते, तो वे सोसायटी की सहानुभूति खो देते, क्योंकि इस सोसायटी के गुप्त (एसोटेरिक) विभाग का यह नियम ही है कि जो मनुष्य उक्त विभाग का सदस्य होता है, उसे केवल कुयमी और मोरिया (वे जो भी हों) के पाम से ही शिक्षा ग्रहण करनी पडती है—अवश्य इनके दृश्य प्रतिनिधि, मिस्टर जज और मिनेज़ वेसेन्ट से। अत उक्त विभाग के सदस्य होने का अर्थ यह है कि मनुष्य अपना स्वाधीन विचार बिल्कुल छोडकर पूर्ण रूप से इन लोगो के हाथ में आत्मसमर्पण कर दे। निश्चय ही मैं ये सब बातें नहीं कर सकता था, और जो मनुष्य ऐसा करे, उसे मैं हिन्दू कह भी नहीं सकता। मेरे हृदय में स्वर्गीय मिस्टर जज के लिए बडी श्रद्धा है। वे गुणवान, उदार, सरल और थियोसॉफिस्टो के योग्यतम प्रतिनिधि थे। उनमें और श्रीमती वेसेन्ट में जो विरोध हुआ था, उनके सम्बन्ध में कुछ भी राय देने का मुझे अधिकार नहीं है, क्योंकि दोनों ही अपने अपने 'महात्मा' की सत्यता का दावा करते हैं। और यहाँ आश्चर्य की बात तो यह है कि दोनों एक ही 'महात्मा' का दावा करते हैं। ईश्वर जाने, सत्य क्या है—वे ही एकमात्र निर्णायक हैं। और जब दोनों पक्षों में प्रमाण की मात्रा बराबर है, तब ऐसी अवस्था में किसी भी पक्ष में अपनी राय प्रकट करने का किसी को अधिकार नहीं।

हाँ, तो इस प्रकार उन लोगो ने समस्त अमेरिका में मेरे लिए मार्ग प्रशस्त किया। पर वे यही पर नहीं रुके, वे दूसरे विरोधी पक्ष—ईसाई मिशनरियो—से जा मिले। इन ईसाई मिशनरियो ने मेरे विरुद्ध ऐसे ऐसे भयानक झूठ गढे, जिनकी कल्पना तक नहीं की जा सकती। यद्यपि मैं उस परदेश में अकेला और मित्रहीन था, तथापि उन्होंने प्रत्येक स्थान में मेरे चरित्र पर दोषारोपण किया। उन्होंने मुझे प्रत्येक मकान से बाहर निकाल देने की चेष्टा की, और जो भी मेरा मित्र बनता, उसे मेरा शत्रु बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने मुझे भूखो मार डालने की कोशिश की, और यह कहते मुझे दुःख होता है कि इस काम में मेरे एक भारतवासी भाई का भी हाथ था। वे भारत में एक सुधारक दल के नेता हैं। ये सज्जन प्रतिदिन घोषित करते हैं कि 'ईसा भारत में आये हैं।' तो क्या इसी प्रकार ईसा भारत में आयेंगे? क्या इसी प्रकार भारत का सुधार होगा? इन सज्जन को मैं अपने वचन से ही जानता था, ये मेरे परम मित्र भी थे। जब मैं उनसे मिला, तो बडा ही प्रसन्न हुआ, क्योंकि मैंने बहुत दिनों से अपने किसी देशभाई को नहीं देखा था। पर उन्होंने मेरे प्रति ऐसा व्यवहार किया। जिस दिन वर्म-महासभा ने मुझे सम्मानित किया, जिस दिन शिकागो में मैं लोकप्रिय हो गया, उसी दिन से

आज से चार बर्ये पहले जब मैं अमेरिका जा रहा था—सात समुद्र पार, बिना किसी परिचय-पत्र के बिना किसी ज्ञान-पहुँचान के एक अनजान मित्रहीन अज्ञात संन्यासी के रूप में—तब मैंने बियोसॉर्फिस्टा सोसायटी के नेता से मेंट की। स्वभावतः मैंने सोचा था कि जब ये अमेरिकावासी हैं और भारत भक्त हैं, तो सम्भवतः अमेरिका के किसी सुखान के नाम मुझे एक परिचय-पत्र दे देंगे। किन्तु जब मैंने उनके पास जाकर इस प्रकार के परिचय-पत्र के लिए प्रार्थना की तो उन्होंने पूछा “क्या आप हमारी सोसायटी के सदस्य बनेंगे? मैंने उत्तर दिया “नहीं मैं किस प्रकार आपकी सोसायटी का सदस्य हो सकता हूँ? मैं तो आपके अधिकांश सिद्धान्तों पर बिस्वास नहीं करता। उन्होंने कहा ‘तब मुझे खेद है मैं आपके लिए कुछ भी नहीं कर सकता। क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? जो हो मैं अपने प्रतिपक्ष मद्रासी मित्रों की सहायता से अमेरिका गया। उन मित्रों में से अनेक वहाँ पर उपस्थित हैं केवल एक ही अनुपस्थित है, म्यामाबीछ सुब्रह्मण्य अम्बर जिन्होंने प्रति अपनी परम हस्तक्षेप प्रकट करना खेप है। उनमें प्रतिभाशाली पुरुष की अन्तर्वृष्टि विद्यमान है। इस जीवन में मेरे सच्चे मित्रों में से वे एक हैं वे भारत माता के सच्चे सपूत हैं। अस्तु, बर्म-महासभा के कई मास पूर्व ही मैं अमेरिका पहुँच गया। मेरे पास रुपये बहुत कम थे और वे खींच ही समाप्त हो गये। इधर जाड़ा भी आ गया और मेरे पास वे सिर्फ़ गरमी के कपड़े। उस मोर शीतप्रधान देश में मैं आखिर क्या करूँ यह कुछ सूझता न था। यदि मैं मार्ग में भीत मीने लम्पना तो परिणाम यही होता कि मैं जेल भेज दिया जाता। उस समय मेरे पास केवल कुछ ही डाँटर बचे थे। मैंने अपने मद्रासवासी मित्रों के पास तार भेजा। यह बात बियोसॉर्फिस्टा को मालूम हो गयी और उनमें से एक ने लिखा ‘जब शतान की छह ही मर जायगा ईस्वर की कृपा से अच्छा ही हुआ। बला टली! तो क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? मैं ये बतौँ इस समय कहना नहीं चाहता था किन्तु मेरे देशवासी यह सब जानने के इच्छुक थे अतः कहनी पड़ी। यह तीन बर्यो तक इस सम्बन्ध में एक मन्त्र भी मैंने मुँह से नहीं निकाला। गुपचाप रहता ही मेरा मूलमंत्र रहा किन्तु आज ये बात मुँह से निकल पड़ी। पर बात यही पर पूरी नहीं हो जाती। मैंने बर्म-महासभा में कई बियोसॉर्फिस्टा की भेजा। मैंने उनसे बातचीत करने और मिलने-जुलने की अप्ना की। उन लोगों में जिस अवज्ञा भरी दृष्टि से मेरी ओर देगा वह आज भी मेरी नज़रों पर नाच रही है—मानो वह वह रही थी “यह कहीं का सुदूर कीड़ा यही देशवासी के बाँध आ गया? मैं पूछता हूँ क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? हाँ तो बर्म-महासभा में मेरा बहुत नाम उठा गया हो गया और तब से मेरे ऊपर अत्यधिक बर्षे मार आ गया। पर प्रत्येक स्थान

सबका दास बना सके। मैं उन्हीं महापुरुष के श्री चरणों को अपने मस्तक पर धारण किये हूँ। वे ही मेरे आदर्श हैं—मैं उन्हीं आदर्श पुरुष के जीवन का अनुकरण करने की चेष्टा करूँगा। सबका सेवक बनकर ही एक हिन्दू अपने को उन्नत करने की चेष्टा करता है। उसे इसी प्रकार, न कि विदेशी प्रभाव की सहायता से, सर्वसाधारण को उन्नत करना चाहिए। बीस वर्ष की पश्चिमी सम्यता मेरे मन में उम मनुष्य का दृष्टान्त उपस्थित कर देती है, जो विदेश में अपने मित्र को भूखा मार डालना चाहता है। क्यों?—केवल इसीलिए कि उसका मित्र लोकप्रिय हो गया है और उसके विचार में वह मित्र उसके धनोपार्जन में बाधक होता है। और असल, सनातन हिन्दू धर्म के उदाहरणस्वरूप हैं ये दूसरे व्यक्ति, जिनके सम्बन्ध में मैंने अभी कहा है। इमसे विदित हो जायगा कि सच्चा हिन्दू धर्म किस प्रकार कार्य करता है। हमारे इन सुधारकों में से एक भी, ऐसा जीवन गठन करके दिखाये तो सही जो एक पैरिया की भी सेवा के लिए तत्पर हो। फिर तो मैं उसके चरणों के समीप बैठकर शिक्षा ग्रहण करूँ, पर हाँ, उसके पहले नहीं। लम्बी-चौड़ी बातों की अपेक्षा थोड़ा कुछ कर दिखाना लाख गुना अच्छा है।

अब मैं मद्रास की समाज-सुधारक समितियों के बारे में कुछ कहूँगा। उन्होंने मेरे साथ बड़ा सदय व्यवहार किया है। उन्होंने मेरे लिए अनेक मधुर शब्दों का प्रयोग किया है और मुझे बताया है कि मद्रास और बंगाल के समाज-सुधारकों में बड़ा अन्तर है। मैं उनसे इस बात में सहमत हूँ। मैंने अक्सर तुम लोगों से कहा है, और यह तुम लोगों में से बहुतों को याद भी होगा कि मद्रास इस समय बड़ी अच्छी अवस्था में है। बंगाल में जैसी क्रिया-प्रतिक्रिया चल रही है, वैसी मद्रास में नहीं है। यहाँ पर धीरे धीरे स्थायी रूप से सब विषयों में उन्नति हो रही है, यहाँ पर समाज का क्रमशः विकास हो रहा है, किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं। बंगाल में कही कही कुछ कुछ पुनरुत्थान हुआ है, पर मद्रास में यह पुनरुत्थान नहीं है, यह है समाज की स्वाभाविक उन्नति। अतएव दोनों प्रदेशों के निवासियों की विभिन्नता के सम्बन्ध में समाज-सुधारक जो कुछ कहते हैं, उनसे मैं सर्वथा सहमत हूँ। परन्तु एक विभिन्नता और है, जिसे वे नहीं समझते। इन सस्थाओं में से कुछ मुझे डराकर अपना सदस्य बनाना चाहती हैं। ये लोग ऐसा करें, यह एक आश्चर्यजनक बात है। जो मनुष्य अपने जीवन के चौदह वर्षों तक लगातार फाकाकशी का मुकाबला करता रहा हो, जिसे यह भी न मालूम रहा हो कि दूसरे दिन का भोजन कहाँ से आयेगा, सोने के लिए स्थान कहाँ मिलेगा, वह इतनी सरलता से बमकाया नहीं जा सकता। जो मनुष्य बिना कपड़ों के और बिना यह जाने कि दूसरे समय भोजन कहाँ से मिलेगा, उस स्थान पर रहा हो, जहाँ का तापमान शून्य से भी तीस-

उमका स्वर बरक मया और छिमे छिमे मुझे हानि पहुँचाने में उन्होंने कोई कसर छत्र नहीं रखी। मैं पूछता हूँ क्या इसी तरह ईसा मारतबर्ष में आयेंगे? क्या बीस वर्ष ईसा की उपासना कर उन्होंने यही धिया पाई है? हमारे ये बड़े बड़े सुभारकमन कहते हैं कि ईसाई धर्म और ईसाई कोम भारतवासियों को उन्नत बनायेंगे। तो क्या वह इसी प्रकार होगा? यदि उक्त सज्जन को इसका एक उदाहरण किया जाय तो निस्सन्देह स्थिति कोई आधाजनक प्रतीत नहीं होती।

एक बात और। मैंने समाज-सुभारकों के मुखपत्र में पढ़ा था कि मैं पूरा हूँ और मुझसे पूछा मया था कि एक पूरा को संयासी होने का क्या अधिकार है? तो इसपर मेरा उत्तर यह है कि मैं उन महापुस्तक का बंधनर हूँ जिनके चरककमनों पर प्रत्येक ब्राह्मण 'मयाम धर्मराजाय चित्रगुप्ताय नमः' उच्चारण करते हुए पुण्याभि प्रदान करता है और जिनके बंधन बिशुद्ध श्रमिय है। यदि अपने पुत्रों पर बिश्वास हो तो इन समाज-सुभारकों को जान सेना चाहिए कि मेरी जाति मे पुत्रने बनाने मे काम सेबाओं के अतिरिक्त कई सताधियों तक जाये भारतवर्ष का शासन किया था। यदि मेरी जाति की सजना छोड़ दी जाय तो भारत की वर्तमान सम्यता का क्या सेप रहेगा? बड़ेके बंयाक में ही मेरी जाति में सबसे बड़े बार्थमिक सबसे बड़े कवि सबसे बड़े इतिहासज्ञ सबसे बड़े पुत्रतत्त्ववेत्ता और सबसे बड़े धर्मप्रचारक उत्पन्न हुए हैं। मेरी ही जाति ने वर्तमान समय के सबसे बड़े वैज्ञानिकों से भारतवर्ष को विमुक्ति किया है। इन जिनकों को बोड़ा अपने देश के इतिहास का तो ज्ञान प्राप्त करना था ब्राह्मण श्रमिय तथा वैश्य इन तीनों वर्णों के सम्बन्ध मे खरा अध्ययन ही करना था खरा यह तो जानना था कि तीनों ही वर्णों को संयासी होने और वेद के अध्ययन करने का समान अधिकार है। ये बातें मैंन यो ही प्रसयबस कह दीं। ये जो मुझे पूरा कहते हैं इसकी मुझे तनिक भी पीडा नहीं। मेरे पूर्वजो ने शरीबो पर जो अत्याचार किया था इससे उसका कुछ परिशोध ही आयमा। यदि मैं पैरिया (नीच जाम्बाल) होता तो मुझे और भी बामन्द जाता क्योंकि मैं उन महापुस्तक का शिष्य हूँ जिन्होंने सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण होते हुए भी एक पैरिया (जाम्बाल) के चर को साफ करन की अपनी इच्छा प्रकट की थी। अवश्य यह इस पर सहमत हुआ नहीं—और मरुत हीमा भी कैसे? एक तो ब्राह्मण फिर उस पर संयासी वे आकर चर साफ करिये इस पर क्या वह कमी राजी हो सकता था? तबान एक दिन बाभी पत्र को उठकर गुप्त रूप से उन्होंने उस पैरिया के चर में प्रवेश किया और उसका पानाता साफ कर दिया उन्होंने अपने कपडे सपडे बासां से उस स्थान को पोंक बासा। और यह काम वे सपाठार कई दिनों तक करते रहे, ताकि वे अपने की

सबका दास बना सके। मैं उन्हीं महापुरुष के श्री चरणों को अपने मस्तक पर धारण किये हूँ। वे ही मेरे आदर्श हैं—मैं उन्हीं आदर्श पुरुष के जीवन का अनुकरण करने की चेष्टा करूँगा। सबका सेवक बनकर ही एक हिन्दू अपने को उन्नत करने की चेष्टा करता है। उसे इसी प्रकार, न कि विदेशी प्रभाव की सहायता से, सर्वसाधारण को उन्नत करना चाहिए। बीस वर्ष की पश्चिमी सभ्यता मेरे मन में उस मनुष्य का दृष्टान्त उपस्थित कर देती है, जो विदेश में अपने मित्र को भूखा मार डालना चाहता है। क्यों?—केवल इसीलिए कि उसका मित्र लोकप्रिय हो गया है और उसके विचार में वह मित्र उसके धनोपार्जन में बाधक होता है। और असल, सनातन हिन्दू धर्म के उदाहरणस्वरूप है ये दूसरे व्यक्ति, जिनके सम्बन्ध में मैंने अभी कहा है। इससे विदित हो जायगा कि सच्चा हिन्दू धर्म किस प्रकार कार्य करता है। हमारे इन सुधारकों में से एक भी, ऐसा जीवन गठन करके दिखाये तो सही जो एक पैरिया की भी सेवा के लिए तत्पर हो। फिर तो मैं उसके चरणों के समीप बैठकर शिक्षा ग्रहण करूँ, पर हाँ, उसके पहले नहीं। लम्बी-चौड़ी बातों की अपेक्षा थोड़ा कुछ कर दिखाना लाख गुना अच्छा है।

अब मैं मद्रास की समाज-सुधारक समितियों के बारे में कुछ कहूँगा। उन्होंने मेरे साथ बड़ा सदय व्यवहार किया है। उन्होंने मेरे लिए अनेक मधुर शब्दों का प्रयोग किया है और मुझे बताया है कि मद्रास और बंगाल के समाज-सुधारकों में बड़ा अन्तर है। मैं उनसे इस बात में सहमत हूँ। मैंने अक्सर तुम लोगों से कहा है, और यह तुम लोगों में से बहुतों को याद भी होगा कि मद्रास इस समय बड़ी अच्छी अवस्था में है। बंगाल में जैसी क्रिया-प्रतिक्रिया चल रही है, वैसी मद्रास में नहीं है। यहाँ पर धीरे धीरे स्थायी रूप से सब विषयों में उन्नति हो रही है, यहाँ पर समाज का क्रमशः विकास हो रहा है, किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं। बंगाल में कहीं कहीं कुछ कुछ पुनरुत्थान हुआ है, पर मद्रास में यह पुनरुत्थान नहीं है, यह है समाज की स्वाभाविक उन्नति। अतएव दोनों प्रदेशों के निवासियों की विभिन्नता के सम्बन्ध में समाज-सुधारक जो कुछ कहते हैं, उनसे मैं सर्वथा सहमत हूँ। परन्तु एक विभिन्नता और है, जिसे वे नहीं समझते। इन सस्थाओं में से कुछ मुझे डराकर अपना सदस्य बनाना चाहती हैं। ये लोग ऐसा करें, यह एक आश्चर्यजनक बात है। जो मनुष्य अपने जीवन के चौदह वर्षों तक लगातार फाकाकशी का मुकाबला करता रहा हो, जिसे यह भी न मालूम रहा हो कि दूसरे दिन का भोजन कहाँ से आयेगा, सोने के लिए स्थान कहाँ मिलेगा, वह इतनी सरलता से धमकाया नहीं जा सकता। जो मनुष्य बिना कपड़ों के और बिना यह जाने कि दूसरे समय भोजन कहाँ से मिलेगा, उस स्थान पर रहा हो, जहाँ का तापमान शून्य से भी तीस-



दिली बम है। वह भाग में इतनी गम्भीरता में नहीं बरतता या नहीं। यही पत्नी का है जो मैं उनमें नहीं पाता—सुख में आती पाई दुःख में। मेरा योद्धा निज का अनुभव भी है और मेरे पास समाज के लिए एक गुरु है जो मैं बिना किसी बरत के बिना प्रविष्ट हो बिना किसी गुरु को नहीं। गुणवत्ता में मैं नहीं पाता कि मैं स्वयं उनमें नहीं बरत कर गुणवत्ता है। वे भाग में एक इतर इतर भाग गुणवत्ता का है। और मैं जानता हूँ आधुनिक गुणवत्ता। हम लोग का मतभेद है उनमें गुणवत्ता की प्रतीति में। उनकी प्रतीति विनाशालयक है और मेरी गुरु का मत। मैं गुणवत्ता में विनाश नहीं करता मैं विनाश करता हूँ समाजिक उत्पत्ति में। मैं जाने को ईश्वर के स्थान पर प्रविष्ट कर जाने समाज के लोगों के लिए पर वह उत्पत्ति मझने का कारण नहीं कर सकता कि तुम्हें इसी प्रति पलना होगा हमारी तरह नहीं। मैं तो गिने उग गिनाई की भाँति हुआ जाता हूँ जो राम के मनु को देने के समय अपने प्रोग्रामिंग को योद्धा का समाज गुरु हो गयी थी। यही मेरा भाव है। यह अनुभव था—जीवन की यह सुख सुख से बाँधे करता था था है। राष्ट्रीय जीवन का यह अनुभव प्रगत हम लोगों के सम्मुख था था है। जीवन जानता है जीवन का अनुभव कर सकता है कि यह अच्छा है या बुरा और या कि प्रगत कोया? हमारे पटमात्रक उनके चारा और उपस्थित हाथर उग एक विविष्ट प्रचार की प्रति दार अभी उनकी प्रति की मन्द और अभी उस तीव्र कर देने है। उनमें केग को नियमित करने का जीवन चाहता कर सकता है? हमारा काम तो यह की आर बुद्धि न रत केवल काम करत जाना है जैसा कि पीला में कहा है। राष्ट्रीय जीवन को जिस रूप में चरित है देत जानी बम वह अरत इन से उत्पत्ति करता जायगा को उगकी उत्पत्ति का मार्ग निश्चित नहीं कर सकता। हमारे समाज में बहुत सी बुद्धियाँ हैं पर इस तरह बुद्धियाँ तो हमारे समाजों में भी हैं। यहाँ की भूमि विपदाओं के काम से अभी अभी तर हो रही है तो पारजाय देश का वायुमण्डल अविवाहित स्थितियों की आवा से भर रहा है। यहाँ का जीवन प्रतीति की चोटों से अक्षय है तो यहाँ पर लोग विकसितता के लिए ही जीवन्तुत हो रहे हैं। यहाँ पर लोग इसलिये आत्महत्या करना चाहते हैं कि उनके पास जाने को कुछ नहीं है तो यहाँ जावान (मोक) की प्रचुरता के कारण लोग आत्महत्या करते हैं। बुद्धियाँ अभी बनह हैं यह ही प्रचुरता कात-रोग की तरह है। यदि उसे पर से हटाओ तो वह फिर में चला जाता है। यहाँ से हटाने पर वह दूसरी जगह भाग जाता है। वह उसे केवल एक जगह से दूसरी जगह ही भाग सकते हैं। वे बच्चों बुद्धियों के नियंत्रण की चप्टा करना ही सही उपाय नहीं है। हमारे वर्तमानस्थितियों में विद्या

है कि अच्छे और बुरे का नित्य सम्बन्ध है। वे एक ही भिक्के के दो पहलू हैं। यदि तुम्हारे पास एक है, तो दूसरा अवश्य रहेगा। जब ममुद्र में एक स्थान पर लहर उठती है तो दूसरे स्थान पर गड्ढा होना अनिवार्य है। इतना ही नहीं, सारा जीवन ही दोपयुक्त है। बिना किसी की हत्या किये एक साँस तक नहीं ली जा सकती, बिना किसी का भोजन छीने हम एक कोर भी नहीं खा सकते। यही प्रकृति का नियम है, यही दार्शनिक सिद्धान्त है।

इसलिए हमें केवल यह समझ लेना होगा कि सामाजिक दोषों के निराकरण का कार्य उतना वस्तुनिष्ठ नहीं है, जितना आत्मनिष्ठ। हम कितनी भी लम्बी चौड़ी डींग क्यों न होंके समाज के दोषों को दूर करने का कार्य जितना स्वयं के लिए शिक्षात्मक है, उतना समाज के लिए वास्तविक नहीं। समाज के दोष दूर करने के सम्बन्ध में सबसे पहले इस तत्त्व को समझ लेना होगा, और इसे समझकर अपने मन को शान्त करना होगा, अपने खून की चढती गरमी को रोकना होगा, अपनी उत्तेजना को दूर करना होगा। सत्कार का इतिहास भी हमें यह बताता है कि जहाँ कहीं इस प्रकार की उत्तेजना से समाज के मुघार करने का प्रयत्न हुआ है, वहाँ केवल यही फल हुआ कि जिसे उद्देश्य से वह किया गया था, उस उद्देश्य को ही उसने विफल कर दिया। दासत्व को नष्ट कर देने के लिए अमेरिका में जो लडाईं ठनी थी, उसकी अपेक्षा, अधिकार और स्वतन्त्रता की स्थापना के लिए किसी बड़े सामाजिक आन्दोलन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। तुम सभी लोग उसे जानते हो। पर उसका फल क्या हुआ? यही कि आजकल के दास इस युद्ध के पूर्व के दासों की अपेक्षा सौगुनी अधिक बुरी दशा को पहुँच गये। इस युद्ध के पूर्व ये बेचारे नीग्रो कम से कम किसी की सम्पत्ति तो थे, और सम्पत्ति होने के नाते इनकी देखभाल की जाती थी कि ये कहीं दुर्बल और बेकाम न हो जायें। पर आज तो ये किसी की सम्पत्ति नहीं हैं, इनके जीवन का कुछ भी मूल्य नहीं है। मामूली बातों के लिए ये जीते जी जला दिये जाते हैं, गोली से उड़ा दिये जाते हैं, और इनके हत्यारो पर कोई कानून ही लागू नहीं होता। क्यों? इसीलिए कि ये 'निगर' हैं, मानो ये मनुष्य तो क्या पशु भी नहीं हैं! समाज के दोषों को प्रबल उत्तेजनापूर्ण आन्दोलन द्वारा अथवा कानून के बल पर सहसा हटा देने का यही परिणाम होता है। इतिहास इस बात का साक्षी है—इस प्रकार का आन्दोलन चाहे किसी मले उद्देश्य से ही क्यों न किया गया हो। यह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है। प्रत्यक्ष अनुभव से ही मैंने यह सीखा है। यही कारण है कि मैं केवल दोष ही देखने-वाली इन सस्थाओं का सदस्य नहीं हो सकता। दोषारोपण अथवा निन्दा करने की भला आवश्यकता क्या? ऐसा कौन सा समाज है, जिसमें दोष न हो? सभी

समाज में तो बोध है। यह तो सभी कौर्षि जानते हैं। आज का एक बच्चा भी इसे जानता है। वह भी समाज पर खड़ा होकर हमारे सामने हित्नु धर्म की ममानक बुराइयों पर एक लम्बा भाषण दे सकता है। जो भी अधिभित विदेशी पृथ्वी की प्रवृत्ति करता हुआ भारत में पहुँचता है वह रेल पर से भारत को उड़ती नजर से देख मर सकता है और उस फिर भारत की भयानक बुराइयों पर बड़ा धारणित व्याख्यान देने लगता है। हम जानते हैं कि यहाँ बुराई है। पर बुराई तो हर कोई दिखा सकता है। मानव समाज का सच्चा हितैषी तो वह है जो इन कठिनाइयों से बाहर निकलने का उपाय बताये। यह तो इस प्रकार है कि कोई एक शार्शनिक एक बुरत हुए कड़क को गर्भर माण से उपवेश दे रहा था तो कड़के ने कहा 'पहले मुझ पानी से बाहर निकालिये फिर उपवेश दीजिये।' वस ठीक इसी तरह भारतवर्षी भी कहते हैं 'हम लोगो से बहुत व्याख्यान सुन लिये बहुत सी संस्थाएँ देख ली बहुत से पत्र पत्र लिये अब तो ऐसा मनुष्य चाहिए जो अपन हाथ का सहाय दे हम इन दुःखों के बाहर निकाले। कहाँ है वह मनुष्य जो हमसे वास्तविक प्रेम करता है जो हमारे प्रति सच्ची सहानुभूति रखता है? वस उची आदमी की हमें जरूरत है। यही पर मेरा इन समाज-सुधारक आलोचना से सर्वथा मतभेद है। आज सी बर्ष हो गये ये आलोचन वस रहे हैं पर सिवाय निन्दा और विद्रोहपूर्ण साहित्य की रचना के इनसे और क्या लाभ हुआ है? ईस्वर करता यहाँ ऐसा न होता। इन्होंने पुराने समाज की कठोर आलोचना की है उस पर दीर्घ बोधारोपण किया है उसकी कटु निन्दा की है और अन्त में पुराने समाज से भी इनके समान स्वर उठकर ईट का पत्थर ईट से दिया है। इसके फलस्वरूप प्रत्येक भारतीय भाषा में ऐसे साहित्य की रचना हो गयी है, जो वाति के लिए, देश के लिए फलकस्वरूप है। क्या यही सुधार है? क्या इसी तरह देश गौरव के पत्र पर बधमा? यह बोध है किसका?

इसके बाद एक और महत्त्वपूर्ण विषय पर हमें विचार करना है। भारतवर्ष में हमारा घासलन सबैव राजाओं द्वारा हुआ है। राजाओं ने ही हमारे सब कानून बनाये हैं। अब वे राजा नहीं हैं और इस विषय में अपसर होने के लिए हमें मार्ग दिखानेवाला अब कोई नहीं रहा। सरकार साइस नहीं करती। वह तो अनमत की मति देखकर ही अपनी कार्य-प्रणाली निश्चित करती है। अपनी समस्याओं को हल कर लेनेवाला एक कस्माप्रकारी और प्रबल लोकमत स्थापित करने में समर्थ लगता है—क्या लम्बा समय लगता है और इस बीच हमें प्रतीक्षा करनी होती। अतएव सामाजिक सुधार की सम्पूर्ण समस्या यह रूप लेती है कहाँ है वे लोग जो सुधार चाहते हैं? पहले उन्हें तैयार करो। सुधार चाहने

वाले लोग हैं कहीं? कुछ थोड़े से लोग किसी बात को उचित समझते हैं और वस उसे अन्य सब पर जबरदस्ती लादना चाहते हैं। इन अल्पसंख्य व्यक्तियों के अत्याचार के समान दुनिया में और कोई अत्याचार नहीं। मुट्ठी भर लोग, जो सोचते हैं कि कतिपय बातें दोषपूर्ण हैं, राष्ट्र को गतिशील नहीं कर सकते। राष्ट्र में आज प्रगति क्यों नहीं है? क्यों वह जड़भावापन्न है? पहले राष्ट्र को शिक्षित करो, अपनी निजी विधायक सस्थाएँ बनाओ, फिर तो कानून आप ही आ जायेंगे। जिस शक्ति के बल से, जिसके अनुमोदन से कानून का गठन होगा, पहले उसकी सृष्टि करो। आज राजा नहीं रहे, जिस नयी शक्ति से, जिस नये दल की सम्मति से नयी व्यवस्था गठित होगी, वह लोक-शक्ति कहीं है? पहले उसी लोक-शक्ति को सगठित करो। अतएव समाज-सुधार के लिए भी प्रथम कर्तव्य है—लोगों को शिक्षित करना। और जब तक यह कार्य सम्पन्न नहीं होता, तब तक प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।

गत शताब्दी में सुधार के लिए जो भी आन्दोलन हुए हैं, उनमें से अधिकांश केवल ऊपरी दिखावा मात्र रहे हैं। उनमें से प्रत्येक ने केवल प्रथम दो वर्गों से ही सम्बन्ध रखा है, शेष दो से नहीं। विधवा-विवाह के प्रश्न से ७० प्रतिशत भारतीय स्त्रियों का कोई सम्बन्ध नहीं है। और देखो, मेरी बात पर ध्यान दो, इस प्रकार के सब आन्दोलनों का सम्बन्ध भारत के केवल उच्च वर्गों से ही रहा है, जो जनसाधारण का तिरस्कार करके स्वयं शिक्षित हुए हैं। इन लोगों ने अपने अपने घर को साफ करने एवं अग्नेजों के सम्मुख अपने को सुन्दर दिखाने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। पर यह तो सुधार नहीं कहा जा सकता। सुधार करने में हमें नीच के भीतर, उसकी जड़ तक पहुँचाना होता है। इसीको मैं आमूल सुधार कहता हूँ। आगे जड़ में लगाओ और उसे क्रमशः ऊपर उठने दो एवं एक अखंड भारतीय राष्ट्र सगठित करो।

पर यह एक बड़ी भारी समस्या है, और इसका समाधान भी कोई सरल नहीं है। अतएव शीघ्रता करने की आवश्यकता नहीं। यह समस्या तो गत कई शताब्दियों से हमारे देश के महापुरुषों को ज्ञात थी।

आजकल, विशेषतः दक्षिण में, बौद्ध धर्म और उसके अज्ञेयवाद की आलोचना करने की एक प्रथा सी चल पड़ी है। यह उन्हें स्वप्न में भी ध्यान नहीं आता कि जो विशेष दोष आजकल हमारे समाज में वर्तमान हैं, वे सब बौद्ध धर्म द्वारा ही छोड़े गये हैं। बौद्ध धर्म ने हमारे लिए यही वसीयत छोड़ी है। जिन लोगों ने बौद्ध धर्म की उन्नति और अवनति का इतिहास कभी नहीं पढ़ा, उनके द्वारा लिखी गयी पुस्तकों में हम पढ़ते हैं कि बौद्ध धर्म के इतने विस्तार का कारण था—गौतम

युद्ध द्वारा प्रचारित अपूर्ण आचार-धाम्नि और उनका लोकोत्तर चरित्र । समबान् बुद्धदेव के प्रति मेरी यथेष्ट श्रद्धा-अश्रित है । पर मरे सर्षों पर ध्यान वा बीड धर्म का विस्तार उक्त महापुंस्य के मठ और अपूर्ण परित्र के कारण उतना नहीं हुआ त्रितना बीडां द्वारा निर्माण किये गये बड़े बड़े मन्दिरों एवं भव्य प्रतिमाओं के कारण समग्र बेस के सम्मुख किये गये मङ्कीछे उत्सवों के कारण । इसी भाँति बीड धर्म ने उन्नति की । इन सब बड़े बड़े मन्दिरों एवं माइम्बर भर क्रियाकलापों के सामने बरों में हवन के लिए प्रतिष्ठित छोटे छोटे अग्निकुण्ड ठहर न सके । पर अन्त में इन सब क्रिया कलापों में भारी अवनति हा ययी—ऐसी अवनति कि उसका धर्मन भी योशाओं के सामने नहीं किया जा सकता । जो इस सम्बन्ध में जानने के इच्छुक हों वे इसे क्रिन्ति परिमाण में दक्षिण भारत के ताना प्रकार क कलाधिस्य से युक्त बड़े बड़े मन्दिरों में बेस लें और बीडों से उत्तराधिकार के रूप में हमने केवल यही पामा ।

इसके बाद महान् सुधारक श्री शंकराचार्य और उनके अनुयायियों का अन्वयण हुआ । उस समय से आज तक इन कई सौ वर्षों में भारतवर्ष की सर्वसाधारण जनता का बीरे बीरे उस मौलिक विमुद्ध वेदान्त के धर्म की ओर जान की चेष्टा की गयी है । उन सुधारकों को बुराइयों का पूरा ज्ञान था पर उन्होंने समाज की निन्दा नहीं की । उन्होंने यह नहीं कहा कि 'जो कुछ तुम्हारे पास है वह सभी गलत है, उसे तुम फेंक दो । ऐसा कभी नहीं हो सकता था । आज मैंने पढा मेरे मित्र डाक्टर वैरोड कहते हैं कि ईसाई धर्म के प्रभाव से ३ वर्षों में यूनानी और रोमन धर्म के प्रभाव को उच्छेद किया । पर जिसने कभी यूरोप यूनान और रोम को देखा है वह ऐसा कभी नहीं कह सकता । रोमन और यूनानी धर्मों का प्रभाव प्रोटेस्टेण्ट देशों तक में सर्वत्र व्याप्त है । प्राचीन देवता मये बेस में वर्तमान है—केवल नाम भर बदल दिये गये हैं । बैकियां लो हो गयी है 'भिय' देवता हो गये है 'सन्त' (saints) और अनुष्ठानों ने तथा नया रूप धारण कर लिया है । यहाँ तक कि प्राचीन उपाधि पाटिपुत्रस मैक्सिमस पूर्ववत् ही विद्यमान है । अतएव अज्ञानक परिवर्तन नहीं हो सकते । शंकराचार्य और रामानुज इव ज्ञानसे थे । इसलिये उस समय प्रचलित धर्म को बीरे बीरे उन्नतम आदर्श तक पहुँचा देना ही उनके लिए एक उपाय थोप था । यदि वे बूसरी प्रवाची का सहारा लेते तो वे पाकड़ी सिद्ध हुते क्यकि उनके धर्म का प्रभाव मठ ही है कम-विकासवाद । उनके धर्म

१ रोम में पुरोहित विद्यमान्य के प्रबलाभ्यापक इसी नाम से पुकारे जाते हैं इसका अर्थ है—प्रबाल पुरोहित । जमी पोप इसी नाम से सम्बोधित किये जाते हैं

का मूलतत्त्व यही है कि इन नव नाना प्रकार की अवस्थाओं में से होकर आत्मा उच्चतम लक्ष्य पर पहुँचती है। अतः ये सभी अवस्थाएँ आवश्यक और हमारी सहायक हैं। भला कौन इनकी निन्दा करने का साहस कर सकता है ?

आजकल मूर्ति-पूजा को गलत बताने की प्रथा सी चल पड़ी है, और सब लोग बिना किसी आपत्ति के उसमें विश्वास भी करने लग गये हैं। मैंने भी एक समय ऐसा ही सोचा था और उसके दडस्वरूप मुझे ऐसे व्यक्ति के चरण कमलों में बैठ कर शिक्षा ग्रहण करनी पड़ी, जिन्होंने सब कुछ मूर्ति-पूजा के ही द्वारा प्राप्त किया था, मेरा अभिप्राय श्री रामकृष्ण परमहंस में है। यदि मूर्ति-पूजा के द्वारा श्री रामकृष्ण जैसे व्यक्ति उत्पन्न ही सकते हैं, तब तुम क्या पसन्द करोगे—सुधारको का धर्म, या मूर्ति-पूजा ? मैं इस प्रश्न का उत्तर चाहता हूँ। यदि मूर्ति-पूजा के द्वारा इस प्रकार श्री रामकृष्ण परमहंस उत्पन्न हो सकते हो, तो और हजारों मूर्तियों की पूजा करो। प्रभु तुम्हें सिद्धि दे। जिस किसी भी उपाय से हो सके, इस प्रकार के महापुरुषों की सृष्टि करो। और इतने पर भी मूर्ति-पूजा की निन्दा की जाती है। क्यों ? यह कोई नहीं जानता। शायद इसलिए कि हजारों वर्ष पहले किसी यहूदी ने इसकी निन्दा की थी। अर्थात् उसने अपनी मूर्ति को छोड़कर और सब की मूर्तियों की निन्दा की थी। उस यहूदी ने कहा था, यदि ईश्वर का भाव किसी विशेष प्रतीक या सुन्दर प्रतिमा द्वारा प्रकट किया जाय, तो यह भयानक दोष है, एक जघन्य पाप है, परन्तु यदि उसका अकन एक सन्दूक के रूप में किया जाय, जिसके दोनों किनारों पर दो देवदूत बैठे हैं और ऊपर बादल का एक टुकड़ा लटक रहा है, तो वह बहुत ही पवित्र, पवित्रतम होगा। यदि ईश्वर पेड़ों का रूप धारण करके आये, तो वह महापवित्र होगा, पर यदि वह गाय का रूप लेकर आये, तो यह मूर्ति-पूजाको का कुसंस्कार होगा।—उसकी निन्दा करो। दुनिया का वम यही भाव है। इसीलिए कवि ने कहा है, 'हम मर्त्य जीव कितने निर्बोध हैं।' परस्पर एक दूसरे के दृष्टिकोण से देखना और विचार करना कितना कठिन है। और यही मनुष्य समाज की उन्नति में घोर विघ्नस्वरूप है। यही है ईर्ष्या, घृणा और लड़ाई-झगड़े की जड़। अरे वालको, अपरिपक्व बुद्धिवाले नासमझ लड़को, तुम लोग कभी मद्रास के बाहर तो गये नहीं, और खड़े होकर सहस्रों प्राचीन संस्कारों से नियन्त्रित तीस करोड़ मनुष्यों पर कानून चलाना चाहते हो। क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती ? दूर हो जाओ धर्मनिन्दा के इस कुकर्म से, और पहले खुद अपना सबक सीखो। श्रद्धाहीन वालको, तुम कागज पर कुछ पकितियाँ घसीट सकने में और किसी मूर्ख को पकड़कर उन्हें छपवा लेने में अपने को समर्थ समझकर सोचते हो कि तुम जगत् के शिक्षक हो, तुम्हारा मत ही भारत का जनमत है। तो

क्या ऐसी बात है? इसीलिए मैं महास के समाज-सुधारकों से कहना चाहता हूँ कि मुझमें उनके प्रति बड़ी श्रद्धा और प्रेम है। उनके विधाक हृदय उनकी स्वदेश प्रीति पीड़ित और निर्धन के प्रति उनका प्रेम के कारण ही मैं उनसे प्यार करता हूँ। किन्तु माई जैसे माई से स्नेह करता है और साथ ही उसके वीर भी बिराता होता है ठीक इसी तरह मैं उनसे कहता हूँ कि उनकी कार्यप्रणाली ठीक नहीं है। यह प्रणाली भारत में छठी बर्ष तक आजमायी गयी पर वह कामयाब न हो सकी। अब हमें किसी नयी प्रणाली का सहारा लेना होगा।

क्या भारतवर्ष में कमी सुधारकों का अभाव था? क्या तुमने भारत का इतिहास पढ़ा है? रामानुज संकर, मानक चैतन्य कबीर और बाबू कौन थे? ये सब बड़े बड़े धर्माचार्य जो भारत-यवन में अत्यन्त उज्ज्वल नक्षत्रों की तरह एक के बाद एक उदय हुए और फिर अस्त हो गये कौन थे? क्या रामानुज के हृदय में नीच जातिवर्गों के लिए प्रेम नहीं था? क्या उन्होंने अपने सारे जीवन भर पैरिया (चाण्डाल) तक को अपने सम्प्रदाय में ले लेने का प्रयत्न नहीं किया? क्या उन्होंने अपने सम्प्रदाय में मुखसमान तक को मिला लेने की चेष्टा नहीं की? क्या मानक ने मुखसमान और हिन्दू लोगों को समान मान से धिखा देकर समाज में एक नयी अवस्था लाने का प्रयत्न नहीं किया? इन सबने प्रयत्न किया और उनका काम आज भी जारी है। भेद केवल इतना है कि वे आज के समाज-सुधारकों की तरह बन्नी नहीं थे वे इनके समान अपने मुँह से कमी अधिष्ठाप नहीं उगलते थे। उनके मुँह से केवल आशीर्वाद ही निकलता था। उन्होंने कमी भर्त्सना नहीं की। उन्होंने लोगों से कहा कि जाति को सतत उन्नतिशील होना चाहिए। उन्होंने अतीत में दृष्टि डालकर कहा 'हिन्दुओं तुमने अभी तक जो किया अच्छा ही किया पर माइयो तुम्हें अब इससे भी अच्छा करना होगा। उन्होंने यह नहीं कहा 'पहले तुम अच्छे थे और अब तुम्हें अच्छा होना होगा। उन्होंने यही कहा 'पहले तुम अच्छे थे अब और भी अच्छे बनो। इससे अमीन-आसमान का झर्क पैदा हो जाता है। हम लोगों को अपनी प्रकृति के अनुसार उन्नति करनी होगी। बिदेसी सत्त्वामो ने बरुपूर्वक बिच कृत्रिम प्रणाली को हममें प्रचलित करने की चेष्टा की है उसके अनुसार काम करना बुरा है। वह असम्भव है। बय हो प्रभु! हम लोगों की थोड़-भरोड़कर गये सिरों से बूसरे राष्ट्रों के बहिर् में गड़ना असम्भव है। मैं बूसरी झीमों की सामाजिक प्रथाओं की भिन्ना नहीं करता। वे उनके लिए अच्छी हैं पर हमारे लिए नहीं। उनके लिए जो कुछ अनुभूत है हमारे लिए वही बिय हो सकता है। पहले यही बात सीखनी होगी। अन्य प्रकार के विज्ञान अन्य प्रकार के परम्परागत संस्कार और अन्य प्रकार के आचारों से उनकी वर्तमान

सामाजिक प्रथा गठित हुई है। और हम लोगो के पीछे हैं हमारे अपने परम्परागत सस्कार और हज़ारो वर्षों के कर्म। अतएव हमें स्वभावतः अपने सस्कारो के अनुसार ही चलना पड़ेगा, और यह हमें करना ही होगा।

तब फिर मेरी योजना क्या है? मेरी योजना है—प्राचीन महान् आचार्यों के उपदेशों का अनुसरण करना। मैंने उनके कार्य का अध्ययन किया है, और जिस प्रणाली से उन्होंने कार्य किया, उनके आविष्कार करने का मुझे सौभाग्य मिला। वे सब महान् समाज-संस्थापक थे। वल, पवित्रता और जीवन-शक्ति के वे अद्भुत आधार थे। उन्होंने सबसे अद्भुत कार्य किया—समाज में वल, पवित्रता और जीवन-शक्ति संचारित की। हमें भी सबसे अद्भुत कार्य करना है। आज अवस्था कुछ बदल गयी है, इसलिए कार्यप्रणाली में कुछ थोड़ा सा परिवर्तन करना होगा, वस इतना ही इससे अधिक कुछ नहीं। मैं देखता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति की भाँति प्रत्येक राष्ट्र का भी एक विशेष जीवनोद्देश्य है। वही उसके जीवन का केन्द्र है, उसके जीवन का प्रधान स्वर है, जिसके साथ अन्य सब स्वर मिलकर समरसता उत्पन्न करते हैं। किसी देश में, जैसे इंग्लैंड में, राजनीतिक सत्ता ही उसकी जीवन-शक्ति है। कलाकौशल की उन्नति करना किसी दूसरे राष्ट्र का प्रधान लक्ष्य है। ऐसे ही और दूसरे देशों का भी समझो। किन्तु भारतवर्ष में धार्मिक जीवन ही राष्ट्रीय जीवन का केन्द्र है और वही राष्ट्रीय जीवनरूपी संगीत का प्रधान स्वर है। यदि कोई राष्ट्र अपनी स्वाभाविक जीवन-शक्ति को दूर फेंक देने की चेष्टा करे—शताब्दियों से जिस दिशा की ओर उसकी विशेष गति हुई है, उससे मुड़ जाने का प्रयत्न करे—और यदि वह अपने इस कार्य में सफल हो जाय, तो वह राष्ट्र मृत हो जाता है। अतएव यदि तुम धर्म को फेंककर राजनीति, समाज-नीति अथवा अन्य किसी दूसरी नीति को अपनी जीवन-शक्ति का केन्द्र बनाने में सफल हो जाओ, तो उसका फल यह होगा कि तुम्हारा अस्तित्व तक न रह जायगा। यदि तुम इससे बचना चाहो, तो अपनी जीवन-शक्तिरूपी धर्म के भीतर से ही तुम्हें अपने सारे कार्य करने होंगे—अपनी प्रत्येक क्रिया का केन्द्र इस धर्म को ही बनाना होगा। तुम्हारे स्नायुओं का प्रत्येक स्पन्दन तुम्हारे इस धर्मरूपी मेरुदण्ड के भीतर से होकर गुज़रे।

मैंने देखा है कि 'सामाजिक जीवन पर धर्म का कैसा प्रभाव पड़ेगा', यह विना दिखाये मैं अमेरिकावासियों में धर्म का प्रचार नहीं कर सकता था। इंग्लैंड में भी, विना यह बताये कि 'वेदान्त के द्वारा कौन कौन से आश्चर्यजनक राजनीतिक परिवर्तन हो सकेंगे', मैं धर्म-प्रचार नहीं कर सका। इसी भाँति भारत में सामाजिक सुधार का प्रचार तभी हो सकता है, जब यह दिखा दिया जाय कि उस नयी प्रथा से



आध्यात्मिक जीवन की उन्नति में कौन सी विधायक सहायता मिलेगी। राजनीति का प्रचार करने के लिए हमें बिखाना हीमा कि उसका द्वारा हमारे राष्ट्रीय जीवन की आकांक्षा—आध्यात्मिक उन्नति—की कितनी अधिक पूर्ति हो सकेगी। इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति को अपना अपना माप चुन लेना पड़ता है उसी भाँति प्रत्येक राष्ट्र को भी। हमने युवा पूर्व अपना पथ निर्धारित कर लिया था और अब हमें उसीसे चले रहना चाहिए—उसीके अनुसार चलना चाहिए। फिर, हमारा यह जयन्त सी तो उठना कोई बुरा नहीं। बड़ के बरले चैतन्य का मनुष्य के बरले ईश्वर का चिन्तन करना क्या संसार में इतनी बुरी चीज है? परलोक में कुछ मास्त्रा इस शोक के प्रति तैय्य निरस्त प्रबल त्याग-शक्ति एवं ईश्वर और अविनाशी आत्मा में बूढ़ विश्वास तुम लोगों में सतत विद्यमान है। क्या तुम इसे छोड़ सकते हो? नहीं तुम इसे कभी नहीं छोड़ सकते। तुम कुछ दिन मौतिकावादी होकर और मौतिकावादी की चर्चा करके भले ही मुझमें विश्वास जमाने की चेष्टा करो पर मैं आमतौर हूँ कि तुम क्या हो। तुमको छोड़ा चर्म अच्छी तरह समझा देने भर की बेर है कि तुम परम वास्तिक हो जाओगे। सोचो अपना स्वभाव ममा कैसे बचल सकते हो?

अतः भारत में किसी प्रकार का सुधार या उन्नति की चेष्टा करने के पहले चर्म-प्रचार आवश्यक है। भारत को समाजवादी अथवा राजनीतिक विचारों से प्रभावित करने के पहले आवश्यक है कि उसमें आध्यात्मिक विचारों की बाढ़ का बी जाय। सर्वप्रथम हमारे उपनिषदों पुराणों और अन्य सब सास्त्रा में जो अपूर्व सत्य छिपे हुए हैं उन्हें इन सब ग्रन्थों के पत्रों से बाहर निकालकर, मठों की चहारदीवारियाँ भेदकर, बनों की शून्यता से दूर लाकर, कुछ सम्प्रदाय-विशेषों के हाथों से छीनकर देस में सर्वत्र बिखेर देना होगा ताकि ये सत्य बालक के समान सारे देश को चारों ओर से छपेट ले—उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक सब जगह फैल जाय—हिमाचल से इन्द्याकुमारी और सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक सर्वत्र वे बपक उठें। सबसे पहले हमें यही करना हीमा। सभी को इन सब सास्त्रों में निहित उपदेश सुनाने होमे क्योंकि उपनिष में कहा है 'पहले इसे सुनना हीमा फिर मनन करना हीमा और उसके बाद निश्चिन्ता'। पहले लोग इन सत्तों को सुनें। और जो भी व्यक्ति अपने सास्त्र के इन महान् सत्तों को बूझने को सुनाने में

१ अत्मा वा मरे इच्छन् चैतन्यो मत्तन्मो  
निश्चिन्तास्तन्मो मन्त्रेभ्यस्तन्मि चम्बरे बुद्धे धृते  
मते चिन्ता इदं सर्वं निश्चितम् ॥ बृहदारण्यक ४.५.१॥

सहायता पहुँचायेगा, वह आज एक ऐसा कर्म करेगा, जिसके समान कोई दूसरा कर्म ही नहीं। महर्षि व्यास ने कहा है, “इम कलियुग मे मनुष्यों के लिए एक ही कर्म शेष रह गया है। आजकल यज्ञ और कठोर तपस्याओं से कोई फल नहीं होता। इम ममय दान ही एकमात्र कर्म है।”<sup>१</sup> और दानों में धर्मदान, अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान का दान ही सर्वश्रेष्ठ है। दूसरा दान है विद्यादान, तीसरा प्राणदान और चौथा अन्नदान। इस अपूर्व दानशील हिन्दू जाति की ओर देखो! इस निर्घन, अत्यन्त निर्घन देश में लोग कितना दान करते हैं, इसकी ओर ज़रा नज़र डालो। यहाँ के लोग इतने अतिथिसेवी हैं कि एक व्यक्ति बिना एक कीड़ी अपने पास रखे उत्तर में दक्षिण तक यात्रा करके आ सकता है। और हर स्थान में उसका ऐसा सत्कार होगा, मानो वह परम मित्र हो। यदि यहाँ कहीं पर रोटी का एक टुकड़ा भी है, तो कोई भिक्षुक भूख से नहीं मर सकता।

इस दानशील देश में हमें पहले प्रकार के दान के लिए अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तार के लिए साहसपूर्वक अग्रसर होना होगा। और यह ज्ञान-विस्तार भारतवर्ष की सीमा में ही आवद्ध नहीं रहेगा, इसका विस्तार तो सारे ससार भर में करना होगा। और अभी तक यही होता भी रहा है। जो लोग कहते हैं कि भारत के विचार कभी भारत में बाहर नहीं गये, जो सोचते हैं कि मैं ही पहला सन्यासी हूँ जो भारत के बाहर धर्मप्रचार करने गये, वे अपनी जाति के इतिहास को नहीं जानते। यह कई बार घटित हो चुका है। जब कभी भी ससार को इसकी आवश्यकता हुई, उसी समय इस निरन्तर बढ़नेवाले आध्यात्मिक ज्ञान-स्रोत ने ससार को प्लावित कर दिया। राजनीति सम्बन्धी विद्या का विस्तार रणभेरियों और सुसज्जित सेनाओं के बल पर किया जा सकता है। लौकिक एवं समाज सम्बन्धी विद्या का विस्तार आग और तलवारों के बल पर हो सकता है। पर आध्यात्मिक विद्या का विस्तार तो शान्ति द्वारा ही सम्भव है। जिस प्रकार चक्षु और कर्णगोचर न होता हुआ भी मृदु ओस-विन्दु गुलाब की कलियों को विकसित कर देता है, वैसे वैसे ही आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तार के सम्बन्ध में भी समझो। यही एक दान है, जो भारत दुनिया को बार बार देता आया है। जब कभी भी कोई दिग्विजयी जाति उठी, जिसने ससार के विभिन्न देशों को एक साथ ला दिया और आपस में यातायात तथा संचार की सुविधा कर दी, त्यो ही भारत उठा और

१ इसी आशय की व्यवस्था निम्नलिखित श्लोक में भी है  
तप पर कृते युगे धेताया ज्ञानमुच्यते ।

द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेक कलौ युगे ॥ मनुसंहिता १।८६॥

उसने संसार की समस्त उत्पत्ति में अपना आध्यात्मिक ज्ञान का भाग भी प्रदान कर दिया। बुद्धदेव के जन्म के महत्त्व पर्यन्त में ही ऐसा होता आया है और इनके चिह्न आज भी चीन एशिया माइनर और मलय द्वीप समूह के मौजूद हैं। अब उस महाबलशाली विभिन्नयी धृतायी ने उस समय के ज्ञान संसार के सब भागों को एक साथ ला दिया था तब भी यही बात बटी है — भारत के आध्यात्मिक ज्ञान की बाढ़ ने बाहर उमड़कर संसार को प्लावित कर लिया था। आज पारब्राह्मण देसवासी जिस सम्प्रदाय का जन्म करते हैं वह उसी प्लावन का अवशेष मात्र है। आज फिर से वही सुयोग उपस्थित हुआ है। इंग्लैंड की सक्ति ने सारे संसार की जातियों को एकता के मूल में इस प्रकार बाँध दिया है, वैसे पहले कभी नहीं हुआ था। अंग्रेजों के दाताभाव और प्रचार के साधन संसार के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक फैले हुए हैं। आज अंग्रेजों की प्रतिभा के कारण संसार अपूर्व रूप में एकता की ओर में बँध गया है। इस समय संसार के भिन्न भिन्न स्थानों में जिस प्रकार के व्यापारिक केन्द्र स्थापित हुए हैं वैसे मानव जाति के इतिहास में पहले कभी नहीं हुए थे। अतएव इस सुयोग में भारत प्रौरण उठकर ज्ञान अथवा अज्ञान रूप से जगत् को अपने आध्यात्मिक ज्ञान का बाण दे रहा है। अब इन सब भागों के सहारे भारत की यह भाव राशि समस्त संसार में फैलती रहेगी। मैं जो अमेरिका गया वह मेरी या तुम्हारी इच्छा से नहीं हुआ बल्कि भारत के साम्य-विवादात्मकान् ने मुझे अमेरिका भेजा और वे ही इसी भाँति सैकड़ों आश्रमियों को संसार के अन्ध सब देशों में भेजेंगे। इसे बुनियाद की कोई ताकत नहीं रोक सकती। अतएव तुमको भारत के बाहर भी जर्म प्रचार के लिए जाना होगा। इसका प्रचार जगत् की सब जातियों और मनुष्यों में करना होगा। पहले यही जर्म प्रचार आवश्यक है। जर्म-प्रचार करने के बाद उसके साथ ही साथ लौकिक विद्या और अन्याय्य ज्ञानस्यक विद्याएँ साथ ही आ जायेंगी। पर यदि तुम लौकिक विद्या बिना जर्म के प्रवृत्त करना चाहो तो मैं तुमसे साफ़ कहे देता हूँ कि भारत में तुम्हारा ऐसा प्रयास व्यर्थ सिद्ध होगा वह लोगों के हृदयों में स्थान प्राप्त न कर सकेगा। यहाँ तक कि इतना बड़ा जर्म जर्म भी कुछ अर्थों में इसी कारणवत्स यही अपना प्रयास न करना।

इसलिए मेरे मित्रों मेरा विचार है कि मैं भारत में कुछ ऐसे सिद्धान्त्य स्थापित करूँ जहाँ हमारे तबयुक्त अपने छात्रों के ज्ञान में परिचित होकर भारत तथा भारत के बाहर अपने जर्म का प्रचार कर सकें। मनुष्य केवल मनुष्य भर चाहिए। बाकी सब कुछ अपने आप ही पायागा। आवश्यकता है नीरवधान ऐतन्वी यज्ञ-सम्पन्न और बुद्धिवासी निष्कण तबयुक्तों की। ऐसे ही भिन्न जर्म तो संसार का कामाकर्म्य हो पाय। इच्छासक्ति संसार में सबसे अधिक बलवती है। उसके

सामने दुनिया की कोई चीज नहीं ठहर सकती, क्योंकि वह भगवान्—साक्षात् भगवान् से आती है। विशुद्ध और दृढ इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान है। क्या तुम इसमें विश्वास नहीं करते? सबके समक्ष अपने धर्म के महान् सत्यो का प्रचार करो, ससार इनकी प्रतीक्षा कर रहा है। सैकड़ों वर्षों से लोगों को मनुष्य की हीनावस्था का ही ज्ञान कराया गया है। उनसे कहा गया है कि वे कुछ नहीं हैं। ससार भर में सर्वत्र सर्वसाधारण से कहा गया है कि तुम लोग मनुष्य ही नहीं हो। गतान्दियों से इस प्रकार डराये जाने के कारण वे बेचारे सचमुच ही करीब करीब पशुत्व को प्राप्त हो गये हैं। उन्हें कभी आत्मतत्त्व के विषय में सुनने का मौका नहीं दिया गया। अब उनको आत्मतत्त्व सुनने दो, यह जान लेने दो कि उनमें से नीच से नीच में भी आत्मा विद्यमान है—वह आत्मा, जो न कभी मरती है, न जन्म लेती है, जिसे न तलवार काट सकती है न आग जला सकती है और न हवा सुखा सकती है, जो अमर है, अनादि और अनन्त है, जो शुद्धस्वरूप, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है।

उन्हे अपने में विश्वास करने दो। आखिर अग्नेजो में और तुममें किसलिए इतना अन्तर है? उन्हे अपने धर्म अपने कर्तव्य आदि के सम्बन्ध में कहने दो। पर मुझे अन्तर मालूम हो गया है। अन्तर यही है कि अग्नेज अपने ऊपर विश्वास करता है, और तुम नहीं। जब वह सोचता है कि मैं अग्नेज हूँ, तो वह उस विश्वास के बल पर जो चाहता है वही कर सकता है। इस विश्वास के आधार पर उसके अन्दर छिपा हुआ ईश्वर भाव जाग उठता है। और तब वह उसकी जो भी इच्छा होती है, वही कर सकने में समर्थ होता है। इसके विपरीत, लोग तुमसे कहते आये हैं, तुम्हें सिखाते आये हैं कि तुम कुछ भी नहीं हो, तुम कुछ भी नहीं कर सकते, और फलस्वरूप तुम आज इस प्रकार अकर्मण्य हो गये हो। अतएव आज हम जो चाहते हैं, वह है—बल, अपने में अटूट विश्वास।

हम लोग शक्तिहीन हो गये हैं। इसीलिए गुप्तविद्या और रहस्यविद्या—इन रोमाचक वस्तुओं ने धीरे धीरे हममें घर कर लिया है। भले ही उनमें अनेक सत्य हों, पर उन्हींमें लगभग हमें नष्ट कर डाला है। अपने स्नायु बलवान बनाओ। आज हमें जिसकी आवश्यकता है, वह है—लोहे के पुट्टे और फौलाद के स्नायु। हम लोग बहुत दिन रो चुके। अब और रोने की आवश्यकता नहीं। अब अपने पैरों पर खड़े हो जाओ और 'मर्द' बनो। हमें ऐसे धर्म की आवश्यकता है, जिससे

१ नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावकः ।

न चैन बलेदयन्त्यापो न शोषयति मासत ॥ गीता २।२३॥

हम मनुष्य बन सकें। हमें ऐसे सिद्धान्तों की जरूरत है जिससे हम मनुष्य हो सकें। हमें ऐसी सर्वोपसम्पन्न शिक्षा चाहिए, जो हमें मनुष्य बना सके। और यह रही सत्य की कसौटी—जो भी तुमको धार्मिक मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से दुर्बल बनाये उसे बाहर की माँठि त्याग दो उसमें जीवन-शक्ति नहीं है, वह कभी सत्य नहीं हो सकता। सत्य तो बलप्रद है, वह पवित्रता है, वह ज्ञानस्वरूप है। सत्य तो वह है जो धर्मित दे जो हृदय के अन्वकार को दूर कर दे जो हृदय में स्फूर्ति भर दे। मझे ही इन रहस्य-विद्यार्थों में कुछ सत्य हो पर य तो साधारणतया मनुष्य को दुर्बल ही बनाती हैं। मेरा विश्वास करो मेरा यह जीवन मर का अनुभव है। मैं भारत के लगभग सभी स्थानों में भ्रम चुका हूँ सभी युद्धों का अन्वेषण कर चुका हूँ और हिमाचल पर भी रह चुका हूँ। मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूँ जो जीवन मर नहीं रहे हैं। और अन्त में मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इन सब रहस्य-विद्यार्थों से मनुष्य दुर्बल ही होता है। मैं अपने देश से प्रेम करता हूँ मैं तुम्हें और अधिक पतित और प्यासा कमबोर नहीं देख सकता। मतएव तुम्हारे कल्याण के लिए, सत्य के लिए और जिससे मेरी भाँति और अधिक अवनत न हो पाय इसलिए मैं जोर से बिल्लाकर कहने के लिए बाध्य हो रहा हूँ—बस ठहरो। अवनति की और और न बढ़ो—बहुँ तक मरे हो बस उतना ही काफी हो चुका। अब जीवन पान होने का प्रयत्न करो कमबोर बनानेवासी इन सब रहस्यविद्यार्थों को तिलांजलि दे दो और अपने उपनिषदों का—उस बख़्श आलोकप्रद दिव्य दर्शन प्राप्त का—आभय ग्रहण करो। सत्य जितना ही महान् होता है उतना ही सहज बोध गम्य होता है—स्वयं अपने अस्तित्व के समान सहज। जैसे अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए और किसी की आवश्यकता नहीं होती बस वैसे ही। उपनिषद् के साथ तुम्हारे सामने है। इनका अवलम्बन करो इनकी उपलब्धि कर हट्टे कार्य में परिणत करो। बस देखोमे भारत का उद्धार निश्चित है।

एक बात और कहकर मैं समाप्त करना। जीवन देवमन्त्रि की चर्चा करते हैं। मैं भी देवमन्त्रि में विश्वास करता हूँ और देवमन्त्रि के सम्बन्ध में मेरा भी एक आदर्श है। बड़े काम करने के लिए तीन बातों की आवश्यकता होती है। पहला है हृदय की अनुभव-शक्ति। बुद्धि या विचार-शक्ति में क्या है? वह तो कुछ दूर जाती है जो बन नहीं सक जाती है। पर हृदय तो प्रेरणा-स्रोत है? प्रेम अमरमद हारो को भी उत्पाटित कर देता है। यह प्रेम ही जगत् के सब गत्यो का द्वार है। भाएव ये मेरे भावी गुणारको मेरे भावी देवमन्त्रि, तुम अनुभव करो। क्या तुम अनुभव करने हो? क्या तुम हृदय से अनुभव करने ही कि देव और शक्ति की करोड़। जन्तारें आज पनुमुष्य ही मयी है? क्या तुम हृदय

से अनुभव करते हो कि लाखों आदमी आज भूखो मर रहे हैं, और लाखों लोग शताब्दियों से इसी भाँति भूखो मरते आये हैं ? क्या तुम अनुभव करते हो कि अज्ञान के काले बादल ने सारे भारत को ढक लिया है ? क्या तुम यह सब सोचकर बेचैन हो जाते हो ? क्या इस भावना ने तुमको निद्राहीन कर दिया है ? क्या यह भावना तुम्हारे रक्त के साथ मिलकर तुम्हारी धमनियों में बहती है ? क्या वह तुम्हारे हृदय के स्पन्दन से मिल गयी है ? क्या उसने तुम्हें पागल सा बना दिया है ? क्या देश की दुर्दशा की चिन्ता ही तुम्हारे ध्यान का एकमात्र विषय बन बैठी है ? और क्या इस चिन्ता में विभोर हो जाने से तुम अपने नाम-यश, पुत्र-कलत्र, धन-सम्पत्ति, यहाँ तक कि अपने शरीर की भी सुघ विसर गये हो ? क्या तुमने ऐसा किया है ? यदि 'हाँ', तो जानो कि तुमने देशभक्त होने की पहली सीढ़ी पर पैर रखा है—हाँ, केवल पहली ही सीढ़ी पर ! तुमसे अधिकारी जानते हैं, मैं अमेरिका धर्म-महासभा के लिए नहीं गया, वरन् इस भावना का दैत्य मुझमें, मेरी आत्मा में था। मैं पूरे बारह वर्ष सारे देश भर भ्रमण करता रहा, पर अपने देशवासियों के लिए कार्य करने का मुझे कोई रास्ता ही नहीं मिला। यही कारण था कि मैं अमेरिका गया। तुमसे अधिकारी, जो मुझे उस समय जानते थे, इस बात को अवश्य जानते हैं। इस धर्म-महासभा की कौन परवाह करता था ? यहाँ मेरे देशवासी, मेरे ही रक्त-मासमय देहस्वरूप मेरे देशवासी, दिन पर दिन डूबते जा रहे थे। उनकी कौन खबर ले ? वस यही मेरा पहला सोपान था।

अच्छा, माना कि तुम अनुभव करते हो, पर पूछता हूँ, क्या केवल व्यर्थ की बातों में शक्तिक्षय न करके इस दुर्दशा का निवारण करने के लिए तुमने कोई यथार्थ कर्तव्य-पथ निश्चित किया है ? क्या लोगों की भर्त्सना न कर उनकी सहायता का कोई उपाय सोचा है ? क्या स्वदेशवासियों को उनकी इस जीवन्मृत अवस्था से बाहर निकालने के लिए कोई मार्ग ठीक किया है ? क्या उनके दुःखों को कम करने के लिए दो सान्त्वनादायक शब्दों को खोजा है ? यही दूसरी बात है।

किन्तु इतने ही से पूरा न होगा। क्या तुम पर्वताकार विघ्न-बाधाओं को लाँघकर कार्य करने के लिए तैयार हो ? यदि सारी दुनिया हाथ में नगी तलवार लेकर तुम्हारे विरोध में खड़ी हो जाय, तो भी क्या तुम जिसे मृत्यु समझते हो, उसे पूरा करने का साहस करोगे ? यदि तुम्हारे पुत्र-कलत्र तुम्हारे प्रतिकूल हो जायें, भाग्य-लक्ष्मी तुमसे हठकर चली जाय, नाम की कीर्ति भी तुम्हारा नाथ छोड़ दे, तो भी क्या तुम उम सत्य में मलग्न रहोगे ? फिर भी क्या तुम उसके पीछे लगे रहकर अपने लक्ष्य की ओर सतत बढ़ते रहोगे ? जैसा कि महान् राजा भर्तृ-

हरि ने कहा है 'चाहे नीतिनिपुण लीम निम्ना करें या प्रशंसा मरमी माय या बर्हा उसकी इच्छा हो बली जाय मृत्यु जाय हो या सी बर्ष बाद धीर पुण्य तो वह है जो म्याम के पक्ष से तनिक भी बिपक्षित नहीं होता।' क्या तुममें ऐसी बृहता है? वह मही तीसरी बात है। यदि तुममें से तीन बातें हैं तो तुममें से प्रत्येक अद्भुत कार्य कर सकता है। तब फिर तुम्हें समाचारपत्रों में छपवाने की बजाया म्यास्यान देते हुए फिरते रहने की आवश्यकता न होनी स्वयं तुम्हारा मुख ही पीटा हो उठेगा? फिर तुम चाहे पर्वत की कन्धरा में रहो तो भी तुम्हारे विचार पर्वत की चट्टानों को भेदकर बाहर निकल आवेगे और सैकड़ों वर्ष तक सारे संसार में प्रतिष्पनित होते रहेंगे। और ही सकता है, तब तक ऐसे ही रहें जब तक उन्हें किसी मस्तिष्क का आधार न मिल जाय और वे उसीके माध्यम से कार्यशील हो उठें। विचार निष्कपटता और पवित्र उद्देश्य में ऐसी ही शजररस्त घोषित है।

मुझे डर है कि तुम्हें बेर हो रही है, पर एक बात और। ऐ मेरे स्वदेशवासियों मेरे मित्रों मेरे बच्चों राष्ट्रीय जीवनरूपी यह बहाज सार्वों लोयों को जीवनरूपी समुद्र के पार करता रहा है। कई सताबिर्षों से इसका यह कार्य चल रहा है और इसकी सहायता से लाओ आत्माएँ इस घामर के उस पार अमृतधाम में पहुँची हैं। पर आज घामर तुम्हारे ही बोध से इस पीठ में कुछ सपनी हो गई है, इसमें एक बो छेद हो गये हैं तो क्या तुम इसे कोसोगे? संसार में जिसने तुम्हारा सबसे अधिक उपकार किया है, उसके विपक्ष बड़े होकर उस पर माफी बरसाना क्या तुम्हारे लिए उचित है? यदि हमारे इस समाज में इस राष्ट्रीय जीवनरूपी बहाज में छेद है, तो हम तो उसकी सन्तान हैं। आओ बहें उन छेदों को बन्द कर दें — उसके लिए हँसते हँसते अपने हृदय का रक्त बहा दें। और यदि हम ऐसा न कर सकें तो हमें मर जाना ही उचित है। हम अपना मेजा निकालकर उसकी डाट बनायेंगे और बहाज के उन छेदों में मर देंगे। पर उसकी कमी भरसना न करें? इस समाज के विपक्ष एक कड़ा शस्त्र तक न निकालो। उसकी अतीत की शौर्य-परिभा के लिए मेरा उस पर प्रेम है। मैं तुम सबको प्यार करता हूँ क्योंकि तुम वेवचारों की सन्तान ही महिमाशाली पूर्वजों के वंशज हो। तब मरना मैं तुम्हें कैसे कोस सकता हूँ? यह असम्भव है। तुम्हारा सब प्रकार से कल्याण हो। ऐ मेरे बच्चों मैं तुम्हारे पास आया हूँ अपनी साथी योजनाएँ तुम्हारे सामने रखने के लिए। यदि तुम उन्हें सुनो तो मैं तुम्हारे साथ काम करने को तैयार हूँ। पर यदि तुम उनकी

१ निम्नस्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुबन्तु कल्पयेत् समाविष्टानु पञ्चानु वा पश्येत् ।  
अतीत वा मरुतमस्तु मुच्यन्ते वा म्याम्यात् पक्षः प्रविशकन्ति पदं न शीरः ॥

न मुनो, और मुझे ठुकराकर अपने देश के बाहर भी निकाल दो, तो भी मैं तुम्हारे पास वापस आकर यहीं कहूँगा, “भाई, हम सब डूब रहे हैं।” मैं आज तुम्हारे बीच बैठने आया हूँ। और यदि हमें डूबना है, तो आओ, हम सब साथ ही डूबें, पर एक भी कटु शब्द हमारे ओठों पर न आने पाये।



## भारतीय जीवन में वेदान्त का प्रभाव

[ मद्रास में दिया हुआ मापण ]

हमारी जाति और धर्म को व्यक्त करने के लिए एक शब्द बहुत प्रचलित हो गया है। वेदान्त धर्म से मरा क्मा अभिप्राय है, इसको समझाने के लिए उक्त शब्द 'हिन्दू' की क्विचित् व्याख्या करने की आवश्यकता है। प्राचीन अरस देशनिवासी सिन्दु नर के लिए 'हिन्दू' इस नाम का प्रयोग करते थे। संस्कृत भाषा में वहाँ 'स' जाता है प्राचीन अरसी भाषा में वही 'ह' रूप में परिणत हो जाता है इसलिये सिन्दु का 'हिन्दू' हो गया। तुम सभी लोग जानते हो कि यूनानी लोग 'ह' का उच्चारण नहीं कर सकते थे इसलिये उन्होंने 'ह' को छोड़ दिया और इस प्रकार हम 'इण्डियन' नाम से जाने गये। प्राचीन काल में इस शब्द का अर्थ जो भी हो अब इस हिन्दू शब्द की जो सिन्दु नर के दूसरे किनारे से निवासियों के लिए प्रयुक्त होता था कोई सार्थकता नहीं है क्योंकि सिन्दु नर के इस ओर रहने वाले सभी एक धर्म के माननेवाले नहीं हैं। इस समय यहाँ हिन्दू, मुसलमान पारसी ईसाई, बौद्ध और चीन भी वास करते हैं। 'हिन्दू' शब्द के स्थापक अर्थ के अनुसार इन सबको हिन्दू कहना होगा किन्तु धर्म के हिसाब से इन सबको हिन्दू नहीं कहा जा सकता। हमारा धर्म भिन्न भिन्न प्रकार के धार्मिक विश्वास मान तथा अनुष्ठान और किना-कर्मों का समष्टि-स्वरूप है। सब एक साथ मिळा हुआ है किन्तु यह कोई साधारण नियम से संयोजित नहीं हुआ इसका कोई एक साधारण नाम भी नहीं है और न इसका कोई सब ही है। क्वाचित् केवल एक यही विषय है वहाँ घारे सम्प्रदाय एकमत हैं कि हम सभी अपने-अपने देवों पर विश्वास करते हैं। यह भी निश्चित है कि जो व्यक्ति देवों की सर्वोच्च प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं करता उसे अपने को हिन्दू कहने का अधिकार नहीं है। तुम जानते हो कि ये देव दो भागों में विभक्त हैं—कर्मकांड और ज्ञानकांड। कर्मकांड में ज्ञान प्रचार के माध्यम और अनुष्ठान-नियतियाँ हैं जिनका अधिकार आवश्यक प्रचलित नहीं है। ज्ञानकांड में देवों के आध्यात्मिक उपदेश लिपिबद्ध हैं—वे उपनिषद् अथवा 'वेदान्त' के नाम से परिचित हैं और ईतबादी विधिप्राईतबादी अथवा अइतबादी समस्त दार्शनिकों और आचार्यों ने उनको ही उच्चतम प्रमाण कहकर स्वीकार किया है। भारत

के समस्त दर्शन और सम्प्रदायो को यह प्रमाणित करना होता है कि उसका दर्शन अथवा सम्प्रदाय उपनिषद्रूपी नीव के ऊपर प्रतिष्ठित है। यदि कोई ऐसा करने में समर्थ न हो सके तो वह दर्शन अथवा सम्प्रदाय धर्म-विरुद्ध गिना जाता है, इसलिए वर्तमान समय में समग्र भारत के हिन्दुओं को यदि किमी साधारण नाम से परिचित करना हो तो उनको 'वेदान्ती' अथवा 'वैदिक' कहना उचित होगा। मैं वेदान्ती धर्म और वेदान्त इन दोनों शब्दों का व्यवहार सदा इसी अमिप्राय से करता हूँ।

मैं इसको और भी स्पष्ट करके समझाना चाहता हूँ, कारण यह है कि आजकल कुछ लोग वेदान्त दर्शन की 'अद्वैत' व्याख्या को ही 'वेदान्त' शब्द के समानार्थक रूप में प्रयोग करते हैं। हम सब जानते हैं कि उपनिषदों के आधार पर जिन समस्त विभिन्न दर्शनों की सृष्टि हुई है, अद्वैतवाद उनमें से एक है। अद्वैतवादियों की उपनिषदों के ऊपर जितनी श्रद्धा-भक्ति है, विशिष्टाद्वैतवादियों की भी उतनी ही है और अद्वैतवादी अपने दर्शन को वेदान्त की भित्ति पर प्रतिष्ठित कह कर जितना अपनाते हैं, विशिष्टाद्वैतवादी भी उतना ही। द्वैतवादी और भारतीय अन्यान्य समस्त सम्प्रदाय भी ऐसा ही करते हैं। ऐसा होने पर भी साधारण मनुष्यों के मन में 'वेदान्ती' और 'अद्वैतवादी' समानार्थक हो गये हैं और शायद इसका कुछ कारण भी है। यद्यपि वेद ही हमारे प्रधान शास्त्र हैं, हमारे पास वेदों के सिद्धान्तों की व्याख्या दृष्टान्त रूप से करने वाले परवर्ती स्मृति और पुराण भी निश्चित रूप से वेदों के समान प्रामाणिक नहीं हैं। यह शास्त्र का नियम है कि जहाँ श्रुति एव पुराण और स्मृति में मतभेद हो, वहाँ श्रुति के मत का ग्रहण और स्मृति के मत का परित्याग करना चाहिए। इस समय हम देखते हैं कि अद्वैत दार्शनिक शंकराचार्य और उनके मतावलम्बी आचार्यों की व्याख्या में अविक परिमाण में उपनिषद् प्रमाण-स्वरूप उद्धृत हुए हैं। केवल जहाँ ऐसे विषय की व्याख्या का प्रयोजन हुआ, जिसको श्रुति में किसी रूप में पाने की आशा न हो, ऐसे थोड़े से स्थानों में ही केवल स्मृति-वाक्य उद्धृत हुए हैं। अन्यान्य मतावलम्बी स्मृति के ऊपर ही अधिकाधिक निर्भर रहते हैं, श्रुति का आश्रय कम ही लेते हैं और ज्यों ज्यों हम द्वैतवादियों की ओर ध्यान देते हैं, हमको विदित होता है कि उनके उद्धृत स्मृति-वाक्यों के अनुपात का परिणाम इतना अधिक है कि वेदान्तियों से इस अनुपात की आशा नहीं की जाती। ऐसा प्रतीत होता है कि इनके स्मृति-पुराणादि प्रमाणों के ऊपर इतना अधिक निर्भर रहने के कारण, अद्वैतवादी ही क्रमशः विशुद्ध वेदान्ती कहे जाने लगे।

जो ही, हमने प्रथम ही यह दिखा दिया है कि वेदान्त शब्द से भारत के समस्त धर्म नमष्टिरूप से समझे जाते हैं, और यह वेदान्त वेदों का एक भाग होने के कारण

सभी क्षेत्रों द्वारा स्वीकृत हमारा सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। आधुनिक विद्वानों का विचार जो भी हों एक हिन्दू यह विश्वास करने को कभी तैयार नहीं है कि वेदों का कुछ भग्न एक समय में और कुछ अन्य समय में लिखा गया है। उनका जब भी यह वृक्ष विश्वास है कि समग्र वेद एक ही समय में उत्पन्न हुए थे अपना यदि मैं कह सकूँ उनकी सृष्टि कभी नहीं हुई वे चिरकाल से सृष्टिकर्ता के मन में वर्तमान थे। 'वेदान्त' शब्द से मेरा यही अभिप्राय है और भारत के ईश्वरवाद, विशिष्ट-ईश्वरवाद और अद्वैतवाद सभी उसके अन्तर्गत हैं। सम्भवतः हम बीछ बर्म यहाँ तक कि जैन धर्म के भी बोधविद्येयों को ग्रहण कर सकते हैं, यदि उक्त बर्माजन्मी अनुग्रहपूर्वक हमारे मध्य में जाने को सहमत हों। हमारा हृत्पथ यथेष्ट प्रवृत्त है हम उनको ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत हैं वही जाने को राजी नहीं है। हम उनको ग्रहण करने के लिए सदा प्रस्तुत हैं कारण यह है कि विशिष्ट रूप से विश्लेषण करने पर तुम देखोगे कि बीछ बर्म का धार भाग हमही उपनिषदों से लिया गया है यहाँ तक कि बीछ बर्म का तत्कालीन अस्मृत और महान् व्याचार-शास्त्र किसी न किसी उपनिषद् में अविकल रूप से विद्यमान है। इसी प्रकार जैन धर्म के उत्तमोत्तम सिद्धान्त भी उपनिषदों में वर्तमान हैं केवल असमर्थ और मनमानी बातों को छोड़कर इसके परभावत् राष्ट्रीय धार्मिक विचारों का जो समस्त विकास हुआ है, उसका बीछ हम उपनिषदों में देखते हैं। कभी कभी इस प्रकार का निर्मूल अभियोग लगाया जाता है कि उपनिषदों में भक्ति का आदर्श नहीं है। जिन्होंने उपनिषदों का अध्ययन अच्छी तरह किया है, वे जानते हैं कि यह अभियोग बिल्कुल सत्य नहीं है। प्रत्येक उपनिषद् में अनुसन्धान करने से यथेष्ट भक्ति का विषय पाया जाता है किन्तु इनसे से अधिकारा भाव जो परवर्ती काल से पुरुष तथा अस्यान्य स्मृतियों में इतनी पूर्णता से विकसित पाये जाते हैं उपनिषदों में बीजरूप में विद्यमान है। उपनिषदों में मानो उसका बीजा उसकी स्वरूपा ही वर्तमान है। किसी किसी पुराण में यह बीजा पूर्ण किया गया है किन्तु कोई भी ऐसा पूर्ण विकसित भारतीय आदर्श नहीं है जिसका मूल जोत उपनिषदों में जोड़ा न जा सकता हो। बिना उपनिषद्-विद्या के विशेष ज्ञान के अनेक व्यक्तियों ने भक्तिवाद को किसी भी ढंग से विकसित सिद्ध करने की हास्यास्पद चेष्टा की है किन्तु तुम सब जागृत हो कि उनकी सम्पूर्ण चेष्टा विफल हुई है। तुम्हें अितनी भक्ति की आवश्यकता है, सब उपनिषदों में ही कभी संहिता पर्यन्त सबसे विद्यमान है—उपासना प्रेम भक्ति और जो कुछ आवश्यक है सब विद्यमान है। केवल भक्ति का आदर्श अविकारिक रूप होता रहा है। संहिता के भागों में सब और क्लेशमुक्त धर्म के विद्वान् पाये जाते हैं। संहिता के किसी किसी स्वरूप पर देखा जाता है कि उपासक वरुण

अथवा अन्य किसी देवता के सम्मुख भय से कांप रहा है। और कई स्थलो पर यह भी देखा जाता है कि वे अपने को पापी समझकर अधिक यत्रणा पाते हैं, किन्तु उपनिषदो मे इस प्रकार के वर्णन के लिए कोई स्थान नहीं है, उपनिषदो मे भय का धर्म नहीं है, उपनिषदो मे प्रेम और ज्ञान का धर्म है।

ये उपनिषद् ही हमारे शास्त्र हैं। इनकी व्याख्या भिन्न भिन्न रूप से हुई है और मैं तुमसे पहले कह चुका हूँ कि जहाँ परवर्ती पौराणिक ग्रन्थो और वेदो मे मतभेद होता है, वहाँ पुराणो के मत को अग्राह्य कर वेदो का मत ग्रहण करना पड़ेगा। किन्तु कार्यरूप मे हमसे से ९० प्रतिशत मनुष्य पौराणिक और शेष १० प्रतिशत वैदिक हैं और इतने भी है या नहीं, इसमे भी सन्देह है। साथ ही हम यह भी देखते हैं कि हमारे बीच नाना प्रकार के अत्यन्त विरोधी आचार भी विद्यमान हैं—हमारे समाज मे ऐसे भी धार्मिक विचार प्रचलित हैं, जिनका हिन्दू शास्त्रो मे कोई प्रमाण नहीं है। शास्त्रो का अध्ययन करके हमे यह देखकर आश्चर्य होता है कि हमारे देश मे अनेक स्थानो पर ऐसे कई आचार प्रचलित हैं, जिनका प्रमाण वेद, स्मृति अथवा पुराण आदि मे कही भी नहीं पाया जाता, वे केवल लोकाचार है। तथापि प्रत्येक अबोव ग्रामवासी सोचता है कि यदि उसका ग्राम्य आचार उठ जाय, तो वह हिन्दू नहीं रह सकता। उसकी धारणा यही है कि वेदान्त धर्म और इस प्रकार के समस्त क्षुद्र लोकाचार परस्पर घुलमिल कर एकरूप हो गये हैं। शास्त्रो का अध्ययन करने पर भी वे नहीं समझ सकते कि वे जो करते हैं, उसमे शास्त्रो की सम्मति नहीं है। उनके लिए यह समझना बड़ा कठिन होता है कि ऐसे समस्त आचारो का परित्याग करने से उनकी कुछ क्षति नहीं होगी, वरन् इससे वे अधिक अच्छे मनुष्य बनेंगे। इसके अतिरिक्त एक और कठिनाई है—हमारे शास्त्र बहुत विस्तृत हैं। पतजलिप्रणीत 'महाभाष्य' नामक भाषा-विज्ञान ग्रन्थ मे लिखा है कि सामवेद की सहस्र शाखाएँ थी। वे सब कहाँ हैं? कोई नहीं जानता। प्रत्येक वेद का यही हाल है। इन समस्त ग्रन्थो के अधिकाश का लोप ही गया है, सामान्य अर्थ ही हमारे निकट वर्तमान है। एक एक ऋषि परिवार ने एक एक शाखा का भार ग्रहण किया था। इन परिवारो मे से अधिकाशो का स्वाभाविक नियम के अनुसार वशलोप हो गया, अथवा विदेशी अत्याचार से मारे गये या अन्य कारणो से उनका नाश हो गया। और उन्हीके साथ साथ जिस वेद की शाखा विशेष की रक्षा का भार उन्होंने ग्रहण किया था, उसका भी लोप हो गया। यह बात हमको विशेष रूप से स्मरण रखनी चाहिए, कारण यह है कि जो कोई नये विषय का प्रचार अथवा वेदो के विरोधी भी किसी विषय का समर्थन करना चाहते हैं, उनके लिए यह यक्ति प्रधान सहायक है। जब भारत मे श्रुति और लोकाचार को लेकर तर्क

होता है जपना जब यह सिद्ध किया जाता है कि यह कोकाचार श्रुति-विषय है तब दूसरा पक्ष यही उत्तर देता है—नहीं यह श्रुति-विषय नहीं है यह श्रुति की उस शाखा में या जिसका इस समय लोप हुआ गया है, अतः यह प्रथा भी बेह-सम्मत है। शास्त्रों की ऐसी समस्त टीका और टिप्पणियों में किसी ऐसे सूत्र को पाना वास्तव में बड़ा कठिन है, जो सबसे समान रूप से मिलता हो। किन्तु हमको इस बात का सहज ही में विश्वास हो जाता है कि इन नाग्य प्रकार के विचारों तथा उपनिषदों में कहीं न कहीं अवश्य ही कोई सम्मिश्रित भूमि अन्तर्निहित है। अर्थों के में छोटे छोटे अर्थ अवश्य किसी विशेष आदर्श योजना तथा सामग्र्य के आधार पर निर्मित किये गये होंगे। इस प्रतीयमान निराशाजनक विभ्रम पुत्र के जिसको हम अपना धर्म कहते हैं मूल में अवश्य कोई न कोई एक सम्बन्ध निहित है। अथवा यह इतने समबलक कदापि बढ़ा नहीं रह सकता वा यह जब तक रक्षित नहीं रह सकता वा।

अपने भाष्यकारों के भाष्यों को देखने से हमें एक दूसरी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अद्वैतवादी भाष्यकार जब अद्वैत सम्बन्धी श्रुति की व्याख्या करता है उस समय वह उसके जैसे ही मान रहने देता है, किन्तु वही भाष्यकार जब द्वैत-भावात्मक सूत्रों की व्याख्या करने में प्रवृत्त होता है, उस समय वह उसके अर्थों की खोजतानी करके अद्भुत अर्थ निकालता है। भाष्यकारों ने समय समय पर अपना अभीष्ट अर्थ व्यक्त करने के लिए अर्थात् (अन्वयार्थित) शब्द का अर्थ 'बकरी' भी किया है—कैसा अद्भुत परिवर्तन है! इसी प्रकार, यहाँ तक कि इससे भी दुरी तरह, द्वैतवादी भाष्यकारों ने भी श्रुति की व्याख्या की है। जहाँ उनको द्वैत के अनुकूल श्रुति मिली है, उसको उन्होंने सुरक्षित रखा है, किन्तु जहाँ भी अद्वैतवाद के अनुसार पाठ आया है वही उन्होंने उस श्रुति के अर्थ की मरमाने रूप से विवृत करके व्याख्या की है। यह संस्कृत भाषा इतनी जटिल है, वैदिक संस्कृत इतनी प्राचीन है, संस्कृत भाषा-शास्त्र इतना पूर्ण है कि एक शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में मनु युवांतर तक चर्क चक सकता है। यदि कोई पंडित इतने कल्प हो पाय तो वह किसी व्यक्ति की बकवाद को भी सुनिश्चय से जपना शास्त्र और व्याकरण के नियम उल्लंघन कर सृष्ट संस्कृत सिद्ध कर सकता है। उपनिषदों को समझने के मार्ग में इस प्रकार की कई विघ्न-जाबाएँ उपस्थित होती हैं। विघ्नता की दृष्टि से मुझे एक ऐसे व्यक्ति के साथ रहने का अवसर प्राप्त हुआ था जो जैसे ही उनके द्वैतवादी के जैसे ही अद्वैतवादी भी के जैसे ही परम मन्त्र के जैसे ही आणी भी थे। इसी व्यक्ति के साथ रह कर प्रथम बार मेरे मन में आया कि उपनिषद् और अथर्व वेद शास्त्रों के पाठ की केवल अन्वयविश्वास से भाष्यकारों का अनुसरण

न करके, स्वाधीन और उत्तम रूप से समझना चाहिए। और मैं अपने मत में तथा अपने अनुसन्धान में इसी सिद्धान्त पर पहुँचा हूँ कि ये समस्त शास्त्र परस्पर विरोधी नहीं हैं, इसलिए हमको शास्त्रों की विकृत व्याख्या का भय नहीं होना चाहिए। समस्त श्रुतिवाक्य अत्यन्त मनोरम हैं, अत्यन्त अद्भुत हैं और वे परस्पर विरोधी नहीं हैं, उनमें अपूर्व सामंजस्य विद्यमान है, एक तत्त्व मानो दूसरे का सोपानस्वरूप है। मैंने इन समस्त उपनिषदों में एक यही भाव देखा है कि प्रथम द्वैत भाव का वर्णन उपासना आदि से आरम्भ हुआ है, अन्त में अपूर्व अद्वैत भाव के उच्छ्वास में वह समाप्त हुआ है।

इसलिए अब मैं इसी व्यक्ति के जीवन के प्रकाश में देखता हूँ कि द्वैतवादी और अद्वैतवादियों को परस्पर विवाद करने की कोई आवश्यकता नहीं है, दोनों का ही राष्ट्रीय जीवन में विशेष स्थान है। द्वैतवादी का रहना आवश्यक है, अद्वैतवादी के समान द्वैतवादी का भी राष्ट्रीय धार्मिक जीवन में विशेष स्थान है। एक के बिना दूसरा नहीं रह सकता, एक दूसरे का पूरक है, एक मानो गृह है, दूसरा छत। एक मानो मूल है और दूसरा फलस्वरूप। इसलिए उपनिषदों का मनमाना विकृत अर्थ करने की चेष्टा को मैं अत्यन्त हास्यास्पद समझता हूँ। कारण, मैं देखता हूँ कि उनकी भाषा ही अपूर्व है। श्रेष्ठतम दर्शन रूप में उनके गौरव के बिना भी, मानव जाति के मुक्ति-पथ-प्रदर्शक धर्मविज्ञान रूप में उनके अद्भुत गौरव को छोड़ देने पर भी, उपनिषदों के साहित्य में उदात्त भावों का ऐसा अत्यन्त अपूर्व चित्रण है, जैसा ससार भर में और कहीं नहीं है। यही मानवीय मन के उस प्रबल विशेषत्व का, अन्तर्दृष्टिपरायण, अन्तःप्रेरणीय उस हिन्दू मन का विशेष परिचय पाया जाता है। अन्यत्र अन्य जातियों के भीतर भी इस उदात्त भाव के चित्र को अंकित करने की चेष्टा देखी जाती है, किन्तु प्रायः सर्वत्र ही तुम देखोगे कि उनका आदर्श बाह्य प्रकृति के महान् भाव को ग्रहण करना है। उदाहरणस्वरूप मिल्टन, दान्ते, होमर अथवा अन्य किसी पाश्चात्य कवि को लिया जा सकता है। उनके काव्यों में स्थान स्थान पर उदात्त भावव्यजक अपूर्व स्थल हैं, किन्तु उनमें सर्वत्र ही बाह्य प्रकृति की अनन्तता को इन्द्रियों के माध्यम से ग्रहण करने की चेष्टा है—बाह्य प्रकृति के अनन्त विस्तार, देश की अनन्तता के आदर्श को प्राप्त करने का प्रयत्न है। हम वेदों के संहिता भाग में भी यही चेष्टा देखते हैं। कुछ अपूर्व ऋचाओं में जहाँ सृष्टि का वर्णन है, बाह्य प्रकृति के विस्तार का उदात्त भाव, देश का अनन्तत्व, अभिव्यक्ति की उच्चतम भूमियाँ उपलब्ध कर सका है। किन्तु उन्होंने शीघ्र ही जान लिया कि इन उपायों से अनन्तत्व को प्राप्त नहीं किया जा सकता, उन्होंने समझ लिया कि अपने मन के जिन सकल भावों को वे भाषा में व्यक्त करने की चेष्टा कर रहे थे,

उनको अनन्त वेस अनन्त विस्तार और अनन्त बाह्य प्रकृति प्रकाशित करने में बसमर्ब है। तब उन्होंने जगत्-समस्या की व्याख्या के लिए अन्य मार्गों का अवलम्बन किया। उपनिषदों की भाषा ने ममा रूप धारण किया उपनिषदों की भाषा एक प्रकार से 'मिति' बाबक है स्थान स्थान पर अस्फुट है, मानो वह तुम्हें झट्टीझिय राज्य में छ जाने की चेष्टा करती है केवल तुम्हें एक ऐसी वस्तु दिखा देती है, जिसे तुम ग्रहण नहीं कर सकते जिसका तुम इन्द्रियों से बोध नहीं कर पाते फिर भी उस वस्तु के सम्बन्ध में तुमको छात्र ही यह निश्चय भी है कि उसका अस्तित्व है। संसार में ऐसा स्वयं कहीं है जिसके साथ इस श्लोक की तुलना हो सके?—

न तत्र सूर्यो भासि न चन्द्रतारकम्।

तेमा विद्युतो भासि कुतोऽप्यमग्निः ॥'

—'वहाँ सूर्य की किरण नहीं पहुँचती वहाँ चन्द्रमा और तारे भी नहीं चमकते बिजली भी उस स्थान को प्रकाशित नहीं कर सकती इस सामान्य अग्नि का ठो कहना ही क्या ?

पुनश्च समस्त संसार के समग्र दार्शनिक भाव की अत्यन्त पूर्ण अभिव्यक्ति संसार में और कहीं पाओगे हिन्दू जाति के समग्र चिन्तन का सारांश मानव जाति की मोक्षाकांक्षा की समस्त कल्पना जिस प्रकार बहुमूत भाषा में अंकित हुई है जिस प्रकार अपूर्ण रूपक में वर्णित हुई है, ऐसी तुम और कहीं पाओगे ? क्या

इह नृपणां सपुत्रा सजाया समाने नृषी परिवत्सवन्ते।

तपोरत्न- निष्पन्नं त्वाह्वर्यमस्तमस्यो अभिधाकसीति ॥

समाने नृषो पुत्रयो निमम्भोऽपीसया सोचति मुह्यमानः।

नृप्यं यदा पश्यत्यन्वमीसमस्य महिमानमिति बीतशोकः ॥

एक ही नृश क ऊपर सुन्दर पंजाबी को चिड़िया रहती है—दोनों बड़ी मित्र हैं उनमें एक उसी नृश के फल खाती है, दूसरी फल न खाकर स्थिर बाव से नृपचाप बैठी है। नीचे की छाया में बैठी चिड़िया कभी मीठे कभी कड़वे फल खाती है—और इसी कारण कभी मुझी अबका कभी दुःखी होती है किन्तु ऊपर की छाया में बैठी हुई चिड़िया स्थिर और नम्रिरी है वह अच्छे-बुरे को फल नहीं खाती वह मुक्त और दुःख की परवाह नहीं करती अपना ही महिमा न मन्म है ये दोनों पक्षी जीवात्मा और परमात्मा हैं। मनुष्य इस जीवन के मीठे और कड़वे फल खाता है, वह जन की लीज में मस्त है, वह इन्द्रिय सुग के

१ ऋगीपत्रिषद् ॥२॥२॥१५॥

२ नृशकोपनिषद् ॥१॥१॥१ ॥

पीछे दौड़ता है, सासारिक क्षणिक वृथा सुख के लिए उन्मत्त होकर पागल के समान दौड़ता है। उपनिषदों ने एक और स्थान पर सारथि और उसके असयत दुष्ट घोड़े के साथ मनुष्य के इस इन्द्रिय-सुखान्वेषण की तुलना की है। वृथा सुख के अनुसन्धान की चेष्टा में मनुष्य का जीवन ऐसा ही बीतता है। बच्चे कितने सुनहले स्वप्न देखते हैं, अन्ततः केवल यह जानने के लिए कि ये निरर्थक हैं। वृद्धावस्था में वे अपने अतीत कर्मों की पुनरावृत्ति करते हैं, और फिर भी नहीं जानते कि इस जजाल से कैसे निकला जाय। ससार यही है। किन्तु सभी मनुष्यों के जीवन में समय समय पर ऐसे स्वर्णिम क्षण आते हैं—मनुष्य के अत्यन्त शोक में, यहाँ तक कि महा आनन्द के समय ऐसे उत्तम सुअवसर आ उपस्थित होते हैं, जब सूर्य के प्रकाश को छिपानेवाला मेघखड मानो थोड़ी देर के लिए हट जाता है। उस समय इस क्षण-काल के लिए अपने इस सीमाबद्ध भाव के परे उस सर्वातीत सत्ता की एक झलक पा जाते हैं जो अत्यन्त दूर है, जो पञ्चेन्द्रियावद्ध जीवन से परे बहुत दूर है, जो इस ससार के व्यर्थ भोग और इसके सुख-दुःख से परे बहुत ही दूर है, जो प्रकृति के उस पार दूर है, जो इहलोक अथवा परलोक में हम जिस सुख-भोग की कल्पना करते हैं उससे भी बहुत दूर है, जो घन, यश और सन्तान की तृष्णा से भी परे बहुत दूर है। मनुष्य क्षण-काल के लिए दिव्य दृश्य देखकर स्थिर होता है—और देखता है कि दूसरी चिडिया शान्त और महिमामय है, वह खट्टे या मीठे कोई भी फल नहीं खाती, वह अपनी महिमा में स्वयं आत्मतृप्त है, जैसा गीता में कहा है

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।

आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥३१७॥

—‘जो आत्मा में रत है, जो आत्मतृप्त है और जो आत्मा में ही सन्तुष्ट है, उसके करने के लिए और कौन कार्य शेष रह गया है?’

वह वृथा कार्य करके क्यों समय गँवाये? एक बार अचानक ब्रह्म-दर्शन प्राप्त करने के पश्चात् मनुष्य पुनः भूल जाता है, पुनः जीवन के खट्टे और मीठे फल खाता है—और उस समय उसको कुछ भी स्मरण नहीं रहता। कदाचित् कुछ दिनों के पश्चात् वह पुनः ब्रह्म के दर्शन प्राप्त करता है और जितनी चोट खाता है, उतना ही नीचे का पक्षी ऊपर बैठे हुए पक्षी के निकट आता जाता है। यदि वह सौभाग्य से ससार के तीव्र आघात पाता रहे, तो वह अपने सार्थी, अपने प्राण, अपने मखा उसी दूसरे पक्षी के निकट क्रमशः आता है। और वह जितना ही निकट आता है, उतना ही देखता है कि उस ऊपर बैठे हुए पक्षी की देह की ज्योति आकर उसके पखों के चारों ओर खेल रही है।



धीरे धीरे बहुत ही निरुत्तम जाता है। उतना ही अपास्तपण पटित होता है। धीरे धीरे वह जब अत्यन्त निरुत्तम पहुँच जाता है, तब देगता है कि मानों वह अन्तम मिटता जा रहा है—अन्त में उसका पूर्ण रूप खो जाता है। उस समय वह समझता है कि उसका पुष्प अस्तित्व भी न था वह उसी हिंसते हुए पत्तों के अन्तःस्थान और गम्भीर भाव से बीते हुए दूसरे पत्ती का प्रतिबिम्ब मात्र था। उस समय वह जानता है कि वह स्वयं ही नहीं अगर बीठा हुआ पत्ती है, वह सदा से अन्तःस्थान में बीठा हुआ था—यह उसीकी महिमा है। वह निर्मम हो जाता है, उस समय वह सम्पूर्ण रूप से वृष्ट होकर धीरे धीरे अन्तःस्थान में निमग्न रहता है। इसी रूप में उपनिषद् ईश भाव से आरम्भ कर पूर्ण अर्पित भाव में हमें ले जाते हैं।

उपनिषदों के अपूर्व अद्वितीय उन्नत विषय तथा उन्नतम मानसमूह शिक्षाने के लिए अन्तःस्थान उद्घुष्ट किसे जा सकते हैं किन्तु इस व्याख्यान में इसके लिए समय नहीं है। तो भी एक बात और कहूँगा उपनिषदों की भाषा और भाव की पति सरस है, उनकी प्रत्येक बात तत्त्वज्ञान की बार के समान हवींके की चोट के समान साक्षात् भाव से हृदय में आघात करती है। उनके अर्थ समझने में कुछ भी गूँध होने की सम्भावना नहीं—उस सगीत के प्रत्येक सुर में शक्ति है और वह हृदय पर पूरा असर करता है। उनमें अस्पष्टता नहीं अस्पष्ट कथन नहीं किसी प्रकार की अटिक्ता नहीं जिससे विमर्श नम जाय। उनमें अवनति के बिन्दु नहीं है अन्योन्यविरोधों द्वारा अर्थन की भी व्याख्या के बिना नहीं की गयी है। उपनिषदों में इस प्रकार के अर्थन भी नहीं मिलेंगे कि विशेषण के पश्चात् विशेषण लेकर अन्तःस्थान भाव को अटिक्ता करने से प्रकृत विषय का पता न लगे विमर्श नमकर जाने छोड़े और उस साहित्यिक गोरक्षका के बाहर निकलने का उपाय ही न सूझे। यदि यह मानवप्रवीण है, तो यह एक ऐसी जाति का साहित्य है जिसमें अभी-अपनी अस्तीम तेजस्विता का प्रकाश नहीं हुआ।

उपनिषदों का प्रत्येक पृष्ठ मुझे शक्ति का सन्देश देता है। यह विषय विशेष रूप से स्मरण रखने योग्य है, समस्त जीवन में मैंने अभी महाशिक्षा प्राप्त की है—उपनिषद् कहते हैं, हे माया तेजस्वी बनो धीर्यवान बनो दुर्बलता को त्यागो। मनुष्य प्रश्न करता है क्या मनुष्य में दुर्बलता नहीं है? उपनिषद् कहते हैं अस्तम है किन्तु अधिक दुर्बलता जाय क्या यह दुर्बलता दूर होगी? क्या तुम मूल से मूल होने का प्रमाण करोगे? पाप के द्वारा पाप अथवा निर्बलता जाय निर्बलता दूर होती है? उपनिषद् कहते हैं हे मनुष्य तेजस्वी बनो धीर्यवान बनो दुर्बलता छोड़ो जाओ। अन्तःस्थान में केवल इन्हीं उपनिषदों के 'अभी' (अपश्यम्) यह शब्द बार बार व्यक्त हुआ है—और अन्तःस्थान के किसी शास्त्र में ईश्वर अथवा

मानव के प्रति 'अमी'—'भयशून्य' यह विशेषण प्रयुक्त नहीं हुआ है। 'अमी'—निर्भय वनो! और मेरे मन में अत्यन्त अतीत काल के उस पाश्चात्य सम्राट् सिकन्दर का चित्र उदित होता है और मैं देख रहा हूँ—वह महाप्रतापी सम्राट् सिन्धु नद के तट पर खड़ा होकर अरण्यवामी, शिलाखड पर बैठे हुए वृद्ध, नग्न, हमारे ही एक सन्यासी के साथ बात कर रहा है। सम्राट् सन्यासी के अपूर्व ज्ञान से विस्मित होकर उसको अर्थ और मान का प्रलोभन दिखाकर यूनान देश में आने के लिए निमंत्रित करता है। और वह व्यक्ति उसके स्वर्ण पर मुसकराता है, उसके प्रलोभनों पर मुसकराता है और अस्वीकार कर देता है। और तब सम्राट् ने अपने अधिकार-त्रल से कहा, "यदि आप नहीं आयेंगे तो मैं आपको मार डालूंगा।" यह सुनकर सन्यासी ने खिलखिलाकर कहा, "तुमने इस समय जैसा मिथ्या भाषण किया, जीवन में ऐसा कभी नहीं किया। मुझको कौन मार सकता है? जब जगत् के सम्राट्, तुम मुझको मारोगे? कदापि नहीं! मैं चैतन्यस्वरूप, अज और अक्षय हूँ। मेरा कभी जन्म नहीं हुआ और न कभी मेरी मृत्यु हो सकती है! मैं अनन्त, सर्वव्यापी और सर्वज्ञ हूँ। क्या तुम मुझको मारोगे? निरे बच्चे हो तुम।" यही सच्चा तेज है, यही सच्चा वीर्य है! हे बन्धुगण, हे स्वदेशवासियों, मैं जितना ही उपनिषदों को पढता हूँ, उतना ही मैं तुम्हारे लिए आंसू बहाता हूँ, क्योंकि उपनिषदों में वर्णित इभी तेजस्विता को ही हमको विशेष रूप से जीवन में चरितार्थ करना आवश्यक हो गया है। शक्ति, शक्ति—यही हमको चाहिए, हमको शक्ति की बड़ी आवश्यकता है। कौन प्रदान करेगा हमको शक्ति? हमको दुर्बल करने के लिए सहस्रो विषय है, कहानियाँ भी बहुत हैं। हमारे प्रत्येक पुराण में इतनी कहानियाँ हैं कि जिससे ससार में जितने पुस्तकालय हैं, उनका तीन चौथाई भाग पूर्ण हो सकता है, जो हमारी जाति को शक्तिहीन कर सकती हैं, ऐसी दुर्बलताओं का प्रवेश हममें विगत एक हजार वर्ष से ही हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो विगत एक हजार वर्ष से हमारे जातीय जीवन का यही एकमात्र लक्ष्य था कि किस प्रकार हम अपने को दुर्बल से दुर्बलतर बना सकेंगे। अन्त में हम वास्तव में हर एक के पैर के पास रेंगनेवाले ऐसे केचुओं के समान हो गये हैं कि इस समय जो चाहे वही हमको कुचल सकता है। हे बन्धुगण, तुम्हारी और मेरी नसों में एक ही रक्त का प्रवाह हो रहा है, तुम्हारा जीवन-मरण मेरा भी जीवन-मरण है। मैं तुमसे पूर्वोक्त कारणों से कहता हूँ कि हमको शक्ति, केवल शक्ति ही चाहिए। और उपनिषद् शक्ति की विशाल खान हैं। उपनिषदों में ऐसी प्रचुर शक्ति विद्यमान है कि वे समस्त ससार को तेजस्वी बना सकते हैं। उनके द्वारा समस्त ससार पुनरुज्जीवित, सशक्त और वीर्यसम्पन्न हो सकता है। समस्त जातियों को, सकल मतों को, भिन्न भिन्न सम्प्र-

दाय के दुर्वल बुद्धी पदबलिष्ठ लोभा को स्वयं अपने पैरों पड़हाकर मुक्त होने के लिए वे सच्च स्वयं म उद्घोष कर रहे हैं। मुक्ति अथवा स्वार्थीता—वैदिक स्वार्थीता मानसिक स्वार्थीता आध्यात्मिक स्वार्थीता यही उपनिषद् के मुख्य मंत्र है।

संसार भर में ही एकमात्र शास्त्र है जिसमें उद्धार (salvation) का बर्णन नहीं किन्तु मुक्ति का बर्णन है। प्रकृति का बन्धन से मुक्त हो जाओ पुत्रवत्ता से मुक्त हो जाओ। और उपनिषद् तुमको यह भी बतलाते हैं कि यह मुक्ति तुमसे पहले से ही विद्यमान है। उपनिषद् के उपदेश की यह और भी एक विशेषता है। तुम ईश्वारी हो—तुम चित्ता नहीं किन्तु तुमको यह स्वीकार करना ही होगा कि आत्मा स्वभाव ही से पूर्णत्वम् है केवल चित्त ही नाश के द्वारा यह संकुचित हो गयी है। आधुनिक विकासवादी (evolutionist) जिसको क्रमविकास (evolution) और क्रमसंकोच (atavism) कहते हैं पामानुष का संकोच और विकास का सिद्धान्त भी ठीक ऐसा ही है। आत्मा स्वामादिक पूर्णता से भ्रष्ट होकर मानो संकोच को प्राप्त होती है, उसकी शक्ति अस्मत्त भाव धारण करती है। संकर्म और अज्ञे विचारों द्वारा यह पुनः विकास को प्राप्त होती है और उसी समय उसकी स्वामादिक पूर्णता प्रकट हो जाती है। अद्वैतवादी के भाष्य श्रेयवादी का इतना ही मतमेव है कि अद्वैतवादी आत्मा का विकास को नहीं किन्तु प्रकृति के विकास को स्वीकार करता है। उदाहरणार्थ एक परवा है और इस परवे में एक छोटा सूरज। मैं इस परवे के भीतर से इस भावी जनसमुदाय को देख रहा हूँ। मैं प्रथम केवल बड़े से मनुष्यों को देख सकूँगा। मान लो छेद बढ़ने लया छिद्र चित्तना ही बड़ा होगा उद्यता ही मैं हूँ एकत्र व्यक्तियों में से अधिकार को देख सकूँगा। अन्त में छिद्र बढ़ते बढ़ते परवा और छिद्र एक हो जायेंगे तब इस स्थिति से तुम्हारे और मेरे बीच कुछ भी नहीं रहे जायगा। वहाँ तुममें और मुझमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। जो कुछ परिवर्तन हुआ वह परवे में ही हुआ। तुम आरम्भ से अन्त तक एक से वे संवत् परवे में ही परिवर्तन हुआ था। विकास के सम्बन्ध में अद्वैतवादियों का यही मत है—प्रकृति का विकास और आत्मा की आत्मन्तर अभिव्यक्ति। आत्मा किसी प्रकार भी संकोच को प्राप्त नहीं हो सकती। यह अपरिवर्तनशील और अनन्त है। वह मानो मायावती परवे से बँकी हुई है—चित्तना ही वह मायावती परवा बीच होता जाता है उद्यता ही आत्मा की स्वयंसिद्ध स्वामादिक महिमा अभिव्यक्त होती है और क्रमशः वह अधिकाधिक प्रकाशमान होती है। संसार इसी एक महान् तत्त्व को मारत से सीखने की अपेक्षा कर रहा है। वे जाहे जो कहें व चित्तना ही अहंकार करने की चेष्टा करे, पर वे क्रमशः चित्त प्रतिबिम्ब जान लेने

कि बिना इस तत्त्व को स्वीकार किये कोई समाज टिक नहीं सकता। क्या तुम नहीं देख रहे हो कि समस्त पदार्थों में कैसा भीषण परिवर्तन हो रहा है? क्या तुम नहीं जानते कि पहले यह प्रथा थी कि जव तक कोई वस्तु अच्छी कहकर प्रमाणित न हो जाय तब तक उसे निश्चित रूप से बुरी माना जाय? शिक्षाप्रणाली में, अपराधियों की दण्ड-व्यवस्था में, पागलो की चिकित्सा में, यहाँ तक कि सावारण रोग की चिकित्सा पर्यन्त सबमें इसी प्राचीन नियम को लागू किया जाता था। आधुनिक नियम क्या है? आधुनिक नियम के अनुसार शरीर स्वभाव ही से स्वस्थ है, वह अपनी प्रकृति से ही रोगों को दूर करता है। औषधि अधिक से अधिक शरीर में सार पदार्थों के सचय में सहायता कर सकती है। अपराधियों के सम्बन्ध में यह आधुनिक नियम क्या कहता है? आधुनिक नियम यह स्वीकार करता है कि कोई अपराधी, वह कितना ही हीन क्यों न हो, उसमें भी ईश्वरत्व है, जिसका कभी परिवर्तन नहीं होता है और इसलिए अपराधियों के प्रति हमको तदनु रूप व्यवहार करना चाहिए। अब पहले के ये सब भाव बदल रहे हैं और अब सुधारालय तथा प्रायश्चित्त-गृहों की स्थापना की जा रही है। ऐसा ही सर्वत्र है। जान कर कहो अथवा बिना जाने, यह भारतीय भाव कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर ईश्वरत्व वर्तमान है, नाना भावों से व्यक्त हो रहा है। और तुम्हारे शास्त्रों में ही इसकी व्याख्या है, उनको यह स्वीकार करना पड़ेगा। मनुष्य के प्रति मनुष्य के व्यवहार में महान् परिवर्तन हो जायगा और मनुष्य की दुर्बलताओं को बतलानेवाले ये प्राचीन विचार नहीं रहेंगे। इसी शताब्दी में इन भावों का लोप हो जायगा। इस समय लोग हमारे विरोध में खड़े होकर हमारी आलोचना कर सकते हैं। 'ससार में पाप नहीं है', इस घोर पैशाचिक सिद्धान्त के प्रचारक के रूप में ससार के प्रत्येक भाग में मेरी आलोचना की गयी है। बहुत अच्छा, किन्तु इस समय जिन्होंने मुझको बुरा भला कहा है, उनके ही वंशज मुझको अधर्म का प्रचारक नहीं, किन्तु धर्म का प्रचारक कहकर आशीर्वाद देंगे। मैं धर्म का प्रचारक हूँ, अधर्म का नहीं। मैंने अज्ञानान्धकार का प्रचार नहीं किया, किन्तु ज्ञान प्रकाश के विस्तार की चेष्टा की है, इसे मैं अपना गौरव समझता हूँ।

समग्र ससार का अखण्डत्व, जिसको ग्रहण करने के लिए ससार प्रतीक्षा कर रहा है, हमारे उपनिषदों का दूसरा महान् भाव है। प्राचीन काल की हृदयबन्दी और पार्थक्य इस समय तेजी से कम होते जा रहे हैं। बिजली और भाप की शक्ति, यातायात तथा संचार की सुविधाएँ बढ़ाकर ससार के विभिन्न देशों का परस्पर परिचय करा रही है। इसके फलस्वरूप, हम हिन्दू इस समय अपने देश के अतिरिक्त अन्य सब देशों को केवल भूत-प्रेत, राक्षस, पिशाचों से पूर्ण नहीं देख रहे हैं और

दाय के दुबक दुःखी पवलिष्ठ शोनों को स्वयं अपने पैरों लड़ हीकर मुक्त होने के लिए वे उच्च स्तर में उद्बोध कर रहे हैं। मुक्ति अथवा स्वाधीनता—वैदिक स्वाधीनता सामाजिक स्वाधीनता आध्यात्मिक स्वाधीनता यही उपनिषदों के मूल मंत्र हैं।

संसार भर में ये ही एकमात्र सास्त्र हैं जिनमें उधार (salvation) का वर्णन नहीं किन्तु मुक्ति का वर्णन है। प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो जाओ दुर्बलता से मुक्त हो जाओ। और उपनिषद् तुमका यह भी बतलावे है कि यह मुक्ति तुममें पहले से ही विद्यमान है। उपनिषदों के उपदेश की यह और भी एक विशेषता है। तुम ईश्वारी हो—कुछ चिन्ता नहीं किन्तु तुमको यह स्वीकार करना ही होगा कि आत्मा स्वभाव ही से पूर्णस्वरूप है, केवल कितने ही कार्यों के द्वारा वह सङ्कुचित हो गयी है। आधुनिक विकासवादी (evolutionist) जिसको कमबिक्रम (evolution) और कमसंकोच (atavism) कहते हैं, रामानुज का संकोच और विकास का सिद्धान्त भी ठीक ऐसा ही है। अतः स्वाभाविक पूर्णता में भ्रष्ट होकर मानो संकोच को प्राप्त होती है उसकी गति अभ्यन्त भाव धारण करती है। सत्कर्म और अच्छे विचारों द्वारा वह पुनः विकास का प्राप्त होती है और उगी समय उसकी स्वाभाविक पूर्णता प्रकट हो जाती है। अज्ञानकारी के साथ ईश्वारी का इतना ही मतभेद है कि अज्ञानकारी आत्मा के विनाश को नहीं किन्तु प्रकृति के विकास को स्वीकार करता है। उदाहरणार्थ एक पत्ता है और इन परदे में एक छोटा मूषक। मैं इस परदे के भीतर में इस भारी जनममुशम को देख रहा हूँ। मैं प्रथम केवल थोड़े से मनुष्यों को देख सक्ता। मान को छेद करने तथा छिद्र जितना ही बड़ा होया उतना ही मैं इन एकत्र स्थितियों में तः अभिगम्य का देख सक्ता। अन्त में छिद्र बड़ने बड़ने परदा और छिद्र एक हो जायें तब इन स्थिति में तुम्हारे और मेरे बीच कुछ भी नहीं रह जायगा। वहाँ तुममें और मुझमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। जो कुछ परिवर्तन हुआ वह परदे में ही हुआ। तुम आरम्भ से अन्त तक एक तः में केवल परदे में ही परिवर्तन हुआ था। विकास के सम्बन्ध में अज्ञानवादियों का यही मत है—यद्यपि वा विनाश और आत्मा की आध्यात्मिक अभिव्यक्ति। आत्मा किसी प्रकार भी मर्त्योण को प्राप्त नहीं हो सकती। यह परिवर्तनार्थक और अज्ञान है। वह मानो मायावादी परदे में बँधी हुई है—विनाश ही यह मायावादी परदा धीरे धीरे जाता है उतनी ही आत्मा की स्वयंसेवक स्वाभाविक प्रकृति अभिव्यक्त होती है और तब वह अपिचरित प्रकाशमान होती है। गन्तव्य इतनी एक महात्मा को मान्य से गँवने की ज़रूरत कर रहा है। वे जाते जो नहीं वे चिन्ता ही अज्ञान करने की बजाय करें, पर वे जबकि दिन प्रतिदिन जान लेंगे

कि विना इस तत्त्व को स्वीकार किये कोई समाज टिक नहीं सकता। क्या तुम नहीं देख रहे हो कि ममस्त पदार्थों में कैसा भीषण परिवर्तन हो रहा है? क्या तुम नहीं जानते कि पहले यह प्रथा थी कि जब तक कोई वस्तु अच्छी कहकर प्रमाणित न हो जाय तब तक उसे निश्चित रूप से बुरी माना जाय? शिक्षाप्रणाली में, अपराधियों की दण्ड-व्यवस्था में, पागलो की चिकित्सा में, यहाँ तक कि साधारण रोग की चिकित्सा पर्यन्त सबमें इसी प्राचीन नियम को लागू किया जाता था। आधुनिक नियम क्या है? आधुनिक नियम के अनुसार शरीर स्वभाव ही से स्वस्थ है, वह अपनी प्रकृति में ही रोगों को दूर करता है। औषधि अधिक से अधिक शरीर में सार पदार्थों के सचय में सहायता कर सकती है। अपराधियों के सम्बन्ध में यह आधुनिक नियम क्या कहता है? आधुनिक नियम यह स्वीकार करता है कि कोई अपराधी, वह कितना ही हीन क्यों न हो, उसमें भी ईश्वरत्व है, जिसका कभी परिवर्तन नहीं होता है और इसलिए अपराधियों के प्रति हमको तदनु रूप व्यवहार करना चाहिए। अब पहले के ये सब भाव बदल रहे हैं और अब सुधारालय तथा प्रायश्चित्त-गृहों की स्थापना की जा रही है। ऐसा ही सर्वत्र है। जान कर कहो अथवा विना जाने, यह भारतीय भाव कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर ईश्वरत्व वर्तमान है, नाना भावों से व्यक्त हो रहा है। और तुम्हारे शास्त्रों में ही इसकी व्याख्या है, उनको यह स्वीकार करना पड़ेगा। मनुष्य के प्रति मनुष्य के व्यवहार में महान् परिवर्तन हो जायगा और मनुष्य की दुर्बलताओं को बतलानेवाले ये प्राचीन विचार नहीं रहेंगे। इसी शताब्दी में इन भावों का लोप हो जायगा। इस समय लोग हमारे विरोध में खड़े होकर हमारी आलोचना कर सकते हैं। 'ससार में पाप नहीं है', इस घोर पैशाचिक सिद्धान्त के प्रचारक के रूप में ससार के प्रत्येक भाग में मेरी आलोचना की गयी है। बहुत अच्छा, किन्तु इस समय जिन्होंने मुझको बुरा भला कहा है, उनके ही वंशज मुझको अधर्म का प्रचारक नहीं, किन्तु धर्म का प्रचारक कहकर आशीर्वाद देंगे। मैं धर्म का प्रचारक हूँ, अधर्म का नहीं। मैंने अज्ञानान्धकार का प्रचार नहीं किया, किन्तु ज्ञान प्रकाश के विस्तार की चेष्टा की है, इसे मैं अपना गौरव समझता हूँ।

समग्र ससार का अखण्डत्व, जिसको ग्रहण करने के लिए ससार प्रतीक्षा कर रहा है, हमारे उपनिषदों का दूसरा महान् भाव है। प्राचीन काल की हृदबन्दी और पार्थक्य इस समय तेजी से कम होते जा रहे हैं। विजली और भाप की शक्ति, यातायात तथा संचार की सुविधाएँ बढ़ाकर ससार के विभिन्न देशों का परस्पर परिचय करा रही है। इसके फलस्वरूप, हम हिन्दू इस समय अपने देश के अतिरिक्त अन्य सब देशों को केवल भूत-प्रेत, राक्षस, पिशाचों से पूर्ण नहीं देख रहे हैं और

ईसाई धर्म-प्रधान देशों के लोग भी नहीं कहते कि भारत में केवल तरमांसभोजी और असभ्य लोग रहते हैं। अपने देश से बाहर जाकर हम देखते हैं कि वही बन्धु-मातृ-सहायता के लिए अपना बही सक्तिशाली हाथ बढ़ा रहा है और उसी मुख से उत्साहित कर रहा है। जिस देश में हमने जन्म लिया है उसकी अपेक्षा कभी कभी अन्य देशों में अधिक अच्छे लोग मिल पाते हैं। जब वे मर्दाँ जाते हैं वे भी मर्दाँ वसा ही भावनाब उत्साह और सहानुभूति पाते हैं। हमारे उपनिषदों ने ठीक ही कहा है, अज्ञान ही सर्व प्रकार के दुःखों का कारण है। सामाजिक जन्म आध्यात्मिक अपने जीवन को चाहे जिस अवस्था में देखो यह विस्तृत सही उतरा है। अज्ञान से ही हम परस्पर घृणा करते हैं अज्ञान से ही हम एक दूसरे को जानते नहीं और इसीलिए प्यार नहीं करते। जब हम एक दूसरे को जान लेंगे प्रेम का उदय होगा। प्रेम का उदय निश्चित है क्योंकि क्या हम सब एक नहीं हैं? इसलिए हम देखते हैं कि चेष्टा न करने पर भी हम सबका एकत्वभाव स्वभाव ही से आ जाता है। यहाँ तक कि राजनीति और समाजनीति के क्षेत्रों में भी जो समस्याएँ बीस बर्य पहले केवल राष्ट्रीय थीं इस समय उनकी सीमांसा केवल राष्ट्रीयता के आकार पर ही नहीं की जा सकती। उक्त समस्याएँ क्रमशः कठिन हो रही हैं और विचार आकार धारण कर रही हैं। केवल अन्तराष्ट्रीय आकार पर उदार दृष्टि से विचार करने पर ही उनकी हल किया जा सकता है। अन्तराष्ट्रीय संगठन अन्तराष्ट्रीय संघ अन्तराष्ट्रीय विधान ये ही आजकल के मूलमन्त्रस्वरूप हैं। सब लोगों के भीतर एकत्वभाव किस प्रकार विस्तृत हो रहा है यही उसका प्रमाण है। विज्ञान में भी बड़-तरह के सम्बन्ध में ऐसे ही सार्वभौम भाव ही इस समय आधिपत्य हो रहे हैं। इस समय तुम समझ बड़-बस्तु को समस्त ससार को एक अक्षर-बस्तुत्व में बूढ़-बड़-समुद्र-सा वर्धन करते हो जिसमें तुम में चन्द्र सूर्य और रोष सब कुछ सभी विभिन्न सुत्र में-र मान हैं, और कुछ नहीं। मानसिक दृष्टि से देखने पर वह एक अनन्त विचार-समुद्र प्रतीत होता है। तुम और मैं उस विचार-समुद्र के अत्यन्त छोटे छोटे भँवरों के सदृश हैं। आत्मपरक दृष्टि से देखने पर समग्र जगत् एक अक्षर-अपरिवर्तनीय सत्ता सर्वत्र आत्मा प्रतीत होता है। नैतिकता का स्वर भी आ रहा है और यह भी हमारे धर्मों में विद्यमान है। नैतिकता की व्याख्या और आचार-शास्त्र के मूल लोग के लिए भी ससार व्यापक है यह भी हमारे शास्त्रों में ही विद्यमान है।

हम भारत में क्या चाहते हैं? यदि विपत्तियों की इन पक्षियों की आशय्यता है तो हमको इनकी आशय्यता भीम युवा व्यक्ति है। क्योंकि हमारे उपनिषद्-चिन्तने ही महत्त्वपूर्ण कपी न हो, अस्वास्थ्य आदिप्रा के नाच तुम्हारा में हम करने

पूर्वपुरुष ऋषिगणों पर कितना ही गत्र क्यों न करें, मैं तुम लोगों में स्पष्ट भाषा में कहे देता हूँ कि हम दुर्बल हैं, अत्यन्त दुर्बल हैं। प्रथम तो है हमारी शारीरिक दुर्बलता। यह शारीरिक दुर्बलता कम से कम हमारे एक तिहाई दुर्बलों का कारण है। हम आलसी हैं, हम कार्य नहीं कर सकते, हम पाठ्यपत्र एकना स्थापित नहीं कर सकते, हम एक दूसरे में प्रेम नहीं करते, हम बड़े स्वार्थी हैं, हम तीन मनुष्य एकत्र होते ही एक दूसरे में घृणा करते हैं, ईर्ष्या करते हैं। हमारी इस समय ऐसी अवस्था है कि हम पूण रूप में अमगठिन हैं, घोर स्वार्थी हो गये हैं, मैकडों शताब्दियों में इमीलिए जगदते हैं कि तिलक इस तरह प्राण करना चाहिए या उन तरह। अमुक व्यक्ति की नजर पड़ने में हमारा भोजन दूषित होगा या नहीं, ऐसी गुस्तर नमम्याजों के जग हम बड़े बड़े ग्रन्थ लिखते हैं। पिछली कई शताब्दियों में हमारा यही कारनामा रहा है। जिम जाति के मस्तिष्क की समस्त शक्ति ऐसी अपूर्व सुन्दर समस्याओं और गवेषणाओं में लगी है, उसमें किसी उच्च कोटि की सफलता की क्या आशा की जाय ! और क्या हमको अपने पर गर्म भी नहीं आती ? हाँ, कभी कभी शमिन्दा होते भी हैं। यद्यपि हम उनकी निस्सारता को समझते हैं, पर उनका परित्याग नहीं कर पाते। हम अनेक बातें सोचते हैं, किन्तु उनके अनुसार कार्य नहीं कर सकते। इस प्रकार तोते के समान बातें करना हमारा अभ्यास हो गया है—आचरण में हम बहुत पिछड़े हुए हैं। इसका कारण क्या है ? शारीरिक दौर्बल्य। दुर्बल मस्तिष्क कुछ नहीं कर सकता, हमको अपने मस्तिष्क को बलवान बनाना होगा। प्रथम तो हमारे युवकों को बलवान बनाना होगा। धर्म पीछे आयेगा। हे मेरे युवक बन्धु, तुम बलवान बनो—यही तुम्हारे लिए मेरा उपदेश है। गीता-पाठ करने की अपेक्षा तुम्हें फुटबाल खेलने से स्वर्ग-सुख अधिक सुलभ होगा। मैंने अत्यन्त साहसपूर्वक ये बातें कही हैं, और इनको कहना अत्यावश्यक है, कारण मैं तुमको प्यार करता हूँ। मैं जानता हूँ कि ककड कहाँ चुभता है। मैंने कुछ अनुभव प्राप्त किया है। बलवान शरीर से अथवा मजबूत पुष्टों से तुम गीता को अधिक समझ सकोगे। शरीर में ताजा रक्त होने से तुम कृष्ण की महती प्रतिभा और महान् तेजस्विता को अच्छी तरह समझ सकोगे। जिस समय तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरों के बल दृढ भाव से खड़ा होगा, जब तुम अपने को मनुष्य समझोगे, तब तुम उपनिषद् और आत्मा की महिमा भली भाँति समझोगे। इस तरह वेदान्त को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार काम में लगाना होगा।

लोग मेरे अद्वैतवाद के प्रचार से बहुधा विरक्त हो जाते हैं। अद्वैतवाद, द्वैतवाद अथवा अन्य किसी वाद का प्रचार करना मेरा उद्देश्य नहीं है। हमें इस समय आवश्यकता है केवल आत्मा की—उसके अपूर्व तत्त्व, उसकी अत्यन्त शक्ति,



इसारी धर्म-प्रधान देशों के लोग भी नहीं कहते कि भारत में केवल गरमांसभोजी और असभ्य लोग रहते हैं। अपने देश से बाहर जाकर हम देखते हैं कि वही कल्पु मांस सहामता के लिए अपना बही क्षत्रियताकी हाव बना रहा है और उसी मुच से उत्साहित कर रहा है। जिस देश में हमने जन्म लिया है उसकी अपेक्षा कभी कभी अन्य देशों में अधिक अच्छे लोग मिल जाते हैं। जब वे यहाँ आते हैं, वे भी यहाँ बँसा ही भावुभाव उत्साह और सहानुभूति पाते हैं। हमारे उपनिषदों में ठीक ही कहा है ज्ञान ही सर्वप्रकार के दुःखों का कारण है। सामाजिक जपवा आध्यात्मिक अपने जीवन को चाहे जिस अवस्था में देखो यह विस्तृत सही उत्तरता है। ज्ञान से ही हम परस्पर नृणा करते हैं, ज्ञान से ही हम एक दूसरे को जानते नहीं और इसीलिए प्यार नहीं करते। जब हम एक दूसरे को जानें प्रेम का उदम होया। प्रेम का उदम निश्चित है क्योंकि क्या हम सब एक नहीं हैं? इसलिए हम देखते हैं कि भेष्या न करने पर भी हम सबका एकत्वभाव स्वभाव ही से आ जाता है। यहाँ तक कि राजनीति और समाजनीति के क्षेत्रों में भी जो समस्याएँ बीच बर्ष पहले केवल राष्ट्रीय थीं इस समय उनकी भीमांसा केवल राष्ट्रीयता के आचार पर ही नहीं की जा सकती। उक्त समस्याएँ कमया कठिन हो रही हैं और विद्याक आकार धारण कर रही हैं। केवल अन्तर्राष्ट्रीय आचार पर उचार दृष्टि से विचार करने पर ही उनको हल किया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय संकलन अन्तर्राष्ट्रीय सब अन्तर्राष्ट्रीय विधान ये ही आजकल के मुख्यमन्त्रत्वम् है। सब लोगों के मीठर एकत्वभाव किस प्रकार विस्तृत हो रहा है यही उसका प्रमाण है। विज्ञान में भी बड़ तत्व के सम्बन्ध में ऐसे ही सार्वभौम भाव ही इस समय आविष्कृत हो रहे हैं। इस समय तुम समग्र बड़ वस्तु को समस्त ससार को एक अखण्ड वस्तुत्व में नुहत् बड़-समुद्र सा बर्षन करते हो जिसमें तुम में बन्न सूर्य और शेष सब कुछ सभी विभिन्न लुह भँवर भाव है, और कुछ नहीं। मानसिक दृष्टि से देखने पर वह एक अनन्त विचार-समुद्र प्रतीत होता है। तुम और मैं उस विचार-समुद्र के अत्यन्त छोटे छोटे भँवरों के सदृश हैं। आत्मपरक दृष्टि से देखने पर समग्र जगत् एक अखण्ड अपरिभर्तनशील सत्ता भवति आत्मा प्रतीत होता है। नैतिकता का स्वर भी आ रहा है और वह भी हमारे दर्शनों में निचमान है। नैतिकता की व्याख्या और आचार-शास्त्र के मूल लोच के लिए भी ससार व्याकुल है वह भी हमारे शास्त्रों से ही मिलेया।

हम भारत में क्या चाहते हैं? यदि विवेचियों को इन पदार्थों की आवश्यकता है तो हमको इनकी आवश्यकता बीच नृणा अधिक है। क्योंकि हमारे उपनिषद् कितने ही महत्त्वपूर्ण कर्मों में हैं अत्याम्य आशियों के साथ नृकता में हम अपने

पूर्वपुरुष ऋषिगणों पर कितना ही गर्व क्यों न करे, मैं तुम लोगों से स्पष्ट भाषा में कहे देता हूँ कि हम दुर्बल हैं, अत्यन्त दुर्बल हैं। प्रथम तो है हमारी शारीरिक दुर्बलता। यह शारीरिक दुर्बलता कम में कम हमारे एक तिहाई दुर्बलता का कारण है। हम आलसी हैं, हम कार्य नहीं कर सकते, हम पाश्र्विक एकता स्थापित नहीं कर सकते, हम एक दूसरे से प्रेम नहीं करते, हम बड़े स्वार्थी हैं, हम तीन मनुष्य एकत्र होते ही एक दूसरे से घृणा करते हैं, ईर्ष्या करते हैं। हमारी इस समझ ऐसी अवस्था है कि हम पूर्ण रूप से अमगठिन हैं, घोर स्वार्थी हो गये हैं, सैकड़ों शताब्दियों से इसीलिए झगड़ते हैं कि तिलक इस तरह धारण करना चाहिए या उस तरह। अमुक व्यक्ति की नजर पड़ने से हमारा भोजन दूषित होगा या नहीं, ऐसी गुरुतर समस्याओं के ऊपर हम बड़े बड़े ग्रन्थ लिखते हैं। पिछली कई शताब्दियों से हमारा यही कारनामा रहा है। जिस जाति के मस्तिष्क की समस्त शक्ति ऐसी अपूर्व सुन्दर समस्याओं और गवेषणाओं में लगी है, उससे किसी उच्च कोटि की सफलता की क्या आशा की जाय ! और क्या हमको अपने पर शर्म भी नहीं आती ? हाँ, कभी कभी शर्मिन्दा होते भी हैं। यद्यपि हम उनकी निस्सारता को समझते हैं, पर उनका परित्याग नहीं कर पाते। हम अनेक बातें सोचते हैं, किन्तु उनके अनुसार कार्य नहीं कर सकते। इस प्रकार तोते के समान बातें करना हमारा अभ्यास ही गया है—आचरण में हम बहुत पिछड़े हुए हैं। इसका कारण क्या है ? शारीरिक दौर्बल्य। दुर्बल मस्तिष्क कुछ नहीं कर सकता, हमको अपने मस्तिष्क को बलवान बनाना होगा। प्रथम तो हमारे युवकों को बलवान बनाना होगा। धर्म पीछे आयेगा। हे मेरे युवक वन्द्यु, तुम बलवान बनो—यही तुम्हारे लिए मेरा उपदेश है। गीता-पाठ करने की अपेक्षा तुम्हें फुटबाल खेलने से स्वर्ग-सुख अधिक सुलभ होगा। मैंने अत्यन्त साहसपूर्वक ये बातें कही हैं, और इनको कहना अत्यावश्यक है, कारण मैं तुमको प्यार करता हूँ। मैं जानता हूँ कि ककड़ कहां चुभता है। मैंने कुछ अनुभव प्राप्त किया है। बलवान शरीर से अथवा मजबूत पुट्टों से तुम गीता को अधिक समझ सकोगे। शरीर में ताजा रक्त होने से तुम कृष्ण की महती प्रतिभा और महान् तेजस्विता को अच्छी तरह समझ सकोगे। जिस समय तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरों के बल दृढ़ भाव से खड़ा होगा, जब तुम अपने को मनुष्य समझोगे, तब तुम उपनिषद् और आत्मा की महिमा भली भाँति समझोगे। इस तरह वेदान्त को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार काम में लगाना होगा।

लोग मेरे अद्वैतवाद के प्रचार से बहुत विरक्त हो जाते हैं। अद्वैतवाद, द्वैतवाद अथवा अन्य किसी वाद का प्रचार करना मेरा उद्देश्य नहीं है। हमें इस समय आवश्यकता है केवल आत्मा की—उसके अपूर्व तत्त्व, उसकी अनन्त शक्ति,

अनन्त कीर्ति अनन्त सुखता और अनन्त पूर्वता के लक्ष्य को जानने की। यदि मेरे कोई सन्तान होती तो मैं उसे जन्म के समय से ही सुभाषा 'स्वमसि निरंजन'। तुमने भवस्य ही पुराण में रानी मदाखसा की वह सुन्दर कहानी पढ़ी होगी। उसके सन्तान होते ही वह उसको अपने हाथ से मूले पर रखकर सुजाते हुए उसके निकट गाती थी 'तुम हो मेरे साथ निरंजन अतिपावन निष्पाप तुम हो सर्वव्यक्तिसाक्षी तेरा है अमित प्रताप। इस कहानी में महान् सत्य छिपा हुआ है। अपने को महान् समझो और तुम सबकुछ महान् हो जाओगे। सभी लोग पूछते हैं आपने समस्त संसार में भ्रमण करके क्या अनुभव प्राप्त किया? अंग्रेज लोग पापियों की बातें करते हैं पर वास्तव में यदि सभी अंग्रेज अपने को पापी समझते तो वे अर्द्धाका के मध्य भाग के रहनेवाले हूँगी जैसे हो जाते। ईश्वर की कृपा से इस बात पर वे विस्वास नहीं करते। इसके विपरीत अंग्रेज तो यह विश्वास करता है कि संसार के अधीश्वर होकर उसने जन्म धारण किया है। वह अपनी श्रेष्ठता पर पूरा विश्वास रखता है। उसकी धारणा है कि वह सब कुछ कर सकता है, इच्छा होने पर धर्म लोक और चन्द्रलोक की भी सैर कर सकता है। इसी इच्छा के बल से वह बढ़ा हुआ है। यदि वह अपने पुरोहितों के इन वाक्यों पर कि मनुष्य मूर्ख है हतनास्य और पापी है अनन्तकाल तक यह नरकाग्नि में दग्ध होगा विश्वास करता तो वह आज वही अंग्रेज न होता बसता यह आज है। यही बात मैं अंग्रेज जाति के भीतर देखता हूँ। उनके पुरोहित लोग चाहे जो कुछ कहें और वे कितने ही कुसंस्कारपूर्वक्यों न हों किन्तु उनके अस्वस्तर का बह्यभाव लुप्त नहीं होता उसका विकास अवस्य होता है। हम सदा सो बैठे हैं। क्या तुम मेरे इस कथन पर विश्वास करोगे कि हम अंग्रेजों की अपेक्षा कम आत्मशुद्धा रखते हैं—सहस्रानुज कम आत्मशुद्धा रखते हैं? मैं साफ-साफ कह रहा हूँ। बिना कहे दूसरा उपाम भी मैं नहीं देखता। तुम देखते नहीं?—अंग्रेज जब हमारे धर्मतत्त्व को कुछ कुछ समझने लगते हैं तब वे मानो उसीकी लेकर उन्मत्त हो जाते हैं। अद्यपि वे साधक हैं, तथापि अपने देववासियों की हँसी और उपहास की अपेक्षा करके भारत में हमारे ही धर्म का प्रचार करने के लिए वे आते हैं। तुम लोगों में से कितने ऐसे हैं जो ऐसा काम कर सकते हैं? तुम क्यों ऐसा नहीं कर सकते? क्या तुम जानते नहीं इसलिये नहीं कर सकते? उनकी अपेक्षा तुम अधिक ही जानते हो। इसीसे तो ज्ञान के अनुसार तुम काम नहीं कर सकते। जितना जानने से सम्मान होगा उसने तुम क्याका जानते हो यही बाध्य है। तुम्हारा रक्त पानी पीसा ही गया है, मस्तिष्क मुर्खीर और घटीर दुर्बल! इस घटीर को बदलना होगा। सांघैरिक दुर्बलता ही सब अनिष्टों की बड़ है और कुछ नहीं। गत कई सदियों से तुम

नाना प्रकार के मुद्धार, आदर्श आदि की बातें कर रहे हों और जब काम करने का समय आता है तब तुम्हारा पता ही नहीं मिलता। अतः तुम्हारे आचरणों से सारा समार क्रमशः हताश हो रहा है और समाज-सुधार का नाम तक समस्त ससार के उपहास की वस्तु हो गयी है। इसका कारण क्या है? क्या तुम जानते नहीं हो? तुम अच्छी तरह जानते हो। ज्ञान की कमी तो तुम में ही नहीं। सब अनर्थों का मूल कारण यही है कि तुम दुर्बल हो, अत्यन्त दुर्बल हो, तुम्हारा शरीर दुर्बल है, मन दुर्बल है, और अपने पर आत्मश्रद्धा भी विलकुल नहीं है। सँकड़ों सदियों से ऊँची जातियों, राजाओं और विदेशियों ने तुम्हारे ऊपर अत्याचार करके, तुमको चकनाचूर कर डाला है। भाइयो! तुम्हारे ही स्वजनों ने तुम्हारा सब बल हर लिया है। तुम इस समय मेरुदण्डहीन और पददलित कौड़ों के समान हो। इस समय तुमको शक्ति कौन देगा? मैं तुमसे कहता हूँ, इसी समय हमको बल और वीर्य की आवश्यकता है। इस शक्ति को प्राप्त करने का पहला उपाय है—उपनिषदों पर विश्वास करना और यह विश्वास करना कि 'मैं आत्मा हूँ।' 'मुझे न तो तलवार काट सकती है, न बरछी छेद सकती है, न आग जला सकती है और न हवा सुखा सकती है, मैं सर्वशक्तिमान हूँ, सर्वज्ञ हूँ।' इन आशाप्रद और परित्राणपद वाक्यों का सर्वदा उच्चारण करो। मत कहो—हम दुर्बल हैं। हम सब कुछ कर सकते हैं। हम क्या नहीं कर सकते? हमसे सब कुछ हो सकता है। हम सबके भीतर एक ही महिमामय आत्मा है। हमें इस पर विश्वास करना होगा। नचिकेता के समान श्रद्धाशील बनो। नचिकेता के पिता ने जब यज्ञ किया था, उसी समय नचिकेता के भीतर श्रद्धा का प्रवेश हुआ। मेरी इच्छा है—तुम लोगों के भीतर इसी श्रद्धा का आविर्भाव हो, तुममें से हर एक आदमी खड़ा होकर इशारे से ससार को हिला देनेवाला प्रतिभासम्पन्न महापुरुष हो, हर प्रकार से अनन्त ईश्वरतुल्य हो। मैं तुम लोगों को ऐसा ही देखना चाहता हूँ। उपनिषदों से तुमको ऐसी ही शक्ति प्राप्त होगी और वहीं से तुमको ऐसा विश्वास प्राप्त होगा।

प्राचीन काल में केवल अरण्यवासी सन्यासी ही उपनिषदों की चर्चा करते थे। वे रहस्य के विषय बन गये थे। उपनिषद् सन्यासियों तक ही सीमित थे। शंकर ने कुछ सदय हो कहा है, 'गृही मनुष्य भी उपनिषदों का अध्ययन कर सकते हैं, इससे उनका कल्याण ही होगा, कोई अनिष्ट न होगा।' परन्तु अभी तक यह संस्कार कि उपनिषदों में वन, जंगल अथवा एकान्तवास का ही वर्णन है, मनुष्यों के मन से

१ नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं बहति पावकः ।

न चैनं बलेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥गीता ॥२।२३॥

नहीं हूँ। मैंने तुम लोगों से उस दिन कहा था कि जो स्वयं वेदों के प्रकाशक हैं  
 उन्हीं की कृपण के द्वारा वेदों की एकमात्र प्रामाणिक टीका नीता एक ही बार फिर  
 कास के लिए बनी है यह सबके लिए और जीवन की सभी अवस्थाओं के लिए  
 उपयोगी है। तुम कोई भी काम करो तुम्हारे लिए ब्रह्म की आवश्यकता है।  
 ब्रह्म के इन सब महान् तत्त्वों का प्रचार आवश्यक है ये केवल अरण्य में अथवा  
 मिरिगुहाओं में आवश्यक नहीं रहेंगे बकीलों और न्यायाधीशों में प्रार्थना-मन्दिरों  
 में शिखरों की कुटियों में मछुम्बों के घरों में छात्रों के अध्ययन-स्थानों में—सर्वत्र  
 ही इन तत्त्वों की पर्चा होनी और ये काम में लाये जायेंगे। हर एक व्यक्ति हर एक  
 सम्पन्न चाहे जो काम करे, चाहे जिस अवस्था में हो—उसकी पुकार सबके लिए  
 है। मम का अब कोई कारण नहीं है। उपनिषदों के सिद्धान्तों को मछुए जाति  
 साधारण जन किस प्रकार काम में लायेंगे? इसका उपाय शास्त्रों में बताया  
 गया है। मार्ग अनन्त है, बर्ष अनन्त है, कोई इसकी सीमा के बाहर नहीं जा सकता।  
 तुम लिफ्ट भाव से जो कुछ करते हो तुम्हारे लिए नहीं अच्छा है। अल्प  
 छोट्य कर्म भी यदि अच्छे भाव से किया जाय तो उससे अप्सुमुत फल की प्राप्ति  
 होती है। अतएव जो वहाँ तक अच्छे भाव से काम कर सके, करे। मछुआ यदि  
 अपने को आत्मा समझकर चिन्तन करे, तो वह एक उत्तम मछुआ होगा। विद्यार्थी  
 यदि अपने को आत्मा विचारे, तो वह एक श्रेष्ठ विद्यार्थी होगा। बकील यदि अपने  
 को आत्मा समझे तो वह एक अच्छा बकील होगा। बीरों के विषय में भी वही समझो।  
 इसका फल यह होगा कि जातिविभाग अनन्त काल तक रह जायगा क्योंकि विभिन्न  
 श्रेणियों में विभक्त होगा ही समाज का स्वभाव है। पर रहेगा क्या नहीं? विशेष  
 अधिकारों का अस्तित्व न रह जायगा। जातिविभाग प्राकृतिक नियम है। सामा-  
 जिक जीवन में एक विशेष काम में कर सकता हूँ तो दूसरा काम तुम कर सकते हो।  
 तुम एक बेट का शासन कर सकते हो तो मैं एक पुतले जूते की मरम्मत कर सकता  
 हूँ किन्तु इस कारण तुम मुझसे बड़े नहीं हो सकते। क्या तुम मेरे जूते की मरम्मत  
 कर सकते हो? मैं क्या बेट का शासन कर सकता हूँ? यह कार्यविभाष स्वाभाविक  
 है। मैं जूते की सिलाई करने में बतुर हूँ तुम बेदपाठ में निपुण हो। यह कोई  
 कारण नहीं कि तुम इस विशेषता के लिए मेरे सिर पर पाँव रखो। तुम यदि हल्का  
 भी करो तो तुम्हारी प्रशंसा और मुझे एक मेघ चुराने पर ही फानी पर बटकना  
 हो ऐसा नहीं हो सकता। हमको समाप्त करना ही हामा। जातिविभाग अच्छा  
 है। जीवन-समस्या के समाधान के लिए यही एकमात्र स्वाभाविक उपाय है।  
 मनुष्य अलग अलग वर्गों में विभक्त हींये यह अतिवार्थ है। तुम जहाँ भी जाओ  
 जातिविभाग से घुटकारा न मिलेगा किन्तु हमका अर्थ यह नहीं है कि इन प्रकार

का विशेषाधिकार भी रहेगा। इनको जड से उखाड़ फेंकना होगा। यदि मछुआ को तुम वेदान्त सिखलाओगे तो वह कहेगा, हम और तुम दोनों बराबर हैं। तुम दार्शनिक हो, मैं मछुआ, पर इससे क्या ? तुम्हारे भीतर जो ईश्वर है, वही मुझमें भी है। हम यही चाहते हैं कि किसीको कोई विशेष अधिकार प्राप्त न हो, और प्रत्येक मनुष्य की उन्नति के लिए समान सुभीते हो। सब लोगों को उनके भीतर स्थित ब्रह्मतत्त्व सम्बन्धी शिक्षा दो। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मुक्ति के लिए स्वयं चेष्टा करेगा।

उन्नति के लिए सबसे पहले स्वाधीनता की आवश्यकता है। यदि तुम लोगों में से कोई यह कहने का साहस करे कि मैं अमुक स्त्री अथवा अमुक लड़के की मुक्ति के लिए काम करूँगा, तो यह गलत है, हजार बार गलत होगा। मुझसे बार-बार यह पूछा जाता है कि विधवाओं की समस्या के बारे में और स्त्रियों के प्रश्न के विषय में आप क्या सोचते हैं ? मैं इस प्रश्न का अन्तिम उत्तर यह देता हूँ— क्या मैं विधवा हूँ, जो तुम ऐसा निरर्थक प्रश्न मुझसे पूछते हो ? क्या मैं स्त्री हूँ, जो तुम बार-बार मुझसे यही प्रश्न करते हो ? स्त्री जाति के प्रश्न को हल करने के लिए आगे बढ़नेवाले तुम हो कौन ? क्या तुम हर एक विधवा और हर एक स्त्री के भाग्यविधाता भगवान् हो ? दूर रहो ! अपनी समस्याओं का समाधान वे स्वयं कर लेंगी। अरे अत्याचारियों, क्या तुम समझते हो कि तुम सबके लिए सब कुछ कर सकते हो ? हट जाओ, दूर रहो ! ईश्वर सबकी चिन्ता करेंगे। अपने को सर्वज्ञ समझनेवाले तुम हो कौन ? नास्तिको, तुम यह सोचने का दुस्साहस कैसे करते हो कि तुम्हारा ईश्वर पर अधिकार है ? क्या तुम जानते नहीं कि प्रत्येक आत्मा ईश्वर ही का स्वरूप है ? तुम अपना ही कर्म करो, तुम्हारे लिए तुम्हारे सिर पर बहुत से कर्मों का भार है। नास्तिको ! तुम्हारी जाति तुमको आसमान पर चढ़ा दे, तुम्हारा समाज तुम्हारी प्रशंसा के पुल बाँध दे, मूर्ख लोग तुम्हारी तारीफ करें, किन्तु ईश्वर तो नहीं रहे हैं, इस लोक में या परलोक में इसका दण्ड तुम्हें अवश्य मिलेगा।

अतएव हर एक स्त्री को, हर एक पुरुष को और सभी को ईश्वर के ही समान देखो। तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते, तुम्हें केवल सेवा करने का अधिकार है। प्रभु की सन्तान की, यदि भाग्यवान हो तो, स्वयं प्रभु की ही सेवा करो। यदि ईश्वर के अनुग्रह से उसकी किसी सन्तान की सेवा कर सकोगे, तो तुम धन्य हो जाओगे, अपने ही को बहुत बड़ा मत समझो। तुम धन्य हो, क्योंकि सेवा करने का तुमको अधिकार मिला और दूसरों को नहीं मिला। केवल ईश्वर-पूजा के भाव से सेवा करो। च व्यक्तिगो मे दमको भगवान् को देखना चाहिए, अपनी

नहीं हटा। मैंने तुम लोगों से उम दिन कहा था कि जो स्वयं बेचों के प्रकाशक हैं, उन्हीं भी हृदय के द्वारा बेचों की एकमात्र प्रामाणिक टीका गीता एक ही बार फिर काम के लिए बनी है। यह सबके लिए और जीवन की सभी अवस्थाओं के लिए उपयोगी है। तुम कोई भी काम करो तुम्हारे लिए बहान्त की आवश्यकता है। वेदान्त के इन सब महान् तत्त्वों का प्रचार आवश्यक है, वे केवल अरण्य में बसना गिरिसुहाओं में बाबू नही रहने बकीलों और न्यायाधीशों में प्रार्थना-मन्त्रियों में दरिद्रों की कुटियों में मछुओं के घरों में छात्रों के अध्ययन-स्थानों में—सर्वत्र ही इन तत्त्वों की बर्चा होनी और वे काम में धाम पायेंगे। हर एक व्यक्ति हर एक सन्तान चाहे जो काम करे, चाहे जिस अवस्था में हो—उनकी पुकार सबके लिए है। भय का अब कोई कारण नहीं है। उपनिषदों के सिद्धान्तों को मझू जारि साधारण जन किस प्रकार काम में लायेंगे? इसका उपाय छात्रों में बताया गया है। मार्ग अनन्त है, धर्म अनन्त है, कोई इसकी सीमा के बाहर नहीं जा सकता। तुम मिथ्यात्व भाव से जो कुछ करते हो तुम्हारे लिए बही अच्छा है। अल्पत छोटा कर्म भी यदि अच्छे भाव से किया जाय तो उससे बहुमुत फल की प्राप्ति होती है। अतएव जो जहाँ तक अच्छे भाव से काम कर सके करे। मझूना यदि अपने को आत्मा समझकर निश्चल करे, तो वह एक उत्तम मझूना होगा। विद्यार्थी यदि अपने को आत्मा विचारे, तो वह एक श्रेष्ठ विद्यार्थी होगा। बकील यदि अपने को आत्मा समझे तो वह एक अच्छा बकील होगा। औरों के विषय में भी यही समझो। इसका फल यह होगा कि जातिविभाम अनन्त काळ तक रहे जायगा क्योंकि विभिन्न श्रेणियों में विभक्त होना ही समाज का स्वभाव है। पर रहेगा क्या नहीं? विशेष अधिकारों का अस्तित्व न रहे जायगा। जातिविभाग प्राकृतिक नियम है। सामाजिक जीवन में एक विशेष काम में कर सकता हूँ तो दूसरा काम तुम कर सकते हो। तुम एक देश का शासन कर सकते हो तो मैं एक पुराने जूते की मरम्मत कर सकता हूँ किन्तु इस कारण तुम मुझसे बड़े नहीं हो सकते। क्या तुम मेरे जूते की मरम्मत कर सकते हो? मैं क्या देश का शासन कर सकता हूँ? यह कार्यविभाग स्वाभाविक है। मैं जूते की ठिकाना करने में बतुर हूँ तुम बेबयाठ में निपुण हो। यह कोई कारण नहीं कि तुम इस विशेषता के लिए मेरे धिर पर पाँव रखो। तुम यदि हल्का भी करो तो तुम्हारी प्रशंसा और मुझ एक सेब चुपने पर ही फाँसी पर लटकना हो ऐसा नहीं हो सकता। इसको समाप्त करना ही होना। जातिविभाग अच्छा है। जीवन-समस्या के समाधान के लिए यही एकमात्र स्वाभाविक उपाय है। मनुष्य ब्रह्म अलग बनों में विभक्त होंगे यह अनिवार्य है। तुम जहाँ भी जाओ जातिविभाग से बूटकारा न मिलेगा किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि

का विशेषाधिकार भी रहेगा। इनको जड़ से उखाड़ फेंकना होगा। यदि मछुआ को तुम वेदान्त सिखलाओगे तो वह कहेगा, हम और तुम दोनों बराबर हैं। तुम दार्शनिक हो, मैं मछुआ, पर इससे क्या? तुम्हारे भीतर जो ईश्वर है, वही मुझमें भी है। हम यही चाहते हैं कि किसीको कोई विशेष अधिकार प्राप्त न हो, और प्रत्येक मनुष्य की उन्नति के लिए समान सुभीते हो। सब लोगो को उनके भीतर स्थित ब्रह्मतत्त्व सम्बन्धी शिक्षा दो। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मुक्ति के लिए स्वयं चेष्टा करेगा।

उन्नति के लिए सबसे पहले स्वाधीनता की आवश्यकता है। यदि तुम लोगो में से कोई यह कहने का साहस करे कि मैं अमुक स्त्री अथवा अमुक लड़के की मुक्ति के लिए काम करूँगा, तो यह गलत है, हजार बार गलत होगा। मुझसे बार-बार यह पूछा जाता है कि विधवाओं की समस्या के बारे में और स्त्रियों के प्रश्न के विषय में आप क्या सोचते हैं? मैं इस प्रश्न का अन्तिम उत्तर यह देता हूँ— क्या मैं विधवा हूँ, जो तुम ऐसा निरर्थक प्रश्न मुझसे पूछते हो? क्या मैं स्त्री हूँ, जो तुम बार-बार मुझसे यही प्रश्न करते हो? स्त्री जाति के प्रश्न को हल करने के लिए आगे बढ़नेवाले तुम ही कौन? क्या तुम हर एक विधवा और हर एक स्त्री के भाग्यविधाता भगवान् हो? दूर रहो! अपनी समस्याओं का समाधान वे स्वयं कर लेंगी। अरे अत्याचारियों, क्या तुम समझते हो कि तुम सबके लिए सब कुछ कर सकते हो? हट जाओ, दूर रहो! ईश्वर सबकी चिन्ता करेंगे। अपने को सर्वज्ञ समझनेवाले तुम ही कौन? नास्तिको, तुम यह सोचने का दुस्साहस कैसे करते हो कि तुम्हारा ईश्वर पर अधिकार है? क्या तुम जानते नहीं कि प्रत्येक आत्मा ईश्वर ही का स्वरूप है? तुम अपना ही कर्म करो, तुम्हारे लिए तुम्हारे सिर पर बहुत से कर्मों का भार है। नास्तिको! तुम्हारी जाति तुमको आसमान पर चढ़ा दे, तुम्हारा समाज तुम्हारी प्रशंसा के पुल बाँध दे, मूर्ख लोग तुम्हारी तारीफ करें, किन्तु ईश्वर सो नहीं रहे हैं, इस लोक में या परलोक में इसका दण्ड तुम्हें अवश्य मिलेगा।

अतएव हर एक स्त्री को, हर एक पुरुष को और सभी को ईश्वर के ही समान देखो। तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते, तुम्हें केवल सेवा करने का अधिकार है। प्रभु की सन्तान की, यदि भाग्यवान हो तो, स्वयं प्रभु की ही सेवा करो। यदि ईश्वर के अनुग्रह से उसकी किसी सन्तान की सेवा कर सकोगे, तो तुम धन्य हो जाओगे, अपने ही को बहुत बड़ा मत समझो। तुम धन्य हो, क्योंकि सेवा करने का तुमको अधिकार मिला और दूसरो को नहीं मिला। केवल ईश्वर-पूजा के भाव से सेवा करो। दरिद्र व्यक्तियों में हमको भगवान् को देखना चाहिए, अपनी



ही मुक्ति के लिए उनके निकट जाकर हमें उनकी पूजा करनी चाहिए। अनेक दुःखी और क्लेश प्राणी हमारी मुक्ति के माध्यम हैं, चाकि हम रोगी पागल कोढ़ी पापी आदि स्वस्वों में बिचरते हुए प्रभु की सेवा करके अपना उद्धार करें। मेरे सम्बन्ध बड़े गम्भीर हैं और मैं उन्हें फिर दुहराता हूँ कि हम लोगों के जीवन का सर्व-श्रेष्ठ सौभाग्य यही है कि हम इन भिन्न भिन्न रूपों में विराजमान भगवान् की सेवा कर सकते हैं। प्रभुत्व से किसीका कल्याण कर सकने की चारणा त्याग दो। जिस प्रकार पौधे के बढ़ने के लिए बस मिट्टी नामु आदि पदार्थों का संग्रह कर देने पर फिर वह पौधा अपनी प्रकृति के नियमानुसार आवश्यक पदार्थों का ग्रहण मात्र ही कर लेता है और अपने स्वभाव के अनुसार बढ़ता जाता है उसी प्रकार ब्रह्मों की उन्नति के साधन एकत्र करके उनका हित करो।

संसार में ज्ञान के प्रकाश का विस्तार करो प्रकाश सिर्फ प्रकाश लाओ। प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करे। जब तक सब लोग भगवान् के निकट न पहुँच जायें तब तक तुम्हारा काम संपन्न नहीं हुआ है। पृथिवी में ज्ञान का विस्तार करो धर्मियों पर और भी अधिक प्रकाश जाओ क्योंकि बच्चों की अपेक्षा धर्मियों को अधिक प्रकाश की आवश्यकता है। अण्ड लोगों को भी प्रकाश दिखाओ। शिक्षित अनुप्यों के लिए और अधिक प्रकाश चाहिए, क्योंकि आजकल विद्या का मिथ्याभिमान बुरा प्रचल ही रहा है। इसी तरह सबके निकट प्रकाश का विस्तार करो। और सैप सब भगवान् पर छोड़ दो क्योंकि स्वयं भगवान् के शब्दों में—

कर्मबोधाधिकारस्ते मा कर्मैव कथाचन।

मा कर्मकस्तेतुर्मुर्ता से तपोऽस्त्यकर्मणि॥

(गीता २।४७)

—कर्म में ही तुम्हारा अधिकार है, फल में नहीं तुम इस भावसे कर्म मत करो जिससे तुम्हें फल-भोग करना पड़े। तुम्हारी प्रकृति कर्म त्याग करने की और न हो।

सैकड़ों युग पूर्व हमारे पूर्वपुत्रों को जिस प्रभु से ऐसे उदात्त सिद्धान्त सिध्दसाये हैं, वे हमें उन आदर्शों को काम में आगे की शक्ति से और हमारी सहायता करें।

## भारत के महापुरुष

[मद्रास में दिया हुआ भाषण]

भारतीय महापुरुषों के विषय में कुछ कहने के पहले मुझे उस समय का स्मरण होता है, जिस समय का पता इतिहास को नहीं मिला, जिस अतीत के अन्धकार में पैठकर भेद खोलने का पौराणिक परम्पराएँ वृथा प्रयत्न करती हैं। भारत में इतने महापुरुष पैदा हुए हैं कि उनकी गणना नहीं हो सकती, और महापुरुष पैदा करना छोड़ हज़ारों वर्षों से इस हिन्दू जाति ने और किया ही क्या? अतः इन महर्षियों में से युगान्तर करनेवाले कुछ सर्वश्रेष्ठ आचार्यों का वर्णन अर्थात् उनके चरित्र की आलोचना करके जो कुछ मैंने समझा है, वही तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत करूँगा।

पहले अपने शास्त्रों के सम्बन्ध में हमें कुछ जान लेना चाहिए। हमारे शास्त्रों में सत्य के दो आदर्श हैं। पहला वह है, जिसे हम सनातन सत्य कहते हैं, और दूसरा वह, जो पहले की तरह प्रामाणिक न होने पर भी, विशेष विशेष देश, काल और पात्र पर प्रयुज्य है। श्रुति अथवा वेदों में जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप का पारस्परिक सम्बन्ध वर्णित है। मन्वादि स्मृतियों में, याज्ञवल्क्यादि संहिताओं में, पुराणों और तन्त्रों में दूसरे प्रकार का सत्य है। ये दूसरी कोटि के ग्रन्थ और शिक्षाएँ श्रुति के अधीन हैं, क्योंकि स्मृति और श्रुति में यदि विरोध हो तो श्रुति को ही प्रमाणस्वरूप ग्रहण करना होगा। शास्त्रसम्मति यही है। अभिप्राय यह कि श्रुति में जीवात्मा की नियति और उसके चरम लक्ष्यविषयक मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन है, और इनकी व्याख्या तथा विस्तार का काम स्मृतियों और पुराणों पर छोड़ दिया गया है—वे प्रथमोक्त सत्य के ही सविस्तर वर्णन हैं। साधारणतया मार्ग-निर्देश के लिए श्रुति ही पर्याप्त है। दार्मिक जीवन बिताने के लिए सारतत्त्व के विषय में श्रुति के कहे उपदेशों से अधिक न और कुछ कहा जा सकता है, और न कुछ जानने की आवश्यकता ही है। इस विषय में जो कुछ आवश्यक है, वह श्रुति में है, जीवात्मा की सिद्धि-प्राप्ति के लिए जो जो उपदेश चाहिए, उनका सम्पूर्ण वर्णन श्रुति में है। केवल विशेष अवस्थाओं के विधान श्रुति में नहीं है। समय समय पर स्मृतियों ने इनकी व्यवस्था दी है।

श्रुति की एक अन्य विशेषता यह है कि अनेक महर्षियों ने श्रुति में विभिन्न सत्य सकलित किये हैं, इनमें पुरुष अधिक हैं, किन्तु कुछ महिलाएँ भी हैं। उनके

ही मुक्ति के लिए उनके निकट जाकर हमें उनकी पूजा करनी चाहिए। अनेक पुत्ती और कंगाल प्राणी हमारी मुक्ति के माध्यम हैं, ताकि हम रोमी पागल कोड़ी पापी आदि स्वरूपों में विपरते हुए प्रभु की सेवा करके अपना उधार करें। मेरे धर्य बड़े मम्मीर है और मैं उन्हें फिर दुहाता हूँ कि हम लोगों के जीवन का सर्व श्रेष्ठ सौभाग्य यही है कि हम इन मित्र मित्र रूपों में विराजमान भगवान् की सेवा कर सकते हैं। प्रभुत्व से किसीका कस्याम कर सकने की धारणा त्याग दो। जिस प्रकार पीने के बदन के लिए अछ मिट्टी वायु आदि पदार्थों का संग्रह कर देने पर फिर वह पीना अपनी प्रकृति के नियमानुसार आवश्यक पदार्थों का ग्रहण आप ही कर लेता है और अपने स्वभाव के अनुसार बढ़ता जाता है उसी प्रकार बूझों की उत्पत्ति के साधन एकत्र करके उनका हित करो।

संसार में ज्ञान के प्रकाश का विस्तार करो प्रकाश सिद्ध प्रकाश लामो। प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करे। जब तक सब लोग भगवान् के निकट न पहुँच जायें तब तक तुम्हारा कार्य सेप नहीं हुआ है। अरीषों में ज्ञान का विस्तार करो भगियों पर और श्री अधिक प्रकाश लामो क्योंकि अरिषों की अपेक्षा भगियों को अधिक प्रकाश की आवश्यकता है। अपङ लोगों को भी प्रकाश दिखाओ। शिक्षित मनुष्यों के लिए और अधिक प्रकाश चाहिए, क्योंकि आजकल शिक्षा का मिष्याभिमान बूब प्रबल हो रहा है। इसी तरह सबके निकट प्रकाश का विस्तार करो। और देख सब भगवान् पर छोड़ दो क्योंकि स्वयं भगवान् के सबों में—

कर्मब्येवाधिकारस्ते मा फलेषु क्वाचन।

ना कर्मकर्मैतुर्नमा है तन्नोऽस्त्यकर्मणि॥

(गीता २।४७)

—‘कर्म में ही तुम्हारा अधिकार है, फल में नहीं तुम इस भाव से कर्म मत करो जिससे तुम्हें फल-भोग करना पड़े। तुम्हारी प्रकृति कर्म त्याग करने की ओर न हो।

सकड़ों धुम पूर्व हमारे पूर्वपुत्रों को जिस प्रभु ने ऐसे उदात्त सिद्धांत सिखाये हैं, वे हमें उन आर्यों को काम में जाने की शक्ति हैं और हमारी सहायता करें।

## भारत के महापुरुष

[मद्रास में दिया हुआ भाषण]

भारतीय महापुरुषों के विषय में कुछ कहने के पहले मुझे उस समय का स्मरण होता है, जिस समय का पता इतिहास को नहीं मिला, जिस अतीत के अन्वकार में पैठकर भेद खोलने का पौराणिक परम्पराएँ वृथा प्रयत्न करती हैं। भारत में इतने महापुरुष पैदा हुए हैं कि उनकी गणना नहीं हो सकती, और महापुरुष पैदा करना छोड़ हज़ारों वर्षों से इस हिन्दू जाति ने और किया ही क्या? अतः इन महर्षियों में से युगान्तर करनेवाले कुछ सर्वश्रेष्ठ आचार्यों का वर्णन अर्थात् उनके चरित्र की आलोचना करके जो कुछ मैंने समझा है, वही तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत करूँगा।

पहले अपने शास्त्रों के सम्बन्ध में हमें कुछ जान लेना चाहिए। हमारे शास्त्रों में सत्य के दो आदर्श हैं। पहला वह है, जिसे हम सनातन सत्य कहते हैं, और दूसरा वह, जो पहले की तरह प्रामाणिक न होने पर भी, विशेष विशेष देश, काल और पात्र पर प्रयुज्य है। श्रुति अथवा वेदों में जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप का पारस्परिक सम्बन्ध वर्णित है। मन्वादि स्मृतियों में, याज्ञवल्क्यादि संहिताओं में, पुराणों और तन्त्रों में दूसरे प्रकार का सत्य है। ये दूसरी कोटि के ग्रन्थ और शिक्षाएँ श्रुति के अधीन हैं, क्योंकि स्मृति और श्रुति में यदि विरोध हो तो श्रुति को ही प्रमाणस्वरूप ग्रहण करना होगा। शास्त्रसम्मति यही है। अभिप्राय यह कि श्रुति में जीवात्मा की नियति और उसके चरम लक्ष्यविषयक मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन है, और इनकी व्याख्या तथा विस्तार का काम स्मृतियों और पुराणों पर छोड़ दिया गया है—वे प्रथमोक्त सत्य के ही सविस्तर वर्णन हैं। साधारणतया मार्ग-निर्देश के लिए श्रुति ही पर्याप्त है। धार्मिक जीवन बिताने के लिए सारतत्त्व के विषय में श्रुति के कहे उपदेशों से अधिक न और कुछ कहा जा सकता है, और न कुछ जानने की आवश्यकता ही है। इस विषय में जो कुछ आवश्यक है, वह श्रुति में है, जीवात्मा की सिद्धि-प्राप्ति के लिए जो जो उपदेश चाहिए, उनका सम्पूर्ण वर्णन श्रुति में है। केवल विशेष अवस्थाओं के विधान श्रुति में नहीं है। समय समय पर स्मृतियों ने इनकी व्यवस्था दी है।

श्रुति की एक अन्य विशेषता यह है कि अनेक महर्षियों ने श्रुति में विभिन्न सत्य सकलित किये हैं, इनमें पुरुष अधिक हैं, किन्तु कुछ महिलाएँ भी हैं। उनके

व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में अथवा उनके जन्म-काल आदि के विषय में हमें बहुत कम ज्ञान है, किन्तु उनके सर्वोत्कृष्ट विचार बिल्कुं स्रेष्ठ आविष्कार कहना ही उपयुक्त होगा। हमारे देश के धर्म-साहित्य क्षेत्रों में लेखबद्ध और रचित हैं। पर स्मृतियों में ऋषियों की जीवनी और प्रायः उनके कार्यकलाप विशेष रूप से देखने को मिलते हैं। स्मृतियों में ही हम बहुमूल महाव्यक्तिशास्त्री प्रमादोत्पादक और संसार को संश्लिष्ट करनेवाले व्यक्तियों का सर्वप्रथम परिचय प्राप्त करते हैं। कमी कमी उनके समुदाय और उज्ज्वल चरित्र उनके उपदेशों से भी अधिक उत्कृष्ट जान पड़ते हैं।

हमारे धर्म में निर्गुण सगुण ईश्वर की शिक्षा है यह उसकी एक विशेषता है, जिस हमें समझना चाहिए। उसमें व्यक्तिगत सम्बन्धों से रहित अनन्त समाप्त सिद्धान्तों के साथ साथ असंख्य व्यक्तित्वों अर्थात् अवतारों के भी उपदेश हैं परन्तु मुक्ति अथवा वेद ही हमारे धर्म के मूल स्रोत हैं जो पूर्णतः अपीत्येय हैं। बड़े बड़े आचार्यों बड़े बड़े अवतारों और महर्षियों का उत्कृष्ट स्मृतियों और पुराणों में है। और ध्यान देने योग्य एक बात यह भी है कि केवल हमारे धर्म को छोड़कर संसार में प्रत्येक अन्य धर्म किसी धर्म-प्रवर्तक अथवा धर्म-प्रवर्तकों के जीवन से ही अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध है। ईसाई धर्म ईसा के, इस्लाम धर्म मुहम्मद के बौद्ध धर्म बुद्ध के जैन धर्म जिनों के और अग्न्यात्म धर्म अग्न्यात्म्य व्यक्तियों के जीवन के ऊपर प्रतिष्ठित है। इसलिये इन महापुरुषों के जीवन के ऐतिहासिक प्रमाणों को लेकर उन धर्मों में जो यथेष्ट वाद-विवाद होता है, वह स्वाभाविक है। यदि कभी इन प्राचीन महापुरुषों के अस्तित्वविषयक ऐतिहासिक प्रमाण दुर्लभ होते हैं तो उनकी धर्मरुची बढ़ाकर गिरकर चूर चूर हो जाती है। हमारा धर्म व्यक्तिविशेष पर प्रतिष्ठित न होकर समस्त सिद्धान्तों पर प्रतिष्ठित है, अतः हम उस विपत्ति से मुक्त हैं। किसी महापुरुष पहाँ तक कि किसी अवतार के कथन को ही तुम अपना धर्म मानते हो ऐसा नहीं है। कृष्ण के कथनों से वेदों की प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होती किन्तु वे वेदों के अनुगामी हैं, इसीसे कृष्ण के वे वाक्य प्रामाण्यस्वरूप हैं। कृष्ण वेदों के प्रमाण नहीं हैं, किन्तु वेद ही कृष्ण के प्रमाण हैं। कृष्ण की महानता इस बात में है कि वेदों के जितने प्रचारक हुए हैं, उनमें सर्वश्रेष्ठ वे ही हैं। अग्न्यात्म्य अवतार और समस्त महर्षियों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही समझो। हमारा प्रथम सिद्धान्त है कि मनुष्य की पूर्णता-प्राप्ति के लिये, उसकी मुक्ति के लिये, जो कुछ आवश्यक है, उसका वर्णन वेदों में है। कोई और नया आविष्कार नहीं ही सकता। समस्त ज्ञान के अन्त अन्तस्वरूप पूर्ण एकरूप के आगे तुम कभी बढ़ नहीं सकते। इस पूर्ण एकरूप का आविष्कार बहुत पहले ही वेदों में किया है। इसके अधिक अवसर

होना असम्भव है। 'तत्त्वमसि' का आविष्कार हुआ कि आध्यात्मिक ज्ञान सम्पूर्ण हो गया। यह 'तत्त्वमसि' वेदो में ही है। विभिन्न देश, काल, पात्र के अनुसार समय समय की केवल लोकशिक्षा शेष रह गयी। इस प्राचीन सनातन मार्ग में मनुष्यों का चलना ही शेष रह गया, इसीलिए समय समय पर विभिन्न महापुरुषों और आचार्यों का अम्युदय होता है। गीता में श्री कृष्ण की इस प्रसिद्ध वाणी के अतिरिक्त उस तत्त्व का वर्णन ऐसे सुन्दर और स्पष्ट रूप से कही नहीं हुआ है

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

(गीता ४।७)

—हे भारत, जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब मैं धर्म की रक्षा और अधर्म के नाश के लिए समय समय पर अवतार ग्रहण करता हूँ।' यही भारतीय धारणा है।

इससे निष्कर्ष क्या निकलता है? एक ओर ये सनातन तत्त्व हैं, जो स्वतः प्रमाण हैं, जो किसी प्रकार की युक्ति के ऊपर नहीं टिके हैं, जो बड़े से बड़े ऋषियों के अथवा तेजस्वी से तेजस्वी अवतारों के वाक्यों के ऊपर नहीं ठहरे हैं। यहाँ हमारा कहना है कि भारतीय विचारों की उक्त विशेषता के कारण हम वेदान्त को ही ससार का एकमात्र सार्वभौम धर्म कहने का दावा कर सकते हैं और यह ससार का एकमात्र वर्तमान सार्वभौम धर्म है, क्योंकि यह व्यक्तिविशेष के स्थान पर सिद्धान्त की शिक्षा देता है। व्यक्तिविशेष के चलेये हुए धर्म को ससार की समग्र मानव जाति ग्रहण नहीं कर सकती। अपने ही देश में हम देखते हैं कि यहाँ कितने महापुरुष हो गये हैं। हम एक छोटे से शहर में देखते हैं कि उस शहर के लोग अनेक व्यक्तियों को अपना आदर्श चुनते हैं। अतः समस्त ससार का एकमात्र आदर्श मुहम्मद, बुद्ध अथवा ईसा भसीह ऐसा कोई एक व्यक्ति किस प्रकार हो सकता है? अथवा समस्त नैतिकता, आचरण, आध्यात्मिकता तथा धर्म का सत्य एक व्यक्ति, केवल एक व्यक्ति की आज्ञापति पर किस प्रकार आधारित हो सकता है? वेदान्त धर्म में इस प्रकार किसी व्यक्तिविशेष के वाक्यों को प्रमाण मान लेने की आवश्यकता नहीं। मनुष्य की सनातन प्रकृति ही इसका प्रमाण है, इसका आचार-शास्त्र मानव के सनातन आध्यात्मिक एकत्व पर प्रतिष्ठित है, जो चेष्टा द्वारा प्राप्त नहीं होता, किन्तु पहले ही से लब्ध है। दूसरी ओर हमारे ऋषियों ने अत्यन्त प्राचीन काल से ही समझ लिया था कि मानव जाति का अधिकांश किसी व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। उनको किसी न किसी रूप में व्यक्तिविशेष ईश्वर अवश्य चाहिए।

जिन बुद्धदेव ने व्यक्तिबिनाय ईश्वर के बिबद्ध प्रचार किया था उनके देहत्याग के पश्चात् पचास वर्ष में ही उनका शिष्यों ने उनको ईश्वर मान लिया। हिन्दु व्यक्ति-बिद्येय ईश्वर की भी भावपरकता है और हम जानते हैं कि किसी व्यक्तिबिद्येय ईश्वर की पूजा कल्पना से बढ़कर जीवित ईश्वर इस लोक में समय समय पर उत्पन्न होकर हम लोगों के साथ रहते भी हैं। जब कि कास्मनिक व्यक्तिबिद्येय ईश्वर ही सौ में निग्वानत प्रतिपात उपासना ने अयोग्य ही होते हैं। किसी प्रकार के कास्मनिक ईश्वर की अपेक्षा अपनी कास्मनिक रचना की अपेक्षा अर्थात् ईश्वर सम्बन्धी जो भी धारणा हम बना सकते हैं उसकी अपेक्षा ने पूजा के अधिक योग्य है। ईश्वर के सम्बन्ध में हम सोच जो भी पारना रख सकते हैं उसकी अपेक्षा की कल्पना बहुत बड़े है। हम अपने मन में जितने उच्च आदर्श का विचार कर सकते हैं उसकी अपेक्षा बुद्धदेव अधिक उच्च आदर्श हैं जीवित आदर्श हैं। इसीलिए सब प्रकार के कास्मनिक देवताओं को परम्पुत करके ने बिच कास से मनुष्यों द्वारा पूजे जा रहे हैं।

हमारे ऋषि यह जानते थे इसीलिए उन्होंने समस्त भारतवासियों के लिए हम महापुरुषों की इन अवतारों की पूजा करने का मार्ग खोला है। इतना ही नहीं जो हमारे सर्वश्रेष्ठ अवतार हैं, उन्होंने और भी आने बढ़कर कहा है

यद्यत् किमूतिस्तु सत्त्वं श्रीमद्भूजितमेव वा।

सत्तदेवावतच्छ त्वं मम तेर्षोऽस्यसम्भवम्॥

(गीता १।४१)

— मनुष्यों ने जहाँ अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है समस्त जहाँ में वर्तमान हैं मुझसे ही इस आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है।

यह हिन्दुओं के लिए समस्त देशों के समस्त अवतारों की उपासना करने का द्वार खोल देता है। हिन्दु किसी भी देश के किसी भी साधु-महात्मा की पूजा कर सकते हैं। हम बहुधा ईसाइयों के गिरनों और मुसलमानों की मसजिदों में जाकर उपासना भी करते हैं। यह अच्छा है। हम इस तरह उपासना क्यों न करें? मैंने पहले ही कहा है हमारा धर्म सार्वभौम है। यह इतना उदार, इतना प्रबल है कि यह सब प्रकार के आदर्शों को आदर्शपूर्वक ग्रहण कर सकता है। संसार में जहाँ के जितने आदर्श हैं उनको इसी समान ग्रहण किया जा सकता है और भविष्य में जो समस्त विभिन्न आदर्श होंगे उनके लिए हम धर्म के साथ प्रतीक्षा कर सकते हैं। उनको भी इसी प्रकार ग्रहण करना होना बेबाक धर्म ही अपनी विचार भुजाओं को फैलाकर सबको हृदय से जया देगा।

ईश्वर के अवतारस्वरूप महान् ऋषियों के सम्बन्ध में हमारी कल्पना यही

घारणा है। इनकी अपेक्षा एक प्रकार के नीचे दर्जे के महापुरुष और हैं। वेदों में ऋषि शब्द का उल्लेख बारम्बार पाया जाता है और आजकल तो यह एक प्रचलित शब्द हो गया है। आपं वाक्य विशेष प्रमाण माने जाते हैं। हमें इसका भाव समझना चाहिए। ऋषि का अर्थ है मन्त्रद्रष्टा अर्थात् जिमने किमी तत्त्व का दर्शन किया हो। अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रश्न पूछा जाता है कि घर्म का प्रमाण क्या है? बाह्य इन्द्रियों में घर्म की सत्यता प्रमाणित नहीं होती, यह अत्यन्त प्राचीन काल से ही ऋषियों ने कहा है यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। — 'मन के सहित वाणी जिमको न पाकर जहाँ से लीट आती है।' न तत्र चक्षुर्गच्छति न चागच्छति नो मन । — 'जहाँ आँखों की पहुँच नहीं, जहाँ वाणी भी नहीं जा सकती और मन भी नहीं जा सकता।' युग युग में यही घोषणा रही है। आत्मा का अस्तित्व, ईश्वर का अस्तित्व, अनन्त जीवन, मनुष्यों का चरम लक्ष्य आदि प्रश्नों का उत्तर बाह्य प्रकृति नहीं दे सकेगी। यह मन सदा परिवर्तनशील है, मानो यह मदा बहता जा रहा है। यह परिमित है, मानो इसके छोटे छोटे टुकड़े कर दिये गये हैं। यह प्रकृति किस प्रकार उस अनन्त, अपरिवर्तनशील, अखड, अविभाज्य सनातन के विषय में कुछ कह सकती है? यह कदापि सम्भव नहीं। इतिहास इसका साक्षी है कि चैतन्यहीन जड पदार्थ से इन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने की मनुष्य जाति ने जब कभी वृथा चेष्टा की है, परिणाम कितना भयानक हुआ है। फिर यह वेदोक्त ज्ञान कहाँ से आया? ऋषि होने में यह ज्ञान प्राप्त होता है। यह ज्ञान इन्द्रियों में नहीं है। पर क्या इन्द्रियाँ ही मनुष्यों के लिए सब कुछ हैं? यह कहने का किसे साहस है कि इन्द्रियाँ ही सारसर्वस्व हैं? हमारे जीवन में, हममें से प्रत्येक के जीवन में, सम्भवतः जब हमारे सामने ही किसी प्रियजन की मृत्यु हो जाती है, जब हमको कोई आघात पहुँचता है अथवा जब अत्यधिक आनन्द हमको प्राप्त होता है, उसमें शान्ति के क्षण आते हैं। अनेक दूसरे अवसरों पर ऐसा भी होता है कि मन स्थिर होकर क्षण भर के लिए अपने सच्चे स्वरूप का अनुभव करता है, उस अनन्त की झलक पा जाता है, जहाँ न मन की पहुँच है और न शब्दों की। साधारण जनों के भी जीवन में ऐसा होता है, पर इसको अम्यास के द्वारा प्रगाढ, स्थिर और पूर्ण रूप देना होगा। युगो पहले ऋषियों ने आविष्कार किया था कि आत्मा न तो इन्द्रियों द्वारा ही बद्ध है और न किसी सीमा से ही घिर सकती है, केवल इतना ही नहीं, वह इन्द्रियग्राह्य ज्ञान के द्वारा भी सीमाबद्ध नहीं हो सकती। हमें समझना होगा कि ज्ञान उस आत्मरूपी अनन्त शृंखला का एक क्षुद्र अंश-मात्र है। सत्ता ज्ञान से अभिन्न नहीं है, ज्ञान उसी सत्ता का एक अंश है। ऋषियों ने ज्ञान की अतीत भूमि में निर्भय होकर



जिन बुद्धदेव ने व्यक्तिविशेष ईश्वर के विश्व प्रचार किया था उनके देहत्याग के पश्चात् पचास वर्षों में ही उनके शिष्यों ने उनको ईश्वर मान लिया। किन्तु व्यक्ति-विशेष ईश्वर की भी आवश्यकता है और हम जानते हैं कि किसी व्यक्तिविशेष ईश्वर की पूजा कल्पना से बढ़कर जीवित ईश्वर इस लोक में समय समय पर उत्पन्न होकर हम लोगों के साथ रहते भी हैं जब कि कास्मिक व्यक्तिविशेष ईश्वर तो ही में निग्यामने प्रतिष्ठित उपासना के अयोग्य ही होते हैं। किसी प्रकार के कास्मिक ईश्वर की अपेक्षा अपनी कास्मिक रचना की अपेक्षा अर्थात् ईश्वर सम्बन्धी जो भी धारणा हम बना सकते हैं, उसकी अपेक्षा वे पूजा के अधिक योग्य हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में हम सोच जो भी धारणा रख सकते हैं, उसकी अपेक्षा भी कल्प्य बहुत बड़े हैं। हम अपने मन में जितने उच्च आदर्श का विचार कर सकते हैं, उसकी अपेक्षा बुद्धदेव अधिक उच्च आदर्श हैं, जीवित आदर्श हैं। इसीलिए सब प्रकार के कास्मिक देवताओं को पराभ्युक्त करके वे फिर काल से मनुष्यों द्वारा पूज जा रहे हैं।

हमारे ऋषि यह जानते थे इसीलिए उन्होंने समस्त भारतवासियों के लिए इन महापुरुषों की इन अवतारों की पूजा करने का मार्ग खोला है। इतना ही नहीं जो हमारे सर्वश्रेष्ठ अवतार हैं उन्होंने और भी आगे बढ़कर कहा है

पठन् विभूतिम् सत्त्वं श्रीमद्भूतमेव वा।

तत्तदेवागच्छ त्वं मम सेवोऽग्रसम्भवं ॥

(गीता १।४१)

—‘मनुष्यों ने जहाँ अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है समस्तों वहाँ मैं वर्तमान हूँ मुझसे ही इस आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है।

यह हिन्दुओं के लिए समस्त देशों के समस्त अवतारों की उपासना करने का द्वार खोल देता है। हिन्दू किसी भी देश के किसी भी सामु-महात्मा की पूजा कर सकते हैं। हम बहुधा ईसाइयों के विरोधों और मुसलमानों की मसजिदों में जाकर उपासना भी करते हैं। यह अच्छा है। हम इस तरह उपासना क्यों न करें ? मैंने पहले ही कहा है, हमारा धर्म सार्वभौम है। यह इतना उदार, इतना प्रगल्भ है कि यह सब प्रकार के आदर्शों को आदरपूर्वक ग्रहण कर सकता है। संसार में धर्मों के जितने आदर्श हैं उनको इसी समय ग्रहण किया जा सकता है और भविष्य में जो समस्त विभिन्न आदर्श होंगे उनसे लिए हम धर्म के साथ प्रतीक्षा कर सकते हैं। उनको भी इसी प्रकार ग्रहण करना होना बेबान्त धर्म ही अपनी विद्यालय मुजाबों को फैलाकर सबको हृदय से लया लेना।

ईश्वर के अवतारस्वरूप महान् ऋषियों के सम्बन्ध में हमारी कल्पना यही

धारणा है। इनकी अपेक्षा एक प्रकार के नीचे दर्जे के महापुरुष और हैं। वेदों में ऋषि शब्द का उल्लेख वारम्बार पाया जाता है और आजकल तो यह एक प्रचलित शब्द हो गया है। आपं वाक्य विधेय प्रमाण माने जाते हैं। हमें इसका भाव समझना चाहिए। ऋषि का अर्थ है मन्त्रद्रष्टा अर्थात् जिमने किमी तत्त्व का दर्शन किया हो। अत्यन्त प्राचीन काल में ही प्रश्न पूछा जाता है कि वर्म का प्रमाण क्या है? वाह्य इन्द्रियो में वर्म की मत्यता प्रमाणित नहीं होती, यह अत्यन्त प्राचीन काल से ही ऋषियों ने कहा है यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। — 'मन के महित वाणी जिमको न पाकर जहाँ से लौट आती है।' न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मन । — 'जहाँ आँखों की पहुँच नहीं, जहाँ वाणी भी नहीं जा सकती और मन भी नहीं जा सकता।' युग युग से यही घोषणा रही है। आत्मा का अस्तित्व, ईश्वर का अस्तित्व, अनन्त जीवन, मनुष्यों का चरम लक्ष्य आदि प्रश्नों का उत्तर वाह्य प्रकृति नहीं दे सकेगी। यह मन सदा परिवर्तनशील है, मानो यह सदा बहता जा रहा है। यह परिमित है, मानो इसके छोटे छोटे टुकड़े कर दिये गये हैं। यह प्रकृति किस प्रकार उस अनन्त, अपरिवर्तनशील, अखण्ड, अविभाज्य सनातन के विषय में कुछ कह सकती है? यह कदापि सम्भव नहीं। इतिहास इसका साक्षी है कि चैतन्यहीन जड़ पदार्थ से इन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने की मनुष्य जाति ने जब कभी वृथा चेष्टा की है, परिणाम कितना भयानक हुआ है। फिर यह वेदोक्त ज्ञान कहाँ से आया? ऋषि होने में यह ज्ञान प्राप्त होता है। यह ज्ञान इन्द्रियो में नहीं है। पर क्या इन्द्रियाँ ही मनुष्यों के लिए सब कुछ हैं? यह कहने का किसे साहस है कि इन्द्रियाँ ही सारसर्वस्व हैं? हमारे जीवन में, हममें से प्रत्येक के जीवन में, सम्भवतः जब हमारे सामने ही किसी प्रियजन की मृत्यु हो जाती है, जब हमको कोई आघात पहुँचता है अथवा जब अत्यधिक आनन्द हमको प्राप्त होता है, उसमें शान्ति के क्षण आते हैं। अनेक दूसरे अवसरों पर ऐसा भी होता है कि मन स्थिर होकर क्षण भर के लिए अपने सच्चे स्वरूप का अनुभव करता है, उस अनन्त की झलक पा जाता है, जहाँ न मन की पहुँच है और न शब्दों की। साधारण जनो के भी जीवन में ऐसा होता है, पर इसको अम्याम के द्वारा प्रगाढ, स्थिर और पूर्ण रूप देना होगा। युगो पहले ऋषियों ने आविष्कार किया था कि आत्मा न तो इन्द्रियो द्वारा ही बद्ध है और न किसी सीमा से ही घिर सकती है, केवल इतना ही नहीं, वह इन्द्रियग्राह्य ज्ञान के द्वारा भी सीमाबद्ध नहीं हो सकती। हमें समझना होगा कि ज्ञान उस आत्मारूपी अनन्त शृङ्खला का एक क्षुद्र अंश-मात्र है। सत्ता ज्ञान से अभिन्न नहीं है, ज्ञान उसी सत्ता का एक अंश है। ऋषियों ने ज्ञान की अतीत भूमि में निर्भय होकर

आत्मा का अनुसन्धान किया था। ज्ञान पंचेन्द्रियों द्वारा सीमाबद्ध है। आध्यात्मिक जगत् के सत्य को प्राप्त करने के लिए मनुष्यों को ज्ञान की बचीत भूमि में इन्द्रियों के परे जाना होगा। और इस समय भी ऐसे मनुष्य हैं, जो पंचेन्द्रियों की सीमा के परे जा सकते हैं। ये ही ऋषि कहलाते हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक सत्यो का साक्षात्कार किया है।

अपने सामने की इस मेख को जिस प्रकार हम प्रत्यक्ष प्रमाण से जानते हैं उसी तरह वेदोक्त सत्यों का प्रमाण भी प्रत्यक्ष अनुभव है। यह हम इन्द्रियों से बेध रहे हैं और आध्यात्मिक सत्यों का भी हम जीवात्मा की जानावीत अवस्था में साक्षात् करते हैं। ऐसा ऋषित्व प्राप्त करना वेद कास सिंग अथवा जातिविशेष के ऊपर निर्भर नहीं करता। वात्स्यायन निर्मयतापूर्वक बोधना करते हैं कि यह ऋषित्व ऋषियों की संतानों द्वारा-अर्थात् यहाँ तक कि स्केच्छों की भी साधारण सम्पत्ति है।

यही वेदा का ऋषित्व है। हमको भारतीय धर्म के इस आदर्श को सर्वथा स्मरण रखना होगा और यही इच्छा है कि संसार की अन्य जातियाँ भी इस आदर्श को समझकर याव रसें क्योंकि इससे धार्मिक कड़ाई-समझे कम हो जायेंगे। सास्त्र ग्रन्थों में धर्म नहीं होता अथवा सिद्धार्था मृतवादी धर्मियों तथा ताकिक उक्तिवों में भी धर्म की प्राप्ति नहीं होती। धर्म तो स्वयं साक्षात्कार करने की वस्तु है। ऋषि होना होगा। ऐ मेरे मित्रो जब तक तुम ऋषि नहीं बनोगे जब तक आध्यात्मिक सत्य के साथ साक्षात् नहीं होगा निरवय है कि जब तक तुम्हारा धार्मिक जीवन आरम्भ नहीं हुआ। जब तक तुम्हारी यह अतिवैतन (जागरूकता) अवस्था आरम्भ नहीं होती तब तक धर्म केवल कहने ही की बात है, तब तक यह केवल धर्म-प्राप्ति के लिए तैयार होना ही है। तुम केवल दूसरों से तुनी तुनायी बातों को बुझाते तिहराते मर हो और यही बुद्ध का कुछ ब्राह्मणों से बाद-विवाद करते समय का पुनरु कथन साधु होता है। ब्राह्मणों ने बुद्धदेव के पास जाकर ब्रह्म के स्वरूप पर प्रश्न किये। उक्त महापुरुष ने उन्हींस प्रश्न किया "आपने क्या ब्रह्म को देखा है? उन्होंने कहा "नहीं हमने ब्रह्म को नहीं देखा। बुद्धदेव ने पुनः उनसे प्रश्न किया "आपके पिता ने क्या उसको देखा है? — 'नहीं उन्होंने भी नहीं देखा। "क्या आपका पितामह ने उसको देखा है? — हम समझते हैं कि उन्होंने भी उसको नहीं देखा। तब बुद्धदेव ने बड़ा मित्रो आपके पिता पितामहों ने भी जिसकी नहीं देखा ऐन पुरुष के विषय पर आप किस प्रकार विचार द्वारा एन बुद्ध को परखन करने की चेष्टा कर रहे हैं? नमस्त सगार यही कर रहा है। वेदाल की भाषा में हम बहेंगे—आपकप्रता प्रबधमेन लभ्यो न विषया न वदता भूतेन।

—‘यह आत्मा वागाडम्बर से प्राप्त नहीं की जा सकती, प्रखर बुद्धि से भी नहीं, यहाँ तक कि बहुत वेदपाठ से भी उसकी प्राप्ति करना सम्भव नहीं।’

ससार की समस्त जातियों से वेदों की भाषा में हमको कहना होगा तुम्हारा लडना और झगडना वृथा है, तुम जिस ईश्वर का प्रचार करना चाहते हो, क्या तुमने उसको देखा है? यदि तुमने उसको नहीं देखा तो तुम्हारा प्रचार वृथा है, जो तुम कहते हो, वह स्वयं नहीं जानते, और यदि तुम ईश्वर को देख लोगे तो तुम झगडा नहीं करोगे, तुम्हारा चेहरा चमकने लगेगा। उपनिषदों के एक प्राचीन ऋषि ने अपने पुत्र को ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु के पास भेजा था। जब लडका वापस आया, तो पिता ने पूछा, “तुमने क्या सीखा?” पुत्र ने उत्तर दिया, “अनेक विद्याएँ सीखी हैं।” पिता ने कहा, “यह कुछ नहीं है, जाओ, फिर वापस जाओ।” पुत्र गुरु के पास गया, लडके के लौट आने पर पिता ने फिर वही प्रश्न पूछा और लडके ने फिर वही उत्तर दिया। उसको एक बार और वापस जाना पडा। इस बार जब वह लौटकर आया तो उसका चेहरा चमक रहा था। तब पिता ने कहा, “बेटा, आज तुम्हारा चेहरा ब्रह्मज्ञानी के समान चमक रहा है।” जब तुम ईश्वर को जान लोगे तो तुम्हारा मुख, स्वर, सारी आकृति बदल जायगी। तब तुम मानव जाति के लिए महाकल्याणस्वरूप ही जाओगे। ऋषि की शक्ति को कोई नहीं रोक सकेगा। यही ऋषित्व है और यही हमारे धर्म का आदर्श। और शेष जो कुछ है—ये सब वाग्विलास, युक्ति-विचार, दर्शन, द्वैतवाद, अद्वैतवाद, यहाँ तक कि वेद भी—यही ऋषित्व प्राप्त करने के सोपान मात्र हैं, गौण हैं। ऋषित्व प्राप्त करना ही मुख्य है। वेद, व्याकरण, ज्योतिषादि सब गौण हैं। जिसके द्वारा हम उस अव्यय ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त करते हैं, वही चरम ज्ञान है। जिन्होंने यह प्राप्त किया है, वे ही वैदिक ऋषि हैं। हम समझते हैं कि यह ऋषि एक कोटि, एक वर्ग का नाम है, जिस ऋषित्व को यथार्थ हिन्दू होते हुए हमें अपने जीवन की किसी न किसी अवस्था में प्राप्त करना ही होगा, और ऋषित्व प्राप्त करना ही हिन्दुओं के लिए मुक्ति है। कुछ सिद्धान्तों में ही विश्वास करने से, सहस्रों मन्दिरों के दर्शन से अथवा समार भर की कुल नदियों में स्नान करने से, हिन्दू मत के अनुसार मुक्ति नहीं होगी। ऋषि होने पर, मन्त्रद्रष्टा होने पर ही मुक्ति प्राप्त होगी।

वाद के युगों पर विचार करने पर हम देखते हैं कि उम समय मारे ससार को आलोकित करनेवाले अनेक महापुरुषों तथा श्रेष्ठ अवतारों ने जन्म ग्रहण किया है। अवतारों की मन्था बहुत है। भागवत के अनुमार भी अवतारों की मन्था अमन्थ है, इनमें से राम और कृष्ण ही भारत में विशेष भाव में पूजे जाते हैं। प्राचीन और युगों के आदर्शस्वरूप, सत्यपरायणता और नम्र नैतिकता के साकार मूर्ति-

स्वरूप आवर्ष तनय आदर्श पति आदर्श पिता सर्वोपरि आदर्श राजा राम का चरित्र हमारे सम्मुख महान् अधिवासीक क द्वारा प्रस्तुत किया गया है। महाकवि ने विश्व भाषा में रामचरित्र का वर्णन किया है, उसकी अपेक्षा अधिक पावन प्रौढक मधुर अथवा सरस भाषा ही नहीं सकती। और सीता के विषय में क्या कहा जाय। तुम संसार के समस्त प्राचीन साहित्य को छान डालो और मैं तुमसे निःसंकोच कहता हूँ कि तुम संसार के भावी साहित्य का भी संजन कर सकते हो किन्तु उसमें से तुम सीता के समान बुरा चरित्र नहीं निकाल सकते। सीता-चरित्र अद्वितीय है। यह चरित्र सदा के लिए एक ही बार चित्रित हुआ है। राम तो कदाचित् अनेक हो सके ह, किन्तु सीता और नहीं हुईं। भारतीय स्त्रियों को बीसा होता चाहिए, सीता उनके लिए आदर्श हैं। स्त्री-चरित्र के बितने भारतीय आदर्श हैं वे सब सीता के ही चरित्र से उत्पन्न हुए हैं और समस्त आर्यावर्त मूमि में सहस्रा वर्षों से वे स्त्री-मुख्य-आरक की पूजा पा रही हैं। महामहिमासपी सीता स्वर्ग सुखता से भी सुख, वैश्व तथा सहिष्णुता का सर्वोच्च आदर्श सीता सदा इसी भाव से पूजी आयेगी। जिन्होंने अविचलित मान से ऐसे महादुःख का जीवन स्वीकृत किया वहीं नित्य माष्पी सदा सुखस्वभाव सीता आदर्श पत्नी सीता मनुष्य लोक की आदर्श देवलोक की भी आदर्श नाटी पुण्य चरित्र सीता सदा हमारी राष्ट्रीय देवी बनी रहेंगी। हम सभी उनके चरित्र को अपनी भाँति जानते हैं, इसलिये उनका विदोष वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। चाहे हमारे सब पुराण मष्ट हो बायें यहाँ तक कि हमारे वैश्व भी कष्ट हो जायें हमारी सस्कृत भाषा सदा के लिए काक कोट में विकृत हो जाय किन्तु मरी बात ध्यानपूर्वक सुनो अब तक भारत में अतिशय घाम्य भाषा बोलनेवाके पाँच भी हिन्तू रहेंगे अब तक सीता की कथा विद्यमान रहेगी। सीता का प्रवेश हमारी जाति की अस्ति-मज्जा में हो चुका है प्रत्येक हिन्तू मर-नाटी के रक्त में सीता विद्यमान है। हम सभी सीता की शक्तान हैं। हमारी नारियों को मायुनिक मावों में रंगने की जो भेटाई हो रही है यदि उन सब प्रयत्नों में उनको सीता चरित्र के आदर्श से भ्रष्ट करने की भेटा होगी तो वे सब असफल होंगे बीसा कि हम प्रतिदिन देखते हैं। भारतीय नारियों से सीता के चरित्र-चिह्नों का अनुसरण करके अपनी सज्जति की भेटा करनी होनी यही एकमात्र पय है।

उसके पश्चात् है मयबात् भीह्वन जो नाना भाव से पूजे जाते हैं और जो पुराण के समान ही स्त्री के बन्धो ने समान ही बुद्ध के परम प्रिय इष्ट देवता है। येरा अमिप्राय जगत् है जिन्हे मागबनकार अथवा नहू के भी कृप नहीं हीते अन्तिक कहते हैं—

“अन्यान्य अवतार उस भगवान् के अग और फलस्वरूप है, किन्तु कृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं।”

और जब हम उनके विविध भाव-समन्वित चरित्र का अवलोकन करते हैं, तब उनके प्रति प्रयुक्त ऐसे विशेषणों से हमको आश्चर्य नहीं होता। वे एक ही स्वरूप में अपूर्व सन्यामी और अद्भुत गृहस्थ थे, उनमें अत्यन्त अद्भुत रजोगुण तथा शक्ति का विकास था और साथ ही वे अत्यन्त अद्भुत त्याग का जीवन बिताते थे। विना गीता का अध्ययन किये कृष्ण-चरित्र कभी समझ में नहीं आ सकता, क्योंकि अपने उपदेशों के वे आकारस्वरूप थे। प्रत्येक अवतार, जिसका प्रचार करने वे आये थे, उसके जीवित उदाहरण के रूप में अवतरित हुए। गीता के प्रचारक कृष्ण सदा भगवद्गीता के उपदेशों की साकार मूर्ति थे, वे अनाशक्ति के उज्ज्वल उदाहरण थे। उन्होंने अपना मिहासन त्याग दिया और कभी उसकी चिन्ता नहीं की। जिनके कहने ही से राजा अपने सिंहासनों को छोड़ देते थे, ऐसे समग्र भारत के नेता ने स्वयं राजा होना नहीं चाहा। उन्होंने बाल्यकाल में जिस सरल भाव से गोपियों के साथ क्रीड़ा की, जीवन की अन्य अवस्थाओं में भी उनका वह सरल स्वभाव नहीं छूटा। उनके जीवन की उस चिरस्मरणीय घटना की याद आती है, जिसका समझना अत्यन्त कठिन है। जब तक कोई पूर्ण ब्रह्मचारी और पवित्र स्वभाव का नहीं बनता, तब तक उसे इसके समझने की चेष्टा करना उचित नहीं। उम्र प्रेम के अत्यन्त अद्भुत विकास को, जो उस वृन्दावन की मधुर लीला में रूपक भाव से वर्णित हुआ है, प्रेमरूपी मदिरा के पान से जो उन्मत्त हुआ हो, उसको छोड़कर और कोई नहीं समझ सकता। कौन उन गोपियों को प्रेम से उत्पन्न विरह-यत्रणा के भाव को समझ सकता है, जो प्रेम आदर्शस्वरूप है, जो प्रेम प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता, जो प्रेम स्वर्ग की भी आकांक्षा नहीं करता, जो प्रेम इहलोक और परलोक की किसी भी वस्तु की कामना नहीं करता? और हे मित्रो, इसी गोपी-प्रेम के माध्यम से सगुण और निर्गुण ईश्वरवाद के संघर्ष का एकमात्र समाधान मिल सका है। हम जानते हैं, सगुण ईश्वर मनुष्य की उच्चतम धारणा है। हम यह भी जानते हैं कि दार्शनिक दृष्टि से समग्र जगद्व्यापी, समस्त ससार जिसकी अभिव्यक्ति है, उस निर्गुण ईश्वर में विश्वास ही स्वाभाविक है। पर साथ ही हम साकार वस्तु की कामना करते हैं, ऐसी वस्तु चाहते हैं, जिसको हम पकड़ सकें, जिसके चरणों पर अपने हृदय को उत्सर्ग कर सकें। इसलिए सगुण ईश्वर ही मनुष्य स्वभाव की उच्चतम धारणा है। किन्तु युक्ति इस धारणा से विस्मित रह

स्वल्प आदर्श जनय आदर्श पति आदर्श पिता सर्वोपरि आदर्श राजा राम का चरित्र हमारे सम्मुख महान् ऋषि वास्वीकि के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। महाकवि ने जिस भाषा में रामचरित का वर्णन किया है, उसकी अपेक्षा अधिक पावन प्राञ्जल मधुर वचन सरल भाषा ही नहीं सकती। और सीता के विषय में क्या कहा जाय। तुम संसार ने समस्त प्राचीन साहित्य को छान ढाँको और मैं तुमसे नि सकोच कहता हूँ कि तुम संसार के सभी साहित्य का भी मंथन कर सकते हो किन्तु उसमें से तुम सीता के समान दूसरा चरित्र नहीं निकाल सकते। सीता चरित्र अद्वितीय है। यह चरित्र सत्ता के लिए एक ही बार चित्रित हुआ है। राम तो कदाचित् अनेक हो गये हैं किन्तु सीता और नहीं हुईं। भारतीय स्त्रियों को ऐसा होना चाहिए, सीता उनके लिए आदर्श है। स्त्री चरित्र के बितने भारतीय आदर्श हैं वे सब सीता के ही चरित्र से उत्पन्न हुए हैं और समस्त आर्यावर्त भूमि में सहस्रों वर्षों से वे स्त्री-मुख्य-बालक की पूजा पा रही हैं। महामहिमासयी सीता स्वर्ग शुद्धता से भी शुद्ध धर्म तथा सहिष्णुता का सर्वोच्च आदर्श सीता सदा इसी भाव से पूजी आर्यो। जिन्होंने अविचलित भाव से ऐसे महाकुल का जीवन व्यतीत किया वही नित्य शास्त्री सदा शुद्धस्वभाव सीता आदर्श पत्नी सीता मनुष्य लोक की आदर्श देवकीक की भी आदर्श नारी पुष्प-चरित्र सीता सदा हमारी राष्ट्रीय देवी बनी रह्यी। हम सभी उनके चरित्र को मनी भाँति जानते हैं, इसलिए उनका विशेष वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। चाहे हमारे सब पुराण मष्ट हो कार्य यहाँ तक कि हमारे देह भी क्षुप्त हो जायें हमारी संस्कृत भाषा सदा के लिए काल जोत में क्षिप्त हो जाय किन्तु मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो जब तक भारत में अतिशय शान्ति भाषा बोलनेवाले पाँच भी हिनू रहेंगे तब तक सीता की कथा विद्यमान रहेगी। सीता का प्रवेश हमारी जाति की अस्ति-मग्ना में हो चुका है प्रत्येक हिन्दू नर-नारी के रक्त में सीता विराजमान है हम सभी सीता की सन्तान हैं। हमारी नारियों को आपुनिक भाषा में रंगने की जो चेष्टाएँ हो रही हैं यदि उन सब प्रयत्नों में उनको सीता-चरित्र के आदर्श से भ्रष्ट करन की चेष्टा होगी तो वे सब अमफल होंगे जैसा कि हम प्रतिदिन देखते हैं। भारतीय नारियाँ स सीता के चरम-चिह्नों का अनुसरण करके अपनी उन्नति की चेष्टा करनी होनी नहीं एकमात्र पद है।

उनके पदचात् हैं मयवान् भीष्टुष्य जानना भाव से पूरे जाते हैं और जो पुरुष के समान ही स्त्री के बन्धों व समान ही बुद्ध के परम प्रिय इष्ट देवता हैं। मेरा अभिप्राय उत्तम है जिन्हें मापनकार अनकार बह के भी वृत्त नहीं होते बलिष्ठ रहते हैं—

“अन्यान्य अवतार उस भगवान् के अग्र और फलस्वरूप है, किन्तु कृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं।”

और जब हम उनके विविध भाव-समन्वित चरित्र का अवलोकन करते हैं, तब उनके प्रति प्रयुक्त ऐसे विशेषणों से हमको आश्चर्य नहीं होता। वे एक ही स्वरूप में अपूर्व सन्यासी और अद्भुत गृहस्थ थे, उनमें अत्यन्त अद्भुत रजोगुण तथा शक्ति का विकास था और साथ ही वे अत्यन्त अद्भुत त्याग का जीवन वितारते थे। विना गीता का अध्ययन किये कृष्ण-चरित्र कभी समझ में नहीं आ सकता, क्योंकि अपने उपदेशों के वे आकारस्वरूप थे। प्रत्येक अवतार, जिसका प्रचार करने वे आये थे, उसके जीवित उदाहरण के रूप में अवतरित हुए। गीता के प्रचारक कृष्ण सदा भगवद्गीता के उपदेशों की माकार मूर्ति थे, वे अनासक्ति के उज्ज्वल उदाहरण थे। उन्होंने अपना सिंहासन त्याग दिया और कभी उसकी चिन्ता नहीं की। जिनके कहने ही से राजा अपने सिंहासनों को छोड़ देते थे, ऐसे समग्र भारत के नेता ने स्वयं राजा होना नहीं चाहा। उन्होंने वाल्यकाल में जिस सरल भाव से गोपियों के साथ क्रीडा की, जीवन की अन्य अवस्थाओं में भी उनका वह सरल स्वभाव नहीं छूटा। उनके जीवन की उस चिरस्मरणीय घटना की याद आती है, जिसका समझना अत्यन्त कठिन है। जब तक कोई पूर्ण ब्रह्मचारी और पवित्र स्वभाव का नहीं बनता, तब तक उसे इसके समझने की चेष्टा करना उचित नहीं। उस प्रेम के अत्यन्त अद्भुत विकास को, जो उस वृन्दावन की मधुर लीला में रूपक भाव से वर्णित हुआ है, प्रेमरूपी मदिरा के पान से जो उन्मत्त हुआ हो, उसको छोड़कर और कोई नहीं समझ सकता। कौन उन गोपियों को प्रेम से उत्पन्न विरह-यत्रणा के भाव को समझ सकता है, जो प्रेम आदर्शस्वरूप है, जो प्रेम प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता, जो प्रेम स्वर्ग की भी आकांक्षा नहीं करता, जो प्रेम इहलोक और परलोक की किसी भी वस्तु की कामना नहीं करता और हे मित्रो, इसी गोपी-प्रेम के माध्यम से सगुण और निर्गुण ईश्वरवाद के सघर्ष का एकमात्र समाधान मिल सका है। हम जानते हैं, सगुण ईश्वर मनुष्य की उच्चतम धारणा है। हम यह भी जानते हैं कि दार्शनिक दृष्टि से समग्र जगद्ब्यापी, समस्त ससार जिसकी अभिव्यक्ति है, उस निर्गुण ईश्वर में विश्वास ही स्वाभाविक है। पर साथ ही हम माकार वस्तु की कामना करते हैं, ऐसी वस्तु चाहते हैं, जिसको हम पकड़ सकें, जिसके चरणों पर अपने हृदय को उत्सर्ग कर सकें। इसलिए सगुण ईश्वर ही मनुष्य स्वभाव की उच्चतम धारणा है। किन्तु युक्ति इस धारणा से विस्मित रह



जाती है। यह वही अति प्राचीन प्राचीनतम समस्या है जिसका ब्रह्मसूत्रों में विचार किया गया है। बनबास के समय युधिष्ठिर के साथ द्रौपदी ने जिसका विचार किया है यदि एक समुच्च सम्पूर्ण क्याय सर्वसक्तिमान ईश्वर है तो इस नारकीय ससार का अस्तित्व क्यों है? उसने उसकी सृष्टि क्यों की? उस ईश्वर को महापक्षपाती कहना ही उचित है। इसकी किसी प्रकार मीमांसा नहीं होती। इसकी मीमांसा गोपियों के प्रेम के सम्बन्ध में जो तुम पढ़ते हो मात्र उचसे हो सकती है। वे कृष्ण के प्रति प्रयुक्त किसी विशेषण को भूना करती हैं वे यह जानने की भिन्ता नहीं करती कि कृष्ण सृष्टिकर्ता है, वे यह जानने की भिन्ता नहीं करती कि वह सर्वसक्तिमान है, वे यह जानने की भी भिन्ता नहीं करती कि वह सर्वसर्वबान है। वे केवल यही समझती हैं कि कृष्ण प्रेममय है यही उनके लिए ध्येय है। गोपियाँ कृष्ण को केवल कृन्नावन का कृष्ण समझती हैं। बहुत सेनाओं के नेता राजाधिराज कृष्ण उनके निकट सदा गोप ही थे।

न चर्न न चर्न न च धुम्बरी क्विन्ता वा जगतीत कामये ।

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे मक्ताक्षमिन्तारुतुकी त्वमि ॥

—हे जगतीश मैं बन बन क्विन्ता जगती धुम्बरी—कृष्ण भी नहीं चाहता है ईश्वर, आपके प्रति जन्मजन्मान्तरों में मेरी जड़तुकी भक्ति हो। यह जड़तुकी भक्ति यह निष्काम कर्म यह निरपेक्ष कर्तव्य-निष्ठा का आदर्श कर्म के इतिहास में एक नया अध्याय है। मानव-इतिहास में प्रथम बार भारतभूमि पर सर्वमेष्ठ अवतार भी कृष्ण के मूँह से पहले पढ़ने यह तत्त्व निकला वा। मम और प्रलोभनों के कर्म सदा के लिए बिना हो गये और मनुष्य-रूप में नरक-जय और स्वर्ग-मुख-योग के प्रलोभन होते हुए भी ऐसे सर्वोत्तम आदर्श का जन्मद्वय हुआ जैसे प्रेम प्रेम के निमित्त कर्तव्य कर्तव्य के निमित्त कर्म कर्म के निमित्त।

और यह प्रेम कैसा है? मैंने तुम लोगों से कहा है कि मोपी-प्रेम को समझना बड़ा कठिन है। हमारे बीच भी ऐसे मूलों का जनाब नहीं है जो भी कृष्ण के जीवन के ऐसे अति अपूर्व अघ के अद्भुत तात्पर्य को समझने में असमर्थ है। मैं पुनः कहता हूँ कि हमारे ही रक्त से उत्पन्न अनेक अपवित्र मूर्ख हैं जो मोपी-प्रेम का नाम सुनते ही मानो उसको अत्यन्त अपावन समझकर मम से दूर भाग जाते हैं। उनसे मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि पहले अपने मन को मुख करी और तुमको यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जिस इतिहासकार ने गोपियों के इस अद्भुत प्रेम का वर्णन किया है, वह आजन्म पवित्र मित्र्य मुझ व्यासपुत्र मुकेश्वर हैं। जब तक हृदय में स्वार्थगर्ता रहती तब तक मनबन्ध प्रेम असम्भव है। यह केवल इच्छावादी

है कि 'मैं आपको कुछ देता हूँ, भगवान् आप भी मुझको कुछ दीजिए।' और भगवान् कहते हैं, "यदि तुम ऐसा न भी करोगे, तो तुम्हारे मरने पर मैं तुम्हे देख लूंगा—चिरकाल तक तुम्हे जलाकर मारूँगा।" सकाम व्यक्ति की ईश्वर-धारणा ऐसी ही होती है। जब तक मस्तिष्क में ऐसे भाव रहेगे, तब तक गोपियों की प्रेमजनित विरह की उन्मत्तता मनुष्य किस प्रकार समझेंगे। 'एक बार, केवल एक ही बार यदि उन मधुर अघरो का चुम्बन प्राप्त हो। जिसका तुमने एक बार चुम्बन किया है, चिरकाल तक तुम्हारे लिए उसकी पिपासा बढ़ती जाती है, उसके सकल दुःख दूर हो जाते हैं, तब अन्यान्य विषयों की आसक्ति दूर हो जाती है, केवल तुम्ही उस समय प्रीति की वस्तु हो जाते हो।'<sup>१</sup>

पहले काचन, नाम तथा यश और क्षुद्र मिथ्या ससार के प्रति आसक्ति को छोड़ो। तभी, केवल तभी तुम गोपी-प्रेम को समझोगे। यह इतना विशुद्ध है कि बिना सब कुछ छोड़े इसको समझने की चेष्टा करना ही अनुचित है। जब तक अन्तःकरण पूर्ण रूप से पवित्र नहीं होता, तब तक इसको समझने की चेष्टा करना वृथा है। हर समय जिनके हृदय में काम, धन, यशोलिप्सा के वुलबुले उठते हैं, ऐसे लोग गोपी-प्रेम की आलोचना करने तथा समझने का साहस करते हैं। कृष्ण-अवतार का मुख्य उद्देश्य यही गोपी-प्रेम की शिक्षा है, यहाँ तक कि गीता का महान् दर्शन भी उस प्रेमोन्मत्तता की बराबरी नहीं कर सकता। क्योंकि गीता में साधक को धीरे धीरे उसी चरम लक्ष्य मुक्ति के साधन का उपदेश दिया गया है, किन्तु इसमें रसास्वाद की उन्मत्तता, प्रेम की मदोन्मत्तता विद्यमान है, यहाँ गुरु और शिष्य, शास्त्र और उपदेश, ईश्वर और स्वर्ग सब एकाकार हैं, भय के भाव का चिह्न-मात्र नहीं है, सब बह गया है—शेष रह गयी है केवल प्रेमोन्मत्तता। उस समय ससार का कुछ भी स्मरण नहीं रहता, भक्त उस समय ससार में उसी कृष्ण, एकमात्र उसी कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखता, उस समय वह समस्त प्राणियों में कृष्ण के ही दर्शन करता है, उसका मुँह भी उस समय कृष्ण के ही समान दीखता है, उसकी आत्मा उस समय कृष्णमय हो जाती है। यह है कृष्ण की महिमा।

छोटी छोटी बातों में समय वृथा मत गँवाओ, उनके जीवन के जो मुख्य चरित्र हैं, जो तात्त्विक अंश हैं, उन्हींका सहारा लेना चाहिए। कृष्ण के जीवन-चरित्र में बहुत से ऐतिहासिक अन्तर्विरोध मिल सकते हैं, कृष्ण के चरित्र में बहुत से प्रक्षेप हो सकते हैं। ये सभी सत्य हो सकते हैं, किन्तु फिर भी उस समय समाज में जो एक

१ सुरतवर्धन शोकनाशन स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।

इतररागविस्मरण नृणा वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥ श्रीमद्भागवत ॥

अपूर्व तये भाव का उदय हुआ था उसका कुछ आभास अबदय था। अन्ध किसी भी महापुरुष या पैगम्बर के जीवन पर विचार करने पर यह बात पड़ता है कि वह पैगम्बर अपने पूर्ववर्ती कितने ही भावों का विकास भाव है। हम देखते हैं कि उसने अपने देश में यहाँ तक कि उस समय वैसी शिक्षा प्रचलित थी केवल उसीका प्रचार किया है। यहाँ तक कि उस महापुरुष के अस्तित्व पर भी सन्देह हो सकता है, किन्तु मैं भुलौती देता हूँ कि कोई यह धारित कर दे कि कृष्ण के निष्काम कर्म निरपेक्ष कर्तव्य निष्ठा और निष्काम प्रेम-तत्त्व के ये उपदेश संसार में मौलिक आधिष्ठातृ नहीं हैं। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो यह अबदय स्वीकार करना पड़ेगा कि किसी एक व्यक्ति ने निरुचय ही इन तत्त्वों को प्रस्तुत किया है। यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि ये तत्त्व किसी दूसरे मनुष्य से लिये गये हैं। कारण यह कि कृष्ण के उत्पन्न होने के समय सर्वसाधारण में इन तत्त्वों का प्रचार नहीं था। भगवान् भी कृष्ण ही इनके प्रथम प्रचारक हैं उनके दिव्य वेदव्यास ने पूर्वोक्त तत्त्वों का साधारण जनों में प्रचार किया। ऐसा श्रेष्ठ आदर्श और कमी अहित नहीं हुआ। हम उनके ग्रन्थ में गोपीजननन्दन कृष्णचन्द्र-विहारी से और कोई उच्चतर आदर्श नहीं पाते। जब तुम्हारे हृदय में इस सम्मत्ता का प्रवेश होना जब तुम भाव्यकृती गोपियों के भाव को समझोगे तभी तुम जानोगे कि प्रेम क्या वस्तु है। जब समस्त संसार तुम्हारी दृष्टि से अन्तर्धान हो जायेगा जब तुम्हारे हृदय में और कोई कामना नहीं रहेगी जब तुम्हारा चित्त पूर्वस्व से मुक्त हो जायेगा अथवा कोई कर्म न होना यहाँ तक कि जब तुममें सत्त्वानुसन्धान की वासना भी नहीं रहेगी तभी तुम्हारे हृदय में सच्च प्रेमोन्मत्ता का आधिष्ठातृ होना तभी तुम गोपियों की जनक अहंशुकी प्रेम-भक्ति की महिमा समझोगे। यही कर्म है। यदि तुमको यह प्रेम भिन्ना तो सब कुछ भिन्न गया।

इस बार हम नीचे की तर्कों में प्रवेश करते हुए पीता-प्रचारक कृष्ण की विशेषता करेंगे। भारत में इस समय कितने ही लोगों में ऐसी भ्रष्टा विचारधारा पड़ती है, जो अपने के बारे पाकी जोतनेवालों की सी होती है। हममें से बहुतों की यह धारणा है कि श्री कृष्ण का गोपियों के साथ प्रेमकीला करना बड़ी ही अटकनेवाली बात है। यूरोप के लोग भी इसे पसन्द नहीं करते। अमुक पवित्र इस गोपी-प्रेम को अच्छा नहीं समझते अतएव अबदय गोपियों को बहा से। बिना यूरोप के छाहनों के अनुमोदन के कृष्ण कैसे टिक सकते हैं? कदापि नहीं टिक सकते। महाभारत में वो-एक स्वानों को छोड़कर, वे भी जैसे उत्सुकानीय नहीं गोपियों का प्रसंग तो है ही नहीं। केवल त्रिपरी की प्रार्थना में और सिंधुपाक-वच के समय सिंधुपाक की वक्तृता में कृष्णचन्द्र का वर्णन आया है। ये सब प्रयोग अर्थ हैं।

यूरोप के साहब लोग जिसको नहीं चाहते, वह सब फेंक देना चाहिए। गोपियों का वर्णन, यहाँ तक कि कृष्ण का वर्णन भी प्रक्षिप्त है। जो लोग ऐसी घोर वाणिज्य-वृत्ति के हैं, जिनके धर्म का आदर्श भी व्यवसाय ही से उत्पन्न हुआ है, उनका विचार यही है कि वे इस ससार में कुछ करके स्वर्ग प्राप्त करेंगे। व्यवसायी सूद दर सूद चाहते हैं, वे यहाँ ऐसा कुछ पुण्य-सचय करना चाहते हैं, जिसके फल से स्वर्ग में जाकर सुख-भोग करेंगे। इनके धर्ममत में गोपियों के लिए अवश्य स्थान नहीं है। अब हम उस आदर्श-प्रेमी श्री कृष्ण का वर्णन छोड़कर और भी नीचे की तह में प्रवेश करके गीता-प्रचारक श्री कृष्ण की विवेचना करेंगे। यहाँ भी हम देखते हैं कि गीता के समान वेदों का भाष्य कभी नहीं बना है और बनेगा भी नहीं। श्रुति अथवा उपनिषदों का तात्पर्य समझना बड़ा कठिन है, क्योंकि नाना भाष्यकारों ने अपने अपने मतानुसार उनकी व्याख्या करने की चेष्टा की है। अन्त में जो स्वयं श्रुति के प्रेरक है, उन्हीं भगवान् ने आविर्भूत होकर गीता के प्रचारक रूप से श्रुति का अर्थ समझाया और आज भारत में उस व्याख्या-प्रणाली की जैसी आवश्यकता है, सारे ससार में इसकी जैसी आवश्यकता है, वैसी किसी और वस्तु की नहीं। यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि परवर्ती शास्त्र-व्याख्याता गीता तक की व्याख्या करने में बहुधा भगवान् के वाक्यों का अर्थ और भाव-प्रवाह नहीं समझ सके। गीता में क्या है और आधुनिक भाष्यकारों में हम क्या देखते हैं? एक अद्वैतवादी भाष्यकार ने किसी उपनिषद् की व्याख्या की, जिसमें बहुत से द्वैतभाव के वाक्य हैं। उसने उनको तोड़-मरोड़कर कुछ अर्थ ग्रहण किया और उन सबका अपनी व्याख्या के अनुरूप मनमाना अर्थ लगा लिया। फिर द्वैतवादी भाष्यकार ने भी व्याख्या करनी चाही, उसमें अनेक अद्वैतमूलक अर्थ हैं, जिनकी खींचतान उसने उनसे द्वैतमूलक अर्थ ग्रहण करने के लिए की। परन्तु गीता में इस प्रकार के किसी अर्थ के बिगाड़ने की चेष्टा तुमको नहीं मिलेगी। भगवान् कहते हैं, ये सब सत्य हैं, जीवात्मा धीरे धीरे स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से अति सूक्ष्म सीढियों पर चढ़ती जाती है, इस प्रकार क्रमशः वह उस चरम लक्ष्य अनन्त पूर्णस्वरूप को प्राप्त होती है। गीता में इसी भाव को समझाया गया है, यहाँ तक कि कर्मकांड भी गीता में स्वीकृत हुआ है और यह दिखलाया गया है कि यद्यपि कर्मकांड साक्षात् मुक्ति का साधन नहीं है, किन्तु गौण भाव से मुक्ति का साधन है, तथापि वह सत्य है, मूर्ति-पूजा भी सत्य है, नव प्रकार के अनुष्ठान और क्रिया-कर्म भी सत्य हैं, केवल एक विषय पर ध्यान रखना होगा—वह है चित्त की शुद्धि। यदि हृदय शुद्ध और निष्कपट हो, तभी उपासना ठीक उतरती है और हमें चरम लक्ष्य तक पहुँचा देती है। ये विभिन्न

अपूर्व गये भाव का उदय हुआ था उसका कुछ आचार ब्रह्म था। अन्य किसी भी महापुरुष या पैगम्बर के जीवन पर विचार करने पर यह जान पड़ता है कि वह पैगम्बर अपने पूर्ववर्ती कितने ही भावों का विकास भाव है। हम देखते हैं कि उसने अपने देश में यहाँ तक कि उस समय वैसी शिक्षा प्रचलित थी केवल उसीका प्रचार किया है। यहाँ तक कि उस महापुरुष के अस्तित्व पर भी संदेह ही सकता है, किन्तु मैं चुनौती देता हूँ कि कोई यह साबित कर दे कि कृष्ण के निष्काम कर्म निरपेक्ष कर्तव्य-निष्ठा और निष्काम प्रेम-तत्त्व के ये उपदेश सत्तार में मौलिक आधिष्ठाक नहीं है। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो यह अबस्य स्वीकार करना पड़ेगा कि किसी एक व्यक्ति ने निश्चय ही इन तत्त्वों को प्रस्तुत किया है। यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि ये तत्त्व किसी दूसरे मनुष्य से किये गये हैं। कारण यह कि कृष्ण के उत्पन्न होने के समय सर्वसाधारण में इन तत्त्वों का प्रचार नहीं था। समयान् भी कृष्ण ही इनके प्रथम प्रचारक है। उनके सिद्ध वेदव्यास ने पूर्वोक्त तत्त्वों का साधारण वर्गों में प्रचार किया। ऐसा स्पष्ट आदर्श और कभी विहित नहीं हुआ। हम उनके प्रथम में योपीवनवल्कल वृन्दावन-विहारी से और कोई अन्य तर आदर्श नहीं पाते। जब तुम्हारे हृदय में इस उत्कृष्टता का प्रवेश होना जब तुम साम्यवर्ती गोपियों के भाव को समझोगे तभी तुम जानोगे कि प्रेम क्या वस्तु है। जब समस्त सत्तार तुम्हारी दृष्टि से अन्तर्गत हो जायेगा जब तुम्हारे हृदय में और कोई कामना नहीं रहेगी जब तुम्हारा चित्त पूर्णरूप से शुद्ध हो जायेगा अन्य कोई कथन न होना यहाँ तक कि जब तुममें सत्यानुसन्धान की वासना भी नहीं रहेगी तभी तुम्हारे हृदय में उस प्रेमोत्कृष्टता का आधिष्ठाक होना तभी तुम गोपियों की अनन्त अहोभुकी प्रेम-भक्ति की महिमा समझोगे। यही उद्देश्य है। यदि तुमको यह प्रेम मिला तो सब कुछ मिला गया।

इस बार हम नीचे की तर्हों में प्रवेश करते हुए गीता-अध्यायक कृष्ण की विशेषता करेंगे। भारत में इस समय कितने ही लोगों में ऐसी केप्टा दिक्तामी पड़ती है, जो जोड़े के भावे बाड़ी जीतनेवालों की ही होती है। हममें से बहुतों की यह धारणा है कि श्री कृष्ण का गोपियों के साथ प्रेमसीका करना बड़ी ही लटकनेवाली बात है। यूरोप के लोग भी इसे पसन्द नहीं करते। अमुक पंडित इस योपी-धर्म को अच्छा नहीं समझते अतएव अबस्य गोपियों को बहा हो। बिना यूरोप के माहवा के अनुमोदन के कृष्ण कैसे टिक सकते हैं? कदापि नहीं टिक सकते। महाभारत में बी-गक स्वार्थों को छोड़कर, वे भी वैध उत्कृष्टतामयी नहीं गोपियों का प्रेम ही ही नहीं। वैधत हीतरी की प्रार्थना से और विष्णुपाल-वप के समय विष्णुपाल की वक्तृता में वृन्दावन का वर्णन आया है। वे सब प्रयोग अर्थ हैं।

हमारे शाक्यमुनि गीतम हैं। उनके उपदेशों और प्रचार-कार्य से तुम सभी अवगत हो। हम उनको ईश्वरावतार समझकर उनकी पूजा करते हैं, नैतिकता का इतना बड़ा निर्भीक प्रचारक समार मे और उत्पन्न नहीं हुआ, कर्मयोगियों मे सर्वश्रेष्ठ स्वयं कृष्ण ही मानो शिष्यरूप से अपने उपदेशों को कार्यरूप मे परिणत करने के लिए उत्पन्न हुए। पुन वही वाणी सुनाई दी, जिसने गीता मे शिक्षा दी थी, स्वल्पमप्यस्य घर्मस्य त्रायते महतो भयात्। (गीता २।४०) — 'इस घर्म का थोडा सा अनुष्ठान करने पर भी महाभय से रक्षा होती है।' स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परा गतिम्। (गीता ९।३२) — 'स्त्री, वैश्य और शूद्र तक परमगति को प्राप्त होते हैं। गीता के वाक्य, श्री कृष्ण की वचन के समान गम्भीर और महती वाणी, सबके वचन, सबकी शृंखला तोड देती है और सभी को उस परम पद पाने का अधिकारी कर देती है।

इहैव तैर्जित सर्गो येषा साम्ये स्थित मनः।

निर्दोष हि सम ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिता ॥

०

(गीता ५।१९)

— 'जिनका मन साम्य भाव मे अवस्थित है, उन्होंने यही सारे ससार को जीत लिया है। ब्रह्म समस्वभाव और निर्दोष है, इसलिए वे ब्रह्म मे ही अवस्थित हैं।'

सम पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।

न हिनस्त्यात्मनात्मान ततो याति परा गतिम् ॥

(गीता १३।२८)

— 'परमेश्वर को सर्वत्र तुल्य रूप से अवस्थित देखकर ज्ञानी आत्मा से आत्मा की हिंसा नहीं करता, इसलिए वह परम गति को प्राप्त होता है।'

गीता के उपदेशों के जीते-जागते उदाहरणस्वरूप, गीता के उपदेशक दूसरे रूप मे पुन इस मर्त्य लोक मे पधारें, जिससे जनता द्वारा उसका एक कण भी कार्य-रूप मे परिणत हो सके। ये ही शाक्यमुनि हैं। ये दीन-दु खियों को उपदेश देने लगे। सर्वसाधारण के हृदय तक पहुँचने के लिए देवभाषा संस्कृत को भी छोड ये लोकभाषा मे उपदेश देने लगे। राजसिंहासन को त्यागकर ये दु खी, गरीब, पतित, भिखमगो के साथ रहने लगे। इन्होंने दूसरे राम के समान चाडाल को भी छाती से लगा लिया।

तुम सभी उनके महान् चरित्र और अद्भुत प्रचार-कार्य को जानते हो। किन्तु इस प्रचार-कार्य मे एक भारी श्रुति थी, जिसके लिए हम आज तक दु ख

उपासना-प्रणालियाँ सत्य हैं, क्योंकि यदि वे सत्य न होतीं तो उनकी सृष्टि ही क्यों हुई? विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय कुछ पाबन्दी एवं दृष्ट लोगों द्वारा नहीं बनाये गये हैं, और न उन्होंने मन के मोम से इन धर्मों और सम्प्रदायों की सृष्टि की है, बल्कि कुछ व्यापक लोगों का मत है। वास्तविकता से उनकी व्याख्या कितनी ही मुक्तियुक्त क्यों न प्रतीत हो पर यह बात सत्य नहीं है, इनकी सृष्टि इस तरह नहीं हुई। बीबलमा की स्वामाजिक आवश्यकता के लिए इन सबका अस्तित्व हुआ है। विभिन्न धर्मियों के मनुष्यों की धर्म-निपासा को परिष्कृत करने के लिए इनका अस्तित्व हुआ है। इसलिए तुम्हें इनके विरुद्ध विरोध करने की आवश्यकता नहीं। जिस दिन इनकी आवश्यकता नहीं रहेगी उस दिन उस आवश्यकता के अभाव के साथ-साथ इनका भी मोम हो जायगा। पर जब तक उनकी आवश्यकता रहेगी तब तक तुम्हारी आलोचना और तुम्हारी शिक्षा के बावजूद ये अवश्य विद्यमान रहेंगे। ठरकार और बलूक के खोर से तुम संसार को धून में नहा दे सकते हो किन्तु जब तक मूर्तियों की आवश्यकता रहेगी तब तक मूर्ति-पूजा अवश्य रहेगी। ये विभिन्न अनुष्ठान-प्रणालियाँ और धर्म के विभिन्न उपान अवश्य रहेंगे और हम भगवान् की इच्छा के उपदेश से समझ सकते हैं कि इनकी क्या आवश्यकता है।

इसके बाद ही भारतीय इतिहास का एक सोच-बनक सम्प्रदाय शुरू होता है। हम पीता में भी भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के विरोध के कोलाहल की शुरुआत होती हुई आबाज सुन पाते हैं और देखते हैं कि सम्भव के वे अस्मृत प्रचारक भगवान् की इच्छा बीच में पकड़कर विरोध को हटा रहे हैं। वे कहते हैं, धार्य जगत् मुझमें उसी तरह गुंजा हुआ है, जिस तरह ताने में मणि गुंजी रहती है।" साम्प्रदायिक झगड़ों की शुरुआत से मुतायी विनेवासी भीमी आबाज हम सभी से सुन रहे हैं। सम्भव है कि भगवान् के उपदेश से वे झगड़े कुछ देर के लिए रुक गये हों तथा सम्भव और शान्ति का संचार हुआ हो किन्तु यह विरोध फिर उत्पन्न हुआ। केवल धर्ममत ही पर नहीं सम्भवतः धर्म के व्यापार पर भी यह विवाद चलता रहा—हमारे समाज के दो प्रबल अंग ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों राजाओं तथा पुण्डितों के बीच विवाद आरम्भ हुआ था। और एक हजार वर्ष तक जिस विवाद तरंग ने समस्त भारत को घेरती रर दिया था उसके सर्वोच्च विप्लव पर हम एक और महान्द्विगम मूर्ति को देखते हैं और वे

१ अतः वरतरं नाम्यद्विर्द्विदस्ति धर्मजय ।

अथ सर्वमिदं प्रोक्तं सूत्रे नजिगथा इव ॥ पीता ७।७ ॥

हमारे शाक्यमुनि गौतम हैं। उनके उपदेशों और प्रचार-कार्य से तुम सभी अवगत हो। हम उनको ईश्वरावतार समझकर उनकी पूजा करते हैं, नैतिकता का इतना बड़ा निर्मीक प्रचारक ससार में और उत्पन्न नहीं हुआ, कर्मयोगियों में सर्वश्रेष्ठ स्वयं कृष्ण ही मानो शिष्यरूप से अपने उपदेशों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए उत्पन्न हुए। पुन वही वाणी सुनाई दी, जिसने गीता में शिक्षा दी थी, स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। (गीता २।४०) — 'इस धर्म का थोड़ा सा अनुष्ठान करने पर भी महाभय से रक्षा होती है।' स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परा गतिम्। (गीता ९।३२) — 'स्त्री, वैश्य और शूद्र तक परमगति को प्राप्त होते हैं। गीता के वाक्य, श्री कृष्ण की वज्र के समान गम्भीर और महती वाणी, सबके वन्धन, सबकी शृंखला तोड़ देती है और सभी को उस परम पद पाने का अधिकारी कर देती है।

इहैव तैर्जित सर्गो धेषा साम्ये स्थित मन ।

निर्दोष हि सम ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिता ॥

•

(गीता ५।१९)

— 'जिनका मन साम्य भाव में अवस्थित है, उन्होंने यही सारे ससार को जीत लिया है। ब्रह्म समस्वभाव और निर्दोष है, इसलिए वे ब्रह्म में ही अवस्थित हैं।'

सम पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।

न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥

(गीता १३।२८)

— 'परमेश्वर को सर्वत्र तुल्य रूप से अवस्थित देखकर ज्ञानी आत्मा से आत्मा की हिंसा नहीं करता, इसलिए वह परम गति को प्राप्त होता है।'

गीता के उपदेशों के जीते-जागते उदाहरणस्वरूप, गीता के उपदेशक दूसरे रूप में पुन इस मर्त्य लोक में पधारे, जिससे जनता द्वारा उसका एक कण भी कार्य-रूप में परिणत हो सके। ये ही शाक्यमुनि हैं। ये दीन-दु खियों को उपदेश देने लगे। सर्वसाधारण के हृदय तक पहुँचने के लिए देवभाषा संस्कृत को भी छोड़ ये लोकभाषा में उपदेश देने लगे। राजसिंहासन को त्यागकर ये दु खी, गरीब, पतित, भिखमगो के साथ रहने लगे। इन्होंने दूसरे राम के समान चाडाल को भी छाती से लगा लिया।

तुम सभी उनके महान् चरित्र और अद्भुत प्रचार-कार्य को जानते हो। किन्तु इस प्रचार-कार्य में एक भारी त्रुटि थी, जिसके लिए हम आज तक दु ख



भोग रहे हैं। भगवान् बुद्ध का कुछ पोप नहीं है। उनका चरित्र परम विपुल और उज्ज्वल है। लेख का विषय है कि बौद्ध धर्म के प्रचार से जो विभिन्न असम्बन्ध और अविश्वसित जातियाँ धर्म में भुमने लगीं व बुद्धधर्म के उच्च आदर्शों का ठीक अनुसरण न कर सकीं। इन जातियों में नागा प्रकार के कुसुंस्कार और बीयरस उपामना-पद्धतियाँ थीं। उनके झुंड के बुद्ध आर्यों के समाज में घुसने लगे। कुछ समय के लिए ऐसा प्रतीत हुआ कि वे सम्बन्ध बन गये किन्तु एक ही घटायीं में उन्होंने अपने सर्प मूत प्रेत आदि निराम लिये जिनकी उपासना उनके पूर्वज किया करते थे और इस प्रकार सारा भारत कुसुंस्कारों का लीलाजेन बनकर और ध्वनति को पहुँचा। पहले बौद्ध प्राप्तिहिंसा की निम्ना करते हुए वैदिक यज्ञों के बोर विरोधी हो गये थे। उस समय बर बर इन यज्ञों का अनुष्ठान होता था। हर एक बर पर यज्ञ के लिए आग जकटी थी—बस उपासना के लिए और कुछ ठाट-बाट न था। बौद्ध धर्म के प्रचार से इन यज्ञों का कोप हो गया। उनकी बगह बड़े बड़े ऐम्बमयुक्त मन्दिर, मडकीकी अनुष्ठान-पद्धतियाँ छानबार पुपेहित तथा कर्तमान काक में भारत में और जो कुछ बिलामी देता है सबका आधिर्भाव हुआ। किन्तु ही ऐसे आधुनिक पंडितों ने जिनमें अधिक ज्ञान की अपेक्षा की जाता है पन्था को पढ़ने से यह निरित होता है कि बुद्ध से ब्राह्मणों की मूर्ति-पूजा उठा ली थी। मुझे यह पडकर हँसी आ जाती है। वे नहीं जानते कि बौद्ध धर्म ही ने भारत में ब्राह्मण-धर्म और मूर्ति-पूजा की सृष्टि की थी।

एक ही दो बर्ष हुए, स्व-निर्वाह एक प्रतिष्ठित पुरय में एक पुस्तक प्रकाशित की। उसमें उन्होंने लिखा कि उन्हें ईसा मसीह के एक अनुमूल जीवन चरित्र का पता लगा है। उसी पुस्तक में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है कि ईसा धर्म लिखाई ब्राह्मण के पास आभास की के मन्दिर में बसे थे किन्तु उनकी संकीर्णता और मूर्ति-पूजा से तग आकर वे वही से विष्णु के कामाओं के पास गये और वही से निडर हारकर स्वरेष लीटे। जिन्हें भारत के इतिहास का थोड़ा सा ज्ञान है व इमी विवरण से जान सकते हैं कि पुस्तक में आघोपान्त कीमा उक्त-ग्रन्थ भरत हुआ है। क्माकि जयभाष की का मन्दिर तो एक प्राचीन बौद्ध मन्दिर है। हमने हमका एक बन्ध्याय बौद्ध मन्दिरों को हिन्दू मन्दिर बना लिया। इस प्रकार के कार्य हम इस समय भी बहुत करते पन्ने। सही जयभाष का इतिहास है और उस समय वही एक ही ब्राह्मण न था किन्तु भी कहा जा रहा है कि ईसा मसीह वही ब्राह्मणों से उपदेश देने के लिए गये व। हमारे विषय में म्मी पुरातत्ववेत्ता की गेमी ही राय है।

इस प्रकार प्राथिमान के प्रति दया में मिया बुद्ध आचारविष्ठ धर्म और

नित्य आत्मा के अस्तित्व या अनस्तित्व सम्बन्धी बाल की खाल निकालनेवाले विचारों के होते हुए भी समग्र बौद्ध धर्मरूपी प्रासाद चूर चूर होकर गिर गया और उसका खँडहर बड़ा ही वीभत्स है। बौद्ध धर्म की अवनति से जिन घृणित आचारों का आविर्भाव हुआ, उनका वर्णन करने के लिए मेरे पास न समय है, न इच्छा ही। अति कुत्सित अनुष्ठान-पद्धतियाँ, अत्यन्त भयानक और अश्लील ग्रन्थ—जो मनुष्यों द्वारा न तो कभी लिखे गये थे, और न मनुष्य ने जिनकी कभी कल्पना तक की थी, अत्यन्त भीषण पाशव अनुष्ठान-पद्धतियाँ, जो और कभी धर्म के नाम से प्रचलित नहीं हुई थी—ये सभी गिरे हुए बौद्ध धर्म की सृष्टि हैं।

परन्तु भारत को जीवित रहना ही था, इसीलिए पुनः भगवान् का आविर्भाव हुआ। जिन्होंने कहा था, “जब कभी धर्म की हानि होती है, तभी मैं आता हूँ”—वे फिर से आये। इस बार दक्षिण देश में भगवान् का आविर्भाव हुआ। उस ब्राह्मण युवक का, जिसके बारे में कहा गया है कि उसने सोलह वर्ष की उम्र में ही अपनी सारी ग्रन्थ-रचना समाप्त की थी, उसी अद्भुत प्रतिभाशाली शकराचार्य का अम्युदय हुआ। इस सोलह वर्ष के बालक के लेखों से आधुनिक सभ्य ससार विस्मित हो रहा है, वह अद्भुत बालक था। उसने सकल्प किया था कि समग्र भारत को उसके प्राचीन विशुद्ध मार्ग में ले जाऊँगा। पर यह कार्य कितना कठिन और विशाल था, इसका विचार भी करो। उस समय भारत की जैसी अवस्था थी, इसका भी तुम लोगों को दिग्दर्शन कराता हूँ। जिन भीषण आचारों का सुधार करने को तुम लोग अग्रसर हो रहे हो, वे उसी अघ पतन के युग के फल हैं। तातार, वलूची आदि भयानक जातियों के लोग भारत में आकर बौद्ध बने और हमारे साथ मिल गये। अपने राष्ट्रीय आचारों की भी वे साथ लाये। इस तरह हमारा राष्ट्रीय जीवन अत्यन्त भयानक पाशव आचारों से भर गया। उक्त ब्राह्मण युवक को बौद्धों से विरासत में यही मिला था और उसी समय से अब तक भारत भर में इसी अघ पतित बौद्ध धर्म पर वेदान्त की पुनर्विजय का कार्य सम्पन्न हो रहा है। अब भी यही काम जारी है, अब भी उसका अन्त नहीं हुआ। महा-दार्शनिक शकर ने आकर दिखलाया कि बौद्ध धर्म और वेदान्त के साराग में विशेष अन्तर नहीं है। किन्तु उनके शिष्य अपने आचार्य के उपदेशों का मर्म न समझ हीन हो गये और आत्मा तथा ईश्वर का अस्तित्व अस्वीकार करके नास्तिक हो गये। शकर ने यही दिखलाया और तब सभी बौद्ध अपने प्राचीन धर्म का अवलम्बन करने लगे। पर वे उन अनुष्ठानों के आदी बन गये थे। इन अनुष्ठानों के लिए क्या किया जाय, यह कठिन समस्या उठ खड़ी हुई।

उन मतिमान रामानुज का सम्मुख हुआ। संकर की प्रतिभा प्रखर थी किन्तु उनका हृदय रामानुज के समान उदार नहीं था। रामानुज का हृदय संकर की अपेक्षा अधिक विस्तार था। उन्होंने पदचरित्तों की पीड़ा का अनुभव किया और उनसे सहानुभूति की। उस समय की प्रचलित अनुष्ठान-पद्धतियों में उन्होंने यथासक्ति सुधार किया और नयी अनुष्ठान-पद्धतियों नयी उपासना-प्रणालियों की सृष्टि उन लोगों के लिए की जिनके लिए वे अत्यावश्यक थी। इसीके साथ साथ उन्होंने ब्राह्मण से केकर चाम्पारण तक सबके लिए सर्वोच्च आध्यात्मिक उपासना का द्वार खोल दिया। यह था रामानुज का कार्य। उनके कार्य का प्रभाव चारों ओर फैलने लगा उत्तर भारत तक उसका प्रसार हुआ वहाँ भी कई आचार्य इसी तरह कार्य करने लगे किन्तु यह बहुत बेर में मुसलमानों के शासन-काल में हुआ। उत्तर भारत के इन अपेक्षाहीन आधुनिक आचार्यों में से चैतन्य सर्वश्रेष्ठ हुए। रामानुज के समय से धर्म-प्रचार की एक विशेषता की ओर ध्यान दो—उस से धर्म का द्वार सर्वसाधारण के लिए खुला रहा। संकर के पूर्ववर्ती आचार्यों का यह पैसा मूल मन्त्र था रामानुज के परवर्ती आचार्यों का भी यह पैसा ही मूल मन्त्र रहा। मैं नहीं जानता कि छोट संकर को अनुहार मत के पोषक क्यों कहते हैं। उनके सिने ग्रन्थों में ऐसा कुछ भी नहीं मिलता जो उनकी संकीर्णता का परिचय दे। जिस तरह भगवान् बुद्धदेव के उपदेश उनके शिष्यों के हृदय बिगाड़ गये हैं, उसी तरह संकराचार्य के उपदेशों पर संकीर्णता का जो दोष क्लामा जाता है, सम्भवतः वह उनकी शिक्षा के कारण नहीं बरन् उनके शिष्यों की असोम्यता के कारण है। उत्तर भारत के महान् सत चैतन्य गोपियों के प्रेमोन्मत्त मान के प्रतिनिधि वे। चैतन्यदेव स्वयं एक ब्राह्मण थे उस समय के एक प्रसिद्ध नैययिक बंध में उनका जन्म हुआ था। वे न्याय के अध्यापक थे तर्क हाथ सबको परास्त करते थे—यही उन्होंने जन्म से जीवन का सम्भवतः आदर्श समझ रखा था। किसी महापुरुष की कृपा से इनका सम्पूर्ण जीवन बदल गया। उस इच्छीने बार विवाद तर्क न्याय का अध्यापन सब कुछ छोड़ दिया। संसार से भक्ति के जितने बड़े बड़े आचार्य हुए हैं प्रेमोन्मत्त चैतन्य उनमें से एक श्रेष्ठ आचार्य हैं। उनकी भक्ति-तरंग सारे बंगाल में फैल गयी जिससे सबके हृदय को शान्ति मिली। उनके प्रेम की सीमा न थी। लाम्बू, बसाम्बू, हिल्डू, मुसलमान पवित्र अपवित्र बेल्या पतिव—सभी उनके प्रेम के भागी थे वे सब पर दया रखते थे। यद्यपि काल के प्रभाव से सभी अवतति को प्राप्त होते हैं और उनका चलाया हुआ सम्प्रदाय और अवतति की दसा को पहुँच गया है। फिर भी आज तक वह पतिव पूर्वक आविष्कृत पतिव किसी भी समाज में जिनका स्थान नहीं है ऐसे लोगों का

आश्रयस्थान है। परन्तु माय ही सत्य के लिए मुझे न्वीकार करना ही होगा कि दार्शनिक सम्प्रदायो मे ही हम अद्भुत उदार भाव देखते है। गकर-मतावलम्बी कोई भी यह वात स्वीकार नही करेगा कि भारत के विभिन्न सम्प्रदायो मे वास्तव मे कोई भेद है, किन्तु जाति-भेद के विषय मे गकर अत्यन्त सकीर्णता का भाव रखते थे। इसके विपरीत, प्रत्येक वैष्णवाचार्य मे हम जातिविषयक प्रश्नो की शिक्षा के बारे मे अद्भुत उदारता देखते है, जब कि उनमे धार्मिक प्रश्नो के विषय मे अत्यन्त सकीर्णता पाते है।

एक का था अद्भुत मस्तिष्क, दूसरे का था विशाल हृदय। अब एक ऐसे अद्भुत पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, जिसमे ऐसा ही हृदय और मस्तिष्क दोनो एक साथ विराजमान हो, जो गकर के प्रतिभा-सम्पन्न मस्तिष्क एव चैतन्य के अद्भुत, विशाल, अनन्त हृदय का एक ही साथ अधिकारी हो, जो देखे कि सब सम्प्रदाय एक ही आत्मा, एक ही ईश्वर की शक्ति से चालित हो रहे है और प्रत्येक प्राणी मे वही ईश्वर विद्यमान है, जिसका हृदय भारत मे अथवा भारत के बाहर दरिद्र, दुर्बल, पतित सबके लिए द्रवित हो, लेकिन साथ ही जिसकी विशाल बुद्धि ऐसे महान् तत्त्वो की परिकल्पना करे, जिनसे भारत मे अथवा भारत के बाहर सब विरोधी सम्प्रदायो मे समन्वय साधित हो और इस अद्भुत समन्वय द्वारा वह एक हृदय और मस्तिष्क के सार्वभौम धर्म को प्रकट करे। एक ऐसे ही पुरुष ने जन्म ग्रहण किया और मीने वर्षों तक उनके चरणो तले बैठकर शिक्षा-लाम का सौभाग्य प्राप्त किया। ऐसे एक पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, इसकी आवश्यकता पडी थी, और वह उत्पन्न हुआ। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि उसका समग्र जीवन एक ऐसे शहर के पास व्यतीत हुआ, जो पाश्चात्य भावो से उन्मत्त हो रहा था, जो भारत के सब शहरो की अपेक्षा विदेशी भावो से अधिक भरा हुआ था। वहाँ पुस्तकीय ज्ञान से हर प्रकार से अनभिज्ञ वह रहता था, यह महाप्रतिभासम्पन्न व्यक्ति अपना नाम तक लिखना नही जानता था।<sup>१</sup> किन्तु हमारे विश्वविद्यालय के बड़े बड़े अत्यन्त प्रतिभावान स्नातको ने उसको एक महान् बौद्धिक प्रतिभा के रूप मे स्वीकार किया। वे अद्भुत महा-पुरुष थे—श्री रामकृष्ण परमहंस। यह तो एक बडी लम्बी कहानी है, आज रात को तुम्हे उनके विषय मे कुछ भी बताने का समय नही है। इसलिए मुझे भारतीय

१ सामान्यत यह प्रचलित है कि वे बिल्कुल निरक्षर थे, पर बाद मे अनुसंधान से पता चला कि वे थोडा बहुत लिखना-पढ़ना भी जानते थे।—सपावक।

तब मनिमान रामानुज का अन्त्य हुआ। संन्यस की श्रद्धा प्रगट की, विन्तु उसका हृदय रामानुज का समान उगार नहीं था। रामानुज का हृदय उगार की ओरसा अधिक विनास था। उद्दान गन्तवियों की पीड़ा का अनुभव लिया और उनसे गहानुभूति की। उस समय की प्रचलित अनुष्ठान-ग्रन्थियाँ में उद्दाने पयापति सुधार लिया और नयी अनुष्ठान-ग्रन्थियाँ नयी उपासना-प्रणालियों की सृष्टि उन लोगो के लिए की। उनके लिए वे अत्यावश्यक थी। उनके माथ माथ उद्दान ब्राह्मण से लेकर ब्राह्मण तक गया लिए गयोएन आध्यात्मिक उपासना का द्वार खोल दिया। यह था रामानुज का कार्य। उनके कार्य का प्रभाव चारो धार फैलने लगा उत्तर भाग तक उगारा प्रसार हुआ। वहाँ भी कई आचार्य इसी तरह कार्य करने लगे। विन्तु यह बहुत देर में मुसलमानों के सामल-काम में हुआ। उत्तर भारत के इन आशाहत आपुनित आचार्यों में से शैतन्य सर्वश्रेष्ठ हुए। रामानुज के समय से धर्म प्रचार की एक विनयता की और ध्यान था—उस में धर्म का द्वार सबगामारण के लिए खुला रहा। संन्यस के पूर्ववर्ती आचार्यों का यह देगा मूल मंत्र था रामानुज के परवर्ती आचार्यों का भी यह वैया ही मूल मंत्र रहा। मैं नहीं जानता कि लोग संन्यस को अनुष्ठान मंत्र के पोषक क्यों कहते हैं। उनसे सिवा प्रत्या में एसा कुछ भी नहीं मिलता जो उनकी संकीर्णता का परिचाय दे। जिस तरह भगवान् बुद्धदेव के उपदेश उनके शिष्यों के हाथ बिगड़ गये हैं। उगी तरह संन्यसार्थ के उपदेशों पर संकीर्णता का जो रीप खपाया जाता है। सम्भवत यह उनकी शिक्षा के कारण नहीं बरन् उनके शिष्यों की अयोग्यता के कारण है। उत्तर भारत के महात्मा सन्त शैतन्य गोपियों का प्रेमोन्मत्त भाव के प्रतिनिधि थे। शैतन्यदेव स्वयं एक ब्राह्मण थे। उस समय के एक प्रसिद्ध नैवायिक बस में उनका जन्म हुआ था। वे स्वयं के अघ्यापक थे। तर्क द्वारा सबको परास्त करने थे—यही उन्होंने बचपन से जीवन का उच्चतम आदर्श समझ रखा था। किसी महापुरुष की कृपा से इनका सम्पूर्ण जीवन बदल गया। तब इन्होंने शार विद्या, तर्क व्याप का अध्यापन सब कुछ छोड़ दिया। संन्यस में भक्ति के जितने बड़े बड़े आचार्य हुए हैं। प्रेमोन्मत्त शैतन्य उनमें से एक श्रेष्ठ आचार्य हैं। उनकी भक्ति-तरंग सारे बंगाल में फैल गयी जिन्होंने सबके हृदय को सान्नि मिली। उनके प्रेम की सीमा न थी। साधु, असाधु, हिन्दू, मुसलमान पवित्र अपवित्र बैसा पठित—सभी उनके प्रेम के मापी थे वे सब पर दया रखते थे। यद्यपि काक के प्रभाव से सभी सबनति को प्राप्त होते हैं। कीर्त उनका बलाया हुआ सम्प्रदाय और सबनति की रक्षा को पूर्वक गया है। फिर भी आज तक यह पठित, दुर्बल आदिभूत पठित किसी भी समाज में बिनका स्थान नहीं है, ऐसे जीवों का

आश्रयस्थान है। परन्तु नाथ ही सत्य के लिए मुझे स्वीकार करना ही होगा कि दार्शनिक सम्प्रदायों में ही हम अद्भुत उदार भाव देखते हैं। शक्य-मतावलम्बी कोई भी यह बात स्वीकार नहीं करेगा कि भारत के विभिन्न सम्प्रदायों में वास्तव में कोई भेद है, किन्तु जाति-भेद के विषय में शक्य अत्यन्त सकीर्णता का भाव रखते थे। इसके विपरीत, प्रत्येक वैष्णवाचार्य में हम जातिविषयक प्रश्नों की शिक्षा के बारे में अद्भुत उदारता देखते हैं, जब कि उनमें धार्मिक प्रश्नों के विषय में अत्यन्त सकीर्णता पाते हैं।

एक का था अद्भुत मस्तिष्क, दूसरे का था विशाल हृदय। अब एक ऐसे अद्भुत पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, जिसमें ऐसा ही हृदय और मस्तिष्क दोनों एक साथ विराजमान हो, जो शक्य के प्रतिभा-सम्पन्न मस्तिष्क एवं चैतन्य के अद्भुत, विशाल, अनन्त हृदय का एक ही साथ अविकारी हो, जो देखे कि सब सम्प्रदाय एक ही आत्मा, एक ही ईश्वर की शक्ति से चालित हो रहे हैं और प्रत्येक प्राणी में वही ईश्वर विद्यमान है, जिनका हृदय भारत में अथवा भारत के बाहर दरिद्र, दुर्बल, पतित सबके लिए द्रवित हो, लेकिन साथ ही जिसकी विशाल बुद्धि ऐसे महान् तत्त्वों की परिकल्पना करे, जिनसे भारत में अथवा भारत के बाहर सब विरोधी सम्प्रदायों में समन्वय साधित हो और इस अद्भुत समन्वय द्वारा वह एक हृदय और मस्तिष्क के सार्वभौम धर्म को प्रकट करे। एक ऐसे ही पुरुष ने जन्म ग्रहण किया और मैंने वर्षों तक उनके चरणों तले बैठकर शिक्षा-लाभ का सौभाग्य प्राप्त किया। ऐसे एक पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, इसकी आवश्यकता पड़ी थी, और वह उत्पन्न हुआ। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि उसका समग्र जीवन एक ऐसे शहर के पास व्यतीत हुआ, जो पाश्चात्य भावों से उन्मत्त हो रहा था, जो भारत के सब शहरों की अपेक्षा विदेशी भावों से अधिक भरा हुआ था। वहाँ पुस्तकीय ज्ञान से हर प्रकार से अनभिज्ञ वह रहता था, यह महाप्रतिभासम्पन्न व्यक्ति अपना नाम तक लिखना नहीं जानता था।<sup>१</sup> किन्तु हमारे विश्वविद्यालय के बड़े बड़े अत्यन्त प्रतिभावान स्नातकों ने उसको एक महान् बौद्धिक प्रतिभा के रूप में स्वीकार किया। वे अद्भुत महा-पुरुष थे—श्री रामकृष्ण परमहंस। यह तो एक बड़ी लम्बी कहानी है, आज रात को तुम्हें उनके विषय में कुछ भी बताने का समय नहीं है। इसलिए मुझे भारतीय

१ सामान्यतः यह प्रचलित है कि वे बिल्कुल निरक्षर थे, पर बाद में अनुसंधान से पता चला कि वे थोड़ा बहुत लिखना-पढ़ना भी जानते थे।—संपादक।

सब महापुरुषों के पूर्णप्रकाशस्वरूप बुधाचार्य श्री रामकृष्ण का उल्लेख भर करके ध्यान समाप्त करना होगा। उनके उपदेश आजकल हमारे लिए विषय बन्वान्कारी हैं। उनके भीतर जो ईश्वरीय शक्ति थी उस पर विवेक ध्यान दो। वे एक दखि ब्राह्मण के सड़के थे। उनका जन्म बंगाल के मुदुर, अज्ञात अपरिचित किसी एक गाँव में हुआ था। आज यूरोप अमेरिका के सहस्रों व्यक्ति वास्तव में उनकी पूजा कर रहे हैं। भविष्य में और भी सहस्रों मनुष्य उनकी पूजा करेंगे। ईश्वर की कीला कौन समझ सकता है ?

माइयो तुम यदि इसमें विषादा का हाथ नहीं देमते तो अम्बे हो, सबमुक्त परमात्म्य हो। यदि समय मिला यदि दूसरा बचसर मिला सका तो इनके सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक कहूँगा। इस समय केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि यदि मैंने जीवन भर में एक भी सत्य वाक्य कहा है तो वह उन्हीका केवल उनका ही वाक्य है पर यदि मैंने ऐसे वाक्य नही हैं जो असत्य भ्रमपूर्ण अथवा मानव जाति के लिए हितकारी न हों तो वे सब मेरे ही वाक्य हैं और उनके लिए पूरा उत्तरदायी मैं ही हूँ।

## हमारा प्रस्तुत कार्य

यह व्याख्यान ट्रिप्लिकेन, मद्रास की साहित्य-समिति में दिया गया था। अमेरिका जाने के पहले स्वामी विवेकानन्द जी का इस समिति के सदस्यों से परिचय हुआ था। इन सदस्यों के साथ स्वामी जी ने अनेक विषयों पर चर्चा की थी। इसमें वे सदस्यगण तथा मद्रास की जनता बहुत ही प्रभावित हुई थी। अन्त में इन सज्जनों के विशेष आग्रह एवं प्रयत्न ने ही वे अमेरिका की शिकागो धर्म-महासभा में हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में भेजे गये थे। अतएव इस व्याख्यान का एक विशेष महत्त्व है।

### स्वामी जी का भाषण

ससार ज्यों ज्यों आगे बढ़ रहा है, त्यों त्यों जीवन-समस्या गहरी और व्यापक हो रही है। उस पुराने जमाने में जब कि समस्त जगत् के अखण्डत्वरूप वेदान्ती सत्य का प्रथम आविष्कार हुआ था, तभी से उन्नति के मूल मन्त्रों और सार तत्त्वों का प्रचार होता आ रहा है। विश्वब्रह्मांड का एक परमाणु सारे ससार को अपने साथ बिना घसीटे तिल भर भी नहीं हिल सकता। जब तक सारे ससार को साथ साथ उन्नति के पथ पर आगे नहीं बढ़ाया जायगा, तब तक ससार के किसी भी भाग में किसी भी प्रकार की उन्नति सम्भव नहीं है। और दिन प्रति दिन यह और भी स्पष्ट हो रहा है कि किसी प्रश्न की भीमासा सिर्फ जातीय, राष्ट्रीय या किन्हीं सकीर्ण भूमियों पर नहीं टिक सकती। हर एक विषय को तथा हर एक भाव को तब तक बढ़ाना चाहिए, जब तक उसमें सारा ससार न आ जाय, हर एक आकाक्षा को तब तक बढ़ाते रहना चाहिए, जब तक वह समस्त मनुष्य जाति को ही नहीं, चरन् समस्त प्राणिजगत् को आत्मसात् न कर ले। इससे विदित होगा कि क्यों हमारा देश गत कई सदियों से वैसा महान् नहीं रह गया है, जैसा वह प्राचीन काल में था। हम देखते हैं कि जिन कारणों से वह गिर गया है, उनमें से एक कारण है, दृष्टि की सकीर्णता तथा कार्यक्षेत्र का सकोच।

जगत् में ऐसे दो आश्चर्यजनक राष्ट्र हो गये हैं, जो एक ही जाति से प्रस्फुटित हुए हैं, परन्तु भिन्न परिस्थितियों और घटनाओं में स्थापित रहकर हर एक ने जीवन की समस्याओं को अपने ही निराले ढंग से हल कर लिया है—मेरा मतलब



प्राचीन हिन्दू और प्राचीन यूनानी आतियों से है। भारतीय आर्यों की उत्तरी सीमा हिमालय की उम बर्फीली चोटियों से घिरी हुई है जिनके तक में सम मूमि पर समुद्र की स्वच्छतोया सरिताएँ हिमोर्षे मार रही हैं और वहीं वे अनंत अरुण्य कर्ममान हैं जो आर्यों को संसार के अन्तिम ओर से प्रतीत हुए। इन सब मनोरम दृश्यों को देखकर आर्यों का मन सहज ही अतर्मुक्त हो उठा। आर्यों का मस्तिष्क सूक्ष्म भावघ्राही था और चारों ओर घिरी हुई महान् दृश्यावली देखने का यह स्वाभाविक फल हुआ कि आर्य मन्तस्तब्ज के अनुसंधान में लग गये चित्त का निस्तेज्य भारतीय आर्यों का मुख्य ध्येय हो गया। दूसरी ओर, यूनानी आति संसार के एक दूसरे भाग में पहुँची जो उपात की अपेक्षा सुन्दर अधिक था। यूनानी टापुजो के भीतर क वे सुन्दर दृश्य उनके चारों ओर की वह हास्यमयी किन्तु निरामरुण प्रकृति देखकर यूनानियों का मन स्वभावतः बहिर्मुख हुआ और उसने बाह्य संसार का निस्तेज्य करला बाहा। परिणामतः हम देखते हैं कि समस्त निस्तेज्यपरमक विज्ञानों का विकास भारत से हुआ और सामान्यीकरण के विज्ञानों का विकास यूनान से। हिन्दुओं का मानस अपनी ही कार्य-दिशा में अग्रसर हुआ और उसने अद्भुत परिणाम प्राप्त किये हैं। यहाँ तक कि वर्तमान समय में भी हिन्दुजो की वह विचार-धक्ति—वह अपूर्व धक्ति जिसे भारतीय मस्तिष्क अब तक धारण करता है बेजोड़ है। हम सभी जानते हैं कि हमारे लड़के दूसरे देश के लड़कों से प्रतियोगिता में सदा ही विजय प्राप्त करते हैं। परन्तु साम ही साम्य मुसलमानों के विजय प्राप्त करने के दो घण्टाकी पहले ही अब हमारी जातीय धक्ति क्षीण हुई, उस समय हमारी यह जातीय प्रतिभा ऐसी अतिरिजित हुई कि वह स्वयं ही अब-पतन की ओर अग्रसर हुई थी और वहीं अब पतन अब भारतीय विद्य संगीत विज्ञान आदि हर विषय में विकामी दे रहा है। विद्य म अब वह व्यापक परिवर्तना नहीं रह गयी आर्यों की वह उदात्तता तथा स्थाकार के सौष्ठव की वह चेतना अब और नहीं रह गयी किन्तु उसकी जगह अत्यधिक अलक्ष्य तथा भङ्गकीलेपन का समावेश हो गया। आति की सारी मौसिकता लुप्त हो गयी। सर्गित म चित्त को मस्त कर देनेवाले वे गम्भीर भाव जो प्राचीन सस्कृत म पाये जाते हैं अब नहीं रहे—पहले की तरह उनमें से प्रत्येक स्वर अब अपने पैरा नहीं पडा हो सकता वह अपूर्व एकतामता नहीं छेड़ सकता। हर एक स्वर अपनी विशिष्टता को खो बैठा। हमारे समय आधुनिक लवील म माना प्रकार क स्वर-नामो की गिबडी हो गयी है उमनी बहुत ही बुरी बधा हो गयी है। सर्गित की अबनति का यही कारण है। इनी प्रकार यदि तुम अपनी आचारमक परिवर्तनात्री का निरन्तर करके देगो तो तुमको वही अतिरिजता और अलक्षरम की ही चेतना और मौसिकता का भाग मिलेगा। जीट, वही ठक कि

तुम्हारे विशेष क्षेत्र धर्म में भी, वही भयानक अवनति हुई है। उस जाति में तुम क्या आशा कर सकते हो, जो सैकड़ों वर्ष तक यह जटिल प्रश्न हल करती रह गयी कि पानी भरा लोटा दाहिने हाथ से पीना चाहिए या बाएँ हाथ में। इसमें और अधिक अवनति क्या हो सकती है कि देश के बड़े बड़े मेवावी मनुष्य भोजन के प्रश्न को लेकर तर्क करते हुए सैकड़ों वर्ष बिता दे, इस बात पर वाद-विवाद करते हुए कि तुम हमें छूने लायक हो या हम तुम्हें, और इस छून-अछून के कारण कौन सा प्रायश्चित्त करना पड़ेगा? वेदान्त के वे तत्त्व, ईश्वर और आत्मा सम्बन्धी सबसे उदात्त तथा महान् निदान्त, जिनका मारे ससार में प्रचार हुआ था, प्रायः नष्ट हो गये, निविड अरण्यनिवासी कुछ सन्यासियों द्वारा रक्षित होकर वे छिपे रहे और शेष सब लोग केवल छूत-अछून, खाद्य-अखाद्य और वेशभूषा जैसे गुरुतर प्रश्नों को हल करने में व्यस्त रहे। हमें मुसलमानों से कई अच्छे विषय मिले, इसमें कुछ सन्देह नहीं। हमारे हीनतम मनुष्य भी श्रेष्ठ मनुष्यों को कुछ न कुछ शिक्षा अवश्य दे सकते हैं, किन्तु वे हमारी जाति में शक्ति-संचार नहीं कर सके।

इसके पश्चात् शुभ के लिए हो, चाहे अशुभ के लिए, भारत में अग्रेजों की विजय हुई। किसी जाति के लिए विजित होना निःसन्देह बुरी चीज़ है, विदेशियों का शासन कभी भी कल्याणकारी नहीं होता। किन्तु तो भी, अशुभ के माध्यम से कभी कभी शुभ का आगमन होता है। अतएव अग्रेजों की विजय का शुभ फल यह है इंग्लैण्ड तथा समग्र यूरोप को सभ्यता के लिए यूनान के प्रति ऋणी होना चाहिए, क्योंकि यूरोप के सभी भावों में मानो यूनान की ही प्रतिध्वनि सुनाई दे रही है, यहाँ तक कि उसके हर एक मकान में, मकान के हर एक फरनीचर में यूनान की ही छाप दीख पड़ती है। यूरोप के विज्ञान, शिल्प आदि सभी यूनान ही के प्रतिबिम्ब हैं। आज वही प्राचीन यूनान तथा प्राचीन हिन्दू भारतभूमि पर मिल रहे हैं। इस प्रकार धीरे धीरे निःस्तब्ध भाव से एक परिवर्तन आ रहा है और आज हमारे चारों ओर जो उदार, जीवनप्रद पुनरुत्थान का आन्दोलन दिखाई दे रहा है, वह सब इन दोनों विभिन्न भागों के सम्मिलन का ही फल है। अब मानव जीवन सम्बन्धी अधिक व्यापक और उदार धारणाएँ हमारे सम्मुख हैं। यद्यपि हम पहले कुछ भ्रम में पड़ गये थे और भावों को सकीर्ण करना चाहते थे, पर अब हम देखते हैं कि आजकल ये जो महान् भाव और जीवन की उँची धारणाएँ काम कर रही हैं, हमारे प्राचीन ग्रन्थों में लिखे हुए तत्त्वों की स्वाभाविक परिणति ही है। ये उन बातों का यथार्थ न्यायसंगत कार्यान्वय मात्र हैं, जिनका हमारे पूर्वजों ने पट्टले डी प्रचार किया था।

त होना—यही

हमारा स्वप्न है। परन्तु हम ध्यान न देकर अपने सास्त्रोपदेशों के विरुद्ध दिनों दिन अपने को संकीर्ण से संकीर्णतर करते जा रहे हैं।

हमारी उन्नति के मार्ग में कुछ विघ्न हैं और उनमें प्रथम है हमारी यह धारणा कि संसार में हम प्रमुख जाति के हैं। मैं हृदय से भारत को प्यार करता हूँ स्वदेश के हितार्थ मैं सदा काम करते तैयार रहता हूँ पूर्वजों पर मेरी आन्तरिक श्रद्धा और भक्ति है फिर भी मैं अपना यह विचार नहीं त्याग सकता कि संसार से हमें भी बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त करनी है। शिक्षाग्रहणार्थ हमें सबके पैरों ठसे बैठना चाहिए, क्योंकि ध्यान इस बात पर देना आवश्यक है कि सभी हम महान् शिक्षा ले सकते हैं। हमारे महान् श्रेष्ठ स्मृतिकार मनु महाराज की उक्ति है 'भीम जातिमें से भी श्रद्धा के साथ हितकारी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, और निम्नतम अल्पजन्म ही क्यों न हो सेवा द्वारा उससे भी श्रेष्ठ धर्म की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए।'<sup>१</sup>

अतएव यदि हम मनु की सच्ची छान्दान हैं तो हमें उनके आदेशों का अन्वय ही प्रतिपादन करना चाहिए और जो कोई हमें शिक्षा देने के योग्य है, उसीसे ऐहिक या पारमाधिक विषयों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए हमें सदा तैयार रहना चाहिए। किन्तु साथ ही यह भी न भूलना चाहिए कि संसार को हम में कोई विशेष शिक्षा ले सकते हैं। भाव्य का बाहर के देशों से सम्बन्ध जोड़े बिना हमारा काम नहीं चल सकता। किसी समय हम लोगों ने जो इसके विपरीत सोचा था वह हमारी मूर्खता मात्र थी और उसीकी सजा का फल है कि हजारों वर्षों से हम वास्तव के बन्धनों में बँध गये हैं। हम लोग दूसरी जातियों से अपनी तुलना करने के लिए विवश नहीं गये और हमने संसार की गति पर ध्यान रखकर चलना नहीं सीखा। यही है भारतीय जन की अवनति का प्रथम कारण। हमें यथेष्ट सजा मिल चुकी अब हम ऐसा नहीं करना चाहिए। भारत से बाहर जाना भारतीयों के लिए अनुचित है—इस प्रकार की बाहिर्बात बातें बच्चों की ही हैं। उन्हें विमान से विरहुक निकाल फेंकनी चाहिए। जितना ही तुम भारत से बाहर अन्त्यास्य देशों में जूमो उतना ही तुम्हारा और तुम्हारे देश का कल्याण होगा। यदि तुम पहले ही से—कई सदियों के पहले ही से—ऐसा करते तो तुम आज उन राष्ट्रों से पराक्रम्य न होते जिन्होंने तुम्हें रबाने की कोशिश की। जीवन का पहला और स्पष्ट सक्षम है विस्तार। अगर तुम जीवित रहना चाहते हो तो तुम्हें विस्तार करना ही होगा। जिस क्षण से तुम्हारे जीवन का विस्तार बन्द हो जायेगा उसी

१ महाभारत सुभां विद्याभारतीशास्त्रादपि ।  
अन्त्यास्यपरं धर्मं स्त्रीयत्नं दुष्कृतमपि ॥

क्षण से जान लेना कि मृत्यु ने तुम्हें घेर लिया है, विपत्तियाँ तुम्हारे सामने हैं। मैं यूरोप और अमेरिका गया था, इसका तुम लोगो ने सहृदयतापूर्ण उल्लेख किया है। मुझे वहाँ जाना पडा, क्योंकि यही विस्तार या राष्ट्रीय जीवन के पुनर्जागरण का पहला चिह्न है। इस फिर से जगनेवाले राष्ट्रीय जीवन ने भीतर ही भीतर विस्तार प्राप्त करके मुझे मानो दूर फेंक दिया था और इस तरह और भी हजारो लोग फेंके जायँगे। मेरी बात ध्यान से सुनो। यदि राष्ट्र को जीवित रहना है, तो ऐसा होना आवश्यक है। अतएव यह विस्तार राष्ट्रीय जीवन के पुनरन्मुदय का सर्वप्रधान लक्षण है और मनुष्य की सारी ज्ञानसमष्टि तथा समग्र जगत् की उन्नति के लिए हमारा जो कुछ योगदान होना चाहिए, वह भी इस विस्तार के साथ भारत से बाहर दूसरे देशो को जा रहा है। परन्तु यह कोई नया काम नहीं। तुम लोगो मे से जिनकी यह धारणा है कि हिन्दू अपने देश की चहारदीवारी के भीतर ही चिर काल से पडे हैं, वे बडी ही भूल करते है। तुमने अपने प्राचीन शास्त्र पढे नहीं, तुमने अपने जातीय इतिहास का ठीक ठीक अध्ययन नहीं किया। हर एक जाति को अपनी प्राण-रक्षा के लिए दूसरी जातियो को कुछ देना ही पडेगा। प्राण देने पर ही प्राणो की प्राप्ति होती है, दूसरो से कुछ लेना होगा तो बदले मे मूल्य के रूप मे उन्हें कुछ देना ही होगा। हम जो हजारो वर्षों से जीवित हैं, यह हमको विस्मित करता है, और इसका समाधान यही है कि हम ससार के दूसरे देशो को सदा देते रहे हैं, अनजान लोग भले ही जो सोचें।

भारत का दान है धर्म, दार्शनिक ज्ञान और आध्यात्मिकता। धर्म-प्रचार के लिए यह आवश्यक नहीं कि सेना उसके आगे आगे मार्ग निष्कटक करती हुई चले। ज्ञान और दार्शनिक तत्त्व को शोणित-प्रवाह पर से ढोने की आवश्यकता नहीं। ज्ञान और दार्शनिक तत्त्व खून से भरे जख्मी आदमियो के ऊपर से सदर्प विचरण नहीं करते। वे शान्ति और प्रेम के पखो से उडकर शान्तिपूर्वक आया करते हैं, और सदा हुआ भी यही। अतएव ससार के लिए भारत को सदा कुछ देना पडा है। लन्दन मे किसी युवती ने मुझसे पूछा, "तुम हिन्दुओ ने क्या किया ? तुमने कभी किसी भी जाति को नहीं जीत पाया है।" अंग्रेज जाति की दृष्टि मे—वीर साहसी, क्षत्रियप्रकृति अंग्रेज जाति की दृष्टि मे—दूसरे व्यक्ति पर विजय प्राप्त करना ही एक व्यक्ति के लिए सर्वश्रेष्ठ गौरव की बात समझी जाती है। यह उनके दृष्टिविन्दु से सत्य भले ही हो, किन्तु हमारी दृष्टि इसके बिल्कुल विपरीत है। जब मैं अपने मन से यह प्रश्न करता हूँ कि भारत के श्रेष्ठत्व का क्या कारण है, तब मुझे यह उत्तर मिलता है कि हमने कभी दूसरी जाति पर विजय प्राप्त नहीं की। यही हमारा मदान गौरव है। नए लोग आकर हमारे सामने नन्दा मुन रहे हो

कि हिन्दुओं का धर्म दूसरों के धर्म को जीत लेने में सचेष्ट नहीं और मैं बड़े दुःख से कहता हूँ कि यह बात ऐसे ऐसे व्यक्तियों के मूँह की होती है जिन्हें हम अधिकतर ज्ञान की अपेक्षा करते हैं। मुझे यह जान पड़ता है कि हमारा धर्म दूसरे धर्मों की अपेक्षा सत्य के अधिक निकट है। इस तथ्य के समर्पण की प्रमाण युक्ति यही है कि हमारे धर्म में कमी दूसरे धर्मों पर विजय प्राप्त नहीं की उसमें कमी खून की मन्थि नहीं बहायी उसने सदा आनीर्बाह और शान्ति के दण्ड कहे सबको उसने प्रेम और सहानुभूति की कथा सुनायी। यहीं केवल यही दूसरे धर्म से छेप न रखने के भाव सबसे पहले प्रचारित हुए, केवल यहीं परधर्म-सहिष्णुता तथा सहानुभूति के ये भाव कार्यन्वय में परिणत हुए। अन्य देशों में यह केवल सिद्धान्त-वर्षा मात्र है। यही केवल यही यह देखने में आता है कि हिन्दू मुसलमानों के लिए मसजिदों और ईसाइयों के लिए गिरजे बनवाते हैं।

अतएव भाइयो तुम समझ गये होग कि किस तरह हमारे भाव धीरे धीरे शान्त और मज्जात रूप से दूसरे देशों में गये हैं। भारत के सब विषयों में यही बात है। भारतीय विचार का सबसे बड़ा कसब है उसका शास्त्र स्वभाव और उसकी गौरवता। जो प्रभुत्व शक्ति इसके पीछे है, उसका प्रकाश बखरबन्दी से नहीं होता। भारतीय विचार सदा आगे सा बसर करता है। जब कोई विदेशी हमारे साहित्य का अध्ययन करता है तो पहले वह उस अक्षिपूरुष प्रतीत होता है, क्योंकि इसमें उसके भिन्न के साहित्य वैसी उद्दीपना नहीं दीर्घ गति नहीं जिससे उसका हृदय सहज ही उलझ पड़े। यूरोप के दुःशास्त्र नाटकों की हमारे कसब नाटकों से तुलना करो पश्चिमी नाटक कार्य-अज्ञान हैं वे कुछ बेर के लिए उद्दीप्त तो कर दते हैं किन्तु समाप्त होते ही तुरन्त प्रतिक्रिया शुरू हो जाती है और तुम्हारे मस्तिष्क से उसका सम्पूर्ण प्रभाव निकल जाता है। भारत के कसबू नाटकों में मानो सम्मोहन की शक्ति बरी हुई है। वे मानवसि से चुपचाप अपना काम करते हैं, किन्तु तुम व्यो व्यो उनका अध्ययन करते हो त्यों त्यों तुम्हें मुग्ध करने सम्यते हैं। फिर तुम टस से मस नहीं हो सकते तुम बौध जाते हो हमारे साहित्य में जिस किसीने प्रवेश किया उसे उसका बन्धन बन्धन ही स्वीकार करना पड़ा और बिना काल के लिए हमारे साहित्य से उसका अनुप्राण हो गया। अनपेक्षे और अनसुने गिरनेवाला कोमल बौध कब जिस प्रकार सुन्दरतम मुलाय की कर्मियों को धिंसा देता है, वैसा ही बसर भारत के ज्ञान का सधार की विचारवाद्य पर पड़ता रहता है। गाँव जज्ञेय किन्तु महाशक्ति के अक्षय्य बस से उसने सारे जगत् की विचार-राधि में अश्रि मचा बी है—एक गया ही युग लड़ा कर दिया है किन्तु तो भी कोई नहीं जानता कब ऐसा हुआ। किसी ने प्रसंगवचात् मुझसे कहा था 'भारत के किसी

प्राचीन ग्रन्थकार का नाम ढूँढ निकालना कितना कठिन काम है।" इसपर मैंने यह उत्तर दिया कि यही भारतीयों का स्वभाव है। भारत के लेखक आजकल के लेखकों जैसे नहीं थे, जो ग्रन्थों का ९० फीसदी भाव दूसरे लेखकों से साफ उडा लेते हैं और जिनका अपना केवल दशमांश होता है, किन्तु तो भी जो ग्रन्थारम्भ में भूमिका लिखते हुए यह कहते नहीं चूकते कि इन मत-मतान्तरों का पूरा उत्तर-दायित्व मुझ पर है। मनुष्य जाति के हृदय में उच्च भाव भरनेवाले वे महामनीषी उन ग्रन्थों की रचना करके ही सन्तुष्ट थे, उन्होंने ग्रन्थों में अपना नाम तक नहीं दिया, और अपने ग्रन्थ भावी पीढ़ियों को सौंपकर वे शान्तिपूर्वक इस ससार से चल बसे। हमारे दर्शनकारों या पुराणकारों के नाम कौन जानता है? वे सभी व्यास, कपिल आदि उपाधियों ही से परिचित हैं, वे ही श्री कृष्ण के योग्य सपूत हैं, वे ही गीता के यथार्थ अनुयायी हैं, उन्होंने ही श्रीकृष्ण के इस महान उपदेश—'कर्म मे ही तुम्हारा अधिकार है, फल मे कदापि नहीं'—का पालन कर दिखाया।

मित्रों, इस प्रकार भारत ने ससार में अपना कर्म किया, परन्तु इसके लिए भी एक बात अत्यन्त आवश्यक है। वाणिज्य-द्रव्य की भाँति, विचारों का समूह भी किसीके बनाये हुए मार्ग से ही चलता है। विचार-राशि के एक देश से दूसरे देश को जाने के पहले, उसके जाने का मार्ग तैयार होना चाहिए। ससार के इतिहास में, जब कभी किसी बड़े दिग्विजयी राष्ट्र ने ससार के भिन्न भिन्न देशों को एक सूत्र में बाँधा है, तब उसके बनाये हुए मार्ग से भारत की विचारधारा वह चली है और प्रत्येक जाति की नस नस में समा गयी है। आये दिन इस प्रकार के प्रमाण जुटते जा रहे हैं कि बुद्ध के जन्म के पहले ही भारत के विचार सारे ससार में फैल चुके थे। बौद्ध धर्म के उदय के पहले ही चीन, फारस और पूर्वी द्वीप-समूहों में वेदान्त का प्रवेश हो चुका था। फिर जब यूनान की प्रबल शक्ति ने पूर्वी भूखण्डों को एक ही सूत्र में बाँधा था, तब वहाँ भारत की विचार धारा प्रवाहित हुई थी, और ईसाई धर्मावलम्बी जिस सम्यता की डींग हाँक रहे हैं, वह भी भारतीय विचारों के छोटे छोटे कणों के सग्रह के सिवा और कुछ नहीं। बौद्ध धर्म, अपनी समस्त महानता के साथ जिसकी विद्रोही सन्तान है और ईसाई धर्म जिसकी नगण्य नकल मात्र है, वही हमारा धर्म है। युगचक्र फिर घूमा है, वैसा ही समय फिर आया है, इंग्लैण्ड की प्रचंड शक्ति ने भूमण्डल के भिन्न भिन्न भागों को फिर एक दूसरे से जोड़ दिया है। अग्नेजो के मार्ग रोमन जाति के मार्गों की तरह केवल स्थल भाग में ही

१. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ॥ गीता २।४७ ॥

२. सुमात्रा, जावा, वोनियो आदि।

नहीं अतः महासागरों के सब भागों में भी बौड़ रहे हैं। संसार के सभी भाग एक दूसरे से जुड़ गये हैं और विद्युत् शक्ति सब संदिग्ध-माहक की भाँति अपना सम्भूत नाटक बस रही है। इन अनुकूल अवस्थाओं को प्राप्त कर भारत फिर जाग रहा है और संसार की उन्नति तथा सारी सम्पत्ता को अपने योगदान के लिए वह तैयार हो रहा है। इसीक फसस्वरूप प्रकृति ने मानो जबरदस्ती मुझे बर्म का प्रचार करने के लिए इस्वीड और अमेरिका भेजा। हममें से हर एक को यह अनुभव करना चाहिए वा कि प्रचार का समय आ गया है। चारों ओर सुभ कक्षम बीज रहे हैं और भारतीय आध्यात्मिक और वास्तविक विचारों की फिर से सारे संसार पर विजय होगी। अतएव हमारे सामने समस्या दिन दिन बृहत्तर आकार धारण कर रही है। क्या हमें केवल अपने ही देश को अपना हागा? नहीं यह तो एक तुच्छ बात है, मैं एक कल्पनाशील मनुष्य हूँ—भरी यह भावना है कि हिन्दू जाति सारे संसार पर विजय प्राप्त करेगी।

जगत् में बड़ी बड़ी विजयी जातियाँ हो चुकी हैं हम भी महान् विजेता रह चुके हैं। हमारी विजय की कथा को भारत के महान् सम्राट् असोक ने बर्म और आध्यात्मिकता ही की विजय बताया है। फिर से भारत को जगत् पर विजय प्राप्त करना होगा। यही मेरे जीवन का स्वप्न है और मैं चाहता हूँ कि तुममें से प्रत्येक जो कि मेरी बात सुन रहा है अपने अपने मन में उसी स्वप्न का पोषण करे, और उसे कार्य रूप में परिणत किये बिना न छोड़े। लोग हर रोज तुमसे कहेंगे कि पहले अपने घर को सँभालो बाट में विदेशों में प्रचार करना। पर मैं तुम लोगों से स्पष्ट शब्दों में कह देता हूँ कि तुम सबसे अच्छा काम तभी करते हो जब दूसरे के लिए करते हो। अपने लिए सबसे अच्छा काम तुमने तभी किया जब कि तुमने औरों के लिए काम किया। अपने विचारों का समूहों के उस पार विदेशी भाषाओं में प्रचार करने का प्रयत्न किया और यह समा ही इस बात का प्रमाण है कि तुम्हारा जन्मान्त देशों को अपने विचारों से शिक्षित करने का प्रयत्न तुम्हारे अपने देश को भी काम पहुँचा रहा है। अब मैं अपने विचारों को भारत ही में सीमाबद्ध रखता तो उस प्रभाव का एक बीन्वाई भी न हो पाता जो कि मेरे इस्वीड और अमेरिका जाने से इस देश में हुआ। हमारे सामने यही एक महान् आवर्ष है, और हर एक को इसके लिए तैयार रहना चाहिए—बहु आवर्ष है भारत की विजय पर विजय—उससे छोटा कोई आवर्ष न रहेगा और हम सभी को इसके लिए तैयार होना चाहिए और मरसक कोसिस करने चाहिए। अगर विदेशी आकर इस देश को अपनी सेनाओं से प्लावित कर दें तो कुछ परवाह नहीं। चलो भारत तुम अपनी आध्यात्मिकता द्वारा जगत् पर विजय प्राप्त करो। वैसे कि इसी देश में पहले पहल

चार किया गया है, प्रेम ही घृणा पर विजय प्राप्त करेगा, घृणा घृणा को नहीं जीत सकती, हमें भी वैसा ही करना पड़ेगा। भौतिकवाद और उससे उत्पन्न क्लेश भौतिकवाद से कभी दूर नहीं हो सकते। जब एक सेना दूसरी सेना पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा करती है तो वह मानव जाति को पशु बना देती है और इस प्रकार वह पशुओं की संख्या बढ़ा देती है। आध्यात्मिकता पश्चात्य देशों पर अवश्य विजय प्राप्त करेगी। धीरे धीरे पश्चात्यवासी यह अनुभव कर रहे हैं कि उन्हें राष्ट्र के रूप में बने रहने के लिए आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। वे इसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, चाव से इसकी बाट जोह रहे हैं। उसकी पूर्ति कहाँ से होगी ? वे आदमी कहाँ हैं, जो भारतीय महर्षियों का उपदेश जगत् के सब देशों में पहुँचाने के लिए तैयार हो ? कहाँ है वे लोग, जो इसलिए सब कुछ छोड़ने को तैयार हो कि ये कल्याणकर उपदेश ससार के कोने कोने तक फैल जायँ ? सत्य के प्रचार के लिए ऐसे ही वीर हृदय लोगों की आवश्यकता है। वेदान्त के महासत्यो को फैलाने के लिए ऐसे वीर कर्मियों को बाहर जाना चाहिए। जगत् को इसकी चाहना है, इसके बिना जगत् विनष्ट हो जायगा। सारा पश्चात्य जगत् मानो एक ज्वालामुखी पर स्थित है, जो कल ही फूटकर उसे चूर चूर कर सकता है। उन्होंने सारी दुनियाँ छान डाली, पर उन्हें तनिक भी शान्ति नहीं मिली। उन्होंने इन्द्रिय-सुख का प्याला पीकर खाली कर डाला, पर फिर भी उससे उन्हें तृप्ति नहीं मिली। भारत के धार्मिक विचारों को पश्चात्य देशों की नस नस में भर देने का यही समय है। इसलिए मद्रासी नवयुवकों, मैं विशेषकर तुम्हीको इसे याद रखने को कहता हूँ। हमें बाहर जाना ही पड़ेगा, अपनी आध्यात्मिकता तथा दार्शनिकता से हमें जगत् को जीतना होगा। दूसरा कोई उपाय ही नहीं है, अवश्यमेव इसे करो, या मरो। राष्ट्रीय जीवन, सतेज और प्रबुद्ध राष्ट्रीय जीवन के लिए बस यही एक शर्त है कि भारतीय विचार विश्व पर विजय प्राप्त करें।

साथ ही हमें न भूलना चाहिए कि आध्यात्मिक विचारों की विश्व-विजय से मेरा मतलब है उन सिद्धान्तों के प्रचार से, जिनसे जीवन-सच्चार हो, न कि उन सैकड़ों कुम्हारों से, जिन्हें हम सदियों से अपनी छाती से लगाते आये हैं। इनको तो इस भारत-भूमि से भी उखाड़कर दूर फेंक देना चाहिए, जिससे वे सदा के लिए नष्ट हो जायँ। इस जाति के अग्रपतन के ये ही कारण हैं और ये दिमाग को कमजोर बना देते हैं। हमें उम दिमाग में वचना चाहिए, जो उच्च और महान् चिन्तन नहीं कर सकती, जो निम्नेज होकर मौलिक चिन्तन की सारी शक्तियाँ खो बैठना है, और जो धर्म के नाम पर चने आनेवाले नव प्रकार के छोटे-छोटे कुम्हारों के विप से अपने को जजरित कर रहा है। हमारी दृष्टि में भारत के लिए कई आपदाएँ



सही है। इनमें से दो स्काइला और चरीबाइडिस से चोर भीतिकबाव और इसकी प्रतिबिम्बा से वेदा हुए चोर कुसंस्कार से अबस्थ बचना चाहिए। आज हमें एक तरह वह मनुष्य दिखायी पड़ता है, जो पादशास्य आज कपी मदिप-धान से मत्त होकर अपने को सर्वत्र समझता है। वह प्राचीन ऋषियों की हँसी उड़ाया करता है। उसके सिद्ध हिन्दुओं के सब विचार बिस्तुक्त नाहियात चीज है, हिन्दू वर्तन-शास्त्र बच्चों का कसरत मात्र है और हिन्दू धर्म मुठों का मात्र बंबबिस्वास। दूसरी तरह वह आदमी है जो विधित ता है पर प्रिय पर किसी एक चीज की सनक सवार है और वह उल्टी राह सेकर हर एक छोटी सी बात का अस्वीकिक अर्थ निकालने की कोशिश करता है। अपनी बिभय जाति या देव-देवियों या गाँव से सम्बन्ध रखनेवाले क्रिस्ते कुसंस्कार है उनको उचित सिद्ध करने के लिए दार्शनिक भाष्यारिक्त तथा बच्चों को मुहानबाक न जाने क्या क्या अर्थ उसके पास सर्वदा ही योजुर है। उसके लिए प्रत्येक प्राप्य कुसंस्कार बेहों की आज्ञा है और उसकी समझ में उसे कार्य रूप में परिणत करने पर ही जातीय जीवन निर्भर है। तुम्हें इन सबसे बचना चाहिए।

तुममें से प्रत्येक मनुष्य कुसंस्कारपूर्ण मूर्ख होन के बरके यदि चोर नास्तिक भी हो जाय तो मुझे पसन्द है क्योंकि नास्तिक तो जीवन्त है तुम उसे किसी तरह परिबन्धित कर सकते हो। परन्तु यदि कुसंस्कार भुक्त जायें तो नास्तिक बिपड़ जायगा बमबोर ही जायगा और मनुष्य बिनाम की ओर अग्रसर होने लगेगा। तो इन दो सनकी न बचो। हमे निर्भीक माहमी मनुष्यों का ही प्रयोजन है। हम मून में ठेकी और स्नायुओं में बस की आवश्यकता है—लौह के पुद्गे और क्रीलाद न स्नायु चाहिए, न कि दुर्बलता कानेवाले नास्त्रियात विचार। इन सबको त्याग दो एक प्रकार के रहस्या से बचो। धर्म में कोई लजा छिपी नहीं है। क्या बेदाग्य बैर गहिना अथवा पुरान न कोई ऐसी रहस्य की बात है? प्राचीन ऋषियों ने जाने धर्म प्रचार के लिए कौन सी योतनीय मधिनियाँ रचापिन की थी? क्या लमा कोर् लेता है कि जाने मराम् लण्यो को मालव जाति न प्रचारित करने के लिए उभूने लगे लम प्रादुसरा के से हबबडा का उपासत विष्वा का? हर बात की रहस्यमय बनाना और कुसंस्कार—ये मरा दुर्बलता क ही बिज्ञ हंते हैं। ये अजर्ना और मूय के ही बिज्ञ है। इसलिए उनगे बब ल्हो बमबानु बनो और आज वेरो पर लरे ही जाओ। गमार न अनेक अद्भुत एक आण्यधरनर बम्पुन है। ब्रह्मि के बार में आज हबारी जा पाग्याते है उनकी गुन्या में हम उर् अर् प्राहित बा करने है परन्तु उनक में एक भी रहस्यमय नहीं है। इस आण्यधरनर पर यह कभी प्रचारित नहीं हुआ कि धर्म के लण्य योतनीय बिषय है अथवा यह कि के टिकाकर की कौनी चोर्दयो पर बमनेवाणी गुण लबिदिया की ही बिदेय लण्यन

हैं। मैं हिमालय में गया था, तुम लोग वहाँ पर नहीं गये होंगे, वह स्थान तुम्हारे घरों से कई सौ मील दूर है। मैं सन्यासी हूँ और गत चौदह वर्षों से मैं पैदल घूम रहा हूँ। ये गुप्त समितियाँ कहीं भी नहीं हैं। इन अवविश्वासों के पीछे मत दौड़ो। तुम्हारे और जाति के लिए बेहतर होगा कि तुम घोर नास्तिक बन जाओ—क्योंकि कम से कम उससे तुम्हारा कुछ बल बना रहेगा, पर इस प्रकार कुसस्कारपूर्ण होना तो अवनति तथा मृत्यु है। मानव जाति को विवकार है कि शक्तिशाली लोग इन अवविश्वासों पर अपना समय गँवा रहे हैं, दुनिया के सड़े से सड़े कुसस्कारों की व्याख्या के लिए रूपकों के आविष्कार करने में अपना सारा समय नष्ट कर रहे हैं। साहसी बनो, सब विषयों की उस तरह व्याख्या करने की कोशिश मत करो। बात यह है कि हमारे बहुतेरे कुसस्कार हैं, हमारी देह पर बहुत से बुरे ढब्बे तथा घाव हैं—इनको काट और चीर-फाड़कर एकदम निकाल देना होगा—नष्ट कर देना होगा। इनके नष्ट होने से हमारा धर्म, हमारा जातीय जीवन हमारी आध्यात्मिकता नष्ट नहीं होगी। प्रत्येक धर्म का मूल तत्त्व सुरक्षित है और जितनी जल्दी ये ढब्बे मिटाये जायेंगे, उतने ही अधिक ये मूल तत्त्व चमकेंगे। इन्हीं पर डटे रहो।

तुम लोग सुनते हो कि हर एक धर्म जगत् का सार्वभौम धर्म होने का दावा करता है। मैं तुमसे पहले ही कह देता हूँ कि शायद कभी भी ऐसी कोई चोज़ नहीं हो सकेगी, पर यदि कोई धर्म यह दावा कर सके तो वह तुम्हारा ही धर्म है—दूसरा कोई नहीं, क्योंकि दूसरा हर एक धर्म किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह पर निर्भर है। अन्यान्य सभी धर्म किन्हीं व्यक्तियों के जीवन पर अवलम्बित होकर बने हैं, जिन्हें उनके अनुयायी ऐतिहासिक पुरुष समझते हैं, और जिसको वे धर्म की शक्ति समझते हैं, वह वास्तव में उनकी निर्बलता है, क्योंकि यदि इन पुरुषों की ऐतिहासिकता का खडन किया जाय तो उनके धर्मरूपी प्रासाद गिरकर धूल में मिल जायेंगे। इन महान् धर्म-संस्थापकों के जीवन-चरित्रों में से आधा अंश तो उड़ा दिया गया है और बाकी आधे के विषय में घोर सन्देह उपस्थित किया गया है। अतएव हर एक सत्य, जिसकी प्रामाणिकता इन्हींके शब्दों पर निर्भर थी, हवा में मिला जा रहा है। पर हमारे धर्म के सत्य किसी व्यक्ति विशेष पर निर्भर नहीं हैं, यद्यपि हमारे धर्म में महापुरुषों की सख्या यथेष्ट है। कृष्ण की महिमा यह नहीं है कि वे कृष्ण थे, पर यह कि वे वेदान्त के महान् आचार्य थे। यदि ऐसा न होता तो उनका नाम भी भारत से उसी तरह उठ जाता जैसे कि बुद्ध का नाम उठ गया है।

अतः चिर काल से हमारी निष्ठा धर्म के तत्त्वों के प्रति ही रही है, न कि व्यक्तियों के प्रति। व्यक्ति केवल तत्त्वों के प्रकट रूप हैं—उनके उदाहरणस्वरूप हैं। यदि

तत्त्व बने रहे तो व्यक्ति एक नहीं हज़ारों और लाखों की संख्या में पैदा होंगे। यदि तत्त्व बचा रहा तो बुढ़ जैसे संकड़ों और हज़ारों पुरुष पैदा होंगे परन्तु यदि तत्त्व का नाश हुआ और वह मुक्त किया गया एवं सारी जाति का जीवन तबाहकियत ऐतिहासिक व्यक्ति पर ही निर्भर रहने में प्रयत्नशील रहे तो उस वर्ग के सामने आपदाएँ और खतरा हैं। हमारा धर्म ही एकमात्र ऐसा है, जो किसी व्यक्ति या व्यक्तियों पर निर्भर नहीं वह तत्त्वों पर प्रतिष्ठित है। पर साब ही उसमें लाखों के लिए स्वाग है। नय लोगों को स्वान बेन के लिए उसमें काफी सुजायस है पर उनमें से प्रत्येक को उन तत्त्वों का एक उदाहरणस्वरूप होना चाहिए। हमें यह न भूलना चाहिए। हमारे धर्म के ये तत्त्व अब तक सुरक्षित हैं और हममें से प्रत्येक का जीवन-प्रथ नहीं हाना चाहिए कि हम उन्हीं की रक्षा करें, उन्हें सुन-सुनाकर से बना होने-वाले मूल और धर्म से बचावें। यह एक अद्भुत चिन्ता है कि हमारी जाति के बारंबार अवमति के दर्त में गिरने पर भी वेदान्त के ये तत्त्व कभी मरिज नहीं हुए। किन्तीने वह किन्तना ही दुष्ट क्यों न हो उन्हें बूझित करने का साहस नहीं किया। समार मर में अन्य सब शास्त्रों की अपेक्षा हमारे शास्त्र सर्वाधिक सुरक्षित रहे हैं। अन्योन्य शास्त्रों की तुलना में इनमें कोई भी प्रक्षिप्त अंध नहीं चुस पाया है पाठों की लोडमरीड नहीं हुई है उनके विचारों का सारमाग मष्ट नहीं हो पाया है। वह ज्यो का त्यो बना रहा है और मानव अथवा मन को आदर्श स्थित की ओर परिचासित करता रहा है।

तुम देखते हो कि इन धर्मों के माध्य भिन्न भिन्न भाष्यकारों ने किये समका प्रचार बड़े बड़े भाषायों ने किया और उन्हीं पर सम्प्रदायों की नींव डाली गयी और तुम देखते हो कि इन वेद धर्मों में ऐसे अनेक तत्त्व हैं जो आपातत परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। कुछ ऐसे पाठोंस हैं जो सम्पूर्ण ईतभाव के हैं और किन्तने ही बिस्कुच अईत भाव के। ईतवाद के माध्यकार ईतवाद छोड़कर और कुछ समस नहीं पाते अतएव वे अईतवाद के पाठों पर बुरी तरह बार करने की कोशिस करते हैं। सभी ईतवादी बर्माचार्य तथा पुरोहितपण उन्हें ईतत्मक अर्थ देना चाहते हैं। अईतवाद के माध्यकार ईतवाद के सूत्रों की नहीं रखा करते हैं, परन्तु यह वेदों का शोष नहीं। यह चेष्टा करना कोटी मूर्खता है कि सम्पूर्ण वेद ईत मायात्मक हैं। उसी प्रकार समस वेदों को अईत भाव समर्थक प्रमाणित करने की चेष्टा भी निरी मूर्खता है। वेदों में ईतवाद अईतवाद दोनों ही हैं। आदर्श के नये धर्मों के प्रकास में हम उन्हें पहले से कुछ अच्छी तरह समस सकते हैं। ये विभिन्न कारणों विनकी गति ईतवाद और अईतवाद दोनों ओर है मन की क्रमोभति के लिए आवश्यक है, और इसी कारण वेद उनका प्रचार करते हैं। समस मनुष्य

जाति पर कृपा करके वेद उच्चतम लक्ष्य के भिन्न भिन्न सोपानो का निर्देश करते हैं। यह नहीं कि वे एक दूसरे के विरोधी हों। बच्चे जैसे अवोध मनुष्यों को मोहने के लिए वेदों ने वृथा वाक्यों का प्रयोग नहीं किया है। उनकी जरूरत है और वह केवल बच्चों के लिए नहीं, वरन् प्रौढ बुद्धिवालों के लिए भी। जब तक शरीर है और जब तक हम इस शरीर से ही अपनी तद्रूपता स्थापित करने के विभ्रम में पड़े रहेंगे, जब तक हमारी पाँच इन्द्रियाँ हैं और जब तक हम इस स्थूल जगत् को देखते हैं, हमारे लिए व्यक्तिविशेष ईश्वर या सगुण ईश्वर आवश्यक है। यदि हमारे ये सभी भाव हैं, तो जैसा कि महामनीषी रामानुज ने प्रमाणित किया है, हमको ईश्वर, जीव और जगत् इनमें से एक को स्वीकार करने पर शेष सबको स्वीकार करना ही पड़ेगा। अतएव जब तक हम बाहरी ससार देख रहे हैं, तब तक सगुण ईश्वर और जीवात्मा को स्वीकार न करना निरा पागलपन है। परन्तु महापुरुषों के जीवन में वह समय आ सकता है, जब जीवात्मा अपने सब बंधनों से अतीत होकर, प्रकृति के परे, उस सर्वातीत प्रदेश में चला जाता है, जिसके बारे में श्रुति कहती है :

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।<sup>१</sup>

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मन ।<sup>२</sup>

नाह मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च ।<sup>३</sup>

—‘मन के साथ वाणी जिसे न पाकर लौट आती है।’ ‘वहाँ न नेत्र पहुँचते हैं, न वाक्य, न मन।’ ‘मैं उसे जानता हूँ, न यही कह सकता हूँ। और नहीं जानता, न यही।’ तभी जीवात्मा सारे बन्धनों को पार कर जाता है, तभी, केवल तभी उसके हृदय में अद्वैतवाद का यह मूल तत्त्व प्रकाशित होता है कि समस्त ससार और मैं एक हूँ, मैं और ब्रह्म एक हूँ। और तुम देखोगे कि यह सिद्धान्त न केवल शुद्ध ज्ञान और दर्शन ही से प्राप्त हुआ है, किन्तु प्रेम के द्वारा भी उसकी कुछ झलक पायी गयी है। तुमने भागवत में पढ़ा होगा कि जब श्री कृष्ण अन्तर्धान हो गये और गोपियाँ उनके वियोग से विकल हो गयी, तो अन्त तक श्री कृष्ण की भावना का गोपियों के चित्त पर इतना प्रभाव पड़ा कि हर एक गोपी अपनी देह को भूल गयी और सोचने लगी कि वही श्री कृष्ण है, और अपने को उसी तरह सज्जित करके क्रीडा करने लगी, जिस तरह श्री कृष्ण करते थे। अतएव हमने यह समझ लिया कि यह एकत्व का अनुभव प्रेम से भी होता है। फारस के एक पुराने सूफी कवि अपनी

१ तैत्तिरीयोपनिषद् ॥ २।९ ॥

२ केनोपनिषद् ॥ १।३ ॥

३ कठोपनिषद् ॥ २।२ ॥

एक कविता में कहते हैं— 'मैं अपने प्यारे के पास गया और देखा तो द्वार बन्द था मैंने दरवाजे पर दबका लगाया तो भीतर से आवाज आयी 'कौन है? मैंने उत्तर दिया—'मैं हूँ। द्वार न खुला। मैंने दूसरी बार आकर दरवाजा दबकाया तो उसी स्वर से फिर पूछा कि कौन है, मैंने उत्तर दिया—'मैं जमुक हूँ। फिर भी द्वार न खुला। तीसरी बार मैं गया और वही ध्वनि हुई—'कौन है? मैंने कहा 'मैं तुम हूँ मेरे प्यारे। द्वार खुल गया।'

अतएव हमें समझना चाहिए कि ब्रह्म प्राप्ति के अनेक सोपान हैं और यद्यपि पुराने साधकों में जिन्हें हम मर्यादा की दृष्टि से देखना चाहिए, एक दूसरे से विवाद होता रहा हमें विवाद न करना चाहिए क्योंकि ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। क्या प्राचीन काल में क्या वर्तमान समय में सर्वज्ञत्व पर किसी एक का सर्वाधिकार नहीं है? यदि अतीत काल में अनेक ऋषि महापुरुष हो गये हैं, तो निश्चय आता कि वर्तमान समय में भी अनेक होंगे। यदि व्यास वास्मीकि और संकराचार्य आदि पुराने जमाने में हो गये हैं तो क्या कारण है कि अब भी तुममें हर एक संकराचार्य न हो सकेगा? हमारे धर्म में एक विशेषता और है, जिसे तुम्हें याद रखना चाहिए। अख्यान्य शास्त्रों में भी ईश्वरी प्रेरणा को प्रमाणस्वरूप बतलाया जाता है। परन्तु इन प्रेरितों की संख्या उनके मूल में एक हो बचवा बहुत ही बस्य व्यक्तियों तक सीमित है। उन्हींके साध्य से सब साधारण जनता में इस सत्य का प्रचार हुआ और हम सभी को उनकी बात माननी ही पड़ेगी। नाशरूप के ईसा में सत्य का प्रकाश हुआ था और हम सभी को उसे मान लेना होगा। परन्तु भारत के मंत्रज्ञ ऋषियों के हृदय में उसी सत्य का आविर्भाव हुआ था। और सभी ऋषियों में उस सत्य का अद्विष्ट में भी आविर्भाव हुआ किन्तु वह न बापूतियों में होता न पुस्तकें पाठ जानेवालों में न बड़े विद्वानों में न भाषावेत्तानों में वह केवल तत्त्व-वैदियों में ही संभव है।

'आत्मा क्या वातें बढ़ने से नहीं प्राप्त होती न वह बड़ी बुद्धिमत्ता से ही सुखम है और न वह बेंबों के पत्तल से ही मिल सकती है।' वेद स्वयं यह बात कहते हैं। क्या तुम किन्हीं दूसरे शास्त्रों में इस प्रकार की निरीक बाणी पाते हो कि सात्वत पाठ द्वारा भी आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती? तुम्हारे लिए हृदय को मुक्त करना आवश्यक है। धर्म का धर्म न विरह में जाना है, न कलह रचना है न विभिन्न धर्म का भेद करना है। इन्द्रधनुष के सब रंगों से तुम अपने को बाहे बडे ही रंग

लो, किन्तु यदि तुम्हारा हृदय उन्मुक्त नहीं हुआ है, यदि तुमने ईश्वर का साक्षात्कार नहीं किया है, तब यह सब व्यर्थ है। जिसने हृदय को रँग लिया है, उसके लिए दूसरे रंग की आवश्यकता नहीं। यही धर्म का सच्चा अनुभव है। परन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि रंग और ऊपर कही गयी कुल बातें अच्छी तब तक मानी जा सकती हैं, जब तक वे हमें धर्ममार्ग में सहायता दें, तभी तक उनका हम स्वागत करते हैं। परन्तु वे प्रायः अधःपतित कर देती हैं और सहायता की जगह विघ्न ही खड़ा करती हैं, क्योंकि इन्हीं बाह्योपचारों को मनुष्य धर्म समझ लेता है। फिर मन्दिर का जाना आध्यात्मिक जीवन और पुरोहित को कुछ देना ही धर्मजीवन माना जाने लगता है। ये बातें बड़ी भयानक और हानिकारक हैं, इन्हें दूर करना चाहिए। हमारे शास्त्रों में बार बार कहा गया है कि बहिरिन्द्रियो के ज्ञान के द्वारा धर्म कभी प्राप्त नहीं हो सकता। धर्म वही है, जो हमें उस अक्षर पुरुष का साक्षात्कार कराता है, और हर एक के लिए धर्म यही है। जिसने इस इन्द्रियातीत सत्ता का साक्षात्कार कर लिया, जिसने आत्मा का स्वरूप उपलब्ध कर लिया, जिसने भगवान् को प्रत्यक्ष देखा—हर वस्तु में देखा, वही ऋषि हो गया। और तब तक तुम्हारा जीवन धर्मजीवन नहीं, जब तक तुम ऋषि नहीं हो जाते। तभी तुम्हारे प्रकृत धर्म का आरम्भ होगा और अभी तो ये सब तैयारियाँ ही हैं। तभी तुम्हारे भीतर धर्म का प्रकाश फैलेगा, अभी तो तुम केवल मानसिक व्यायाम कर रहे हो और शारीरिक कष्ट झेल रहे हो।

अतएव हमें अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि हमारा धर्म स्पष्ट रूप से यह कह रहा है कि जो कोई मुक्ति-प्राप्ति की इच्छा रखे, उसे ही इस ऋषित्व का लाभ करना होगा, मन्त्रद्रष्टा होना होगा, ईश्वर-साक्षात्कार करना होगा। यही मुक्ति है और यही हमारे शास्त्रों के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त। इसके बाद अपने शास्त्रों का अपने आप अवलोकन करना आसान हो जाता है, हम स्वयं ही अपने शास्त्रों का अर्थ समझ सकते हैं। उनमें से हमारे लिए जितना आवश्यक है, उतना ग्रहण कर सकते हैं तथा स्वयं ही सत्य को समझ सकते हैं। साथ ही हमें उन प्राचीन ऋषियों के प्रति, उनके कार्य के लिए, पूर्ण सम्मान प्रदर्शित करना चाहिए। वे प्राचीन ऋषिगण महान् थे, परन्तु हमें और भी महान् होना है। अतीत काल में उन्होंने बड़े बड़े काम किये, परन्तु हमें उनसे भी बड़ा काम कर दिखाना है। प्राचीन भारत में सैकड़ों ऋषि थे, और अब हमारे बीच लाखों होंगे—निश्चय ही होंगे। इस बात पर तुममें से हर एक जितनी जल्दी विश्वास करेगा, भारत का और समग्र ससार का उत्तना ही अधिक हित होगा। तुम जो कुछ विश्वास करोगे, तुम वही हो जाओगे। यदि तुम अपने को महापुरुष समझोगे तो कल ही तुम महापुरुष हो जाओगे। तुम्हें

रोक दे ऐसी कोई चीज नहीं है। आपातबिरोधी सम्प्रदायों के बीच यदि कोई साधारण मठ है, तो वह यही है कि आत्मा में पहले से ही महिमा तेज और पवित्रता वर्तमान हैं। केवल रामानुज के मत में आत्मा कमी कमी संकृषित हो जाती है और कमी कमी विकसित परन्तु संकराचार्य के मतानुसार संकोच-विकास असंभव है। इस मतभेद पर ध्यान मत दो। समी तो यह स्वीकार करते हैं कि व्यक्त या अव्यक्त चाहे जिस भाव में रहे वह शक्ति है शक्ति। और शक्ति की शीघ्रता से उस पर विश्वास कर सकोगे उतना ही तुम्हारा कल्याण होगा। समस्त शक्ति तुम्हारे भीतर है तुम कुछ भी कर सकते हो और सब कुछ कर सकते हो, यह विश्वास करो। मत विश्वास करो कि तुम दुर्बल हो। आजकल हममें से अधिकांश जैसे अपने को अपामस समझते हैं तुम अपने को बँधा मत समझो। शक्ति ही नहीं तुम कुछ भी और हर एक काम बिना किसी की सहायता के ही कर सकते हो। तुमसे सब शक्ति है। तत्पर हो जाओ। तुममें जो देवत्व छिपा हुआ है उसे प्रकट करो।

## भारत का भविष्य

मद्रास का यह अन्तिम व्याख्यान एक विशाल मंडप में लगभग चार हजार श्रोताओं के सम्मुख दिया गया था

### स्वामी जी का भाषण

यह वही प्राचीन भूमि है, जहाँ दूसरे देशों को जाने से पहले तत्त्वज्ञान ने आकर अपनी वासभूमि बनायी थी, यह वही भारत है, जहाँ के आध्यात्मिक प्रवाह का स्थूल प्रतिरूप उसके बहनेवाले समुद्राकार नदी है, जहाँ चिरन्तन हिमालय श्रेणीवद्ध उठा हुआ अपने हिमशिखरों द्वारा मानो स्वर्गराज्य के रहस्यों की ओर निहार रहा है। यह वही भारत है, जिसकी भूमि पर ससार के सर्वश्रेष्ठ ऋषियों की चरणरज पड़ चुकी है। यही सबसे पहले मनुष्य-प्रकृति तथा अन्तर्जगत् के रहस्योंद्घाटन की जिज्ञासाओं के अकुर उगे थे। आत्मा का अमरत्व, अन्तर्यामी ईश्वर एवं जगत्प्रपञ्च तथा मनुष्य के भीतर सर्वव्यापी परमात्मा विषयक मतवादों का पहले पहल यही उद्भव हुआ था। और यही धर्म और दर्शन के आदर्शों ने अपनी चरम उन्नति प्राप्त की थी। यह वही भूमि है, जहाँ से उमड़ती हुई बाढ़ की तरह धर्म तथा दार्शनिक तत्त्वों ने समग्र ससार को बार बार प्लावित कर दिया, और यही भूमि है, जहाँ से पुनः ऐसी ही तरंगे उठकर निस्तेज जातियों में शक्ति और जीवन का संचार कर देंगे। यह वही भारत है जो शताब्दियों के आघात, विदेशियों के शत शत आक्रमण और सैकड़ों आचार व्यवहारों के विपर्यय सहकर भी अक्षय बना हुआ है। यह वही भारत है जो अपने अविनाशी वीर्य और जीवन के साथ अब तक पर्वत से भी दृढतर भाव से खड़ा है। आत्मा जैसे अनादि, अनन्त और अमृतस्वरूप है, वैसे ही हमारी भारतभूमि का जीवन है, और हम इसी देश की सन्तान हैं।

भारत की सतानो, तुमसे आज मैं यहाँ कुछ व्यावहारिक बातें कहूँगा, और तुम्हें तुम्हारे पूर्व गौरव की याद दिलाने का उद्देश्य केवल इतना ही है किन्तनी ही बार मुझसे कहा गया है कि अतीत की ओर नज़र डालने से सिर्फ मन की अवनति ही होती है और इससे कोई फल नहीं होता, अतः हमें भविष्य की ओर दृष्टि रखनी चाहिए। यह सच है। परन्तु अतीत से ही भविष्य का निर्माण होता है। अतः



रोक वे ऐसी कोई चीज नहीं है। आपातबिरोधी सम्प्रदायों के बीच यदि कोई साधारण मत है, तो वह यही है कि आत्मा में पहले से ही महिमा तेज और पवित्रता वर्तमान हैं। केवल रामानुज के मत में आत्मा कभी कभी संकुचित हो जाती है और कभी कभी विकसित परन्तु संकराचार्य के मतानुसार संकोच-विकास भ्रम मात्र है। इस मतमेंब पर ध्यान मत दो। सभी तो यह स्वीकार करते हैं कि व्यक्त या अव्यक्त चाह जिस भाव में रहे वह शक्ति है शक्ति। और शक्ति ही श्रद्धा से उच्च पर विश्वास कर सकते उतना ही तुम्हारा सम्मान होगा। समस्त शक्ति तुम्हारे भीतर है तुम कुछ भी कर सकते हो और सब कुछ कर सकते हो यह विश्वास करो। मत विश्वास करो कि तुम दुर्बल हो। वाचकस हममें से अधिकार जैसे अपने को जबपागल समझते हैं तुम अपने को वैसा मत समझो। इतना ही नहीं तुम कुछ भी और हर एक काम बिना किसी की सहायता के ही कर सकते हो। तुममें सब शक्ति है। तत्पर हो जाओ। तुममें जो देवत्व छिपा हुआ है उसे प्रकट करो।

## भारत का भविष्य

मद्रास का यह अन्तिम व्याख्यान एक विशाल मंडप में लगभग चार हजार श्रोताओं के सम्मुख दिया गया था

### स्वामी जी का भाषण

यह वही प्राचीन भूमि है, जहाँ दूसरे देशों को जाने से पहले तत्त्वज्ञान ने आकर अपना वासभूमि बनायी थी, यह वही भारत है, जहाँ के आध्यात्मिक प्रवाह का स्थूल प्रतिरूप उसके बहनेवाले समुद्राकार नदी है, जहाँ चिरन्तन हिमालय श्रेणीबद्ध उठा हुआ अपने हिमशिखरों द्वारा मानो स्वर्गराज्य के रहस्यों की ओर निहार रहा है। यह वही भारत है, जिसकी भूमि पर ससार के सर्वश्रेष्ठ ऋषियों की चरणरज पड़ चुकी है। यही सबसे पहले मनुष्य-प्रकृति तथा अन्तर्जगत् के रहस्योंद्वारा की जिज्ञासाओं के अकुर उगे थे। आत्मा का अमरत्व, अन्तर्यामी ईश्वर एवं जगत्प्रपञ्च तथा मनुष्य के भीतर सर्वव्यापी परमात्मा विषयक मतवादों का पहले पहल यही उद्भव हुआ था। और यही धर्म और दर्शन के आदर्शों ने अपनी चरम उन्नति प्राप्त की थी। यह वही भूमि है, जहाँ से उमड़ती हुई बाढ़ की तरह धर्म तथा दार्शनिक तत्त्वों ने समग्र ससार को बार बार प्लावित कर दिया, और यही भूमि है, जहाँ से पुनः ऐसी ही तरंगे उठकर निस्तेज जातियों में शक्ति और जीवन का संचार कर देंगी। यह वही भारत है जो शताब्दियों के आघात, विदेशियों के शत शत आक्रमण और सैकड़ों आचार व्यवहारों के विपर्यय सहकर भी अक्षय बना हुआ है। यह वही भारत है जो अपने अविनाशी वीर्य और जीवन के साथ अब तक पर्वत से भी दृढतर भाव से खड़ा है। आत्मा जैसे अनादि, अनन्त और अमृतस्वरूप है, वैसे ही हमारी भारतभूमि का जीवन है, और हम इसी देश की सन्तान हैं।

भारत की सतानों, तुमसे आज मैं यहाँ कुछ व्यावहारिक बातें कहूँगा, और तुम्हें तुम्हारे पूर्व गौरव की याद दिलाने का उद्देश्य केवल इतना ही है कि तनी ही बार मुझसे कहा गया है कि अतीत की ओर नज़र डालने से सिर्फ मन की अवनति ही होती है और इससे कोई फल नहीं होता, अतः हमें भविष्य की ओर दृष्टि रखनी चाहिए। यह सच है। परन्तु अतीत से ही भविष्य का निर्माण होता है। अतः

अहाँ तक हो सके अतीत की ओर देखो पीछे जो चिरस्तन निर्भर बह रहा है  
 माफ़ ठ उसका जस पिओ और उसके बाव सामने देखो और भारत को उज्ज्वलतर,  
 महत्तर और पहले से और भी ऊँचा उठाओ। हमारे पूर्वज महान् थे। पहले यह बात  
 हमें याद करनी होगी। हमें समझना होगा कि हम किस उपादानों से बने हैं,  
 कौन सा जून हमारी नसों में बह रहा है। उस जून पर हमें विश्वास करना होगा।  
 और अतीत के उसके कृतित्व पर भी इस विश्वास और अतीत गौरव के ज्ञान से  
 हम बबस्य एक ऐसे भारत की नींव डालेंगे जो पहले से खेप्ट होगा। बबस्य ही  
 यहाँ बीच बीच में दुर्बला और अबनति के मुम भी रहे हैं पर उनको मैं अधिक  
 महत्त्व नहीं देता। हम सभी उसके विषय में जानते हैं। ऐसे मुर्गों का होना आबस्यक  
 था। किसी विश्वास बूझ से एक मुन्दर पका हुआ फल पीरा हुआ फल जमीन  
 पर पिरा मुखाया और सड़ा इस बिनास से जो अंकुर उगा सम्मान है वह  
 पहले के बूझ से बड़ा हो जाय। अबनति के जिस युग के भीतर से हमें गुडरना  
 पड़ा वे सभी आबस्यक थे। इसी अबनति के भीतर से भविष्य का भारत जा  
 रहा है वह अंकुरित हो चुका है, उसके मये पस्कब निकस चुके हैं और उस सन्तितर  
 विश्वासकाम ऊर्ध्वमूक बूझ का निकसना शुरू हो चुका है। और उसीके सम्बन्ध  
 में मैं तुमसे कहने जा रहा हूँ।

किसी न बूझरे देश की अपेक्षा भारत की समस्याएँ अधिक बटिक और गुफ्यर  
 हैं। जाति बर्म भाषा घासन-मनाली—ये ही एक साथ मिलकर एक राष्ट्र  
 की सृष्टि करते हैं। यदि एक एक जाति को लेकर हमारे राष्ट्र सं तुलना की जाय  
 तो हम देखेंगे कि जिस उपादानों से सवार के बूझरे राष्ट्र समठित हुए हैं वे संघ्या  
 में यहाँ के उपादानों से कम हैं। यहाँ आर्य हैं अधिक हैं तातार हैं तुर्क हैं मुण्ड  
 हैं यूरोपीय हैं, —मानो सवार की सभी जातियाँ इस भूमि में अपना अपना जून  
 मिला रही हैं। भाषा का यहाँ एक विशिष्ट डंग का जमाबड़ा है आचार-सम्बहारों  
 के सम्बन्ध में जो भारतीय जातियों में बितना अन्तर है, उतना पूर्वी और  
 यूरोपीय जातियों में नहीं।

हमारे पास एकमात्र सम्मिळन भूमि है हमारी पवित्र परम्परा हमारा  
 बर्म। एकमात्र सामान्य आचार बड़ी है और उसी पर हमें संघटन करना होगा।  
 यूरोप में राजनीतिक बिचार ही राष्ट्रीय एकता का कारण है। किन्तु एशिया में  
 राष्ट्रीय एकता का आचार बर्म ही है अतः भारत के भविष्य संवठन की पहली सर्त  
 के तीर पर उसी जातिक एकता की ही आबस्यकता है। जिस भर में एक ही बर्म  
 सबकी स्वीकार करना होगा। एक ही बर्म से येरु क्या मंगलब है? यह उस तरह  
 का एक ही बर्म नहीं जिसका ईसाइयों, मुसलमानों या बौद्धों में प्रचार है। हम जानते

है, हमारे विभिन्न सम्प्रदायो के सिद्धान्त तथा दावे चाहे कितने ही विभिन्न क्यों न हों, हमारे धर्म में कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जो सभी सम्प्रदायो द्वारा मान्य हैं। इस तरह हमारे सम्प्रदायो के ऐसे कुछ सामान्य आधार अवश्य हैं, उनको स्वीकार करने पर हमारे धर्म में अद्भुत विविधता के लिए गुजाइश हो जाती है, और साथ ही विचार और अपनी रुचि के अनुसार जीवन निर्वाह के लिए हमें सम्पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो जाती है। हम लोग, कम से कम वे जिन्होंने इस पर विचार किया है, यह बात जानते हैं। और अपने धर्म के ये जीवनप्रद सामान्य तत्त्व हम सबके सामने लाये और देश के सभी स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, उन्हें जाने-समझें तथा जीवन में उतारें—यही हमारे लिए आवश्यक है। सर्वप्रथम यही हमारा कार्य है।

अतः हम देखते हैं कि एशिया में और विशेषतः भारत में जाति, भाषा, समाज सम्बन्धी सभी बाधाएँ धर्म की इस एकीकरण शक्ति के सामने उड़ जाती हैं। हम जानते हैं कि भारतीय मन के लिए धार्मिक आदर्श से बड़ा और कुछ भी नहीं है। धर्म ही भारतीय जीवन का मूल मंत्र है, और हम केवल सबसे कम बाधावाले मार्ग का अनुसरण करके ही कार्य में अग्रसर हो सकते हैं। यह केवल सत्य ही नहीं कि धार्मिक आदर्श यहाँ सबसे बड़ा आदर्श है, किन्तु भारत के लिए कार्य करने का एकमात्र सम्भाव्य उपाय यही है। पहले उस पथ को सुदृढ़ किये बिना, दूसरे मार्ग से कार्य करने पर उसका फल घातक होगा। इसीलिए भविष्य के भारत निर्माण का पहला कार्य, वह पहला सोपान, जिसे युगों के उस महाचल पर खोद कर बनाना होगा, भारत की यह धार्मिक एकता ही है। यह शिक्षा हम सबको मिलनी चाहिए कि हम हिन्दू—द्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी या अद्वैतवादी, अथवा दूसरे सम्प्रदाय के लोग, जैसे शैव, वैष्णव, पाशुपत आदि भिन्न भिन्न मतों के होते हुए भी आपस में कुछ सामान्य भाव भी रखते हैं, और अब वह समय आ गया है कि अपने हित के लिए, अपनी जाति के हित के लिए हम इन तुच्छ भेदों और विवादों को त्याग दें। सचमुच ये झगड़े बिल्कुल वाहियात हैं, हमारे शास्त्र इनकी निन्दा करते हैं, हमारे पूर्वपुरुषों ने इनके बहिष्कार का उपदेश दिया है, और वे महापुरुष गण, जिनके वंशज हम अपने को बताते हैं और जिनका खून हमारी नसों में बह रहा है, अपनी सतानों को छोटे छोटे भेदों के लिए झगड़ते हुए देखकर उनको घोर घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

लड़ाई झगड़े छोड़ने के साथ ही अन्य विषयों की उन्नति अवश्य होगी, यदि जीवन का रक्त सशक्त एवं शुद्ध है तो शरीर में विषले कीटाणु नहीं रह सकते। हमारी आध्यात्मिकता ही हमारा जीवन-रक्त है। यदि यह साफ बहता रहे,

यदि यह शुद्ध एवं सशक्त बना रहे तो सब कुछ ठीक है। राजनीतिक सामाजिक चाहे जिस किसी तरह की ऐहिक नुटियाँ हों चाहे देश की निर्बलता ही क्यों न हो, यदि खून शुद्ध है तो सब सुखर आयेंगे। क्योंकि यदि रोमवाले कीटाणु शरीर से निकाल दिये जायें तो फिर दूसरी कोई बुराई खून में नहीं घमा सकती। उदाहरणार्थ आधुनिक चिकित्सा शास्त्र की एक उपमा को। हम जानते हैं कि किसी बीमारी के छेड़ने के दो कारण होते हैं—एक तो बाहर से कुछ विषैले कीटाणुओं का प्रवेश दूसरा शरीर की अवस्था विशेष। यदि शरीर की अवस्था ऐसी न हो चाय कि वह कीटाणुओं को नुसने दे यदि शरीर की जीवनी शक्ति इतनी शीघ्र न हो चाय कि कीटाणु शरीर में घुसकर बढते रहें तो संसार में किसी भी कीटाणु में इतनी शक्ति नहीं जो शरीर में पैठकर बीमारी पैदा कर सके। वास्तव में प्रत्येक मनुष्य के शरीर के भीतर सदा करोड़ों कीटाणु प्रवेश करते रहते हैं परन्तु जब तक शरीर बलवान् है हमें उनकी कोई खबर नहीं रहती। जब शरीर कमजोर हो जाता है, तभी ये विषैले कीटाणु उस पर अधिकार कर लेते हैं और रोग पैदा करते हैं। राष्ट्रीय जीवन के बारे में भी यही बात है। जब राष्ट्रीय जीवन कमजोर हो जाता है, तब हर तरह के रोग के कीटाणु उसके शरीर में इकट्ठे जमकर उसकी राजनीति समाज शाखा और बुद्धि को कल बना देते हैं। अतएव उसकी चिकित्सा के लिए हमें इस बीमारी को जब तक पहुँचकर रक्त से कुछ द्रव्यों को निकाल देना चाहिए। तब उद्देश्य यह होगा कि मनुष्य बलवान् हो खून शुद्ध हो और शरीर तेजस्वी जिससे वह सब बाह्यी विषों को बचा और हटा देने कायक हो सके।

हमने देखा है कि हमारा धर्म ही हमारे तेज हमारे बल यही नहीं हमारे जातीय जीवन की भी मूल मिति है। इस समय में यह तकें फिटकें करते नहीं जा रहा हूँ कि धर्म उचित है या नहीं सही है या नहीं और अन्त तक यह काम कायक है या नहीं। किन्तु मज्जा ही या नून धर्म ही हमारे जातीय जीवन का प्राण है तुम उससे निराल नहीं सकते। अभी और फिर काल के लिए भी तुम्हें उमीका अवलम्ब ग्रहण करना होगा और तुम्हें उसीके आचार पर लड़ा होना होगा चाहे तुम्हें इस पर उतना विदबास हो या न हो जो मुझे है। तुम इसी धर्म में बँधे हुए हो और अगर तुम "मे छोड़ दो तो बुर बुर हो जाओगे। वही हमारी मानि वा जीवन है और उसे अवश्य ही सफल बनाना होगा। तुम जो मुँों के पढ़ते रहकर भी अभय ही दमना कारण बलम मही है कि धर्म के लिए तुमने बहुत कुछ प्रयत्न किया वा उग पर सब कुछ निछावर किया वा। तुम्हारे पूर्वजों के धर्म-मर्या के लिए सब कुछ माह्यपूर्वक सहन किया वा मृत्यु को भी उम्हनि हवन

से लगाया था। विदेशी विजेताओं द्वारा मन्दिर के बाद मन्दिर तोड़े गये, परन्तु उस बाढ़ के बह जाने में देर नहीं हुई कि मन्दिर के कलश फिर खड़े हो गये। दक्षिण के ये ही कुछ पुराने मन्दिर और गुजरात के सोमनाथ के जैसे मन्दिर तुम्हें राशि राशि ज्ञान प्रदान करेंगे। वे जाति के इतिहास के भीतर वह गहरी अन्तर्दृष्टि देंगे, जो ढेरों पुस्तकों से भी नहीं मिल सकती। देखो कि किस तरह ये मन्दिर सैकड़ों आक्रमणों और सैकड़ों पुनरुत्थानों के चिह्न धारण किये हुए हैं, ये बार बार नष्ट हुए और बार बार ध्वसावशेष से उठकर नया जीवन प्राप्त करते हुए अब पहले ही की तरह अटल भाव से खड़े हैं। इसलिए इस धर्म में ही हमारा जातीय मन है, हमारा जातीय जीवन प्रवाह है। इसका अनुसरण करोगे तो यह तुम्हें गौरव की ओर ले जायगा। इसे छोड़ोगे तो मृत्यु निश्चित है। अगर तुम उस जीवन प्रवाह से बाहर निकल आये तो मृत्यु ही एकमात्र परिणाम होगा और पूर्ण नाश ही एकमात्र परिणति। मेरे कहने का यह मतलब नहीं कि दूसरी चीज की आवश्यकता ही नहीं। मेरे कहने का यह अर्थ नहीं कि राजनीतिक या सामाजिक उन्नति अनावश्यक है, किन्तु मेरा तात्पर्य यही है और मैं तुम्हें सदा इसकी याद दिलाना चाहता हूँ कि ये सब यहाँ गौण विषय हैं, मुख्य विषय धर्म है। भारतीय मन पहले धार्मिक है, फिर कुछ और। अतः धर्म को ही संशक्त बनाना होगा। पर यह किया किस तरह जाय ? मैं तुम्हारे सामने अपने विचार रखता हूँ। बहुत दिनों से, यहाँ तक कि अमेरिका के लिए मद्रास का समुद्री तट छोड़ने के वर्षों पहले से ये मेरे मन में थे और उन्हींको प्रचारित करने के लिए मैं अमेरिका और इंग्लैण्ड गया था। धर्म-महासभा या किसी और वस्तु की मुझे बिल्कुल परवाह नहीं थी, वह तो एक सुयोग मात्र था। वस्तुतः मेरे ये सकल्प ही थे जो सारे ससार में मुझे लिये फिरते रहे।

मेरा विचार है, पहले हमारे शास्त्र ग्रन्थों में भरे पड़े आध्यात्मिकता के रत्नों को, जो कुछ ही मनुष्यों के अधिकार में मठों और अरण्यों में छिपे हुए हैं, बाहर लाना है। जिन लोगों के अधिकार में ये छिपे हुए हैं, केवल उन्हींसे इस ज्ञान का उद्धार करना नहीं, वरन् उससे भी दुर्भेद्य पेटिका अर्थात् जिस भाषा में ये सुरक्षित हैं, उन शताब्दियों के पतं खाये हुए सस्कृत शब्दों से उन्हें निकालना होगा। तात्पर्य यह है कि मैं उन्हें सबके लिए सुलभ कर देना चाहता हूँ। मैं इन तत्त्वों को निकालकर सबकी, भारत के प्रत्येक मनुष्य की, सामान्य सम्पत्ति बनाना चाहता हूँ, चाहे वह सस्कृत जानता हो या नहीं। इस मार्ग की बहुत बड़ी कठिनाई हमारी गौरवशाली भाषा सस्कृत ही है, यह कठिनाई तब तक दूर नहीं हो सकती, जब तक यदि सम्भव हो तो हमारी जाति के सभी मनुष्य सस्कृत के अच्छे विद्वान् न हो जायें। यह कठिनाई

यदि यह घुड़ एवं सघनत बना रहे तो सब कुछ ठीक है। राबनीतिक सामाजिक चाहे जिस किसी तरह की एहिक बुटियाँ हों चाहे वेग की निर्भरता ही क्यों न हो यदि खून घुड़ है तो सब सुखर आयेंगे। क्योंकि यदि रोगवाले कौटाणु शरीर से निकाल दिये जायें तो फिर दूसरी कोई बुराई खून में नहीं समा सकती। उबाहरनार्थ आधुनिक चिकित्सा शास्त्र की एक उपमा लो। हम जानते हैं कि किसी बीमारी के फैलने के दो कारण होते हैं—एक तो बाहर से कुछ विषैले कौटाणुओं का प्रवेश दूसरा शरीर की अवस्था विशेष। यदि शरीर की अवस्था ऐसी न हो चाय कि वह कौटाणुओं को बुसने दे यदि शरीर की बीबनी शक्ति इतनी बीब न हो चाय कि कौटाणु शरीर में बुसकर बढ़ते रहें तो संसार में किसी भी कौटाणु में इतनी शक्ति नहीं जो शरीर में पैठकर बीमारी पैदा कर सके। वास्तव में प्रत्येक मनुष्य के शरीर के भीतर सदा करोड़ों कौटाणु प्रवेश करते रहते हैं परन्तु जब तक शरीर बलवान् है हमें उनकी कोई खबर नहीं रहती। जब शरीर कमजोर हो जाता है, तभी ये विषैले कौटाणु उस पर अधिकार कर लेते हैं और रोग पैदा करते हैं। राष्ट्रीय जीवन के बारे में भी यही बात है। जब राष्ट्रीय जीवन कमजोर हो जाता है तब हर तरह के रोग के कौटाणु उसके शरीर में इकट्ठे जमकर उसकी राजनीति समाज शिक्षा और बुद्धि को बल बना देते हैं। अतएव उसकी चिकित्सा के लिए हम इस बीमारी की जड़ तक पहुँचकर रक्त से कुछ द्रव्यों को निकाल देना चाहिए। तब चहेतम यह होगा कि मनुष्य बलवान् हो खून घुड़ हो और शरीर तेजस्वी। जिससे वह सब बाहरी विषों को दबा और हटा देने लायक हो सके।

हमने देखा है कि हमारा धर्म ही हमारे तेज हमारे बल यही नहीं हमारे जातीय जीवन की भी मूल मिति है। इस समय मैं यह तक कितक करके नहीं जा रहा हूँ कि धर्म उचित है या नहीं सही है या नहीं और अन्त तक यह काम काम है या नहीं। किन्तु अच्छा ही या बुरा धर्म ही हमारे जातीय जीवन का प्राण है तुम उसके निकल नहीं सकते। अभी और फिर काल के लिए भी तुम्हें उसीका अवसम्भ दृष्ट करना होगा और तुम्हें उसीके आचार पर दृष्टा जाना होगा चाहे तुम्हें इन पर जना विचार हो या न हो जो मुझे है। तुम इसी धर्म में बँध हुए हो और अगर तुम इसे छोड़ दो तो पूर पूर ही जाओगे। यही हमारी जाति का जीवन है और उसे अवश्य ही सघनत बनाना होगा। तुम जो मुर्गों के पंख गहर भी अत्रय ही दमना कारण बँचक यही है कि पंख के लिए तुमने बहुत कुछ प्रयत्न किया था उस पर अब कुछ निजावर किया जा। तुम्हारे पूर्वजों ने धर्म-न्याय के लिए सब कुछ साहसपूर्वक सहन किया था मृत्यु को भी उन्होंने हठ

से लगाया था। विदेशी विजेताओं द्वारा मन्दिर के बाद मन्दिर तोड़े गये, परन्तु उस बाढ़ के बह जाने में देर नहीं हुई कि मन्दिर के कलश फिर खड़े हो गये। दक्षिण के ये ही कुछ पुराने मन्दिर और गुजरात के सोमनाथ के जैसे मन्दिर तुम्हें राशि राशि ज्ञान प्रदान करेंगे। वे जाति के इतिहास के भीतर वह गहरी अन्तर्दृष्टि देंगे, जो ढेरों पुस्तकों से भी नहीं मिल सकती। देखो कि किस तरह ये मन्दिर सैकड़ों आक्रमणों और सैकड़ों पुनरुत्थानों के चिह्न धारण किये हुए हैं, ये बार बार नष्ट हुए और बार बार ध्वसावशेष से उठकर नया जीवन प्राप्त करते हुए अब पहले ही की तरह अटल भाव से खड़े हैं। इसलिए इस धर्म में ही हमारा जातीय मन है, हमारा जातीय जीवन प्रवाह है। इसका अनुसरण करोगे तो यह तुम्हें गौरव की ओर ले जायगा। इसे छोड़ोगे तो मृत्यु निश्चित है। अगर तुम उस जीवन प्रवाह से बाहर निकल आये तो मृत्यु ही एकमात्र परिणाम होगा और पूर्ण नाश ही एकमात्र परिणति। मेरे कहने का यह मतलब नहीं कि दूसरी चीज की आवश्यकता ही नहीं। मेरे कहने का यह अर्थ नहीं कि राजनीतिक या सामाजिक उन्नति अनावश्यक है, किन्तु मेरा तात्पर्य यही है और मैं तुम्हें सदा इसकी याद दिलाना चाहता हूँ कि ये सब यहाँ गौण विषय हैं, मुख्य विषय धर्म है। भारतीय मन पहले धार्मिक है, फिर कुछ और। अतः धर्म को ही संशुद्ध बनाना होगा। पर यह किया किस तरह जाय ? मैं तुम्हारे सामने अपने विचार रखता हूँ। बहुत दिनों से, यहाँ तक कि अमेरिका के लिए मद्रास का समुद्री तट छोड़ने के वर्षों पहले से ये मेरे मन में थे और उन्हींको प्रचारित करने के लिए मैं अमेरिका और इंग्लैण्ड गया था। धर्म-महासभा या किसी और वस्तु की मुझे बिल्कुल परवाह नहीं थी, वह तो एक सुयोग मात्र था। वस्तुतः मेरे ये सकल्प ही थे जो सारे ससार में मुझे लिये फिरते रहे।

मेरा विचार है, पहले हमारे शास्त्र ग्रन्थों में भरे पड़े आध्यात्मिकता के रत्नों को, जो कुछ ही मनुष्यों के अधिकार में मठों और अरण्यों में छिपे हुए हैं, बाहर लाना है। जिन लोगों के अधिकार में ये छिपे हुए हैं, केवल उन्हींसे इस ज्ञान का उद्धार करना नहीं, वरन् उससे भी दुर्भेद्य पेटिका अर्थात् जिस भाषा में ये सुरक्षित हैं, उन शताब्दियों के पतन खाये हुए सस्कृत शब्दों से उन्हें निकालना होगा। तात्पर्य यह है कि मैं उन्हें सबके लिए सुलभ कर देना चाहता हूँ। मैं इन तत्त्वों को निकालकर नवकी, भारत के प्रत्येक मनुष्य की, सामान्य सम्पत्ति बनाना चाहता हूँ, चाहे वह सस्कृत जानता हो या नहीं। इस मार्ग की बहुत बड़ी कठिनाई हमारी गौरवशाली भाषा सस्कृत ही है, यह कठिनाई तब तक दूर नहीं हो सकती, जब तक यदि सम्भव हो तो हमारी जाति के सभी मनुष्य सस्कृत के अच्छे विद्वान् न हो जायें। यह कठिनाई



तुम्हारी समझ में आ जायगी जब मैं कहूँगा कि वास्तविक  
 का अध्ययन करने पर भी जब मैं इसकी कोई नयी पुस्तक उठाऊँगा तो  
 बिस्मृत नयी बात पढ़ती है। अब सोचो कि जिन लोगों ने कभी विदेश-यात्रा की  
 यात्रा का अध्ययन करने का समय नहीं पाया उनके लिए यह बात निश्चय ही  
 निश्चय होगी। अतः मनुष्यों की बोलचाल की भाषा में उन विचारों की  
 रचना होगी। साथ ही संस्कृत की भी शिक्षा व्यवस्था होती रहनी चाहिए, क्योंकि  
 संस्कृत शब्दों की प्रथि मात्र से ही भाषा को एक प्रकार का बीर, अर्थात्  
 बल प्राप्त हो जाता है। महान् रामानुज और कबीर ने भाषा की कौड़ी  
 बातियों को उठाने का जो प्रयत्न किया था उसमें उन महान् कर्माचारियों को अपनी  
 ही जीवन-काळ में अद्भुत सफलता मिली थी। किन्तु फिर उनके बाद एक काल  
 का जो औपनीय परिणाम हुआ उसकी व्याख्या होनी चाहिए, और जिस कारण  
 उन बड़े बड़े कर्माचारियों के सिरोनाथ के प्रायः एक ही अतासी के नीचे वह उल्टी  
 एक गयी उसकी भी व्याख्या करनी होगी। इसका रहस्य यह है—उन्होंने कौड़ी  
 बातियों को उठाना था। वे सब चाहते थे कि वे अन्तिम के सर्वोच्च विचार पर आकर  
 हो जायें परन्तु उन्होंने जनता में संस्कृत का प्रचार करने में अपनी कौशल नहीं  
 लगायी। यहाँ तक कि मधुबान् बुद्ध ने भी यह मूल की कि उन्होंने जनता में संस्कृत  
 शिक्षा का अध्ययन बंद कर दिया। वे पुराने फल वाले के इच्छुक थे इतिहास  
 उस समय की भाषा पाठी से संस्कृत से अनुवाद कर उन्होंने उन विचारों का प्रचार  
 किया। यह बहुत ही दुस्वर हुआ था जनता ने उनका अविश्राम किया, क्योंकि  
 वे जनता की बोलचाल की भाषा में उपदेश देते थे। यह बहुत ही अच्छा हुआ था,  
 इसके उनके साथ बहुत बीर भी और बहुत दूर दूर तक पहुँचे। किन्तु इसके साथ  
 साथ संस्कृत का भी प्रचार होना चाहिए था। ज्ञान का विस्तार हुआ नहीं, पर  
 इसके साथ साथ अनिष्ट नहीं बनी संस्कार नहीं बना। संस्कृति ही मूल के व्याख्या  
 को कहना कर सकती है, मात्र ज्ञान-रसि नहीं। मूल संस्कार के सामने प्रकृत अन्त  
 रण सकते ही परन्तु इसके अन्तर्गत विशेष उन्कार न होना। संस्कार की रचना  
 के व्याप्त हो जाना चाहिए। वर्तमान समय में हम किन्तु ही राष्ट्रों के अन्तर्गत  
 में आते हैं, जिनके पास विद्यालय ज्ञान का आधार है, परन्तु इसके क्या? वे ज्ञान  
 की तरह गुर्बह हैं वे बर्बरों के समान हैं क्योंकि उनका ज्ञान अन्तर्गत में परिवर्तन  
 नहीं हुआ है। अन्तर्गत की तरह ज्ञान भी पचने की ऊपरी तरह तक ही सीमित  
 है किन्तु ही और एक अन्तर्गत ही यह पुरानी गुर्बहता अब उन्नी है।  
 देवी बनाना हुआ करनी है। नहीं मय है। जनता की उन्नी बोलचाल की  
 भाषा में शिक्षा हो उसकी साथ ही यह बहुत कुछ ज्ञान वास्तवी परन्तु साथ ही

कुछ और भी जरूरी है उसको सस्कृति का बोध दो। जब तक तुम यह नहीं कर सकते, तब तक उनकी उन्नत दशा कदापि स्थायी नहीं हो सकती। एक ऐसे नवीन वर्ण की सृष्टि होगी, जो सस्कृत भाषा सीखकर शीघ्र ही दूसरे वर्णों के ऊपर उठेगी और पहले की तरह उनपर अपना प्रभुत्व फैलायेगी। ऐ पिछड़ी जाति के लोगो, मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि तुम्हारे वचाव का, तुम्हारी अपनी दशा को उन्नत करने का एकमात्र उपाय सस्कृत पढना है, और यह लडना-झगडना और उच्च वर्णों के विरोध मे लेख लिखना व्यर्थ है। इससे कोई उपकार न होगा, इससे लडाई-झगडे और बढ़ेंगे, और यह जाति, दुर्भाग्यवश पहले ही से जिसके टुकडे टुकडे हो चुके हैं, और भी टुकडो मे बँटती रहेगी। जातियो मे समता लाने के लिए एक-मात्र उपाय उस सस्कार और शिक्षा का अर्जन करना है, जो उच्च वर्णों का बल और गौरव है। यदि यह तुम कर सको तो जो कुछ तुम चाहते हो, वह तुम्हें मिल जायगा।

इसके साथ मैं एक और प्रश्न पर विचार करना चाहता हूँ, जो खासकर मद्रास से सम्बन्ध रखता है। एक मत है कि दक्षिण भारत मे द्राविड नाम की एक जाति के मनुष्य थे, जो उत्तर भारत की आर्य नामक जाति से बिल्कुल भिन्न थे और दक्षिण भारत के ब्राह्मण ही उत्तर भारत से आये हुए आर्य हैं, अन्य जातियाँ दक्षिणी ब्राह्मणो से बिल्कुल ही पृथक् जाति की हैं। भाषा-वैज्ञानिक महाशय, मुझे क्षमा कीजिएगा, यह मत बिल्कुल निरावार है। इसका एकमात्र प्रमाण यह है कि उत्तर और दक्षिण की भाषा मे भेद है। दूसरा भेद मेरी नजर मे नहीं आता। हम यहाँ उत्तर भारत के इतने लोग हैं, मैं अपने यूरोपीय मित्रो से कहता हूँ कि वे इस सभा के उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत के लोगो को चुनकर अलग कर दें। भेद कहाँ है? ज़रा सा भेद भाषा मे है। पूर्वोक्त मतवादी कहते है कि दक्षिणी ब्राह्मण जब उत्तर से आये थे, तब वे सस्कृत बोलते थे, अभी यहाँ आकर द्राविड भाषा बोलते बोलते सस्कृत भूल गये। यदि ब्राह्मणो के सम्बन्ध मे ऐसी बात है तो फिर दूसरी जातियो के सम्बन्ध मे भी यही बात क्यों न होगी? क्यों न कहा जाय कि दूसरी जातियाँ भी एक एक करके उत्तर भारत से आयी हैं, उन्होंने द्राविड भाषा को अपनाया और सस्कृत भूल गयी? यह युक्ति तो दोनों ओर लग सकती है। ऐसी वाहियात वातो पर विश्वास न करो। यहाँ ऐसी कोई द्राविड जाति रही होगी, जो यहाँ से लुप्त हो गयी है, और उनमे से जो कुछ थोडे से रह गये थे, वे जगलो और दूसरे दूसरे स्थानो मे वस गये। यह बिल्कुल सम्भव है कि सस्कृत के बदले वह द्राविड भाषा ले ली गयी हो, परन्तु ये सब आर्य ही हैं, जो उत्तर से आये। सारे भारत के मनुष्य आर्यों के सिवा और कोई नहीं।

इसके बाद एक दूसरा विचार है कि ब्रह्म लोग विद्वान् ही या अनार्य हैं। तब वे क्या हैं? वे दुष्टान हैं। विद्वान् कष्टों हैं-वे को दुहरता है। अमरीकी अन्वेषण जब और पूर्णवाणी बेचारी पकड़ लेते वे जब तक वे बीभित रहते उनसे और परिचय कर लेते हैं मिश्रित संतानों भी वास्तव में स्वप्न होकर फिर काक तक वास्तव में थी। इस अनुभव उदाहरण से मन हचाराँ कर्ष पीछे वाकर नहीं की बढनाओं की कल्पना करता है, और हमारे पुरुरररररररर वास्तव में स्वप्न देखते हैं कि भारत काही बाँधोंवाले बाकिवाकिनों से बचत और उज्ज्वल आर्य बाहर से आये—परमात्मा वाले नहीं से बाकी-पुनः-पुनः के मत से वे मध्य तिष्ठत से आये दूसरे कहते हैं वे मध्य एशिया से आये स्वदेशप्रेमी अन्वेषण हैं जो सोचते हैं कि आर्य काल वास्तविक थे। अन्वेषण अनुसार दूसरे सोचते हैं कि वे तब काले वास्तविक थे। अगर केवल ब्रह्म-वाक्य बाल बाला मनुष्य हुआ तो सभी आर्य काले वास्तविक थे। कुछ दिन हुए कष्ट-करने का प्रयत्न किया गया वा कि आर्य सिद्धपररररर की हीनों के सिद्ध-वाक्य थे। मुझे पता भी हुआ न होता अगर वे सबके सब इन सब सिद्धवाक्यों के समर्थ नहीं हुए मरते। वाक्यकाल कोई कोई कहते हैं कि वे उत्तरी भूप में रहते थे। वेदों आसों और उनके मिश्रण स्वप्नों पर बना दुष्टि रहे। इन सिद्धवाक्यों की समर्थ के बारे में नहीं कहना है कि हमारे वास्तवों में एक ही काल नहीं है, जो स्वप्न के लक्ष्य कि आर्य भारत के बाहर से किसी देश से आये। ही आर्यीय वास्तव में अफ़ग़ानिस्तान की वाकिर वा क्त इतना ही। और वह सिद्धवाक्य की कि ब्रह्म कालों और अक्षय्य वे विस्तृत अताकिर और अक्षयिक है। उन दिनों वह काल ही नहीं वा कि मुट्टी भर आर्य नहीं आकर सखों अनाथों पर वाकिरर कालक क्त मने हों। अजी वे अनाथ कर्षों वा बाले पाँच ही मिश्र में उनकी पानी कर्ष वास्तवों।

इस सम्स्या की एकमात्र व्याख्या महाभारत में मिलती है। उनमें लिखा है कि लक्ष्मण के मारण में एक ही शक्ति ब्राह्मण की और फिर वेदों के वेद के वह विद्व विद्व वाकिनों में बैठती नहीं। क्त नहीं एकमात्र व्याख्या तब और दुष्टि-पूर्व है। अधिष्ठ में जो लक्ष्मण आ रहा है उससे ब्राह्मणैतर कर्षों वाकिरों फिर ब्राह्मण क्त में परिष्क होनी।

इसीका अन्वेषण, अर्थात्, अक्षय्य, की, की, अक्षय्य, एकी, अक्षय्य, दोली, है कि काल कर्षों को विराना नहीं होना ब्राह्मणों का अधिलक्ष्य तीन करना नहीं होना। भारत के ब्राह्मणत्व ही अनुकूल का चरण आर्य है। इसे लक्ष्यवाक्य के बीच के वास्तविक

मे बडे ही सुन्दर ढग से पेश किया है, जहाँ कि उन्होंने ब्राह्मणत्व की रक्षा के लिए प्रचारक के रूप मे कृष्ण के आने का कारण बतलाया है। यही उनके अवतरण का महान् उद्देश्य था। इस ब्राह्मण का, इस ब्रह्मज पुरुष का, इस आदर्श और सिद्ध पुरुष का रहना परमावश्यक है, इसका लोप कदापि नहीं होना चाहिए। और इस समय इस जाति-भेद की प्रथा मे जितने दोष हैं, उनके रहते हुए भी, हम जानते है कि हमें ब्राह्मणो को यह श्रेय देने के लिए तैयार रहना होगा कि दूसरी जातियो की अपेक्षा उन्हीमे से अधिसख्यक मनुष्य यथार्थ ब्राह्मणत्व को लेकर आये हैं। यह सच है। दूसरी जातियो को उन्हे यह श्रेय देना ही होगा, यह उनका प्राप्य है। हमे बहुत स्पष्टवादी होकर साहस के साथ उनके दोषो की आलोचना करनी चाहिए। पर साथ ही उनका प्राप्य श्रेय भी उन्हे देना चाहिए। अग्नेजी की पुरानी कहावत याद रखो—‘हर एक मनुष्य को उसका प्राप्य दो।’ अत मित्रो, जातियो का आपस मे झगडना बेकार है। इससे क्या लाभ होगा? इससे हम और भी बँट जायेंगे, और भी कमजोर हो जायेंगे, और भी गिर जायेंगे। एकाधिकार तथा उसके दावे के दिन लद गये, भारतभूमि से वे चिर काल के लिए अन्तर्हित हो गये और यह भारत मे ब्रिटिश शासन का एक सुफल है। यहाँ तक कि मुसलमानो के शासन से भी हमारा उपकार हुआ था, उन्होंने भी इस एकाधिकार को तोडा था। सब कुछ होने पर भी वह शासन सर्वाशत बुरा नहीं था, कोई भी वस्तु सर्वाशत न बुरी होती है और न अच्छी ही। मुसलमानो की भारत-विजय पददलितो और गरीबो का मानो उद्धार करने के लिए हुई थी। यही कारण है कि हमारी एक पचमाश जनता मुसलमान हो गयी। यह सारा काम तलवार से ही नहीं हुआ। यह सोचना कि यह सभी तलवार और आग का काम था, बेहद पागलपन होगा। अगर तुम सचेत न होगे तो मद्रास के तुम्हारे एक पचमाश—नहीं, अर्धाश लोग ईसाई हो जायेंगे। जैसा मैंने मलाबार प्रदेश मे देखा, क्या वैसी वाहियात बातें ससार मे पहले भी कभी थी? जिस रास्ते से उच्च वर्ण के लोग चलते हैं, गरीब पैरिया उससे नहीं चलने पाता। परन्तु ज्यो ही उसने कोई बेढब अग्नेजी नाम या कोई मुसलमानी नाम रख लिया कि बस, सारी बातें सुघर जाती हैं। यह सब देखकर इसके सिवा तुम और क्या निष्कर्ष निकाल सकते हो कि सब मलाबारी पागल हैं, और उनके घर पागलखाने हैं? और जब तक वे होश सँभाल कर अपनी प्रथाओ का सशोचन न कर लें, तब तक भारत की सभी जातियो को उनकी खिल्ली उडानी चाहिए। ऐसी बुरी और नृशस प्रथाओ को आज भी जारी रखना क्या उनके लिए लज्जा का विषय नहीं? उनके अपने बच्चे तो भूखो मरते हैं, परन्तु ज्यो ही उन्होंने किसी दूसरे वर्म का आश्रय लिया कि फिर उन्हें

अच्छा भाजन मिल जाता है। जब जातिजों में खान्सी  
बाहिए।

उच्च बर्णों को नीचे उतारकर इस सभत्वा की बीजकला  
जातियों को ऊँची जातियों के बराबर उठाना होना। और कल्पे हुए-  
जिनका अपन वास्तवों का ज्ञान और अपने पूर्वजों के महान् कर्मों के-  
सक्ति शून्य से अधिक नहीं तुम कुछ का कुछ कहते हुए तुम्हें-  
जो कुछ कहा है हमारे वास्तवों में बर्णित कार्य-व्यवस्था नहीं है। वे-  
समझते थे है जिनके मस्तिष्क है तथा पूर्वजों के कर्मों का-  
सम की क्षमता रखते हैं। वे तटस्थ होकर नून-वृत्तियों के-  
परिचय की विविध गति की लक्ष्य करते हैं। वे नये और-  
कमल इतकी परम्परा देख पाते हैं। अच्छा, तो यह बीजक-  
क्या है? उस भावार्थ का एक छोटा बाह्यण है और-  
सम्पूर्ण कार्य बाह्यण को उठकर बाह्यण बनाया है। वास्तवों में-  
इस सारे को, कि लीकी जातियों को-  
यन्त्र भी है जिनमें तुम्हें ऐसे कठोर वाक्य पढ़ने को-  
वेद सुन के तो उसके कानों में सीखा बलाकर-  
एक भी पक्ति बाध कर के तो उसकी बीज काट-  
को 'वे बाह्यण' कह के तो भी उसकी बीज काट-  
नृचस करीरता है, इसमें बाध भी-  
क्योंकि उन्होंने समाज के किसी-  
किन्ना है। ऐसे जासुटे प्रकृति के-  
ऐसे बसुर कोन कमोबेश सभी-  
वेकोने कि इस स्वर में बोड़ी-  
उन्हें लक्ष्य सिखा भी न-  
उन स्मृतियों में जिनका-  
बाह्यणों के-  
उत्साहित करना-  
इस प्रकार यह सब-  
इस सब कार्य-  
इतका कि इनका-  
घटनाओं का-  
बाध को-  
जाति-  
बाध

जाति-भेद कितना भी कठोर क्यों न हो, वह इसी रूप में ही सृष्ट हुआ है। कल्पना करो कि यहाँ कुछ जातियाँ हैं, जिनमें हर एक की जन-संख्या दस हजार है। अगर ये सब इकट्ठी होकर अपने को ब्राह्मण कहने लगे तो इन्हें कौन रोक सकता है? ऐसा मैंने अपने ही जीवन में देखा है। कुछ जातियाँ जोरदार हो गयीं, और ज्योंही उन सब की एक राय हुई, फिर उनसे 'नहीं' भला कौन कह सकता है? — क्योंकि और कुछ भी हो, हर एक जाति दूसरी जाति से सम्पूर्ण पृथक् है। कोई जाति किसी दूसरी जाति के कामों में, यहाँ तक कि एक ही जाति की भिन्न भिन्न शाखाएँ भी एक दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करती। और शकराचार्य आदि शक्तिशाली युग-प्रवर्तक ही बड़े बड़े वर्ण-निर्माता थे। उन लोगों ने जिन अद्भुत बातों का आविष्कार किया था, वे सब मैं तुमसे नहीं कह सकता, और सम्भव है कि तुममें से कोई कोई उससे अपना रोष प्रकट करे। किन्तु अपने भ्रमण और अनुभव से मैंने उनके सिद्धांत ढूँढ निकाले, और इससे मुझे अद्भुत परिणाम प्राप्त हुए। कभी कभी उन्होंने दल के दल वलूचियों को लेकर क्षण भर में उन्हें क्षत्रिय बना डाला, दल के दल घीवरो को लेकर क्षण भर में ब्राह्मण बना दिया। वे सब ऋषि-मुनि थे और हमें उनकी स्मृति के सामने सिर झुकाना होगा। तुम्हें भी ऋषि-मुनि बनना होगा, कृतकार्य होने का यही गूढ रहस्य है। न्यूनाधिक सबको ही ऋषि होना होगा। ऋषि के क्या अर्थ हैं? ऋषि का अर्थ है पवित्र आत्मा। पहले पवित्र बनो, तभी तुम शक्ति पाओगे। 'मैं ऋषि हूँ', कहने मात्र ही से न होगा, किन्तु जब तुम यथार्थ ऋषित्व लाभ करोगे तो देखोगे, दूसरे आप ही आप तुम्हारी आज्ञा मानते हैं। तुम्हारे भीतर से कुछ रहस्यमय वस्तु निःसृत होती है, जो दूसरों को तुम्हारा अनुसरण करने को बाध्य करती है, जिससे वे तुम्हारी आज्ञा का पालन करते हैं। यहाँ तक कि अपनी इच्छा के विरुद्ध अज्ञात भाव से वे तुम्हारी योजनाओं की कार्यसिद्धि में सहायक होते हैं। यही ऋषित्व है।

विस्तृत कार्यप्रणाली के बारे में यही कहना है कि पीढ़ियों तक उसका अनुसरण करना होगा। मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, वह एक सुझाव मात्र है। जिसका उद्देश्य यह दिखाना है कि ये लड़ाई-झगड़े बन्द हो जाने चाहिए। मुझे विशेष दुःख इस बात पर होता है कि वर्तमान समय में भी जातियों के बीच में इतना मतभेद चलता रहता है। इसका अन्त हो जाना चाहिए। यह दोनों ही पक्षों के लिए व्यर्थ है, खासकर ब्राह्मणों के लिए, क्योंकि इस तरह के एकाधिकार और विशेष दावों के दिन लड़ गये। हर एक अभिजात वर्ग का कर्तव्य है कि अपने कुलीन तंत्र की कन्न वह आप ही खोदे, और जितना शीघ्र इसे कर सके, उतना ही अच्छा है। जितनी ही वह देर करेगा, उतनी ही वह सबेगी और उसकी मृत्यु भी

अच्छा ज्ञान मिल जाता है। अब जातियों में अपनी ऊपरी किस्तुत नहीं होने चाहिए।

उच्च वर्गों को नीचे उतारकर इस समस्या की नींवस्था न होनी किन्तु नीचे जातियों को ऊँची जातियों के बराबर उठाना हीना। और यद्यपि कुछ चीजों को, जिनका अपने सास्त्रों का ज्ञान और अपने पूर्वजों के ज्ञान् ज्ञानों के उद्देश्य से पक्षि स्वयं से अधिक यही तुम कुछ का कुछ कहते हुए तुलने हो, फिर भी नीचे जो कुछ कहा है हमारे सास्त्रों में बलिष्ठ कर्म-प्रचाली नहीं है। वे नहीं उठाने, समझते वे हैं जिनके अस्तित्व है तथा पूर्वजों के कार्यों का उच्चत प्रयोजन उच्च करने की क्षमता रखते हैं। वे उदत्त होकर मुन-मुनापुत्रों से तुलने हुए जातीय जीवन की विविध मति को लब्ध करते हैं। वे नये और पुराने सभी सास्त्रों में सम्मिलित इतनी परम्परा देख पाते हैं। अच्छा तो यह योजना—यह प्रचाली क्या है? उच्च जातियों का एक जोर शास्त्र है और दूसरा जोर बाइबल और सम्पूर्ण कार्य बाइबल को उठकर शास्त्र बनाना है। सास्त्रों में बीरे बीरे पुन देख पाते हो कि नीचे जातियों को अधिकारिक अधिकार दिये जाते हैं। कुछ बन्धनी हैं जिनमें तुम्हें ऐसे कठोर बाध पडने को मिलते हैं—‘अगर यह वेद तुम से तो उसके कार्यों में सीधा पलाकर भर दो और अगर यह वेद की एक भी पक्षि बाध कर ले तो उसकी जीभ काट डालो यदि यह किसी शास्त्र को ‘ऐ शास्त्र’ कह दे तो नी उतनी जीभ काट लो। यह पुराने समयों की तुलना बर्बरता है, इसमें धरा भी लम्बे नहीं परन्तु स्मृतिकारों को दोष न दो क्योंकि उन्होंने समाज के किसी अंश में प्रचलित प्रथाओं को ही तिरक किम्बद किया है। ऐसे वास्तु प्रकृति के लोग प्राचीन काल में कभी कभी पैदा हो गये थे। ऐसे अतुर लोग कमोबेश सभी मुकों में होते जाये हैं। इतकिय बाध के समय में तुम देखोने कि इस स्वर में बोझी भरनी जा नहीं है, जैसे ‘सूत्रों को तंग न करो परन्तु उन्हें उच्च शिक्षा भी न दो। फिर बीरे बीरे हम दूसरी स्मृतियों में—बातकर उन स्मृतियों में जिनका बाधकक पूरा प्रभाव है यह किन्ना पाते हैं कि अगर यह शास्त्रों के बाधक-बाधकारी का अनुकरण करें तो वे अच्छा करते हैं उन्हें उच्छाहित करना चाहिए। इस प्रकार यह सब होता जा रहा है। तुम्हारे सामने इन सब कर्म-व्यक्तियों का विस्तृत वर्णन करने का मुझे समय नहीं है और न ही इसका कि इनका विस्तृत विवरण की प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु प्रत्यक्ष बटनाओं का विचार करने से इन देखते हैं, सभी जातियाँ बीरे बीरे उठेंगी। बाध को हटारों जातियाँ हैं, उनसे वे कुछ ही शास्त्रों में जातिक की ही रही हैं। कोई जाति अगर अपने की शास्त्रन कहने लगे ही इस पर कोई कड़ कर सकता है?’

साधारण जनता के लिए वह खजाना खोल नहीं दिया। हम इसीलिए अवनत हो गये। और हमारा पहला कार्य यही है कि हम अपने पूर्वजों के बटोरे हुए धर्मरूपी अमोल रत्न जिन तहखानों में छिपे हुए हैं, उन्हें तोड़कर बाहर निकालें और उन्हें सबको दें। यह कार्य सबसे पहले ब्राह्मणों को ही करना होगा। बगाल में एक पुराना अघविश्वास है कि जिस गोखुरे साँप ने काटा हो, यदि वह खुद अपना विष खींच ले तो रोगी जरूर बच जायगा। अतएव ब्राह्मणों को ही अपना विष खींच लेना होगा। ब्राह्मणोंतर जातियों से मैं कहता हूँ, ठहरो, जल्दी मत करो, ब्राह्मणों से लड़ने का मौका मिलते ही उसका उपयोग न करो, क्योंकि मैं पहले दिखा चुका हूँ कि तुम अपने ही दोष से कष्ट पा रहे हो। तुम्हें आध्यात्मिकता का उपार्जन करने और संस्कृत सीखने से किसने मना किया था? इतने दिनों तक तुम क्या करते रहे? क्यों तुम इतने दिनों तक उदासीन रहे? और दूसरों ने तुमसे बढकर मस्तिष्क, वीर्य, साहस और क्रिया-शक्ति का परिचय दिया, इस पर अब चिद क्यों रहे हो? समाचार पत्रों में इन सब व्यर्थ वाद-विवादों और झगड़ों में शक्ति क्षय न करके, अपने ही घरों में इस तरह लड़ते-झगड़ते न रहकर—जो कि पाप है—ब्राह्मणों के समान ही संस्कार प्राप्त करने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दो। बस तभी तुम्हारा उद्देश्य सिद्ध होगा। तुम क्यों संस्कृत के पढित नहीं होते? भारत की सभी जातियों में संस्कृत शिक्षा का प्रचार करने के लिए तुम क्यों नहीं करोड़ों रुपये खर्च करते? मेरा प्रश्न तो यही है। जिस समय तुम यह कार्य करोगे, उसी क्षण तुम ब्राह्मणों के बराबर हो जाओगे। भारत में शक्तिलाभ का रहस्य यही है।

संस्कृत में पांडित्य होने से ही भारत में सम्मान प्राप्त होता है। संस्कृत भाषा का ज्ञान होने से ही कोई भी तुम्हारे विरुद्ध कुछ कहने का साहस न करेगा। यही एकमात्र रहस्य है, अतः इसे जान लो और संस्कृत पढो। अद्वैतवादी की प्राचीन उपमा दी जाय तो कहना होगा कि समस्त जगत् अपनी माया से आप ही सम्मोहित हो रहा है। इच्छाशक्ति ही जगत् में अमोघ शक्ति है। प्रबल इच्छाशक्ति का अधिकारी मनुष्य एक ऐसी ज्योतिर्मयी प्रभा अपने चारों ओर फैला देता है कि दूसरे लोग स्वतः उस प्रभा से प्रभावित होकर उसके भाव से भावित हो जाते हैं। ऐसे महापुरुष अवश्य ही प्रकट हुआ करते हैं। और इसके पीछे भावना क्या है? जब वे आविर्भूत होते हैं, तब उनके विचार हम लोगों के मस्तिष्क में प्रवेश करते हैं और हममें से कितने ही आदमी उनके विचारों तथा भावों को अपना लेते हैं और शक्तिशाली बन जाते हैं। किसी सगठन या सभ में इतनी शक्ति क्यों होती है? सगठन को केवल भौतिक या जड शक्ति मत मानो। इसका क्या कारण है, अथवा



जानी ही भवकर होनी। यह वह राष्ट्रिय भाषि का नव भाषियों के उद्धार की चेष्टा करे। यदि वह ऐसा ऐसा करता है, तभी तक वह राष्ट्रिय है, है तो वह राष्ट्रिय नहीं है। इसपर तुम्हें भी उचित है कि करो। इतने तुम्हें स्वर्ग मिलेगा। पर यदि तुम अपना जो फल स्वर्ग न होकर उनके विपरीत होना—हमारे छात्रों का विषय मे तुम्हें सावधान हो जाना चाहिए। स्वार्थ राष्ट्रिय कोई कर्म नहीं करते। सांसारिक कर्म दूसरी भाषियों के लिए है, नहीं। राष्ट्रियों से मेरा वह निवेदन है कि वे जो कुछ जानते हैं, और सबियों से उन्हें निज ज्ञान एवं उत्कृष्टि का संभव निज है, भारतीय जनता को उन्नत करने के लिए चतुष्टय प्रयत्न करें। क्या है इसका स्वरूप करना भारतीय राष्ट्रियों का स्वयं है 'राष्ट्रियों को जो ज्ञान सम्मान और विश्व अधिकार मिले जाये वह है कि उनके पाठ करने का साधन है।' उन्हें वह साधन जोरदार मदार न बाँट देना चाहिए। वह सब है कि राष्ट्रियों में ही भाषियों में करने का साधन निज। और उन्हें ही ज्ञान नहीं, उन दूसरी भाषियों में स्वयं के ज्ञान का उन्मेष ही नहीं हुआ था, बीज के लिए सब कुछ छोड़ा। वह राष्ट्रियों का दोष नहीं कि वे अन्य भाषियों में जाने लगे। दूसरी भाषियों में ही राष्ट्रियों की उत्कृष्टि करने की चेष्टा नहीं की? क्यों उन्हें ज्ञान की रास्ता राष्ट्रियों की माँ के लिए दिया?

परन्तु दूसरी की जेबा अधिक उत्तर होना तथा पुनितार्थ ज्ञान उत्कृष्टि का ज्ञान है और पुनर्जात के लिए उन्हें ज्ञाने एवमा दूसरी ज्ञान। ज्ञान का जो बुरे उद्देश्य के हेतु ज्ञानी जानी है तो वह ज्ञानी ही जानी है, उत्कृष्टि ज्ञान के लिए ही होता चाहिए। जो ज्ञानी की वह अधिक ज्ञान ज्ञान उत्कृष्टि, ज्ञान राष्ट्रिय मर्याद होने जाये है। अब साधारण जनता की ज्ञान ज्ञान, और ज्ञान ज्ञान साधारण जनता को वह ज्ञान नहीं ही उन्मेष ज्ञानियों का ज्ञान मर्याद हो गया था। इस को दूसरी क्यों नभ ज्ञान पर ज्ञान जोरदार कि किनीच कीरी नभे ज्ञाने ज्ञाने रहे ज्ञान ज्ञान नहीं है कि राष्ट्रियों में ज्ञान के है

1. राष्ट्रियों को ज्ञानियों के पुनर्जातियों के लिए।

2. ज्ञान: ज्ञानियों के ज्ञानियों के लिए। 3. ज्ञानियों के लिए।

इसके सिवा हमारे भीतर एक और बड़ा भारी दोष है। महिलाएँ मुझे क्षमा करेंगी, पर असल बात यह है कि सदियों से गुलामी करते करते हम औरतो के राष्ट्र के समान बन गये हैं। चाहे इस देश में हो या किसी अन्य देश में, कहीं भी तुम तीन स्त्रियों को शायद ही कभी एक साथ पाँच मिनट से अधिक देर तक झगडा किये बिना देख पाओगे। यूरोपीय देशों में स्त्रियाँ बहुत बड़ी बड़ी सभा-समितियाँ स्थापित करती हैं और अपनी शक्ति की बड़ी बड़ी घोषणाएँ करती हैं। इसके बाद वे आपस में झगडा करने लग जाती हैं। इसी वीच कोई पुरुष आता है और उन पर अपना प्रभुत्व जमा लेता है। सारे ससार में उन पर शासन करने के लिए अब भी पुरुषों की आवश्यकता होती है। हमारी भी ठीक वही हालत है। हम भी स्त्रियों के समान हो गये हैं। यदि कोई स्त्री स्त्रियों का नेतृत्व करने चलती है, तो सब मिलकर फौरन उसकी खरी आलोचना करना शुरू कर देती हैं—उसकी खिल्लियाँ उड़ाने लग जाती हैं, और अन्त में उसे नेतृत्व से हटाकर, उसे बैठाकर ही दम लेती हैं। यदि कोई पुरुष आता है और उनके साथ ज़रा सख्त वर्ताव करता है और वीच वीच में डाँट फटकार सुना देता है, तो वस ठीक हो जाती हैं, इस प्रकार के वशीकरण की वे अम्यस्त हो गयी हैं। सारा ससार ही इस प्रकार के वशीकरण एव सम्मोहन करनेवालों से भरा है। ठीक इसी तरह यदि हम लोगों में से किसीने आगे बढ़ना चाहा, हमें रास्ता दिखाने की कोशिश की, तो हम फौरन उसकी टाँग पकडकर पीछे खींचेंगे और उसे विठा देंगे। परन्तु यदि कोई विदेशी हमारे वीच में कूद पड़े और हमें पैरों से ठोकर मारे, तो हम बड़ी खुशी से उसके पैर सहलाने लग जायेंगे। हम लोग इसके अम्यस्त हो गये हैं। क्या ऐसी बात नहीं है? और कहीं गुलाम स्वामी बन सकता है, इसलिए गुलाम बनना छोड़ो।

आगामी पचास वर्ष के लिए यह जननी जन्मभूमि भारतमाता ही मानो आराध्य देवी बन जाय। तब तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी-देवताओं के हट जाने में कुछ भी हानि नहीं है। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी-देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी-देवताओं को हम देख नहीं पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौड़ें और जिस विराट् देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करें? जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेंगे, तभी हम दूसरे देव-देवियों की पूजा करने योग्य होंगे, अन्यथा नहीं। आष मील चलने की हमें शक्ति ही नहीं और हम हनुमान जी की तरह एक ही छलाँग में समुद्र पार करने की इच्छा करें, ऐसा नहीं हो सकता। जिसे देखो वही योगी बनने की धुन में है, जिसे देखो वही समाधि

बहु कौन सी वस्तु है, जिसके द्वारा कुछ बार करोड़ अंग्रेज पूरे तीस करोड़ भारत-वासियों पर शासन करते हैं? इस प्रश्न का यमोवैज्ञानिक समाधान क्या है? यही कि वे बार करोड़ मनुष्य अपनी अपनी इच्छाशक्ति को समवेत कर देते हैं अर्थात् शक्ति का अनन्त साधार बना लेते हैं और तुम तीस करोड़ मनुष्य अपनी अपनी इच्छाओं को एक दूसरे से पूरक किये रहते हो। बस यही इसका रहस्य है कि वे कम होकर भी तुम्हारे ऊपर शासन करते हैं। अतः यदि भारत को महान् बनाना है, उसका भविष्य उज्ज्वल बनाना है, तो इसके लिए आवश्यकता है सबल की शक्ति-समृद्ध की और बिल्टी हुई इच्छाशक्ति को एकत्र कर उसमें समन्वय आने की।

अपनवेदसंहिता की एक विस्मयमय श्लोका याद आ यमी जिसमें कहा गया है 'तुम सब लोग एक मन हो जाओ सब लोग एक ही विचार के बन जाओ क्योंकि प्राचीन काल में एक मन होने के कारण ही देवताओं में शक्ति पायी है।' देवता मनुष्य द्वारा इसीलिए पूजे गये कि वे एकचित्त वे एक मन हो जाते ही समाज गठन का रहस्य है। और यदि तुम 'आर्य' और 'अभिड़' 'ब्राह्मण' और 'अब्राह्मण' जैसे तुच्छ विषयों को लेकर 'तू तू मैं मैं' करोगे—बागड़े और पारस्परिक विरोध मात्र को बढ़ाओगे—तो समाज की कि तुम उस शक्ति-समृद्ध से दूर हटते जाओगे जिसके द्वारा भारत का भविष्य बनने जा रहा है। इस बात को याद रखो कि भारत का भविष्य सम्पूर्णतः उसी पर निर्भर करता है। बस इच्छा-शक्ति का सबब और उनका समन्वय कर उन्हें एकमुँही करना ही वह सारा रहस्य है। प्रत्येक चीनी अपनी शक्तियों को निश्चिन्त भावों से परिचायित करता है तथा मूढ़ी मर जापानी अपनी इच्छा-शक्ति एक ही मार्ग से परिचायित करते हैं, और उसका फल क्या हुआ है वह तुम लोगों से क्या नहीं है। इसी तरह की बात सारे संसार में देखने में आती है। यदि तुम संसार के इतिहास पर दृष्टि डालो तो तुम देखोगे कि सर्वत्र छोटे छोटे सुगठित राष्ट्र बड़े बड़े असंगठित राष्ट्रों पर शासन कर रहे हैं। ऐसा शौला स्वाभाविक है, क्योंकि छोटे संगठित राष्ट्र अपने भावों को आसानी के साथ केन्द्रीभूत कर सकते हैं। और इस प्रकार वे अपनी शक्ति को विकसित करने में समर्थ होते हैं। दूसरी ओर जितना बड़ा राष्ट्र होगा उतना ही संगठित करना कठिन होगा। वे मानो अनिर्घथित लोगों की भीड़ मात्र हैं वे कभी परस्पर सम्बद्ध नहीं हो सके। इसलिए वे सब मजमेद के मनके एकत्रम बन्द ही जाने चाहिए।

१ संगठनार्थं अथर्वणं सं चो मनसि जातम् ।

इहा भागं यथा पूर्वं संजानामा उपासते ॥ १।६।१॥

इसके सिवा हमारे भीतर एक और बड़ा भारी दोष है। महिलाएँ मुझे क्षमा करेंगी, पर असल बात यह है कि सदियों से गुलामी करते करते हम औरतो के राष्ट्र के समान बन गये हैं। चाहे इस देश में हो या किसी अन्य देश में, कहीं भी तुम तीन स्त्रियों को शायद ही कभी एक साथ पाँच मिनट से अधिक देर तक झगडा किये बिना देख पाओगे। यूरोपीय देशों में स्त्रियाँ बहुत बड़ी बड़ी सभा-समितियाँ स्थापित करती हैं और अपनी शक्ति की बड़ी बड़ी घोषणाएँ करती हैं। इसके बाद वे आपस में झगडा करने लग जाती हैं। इसी बीच कोई पुरुष आता है और उन पर अपना प्रभुत्व जमा लेता है। सारे सप्ताह में उन पर शासन करने के लिए अब भी पुरुषों की आवश्यकता होती है। हमारी भी ठीक वही हालत है। हम भी स्त्रियों के समान हो गये हैं। यदि कोई स्त्री स्त्रियों का नेतृत्व करने चलती है, तो सब मिलकर फौरन उसकी खरी आलोचना करना शुरू कर देती हैं—उसकी खिल्लियाँ उड़ाने लग जाती हैं, और अन्त में उसे नेतृत्व से हटाकर, उसे बैठाकर ही दम लेती है। यदि कोई पुरुष आता है और उनके साथ ज़रा सख्त वर्ताव करता है और बीच बीच में डाँट फटकार सुना देता है, तो वस ठीक हो जाती है, इस प्रकार के वशीकरण की वे अम्प्यस्त हो गयी हैं। सारा सप्ताह ही इस प्रकार के वशीकरण एव सम्मोहन करनेवालों से भरा है। ठीक इसी तरह यदि हम लोगों में से किसीने आगे बढ़ना चाहा, हमें रास्ता दिखाने की कोशिश की, तो हम फौरन उसकी टाँग पकड़कर पीछे खींचेंगे और उसे बिठा देंगे। परन्तु यदि कोई विदेशी हमारे बीच में कूद पड़े और हमें पैरों से ठोकर मारे, तो हम बड़ी खुशी से उसके पैर सहलाने लग जायेंगे। हम लोग इसके अम्प्यस्त हो गये हैं। क्या ऐसी बात नहीं है? और कहीं गुलाम स्वामी बन सकता है, इसलिए गुलाम बनना छोड़ो।

आगामी पचास वर्ष के लिए यह जननी जन्मभूमि भारतमाता ही मानो आराध्य देवी बन जाय। तब तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी-देवताओं के हट जाने में कुछ भी हानि नहीं है। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी-देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी-देवताओं को हम देख नहीं पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौड़ें और जिस विराट् देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करें? जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेंगे, तभी हम दूसरे देव-देवियों की पूजा करने योग्य होंगे, अन्यथा नहीं। आघ मील चलने की हमें शक्ति ही नहीं और हम हनुमान जी की तरह एक ही छलाँग में समुद्र पार करने की इच्छा करें, ऐसा नहीं हो सकता। जिसे देखो वही योगी बनने की धुन में है, जिसे देखो वही समाधि

सगाने जा रहा है! ऐसा नहीं होने का। दिन भर तो दुनिया के सैकड़ों प्रपञ्चों में छिप्ट रहोगे कर्मकांड में व्यस्त रहोगे और शाम को आँख मूँदकर, नाक पकाकर साँस बड़ाओ-उतारोबे। क्या योग की सिद्धि और समाधि को इतना सहज समझ रखा है कि ऋषि लोग तुम्हारे तीन बार नाक फड़फड़ाने और साँस पड़ाने से हुना में मिरकर तुम्हारे पेट में बस जायेंगे? क्या इसे तुमने कोई हौसी मजाक मान लिया है? ये सब विचार बाहिर्यात हैं। जिसे ग्रहण करने या अपमान की आवश्यकता है, वह है विद्यपुष्टि। और उसकी प्राप्ति कैसे होती है? इसका उत्तर यह है कि सबसे पहले उस विद्युत की पूजा करो जिसे तुम अपने पारों और देस रहे हो—'उसकी पूजा करो। 'ब्रह्मिण' ही इस संस्तुत शब्द का ठीक समानार्थक है, ब्रह्मिणी के किसी अन्य शब्द से काम नहीं चलेगा। ये मनुष्य और पशु, जिन्हें हम वास-वास और आने-पीछे बेख रहे हैं ये ही हमारे ईश्वर हैं। इनमें सबसे पहले पूज्य हैं हमारे अपने देसवासी। परस्पर ईर्ष्या-द्वेष करने और सगड़ने के बजाय हमें उनकी पूजा करनी चाहिए। यह अत्यन्त मयाबह कर्म है, जिसके लिए हम कसेस जोक रहे हैं। फिर भी हमारी आँसे नहीं बुझती।

बस्तु यह विषय इतना विस्तृत है कि मेरी समझ में ही नहीं आता कि मैं कहीं पर अपना बक्तव्य समाप्त करूँ। इसमिद् मत्रास में मैं किस प्रकार काम करना चाहता हूँ इस विषय में समीप में अपना मत व्यक्त कर व्याख्यान समाप्त करता हूँ। सबसे पहले हमें अपनी जाति की आध्यात्मिक और लौकिक शिक्षा का भार ग्रहण करना होगा। क्या तुम इस बात की सार्थकता को समझ रहे हो? तुम्हें इस विषय पर सोचना विचारना होगा इस पर तर्क चित्तर्क और आपस में परामर्श करना होना विमान सगाना होना और अन्त में उसे कार्य रूप में परिणत करना होगा। जब तक तुम यह काम पूरा नहीं करते हो तब तक तुम्हारी जाति का उद्धार होना असम्भव है। जो शिक्षा तुम अभी पा रहे हो, उसमें कुछ बज्जा अंग भी है और बुटाइया बहुत है। इसलिए ये बुटाइया उसके भले अंग को रखा देती हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि यह शिक्षा मनुष्य बनानेवासी नहीं बड़ी जा सनती। यह शिक्षा केवल तथा सम्पूर्वत नियन्त्रात्मक है। निवेदात्मक शिक्षा या निवेध की दुनियाद पर आधारित शिक्षा मनुष्य में भी मयात्मक है। कामक मति याकक पाठ्याका धर्म मती होना है और सबसे पहली बात जो उसे सिनायी जाती है, वह यह कि तुम्हारा बाप मूर्ख है। दूसरी बात जो वह सीपता है वह यह है कि

१ अब मां तर्कभूतेषु भूतात्मानं हतात्मयम् ।

अहंविद्वातमानाम्पां मीम्याद्विद्वान् अक्षया ॥ श्रीमद्भागवत १।२९।३७॥

तुम्हारा दादा पागल है। तीसरी बात है कि तुम्हारे जितने शिक्षक और आचार्य हैं, वे पाखंडी हैं। और चौथी बात है कि तुम्हारे जितने पवित्र धर्म ग्रन्थ हैं, उनमें झूठी और कपोलकल्पित बातें भरी हुई हैं। इस प्रकार की निपेघात्मक बातें सीखते सीखते जब बालक सोलह वर्ष की अवस्था को पहुँचता है, तब वह निपेघो की खान बन जाता है—उसमें न जान रहती है और न रीढ़। अतः इसका जैसा परिणाम होना चाहिए था, वैसा ही हुआ है। पिछले पचास वर्षों से दी जानेवाली इस शिक्षा ने तीनो प्रान्तों में एक भी स्वतंत्र विचारो का मनुष्य पैदा नहीं किया, और जो स्वतंत्र विचार के लोग हैं, उन्होंने यहाँ शिक्षा नहीं पायी है, विदेशों में पायी है, अथवा अपने भ्रममूलक कुसंस्कारों का निवारण करने के लिए पुनः अपने पुराने शिक्षालयों में जाकर अध्ययन किया है। शिक्षा का मतलब यह नहीं है कि तुम्हारे दिमाग में ऐसी बहुत सी बातें इस तरह ठूस दी जायँ कि अन्तर्द्वन्द्व होने लगे और तुम्हारा दिमाग उन्हें जीवन भर पचा न सके। जिस शिक्षा से हम अपना जीवन निर्माण कर सकें, मनुष्य बन सकें, चरित्र गठन कर सकें और विचारों का सामंजस्य कर सकें, वही वास्तव में शिक्षा कहलाने योग्य है। यदि तुम पाँच ही भावों को पचा कर तदनुसार जीवन और चरित्र गठित कर सके हो, तो तुम्हारी शिक्षा उस आदमी की अपेक्षा बहुत अधिक है, जिसने एक पूरे पुस्तकालय को कठस्थ कर रखा है। कहा भी है—**यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।** अर्थात्—'वह गधा, जिसके ऊपर चन्दन की लकड़ियों का बोझ लाद दिया गया हो, बोझ की ही बात जान सकता है, चन्दन के मूल्य को वह नहीं समझ सकता।' यदि बहुत तरह की खबरों का सचय करना ही शिक्षा है, तब तो ये पुस्तकालय ससार में सर्वश्रेष्ठ मुनि और विश्वकोश ही ऋषि हैं। इसलिए हमारा आदर्श यह होना चाहिए कि अपने देश की समग्र आध्यात्मिक और लौकिक शिक्षा के प्रचार का भार अपने हाथों में ले लें और जहाँ तक सम्भव हो, राष्ट्रीय रीति से राष्ट्रीय सिद्धान्तों के आधार पर शिक्षा का विस्तार करें। हाँ, यह ठीक है कि यह एक बहुत बड़ी योजना है। मैं नहीं कह सकता कि यह कभी भी कार्य रूप में परिणत होगी या नहीं, पर इसका विचार छोड़कर हमें यह काम फौरन शुरू कर देना चाहिए। लेकिन कैसे? किस तरह से काम में हाथ लगाया जाय? उदाहरण के लिए मद्रास का ही काम लें। सबसे पहले हमें एक मन्दिर की आवश्यकता है, क्योंकि सभी कार्यों में प्रथम स्थान हिन्दू लोग धर्म को ही देते हैं। तुम कहोगे कि ऐसा होने से हिन्दुओं के विभिन्न मतानुसारियों में परस्पर झगड़े होने लगेंगे। पर मैं तुमको किसी मत विशेष के अनुसार वह मन्दिर बनाने को नहीं कहता। वह इन साम्प्रदायिक भेद भावों के परे होगा। उसका एकमात्र प्रतीक होगा ॐ, जो कि हमारे किसी भी धर्म सम्प्रदाय के

मिद महात्मम प्रतीक है। यदि हिन्दुओं में कोई ऐसा सम्प्रदाय हो जो इस बीकार को न माने तो समझ लो कि वह हिन्दू कहलाने योग्य नहीं है। वही सब लोग अपने अपने सम्प्रदाय के अनुसार ही हिन्दुत्व की व्याख्या कर सकेंगे पर मन्दिर हम सब के लिए एक ही क्षात्र चाहिए। अपने सम्प्रदाय के अनुसार जो देवी देवताओं की प्रतिमा-पूजा करना चाहें, अथवा जाकर करें, पर इस मन्दिर में वे भीतों न भयङ्ग न करें। इस मन्दिर में वे ही धार्मिक तत्त्व समझाये जायेंगे जो सब सम्प्रदायों में समान हैं। साथ ही हर एक सम्प्रदायवाले को अपने मत की शिक्षा देने का यहाँ पर अधिकार रहेगा पर एक प्रतिबन्ध रहेगा कि वे अन्य सम्प्रदायों से भगड़ा नहीं करने पायेंगे। सोचो तुम क्या कहते हो? ससार तुम्हारी राय जानना चाहता है, उसे यह सुनने का समय नहीं है कि तुम भीतों के विषय में क्या विचार प्रकट कर रहे हो। भीतों की बात छोड़ तुम अपनी ही ओर ध्यान दो।

इस मन्दिर के सम्बन्ध में एक दूसरी बात यह है कि इसके साथ ही एक भीरु संस्था है जिससे धार्मिक शिक्षण और प्रचारक तैयार किये जायें और वे सभी पुनः-फिरकर धर्म प्रचार करने को भेजे जायें। परन्तु ये केवल धर्म का ही प्रचार न कर, बल्कि उसका साथ साथ लौकिक शिक्षा का भी प्रचार करें। जैसे हम धर्म का प्रचार द्वार द्वार जाकर करते हैं वैसे ही हमें लौकिक शिक्षा का भी प्रचार करना पड़ेगा। यह काम आसानी से हो सकता है। शिक्षकों तथा धर्म प्रचारकों के द्वारा हमारे कार्य का विस्तार होना आवश्यक और कमजोर अन्य स्थायों में ऐसे ही मन्दिर प्रतिष्ठित होंगे और इस प्रकार समस्त भारत में यह कार्य क्रम जायगा। यही मेरी योजना है। तुमको यह बड़ी भारी मातम होनी पर इसकी इस समय बहुत आवश्यकता है। तुम पूछ सकते हो, इन काम के लिए धन कहाँ से लायेगा? धन की आवश्यकता नहीं। धन कुछ नहीं है। पिछले साल क्यों कि मैं ऐसा जीवन व्यतीत कर रहा हूँ कि मैं यह बड़ी जानता हूँ आज यहाँ का रहा हूँ तो धन नहीं लाऊँगा। और न मैंने अभी इसकी परवाह ही की। धन या किसी भी धन की अब मुझे इच्छा ही नहीं बर प्राण ही जायगी। बरहि के सब करे गुनाह है कि मैं उनका गुनाह हूँ। जो धन जाना है उसे मैंने जगा ही है ही मेरे पास जाना परमा। अब उगाई को विज्ञान न बना।

अब प्रश्न यह है कि काम करनेवाला पाया क्यों है? मरण न करनेकी गुणवत्ता को ही मैंने जाना है। क्या तुम अभी जाँच और गणना गुणवत्ता गुनाह? यदि तुम गुणवत्ता गुणवत्ता है तो मैं तुमको न प्रत्यक्ष ही धर्मवत्ता उगाऊँगा है। धन जाना पर प्राण न विज्ञान बना होगा ही विज्ञान नैसा ही आवश्यकता है जो धन जाना परमा का और विज्ञान ही धर्म जायगी न बन रहा है। तुमको मेरे प्रश्न

अपने आप पर विश्वास रखो। यह विश्वास रखो कि प्रत्येक की आत्मा में अनन्त शक्ति विद्यमान है। तभी तुम सारे भारतवर्ष को पुनरुज्जीवित कर सकोगे। फिर तो हम दुनिया के सभी देशों में खुले आम जायेंगे और आगामी दस वर्षों में हमारे भाव उन सब विभिन्न शक्तियों के एक अशस्वरूप हो जायेंगे, जिनके द्वारा ससार का प्रत्येक राष्ट्र सगठित हो रहा है। हमें भारत में बसनेवाली और भारत के बाहर बसनेवाली सभी जातियों के अन्दर प्रवेश करना होगा। इसके लिए हमें कर्म करना होगा। और इस काम के लिए मुझे युवक चाहिए। वेदों में कहा है, 'युवक, बलशाली, स्वस्थ, तीव्र मेधावाले और उत्साहयुक्त मनुष्य ही ईश्वर के पास पहुँच सकते हैं।' तुम्हारे भविष्य को निश्चित करने का यही समय है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि अभी इस भरी जवानी में, इस नये जोश के जमाने में ही काम करो, जीर्ण शीर्ण हो जाने पर काम नहीं होगा। काम करो, क्योंकि काम करने का यही समय है। सबसे अधिक ताजे, बिना स्पर्श किये हुए और बिना सूँधे फूल ही भगवान् के चरणों पर चढ़ाये जाते हैं और वे उसे ही ग्रहण करते हैं। अपने पैरों आप खड़े हो जाओ, देर न करो, क्योंकि जीवन क्षणस्थायी है। वकील बनने की अभिलाषा आदि से कहीं अधिक महत्वपूर्ण कार्य करने हैं। तथा इससे भी ऊँची अभिलाषा रखो और अपनी जाति, देश, राष्ट्र और समग्र मानव समाज के कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग करना सीखो। इस जीवन में क्या है? तुम हिन्दू हो और इसलिए तुम्हारा यह सहज विश्वास है कि तुम अनन्त काल तक रहनेवाले हो। कभी कभी मेरे पास नास्तिकता के विषय पर वार्तालाप करने के लिए कुछ युवक आया करते हैं। पर मेरा विश्वास है कि कोई हिन्दू नास्तिक नहीं हो सकता। सम्भव है कि किसीने पाश्चात्य ग्रन्थ पढ़े हो और अपने को भौतिकवादी समझने लग गया हो। पर ऐसा केवल कुछ समय के लिए होता है। यह बात तुम्हारे खून के भीतर नहीं है। जो बात तुम्हारी रग रग में रमी हुई है, उसे तुम निकाल नहीं सकते और न उसकी जगह और किसी धारणा पर तुम्हारा विश्वास ही हो सकता है। इसीलिए वैसी चेष्टा करना व्यर्थ होगा। मैंने भी बाल्यावस्था में ऐसी चेष्टा की थी, पर वैसा नहीं हो सकता। जीवन की अवधि अल्प है, पर आत्मा अमर और अनन्त है, और मृत्यु अनिवार्य है। इसलिए आओ, हम अपने आगे एक महान् आदर्श खड़ा करें और उसके लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दें। यही हमारा निश्चय हो और वे भगवान्, जो हमारे शास्त्रों के अनुसार साधुओं के परित्राण के लिए ससार में बार बार आविर्भूत होते हैं, वे ही महान् कृपण हमको आशीर्वाद दें एवं हमारे उद्देश्य की मिद्धि में सहायक हो।



## दान

जब स्वामी जी मद्रास में थे उस समय एक बार उनके समापत्तित्व में 'विद्यापुरी अमरान समाजम्' नामक एक शक्तिशाली संस्था का वार्षिक समारोह मनाया गया। उस अवसर पर उन्होंने एक संक्षिप्त भाषण दिया जिसमें उन्होंने उसी समारोह के एक पूर्व वक्ता महोदय के विचारों पर कुछ प्रकाश डाला। इन वक्ता महोदय ने कहा था कि यह अनुचित है कि अन्य सब जातियों की अपेक्षा केवल ब्राह्मण को ही विशेष दान दिया जाता है। इसी प्रसंग में स्वामी जी ने कहा कि इस बात के दो पहलू हैं—एक अच्छा दूसरा बुरा। यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो प्रतीत होता कि राष्ट्र की समस्त धिमा एवं सम्पत्ता अधिकतर ब्राह्मणों में ही पायी जाती है। साथ ही ब्राह्मण ही समाज के विचारणीय तथा मननयोग्य व्यक्ति रहे हैं। यदि बोझी ढेर के सिद्ध मान लें कि तुम उनके वे साधन छीन लो जिनके सहारे वे अत्यन्त मगन करते हैं तो परिणाम यह होगा कि सारे राष्ट्र को मरका करेगा। इसके बाद स्वामी जी ने यह बतलाया कि यदि हम भारत के दान की सीली की जो बिना विचार अबका अबका के होती है, तुम्हारा दूसरे राष्ट्रों की उस सीली से करें जिसका एक प्रकार से कानूनी रूप होता है, तो हमें यह प्रतीत होगा कि हमारे यहाँ एक मिलजुग भी अब उतने से समुपलब्ध हो जाता है जो उसे सुरक्षित रखा जाय और उतने में ही वह अपनी सज की बिखरी बसर करता है। परन्तु इसके विपरीत पारश्चात्य देशों में पहली बात तो यह है कि कानून मिलजुगों को सेवामय में जाने के लिए बाध्य करता है। परन्तु मनुष्य मौजब की अपेक्षा स्वतन्त्रता अधिक पसन्द करता है, इसलिए वह सेवामय में न जाकर समाज का दुश्मन बान बन जाता है। और फिर इसी कारण हमें इस बात की बकरत पड़ती है कि हम बराबर पुकिष जेज तथा अन्य सामनों का निर्माण कर। यह निश्चित है कि समाज के अंदर में जब तक 'सम्पत्ता' नामक बीमारी बनी रहेगी, जब तक उसके साथ साथ गरीबी रहेगी और इसीलिए अमीरों को सहायता देने की आवश्यकता भी रहेगी। यही कारण है कि भारतवासियों की बिना सेवामय की दान सीली और पारश्चात्य देशों की बिनेबमूस्क दान सीली में, नज़रों, बनुता, पड़ेगा। भारतीय दान, बीसी, ये, बहूँ, नज़, मनुष्यसिद्धों की बात है, उनका तो यह हाल है कि मके ही उनमें से कोई अपने सम्पासी न हों परन्तु फिर भी उन्हें मिसाटन करने के लिए अपने सासनों के कम से कम कुछ अंशों को

आपका कार्य बड़ा। अनेक राज्यों के भिन्न भिन्न शहरों से आपके पास निमंत्रण पर निमंत्रण आते रहे और उन्हें भी आपको स्वीकार करना पड़ता था, कितने ही प्रकार की शकाओं का समाधान करना होता था, प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता था, लोगों की अनेक समस्याओं को हल करना पड़ता था और हम जानते हैं कि यह सारा कार्य आपने बड़े उत्साह एवं योग्यता तथा सच्चाई के साथ किया। इस सबका फल भी चिरस्थायी ही निकला। आपकी शिक्षाओं का अमरीकी राष्ट्रमंडल के अनेक प्रबुद्ध क्षेत्रों पर बड़ा गहरा असर पड़ा और उसीके कारण उन लोगों में अनेक दिशाओं में विचार विनिमय, मनन तथा अन्वेषण का भी बीजारोपण हुआ। अनेक लोगों की हिन्दू धर्म के प्रति जो प्राचीन गलत धारणाएँ थी, वे भी बदल गयी और हिन्दू धर्म के प्रति उनकी श्रद्धा एवं भक्ति बढ गयी। उसके बाद शीघ्र ही धर्म सम्बन्धी तुलनात्मक अध्ययन तथा आध्यात्मिक तत्त्वों के अन्वेषण के लिए जो अनेक नये नये क्लब तथा समितियाँ स्थापित हुईं, वे इस बात की स्पष्ट द्योतक हैं कि दूर पाश्चात्य देशों में आपके प्रयत्नों का फल क्या हुआ तथा कैसा हुआ। आप तो लन्दन में वेदान्त-दर्शन की शिक्षा प्रदान करनेवाले विद्यालय के संस्थापक कहे जा सकते हैं। आपके नियमित रूप से व्याख्यान होते रहे, जनता भी उन्हें ठीक समय पर सुनने आयी तथा उनकी व्यापक रूप से प्रशंसा हुई। निश्चय ही उनका प्रभाव व्याख्यान-भवन तक ही सीमित नहीं रहा, वरन् उसके बाहर भी हुआ। आपकी शिक्षाओं द्वारा जनता में जिस प्रीति तथा श्रद्धा का उद्रेक हुआ, उसका द्योतक वह भावनापूर्ण मान-पत्र है, जो आपको लन्दन छोड़ते समय वहाँ के वेदान्त-दर्शन के विद्यार्थियों ने दिया था।

वेदान्ताचार्य के नाते आपको जो सफलता प्राप्त हुई, उसका कारण केवल यही नहीं रहा है कि आप आर्य धर्म के सत्य सिद्धान्तों से गहन रूप से परिचित हैं, और न यही कि आपके भाषण तथा लेख इतने सुन्दर तथा जोशीले होते हैं, वरन् इसका कारण मुख्यतः स्वयं आपका व्यक्तित्व ही रहा है। आपके भाषण, निबन्ध तथा पुस्तकों में आध्यात्मिकता तथा साहित्यिक दोनों प्रकार की विशेषताएँ हैं और इसलिए अपना पूरा असर किये बिना वे कभी रह ही नहीं सकते। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि इनका प्रभाव यदि और भी अधिक पड़ा है तो उसका कारण है, आपका सादा, परोपकारी तथा निस्वार्थ जीवन, आपकी नम्रता, आपकी भक्ति तथा आपकी लगन।

यहाँ पर जब हम आपकी उन सेवाओं का उल्लेख कर रहे हैं जो आपने हिन्दू धर्म के उदात्त सत्य सिद्धान्तों के आचार्य होने के नाते की हैं, तो हम अपना यह परम कर्तव्य समझते हैं कि हम आपके पूज्य गुरुदेव तथा पथप्रदर्शक श्री रामकृष्ण परमहंस

## कलकत्ता-अभिनन्दन का उत्तर

स्वामी जी जब कलकत्ता पहुँचे तो लोगों ने उनका स्वागत बड़े जोश-खोश के साथ किया। दाहुर के अनेक सभे सत्राये रास्तों से उनका बड़ा भाठी जुसूम निकला और रास्ते के चारों ओर जनता की जबरदस्त भीड़ बनी जो उनका दर्शन पाने के लिए उत्सुक थी। उनका औपचारिक स्वागत एक सप्ताह बाद सोमा बाजार के स्व. राजा रामाकान्तदेव बहादुर के निवासस्थान पर हुआ जिसका समापतिरत राजा विनयकृष्ण देव बहादुर ने किया। समापति द्वारा कुछ संक्षिप्त परिचय के साथ स्वामी जी की सेवा में निम्नलिखित मान-गान एक सुन्दर चौड़ी की मञ्जूपा से रत्नकर भेंट किया गया—

सेवा में

श्रीमत् स्वामी विवेकानन्द जी

प्रिय बन्धु,

हम कलकत्ता तथा बंगाल के अन्य स्थानों के हिन्दू निवासी आज आपके अपनी पश्चिमभूमि में वापस आने के अवसर पर आपका हृदय से स्वागत करते हैं। महाराज आपका स्वागत करते समय हम अत्यन्त गर्व तथा हृतसता का अनुभव करते हैं क्योंकि आपने महान् कर्म तथा आदर्श द्वारा संसार के निम्न निम्न भागों में केवल हमारे बर्म की ही नीरवस्थित नहीं किया है, बरन् हमारे देश और विशेषतः हमारे बंगाल प्रान्त का सिर ऊँचा किया है।

सन् १८९३ ई. में सिकासो सहर में जो विश्व-मेला हुआ था उसकी अंभभूत बर्म-महासभा के अवसर पर आपने आर्य बर्म के तत्त्वों का विशेष रूप से बर्णन किया। आपके भाषण का धार अधिकतर श्रोताओं के लिए बड़ा शिक्षाप्रद तथा रहस्योद्घाटन करनेवाला था और और तथा मार्चुर्न के कारण वह उसी प्रकार हृदयप्रशी भी था। सम्भव है कि आपके उस भाषण को कुछ लोगों ने सन्नेह की दृष्टि से सुना हो तथा कुछ ने उस पर तर्क विठर्क भी किया हो परन्तु इसका सामान्य प्रभाव तो बड़ी हुआ कि उसके द्वारा अधिकतर शिक्षित अमरीकी जनता के धार्मिक विचारों में अग्रति हो गयी। उनके मन में जो एक गया प्रकाश पड़ा उसका उन्होंने अपनी स्वाभाविक निष्कपटता तथा सत्य के प्रति अनुत्तम के बस हो अधिक से अधिक काम उठाने का निश्चय किया। फलतः आपकी विस्तृत सुधीय प्राप्त हुआ और

स्वामी जी ने इसका निम्नलिखित उत्तर दिया

### स्वामी जी का भाषण

मनुष्य अपनी व्यक्ति-चेतना को सार्वभौम चेतना में लीन कर देना चाहता है, वह जगत् प्रपञ्च का कुल सम्बन्ध छोड़ देना चाहता है, वह अपने समस्त सम्बन्धों की माया काटकर ससार से दूर भाग जाना चाहता है। वह सम्पूर्ण दैहिक पुराने सस्कारों को छोड़ने की चेष्टा करता है। यहाँ तक कि वह एक देहधारी मनुष्य है, इसे भी भूलने का भरसक प्रयत्न करता है। परन्तु अपने अन्तर के अन्तर में सदा ही एक मृदु अस्फुट ध्वनि उसे सुनायी पड़ती है, उसके कानों में सदा ही एक स्वर वज्रता रहता है, न जाने कौन दिन रात उसके कानों में मधुर स्वर से कहता रहता है, पूर्व में हो या पश्चिम में, **जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।** भारत साम्राज्य की राजधानी के अधिवासियों, तुम्हारे पास मैं सन्यासी के रूप में नहीं, धर्मप्रचारक की हैसियत से भी नहीं, बल्कि पहले की तरह कलकत्ते के उसी बालक के रूप में बातचीत करने के लिए आया हुआ हूँ। हाँ, मेरी इच्छा होती है कि आज इस नगर के रास्ते की धूल पर बैठकर बालक की तरह सरल अन्तःकरण से तुमसे अपने मन की सब बातें खोल कर कहूँ। तुम लोगो ने मुझे अनुपम शब्द 'भाई' सम्बोधित किया है, इसके लिए तुम्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ। हाँ, मैं तुम्हारा भाई हूँ, तुम भी मेरे भाई हो। पश्चिमी देशों से लौटने के कुछ ही समय पहले एक अंग्रेज मित्र ने मुझसे पूछा था, 'स्वामी जी, चार वर्षों तक विलास की लीलाभूमि-गौरवशाली महाशक्तिमान् पश्चिमी भूमि पर भ्रमण कर चुकने पर आपकी मातृभूमि अब आपको कैसी लगेगी? मैं बस यही कह सका, 'पश्चिम में आने से पहले भारत को मैं प्यार ही करता था, अब तो भारत की धूल ही मेरे लिए पवित्र है, भारत की हवा अब मेरे लिए पावन है, भारत अब मेरे लिए तीर्थ है।'

कलकत्तावासियों, मेरे भाइयों, तुम लोगो ने मेरे प्रति जो अनुग्रह दिखाया है, उसके लिए तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रकट करने में मैं असमर्थ हूँ। अथवा तुम्हें धन्यवाद ही क्या दूँ, क्योंकि तुम मेरे भाई हो—तुमने भाई का, एक हिन्दू भाई का ही कर्तव्य निभाया है, क्योंकि ऐसा पारिवारिक बन्धन, ऐसा सम्बन्ध, ऐसा प्रेम हमारी मातृभूमि की सीमा के बाहर और कहीं नहीं है।

शिकागो की धर्म-महासभा निस्सन्देह एक विराट् समारोह थी। भारत के कितने ही नगरो से हम लोगो ने इस सभा के आयोजक महानुभावों को धन्यवाद दिया है। हम लोगो के प्रति उन्होंने जैसी अनुकम्पा प्रदर्शित की है, उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं, परन्तु इस धर्म-महासभा का यथार्थ इतिहास मैं तुम्हें सुना

को भी अपनी शक्तोंमि अर्पित करें। मुख्यतः उन्हींके कारण हमें आपकी प्राप्ति हुई है। अपनी अद्वितीय रहस्यमयी अन्तर्दृष्टि द्वारा उन्होंने आपमें उस ईश्वरी शक्ति का ब्रह्म ही पहचान लिया था और आपके लिए उस उच्च जीवन की मन्त्रिणा बानी कर दी थी जिसे आज हम हर्षपूर्वक सफल होते देख रहे हैं। यह वे ही थे जिन्होंने आपकी जिन्दी हुई ईश्वरी शक्ति तथा दिव्य दृष्टि को आपके लिए लोक दिया आपके विचारों एवं जीवन के उद्देश्यों को ईश्वरी मुकाम दे दिया तथा उस अदृश्य राज्य के तत्त्वों के अन्वेषण में आपको सहायता प्रदान की। भावी पीढ़ियों के लिए उनकी अमूर्त्य विरासत आप ही हैं।

हे महात्मन् बुद्धता और ब्रह्मापुरी के साथ उसी मार्ग पर बढ़े जलिये, जो आपने अपने कार्य के लिए चुना है। आपके सम्मूल सारा संसार जीतने को है। आपको हिन्दू धर्म की व्याख्या करनी है और उसका सर्वत्र अन्तर्निहित से निकल नास्तिक तथा मानवमूलक बने बने एक पहचाना है। जिस उच्छाह से आपने कार्य आरम्भ किया उससे हम मुग्ध हो बने हैं और आपने जो सफलता प्राप्त कर ली है, वह कितने ही देशों को बाध है। परन्तु अभी भी कार्य का क्राफ़ी अंश शेष है और उसके लिए हमारा बेश बलिक हम कह सकते हैं आपका ही बेश आपकी और निहार रहा है। हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा प्रचार अभी कितने ही हिन्दुओं के निकट आपको करना है। अतएव आप इस महान् कार्य में संकल्प हों। हमें आपमें तथा अपने इस सत्कार्य के ध्येय में पूर्ण विश्वास है। हमारा राष्ट्रीय धर्म इस बात का इच्छुक नहीं है कि उसे कोई भौतिक विजय प्राप्त हो। इसका ध्येय सर्वत्र आम्ना रिशक्ता रहा है, और इसका साधन सर्वत्र सत्य रहा है, जो इन धर्मचक्रुओं से परे है तथा जो केवल ज्ञान-दृष्टि से ही देखा जा सकता है। आप समस्त संसार को और जहाँ आवश्यक हो हिन्दुओं को भी जगा दीजिये, ताकि वे अपने ज्ञान धर्म को ही इन्द्रियों से परे ही धार्मिक इन्धो का उचित रूप से अभ्यस्यन करें, परम सत्य का साक्षात्कार करें और मनुष्य होने के नाते अपने कर्तव्य तथा स्वान का अनुभव करें। इस प्रकार की आपत्ति कराने या उद्बोधन के लिए आपसे बढ़कर अधिक शोष्य कोई नहीं है। अपनी ओर से हम आपको यह सर्वत्र ही पूर्ण विश्वास दिलाते हैं कि आपके इस सत्कार्य में जिसका बीजा आपने स्पष्टतः ईश्वरी प्रेरणा से उठाया है हमारा सर्वत्र ही हार्दिक भक्तिपूर्ण तथा सेवात्म में विनम्र सहयोग रहेगा।

परम मित्र बन्धु

हम हैं,

आपके मित्र मित्र तथा मन्त्रपत्र

स्वामी जी ने इसका निम्नलिखित उत्तर दिया .

### स्वामी जी का भाषण

मनुष्य अपनी व्यक्ति-चेतना को सार्वभौम चेतना में लीन कर देना चाहता है, वह जगत् प्रपञ्च का कुल सम्बन्ध छोड़ देना चाहता है, वह अपने समस्त सम्बन्धों की माया काटकर ससार से दूर भाग जाना चाहता है। वह सम्पूर्ण दैहिक पुराने सस्कारों को छोड़ने की चेष्टा करता है। यहाँ तक कि वह एक देहधारी मनुष्य है, इसे भी भूलने का भरसक प्रयत्न करता है। परन्तु अपने अन्तर के अन्तर में सदा ही एक मृदु अस्फुट ध्वनि उसे सुनायी पड़ती है, उसके कानों में सदा ही एक स्वर वज्रता रहता है, न जाने कौन दिन रात उसके कानों में मधुर स्वर से कहता रहता है, पूर्व में हो या पश्चिम में, जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। भारत साम्राज्य की राजधानी के अधिवासियों, तुम्हारे पास मैं सन्यासी के रूप में नहीं, धर्मप्रचारक की हैसियत से भी नहीं, बल्कि पहले की तरह कलकत्ते के उसी बालक के रूप में बातचीत करने के लिए आया हुआ हूँ। हाँ, मेरी इच्छा होती है कि आज इस नगर के रास्ते की धूल पर बैठकर बालक की तरह सरल अन्तःकरण से तुमसे अपने मन की सब बातें खोल कर कहूँ। तुम लोगो ने मुझे अनुपम शब्द 'भाई' सम्बोधित किया है, इसके लिए तुम्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ। हाँ, मैं तुम्हारा भाई हूँ, तुम भी मेरे भाई हो। पश्चिमी देशों से लौटने के कुछ ही समय पहले एक अग्रज मित्र ने मुझसे पूछा था, 'स्वामी जी, चार वर्षों तक विलास की लीलाभूमि गौरवशाली महाशक्तिमान् पश्चिमी भूमि पर भ्रमण कर चुकने पर आपकी मातृभूमि अब आपको कैसी लगेगी ? मैं बस यही कह सका, 'पश्चिम में आने से पहले भारत को मैं प्यार ही करता था, अब तो भारत की धूल ही मेरे लिए पवित्र है, भारत की हवा अब मेरे लिए पावन है, भारत अब मेरे लिए तीर्थ है।'

कलकत्तावासियों, मेरे भाइयों, तुम लोगो ने मेरे प्रति जो अनुग्रह दिखाया है, उसके लिए तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रकट करने में मैं असमर्थ हूँ। अथवा तुम्हें धन्यवाद ही क्या दूँ, क्योंकि तुम मेरे भाई हो—तुमने भाई का, एक हिन्दू भाई का ही कर्तव्य निभाया है, क्योंकि ऐसा पारिवारिक बन्धन, ऐसा सम्बन्ध, ऐसा प्रेम हमारी मातृभूमि की सीमा के बाहर और कहीं नहीं है।

शिकागो की धर्म-महासभा निस्सन्देह एक विराट् समारोह थी। भारत के कितने ही नगरों से हम लोगो ने इस सभा के आयोजक महानुभावों को धन्यवाद दिया है। हम लोगो के प्रति उन्होंने जैसी अनुकम्पा प्रदर्शित की है, उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं, परन्तु इस धर्म-महासभा का यथार्थ इतिहास मैं तुम्हें सुना-

बना चाहता हूँ। उनकी इच्छा थी कि वे अपनी प्रभुता की प्रतिष्ठा करें। महामत्त  
 क कुछ व्यक्तियों की इच्छा थी कि ईसाई धर्म की प्रतिष्ठा करें और दूसरे धर्मों को  
 हास्यास्पद सिद्ध करें। परन्तु फल कुछ और ही हुआ। विभाता के विधान में बैठा  
 ही हाना था। मेरे प्रति अनेक लोगों ने उदय व्यवहार किया था। उन्हें स्पष्ट  
 बन्धन दिया जा चुका है।

राज्यी बात यह है कि मैं धर्म-महामत्त का उद्देश्य लेकर अमेरिका नहीं गया।  
 वह मना तो मेरे लिए एक गौतम बन्धु थी। उसने हमारा रास्ता बहुत कुछ साफ़ हो  
 गया और कार्य करने की बहुत कुछ सुविधा हो गयी। इसमें सन्देह नहीं। इसके लिए  
 हम महामत्त के मन्त्रियों के विचार रूप से कृतज्ञ हैं। परन्तु वास्तव में हमारा  
 ध्येय-समुदाय अमेरिका के निवासी सहृदय आतिथ्य महान् बन्धु की जाति  
 को मित्रता चाहिए, जिसमें दूसरी जातियों की अवस्था अनुमान का अधिक विचार  
 हुआ है। रसगाड़ी पर पाँच मिनट किसी अमेरिकन के साथ बातचीत करने से  
 वह तुम्हारा मित्र हो जायगा। दूसरे ही क्षण तुम्हें अपने धर्म पर अतिविधि के रूप में  
 निमित्त करेगा और अपने हृदय की मारी बात साफ़-सफ़ा रस देगा। यही बन्धु की  
 जाति का चरित्र है और हम इसे शुरू पसन्द करते हैं। मेरे प्रति उन्होंने जो  
 अनुग्रह देना चाहा उम्मीद नहीं है। मेरे साथ उन्होंने कैना बन्धु  
 स्नेहपूर्ण व्यवहार किया। उन प्रकाश करने में मुझे कई-कई क्षण जायेंगे। इसी तरह  
 अन्धकार-महामत्त के दूसरे पार रहने वाली अवस्था जाति को भी हम ध्येय  
 देना चाहते हैं। ब्रिटिश भूमि पर अवस्था के प्रति मुझे अधिक पूजा का साथ देकर  
 कभी निर्माण नहीं कर पाया होगा। हम सब पर जो संकेत बन्धु है वह ही हम का साथ  
 देगा। परन्तु विधान ही मैं उन लोगों के साथ रहने लगा विधान ही उनका न ब  
 मित्रता देना विधान ही ब्रिटिश जाति के जीवन-धर्म की सीमा करने लगा—  
 उन जाति का हृदय-महामत्त जिस अर्थ है। वह विधान ही हमारे साथ  
 उनका ही उन पर रहने लगा। अब मेरे भाइयों को लेना कोई न हाना या  
 सुगत होगा अवस्था का साथ देना ही। उनका महामत्त से बन्धु ज्ञान जाति  
 करने के लिए यह बातें आसानी से ही नहीं बतायी जा सकती हैं और साथ ही  
 यह उनका साथ देना भी होगा। हमारे आधीन धर्म-महामत्त के लिए मैं जिस तरह  
 लगूँगा दुःख का अवस्था उनका अवस्था लिखना लिखना ही। यही तरह अवस्था  
 और हमारे साथ का ही वह बन्धु की तरह अवस्था है—वही महामत्त का धर्म है।  
 महामत्त का धर्म न बन्धु है।

दुःखित या तृप्त, दारिद्र्य या धन, विषमता या समता, शोक या मंगल, यही सब !  
 है, सब ही महामत्त का धर्म है। यह सब विधान-महामत्त है। जो सब धर्म का ही

अंग्रेज़ या कोई दूसरे पश्चिमी महाशय भारत आते हैं और यहाँ दुःख और दारिद्र्य का अबाध राज्य देखते हैं तो वे तुरन्त इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस देश में धर्म नहीं टिक सकता, नैतिकता नहीं टिक सकती। उनका अपना अनुभव निस्सन्देह सत्य है। यूरोप की निष्ठुर जलवायु और दूसरे अनेक कारणों से वहाँ दारिद्र्य और पाप एक जगह रहते देखे जाते हैं, परन्तु भारत में ऐसा नहीं है। मेरा अनुभव है कि भारत में जो जितना दरिद्र है वह उतना ही अधिक साधु है। परन्तु इसको जानने के लिए समय की जरूरत है। भारत के राष्ट्रीय जीवन का यह रहस्य समझने के लिए कितने विदेशी दीर्घ काल तक भारत में रहकर प्रतीक्षा करने के लिए तैयार हैं? इस राष्ट्र के चरित्र का धर्म के साथ अध्ययन करें और समझें ऐसे मनुष्य थोड़े ही हैं। यही, केवल यही ऐसी जाति का वास है, जिसके निकट गरीबी का मतलब अपराध और पाप नहीं है। यही एक ऐसी जाति है, जहाँ न केवल गरीबी का मतलब अपराध नहीं लगाया जाता, बल्कि उसे यहाँ बड़ा ऊँचा आसन दिया जाता है। यहाँ दरिद्र सन्यासी के वेश को ही सबसे ऊँचा स्थान मिलता है। इसी तरह हमें भी पश्चिमी सामाजिक रीति रिवाजों का अध्ययन बड़े धैर्य के साथ करना होगा। उनके सम्बन्ध में एकाएक कोई उन्मत्त धारणा बना लेना ठीक न होगा। उनके स्त्री-पुरुषों का आपस में हेलमेल और उनके आचार व्यवहार सब एक खास अर्थ रखते हैं, सबमें एक पहलू अच्छा भी होता है। तुम्हें केवल यत्नपूर्वक धैर्य के साथ उसका अध्ययन करना होगा। मेरे इस कथन का यह अर्थ नहीं कि हमें उनके आचार व्यवहारों का अनुकरण करना है, अथवा वे हमारे आचारों का अनुकरण करेंगे। सभी जातियों के आचार व्यवहार शताब्दियों के मन्द गति से होनेवाले क्रमविकास के फलस्वरूप हैं, और सभी में एक गम्भीर अर्थ रहता है। इसलिए न हमें उनके आचार व्यवहारों का उपहास करना चाहिए और न उन्हें हमारे आचार व्यवहारों का।

मैं इस सभा के समक्ष एक और बात कहना चाहता हूँ। अमेरिका की अपेक्षा इंग्लैंड में मेरा काम अधिक सतोषजनक हुआ है। निर्भीक, साहसी एवं अध्यवसायी अंग्रेज़ जाति के मस्तिष्क में यदि किसी तरह एक बार कोई भाव संचारित किया जा सके—यद्यपि उसकी खोपड़ी दूसरी जातियों की अपेक्षा स्थूल है, उसमें कोई भाव सहज ही नहीं समाता—तो फिर वह वही दृढ़ हो जाता है, कभी बाहर नहीं होता। उस जाति की असीम व्यावहारिकता और शक्ति के कारण बीजरूप से समाये हुए उस भाव से अकुर का उद्गम होता है और बहुत शीघ्र फल देता है। ऐसा किसी दूसरे देश में नहीं है। इस जाति की जैसी असीम व्यावहारिकता और जीवनी शक्ति है, वैसी तुम अन्य किसी जाति में न देखोगे। इस जाति में कल्पना



कम है और कर्मपथा अधिक। और कौन जान सकता है कि इस अविज्ञाति क भावों का मूल स्रोत कहाँ है! उसके हृदय के गहन प्रवेश में कौन समझ सकता है किशोरी कल्पनाएँ और भावोन्मत्तास छिपे हुए हैं! वह बोरो की जाति है वे मयार्थ क्षमिय है भाव छिपाना—उन्हें कभी प्रकट न करना उनको सिखा है, बचपन से उन्हें यही सिखा मिली है। बहुत कम अंग्रेज देखने को मिलेगे जिन्होंने कभी अपने हृदय का भाव प्रकट किया होगा। पुरुषों की तो बात ही क्या अंग्रेज स्त्रियों की कभी हृदय के उन्मत्तास को बाहिर नहीं होने देती। मैंने अंग्रेज महिलाओं को ऐसे भी कार्य करते हुए देखा है जिन्हें करने में अत्यन्त साहसी बसाली भी लड़कड़ा पायेंगे। किन्तु बहादुरी के इस ठाटबाण के साथ ही इस क्षमियीवित कबल के भीतर अंग्रेज हृदय की भावनाओं का सम्मीर प्रसवण छिपा हुआ है। यदि एक बार भी अंग्रेजों के साथ तुम्हारी बसिष्ठता हो जाय यदि उनके साथ तुम कुछ मिल भये यदि उनसे एक बार भी अपने सम्मुख उनके हृदय की बात स्पष्ट करवा सके तो वे तुम्हारे परम मित्र हो जायेंगे सब के लिए तुम्हारे बाध हो जायेंगे। इसीलिए मेरी राय में दूसरे स्मारों की अपेक्षा इंग्लैंड में मेरा प्रचार-कार्य अधिक संतोषजनक हुआ है। मेरा बड़ा विश्वास है कि अगर कल मेरा शरीर छूट जाय तो मेरा प्रचार कार्य इंग्लैंड में सम्पूर्ण रहेगा और क्लमण विस्तृत होता पायगा।

माइमी तुम लोगों में मेरे हृदय के एक दूसरे तार—सबसे अधिक कोमल तार को स्पर्श किया है—वह है मेरे गुस्से के मेरे आचार्य मेरे जीवनादर्श मेरे इष्ट मेरे प्राणों के देवता को रामहृदय परमहंस का उल्लेख। यदि मनुष्य बाधा कर्मजा मैंने कोई सकार्य किया हो यदि मेरे मुँह से कोई ऐसी बात निकली हो जिससे समाज के किसी भी मनुष्य का कुछ उपकार हुआ हो तो उसमें मेरा कुछ भी मौल्य नहीं वह जनका है। परन्तु यदि मेरी जिह्वा ने कभी अविद्या की बर्षा की हो यदि मुझसे कभी किसीके प्रति घृणा का भाव निकला हो तो वे मेरे हैं, उनके नहीं। जो कुछ पूर्वक है, वह सब मेरा है पर जो कुछ भी जीवनप्रद है, बसप्रद है, पवित्र है वह सब जन्तीकी सक्ति का देण्ड है, जन्तीकी बार्णा है और वे स्वयं हैं। मित्रो यह मध्य है कि ससार जहाँ तक उन महापुरुष से परिचित नहीं हुआ। हम लोग संसार के इतिहास में घात घात महापुरुषों की जीवनी पढ़ते हैं। इसमें उनके सिद्धों के सेवन एवं कार्य-संचालन का हाथ रखा है। हजारों वर्ष तक समासार उन लोगों ने उन प्राचीन महापुरुषों के जीवन-चरितों को काट-छाँटकर संवार है। परन्तु इनके पर भी जो जीवन मैंने बार्णा आश्री देवा है जिसकी छाया में मैं रह चुका हूँ उनके चरकों में बैठकर मैंने सब गीता है उन भी रामहृदय परमहंस का जीवन जैसा अग्रजक और अस्मिन्वित है, वैसा मेरा विचार में और किसी महापुरुष का नहीं।

भाइयो, तुम सभी गीता की वह प्रसिद्ध वाणी जानते हो —

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।  
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥  
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।  
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

—'जब जब धर्म की ग्लानि और अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब तब मैं शरीर धारण करता हूँ। साधुओं का परित्राण करने, असाधुओं का नाश करने और धर्म की स्थापना करने के लिए विभिन्न युगों में मैं आया करता हूँ।'

इसके साथ एक और बात तुम्हें समझनी होगी, वह यह कि आज ऐसी ही वस्तु हमारे सामने मौजूद है। इस तरह की एक आध्यात्मिकता की बाढ़ के प्रबल वेग से आने के पहले समाज में कुछ छोटी छोटी तरंगें उठती दीख पड़ती हैं। इन्हींमें से एक अज्ञात, अनजान, अकल्पित तरंग आती है, क्रमशः प्रबल होती जाती है, दूसरी छोटी छोटी तरंगें को मानो निगल कर वह अपने में मिला लेती है। और इस तरह अत्यन्त विपुलाकार और प्रबल होकर वह एक बहुत बड़ी बाढ़ के रूप में समाज पर वेग से गिरती है कि कोई उसकी गति को रोक नहीं सकता। इस समय भी वैसे ही हो रहा है। यदि तुम्हारे पास आंखें हैं तो तुम उसे अवश्य देखोगे। यदि तुम्हारा हृदय-द्वार खुला है तो तुम उसको अवश्य ग्रहण करोगे। यदि तुममें सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति है तो तुम उसे अवश्य प्राप्त करोगे। अवा, विल्कुल अघा है वह, जो समय के चिह्न नहीं देख रहा है, नहीं समझ रहा है। क्या तुम नहीं देखते हो, वह दरिद्र ब्राह्मण बालक जो एक दूर गाँव में—जिसके द्वारे में तुममें से बहुत कम ही लोगों ने सुना होगा—जन्मा था, इस समय सम्पूर्ण ससार में पूजा जा रहा है, और उसे वे पूजते हैं, जो शताब्दियों से मूर्ति-पूजा के विरोध में आवाज उठाते आये हैं? यह किसकी शक्ति है? यह तुम्हारी शक्ति है या मेरी? नहीं, यह और किसीकी शक्ति नहीं। जो शक्ति यहाँ श्री रामकृष्ण परमहंस के रूप में आविर्भूत हुई थी, यह वही शक्ति है, और मैं, तुम, साधु, महापुरुष, यहाँ तक कि अवतार और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भी उसी न्यूनाधिक रूप में पुजीभूत शक्ति की लीला मात्र हैं। इस समय हम लोग उस महाशक्ति की लीला का आरम्भ मात्र देख रहे हैं। वर्तमान युग का अन्त होने के पहले ही तुम लोग इसकी अधिकाधिक आश्चर्यमयी लीलाएँ देख पाओगे। भारत के पुनरुत्थान के लिए इस शक्ति का आविर्भाव ठीक ही समय पर हुआ है। क्योंकि जो मूल जीवनी शक्ति भारत को सदा स्फूर्ति प्रदान करेगी, उसकी बात कभी कभी हम लोग भूल जाते हैं।

प्रत्येक जाति के लिए उद्देश्य-साधन की अलग अलग कार्यप्रणालियाँ हैं। कोई राजनीति कोई समाज-सुधार और कोई किसी दूसरे विषय को अपना प्रबल आधार बनाकर कार्य करती है। हमारे लिए बर्म की पृष्ठभूमि लेकर कार्य करने के बिना दूसरा उपाय नहीं है। अंग्रेज राजनीति के माध्यम से बर्म भी समझ सकते हैं। अमरीकी साम्य समाज-सुधार के माध्यम से भी बर्म समझ सकते हैं। परन्तु हिन्दू राजनीति समाज-विज्ञान और दूसरा जो कुछ है सबको बर्म के माध्यम से ही समझ सकते हैं। भारतीय जीवन-संघीत का मानो यही प्रबल स्वर है, दूसरे तो उसीमें कुछ परिवर्तित किये हुए माना गौण स्वर है और उसी प्रबल स्वर के गूट होने की शंका हो रही थी। ऐसा माना या मानो हम लोग अपने भारतीय जीवन के इस मूल भाव को हटाकर उसकी जगह एक दूसरा भाव स्थापित करने जा रहे थे हम लोग जिस मेस्वर के बल से सड़े हुए हैं, मानो उसकी जगह दूसरा कुछ स्थापित करने जा रहे थे अपने भारतीय जीवन के बर्म-संघ की जगह राजनीति का मेस्वर स्थापित करने जा रहे थे। यदि इसमें हमें सफलता मिलती तो इसका फल पूर्व विनाश होता परन्तु ऐसा होनेवाला नहीं था। यही कारण है कि इस महाकथित का अविनाश हुआ। मुझे इस बात की भिन्ना नहीं है कि तुम इस महापुरुष को किस अर्थ में ग्रहण करते हो और उसके प्रति किस भाव रखते हो किन्तु मैं तुम्हें यह चुनौती के रूप में अब सब बता देना चाहता हूँ कि अनेक शताब्दियों से भारत में विद्यमान अव्युक्त शक्ति का यह प्रकट रूप है और एक हिन्दू के नाते तुम्हारा यह कर्तव्य है कि तुम इस शक्ति का अध्ययन करो तथा भारत के कल्याण उसके पुनरुत्थान और समस्त मानव जाति के हित के लिए इस शक्ति के द्वारा क्या कार्य किये गये हैं इसका पता लगाओ। मैं तुमको विश्वास दिलाता हूँ कि संसार के किसी भी देश में सार्वभौम बर्म और विभिन्न सम्प्रदायों में भ्रातृभाव के उत्थापित और पर्याप्तोचित होने के बहुत पहले ही इस तमर के पास एक ऐसे महापुरुष थे जिनका सम्पूर्ण जीवन एक आदर्श बर्म-महासमा का स्वल्प था।

हमारे शास्त्रों में सबसे बड़ा आदर्श निर्गुण ब्रह्म है, और ईश्वर की इच्छा से यदि सभी निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त कर सकते सब तो बात ही कुछ और भी परन्तु शक्ति ऐसा नहीं हो सकता इसलिये सयुज आदर्श का उद्घाटन मनुष्य जाति के बहु संभवक वर्ग के लिए बहुत आवश्यक है। इस उद्देश्य के किसी महान् आदर्श पुण्य पर शार्दिक अनुपग रखते हुए उनकी पलाका के नीचे अश्रय किये बिना न कोई जाति उठ सकती है न बढ़ सकती है, न कुछ कर सकती है। राजनीतिक महा तक कि सामाजिक या व्यापारिक आदर्शों का प्रतिनिधित्व करनेवाले कोई भी

पुरुष सर्वसाधारण भारतवासियों के ऊपर कभी भी अपना प्रभाव नहीं जमा सकते। हमें चाहिए आध्यात्मिक आदर्श। आध्यात्मिक महापुरुषों के नाम पर हमें सोत्साह एक हो जाना चाहिए। हमारे आदर्श पुरुष आध्यात्मिक होने चाहिए। श्री राम-कृष्ण परमहंस हमें एक ऐसा ही आदर्श पुरुष मिला है। यदि यह जाति उठना चाहती है, तो मैं निश्चयपूर्वक कहूँगा कि इस नाम के चारों ओर उत्साह के साथ एकत्र हो जाना चाहिए। श्री रामकृष्ण परमहंस का प्रचार हम, तुम या चाहे जो कोई करे, इससे प्रयोजन नहीं। तुम्हारे सामने मैं इस महान् आदर्श पुरुष को रखता हूँ, और अब इस पर विचार करने का भार तुम पर है। इस महान् आदर्श पुरुष को लेकर क्या करोगे, इसका निश्चय तुम्हें अपनी जाति, अपने राष्ट्र के कल्याण के लिए अभी कर डालना चाहिए। एक बात हमें याद रखनी चाहिए कि तुम लोगों ने जितने महापुरुष देखे हैं और मैं स्पष्ट रूप से कहूँगा कि जितने भी महापुरुषों के जीवन-चरित पढ़े हैं, उनमें इनका जीवन सबसे पवित्र था, और तुम्हारे सामने यह तो स्पष्ट ही है कि आध्यात्मिक शक्ति का ऐसा अद्भुत आविर्भाव तुम्हारे देखने की तो बात ही अलग, इसके बारे में तुमने कभी पढ़ा भी न होगा। उनके तिरोभाव के दस वर्ष के भीतर ही इस शक्ति ने सम्पूर्ण ससार को घेर लिया है, यह तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो। अतएव कर्तव्य की प्रेरणा से अपनी जाति और धर्म की भलाई के लिए मैं यह महान् आध्यात्मिक आदर्श तुम्हारे सामने प्रस्तुत करता हूँ। मुझे देखकर उसकी कल्पना न करना। मैं एक बहुत ही दुर्बल माध्यम मात्र हूँ। उनके चरित्र का निर्णय मुझे देखकर न करना। वे इतने बड़े थे कि मैं या उनके शिष्यों में से कोई दूसरा सैकड़ों जीवन तक चेष्टा करते रहने के बावजूद भी उनके यथार्थ स्वरूप के एक करोड़वें अंश के तुल्य भी न हो सकेगा। तुम लोग स्वयं ही अनुमान करो। तुम्हारे हृदय के अन्तःस्थल में वे 'सनातन साक्षी' वर्तमान हैं, और मैं हृदय से प्रार्थना करता हूँ कि हमारी जाति के कल्याण के लिए, हमारे देश की उन्नति के लिए तथा समग्र मानव जाति के हित के लिए वही श्री रामकृष्ण परमहंस तुम्हारा हृदय खोल दें, और इच्छा-अनिच्छा के बावजूद भी जो महायुगान्तर अवश्यम्भावी है, उसे कार्यान्वित करने के लिए वे तुम्हें सच्चा और दृढ़ बनावे। तुम्हें और हमें रुचे या न रुचे, इससे प्रभु का कार्य रुक नहीं सकता, अपने कार्य के लिए वे घूलि से भी सैकड़ों और हज़ारों कर्मों पैदा कर सकते हैं। उनकी अधीनता में कार्य करने का अवसर मिलना ही हमारे परम सौभाग्य और गौरव की बात है। इससे आदर्श का विस्तार होता है। जैसा तुम लोगों ने कहा है, हमें सम्पूर्ण ससार जीतना है। हाँ, यह हमें करना ही होगा। भारत को अवश्य ही ससार पर विजय प्राप्त करनी है। इसकी अपेक्षा किसी छोटे आदर्श से मुझे कभी

भी सन्तोष न होगा। यह आदर्श सम्भव है बहुत बड़ा हो और तुममें से बनेक को इसे सुनकर आश्चर्य होगा किन्तु हमें इसे ही अपना आदर्श बनाना है। या तो हम सम्पूर्ण सत्कार पर विजय प्राप्त करेंगे या मिट जायेंगे। इसके सिवा और कोई विकल्प नहीं है। जीवन का विज्ञान है विस्तार। हमें सर्कार्य सीमा के बाहर जाना होगा हृष्य का प्रसार करना होगा और यह दिखाता होगा कि हम भीषित हैं अन्यथा हमें इसी पतन की बया में सड़कर मरना होगा इसके सिवा कुछ और रास्ता नहीं है। इन दोनों में एक चुन को फिर विजयो या मरो। छोटी छोटी बातों को लेकर हमारे देश में जो हेल और कलह हुआ करता है, वह हम लोगों में सभी को मासूम है। परन्तु मेरी बात मानो ऐसा सभी देशों में है। जिन सब राष्ट्रों के जीवन का मेरुबंद राजनीति है, वे सब राष्ट्र आत्मरक्षा के लिए वैदेशिक नीति का सहारा लिमा करते हैं। अब उनके अपने देश में आपस में बहुत अधिक झड़ान-सगड़ान आरम्भ हो जाता है तब वे किसी विदेशी राष्ट्र से सहायता मोछ से लेते हैं इस तरह तत्काल बरेसू झड़ान बन्द हो जाती है, हमारे नीतर भी नृहविबाध है, परन्तु उसे रोकने के लिए कोई वैदेशिक नीति नहीं है। सत्कार के सभी राष्ट्रों में अपने शास्त्रों का सत्य प्रचार ही हमारी सनातन वैदेशिक नीति होनी चाहिए, यह हमें एक सर्व्वद जाति के रूप में संमठित करेगी। तुम राजनीति में विषेय रवि सेनेबालों से भेरा प्रल है कि क्या इसके लिए तुम कोई और प्रमाय चाहते हो? आब की इस समा से ही मेरी बात का मवेष्ट प्रमाण मिक रहा है।

दूसरे, इन सब स्वार्थपूर्ण विचारों को छोड़ देने पर भी हमारे पीछे नि स्वार्थ महान् और सभीष भुष्टान्त पाये जाते हैं। भारत के पतन और बाधिष-भुष का प्रबान कारण यह है कि बोंबे की तरह अपना सर्वांग समेटकर ससने अपना कार्यसाध सङुचित कर लिमा या तथा आर्येतर दूसरी मानव जातियों के लिए, जिन्हें सत्य की तुष्या भी अपने जीवनप्रब सत्य-रत्नों का सांभार नहीं लोका बा। हमारे पतन का एक और प्रबान कारण यह भी है कि हम लोगों में बाहर जाकर दूसरे राष्ट्रों से अपनी तुषुना नहीं की और तुम लोग जानते हो जिस दिन से राजा राममोहन राम ने सकीर्णता की यह बीबार छोड़ी उसी दिन से भारत में बौद्धा सा जीवन दिक्कामी देने लगा जिसे आज तुम रित रहे हो। उसी दिन से भारत के इतिहास में एक नुमरा मोड़ लिमा और इस समय यह कमाध उमति के पब पर अपसर ही रहा है। अर्थात् काम में यदि छोटी छोटी मदिया ही यहाँ बालों ने बेर्या हों तो समानता कि अब बहुत बड़ी बाड़ जा रही है और कोई भी उसकी गति रोक न सकेगा। अब तुम्हें विरम जाना हीमा आबान-मबान ही बम्भुदय का रहस्य है। क्या हम दूसरों से सदा लेते ही रहेंगे? क्या हम लोग सदा ही परिषमजातियों

के पद-प्रान्त में बैठकर ही सब बातें, यहाँ तक कि धर्म भी सीखेंगे ? हाँ, हम उन लोगों से कल-कारखाने के काम सीख सकते हैं, और भी दूसरी बहुत सी बातें उनसे सीख सकते हैं, परन्तु हमें भी उन्हें कुछ सिखाना होगा। और वह है हमारा धर्म, हमारी आध्यात्मिकता। ससार सर्वांगीण सम्यक्ता की अपेक्षा कर रहा है। गत शत शताब्दियों की अवनति, दुःख और दुर्भाग्य के आवर्त में पड़कर भी हिन्दू जाति उत्तराधिकार में प्राप्त धर्मरूपी जिन अमूल्य रत्नों को यत्नपूर्वक अपने हृदय में लगाय हुए है, उन्हीं रत्नों की आशा से ससार उसकी ओर आग्रहभरी दृष्टि से निहार रहा है। तुम्हारे पूर्वजों के उन्हीं अपूर्व रत्नों के लिए भारत से बाहर के मनुष्य किस तरह उद्गीर्ण हो रहे हैं, यह मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ ? यहाँ हम अनर्गल चक्रवास किया करते हैं, आपस में झगड़ते रहते हैं, श्रद्धा के जितने गभीर विषय हैं उन्हें हँसकर उड़ा देते हैं, यहाँ तक कि इस समय प्रत्येक पवित्र वस्तु को हँसकर उड़ा देने की प्रवृत्ति एक जातीय दुर्गुण हो गयी है। इसी भारत में हमारे पूर्वज जो सजीवक अमृत रख गये हैं, उसका एक कण मात्र पाने के लिए भी भारत से बाहर के लाखों मनुष्य कितने आग्रह के साथ हाथ फैलाये हुए हैं, यह हमारी समझ में भला कैसे आ सकता है ! इसलिए हमें भारत के बाहर जाना ही होगा। हमारी आध्यात्मिकता के बदले में वे जो कुछ दें, वही हमें लेना होगा। चैतन्यराज्य के अपूर्व तत्त्वसमूहों के बदले हम जड़ राज्य के अद्भुत तत्त्वों को प्राप्त करेंगे। चिर काल तक शिष्य रहने से हमारा काम न होगा, हमें आचार्य भी होना होगा। समभाव के न रहने पर मित्रता संभव नहीं। और जब एक पक्ष सदा ही आचार्य का आसन पाता रहता है और दूसरा पक्ष सदा ही उसके पदप्रान्त में बैठकर शिक्षा ग्रहण किया करता है, तब दोनों में कभी भी समभाव की स्थापना नहीं हो सकती। यदि अंग्रेज और अमरीकी जाति से समभाव रखने की तुम्हारी इच्छा हो, तो जिस तरह तुम्हें उनसे शिक्षा प्राप्त करनी है, उसी तरह उन्हें शिक्षा देनी भी होगी, और अब भी कितनी ही शताब्दियों तक ससार को शिक्षा देने की सामग्री तुम्हारे पास यथेष्ट है। इस समय यही करना होगा। उत्साह की आग हमारे हृदय में जलनी चाहिए। हम बगालियों को कल्पना शक्ति के लिए प्रसिद्धि मिल चुकी है और मुझे विश्वास है कि यह शक्ति हममें भी है। कल्पनाप्रिय भावुक जाति कहकर हमारा उपहास भी किया गया है। परन्तु, मित्रों ! मैं तुमसे कहना चाहूँगा कि निस्संदेह बुद्धि का आसन ऊँचा है, परन्तु यह अपनी परिमित सीमा के बाहर नहीं बढ़ सकती। हृदय—केवल हृदय के भीतर से ही दैवी प्रेरणा का स्फुरण होता है, और उसकी अनुभव शक्ति से ही उच्चतम जटिल रहस्यों की मीमांसा होती है, और इसीलिए 'भावुक' बगालियों को ही यह काम करना होगा। उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरा-

निबोधत। — 'उठो जागो जब तक जमीप्लित वस्तु को प्राप्त नहीं कर लेते तब तक बराबर उसकी ओर बढ़ते जाओ।' कलकत्ता निवासी युवको ! उठो जागो शुभ मुहूर्त आ गया है। सब चीजें अपने आप तुम्हारे सामने खुलती जा रही हैं। हिम्मत करो और डरो मत। केवल हमारे ही आश्रितों में ईश्वर के लिए 'जमी विषयन का प्रयोग किया गया है। हमें 'जमी' निर्णय होना होगा तभी हम अपने कार्य में सिद्धि प्राप्त करेंगे। उठो जागो तुम्हारी मनुभूमि को इस महाबलि की आबस्मकता है। इस कार्य की सिद्धि युवकों से ही हो सकती है। 'मुबा आसिष्ठ इतिष्ठ वसिष्ठ, मेधावी' उन्हींके लिए यह कार्य है। और ऐसे संकटों—हजारों युवक कलकत्ता में हैं। जैसा कि तुम लोग कहते हो यदि मैंने कुछ किया है, तो माय रचना में वही एक मगध बालक हूँ जो किसी समय कलकत्ते को संकटों पर लेका करता था। अगर मैंने इतना किया तो इससे कितना अधिक तुम कर सकते हो ! उठो—जागो संसार तुम्हें पुकार रहा है। भारत के अन्य भागों में बुद्धि है जन भी है, परन्तु उत्साह की जाग केवल हमारी ही मनुभूमि में है। उसे बाहर आना ही होगा इसलिये कलकत्ते के युवको अपने रक्त में उत्साह भरकर जाओ। मत सोचो कि तुम सही हो मत सोचो कि तुम्हारे मित्र नहीं हैं। जरे, क्या कभी तुमने देखा है कि रुपया मनुष्य का निर्माण करता है ? नहीं मनुष्य ही घरा रुपये का निर्माण करता है। यह सम्पूर्ण संसार मनुष्य की शक्ति से उत्साह की शक्ति से विरवाच की शक्ति से निर्मित हुआ है।

तुमसे से जिन लोगों ने उपनिषदों में सबसे अधिक सुन्दर कठोपनिषद् का अध्ययन किया है उन्हें स्मरण होगा कि किस तरह वे राजा एक महायज्ञ का अनुष्ठान करते बसे वे और इतिहास में अच्छी अच्छी चीजें न देखकर अनुपयोगी धर्म और बोझे हैं उन्हें वे और कला के अनुसार उसी समय उनके पुत्र शक्तिशाली क हृदय में अज्ञान का आविर्भाव हुआ। मैं तुम्हारे लिए इस अज्ञान का अन्त ही अनुबाध न करूँगा क्योंकि यह उचित होगा। समझने के लिए जब भी बुद्धि से यह एक अनुभूत शब्द है और बहुत कुछ तो हमने समझने पर निर्भर करवा है। हम देखते कि यह किम तरह शीघ्र ही फल देनेवाली है। अज्ञान के आविर्भाव के साथ ही हम शक्तिशाली को आप ही आप इस तरह बाधनीय करते हुए देखते हैं 'मैं बहुत ही अष्ट हैं कुछ लोगों से छोटा भी हूँ परन्तु नहीं भी ऐसा नहीं हूँ कि सबने छोटा

१ कठोपनिषद् १।१।१४॥

२ मुबा इत्यास्तापुयुवाध्यायकः । आसिष्ठो इतिष्ठो वसिष्ठः । तदर्थं वसिष्ठो सर्वा वित्तस्य पूर्वा इवात् ॥ तैत्तिरीयोपनिषद् ॥ २।७॥

होऊँ, अत मैं भी कुछ कर सकता हूँ।' उसका यह आत्मविश्वास और साहस बढ़ता गया और जो समस्या उसके मन में थी, उस बालक ने उसे हल करना चाहा, —वह समस्या मृत्यु की समस्या थी। इसकी मीमांसा यम के घर जाने पर ही हो सकती थी, अत वह बालक वही गया। निर्भीक नचिकेता यम के घर जाकर तीन दिन तक प्रतीक्षा करता रहा, और तुम जानते हो कि किस तरह उसने अपना अभीप्सित प्राप्त किया। हमें जिस चीज की आवश्यकता है, वह यह श्रद्धा ही है। दुर्भाग्यवश भारत से इसका प्रायः लोप हो गया है, और हमारी वर्तमान दुर्दशा का कारण भी यही है। एकमात्र इस श्रद्धा के भेद से ही मनुष्य मनुष्य में अन्तर पाया जाता है? इसका और दूसरा कारण नहीं। यह श्रद्धा ही है, जो एक मनुष्य को बड़ा और दूसरे को कमजोर और छोटा बनाती है। हमारे गुरुदेव कहा करते थे, जो अपने को दुर्बल सोचता है, वह दुर्बल ही हो जाता है, और यह बिल्कुल ठीक ही है। इस श्रद्धा को तुम्हें पाना ही होगा। पश्चिमी जातियों द्वारा प्राप्त की हुई जो भौतिक शक्ति तुम देख रहे हो, वह इस श्रद्धा का ही फल है, क्योंकि वे अपने दैहिक बल के विश्वासी हैं, और यदि तुम अपनी आत्मा पर विश्वास करो तो वह और कितना अधिक कारगर होगा? उस अनन्त आत्मा, उस अनन्त शक्ति पर विश्वास करो, तुम्हारे शास्त्र और तुम्हारे ऋषि एक स्वर से उसका प्रचार कर रहे हैं। वह आत्मा अनन्त शक्ति का आधार है, कोई उसका नाश नहीं कर सकता, उसकी वह अनन्त शक्ति प्रकट होने के लिए केवल आह्वान की प्रतीक्षा कर रही है। यहाँ दूसरे दर्शनो और भारत के दर्शनो में महान् अन्तर पाया जाता है। द्वैतवादी हो, चाहे विशिष्टद्वैतवादी या अद्वैतवादी हो, सभी को यह दृढ विश्वास है कि आत्मा में सम्पूर्ण शक्ति अवस्थित है, केवल उसे व्यक्त करना होता है। इसके लिए हमें श्रद्धा की ही जरूरत है, हमें, यहाँ जितने भी मनुष्य हैं, सभी को इसकी आवश्यकता है। इसी श्रद्धा को प्राप्त करने का महान् कार्य तुम्हारे सामने पड़ा हुआ है। हमारे जातीय खून में एक प्रकार के भयानक रोग का बीज समा रहा है, और वह है प्रत्येक विषय को हँसकर उड़ा देना, गाम्भीर्य का अभाव, इस दोष का सम्पूर्ण रूप से त्याग करो। वीर बनो, श्रद्धा सम्पन्न होओ, और सब कुछ तो इसके बाद आ ही जायगा।

अब तक मैंने कुछ भी नहीं किया, यह कार्य तुम्हें करना होगा। अगर कल मैं मर जाऊँ तो इस कार्य का अन्त नहीं होगा। मुझे दृढ विश्वास है, सर्वसाधारण जनता के भीतर से हज़ारों मनुष्य आकर इस व्रत को ग्रहण करेंगे और इस कार्य की इतनी उन्नति तथा विस्तार करेंगे, जिसकी आशा मैंने कभी कल्पना में भी न की होगी। मुझ अपने देश पर विश्वास है—विशेषतः अपने देश के युवकों पर।



बंगाल के मुबकों पर सबसे बड़ा भार है। इतना बड़ा भार किसी दूसरे प्रांत के मुबकों पर कभी नहीं आया। पिछले दस बर्षों तक मैंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया। इससे मेरी कुछ धारणा हो गयी है कि बंगाल के मुबकों के भीतर से ही उस शक्ति का प्रकाश हुआ जो भारत को उसके आध्यात्मिक अधिकार पर फिर से प्रतिष्ठित करेगी। मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ इन हृदयवान् उत्साही बंगाली मुबकों के भीतर से ही संकड़ों कीर उठेंगे जो हमारे पूर्वजों द्वारा प्रचारित सनातन आध्यात्मिक सत्यों का प्रचार करने और शिक्षा देने के लिए संसार के एक छोर से दूसरे छोर तक भ्रमण करेंगे। और तुम्हारे सामने यही महान् कर्तव्य है। अतएव एक बार और तुम्हें उस उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य बरासिबोबत स्त्री महान् आदर्श वाक्य का स्मरण दिलाकर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ। करना उही क्योंकि मनुष्य जाति के इतिहास में देखा जाता है कि जितनी शक्तियों का विकास हुआ है सभी सामारण मनुष्यों के भीतर से ही हुआ है। संसार में बड़े बड़े जितने प्रतिभावाली मनुष्य हुए हैं, सभी सामारण मनुष्यों के भीतर से ही हुए हैं और इतिहास की घटनाओं की पुनरावृत्ति होगी ही। किसी बात से मत करो। तुम मनुष्य कार्य करोगे। जिस क्षण तुम बर जाओगे उसी क्षण तुम विस्तृत शक्ति हीन हो जाओगे। संसार में दुःख का मुख्य कारण मय ही है, यही सबसे बड़ा दुःखकार है, यह भ्रम हमारे दुःखों का कारण है और यह निर्मीकता है जिससे सब भर में स्वयं प्राप्त होता है। अतएव उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य बरासिबोबत।

महानुभावां मेरे प्रति आप लोगों ने जो अनुग्रह प्रकट किया है, उसके लिए आप लोगों को मैं फिर से धन्यवाद देता हूँ। मैं आप लोगों से इतना ही कह सकता हूँ कि मेरी इच्छा मेरी प्रबल और आन्तरिक इच्छा यह है कि मैं संसार की और सर्वोपरि अपने देस और वैद्यवांसियों की बोड़ी सी भी सेवा कर सकूँ।

## सर्वाङ्ग वेदान्त

[स्टार थिएटर, कलकत्ता में दिया हुआ भाषण]

### स्वामी जी का भाषण

बहुत दूर—जहाँ न तो लिपिबद्ध इतिहास और न परम्पराओं का मन्द प्रकाश ही प्रवेश कर पाता है, अनन्त काल से वह स्थिर उजाला हो रहा है, जो बाह्य परिस्थितिवश कभी तो कुछ धीमा पड़ जाता है और कभी अत्यन्त उज्ज्वल, किन्तु वह सदा शाश्वत और स्थिर रहकर अपना पवित्र प्रकाश केवल भारत में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विचार-जगत् में अपनी मौन अननुभाव्य, शान्त फिर भी सर्वसक्षम शक्ति से उसी प्रकार भरता रहा है, जिस प्रकार प्रातःकाल के शिशिरकण लोगों की दृष्टि बचाकर चुपचाप गुलाब की सुन्दर कलियों को खिला देते हैं—यह प्रकाश उपनिषदों के तत्त्वों का, वेदान्त दर्शन का रहा है। कोई नहीं जानता कि इसका पहले पहल भारतभूमि में कब उद्भव हुआ। इसका निर्णय अनुमान के बल से कभी नहीं हो सका। विशेषतः, इस विषय के पश्चिमी लेखकों के अनुमान एक दूसरे के इतने विरोधी हैं कि उनकी सहायता से इन उपनिषदों के समय का निश्चय नहीं किया जा सकता। हम हिन्दू आध्यात्मिक दृष्टि से उनकी उत्पत्ति नहीं स्वीकार करते। मैं बिना किसी सकोच के कहता हूँ कि यह वेदान्त, उपनिषद्-प्रतिपाद्य दर्शन अध्यात्म राज्य का प्रथम और अन्तिम विचार है, जो मनुष्य को अनुग्रह के रूप में प्राप्त हुआ है।

इस वेदान्तरूपी महासमुद्र से ज्ञान की प्रकाश-तरंगें उठ उठकर समय समय पर पश्चिम और पूर्व की ओर फैलती रही हैं। पुराकाल में वे पश्चिम में प्रवाहित हुईं और एथेन्स, सिकन्दरिया और अन्तियोक जाकर उन्होंने यूनानियों के विचारों को बल प्रदान किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्राचीन यूनानियों पर नाच दगन की विशेष छाप पड़ी थी। और माग्य तथा भारत के अन्यान्य मत्र दार्शनिक मत, उपनिषद् या वेदान्त पर ही प्रतिष्ठित हैं। भारत में भी प्राचीन ज्ञान में और आज भी कितने ही विरोधी सम्प्रदायों के रहने पर भी सभी उपनिषद् या वेदान्त रूप एतना प्रमाण पर ही प्रतिष्ठित हैं। तुम द्वैतवादी हो, चाहे त्रिमिष्टा-ईशवादी, गुदाईनवादी हो, चाहे अद्वैतवादी जयन्त चाहे और जिस प्रकार के अद्वैत-

बादी या ईतबादी हो या तुम अपने को चाहे जिस नाम से पुकारो तुम्हें अपने धारण उपनिषदों का प्रामाण्य स्वीकार करना ही होगा। यदि भारत का कोई सम्प्रदाय उपनिषदों का प्रामाण्य न माने तो वह 'समाप्त' मत का अनुयायी नहीं रहा या सकता। और दोनों-बादियों के मत भी उपनिषदों का प्रामाण्य न स्वीकार करने के कारण ही भारतभूमि से हटा दिये गये थे। इसलिए चाहे हम जानें या न जानें वेदान्त भारत के सब सम्प्रदायों में प्रविष्ट है और हम जिसे हिन्दू धर्म कहते हैं—यह अनयिन्द्री शास्त्रार्थवादी महान् बट भूष के समान हिन्दू धर्म—वेदान्त के ही प्रभाव से बढ़ा है। चाहे हम जानें चाहे न जानें परन्तु हम वेदान्त का ही विचार करते हैं वेदान्त ही हमारा जीवन है वेदान्त ही हमारी सँधि है, मुख्य तब हम वेदान्त ही के उपासक हैं और प्रत्येक हिन्दू का यही हास है। अतः भारतभूमि में भारतीय श्रोत्रियों के धामने वेदान्त का प्रचार करना मानो एक अर्तवर्ति है। परन्तु यदि किसी का प्रचार करना है तो वह इसी वेदान्त का विद्योपत इस युग में इसका प्रचार अत्यन्त आवश्यक हो गया है। क्योंकि हमने तुमसे अभी अभी कहा है कि भारत के सब सम्प्रदायों को उपनिषदों का प्रामाण्य मानकर चलना चाहिए, परन्तु इन सब सम्प्रदायों में हमें ऊपर ऊपर अनेक विरोध देखने को मिलते हैं। बहुत बार प्राचीन बड़े बड़े ऋषि भी उपनिषदों में निहित अपूर्व समन्वय को नहीं समझ सके। बहुधा मुनियों ने भी आपस के मतभेद के कारण विवाद किया है। यह मतविरोध किसी समय इतना बढ़ गया था कि यह एक कहावत हो गयी थी कि जिसका मत दूसरे से भिन्न न हो वह मुनि ही नहीं—नालो मुनिर्वस्य नतं न निद्रम्। परन्तु अब ऐसा विरोध नहीं चल सकता। अब उपनिषदों के संघों में गुड़ रूप से जो समन्वय किया हुआ है, उसकी विसंग व्याख्या और प्रचार की आवश्यकता सभी के लिए जान पड़ी है, फिर चाहे कोई ईतबादी हो विधिष्ठार्थवादी हो या अर्थवादी उसे सधार के धामने स्पष्ट रूप से रखना चाहिए। और यह काम सिर्फ भारत में ही नहीं उसके बाहर भी होना चाहिए। मुझे ईश्वर की कृपा से इस प्रकार के एक महापुरुष के पैरों तले बैठकर शिक्षा ग्रहण करने का महासौभाग्य मिला था जिनका सम्पूर्ण जीवन ही उपनिषदों का महासमन्वयस्वरूप था—जिनका जीवन उनके उपदेशों की अपेक्षा हजार गुना बढ़कर उपनिषदों का जीवन साम्य स्वरूप था। उन्हें देखने पर मानसु होता था मानों उपनिषद् के धाम वास्तव में मानवरूप धारण करके प्रकट हुए हों। उस समन्वय का कुछ अर्थ समझ मुझे भी मिला है। मैं नहीं जानता कि इसको प्रकट करने में मैं समर्थ हो सकूँगा या नहीं। परन्तु मेरा प्रयत्न यही है। अपने जीवन में मैं यह दिखाने की कोशिश करूँगा कि वैदिक सम्प्रदाय एक दूसरे के विरोधी नहीं वे एक दूसरे के अवस्थानवादी

परिणाम हैं, एक दूसरे के पूरक हैं, वे एक से दूसरे पर चढ़ने के सोपान हैं, जब तक कि वह अद्वैत—तत्त्वमसि—लक्ष्य प्राप्त न हो जाय।

भारत में एक वह समय था जब कर्मकांड का बोलबाला था। वेदों के इस अंश में अनेक ऊँचे आदर्श हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। हमारी वर्तमान नित्य पूजाओं में से कुछ यद्यपि अभी भी वैदिक कर्मकांड के अनुसार ही की जाती हैं, इतना होते हुए भी भारत में वैदिक कर्मकांड का प्रायः लोप हो गया है। अब हमारा जीवन वेदों के कर्मकांड के अनुसार बहुत ही कम नियमित और अनुशासित होता है। अपने दैनिक जीवन में हम प्रायः पौराणिक अथवा तांत्रिक हैं, यहाँ तक कि जहाँ कहीं भारत के ब्राह्मण वैदिक मंत्रों को काम में लाते हैं, वहाँ अविकाशित उनका विचार वेदों के अनुसार नहीं, किन्तु तंत्रों या पुराणों के अनुसार होता है। अतएव वेदों के कर्मकांड के विचार से अपने को वैदिक बताना हमारी समझ में युक्तिपूर्ण नहीं जँचता, परन्तु यह असदिग्ध है कि हम सभी वेदान्ती हैं। जो लोग अपने को हिन्दू कहते हैं, अच्छा होता यदि वे अपने को वेदान्ती कहते। और जैसा कि हमने तुम्हें पहले ही बतलाया है कि उसी वेदान्ती नाम के भीतर सब सम्प्रदाय—द्वैतवादी हो, चाहे अद्वैतवादी—आ जाते हैं।

वर्तमान समय में भारत में जितने सम्प्रदाय हैं, उनके मुख्यतः दो भाग किये जा सकते हैं—द्वैतवादी और अद्वैतवादी। इनमें से कुछ सम्प्रदाय जिन छोटे छोटे मतभेदों पर अधिक बल देते हैं और जिनकी सहायता से वे विशुद्धाद्वैतवादी और विशिष्टाद्वैतवादी आदि नये नये नाम लेना चाहते हैं, उनसे विशेष कुछ बनता विगडता नहीं। उन्हें या तो द्वैतवादियों की श्रेणी में शामिल किया जा सकता है अथवा अद्वैतवादियों की श्रेणी में। और जो सम्प्रदाय वर्तमान समय के हैं, उनमें से कुछ तो बिल्कुल नये हैं और दूसरे पुराने सम्प्रदायों के नवीन संस्करण जान पड़ते हैं। पहली श्रेणी के प्रतिनिधि स्वरूप में रामानुजाचार्य का जीवन और दर्शन प्रस्तुत करूँगा और दूसरी के प्रतिनिधि रूप में शंकराचार्य का जीवन और दर्शन।

रामानुज उत्तरकालीन भारत के प्रथम द्वैतवादी दार्शनिक हैं। अन्य द्वैतवादियों ने प्रत्यक्षतः या परोक्षतः अपने तत्त्व-प्रचार में और अपने सम्प्रदायों के संगठन में, यहाँ तक कि अपने संगठन की छोटी छोटी बातों में भी उन्हींका अनुसरण किया है। रामानुज और उनके प्रचार-कार्य के साथ भारत के दूसरे द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदायों की तुलना करो तो आश्चर्य होगा, कि उनके आपस के उपदेशों, नावना-प्रणालियों और साम्प्रदायिक नियमों में बड़ा सादृश्य है। अन्यान्य वैष्णवाचार्यों में दक्षिणान्य आचार्य मध्व मुनि और उनके बाद हमारे दक्षिण के महाप्रभु श्री चैतन्य का नाम उल्लेख योग्य है, जिन्होंने मध्वाचार्य के दर्शन का बगल

मे प्रचार किया जा। एतिह्य न कई सम्प्रदाय और हैं जैसे विशिष्टाद्वैतवादी शैव। शैव प्राम् मद्द्वैतवादी होते हैं। सिद्ध और शक्ति के कुछ स्वार्थों का छोड़कर भारत में सर्वत्र शैव मद्द्वैतवादी हैं। विशिष्टाद्वैतवादी शैवों ने 'विष्णु' नाम की जगह सिद्ध शिव नाम रखा है और आत्मा विषयक सिद्धान्त का छाड़ ब्रह्मन्म सब विषयों में रामानुज के ही मत को ग्रहण किया है। रामानुज के अनुयायी भारत को जन्म भरति अल्पन्त छोटा करते हैं, परन्तु संकराचार्य के मतानुयायी उसे जिन्म भरति सर्वव्यापी स्वीकार करते हैं। प्राचीन काल में मद्द्वैत मत के कई सम्प्रदाय थे। ऐसा लगता है कि प्राचीन समय में ऐसे अनेक सम्प्रदाय थे जिन्हें संकराचार्य के सम्प्रदाय ने पूर्णतया आत्मसात् कर अपने में मिला लिया था। वेदान्त के किसी किसी भाष्य में विशेषतः विज्ञानभिक्षु के भाष्य में संकर पर बीच बीच में कटाक्ष किया गया दिखायी देता है। विज्ञानभिक्षु मर्यादा मद्द्वैतवादी थे फिर भी उन्होंने संकर के मायावाद को उड़ा देने की कोशिश की थी। अतः साफ जाण पड़ता है कि ऐसे अनेक सम्प्रदाय थे जिनका मायावाद पर विश्वास न था मर्हा तक कि उन्होंने संकर को 'ग्रन्थम बौद्ध' कहने में भी संकोच नहीं किया। उनकी यह चारणा थी कि मायावाद को बौद्धों से लेकर संकर ने वेदान्त के भीतर रखा है। जो कुछ भी हो वर्तमान समय में सभी मद्द्वैतवादी संकराचार्य के अनुयायी हैं और संकराचार्य तथा उनके सिष्य उत्तर भारत और शक्ति भारत दोनों क्षेत्रों में मद्द्वैतवाद के विशेष प्रचारक रहे हैं। संकराचार्य का प्रभाव हमारे बंगाल में और पंजाब तथा काश्मीर में ब्यावा गयी फीका परन्तु शक्ति के सभी स्मार्त संकराचार्य के अनुयायी हैं और चारणसी मद्द्वैतवाद का एक केन्द्र होने के कारण उत्तर भारत के अनेक स्वार्थों में उनका प्रभाव बहुत ब्यावा है।

परन्तु मौक्तिक तत्व के आविष्कार करने का श्राव न संकराचार्य ने किया है और न रामानुज ने। रामानुज ने ही साफ कहा है कि हमने बोधायन के भाष्य का अनुसरण करके तबनुसार ही वेदान्त सूत्रों की व्याख्या की है। प्रपञ्चबोधायन-पनडुर्ता विल्लीषां ब्रह्मसूत्रवृत्ति पुर्वाचार्यः संवित्तिवु तन्मत्तानुसारेण सूत्राव-रादि व्याख्यास्थन्ते।—'मगवान् बोधायन ने ब्रह्मसूत्र पर विस्तारपूर्वक भाष्य किया था जिसे पूर्व आचार्यों ने संक्षिप्त कर दिया। उनके मतानुसार मैं सूत्र के शब्दों की व्याख्या कर रहा हूँ। अपने ही भाष्य' के आरम्भ में ही रामानुज ने ये बातें लिख दी हैं। उन्होंने बोधायनकृत ब्रह्मसूत्र भाष्य को किया और उसे संक्षिप्त कर दिया और वहीं संक्षिप्त रूप आशंकक हूँ उपकल्प है। बोधायन भाष्य देखने का अवसर मुझे कभी नहीं मिला। उसे अभी तक देख नहीं सका हूँ। पर-

लोकगत स्वामी दयानन्द भरस्वती व्याससूत्रों के बोधायन भाष्य के सिवा अन्य सभी भाष्यों को अस्वीकार कर देना चाहते थे, और यद्यपि वे अवसर मिलने पर रामानुज के ऊपर कटाक्ष किये बिना न रहते थे, वे भी कभी बोधायन भाष्य को सर्वसाधारण के सामने नहीं रख सके। परन्तु रामानुज ने स्पष्टतः कहा है कि बोधायन के विचार, और कहीं कहीं तो उसके अग्र तक, लेकर हमने अपने वेदान्त-भाष्य की रचना की है। यह अनुमान किया जा सकता है कि शंकराचार्य ने भी प्राचीन भाष्यकारों के ग्रंथों का अवलम्बन कर अपने भाष्य का प्रणयन किया होगा। उनके भाष्य में कई जगह प्राचीन भाष्यों के नाम आये हैं। और जब कि उनके गुरु और गुरु के गुरु स्वयं उन्हींके जैसे एक ही अद्वैत मत के प्रवर्तक और वेदान्ती थे—और कभी कभी किसी विषय में वे शंकर की अपेक्षा अद्वैत तत्त्व के प्रकाशन में अधिक अग्रसर एवं साहसी थे—तब यह साफ समझ में आ जाता है कि शंकर ने भी किसी नये भाव तत्त्व का प्रचार नहीं किया। रामानुज ने जिस प्रकार बोधायन भाष्य के सहारे अपना भाष्य लिखा था, अपनी भाष्य-रचना में शंकर ने भी वैसा ही किया। परन्तु अभी तक यह निर्णय नहीं किया जा सका है कि शंकर ने किस भाष्य को आधार मानकर भाष्य लिखा।

जिन दर्शनो को तुमने पढ़ा है या जिनके नाम सुने हैं, वे सब के सब उपनिषद् के प्रमाण पर आधारित हैं। जब भी उन्होंने श्रुति को दुहाई दी है, तब उपनिषदों को ही लक्ष्य किया है। जब वे श्रुति को उद्धृत करते हैं, उनका मतलब उपनिषदों से रहता है। भारत में उपनिषदों के बाद अन्य कई दर्शनो का जन्म हुआ, परन्तु व्यास द्वारा लिखे गये वेदान्त दर्शन की तरह किसी दूसरे दर्शन की प्रतिष्ठा भारत में नहीं हो सकी। पर वेदान्त दर्शन भी प्राचीन सांख्य दर्शन का ही विकसित रूप है। और सारे भारत के, यहाँ तक कि सारे ससार के सभी दर्शन और सभी मत कपिल के विशेष रूप से ऋणी हैं। मनस्तात्त्विक और दार्शनिक विषयों का कपिल जैसा महान् व्याख्याता भारत के इतिहास में शायद ही दूसरा हुआ हो। ससार में सर्वत्र ही कपिल का प्रभाव देख पड़ता है। जहाँ कोई मान्यताप्राप्त दार्शनिक मत विद्यमान है, वही उनका प्रभाव खोजा जा सकता है। वह हजार वर्ष पहले का चाहे भले ही हो, किन्तु वहाँ वे ही कपिल—वे ही तेजस्वी, गौरवयुक्त, अपूर्व प्रतिभाशाली कपिल दृष्टिगोचर होते हैं। उनके मनस्तत्त्व और दर्शन के अधिकांश को थोड़ा सा फेर-फार करके भारत के भिन्न भिन्न सभी सम्प्रदायों ने ग्रहण किया है। हमारी जन्मभूमि बंगाल के नैयायिक भारत के दार्शनिक क्षेत्र में विद्यमान प्रभाव फैलाने में समर्थ नहीं हो सके। वे सामान्य, विशेष, जाति, द्रव्य, गुण आदि बोझिल पारिभाषिक क्षुद्र शब्दों में उलझ गये, जिन्हें कोई अच्छी तरह समझना

चाहे तो सारी उन्नत चीजें आय। वे दर्शनशास्त्रों का भार वेदातिथियों पर छोड़कर स्वयं 'व्यास' लेकर बैठे। परन्तु आधुनिक काल में भारत के सभी दार्शनिक सम्प्रदायों ने बंग देश के नैयायिकों की तरह सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली ग्रहण की है। जगदीश यदापर और तिरोमणि के नाम महाभारत वेद में कहीं कहीं उसी प्रकार प्रसिद्ध हैं अथि प्रकार नदिया में। किन्तु व्यास का दर्शन वेदान्तसूत्र भारत में सब जगह बुद्धप्रतिष्ठ है, और दर्शन में वेदान्त-अतिपाद ब्रह्म को (मुक्तिपूर्वक इग से) मनुष्य के लिए व्यक्त करने का उद्योग जो उद्देश्य रहा है उसे साधित करके उसमें स्पष्टता प्राप्त किया। इस वेदान्त दर्शन में मुक्ति को पूर्वतया भूति के अतीत रखा गया है, संकटाचार्य ने भी एक अपह बोधित किया है कि व्यास न मुक्ति-विचार का यत्न नहीं किया। उनके सूत्रग्रन्थन का एकमात्र उद्देश्य यह था कि वेदान्त मंत्रवर्णी पुण्यों को एक ही सूत्र में गूँथकर एक मासा समार करें। उनके सूत्र वहीं तक मान्य हैं जहाँ तक वे उपनिषदों के अतीत हैं, इसके अति नहीं।

इस समय भारत के सभी सम्प्रदाय व्याससूत्रों को प्रामाणिक ग्रन्थों में श्रेष्ठ स्वीकार करते हैं। और जब यहाँ कोई नवीन सम्प्रदाय प्रारम्भ होता है तो वह व्याससूत्रों पर अपने ज्ञानानुकूल तथा मान्य सिद्ध कर अपनी बड़ बनाता है। कभी कभी इन मान्यकारों के मन में बहुत ऊर्क आता बीस पड़ता है। कभी कभी तो मूल सूत्रों की अर्थविकृति देखकर भी उन्नत जाता है। जन्तु। व्याससूत्रों को इस समय भारत में सबसे अच्छे प्रमाण ग्रन्थ का मान्य मिल गया है और व्याससूत्रों पर एक नया मान्य बिना किसी भारत में कोई सम्प्रदाय संस्थापन की आज्ञा नहीं कर सकता।

व्याससूत्रों के बाद ही विश्वप्रसिद्ध गीता का प्रामाण्य है। संकटाचार्य का यीरव गीता के प्रचार से ही बढ़ा। इस महापुरव ने अपने महान् जीवन में जो बड़े बड़े कर्म किये गीता का प्रचार और उसकी एक सुन्दर मान्य रचना भी उन्हींमें है। और भारत के सनातनमार्गी सम्प्रदाय-संस्थापकों में से हर एक ने उनका अनुगमन किया और तबनुसार गीता पर एक एक मान्य की रचना की।

उपनिषद् अनेक हैं। कोई कोई यह कहते हैं कि उनकी संख्या एक ही आठ है और कोई कोई और भी अधिक कहते हैं। उनमें से कुछ स्पष्ट ही आधुनिक हैं यथा अस्तोपनिषद्। उसमें अस्माह की स्तुति है और मुहम्मद का स्तुतना कहा गया है। मैंने सुना है कि यह अस्तर के राज्यकाल में हिन्दू और मुसलमानों में पैरु कराने के लिए रचा गया था। कभी कभी संस्कृति विनाश में अस्मा इस्मा बीने किसी शब्द को बरबस ब्रह्म कर, उसके आचार पर उपनिषद् रच किया

गया है। इस प्रकार इम अल्लोपनिषद् मे मुहम्मद रसूलल्ला हुए। इसका तात्पर्य चाहे जो कुछ हो, किन्तु इस प्रकार के और भी अनेक साम्प्रदायिक उपनिषद् है। यह स्पष्ट समझ मे आ जाता है कि वे विल्कुल आवुनिक हैं और उपनिषदो की ऐसी रचना बहुत कठिन भी नहीं थी, क्योंकि वेदो के सहिता भाग की भाषा इतनी पुरानी है कि उसमे व्याकरण के नियम नहीं माने गये। कई साल हुए, वैदिक व्याकरण पढने की मेरी इच्छा हुई और मैंने बडे आग्रह से पाणिनि और महाभाष्य पढना आरम्भ किया। परन्तु मुझे बडा आश्चर्य हुआ, जब मैंने देखा कि वैदिक व्याकरण के प्रधान भाग केवल साधारण नियमो के अपवाद ही है। व्याकरण मे एक साधारण विधान माना गया, परन्तु इसके बाद ही यह बतलाया गया कि वेदो मे यह नियम अपवादस्वरूप होगा। अत हम देखते हैं कि वचाव के लिए यास्क की निश्क्ति का उपयोग कर कोई भी मनुष्य चाहे जो कुछ लिखकर बडी आसानी से उसे वेद कहकर प्रचार कर सकता है। साथ ही इसके अधिकांश भाग मे बहुसंख्यक पर्याय शब्द रखे गये हैं। जहाँ इतने सुभीते है, वहाँ तुम जितना चाहो उपनिषद् लिख सकते हो। यदि सस्कृत का कुछ ज्ञान हो तो प्राचीन वैदिक शब्दो की तरह कुछ शब्द गढ लेने ही से काम हो जायगा, व्याकरण का तो कुछ भय रहा ही नहीं। फिर तो रसूलल्ला हो, चाहे जो सुल्ला हो, उसे अपने ग्रन्थ मे तुम अनायास रख सकते हो। इस प्रकार अनेक उपनिषदो की रचना हो गयी है और सुनते हैं कि अब भी होती है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि भारत के कुछ भागो मे भिन्न भिन्न सम्प्रदायो के लोग अब भी ऐसे उपनिषदो का प्रणयन करते है, परन्तु इन उपनिषदो मे कुछ ऐसे हैं, जो स्पष्टत अपनी प्रामाणिकता की गवाही देते हैं, और इन्हीको शकर, बाद मे रामानुज और दूसरे बडे बडे भाष्यकारो ने स्वीकार किया है तथा इनका भाष्य किया है।

उपनिषदो के और भी दो एक तत्त्वो की ओर मैं तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, क्योंकि ये उपनिषद् ज्ञानसमुद्र है और मुझ जैसा अयोग्य मनुष्य यदि उनके सम्पूर्ण तत्त्वो की व्याख्या करना चाहे तो वर्षों बीत जायेंगे, एक व्याख्यान मे कुछ न होगा। अतएव उपनिषदो के अध्ययन के प्रसंग मे मेरे मन मे जो दो एक बातें आयी हैं, उनकी ओर तुम्हारा ध्यान दिलाना चाहता हूँ। पहले तो ससार मे इनकी तरह अपूर्व काव्य और नहीं हैं। वेदो के सहिता भाग को पढते समय उसमे भी जगह जगह अपूर्व काव्य-सौन्दर्य का परिचय मिलता है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद सहिता के नासदीय सूक्तो को पढो। उममे प्रलय के गम्भीर अन्वकार के वर्णन मे है—**तम आसीत् तमसा गूढमग्रे** इत्यादि—‘जब अन्वकार से अन्वकार ढंका हुआ था।’ इसके पाठ ही से यह जान पडता है कि कवित्व का अपूर्व गाम्भीर्य



इसमें मरा है। तुमने क्या इस ओर दृष्टि डाली है कि भारत के बाहर के देशों में तथा भारत में भी मन्मीर भावों के चित्र खींचने के अनेक प्रयत्न किये गये हैं ? भारत के बाहरी देशों में यह प्रयत्न उषा बड़ प्रकृति के अनन्त भावों के वर्णन में ही हुआ है—केवल अनन्त बहिःप्रकृति अनन्त बड़ अनन्त वेस का वर्णन हुआ है। जब भी मिस्टन या बरि या किसी दूसरे प्राचीन अथवा आधुनिक यूरोपीय बड़े कवि ने अनन्त के चित्र खींचने की कोशिश की है तभी उन्होंने कवित्व-पदों के सहारे अपने बाहर दूर आकाश में बिखरते हुए, बाह्य अनन्त प्रकृति का कुछ कुछ आभास देने की चेष्टा की है। यह चेष्टा यही भी हुई है। बाह्य प्रकृति का अनन्त विस्तार जिस प्रकार वेद संहिता में चित्रित होकर पाठकों के सामने रखा गया है वैसे अन्यत्र कहीं भी देखने को नहीं मिलता। संहिता के इस 'तम आसीत् तमसा गूढम्' वाक्य को मात्र रखकर तीन भिन्न भिन्न कवियों के अन्वकार वर्णन के साथ इसकी तुलना करके देखो। हमारे काकिलदास ने कहा है—'सूचीमेव अन्वकार' उषर मिस्टन कहते हैं 'चमाका नहीं है वृक्षमात्र अन्वकार है। परन्तु ऋग्वेद संहिता में है—अन्वकार से अन्वकार डँका हुआ है, अन्वकार के भीतर अन्वकार छिपा हुआ है। हम उष्ण कटिबन्ध के रहनेवाके सहज ही में समझ सकते हैं कि जब सहसा तबीन बर्पायम होता है, तब सम्पूर्ण विद्वंसंज्ञक अन्व कापञ्चक हो जाता है और तमझुती हुई काकी बटाएँ दूसरे बाह्यों को बेर लेती हैं। इसी प्रकार कविता बरुती है, परन्तु संहिता के इस अंश में भी बाहरी प्रकृति का वर्णन किया गया है। बाहरी प्रकृति का विस्फेपण करके मानव-जीवन की महान् समस्याएँ अव्यक्त जैसे हल को गयी हैं, जैसे ही यहाँ भी। जिस प्रकार प्राचीन यूनान अथवा आधुनिक यूरोप जीवन-समस्या का समाधान पाने के लिए उषा अन्वकारण सम्बन्धी पारमायिक तत्त्वों की खोज के लिए बाह्य प्रकृति के अन्वेषण में संलग्न हुए, उसी प्रकार हमारे पूर्वजों ने भी क्रिया और पादचालनों के समान वे भी अस्तकृत हुए। परन्तु पश्चिमी जातियों ने इस विषय में और कोई प्रयत्न नहीं किया जहाँ वे भी बड़ी पड़ी रही। बहिर्व्यपत् में जीवन और मृत्यु की महान् समस्याओं के समाधान में व्यर्थ प्रयास होने पर वे आने लड़ी कड़ी। हमारे पूर्वजों ने भी इसे असम्भव समझा था परन्तु उन्होंने इस समाधान की प्राप्ति में इन्द्रियों की पुरी अलमता लंसार के सामने निर्भव होकर कोपिठ की। उपनिषद् से अन्व उतर कड़ी नहीं मिलेगा।

यतीं बायीं निवर्तन्ते अन्वत्त भवता सह ।

'मन के साथ बायीं जिसे न पाकर जहाँ से लौट आती है ।

न तत्र अन्वत्तति न बायवत्तति नो मन ।

‘वहाँ न आँखों की पहुँच है, न वाणी की।’

ऐसे अनेक वाक्य हैं, जिन्होंने इन्द्रियों को इस महासमस्या के समाधान के लिए सर्वथा अक्षम बताया है, किन्तु वे पूर्वज इतना ही कहकर रुक नहीं गये। बाह्य प्रकृति से लौटकर वे मनुष्य की अन्तःप्रकृति की ओर प्रवृत्त हुए। इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए वे स्वयं अपनी आत्मा के निकट गये, वे अन्तर्मुख हुए। वे समझ गये थे कि प्राणहीन जड़ से कभी सत्य की प्राप्ति न होगी। उन्होंने देखा कि वहिःप्रकृति से प्रश्न करने पर कोई उत्तर नहीं मिलता, न उससे कोई आशा की जा सकती है, अतएव बाहर सत्य की खोज की चेष्टा वृथा जानकर वहिःप्रकृति का त्याग करके वे उसी ज्योतिर्मय जीवात्मा की ओर मुड़े और वहाँ उन्हें उत्तर भी मिला तमेवैक जानय आत्मान अन्या वाचो विमुच्य।—‘एकमात्र उसी आत्मा का ज्ञान प्राप्त करो और दूसरे वृथा वाक्य छोड़ो।’ उन्होंने आत्मा में ही सारी समस्याओं का समाधान पाया। वही उन्होंने विश्वेश्वर परमात्मा को जाना और जीवात्मा के साथ उसका सम्बन्ध, उसके प्रति हमारा कर्तव्य और उसके आघार पर हमारा पारस्परिक सम्बन्ध—आदि ज्ञान प्राप्त किया। और इस आत्मतत्त्व के वर्णन के सदृश उदात्त ससार में और दूसरी कविता नहीं है। जड़ के वर्णन की भाषा में इस आत्मा को चित्रित करने की चेष्टा न रही, यहाँ तक कि आत्मा के वर्णन में उन्होंने गुणों का निर्देश करना विल्कुल छोड़ दिया। तब अनन्त की धारणा के लिए इन्द्रियों की सहायता की आवश्यकता नहीं रही। बाह्य इन्द्रिय-ग्राह्य, अचेतन, मृत, जड़ स्वभाव, अवकाशरूपी अनन्त का वर्णन लुप्त हो गया। वरन् इसके स्थान पर आत्मतत्त्व का ऐसा वर्णन मिलता है, जो इतना सूक्ष्म है, जैसा कि इस कथन में निर्दिष्ट है

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारक नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्यभासा सर्वमिदं विभाति ॥’

ससार में और कौन सी कविता इसकी अपेक्षा अधिक उदात्त होगी? ‘वहाँ न सूर्य का प्रकाश है, न चन्द्रतारकाओं का, यह विजली उसे प्रकाशित नहीं कर सकती, तो मृत्युलोक की इस अग्नि की वात ही क्या? उसीके प्रकाश से सब कुछ प्रकाशित होता है।’

ऐसी कविता तुमको कही नहीं मिल सकती और कही न पाओगे। उस अपूर्व कठोपनिषद् को लो। इस काव्य का रचना-चमत्कार कैसा सर्वांग मुन्दर है। किस

मनोहर रीति से यह आरम्भ किया गया है। उस छोटे से बालक नचिकेता के हृदय में सदा का आधिर्भाव उसकी यमदर्शन की अभिलाषा और सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि यम स्वयं उसे जीवन और मृत्यु का महान् पाठ पढ़ा रहे हैं। और वह बालक उनसे क्या जानना चाहता है?—मृत्यु-व्युत्सव।

उपनिषदों के सम्बन्ध की जिस बुरी बात पर तुम्हें ध्यान देना चाहिए, वह है उनका अपीस्वेयत्व। यद्यपि उनमें हमें अनेक आचार्यों और ब्रह्माचार्यों के नाम मिलते हैं पर उनमें से एक भी उपनिषदों के प्रमाणस्वरूप नहीं गिने जाते। उपनिषदों का एक भी मंत्र उनमें से किसीके जीवन के ऊपर निर्भर नहीं है। ये सब आचार्य और ब्रह्माचार्य छायामूर्ति की भाँति संयम के पीछे अवस्थित हैं। उन्हें मानो कोई स्पष्टतमा नहीं बेश पाठा उनका सत्ता मानो साफ समझ में नहीं आती। यथार्थ पक्षि उपनिषदों के उन अपूर्व महिमामय ज्योतिर्मय सेजोमय मंत्रों के भीतर निहित है जो विष्णुज्योतिरूपेण हैं। बीसियों शतकस्य आर्य रहें और जैसे आर्य इससे कोई हानि नहीं मन् तो बने ही रहेंगे। किन्तु फिर भी वे किसी व्यक्तिविषय के विरोधी नहीं हैं। वे इतने विप्लव और उदार हैं कि संसार में अब तक जितने महापुरुष या आचार्य पैदा हुए और अधिव्य में जितने आर्यो उन सबको समाहित कर सकते हैं। उपनिषद् मन्त्रारों या महापुरुषों की उपासना के विरोधी नहीं हैं बल्कि उसका समर्थन करते हैं। किन्तु साब ही के सम्पूर्ण रूप से व्यक्तिनिरपेक्ष हैं। उपनिषद् का ईश्वर जिस प्रकार निर्गम अर्थात् व्यक्तिनिरपेक्ष है, उसी प्रकार समस्त उपनिषद् व्यक्तिनिरपेक्षता-रूप अपूर्व तरह के ऊपर प्रतिष्ठित है। आती विष्णुनदीक वार्षनिक यथा मुक्तिवापी उतमें इनकी व्यक्तिनिरपेक्षता पाते हैं जिनका कोई सामुहिक विज्ञानवेत्ता चाह सकता है।

और ये ही हमारे धारक हैं। तुम्हें याद रखना चाहिए कि ईश्वरों के लिए जैसे बाइबिल है मुसलमानों के लिए कुरान बौद्धों के लिए विविधक पारसियों के लिए जन्म-अवस्था जैसे ही हमारे लिए उपनिषद् हैं। ये ही हमारे धारक हैं हमारे नीचे। पुराण तन्त्र और अस्याय पन्थ यही तन्त्र कि व्यासगुरु भी पौर हैं हमारे मुख्य प्रमाण हैं वेद। मन्त्रादि स्मृतियाँ और पुराणों का जिनका अर्थ ज्ञानिदों ग मेक गाना है उनका ही बलयोग्य है यदि अमहर्षि प्रकट करें ता उन्हें निर्यातपूर्वक छात्र देना चाहिए। इस यद् महा मरत्त गाना हीना परम्पु भारत के दुर्भाग्य मे वर्तमान समय मे हम का विष्णुज्योतिरूप है। इन समय छोटे छोटे धार्मिक आचार्यों को जानी उपनिषदों के उद्देशों के स्पर्श पर प्रामाण्य प्राप्त हो गया है। ब्रह्म के गुरु देवताओं में अब जो आचार्य प्रचरित हैं वे मानो वेद-वाचक ही नहीं उनका भी नहीं बहकर है। और 'मनागत-जगत्कर्म' का

शब्द का प्रभाव भी कितना विचित्र है! एक देहाती की निगाह में वही सच्चा हिन्दू है, जो कर्मकांड की हर एक छोटी छोटी बात का पालन करता है और जो नहीं करता, उसे अहिन्दू कहकर दुत्कार दिया जाता है। दुर्भाग्य से हमारी मातृभूमि में ऐसे अनेक लोग हैं, जो किसी तत्रविशेष का अवलम्बन कर सर्वसाधारण जनता को उसी तत्र-मत का अनुसरण करने का उपदेश देते हैं। जो वैसा नहीं करते, वे उनके मत में सच्चे हिन्दू नहीं हैं। अतः हमारे लिए यह स्मरण रखना अत्यन्त आवश्यक है कि उपनिषद् ही मुख्य प्रमाण हैं। गृह्य और श्रौत सूत्र भी वेदों के प्रामाण्य-धीन हैं। यही उपनिषद् हमारे पूर्वपुरुष ऋषियों के वाक्य हैं और यदि तुम हिन्दू होना चाहो तो तुम्हें यह विश्वास करना ही होगा। तुम ईश्वर के बारे में जैसा चाहो विश्वास कर सकते हो, परन्तु वेदों का प्रामाण्य यदि नहीं मानते तो तुम घोर नास्तिक हो। ईसाई, बौद्ध या दूसरे शास्त्रों तथा हमारे शास्त्रों में यही अन्तर है। उन्हें शास्त्र न कहकर पुराण कहना चाहिए, क्योंकि उनमें जलप्लावन का इतिहास, राजाओं और राजवशधरों का इतिहास, महापुरुषों के जीवन-चरित आदि विषय लेखबद्ध हैं। ये सब पुराणों के लक्षण हैं, अतः इनका जितना अंश वेदों से मेल खाता हो, उतना ही ग्रहणीय है, परन्तु जो अंश नहीं मेल खाता, उसके मानने की आवश्यकता नहीं। बाइबिल और दूसरी जातियों के शास्त्र भी जहाँ तक वेदों से सहमत हैं, वही तक अच्छे हैं, लेकिन जहाँ ऐसा नहीं है, वे हमारे लिए अस्वीकार्य हैं। कुरान के सम्बन्ध में भी यही बात है। इन ग्रन्थों में अनेक नीति-उपदेश हैं, अतः वेदों के साथ उनका जहाँ तक ऐक्य हो, वही तक, पुराणों के समान, उनका प्रामाण्य है, इससे अधिक नहीं। वेदों के सम्बन्ध में मेरा यह विश्वास है कि वेद कभी लिखे नहीं गये, वेदों की उत्पत्ति नहीं हुई। एक ईसाई मिशनरी ने मुझसे किसी समय कहा था, हमारी बाइबिल ऐतिहासिक नींव पर स्थापित है और इसीलिए सत्य है, इस पर मैंने जवाब दिया था, “हमारे शास्त्र इसीलिए सत्य हैं कि उनकी कोई ऐतिहासिक मिति नहीं है, तुम्हारे शास्त्र जब कि ऐतिहासिक हैं, तब अवश्य ही वे कुछ दिन पहले किसी मनुष्य द्वारा रचे गये थे, तुम्हारे शास्त्र मनुष्यप्रणीत हैं, हमारे नहीं। हमारे शास्त्रों की अनैतिहासिकता ही उनकी सत्यता का प्रमाण है।” वेदों के साथ आजकल दूसरे शास्त्रों का यही सम्बन्ध है।

अब हम उपनिषदों की शिक्षा की पर्यालोचना करेंगे। उनमें अनेक भावों के श्लोक हैं। कोई कोई सम्पूर्ण द्वैत भावात्मक हैं और अन्य अद्वैत भावात्मक हैं। किन्तु उनमें कई बातें हैं, जिन पर भारत के सभी सम्प्रदाय एकमत हैं। पहले तो सभी सम्प्रदाय ससारवाद या पुनर्जन्मवाद स्वीकार करते हैं। दूसरे, सब

सम्प्रदायों का मनोविज्ञान भी एक ही प्रकार का है। पहले यह स्पष्ट बर्णित, इसके पीछे सूक्ष्म बर्णित या मन है और इसके भी परे जीवात्मा है। पश्चिमी और भारतीय मनोविज्ञान में यह विशेष भेद है कि पश्चिमी मनोविज्ञान में मन और आत्मा में कोई अन्तर नहीं माना गया है, परन्तु हमारे यहाँ ऐसा नहीं। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार मन जबवा अस्त-करण मानो जीवात्मा के हाथों का यन्त्र-भाग है। इसीकी सहायता से वह बर्णित जबवा बाह्यी संसार में काम करता है। इस विषय में समी का मत एक है। और समी सम्प्रदाय एक स्वर से यह स्वीकार करते हैं कि जीवात्मा अनादि और अनन्त है। जब तक उसे सम्पूर्ण मुक्ति नहीं मिलती तब तक उसे बार बार जन्म लेना होता है। इस विषय में सब सहमत हैं। एक और मुख्य विषय में सबकी एक राय है, और यही भारतीय और पश्चिमी विद्वान् प्रयासी में विशेष मौलिक तथा अत्यन्त जीवन्त एवं महत्त्वपूर्ण अन्तर है, यहाँवासे जीवात्मा में सब शक्तियों की अवस्थिति स्वीकार करते हैं। यहाँ समित और प्ररपा के बाह्य आवाहन के स्वाम पर उनका आन्तरिक स्फुरण स्वीकार किया गया है। हमारे धार्मिकों के अनुसार सब शक्तियाँ सब प्रकार की महत्ता और पवित्रता आत्मा में ही विद्यमान हैं। योगी तुमसे कहेंगे कि अग्निमा अग्निमा आदि सिद्धियाँ जिन्हें वे प्राप्त करना चाहते हैं, वास्तव में प्राप्त करने की यहीं वे पहले से ही आत्मा में मौजूद हैं सिर्फ उन्हें व्यक्त करना होता है। पतञ्जलि के मत में तुम्हारे पैरों तले चरनेवाले छोटे से छोटे कीड़ों तक में योगी की अष्ट सिद्धियाँ वर्तमान हैं। केवल अपने देहकमी आचार की अनुपयुक्तता के कारण ही वे प्रकाशित नहीं हो पाती। जब भी उन्हें उत्कृष्टतर बर्णित प्राप्त होता है शक्तियाँ अमिष्यक्त हो जायेंगी परन्तु होती हैं वे पहले से ही विद्यमान। उन्होंने अपने पुत्रों में एक पत्र कहा है। निमित्तमप्रयोजकं प्रकृत्यानां बरननेवस्तु ततः शेषिकवत्। — 'सुमासुम कर्म प्रकृति के परिचाम (परिवर्तन) के प्रत्यक्ष कारण नहीं हैं, बल्कि वे प्रकृति के विकास की बाधाओं को दूर करनेवाले निमित्त कारण हैं। जैसे किसान को यदि अपने खेत में पानी लाना है तो सिर्फ खेत की मेंड़ काटकर पास के भरे तालाब से जल का भोग कर देता है और पानी अपने स्वामाधिक प्रवाह से बाहर घेत को भर देता है। यहाँ पतञ्जलि ने किसी बड़े तालाब से किसान द्वारा अपने खेत में जल लाने का प्रसिद्ध उदाहरण दिया है। तालाब खाली भरता है और एक क्षण में उसका पानी किसान के पूरे घेत को भर सकता है परन्तु तालाब तथा खेत के बीच में मिट्टी की एक मेंड़ है। यहीं ही क्लानट पैदा करने

वाली यह मेड तोड़ दी जाती है, त्यो ही तालाब का पानी अपनी ताकत और वेग से खेत में पहुँच जाता है। ठीक उसी प्रकार जीवात्मा में सारी शक्ति, पूर्णता और पवित्रता पहले ही से भरी है, केवल माया का परदा पड़ा हुआ है, जिससे वे प्रकट नहीं होने पाती। एक बार आवरण को हटा देने से आत्मा अपनी स्वाभाविक पवित्रता प्राप्त करती है—उसकी सारी शक्ति व्यक्त हो जाती है। तुम्हें याद रखना चाहिए कि प्राच्य और पाश्चात्य चिन्तन-प्रणाली में यह बड़ा भेद है। पश्चिम-वाले यह भयानक मत सिखाते हैं कि हम जन्म से ही महापापी हैं और जो लोग यह भयावह मत नहीं मानते, उन्हें वे जन्मजात दुष्ट कहते हैं। वे यह कभी नहीं सोचते कि अगर हम स्वभाव से ही बुरे हों तो हमारे भले होने की आशा नहीं, क्योंकि मनुष्य की प्रकृति कभी बदल नहीं सकती। 'प्रकृति का परिवर्तन'—यह वाक्य स्व-विरोधी है। जिसका परिवर्तन होता है, उसे प्रकृति नहीं कहना चाहिए। यह विषय हमें स्मरण रखना चाहिए। इस पर भारत के द्वैतवादी, अद्वैतवादी और सभी सम्प्रदाय एकमत हैं।

भारत के सब सम्प्रदाय एक अन्य विषय पर भी एकमत हैं, वह है ईश्वर का अस्तित्व। इसमें सन्देह नहीं कि ईश्वर के बारे में सभी सम्प्रदायों की धारणा भिन्न भिन्न है। द्वैतवादी सगुण, केवल सगुण ईश्वर पर ही विश्वास करते हैं। मैं यह सगुण शब्द तुम्हें कुछ और भी अच्छी तरह समझाना चाहता हूँ। इस सगुण के अर्थ से देहचारी, सिंहासन पर बैठे हुए, ससार का शासन करनेवाले किसी पुरुष-विशेष से मतलब नहीं। सगुण अर्थ से गुणयुक्त समझना चाहिए। इस सगुण ईश्वर का वर्णन शास्त्रों में अनेक स्थलों में देखने को मिलता है, और सभी सम्प्रदाय इस ससार का शासक, स्रष्टा, पालक और सहर्ता सगुण ईश्वर मानते हैं। अद्वैतवादी इस सगुण ईश्वर के सम्बन्ध में और भी कुछ ज्यादा मानते हैं। वे इस सगुण ईश्वर की एक उच्चतर अवस्था के विश्वासी हैं, जिसे सगुण-निर्गुण नाम दिया जा सकता है। जिसके कोई गुण नहीं है, उसका किसी विशेषण द्वारा वर्णन करना असम्भव है। और अद्वैतवादी उसे 'सत्-चित्-आनन्द' के सिवा कोई और विशेषण नहीं देना चाहते। शंकर ने ईश्वर को सच्चिदानन्द विशेषण से पुकारा है, परन्तु उपनिषदों में ऋषियों ने इससे भी आगे बढ़कर कहा है, 'नेति नेति' अर्थात् 'यह नहीं, यह नहीं।' इस विषय में सभी सम्प्रदाय एकमत हैं। अब मैं द्वैतवादियों के मत के पक्ष में कुछ कहूँगा। जैसा कि मैंने कहा है, रामानुज को मैं भारत का प्रसिद्ध द्वैतवादी तथा वर्तमान समय के द्वैतवादी सम्प्रदायों का सबसे बड़ा प्रतिनिधि मानता हूँ। खेद की बात है कि हमारे बंगाल के लोग भारत के उन बड़े बड़े धर्माचार्यों के विषय में जिनका जन्म दूसरे प्रान्तों में हुआ था, बहुत ही थोड़ा ज्ञान रखते

हैं। मुसलमानों के राज्यकाल में एक चैतन्य को छोड़कर बड़े बड़े और सभी धार्मिक नेता बलिष्ठ भारत में पैदा हुए थे और इस समय साक्षिचार्यों का ही अस्तित्व वास्तव में भारत भर का शासन कर रहा है। यहाँ तक कि चैतन्य भी इन्हीं सम्प्रदायों में से एक के मध्याह्न के सम्प्रदाय के अनुयायी थे। बल्कि रामानुज के मतानुसार नित्य पदार्थ तीन हैं—ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति। सभी जीवात्माएँ नित्य हैं परमात्मा के साथ उनका भेद सर्वत्र बना रहेगा और उनकी स्वतंत्र सत्ता का कभी लोप नहीं होगा। रामानुज कहते हैं, तुम्हारी आत्मा हमारी आत्मा से अन्त काल तक सिद्ध रूपक रहेगी और यह प्रकृति भी चिरकाल तक रूपक रूप में विद्यमान रहेगी क्योंकि उसका अस्तित्व बँधे ही सत्य है, जैसे कि जीवात्मा और ईश्वर का अस्तित्व। परमात्मा सर्वत्र अन्तर्निहित और आत्मा का धारक तन्त्र है। ईश्वर अन्तर्निही है और इसी अर्थ को लेकर रामानुज यहाँ यहाँ परमात्मा को जीवात्मा से अभिन्न—जीवात्मा का धारक पदार्थ बताते हैं, और वे जीवात्माएँ प्रलय के समय जब कि उनके मतानुसार धारी प्रकृति संकुचित अवस्था को प्राप्त होती हैं, संकुचित हो जाती हैं और कुछ काल तक चली संकुचित तथा क्षुब्ध अवस्था में रहती हैं। और इससे कल्प के आरम्भ में वे अपने पिछले कर्मों के अनुसार फिर विक्रम पाती हैं और अपना कर्मफल भोगती हैं। रामानुज का मत है कि जिस कर्म से आत्मा की स्वभाविक परिचिता और पूर्णता का संकोच हो रही अमुम है, और जिससे उसका विकास ही वह पुनः कर्म। जो कुछ आत्मा के विकास में सहायता पहुँचाये वह अच्छा है और जो कुछ उसे संकुचित करे, वह बुरा। और इसी तरह आत्मा की प्रगति हो रही है कभी तो वह संकुचित हो रही है और कभी विरक्ति। अन्त में ईश्वर के अनुग्रह से उस मुक्ति मिलती है। रामानुज कहते हैं जो कुछ स्वभाव है और अनुग्रह के लिए प्रयत्नशील है, वे ही उसे पाते हैं।

पुत्रि में एक प्रसिद्ध वाक्य है आहारशुद्धी सत्यमुक्तिः सत्यशुद्धी भ्रूवा स्मृतिः।  
—जब आहार शुद्ध होता है तब सत्य भी शुद्ध हो जाता है और सत्य शुद्ध होने पर स्मृति अर्थात् ईश्वर-स्मरण (बद्वैतधारियों के लिए स्वर्गीय पूर्णता की स्मृति) भ्रूव अचल और स्थायी हो जाता है। इस वाक्य को लेकर भाष्यकारों में प्रसिद्ध विचार हुआ है। पहली बात तो यह है कि इस 'सत्य' वाक्य का क्या अर्थ है? इस भोग जानने हैं नाश्व क अनुसार—और इस विषय की हमारे सभी दर्शन-सम्प्रदायों के स्वीकार किया है कि—'म देह वा निर्माण तीन प्रकार के उपादानों से हुआ है—गुणों से नहीं। आपाण्ड सन्तुष्यों की यह धारणा है कि सत्य एक और तम तीनों गुण हैं परन्तु वास्तव में वे पुनः नहीं वे तन्त्र के उपादान-वाक्य

स्वरूप है। और आहार शुद्ध होने पर यह सत्त्व-पदार्थ निर्मल हो जाता है। शुद्ध मत्त्व को प्राप्त करना ही वेदान्त का एकमात्र उपदेश है। मैंने तुमसे पहले भी कहा है कि जीवात्मा स्वभावतः पूर्ण और शुद्धस्वरूप है और वेदान्त के मत में वह रज और तम दो पदार्थों में ढँका हुआ है। सत्त्व पदार्थ अत्यन्त प्रकाशस्वभाव है और उसके भीतर में आत्मा की ज्योति जगमगाती हुई स्वच्छन्दतापूर्वक उसी प्रकार निकलती है, जिस प्रकार शीशे के भीतर से आलोक। अतएव यदि रज और तम पदार्थ दूर हो जायें तो केवल सत्त्व रह जाय, तो आत्मा की शक्ति और पवित्रता प्रकाशित हो जायगी, और वह अपने को पहले से अधिक व्यक्त कर सकेगी।

अतः यह सत्त्वप्राप्ति अत्यन्त आवश्यक है और श्रुति कहती है, 'आहार शुद्ध होने पर सत्त्व शुद्ध होता है।' रामानुज ने 'आहार' शब्द को भोज्य पदार्थ के अर्थ में ग्रहण किया है और उन्होंने इसे अपने दर्शन के अगो मे से एक मुख्य अंग माना है। इतना ही नहीं, इसका प्रभाव सम्पूर्ण भारत पर और भिन्न भिन्न सम्प्रदायों पर पडा है। अतएव हमारे लिए इसका अर्थ समझ लेना अत्यावश्यक है, क्योंकि रामानुज के मत से यह आहार-शुद्धि हमारे जीवन का एक मुख्य अवलम्ब है। आहार किन कारणों से दूषित होता है? रामानुज का कथन है कि तीन प्रकार के दोषों से खाद्य पदार्थ दूषित हो जाता है। प्रथम है जाति दोष अर्थात् भोज्य पदार्थों की जाति में प्रकृतिगत दोष जैसे कि लहसुन, प्याज और इसी प्रकार के अन्यान्य पदार्थों की गन्ध। दूसरा है आश्रय दोष अर्थात् जिस पदार्थ को कोई दूसरा छू लेता है अर्थात् जो पदार्थ किसी दूसरे के हाथ से मिलता है, वह छूनेवाले के दोषों से दूषित हो जाता है, दुष्ट मनुष्य के हाथ का भोजन तुम्हें भी दुष्ट कर देगा। मैंने स्वयं भारत के बड़े बड़े अनेक महात्माओं को उनके जीवन-काल में दृढतापूर्वक इस नियम का पालन करते हुए देखा है। और हाँ, भोजन देनेवाले के—यहाँ तक कि यदि किसीने कभी भोजन छुआ हो, तो उसके भी गुण-दोषों के समझ लेने की उनमें श्रेष्ठ शक्ति थी, और यह मैंने अपने जीवन में एक बार नहीं, सैकड़ों बार प्रत्यक्ष अनुभव किया है। तीसरा है निमित्त दोष, भोज्य पदार्थों में बाल, कीड़े या धूल पड जाने से निमित्त दोष होता है। हमें इस समय इस शेषोक्त दोष से बचने की विशेष चेष्टा करनी चाहिए। भारत पर इसका अत्यधिक प्रभाव है। यदि वह भोजन किया जाय, जो इन तीनों प्रकार के दोषों से मुक्त है, तो अवश्य ही सत्त्वशुद्धि होगी। अगर ऐसा ही है तो घर्म तो बायें हाथ का खेल हो गया। अगर पाक-साफ भोजन ही से घर्म होता हो तो फिर हर एक मनुष्य घर्मात्मा बन सकता है। जहाँ तक मेरा ख्याल है, इस ससार में ऐसा कमजोर या असमर्थ कोई भी न होगा, जो अपने को इन वुराइयों से न बचा सके। अस्तु। शंकराचार्य



कहते हैं 'आहार' शब्द का अर्थ है इन्द्रियों द्वारा मन में विचारों का समावेश, आहरण होना या आना जब मन निर्मल होता है, तब शब्द भी निर्मल हो जाता है, किन्तु इसके पहले नहीं। तुम्हें जो शब्द वही भोजन कर सकते हो। अगर केवल साध पदार्थ ही शब्द को सममुक्त करता है तो जिसको बन्धर को बिन्दवी मर दूब-भात बेसों तो वह एक बड़ा योगी होता है या नहीं! अगर ऐसा ही होता तो यामों और हिरण परम योगी हो गये होते। यह उक्ति प्रसिद्ध है

मित गहाने ते हरि मिते तो बल जन्तु होई।

फल फूस लाने हरि मिते तो बाँसुड़ बाँसराई।

स्विरल भक्षण से हरि मिते तो बहुत मुनी भजा।

परन्तु इस समस्या का समाधान क्या है? आवश्यक दोनों ही हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आहार के सम्बन्ध में सकराचार्य का सिद्धान्त मुख्य है परन्तु यह भी सत्य है कि धृष्ट भोजन से धृष्ट विचार होने में सहायता मिलती है। दोनों का एक दूसरे से बनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों आवश्यक हैं परन्तु नुटि यही है कि आजकल हम भारतवासी सकराचार्य का उपदेश भूल गये हैं। हम लोगों ने आहार का अर्थ धृष्ट भोजन मान लिया है। यही कारण है कि जब लोग मुझे यह कहते हुए सुनते हैं कि धर्म अब रसाई में भुस गया है, तब वे मुझ पर विमर्श उठते हैं परन्तु यदि मेरे साथ तुम मद्रास जाओ तो मेरे वाक्यों को स्वीकार कर लो। बंदासी उनसे अच्छे हैं। मद्रास में किसी उच्च वर्ण के मनुष्य के भोजन पर यदि किसी नीच जाति की दृष्टि पड़ गयी तो वह भोजन फेंक दिया जाता है। परन्तु इतने पर भी मैंने नहीं देखा कि वहाँ के लोग उत्तम ही भोजन खाते। यदि केवल इस प्रकार का उस प्रकार का भोजन करने ही से और उसे इसकी उसकी दृष्टि से बचाने ही से लोग सिद्ध हो जाते तो तुम देखते कि सभी मद्रासी सिद्ध-महात्मा ही गये होते परन्तु वे बँसे नहीं हैं।

इस प्रकार, यद्यपि दोनों मत एकत्र करने एक सम्पूर्ण सिद्धान्त बनाना है, किन्तु जोड़े के आवे गायी न जोड़ो। आजकल भोजन और वर्णधर्म के सम्बन्ध में बड़ा खोरखुल उठ रहा है और बंदासी तो इन्हें फेंकर और भी घसा फाड़ रहे हैं। तुममें से हर एक से मरा प्रश्न है कि तुम वर्णधर्म के सम्बन्ध में क्या जानते हो? इन समय इन देश में चतुर्वर्ण्य विभाग नहीं है? मेरे प्रश्नों का उत्तर भी हो। मैं तो वर्णचतुष्टय नहीं देखता। जिस प्रकार हमारे बंदासियों की बहाणन है कि 'बिना धिर के धिरदर्द होता है' उसी प्रकार यहाँ तुम वर्णधर्म विभाग नहीं बर्णन करना चाहते हो। यही अब चार जातियों का बान नहीं है। मैं केवल

ब्राह्मण और शूद्र देखता हूँ। यदि क्षत्रिय और वैश्य हैं, तो वे कहाँ हैं? और ऐ ब्राह्मणो, क्यों तुम उन्हें हिन्दू धर्म के नियमानुसार यज्ञोपवीत धारण करने की आज्ञा नहीं देते?—क्यों तुम उन्हें वेद नहीं पढाते, जो हर एक हिन्दू को पढना चाहिए?—और यदि वैश्य और क्षत्रिय न रहे, किन्तु केवल ब्राह्मण और शूद्र ही रहें तो शास्त्रानुसार ब्राह्मणो को उस देश में कदापि न रहना चाहिए, जहाँ केवल शूद्र हो, अतएव अपना बोरिया-बंधना लेकर यहाँ से कूच कर जाओ। क्या तुम जानते हो, जो लोग म्लेच्छ-भोजन खाते हैं और म्लेच्छो के राज्य में बसते हैं, जैसे कि तुम गत हजार वर्षों से बस रहे हो, उनके लिए शास्त्रो में क्या आज्ञा है? क्या उसका प्रायश्चित्त तुम्हें मालूम है? प्रायश्चित्त है तुषानल—अपने ही हाथों अपनी देह जला देना। तुम आचार्य के आसन पर बैठना चाहते हो, परन्तु कपटाचरण नहीं छोड़ते। यदि तुम्हें अपने शास्त्रो पर विश्वास है तो अपने को उसी प्रकार जला दो, जिस प्रकार उन एक ख्यातनामा ब्राह्मण ने, जो महावीर सिकन्दर के साथ यूनान गये थे, म्लेच्छ का भोजन खा लेने के कारण तुषानल में अपना शरीर जला दिया था। यदि तुम ऐसा कर सके तो देखोगे, सारी जाति तुम्हारा चरण चूमेगी। स्वयं तो तुम अपने शास्त्रो पर विश्वास नहीं करते और दूसरो का उन पर विश्वास कराना चाहते हो। अगर तुम समझते हो कि इस जमाने में वैसा नहीं कर सकते, तो अपनी दुर्बलता स्वीकार करके दूसरो की भी दुर्बलता क्षमा करो, दूसरी जातियों को उन्नत करो, उनकी सहायता करो, उन्हें वेद पढ़ने दो, ससार के अन्य किन्हीं भी आर्यों के समकक्ष उन्हें भी आर्य बनने दो, और ऐ बगाल के ब्राह्मणो, तुम भी वैसे ही सदाशय आर्य बनो।

यह घृण्य वामाचार छोड़ो, जो देश का नाश कर रहा है। तुमने भारत के अन्यान्य भाग नहीं देखे। जब मैं देखता हूँ कि हमारे समाज में कितना वामाचार फैला हुआ है, तब अपनी सस्कृति के समस्त अहंकार के साथ यह (समाज) मेरी नज़रो में अत्यन्त गिरा हुआ स्थान मालूम होता है। इन वामाचार सम्प्रदायी ने मधुमक्खियों की तरह हमारे बगाल के समाज को छा लिया है। वे ही जो दिन में गरज कर आचार के सम्बन्ध में प्रचार करते हैं, रात को घोर पैशाचिक कृत्य करने से बाज नहीं आते, और अति भयानक ग्रन्थसमूह उनके कर्म के समर्थक हैं। घोर दुष्कर्म करने का आदेश उन्हें ये शास्त्र देते हैं। तुम बगालियों को यह विदित है। बगालियों के शास्त्र वामाचार-तत्र हैं। ये ग्रन्थ ढेरो प्रकाशित होते हैं, जिन्हे लेकर तुम अपनी सन्तानों के मन को विपाक्त करते हो, किन्तु उन्हें श्रुतियों की शिक्षा नहीं देते। ऐ कलकत्तावासियों, क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती कि अनुवादसहित वामाचार-तत्रों का यह वीभत्त सग्रह तुम्हारे बालकों और बालिकाओं के हाथ रखा जाय, उनका चित्त



विपनिहृक हो और वे धर्म से नही चारणा केकर क्यों कि विपनिहृक के अर्थ में वामाचार ब्रह्म है ? यदि तुम रुचिगत हो तो अपने कर्णों से उन्हें जानना, और उन्हें मर््याय सास्त्र वेव पीठा उपनिषद् पढ़ने दो।

भारत के ईतबासी सम्प्रदायों के अनुसार सभी जीवात्माएँ सभी जीवन्त ही रहेंगी। ईश्वर जन्म का निमित्त कारण है और उसने पहले ही से अपनी-प्राण-कारण से संसार की सृष्टि की। उबर अईतबासियों के मत है ईश्वर संसार का निमित्त और उत्पादन दोनों कारण है। यह केवल संसार का सत्य ही नहीं, किन्तु उसने अपने ही से संसार का सर्वन किया। नही अईतबासियों का विश्वास है। कुछ बचकपरे ईतबासी सम्प्रदाय हैं जिनका यह विश्वास है कि ईश्वर ने अपने-ही अंतर से संसार की सृष्टि की और साथ ही यह विश्वास से वास्तव युक्त की है, एक हर एक वस्तु फिर काळ के लिए उस अनलिप्तता के वास्तव अर्थात् है। ऐसे ही अज्ञान को यह मानते हैं कि ईश्वर ने अपने को उत्पादन बनाकर इस जन्म का उत्पादन किया और जीव जन्त में सात्त भाव छोड़कर अनन्त होते हुए विनाश प्राप्त करे, परन्तु वे सम्प्रदाय सत्य हो चुके हैं। अईतबासियों का एक यह सम्प्रदाय किसे कि कुछ वर्तमान भारत में देखते ही संकर का अनुवासी है। संकर का मत यह है कि जन्म के माध्यम से देखने के कारण ही ईश्वर संसार का निमित्त और उत्पादन दोनों कारण है, किन्तु वास्तव में नहीं। ईश्वर वह जन्म नहीं बना बल्कि यह जन्म है ही नहीं, केवल ईश्वर ही है—अज्ञान सर्व अनलिप्तता। अईत वेदान्त का यह मानना अज्ञान अज्ञान कहिन है। हमारे दार्शनिक विषय का यह बहुत ही कहिन अर्थ है, सभी पर्याप्तता करने के लिए अब समय नहीं है। तुममें जो परिधनी वर्णों के परिधित है, वे मानते हैं, इसका कुछ कुछ अर्थ काट के वर्ण से मेक जाता है परन्तु किन्हीं अज्ञान पर किन्हे हुए प्रोफेसर मैनसमूकर के विश्वास पड़े हैं उन्हें में तावताल करता हूँ कि उनके विश्वासों में एक बड़ी भारी त्रुटि है। प्रोफेसर नहीचव के मत में जो वेद काळ और निमित्त हमारे ज्ञान के प्रतिबन्धक हैं उन्हें पहले काळ ने आविष्कृत किया परन्तु वास्तव में उनके प्रथम आविष्कर्ता संकर हैं। संकर ने वेद काळ और निमित्त को अज्ञान के ज्ञान अविश रूपकर उनका वर्णन किया है। तीनात्म्य के संकर के जन्मों में कि दो एक स्वक मुझे मिल गये। उन्हें मैंने अपने विषय प्रोफेसर नहीचव के पत्र वेव दिया। अज्ञान काळ के पहले की यह तत्व भारत में अज्ञान नही था। परन्तु, अईत वेदान्तियों का यह मानाचार विधिन मिश्रान्त है। उनके मत में सत्ता केवल सत्ता ही की है, यह जो मेव सृष्टिमोचर ही रहा है, यह केवल सत्ता के कारण है, यह सत्ता यह अईतबासियोंका सत्ता ही हमारा धर्म सत्य है और नही पर वास्तविक और वास्तविक विचारों का फिर अर्थ की सत्य है। हजारों वर्षों के भारत के

मायावाद की घोषणा करते हुए ससार को चुनौती दी है और ससार की विभिन्न जातियों ने यह चुनौती स्वीकार भी की, जिसका फल यह हुआ कि वे पराभूत हो गयी हैं और तुम जीवित हो। भारत की घोषणा यह है कि ससार भ्रम है, इन्द्रजाल है, माया है, अर्थात् चाहे तुम मिट्टी से एक एक दाना बीनकर भोजन करो या चाहे तुम्हारे लिए सोने की थाली में भोजन परोसा जाय, चाहे तुम महलों में रहो, चाहे कोई महाशक्तिशाली महाराजाधिराज हो अथवा चाहे द्वार-द्वार का भिक्षुक, किन्तु परिणाम सभी का एक है और वह है मृत्यु, गति सभी की एक है, सभी माया है। यही भारत की प्राचीन सूक्ति है। वारम्बार भिन्न भिन्न जातियाँ सिर उठाती और इसके खडन करने की चेष्टा करती हैं, वे बढ़ती हैं, भोगसाधन को वे अपना ध्येय बनाती हैं, उनके हाथ में शक्ति आती है, पूर्णतया शक्ति का प्रयोग करती है, भोग की चरम सीमा को पहुँचती हैं और दूसरे ही क्षण वे विलुप्त हो जाती हैं। हम चिर काल से खडे हैं, क्योंकि हम देखते हैं कि हर एक वस्तु माया है। महामाया के वच्चे सदा वचे रहते हैं, परन्तु भोग रूपी अविद्या के लाडले देखते ही देखते कूच कर जाते हैं।

यहाँ एक दूसरे विषय में भी प्राच्य और पाश्चात्य विचार-प्रणाली में भेद है। जिस तरह तुम जर्मन दर्शन में हेगेल और शॉपेनहॉवर के मत देखते हो, बिल्कुल उसी तरह के विचार प्राचीन भारत में भी मिलते हैं। परन्तु हमारे सौभाग्य से हेगेलीय मतवाद का उन्मूलन उसकी अकुर-दशा में ही हो गया था, हमारी जन्मभूमि में उसे बढ़ने और उसकी विषाक्त शाखा-प्रशाखाओं को फँलने नहीं दिया गया। हेगेल का एक मत यह है कि एकमात्र परम सत्ता अन्वकारमय और विश्रुखल है, और साकार व्यष्टि उसकी अपेक्षा श्रेष्ठ है अर्थात् अ-जगत् से (जगत् नहीं है, इस भाव में) जगत् (जगत् है यह भाव) श्रेष्ठ है, मुक्ति से ससार श्रेष्ठ है। हेगेल का यही मूल भाव है, अतएव उनके मत में तुम ससार में जितना ही अवगाहन करोगे, जितनी ही तुम्हारी आत्मा जीवन के कर्मजालों से आवृत होगी, उतना ही तुम उन्नत होगे। पश्चिमवाले कहते हैं—क्या तुम देखते नहीं, हम कौसी बर्डी बडो इमारतें उठाते हैं, सडकें साफ रखते हैं, हर तरह के सुख भोगते हैं? इसके पीछे—प्रत्येक इन्द्रिय-भोग के पीछे—दुःख, वेदना, पैशाचिकता और घृणा-विद्वेष चाहे भले ही छिपे हों, किन्तु उससे कोई हानि नहीं।

दूसरी ओर हमारे देश के दार्शनिक पहले ही से यह घोषणा कर रहे हैं कि हर एक अभिव्यक्ति, जिसे तुम विकास कहते हो, उस अव्यक्त की अपने को व्यक्त करने की निरर्थक चेष्टा मात्र है। हे ससार के सर्वशक्तिशाली कारणस्वरूप, तुम छोटी छोटी गडहियों में अपना स्वरूप देखने का वृथा प्रयत्न करते हो। कुछ दिनों के लिए यह प्रयत्न करके तुम समझोगे कि यह व्यर्थ था, और जहाँ से तुम आये हो, वही

कोटा चलने की ठानो। यही वीरत्व है, वीर यही है बर्न बर्न  
 किना त्वाव या वीरत्व के बर्न या नैतिकता का उत्पन्न  
 ही ये बर्न का कारण होता है वीर त्वाव ही में  
 'त्वाव करो, त्वाव करो—इसके बिना वीर बुरापा न्य नहीं है'  
 न केवल त्वावकेवल अनुभवकाव्यः ।

'मृत्ति न कण्ठालीं वे होती है, न पन से न का से का  
 से निकता है ।

यही भारत के सब शास्त्रों का भाव्य है । यह सब है कि किसी भी  
 महापुरुषों न विहासल पर बैठे हुए भी बंधार के बड़े बड़े त्वावियों के  
 निर्वाह किमा है, परन्तु जनक जैसे श्रेष्ठ त्वावी को भी कुछ जनक के लिए  
 सम्बन्ध छोड़ना पड़ा था । उनके बड़ा त्वावी क्या वीर कोई था ? परन्तु  
 हम सभी जनक कहलाना चाहते हैं ? हाँ वे जनक हैं—नरे, दूरे, कर्णों  
 के जनक । जनक सब उनके लिए केवल इती बर्न में वा जनक है ।  
 जनक के समान उनमें ब्रह्मनिष्ठा नहीं है । वे हमारे बाधक के जनक हैं ।  
 जनकत्व की मात्रा बरा कम करके तीबरे रास्ते पर जाती । यदि तुम जनक  
 सको तो तुम्हें बर्न मिल सकता है । यदि तुम त्वाव नहीं कर सकते तो तुम  
 से लेकर परिश्रम तक बारे बंधार में बिलगी पुरतमें है उन्हें जनक, जनक  
 पुरतकास्त्रों को निककर पुरतपर पण्डित ही जनके हो परन्तु यदि तुम केवल  
 कर्मकांड में रने रहे तो यह कुछ नहीं है इतमें भाष्यारिक्तता नहीं नहीं है । केवल  
 त्वाव के द्वारा ही इस अनुभव की प्राप्ति होती है । त्वाव ही महापुरुष है ।  
 जिसके बिना इस महापुरुष का भाष्यार्थ होता है, यह वीर की ही काव है  
 क्या विश्व की वीर नजर उठाकर नहीं देखना । सभी बारा बंधार उनके विश्व  
 भाव के बुर से बनाये हुए भी के बंधार नजर जाता है—

त्वाव ही भारत की पताका है । इती पताका को बंधार कान्त् में बंधार, बंधार  
 हुई सभी भाष्यों को भारत यही एक बंधार विचार बंधार बंधार कर, उन्हें  
 सब प्रकार के बंधारों एवं बंधारों के विषय बंधार कर रहा है । यह सभी  
 बंधार कर उनसे कह रहा है, 'बन्धवार त्वाव के पन का बंधार के पन का बंधार  
 करो नहीं तो नर जाओगे । वे हिन्दुओं, इस त्वाव की पताका को न छोड़ना—इसकी  
 वीर बंधार उठाओ । बाई मुम पूर्वक बने ही हो वीर त्वाव वाले बंधार ही बंधार उठाओ,  
 परन्तु बंधार को छोटा न करो । इन पूर्वक है—इन बंधार का त्वाव नहीं उठाओ,  
 परन्तु बंधार उठाओ के इतने में न रहे, बंधारों का बंधार उठाओ, बंधारों को  
 बंधार उठाओ की बंधारों में न्य न्य उठाओ । केवल यह बंधार उठाओ की ही है

दुर्बल हैं? कारण, यह त्याग का आदर्श अत्यन्त महान् है। क्या हानि है, यदि लडाई में लाखों गिर जायें, पर दस सिपाही या केवल दो एक ही वीर विजयी होकर लौटें। युद्ध में जिन लाखों लोगों को वीरगति मिलती है, वे सचमुच धन्य हैं।— क्योंकि उनके शोणितरूपी मूल्य से विजय-लाभ होता है, एक को छोड़कर सारे वैदिक सम्प्रदायो ने इस त्याग ही को अपना एकमात्र आदर्श बनाया है। केवल बम्बई प्रान्त के बल्लभाचार्य सम्प्रदाय ने वैसा नहीं किया, और तुमसे से अनेक को विदित है कि जहाँ त्याग नहीं, वहाँ अन्त में क्या दशा होती है। इस त्याग के आदर्श की रक्षा के लिए यदि हमें कट्टरता और निरी कट्टरता स्वीकार करनी पड़े, भस्ममण्डित ऊर्ध्वबाहु जटाजूटधारियों को स्थान देना पड़े, तो वह भी अच्छा है। कारण, यद्यपि वे अस्वाभाविक हो सकते हैं तथापि पुरुषत्व का लोप करनेवाली जो विलासिता भारत में घुसकर हमारा खून पी रही है, सारी जाति को कपटाचरण की शिक्षा दे रही है, उस विलासिता के स्थान में त्याग का आदर्श रखकर ममग्र जाति को सावधान करने के लिए वे हमारे लिए वाञ्छनीय हैं। अतएव हमें थोड़ी त्याग-तपस्या चाहिए। प्राचीन काल में भारत में त्याग ही की विजय थी, अब भी भारत में इसे विजय प्राप्त करना है। यह त्याग भारत के आदर्शों में अब भी सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च है। यह बुद्ध की भूमि, रामानुज की भूमि, रामकृष्ण परमहंस की भूमि, त्याग की भूमि, वह भूमि, जहाँ प्राचीन काल से कर्मकाण्ड के विरुद्ध प्रतिवाद किया गया और जहाँ आज भी ऐसे सैकड़ों महापुरुष हैं जिन्होंने सब विषयों का त्याग कर दिया और जीवन्मुक्त बने बैठे हैं, क्या वह भूमि अपने आदर्श को छोड़ देगी? कदापि नहीं। यहाँ ऐसे मनुष्य रह सकते हैं, जिनका मस्तिष्क पश्चिमी विलासिता के आदर्श से विकृत हो गया है, यहाँ ऐसे हज़ारों नहीं, लाखों मनुष्य रह सकते हैं, जो विलास मद में चूर हो रहे हैं, जो पश्चिम के शाप में—इन्द्रिय-परतत्रता में—ससार के शाप में डूबे हुए हैं, किन्तु इतने पर भी हमारी मातृभूमि में हज़ारों ऐसे भी होंगे, धर्म जिनके लिए शाश्वत सत्य है और जो ज़रूरत पड़ने पर फलाफल का विचार किये बिना ही सब कुछ त्याग देने के लिए सदा तैयार हो जायेंगे।

हमारे इन सब सम्प्रदायों में एक और सामान्य आदर्श है। उसको भी मैं तुम्हारे सम्मुख रखना चाहता हूँ। यह भी एक व्यापक विषय है। यह अद्वितीय विचार केवल भारत ही में विशेष रूप से पाया जाता है कि धर्म का साक्षात्कार करना चाहिए। नाथमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।—'इस आत्मा को न कोई वाग्बल से प्राप्त कर सकता है, न बुद्धि-कौशल से और न अधिक शास्त्राध्ययन से।' इतना ही नहीं, ससार में केवल हमारे ही शास्त्र ऐसे हैं, जो घोषणा करते हैं कि आत्मा को कोई न तो शास्त्रों का पाठ करके प्राप्त कर सकता है, न वार्ता

कोटा बचने की उलोये। यही वीरपन्न है, और यही है  
विना त्याग या वीरपन्न के बर्म या नैतिकता का उदय  
ही से बर्म का आरम्भ होता है और त्याग ही में उठती  
'त्याग करो त्याग करो—इसके सिवा और कुछ पत्र नहीं है।'  
न वैश्वामय्य त्यागैरेव्येन अनृतवन्मयावहः।

'मूर्खता न सत्ताओं से होती है, न बल से न सब से यह  
से मिलता है।

यही भारत के सब शास्त्रों का आदेश है। यह एतद् है कि विद्वान्  
महाराजों ने सिंहासन पर बैठे हुए भी संसार के बड़े बड़े त्वागिनी के  
निर्वाह किया है परन्तु जनक जैसे श्रेष्ठ त्वागी की भी कुछ मात्र के लिए  
सम्बन्ध छोड़ना पड़ा था। कबसे बड़ा त्वागी क्या और कोई था? परन्तु  
हम सभी जनक कहलाना चाहते हैं? हाँ वे जनक हैं—नये बूते, बरतों  
के जनक। जनक सब उनके लिए कैबल इती बर्म में आ सकता है।  
जनक के समान उनमें ब्रह्मपिष्ठा नहीं है। वे हमारे बापकक के बरत हैं।  
जनकत्व की भाषा बारा कम करके तीबरे रास्ते पर आओ। यदि तुम  
सको तो तुम्हें बर्म मिल सकता है। यदि तुम त्याग नहीं कर सकते तो तुम  
से लेकर परिश्रम तक बारे संसार में कितनी दुस्तरें हैं उन्हें बरत, जनक  
पुस्तकाकार्यों को मिलकर बुराबर वंजित ही सकते हो परन्तु यदि तुम कैबल उती  
कर्मकांड में लगे रहे तो यह कुछ नहीं है, इसमें बाष्पातिकता नहीं नहीं है। कैबल  
त्याग के द्वारा ही इस बमृतात्व की प्राप्ति होती है। त्याग ही महावर्णित है।  
विक्रमे भीतर इस महावर्णित का आधिजाय होता है, यह और की ही बरत है  
क्या विश्व की और बरत उठकर नहीं केवता। तभी बारा ब्रह्मपिष्ठा उनके विश्व  
बाप के बुर से बनाने हुए बड़े के बरतन बरत आता है—ब्रह्मपिष्ठा लोचनकाली।

त्याग ही भारत की पताका है। इसी पताका को जनक बरत में ब्रह्मपिष्ठा, नली  
हुई सभी बरतियों की भारत यही एक बाष्कत विचार बरतार वंजित कर, उन्हें  
बब प्रकार के बरतारों एवं बरतारों के विरुद्ध बाष्कत कर रहा है। यह नली  
बरतार कर उनके बरत है, बाष्कत त्याग के बरत का बरतित के बरत का बरतार  
करो नहीं तो बरत बरतों। ऐ किन्तु ही इस त्याग की पताका को न लीकता—इसकी  
और उंवा उंवाओ। बाई तुम बरतन बने ही हो, और त्याग बाई बने ही न कर लगे,  
परन्तु बाष्कत को, कोला, बरत करो; परन्तु बरत है—बुर संसार का बरत नहीं कर लगे,  
परन्तु बरतन बने के इरादे में बरत रही, बरतों का बरत वंजित कर लगे की बरतियों के  
बुर बरतों कोनों की बरतों में बुर बरत लीके। कैबल बरत, बरतों के बरतों की बरत

दुर्बल हैं? कारण, यह त्याग का आदर्श अत्यन्त महान् है। क्या हानि है, यदि लडाईं में लाखों गिर जायें, पर दस सिपाही या केवल दो एक ही वीर विजयी होकर लौटें! युद्ध में जिन लाखों लोगों को वीरगति मिलती है, वे सचमुच धन्य हैं।—क्योंकि उनके शोणितरूपी मूल्य से विजय-लाभ होता है, एक को छोड़कर सारे वैदिक सम्प्रदायो ने इस त्याग ही को अपना एकमात्र आदर्श बनाया है। केवल बम्बई प्रान्त के वल्लभाचार्य सम्प्रदाय ने वैसा नहीं किया, और तुमसे से अनेक को विदित है कि जहाँ त्याग नहीं, वहाँ अन्त में क्या दशा होती है। इस त्याग के आदर्श की रक्षा के लिए यदि हमें कट्टरता और निरी कट्टरता स्वीकार करनी पड़े, भस्ममण्डित ऊर्ध्वबाहु जटाजूटधारियों को स्थान देना पड़े, तो वह भी अच्छा है। कारण, यद्यपि वे अस्वाभाविक हो सकते हैं तथापि पुरुषत्व का लोप करनेवाली जो विलासिता भारत में घुसकर हमारा खून पी रही है, सारी जाति को कपटाचरण की शिक्षा दे रही है, उस विलासिता के स्थान में त्याग का आदर्श रखकर समग्र जाति को सावधान करने के लिए वे हमारे लिए वाञ्छनीय हैं। अतएव हमें थोड़ी त्याग-तपस्या चाहिए। प्राचीन काल में भारत में त्याग ही की विजय थी, अब भी भारत में इसे विजय प्राप्त करना है। यह त्याग भारत के आदर्शों में अब भी सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च है। यह बुद्ध की भूमि, रामानुज की भूमि, रामकृष्ण परमहंस की भूमि, त्याग की भूमि, वह भूमि, जहाँ प्राचीन काल से कर्मकाण्ड के विरुद्ध प्रतिवाद किया गया और जहाँ आज भी ऐसे सैकड़ों महापुरुष हैं जिन्होंने सब विषयों का त्याग कर दिया और जीवन्मुक्त बने बैठे हैं, क्या वह भूमि अपने आदर्श को छोड़ देगी? कदापि नहीं। यहाँ ऐसे मनुष्य रह सकते हैं, जिनका मस्तिष्क पश्चिमी विलासिता के आदर्श से विकृत हो गया है, यहाँ ऐसे हज़ारों नहीं, लाखों मनुष्य रह सकते हैं, जो विलास मद में चूर हो रहे हैं, जो पश्चिम के शाप में—इन्द्रिय-परतत्रता में—ससार के शाप में डूबे हुए हैं, किन्तु इतने पर भी हमारी मातृभूमि में हज़ारों ऐसे भी होंगे, धर्म जिनके लिए शाश्वत सत्य है और जो ज़रूरत पड़ने पर फलाफल का विचार किये बिना ही सब कुछ त्याग देने के लिए सदा तैयार हो जायेंगे।

हमारे इन सब सम्प्रदायों में एक और सामान्य आदर्श है। उसको भी मैं तुम्हारे सम्मुख रखना चाहता हूँ। यह भी एक व्यापक विषय है। यह अद्वितीय विचार केवल भारत ही में विशेष रूप से पाया जाता है कि धर्म का साक्षात्कार करना चाहिए। नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेघया न बहुना श्रुतेन।—‘इस आत्मा को न कोई वाग्बल में प्राप्त कर सकता है, न बुद्धि-कौशल से और न अथिक् शास्त्राध्ययन से।’ इतना ही नहीं, समार में केवल हमारे ही शास्त्र ऐसे हैं, जो धोषणा करते हैं कि आत्मा को कोई न तो शास्त्रों का पाठ करके प्राप्त कर सकता है, न वार्ता



से और न व्याख्या ही की बचीकत किन्तु इतना  
 नृप से विषय को भिन्नता है। जब विषय में अन्तर्बुद्धि होती है,  
 का स्पष्ट बोध हो जाता है और इस तरह वह अन्तर्बुद्धि  
 होता है।

एक बात और है। बंकाब में एक अन्तर्बुद्धि की  
 कुलमुद्र प्रकाश। वह यह कि मेरा बाप तुम्हारा नृप का बाप  
 मेरा बाप तुम्हारे बाप का नृप का इत्यर्थ में तुम्हारा नृप है।  
 कहना चाहिए, इस सम्बन्ध में अतिशयत बर्ष यह है—नृप  
 का रहस्य समझते हैं कोई किताबी कौड़ा नहीं बंकाबमें नहीं  
 नहीं किन्तु वे जिन्हें वेदों के अर्थों का अर्थ का अर्थ है। अन्तर्बुद्धि  
 तो इस प्रकार है क्या अन्तर्बुद्धि का अर्थ है। अन्तर्बुद्धि  
 —“बिना प्रकार अन्तर्बुद्धि का अर्थ अन्तर्बुद्धि का अर्थ अन्तर्बुद्धि  
 है, परन्तु उसके मुखवात् नृपों को नहीं। ऐसे अन्तर्बुद्धि की अन्तर्बुद्धि  
 यदि अन्तर्बुद्धि स्वयं अन्तर्बुद्धि नहीं की तो वे अन्तर्बुद्धि की अन्तर्बुद्धि  
 जब मैं इस अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि में एक अन्तर्बुद्धि का अर्थ अन्तर्बुद्धि  
 नहीं वहाँ अन्तर्बुद्धि का अर्थ अन्तर्बुद्धि का अर्थ अन्तर्बुद्धि का अर्थ  
 पूछता या क्या आपने परमात्मा को देखा है। अन्तर्बुद्धि के नाम ही है अन्तर्बुद्धि  
 अन्तर्बुद्धि का अन्तर्बुद्धि न अन्तर्बुद्धि और अन्तर्बुद्धि का अन्तर्बुद्धि  
 किन्तु मुझसे कहा ‘हाँ हमने अन्तर्बुद्धि को देखा है। अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि ही अन्तर्बुद्धि,  
 किन्तु यह भी कहा ‘हम तुम्हें भी अन्तर्बुद्धि के नाम पर अन्तर्बुद्धि ही’  
 अन्तर्बुद्धि के पाठ को तोड़-मरोड़कर अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि ही है कोई नृप अन्तर्बुद्धि  
 ही जाता।

अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि।

अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि।

(विश्वकर्मण्य ५८)

—‘हर तरह से अन्तर्बुद्धि की व्याख्या कर लेने का अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि  
 अन्तर्बुद्धि के लिए है अन्तर्बुद्धि के लिए अन्तर्बुद्धि?’

जो ‘अन्तर्बुद्धि’ है—अन्तर्बुद्धि का अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि है, और जो ‘अन्तर्बुद्धि’ है—अन्तर्बुद्धि  
 है जो अन्तर्बुद्धि है—अन्तर्बुद्धि का अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि है, जो अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि  
 अन्तर्बुद्धि की आकाश नहीं अन्तर्बुद्धि के ही अन्तर्बुद्धि है, के ही अन्तर्बुद्धि है। अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि  
 अन्तर्बुद्धि हर एक अन्तर्बुद्धि की अन्तर्बुद्धि अन्तर्बुद्धि है

पौधे से प्रतिदान नहीं मांगता, क्योंकि भलाई करना उसका स्वाभाविक धर्म है, उसी प्रकार वह आता है ।

तीर्णा स्वय भीमभवाणव जना अहेतुनान्यानपि तारयन्त ।—'वि इस भीषण भवसागर के उस पार स्वय भी चले गये हैं और विना किसी लाभ की आशा किये दूसरो को भी पार करते हैं ।' ऐसे ही मनुष्य गुरु हैं, और ध्यान रखो दूसरा कोई गुरु नहीं कहा जा सकता । क्योंकि—

अविद्यायामन्तरे वर्तमाना स्वय धीरा पडितम्मन्यमाना ।

जङ्घन्यमाना परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा ॥'

—'अविद्या के अन्वकार मे डूबे हुए भी अपने को अहंकारवश सुधी और महापडित समझनेवाले ये मूर्ख दूसरो की सहायता करना चाहते हैं, परन्तु ये कुटिल मार्ग मे ही भ्रमण किया करते हैं । अन्धे का हाथ पकडकर चलनेवाले अन्धे की तरह ये गुरु और शिष्य दोनो ही गड्ढे मे गिरते हैं ।' यही वेदो की उक्ति है । इस उक्ति को अपनी वर्तमान प्रथा से मिलाओ । तुम वेदान्ती हो, तुम सच्चे हिन्दू हो, तुम परम्परानिष्ठ धर्म के माननेवाले हो । मैं तुम्हे और भी सच्चा परम्परानिष्ठ धर्मी बनाना चाहता हूँ । तुम सनातन मार्ग का जितना ही अवलम्बन करोगे, उतने ही बुद्धिमान बनोगे, और जितना ही तुम आजकल की कट्टरता के फेर मे पडोगे, उतने ही तुम मूर्ख बनोगे । तुम अपने उसी अति प्राचीन सनातन पथ से चलो, क्योंकि उस समय के शास्त्रो के हर एक शब्द मे सबल, स्थिर और निष्कपट हृदय की छाप लगी हुई है, उसका हर एक स्वर अमोघ है । इसके बाद राष्ट्र का पतन शुरू हुआ—शिल्प मे, विज्ञान मे, धर्म मे, हर एक विषय मे राष्ट्रीय अवनति का आरम्भ हो गया । उसके कारणो पर विचार-विमर्श करने का अब अवकाश नहीं है, परन्तु अवनति के काल मे जो पुस्तके लिखी गयी हैं, उन सबमे इसी व्याधि और राष्ट्रीय पतन के प्रमाण मिलते हैं—राष्ट्रीय ओज के बदले उनसे केवल रोने की आवाज़ सुनायी पडती है । जाओ, जाओ—उस प्राचीन समय के भाव लाओ जब राष्ट्रीय शरीर मे वीर्य और जीवन था । तुम फिर वीर्यवान बनो, उसी प्राचीन झरने का पानी पिओ—भारत को पुनर्जीवित करने का एकमात्र उपाय अब यही है ।

अद्वैतवादियो के मत मे हम लोगो का व्यक्तित्व, जो इस समय विद्यमान है, त्रम मात्र है । समग्र मसार के लिए इस बात को ग्रहण कर पाना बहुत ही कठिन रहा है । जैसे ही तुम किसी से कहो कि वह 'व्यक्ति' नहीं है, वह इतना डर जाता है

कि उसका अपना व्यक्तित्व चाहे वह कैसा ही क्यों  
 व्यक्तवादी कहते हैं कि व्यक्तित्व जैसी वस्तु कभी खूबी ही  
 पर परिचरित हो रहे हो। कभी तुम बाक्य के एक तुम  
 इस समय तुम बुद्ध हो अब दूसरे तरह के विचार करते  
 बाबोने तब दूसरी ही तरह सोचोने। हर एक व्यक्ति  
 यह सच है तो तुम्हारा किसी व्यक्तित्व क्यों रह गया ?  
 व्यक्तित्व न शरीर के सम्बन्ध में रह जाता है, न मन के सम्बन्ध में  
 के सम्बन्ध में। इनके परे वह आत्मा ही है। और व्यक्तवादी कहीं  
 स्वयं बड़ा है वो अस्त क्यामि नहीं रह सकते।

स्वयं है। सच तो यह है कि हम विचारवादी प्राणी हैं, क्या  
 केना चाहते हैं। अन्त में तो तर्क का मुक्ति है क्या बीच ?  
 फलानों को कमवा जैसी से जैसी सोची में अन्तर्गत कर अन्त में किसी  
 पहुँचाना जिसके अन्त फिर उनकी प्रति न हो।

तभी मिल सकता है, अब यह अतीत की सोची तक पहुँचानी बाक्यी। किसी-किसी  
 को लेकर तुम उसका विश्लेषण करते रहो परन्तु अब तक उसे चरम सोचो-सोचो  
 अन्त तक नहीं पहुँचते तब तक तुम्हें बाधित नहीं मिल सकती और व्यक्तवादी  
 कहते हैं अस्तित्व केवल इसी अन्त का है और सच माना है, किसीकी कोई-किसी  
 सत्ता नहीं। कोई भी यह वस्तु क्यों न हो उसमें जो अर्थवत् होता है, वह क्यों कहा है  
 हम नहीं बड़ा है और नामक्य बाधित जितने हैं सच माना है। नाम और उन हमारे  
 तो तुम और हम सब एक हो जायेंगे। तुम्हें इस 'बहु' (में) अन्त को अन्त ही तरह  
 जाना चाहिए। प्रायः लोग कहते हैं 'यदि मैं बड़ा हूँ तो वो मेरे भी हैं अन्त, जो  
 मैं क्यों नहीं कर सकता ?' यहाँ इस अन्त का अन्तहार दूसरे ही अर्थ में किया जा  
 रहा है। अब तुम अपने को यह समझ रहे हो तब तुम अन्तत्त्वक्य कह, कि  
 कोई अन्त नहीं जो अन्तर्जोति है, नहीं रहने। यह अन्तत्त्वक्य है, अन्तत्त्वक्य  
 है, यह कुछ भी नहीं चाहता उसमें कोई कामना नहीं है, यह अन्तर्गत अन्त और  
 सम्पूर्ण स्वाधीन है। नहीं बड़ा है। उन्नी अन्तत्त्वक्य में हम सभी एक हैं।

अन्त-ईशवाकियों और व्यक्तवाकियों ने यह बड़ा अन्तर्गत प्रतीत होता है। कुछ  
 देखोने अन्तत्त्वक्य जैसी बड़े बड़े नामकारों ने जो अपने अन्त की मुक्ति के लिए,  
 अन्त अन्त पर आत्मीय का ऐसा अर्थ किया है जो मेरी अन्त में अन्तत्त्वक्य नहीं-  
 रामानुज ने जो नहीं नहीं आत्मों का ऐसे अर्थ के अर्थ किया है कि वह अन्त अन्त  
 ने नहीं जाता। हमारे पड़ोसी तक की यह धारणा है कि सब  
 व एक ही अन्तत्त्वक्य सत्य है, बाकी सब झूठे हैं।

एक सद्धिप्रा बहुधा वदन्ति—‘सत्ता एक ही है, परन्तु मुनियो ने भिन्न भिन्न नामो से उसका वर्णन किया है।’ और इस अत्यन्त अद्भुत भाव को हमे अब भी दुनिया को देना है। हमारे जातीय जीवन का मूल मंत्र यही है, और एक सद्धिप्रा बहुधा वदन्ति—इस मूल मंत्र को चरितार्थ करने मे ही हमारी जाति की समग्र जीवन-समस्या का समाधान है। भारत मे कुछ थोडे से ज्ञानियो के अतिरिक्त, मेरा मतलब है, बहुत कम आध्यात्मिक व्यक्तियो को छोडकर हम सब सर्वदा ही इस तत्त्व को भूल जाते हैं। हम इस महान् तत्त्व को सदा भूल जाते हैं और तुम देखोगे, अधिकांश पंडित, लगभग ९८ फी सदी, इस मत के पोषक हैं कि या तो अद्वैतवाद सत्य है, अथवा विशिष्टाद्वैतवाद अथवा द्वैतवाद, और यदि तुम पांच मिनट के लिए वाराणसी घाम के किसी घाट पर जाकर बैठो, तो तुम्हे मेरी बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जायगा। तुम देखोगे कि इन भिन्न भिन्न सम्प्रदायो का मत लेकर लोग निरन्तर लड-झगड रहे हैं।

हमारे समाज और पंडितो की ऐसी ही दशा है। इस परिस्थिति मे एक ऐसे महापुरुष का आविर्भाव हुआ जिनका जीवन उस सामजस्य की व्याख्या था, जो भारत के सभी सम्प्रदायो का आधारस्वरूप था और जिसको उन्होंने कार्यरूप मे परिणत कर दिखाया। इस महापुरुष से मेरा मतलब श्री रामकृष्ण परमहंस से है। उनके जीवन से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ये दोनो मत आवश्यक हैं। ये गणितज्योतिष के भूकेन्द्रिक और सूर्यकेन्द्रिक मतों की तरह है। जब बालक को ज्योतिष की शिक्षा दी जाती है, तब उसे भूकेन्द्रिक मत ही पहले सिखलाया जाता है और वह ज्योतिर्विज्ञान के प्रश्नों को भूकेन्द्रिक सिद्धान्त पर घटित करता है। परन्तु जब वह ज्योतिष के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वों का अध्ययन करता है, तब सूर्यकेन्द्रिक मत की शिक्षा उसके लिए आवश्यक हो जाती है। एव वह पहले से और अच्छा समझता है। पचेन्द्रियो मे फँसा हुआ जीव स्वभावत द्वैतवादी होता है। जब तक हम पचेन्द्रियो मे पडे हैं, तब तक हम सगुण ईश्वर ही देख सकते हैं—सगुण ईश्वर के सिवा और दूसरा भाव हम नहीं देख सकते। हम ससार को ठीक इसी रूप मे देखेंगे। रामानुज कहते हैं, “जब तक तुम अपने को देह, मन या जीव सोचोगे तब तक तुम्हारे ज्ञान की हर एक क्रिया मे जीव, जगत् और इन दोनो के कारणस्वरूप वस्तुविशेष का ज्ञान रहेगा।” परन्तु मनुष्य के जीवन मे ऐसा भी समय आता है, जब शरीर-ज्ञान विल्कुल चला जाता है, जब मन भी क्रमशः सूक्ष्मानुसूक्ष्म होता हुआ प्रायः अन्तर्हित हो जाता है, जब देहबुद्धि मे डाल देनेवागी भावना, भीति और दुर्बलता सभी मिट जाते हैं। तभी—केवल तभी उस प्राचीन महान् उपदेश की मत्यता ममझ मे आती है। वह उपदेश क्या है ?

इहं वैश्वानरं सर्वं दत्तं भोजम्  
निर्वोक्तं हि सर्वं ब्रह्म तन्माम् ब्रह्मणि वै

—'शिवका मन साम्यभाव में अवस्थित है, उन्होंने यही  
ब्रह्म को जीत लिया है। चूंकि ब्रह्म निर्वोक्त और सर्वत्र सम  
में अवस्थित है।

सर्वं ब्रह्मन् हि सर्वत्र समवस्थितव्यतीत्यम् ।  
न ह्यन्यत्सर्वत्रान्यत्रान्यत् ततो वासि सर्वं परित्यज्य  
(गीता १५।८)

—'सर्वत्र ईश्वर को सम भाव से सर्वत्र अवस्थित देखते हुए वे ब्रह्म  
की हिंसा नहीं करते अतः परम भक्ति को प्राप्त होते हैं।

## अल्मोड़ा-अभिनन्दन का उत्तर

स्वामी जी के अल्मोड़ा पहुँचने पर वहाँ की जनता ने उन्हें निम्नलिखित मान-पत्र भेंट किया

महात्मन्,

जिस समय से हम अल्मोड़ा-निवासियों ने यह सुना कि पाश्चात्य देशों में आध्यात्मिक दिग्विजय के पश्चात् आप इंग्लैण्ड से अपनी मातृभूमि भारत फिर वापस आ रहे हैं, उस समय से हम सब आपके दर्शन करने को स्वभावतः बड़े लालायित थे, और सर्वशक्तिमान परमेश्वर की कृपा से आखिर आज वह शुभ घड़ी आ गयी। भक्तशिरोमणि कविसम्राट् तुलसीदास ने कहा भी है, जापर जाकर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलहि न कछु सन्देहू। और वही आज चरितार्थ भी हो गया। आज हम सब परम श्रद्धा तथा भक्ति से आपका स्वागत करने को यहाँ एकत्र हुए हैं और हमें हर्ष है कि इस नगर में अनेक कष्ट उठाकर एक वार' फिर पधारकर आपने हम सब पर बड़ी कृपा की है। आपकी इस कृपा के लिए धन्यवाद देने को हमारे पास शब्द भी नहीं हैं। महाराज, आप धन्य हैं और आपके वे पूज्य गुरुदेव भी धन्य हैं, जिन्होंने आपको योगमार्ग की दीक्षा दी। यह भारत-भूमि धन्य है, जहाँ इस भयावह कलियुग में भी आप जैसे आर्यवशियों के नेता विद्यमान हैं। आपने अति अल्पावस्था में ही अपनी सरलता, निष्कपटता, महच्चरित्र, सर्वभूतानुकम्पा, कठोर साधना, आचरण और ज्ञानोपदेश की चेष्टा द्वारा समस्त ससार में अक्षय यश लाम किया है और उस पर हमें गर्व है।

यदि सच पूछा जाय तो आपने वह कठिन कार्य कर दिखाया है, जिसका बीड़ा इस देश में श्री शंकराचार्य के समय से फिर किसीने नहीं उठाया। क्या हम में से किसीने कभी यह स्वप्न में भी आशा की थी कि प्राचीन भारतीय आर्यों की एक सन्तान केवल अपनी तपस्या के बल पर इंग्लैण्ड तथा अमेरिका के विद्वान् लोगों को यह सिद्ध कर दिखायेगी कि प्राचीन हिन्दू धर्म अन्य सब धर्मों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। शिकागो की विश्व-धर्म-महासभा में ससार के विभिन्न धर्म-प्रतिनिधियों के

---

१ पाश्चात्य देशों में जाने से अनेक वर्ष पहले हिमालय-भ्रमणकाल में स्वामी जी यहाँ पधारे थे।

सम्मुख जो वहाँ एकत्र वे आपने भारतीय जनताजन वर्गों से सिद्ध कर दिखायी कि जन सक्ती बर्से खुद बनी। उक्त विद्वानों ने अपने अपने वर्ग की ओर उठा अपने अपने ढंग से खुद आप जन सबसे आपे निकल गये। आपने वह पूर्व रूप से सिद्ध वर्ग का मुझाबका संसार का कोई भी वर्ग नहीं कर सकना वरन् उपर्युक्त महाद्वीपों के निच भित्त स्वार्थों पर वैदिक ज्ञान आपने वहाँ के बहुत से विद्वानों का ज्ञान प्राचीन ज्ञान-वर्ष उक्त जाकवित कर दिया। इन्हीं में भी आपने प्राचीन हिन्दू वर्ग का कर दिया है जिसका अब वहाँ से हटना नसम्भव है।

आज तक यूरोप तथा अमेरिका के आधुनिक ज्ञान उक्त हमारे वर्गों से स्वल्प से निर्यात अनिच्छ के परन्तु आपने अपनी आध्यात्मिक विद्वानों से सक्ती बर्से खोज वी और उन्हें आज यह साफून हो गया है कि हमारे वर्गों के विषे वे अज्ञानवस 'पाश्चिमी' की रूढ़ियों का वर्ग अपना केवल पूर्वोक्त वर्गों का डेर ही समझा करते वे अतक हीरों की बात है। जनसूत्र,

वरनेकी पुनी पुनी न च पूर्वोक्तान्यपि।

एकवचनरत्नो ह्यिह न च उरजन्वीऽपि च ॥

—तीं पूर्व पुनी की अपेक्षा एक ही पुनी पुन अच्छ है एक ही कत्रका संसार का विनाश करता है तात्पर्य नहीं। अतक में आप वीसे वाचु तथा वैदिकपुन का बीजम ही संसार के लिए कस्मानकर है और वास्तु माता की उक्तही इस विषे हुई वसा में आप वीसी पुष्पात्वा सत्तागों से ही ज्ञानवता निक रही है। वीसे ही आज तक कितने ही लीज समूह के इस पार से उक्त पार बटके हैं, वरन् केवल आपने ही अपनी पूर्व मुक्ति के बरु से हमारे इस प्राचीन हिन्दू वर्ग की अज्ञानता समूह के पार अन्य देशों में सिद्ध कर दिखायी। जगता वाचा वर्णना आपने मान्य जाति को आध्यात्मिकता का ज्ञान कराना ही अपने बीजम का जीव ज्ञान लिया है और वैदिक ज्ञान का उपदेश देने के लिए आज वर्ष ही प्रस्तुत है।

हमें यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वहाँ हिमाचल की पेश में आपका विचार एक मठ स्थापित करने का है और हमारी ईश्वर से प्रार्थना है कि आपका यह ज्ञान सफल हो। अकराचार्य ने भी अपनी आध्यात्मिक दिग्विजय के लक्ष्य वास्तु के प्राचीन हिन्दू वर्ग के रत्नार्थ हिमाचल में बरिकाचल में एक मठ स्थापित किया था। इसी प्रकार यदि आपकी भी इच्छा पूर्व हो चाहे तो उक्त मठ स्थापना का बड़ा हित होना। इस मठ के स्थापित हो जाने से हम पुनर्पूर्व विचारियों को बड़ा

आध्यात्मिक लाभ होगा और फिर हम इस बात का पूरा यत्न करेंगे कि हमारा प्राचीन धर्म हमारे बीच में से धीरे धीरे लुप्त न हो जाय।

आदि काल से भारतवर्ष का यह प्रदेश तपस्या की भूमि रहा है। भारतवर्ष के बड़े बड़े ऋषियों ने अपना समय इसी स्थान पर तपस्या तथा साधना में बिताया है, परन्तु वह तो अब पुरानी बात हो गयी और हमें पूर्ण विश्वास है कि यहाँ मठ की स्थापना करके कृपया आप हमें उसका फिर अनुभव करा देंगे। यही वह पुण्य-भूमि है जो भारतवर्ष भर में पवित्र मानी जाती थी तथा यही सच्चे धर्म, कर्म, साधना तथा सत्य का क्षेत्र था, यद्यपि आज समय के प्रभाव से वे सब बातें नष्ट होती जा रही हैं। और हमें विश्वास है कि आपके शुभ प्रयत्नों द्वारा यह प्रदेश फिर प्राचीन धार्मिक क्षेत्र में परिणत हो जायगा।

महाराज, हम शब्दों द्वारा प्रकट नहीं कर सकते कि आपके यहाँ पधारने से हमको कितना हर्ष हुआ है। ईश्वर आपको चिरजीवी करे, आपको पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करे तथा आपका जीवन परोपकारी हो। आपकी आध्यात्मिक शक्तियों की उत्तरोत्तर उन्नति हो, जिससे आपके प्रयत्नों द्वारा भारतवर्ष की इस दुरवस्था का शीघ्र ही अन्त हो जाय।

लाला बदरी शा की ओर से पंडित हरिनाम पाडे ने और एक मानपत्र पढा। एक अन्य पंडित जी ने भी इस अवसर पर एक संस्कृत मानपत्र पढा। जितने दिन स्वामी जी अल्मोडे में थे, उतने दिन वे शा जी के यहाँ अतिथि के रूप में रहे थे।

स्वामी जी ने मानपत्रों का निम्नलिखित उत्तर दिया

### स्वामी जी का भाषण

यह स्थान हमारे पूर्वजों के स्वप्न का देश है, जिसमें भारत जननी श्री पार्वती जी ने जन्म लिया था। यह वही पवित्र स्थान है, जहाँ भारतवर्ष का प्रत्येक यथार्थ सत्य-पिपासु व्यक्ति अपने जीवन-काल के अन्तिम दिन व्यतीत करना चाहता है। इसी दिव्य स्थान के पहाड़ों की चोटियों पर, इसकी गुफाओं के भीतर तथा इसके कल-कल बहनेवाले झरनों के तट पर महर्षियों ने अनेकानेक गूढ भावों तथा विचारों को सोच निकाला है, उनका मनन किया है। और आज हम देखते हैं कि उन विचारों का केवल एक अंश ही इतना महान् है कि उस पर विदेशी तक मुग्ध हैं तथा समार के घुरघुर विद्वानों एवं मनीषियों ने उसे अनुलनीय कहा है। यह वही स्थान है, जहाँ मैं बचपन से ही अपना जीवन व्यतीत करने की सोच रहा हूँ और जैसा तुम सब जानते हो मैंने कितनी ही बार इस बात की चेष्टा की है कि मैं यहाँ रह सकूँ। परन्तु उपयुक्त समय के न आने से, तथा मेरे सम्मुख बहुत सा कार्य



होने के कारण मैं इस पवित्र स्वाम के संकित  
 कि मैं अपने जीवन के बीच किन इसी विरिण्ड में  
 अनेक शक्ति रख चुके हैं, जहाँ जीवन का अन्त हुआ  
 मैं यह सब उस वक से अब न कर  
 मेरी किन्ती इच्छा है कि मैं पूर्ण शक्ति में तथा निरु  
 रहूँ—लेकिन हाँ इतनी माया कर रहे तथा मैं माया  
 भी करता हूँ कि संसार के अन्त उस स्वामी को जीत  
 नहीं सकती है।

इस पवित्र प्रवेश के निवासी कल्पों, तुम दोनों के मेरे  
 हुए छोटे से काम के लिए अपूर्णक को अर्थात् अन्त अन्त  
 तुम्हें अनेकानेक कल्पों का देता हूँ। परन्तु इस अन्त मेरा अन्त  
 किन्ती वेद के अर्थ के अन्त में कुछ भी करना नहीं चाहता। जहाँ  
 मैंने विरिण्ड की एक बोली के बाद दूसरी बोली मेरी शक्ति के  
 मेरी कार्य करने की समस्त इच्छाएँ तथा माय को मेरे  
 हुए वे बीरे बीरे शक्त से होने लगे और इस निरुत्तर  
 कि क्या कार्य हुआ है तथा अन्त में क्या कार्य होना मेरा अन्त  
 शास्त्र माय की ओर शिव तथा विष्णु शक्ति हैं विरिण्ड शक्ति  
 से देता रहा है, जो इस स्वाम के वातावरण में ही प्रतिबन्धित ही  
 शक्ति निवासी में माय को नहीं की अन्तःप्रवर्तनी शक्तियों में अन्त  
 यह माय है—स्वाम।

अन्त कल्प अन्तःप्रवर्तनी शक्ति अन्तःप्रवर्तनी—इस संसार में अन्तः  
 कल्प में अन्त भरा है यह अन्त अन्त अन्त से ही दूर हो सकता है, अन्तः  
 निर्भय हो सकता है। अन्तःप्रवर्तनी यह अन्तःप्रवर्तनी का ही स्वाम है। निरी, यह अन्त  
 अन्तःप्रवर्तनी अन्त है तथा परिश्रमिती भी देनी नहीं है कि मैं तुम्हारे अन्त अन्त अन्त  
 कर नहीं। अन्तःप्रवर्तनी मैं नहीं कहकर अपना माय अन्त कर रहा हूँ कि विरिण्ड  
 हिमालय अन्तःप्रवर्तनी अन्त स्वाम के अन्तःप्रवर्तनी है तथा यह अन्तःप्रवर्तनी शक्ति, जो अन्तःप्रवर्तनी  
 को नहीं देने नहीं स्वाम ही है। अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी  
 के इस हिमालय पर अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी के अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी  
 अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी  
 यह अन्त अन्त हीना अन्त कि अन्त अन्त अन्तःप्रवर्तनी के अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी  
 नहीं किने अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी के अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी  
 अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी अन्तःप्रवर्तनी

मनुष्य मात्र यह समझ लेगा कि केवल एक ही चिरन्तन धर्म है और वह है स्वयं में परमेश्वर की अनुभूति, और शेष जो कुछ है वह सब व्यर्थ है। यह जानकर अनेक व्यग्र आत्माएँ यहाँ आयेंगी कि यह ससार एक महा धोखे की टट्टी है, यहाँ सब कुछ मिथ्या है और यदि कुछ सत्य है तो वह है ईश्वर की उपासना—केवल ईश्वर की उपासनाएँ।

मित्रो, यह तुम्हारी कृपा है कि तुमने मेरे एक विचार का जिक्र किया है और मेरा वह विचार इस स्थान पर एक आश्रम स्थापित करने का है। मैंने शायद तुम लोगों को यह बात काफी स्पष्ट रूप से समझा दी है कि यहाँ पर आश्रम की स्थापना क्यों की जाय तथा ससार में अन्य सब स्थानों को छोड़कर मैंने इसी स्थान को क्यों चुना है, जहाँ से इस विश्वधर्म की शिक्षा का प्रसार हो सके। कारण स्पष्ट ही है कि इन पर्वतश्रेणियों के साथ हमारी हिन्दू जाति की सर्वोत्तम स्मृतियाँ सबद्ध हैं। यदि यह हिमालय धार्मिक भारत के इतिहास से पृथक् कर दिया जाय तो शेष बहुत कम रह जायगा। अतएव यही पर एक केन्द्र होना चाहिए—जो कर्मप्रधान न हो, वरन् शान्ति का हो, ध्यान-वारण का हो, और मुझे पूर्ण आशा है कि एक न एक दिन ऐसा अवश्य होगा। मैं यह भी आशा करता हूँ कि तुम लोगों से फिर और कभी मिलूंगा जब तुमसे वार्तालाप का इससे अच्छा अवसर होगा। अभी मैं इतना ही कहता हूँ कि तुमने मेरे प्रति जो प्रेमभाव दिखलाया है, उसके लिए मैं बड़ा कृतज्ञ हूँ और मैं यह मानता हूँ कि तुमने यह प्रेम तथा कृपा मुझ व्यक्ति के प्रति नहीं दिखायी है, वरन् एक ऐसे के प्रति दिखायी है जो हमारे प्राचीन हिन्दू धर्म का प्रतिनिधि है। हमारे इस धर्म की भावना हमारे हृदयों में सदैव बनी रहे। ईश्वर करे, हम सब सदैव ऐसे ही शुद्ध बने रहें, जैसे हम इस समय हैं तथा हमारे हृदयों में आध्यात्मिकता के लिए उत्साह भी सदैव इतना ही तीव्र रहे।

# वेदिक उपदेश तार्किक और

जब स्वामी जी के सम्बोध में उद्गारों की अवधि

उनके वहाँ के मित्रों ने उनसे प्रार्थना की कि आप इतना एक स्वामी जी ने उनकी प्रार्थना वर विचार कर उन्हें अपनी भाषा में व्याख्यान देने का उनका यह वृत्ता ही अन्तर था। धीरे धीरे वास्तविक रूप किन्ना परन्तु हीन ही अपने विषय पर ही धर में उन्होंने यह अनुभव कि यह धर में हीन ही उन्मुक्त सब तथा वाक्य निकलते जाते थे। वहाँ पर कुछ साधक यह अनुमान करते थे कि हिन्दी भाषा में व्याख्यान देने की कठिनाई पड़ती है कहने लगे कि इस व्याख्यान में स्वामी जी की पूर्ण और सम्भवतः यह अपने हँस का अङ्गीकार था। उनके व्याख्यान में अविद्युत प्रयोग से यह भी सिद्ध हो गया कि कल्पित-कथा की विद्या में स्वप्नातीत सम्भावनाएँ हैं।

स्वामी जी ने और एक वाक्य इतना सब में जोड़ी में ही लिख कर। सना के अन्वय में गुरबा रेजिमेन्ट के फर्मल फुली। उस वाक्य का विषय 'वेदिक उपदेश तार्किक और व्यावहारिक' किन्ना साठवाँ इस प्रकार है:

पहले स्वामी जी ने इस बात का ऐतिहासिक वर्णन किया कि किसी व्यक्ति में उसके ईश्वर की उपासना किस प्रकार बढ़ती है तथा वह व्यक्ति कौन कौन कन्व आसिमें को जीतती जाती है, उस ईश्वर की उपासना की पद्धति जाती है। इसके बाद उन्होंने वेदों के रूप विशेषताओं तथा उनकी किताबों का संक्षेप में वर्णन किया और फिर आत्मा के विषय पर कुछ प्रकाश डाला। इस विषय में मास्वात्म प्रकाशी से तुलना करते हुए उन्होंने बतलाया कि वह प्रकाशी वाकिक तथा मौखिक महत्त्व के रूखों का उत्तर बाह्य जगत् में होने की चेष्टा करती है जब कि प्रान्थ प्रकाशी इन सब बातों का समाधान बाह्य जगत् में न पाकर उसे अपनी अन्तरात्मा में ही ढूँढ निकालने की चेष्टा करती है। उन्होंने इस बात का ठीक ही बतलाया कि हिन्दू वासि को ही इस बात का धारण है कि कल्पित उल्लेख अंत निरीक्षण प्रकाशी की सोज निकाला और वह उनमें यह पद्धति की अपनी भीड़ तथा विशेषता है। उन्नी वासि ने मन्त्र-कथन

की अमूल्य निधि भी दी है जो उसी प्रणाली का फल है। स्वभावतः इस विषय के वाद, जो किसी भी हिन्दू को अत्यन्त प्रिय है, स्वामी जी आध्यात्मिक गुरु होने के नाते उस समय मानो आध्यात्मिकता के शिखर पर ही पहुँच गये, जब वे आत्मा तथा ईश्वर के सम्बन्ध की चर्चा करने लगे, जब यह दर्शाने लगे कि आत्मा ईश्वर से एकरूप हो जाने के लिए कितनी लालायित रहती है तथा अन्त में किस प्रकार ईश्वर के साथ एकरूप हो जाती है। और कुछ समय के लिए सचमुच ऐसा ही भास हुआ कि वक्ता, वे शब्द, श्रोतागण तथा सभी को अभिभूत करनेवाली भावना मानो सब एकरूप हो गये हो। ऐसा कुछ भान ही नहीं रह गया कि 'मैं' या 'तू' अथवा 'मेरा' या 'तेरा' कोई चीज है। छोटी छोटी टोलियाँ जो उस समय वहाँ एकत्र हुई थी, कुछ समय के लिए अपने अलग अलग अस्तित्व को भूल गयी तथा उस महान् आचार्य के श्री मुख से निकले हुए शब्दों द्वारा प्रचंड आध्यात्मिक तेज में एकरूप हो गयी, वे सब मानो मन्त्रमुग्ध से रह गये।

जिन लोगों को स्वामी जी के भाषण सुनने का बहुधा अवसर प्राप्त हुआ है, उन्हें इस प्रकार के अन्य कई अवसरों का भी स्मरण हो आयेगा, जब वे वास्तव में जिज्ञासु तथा ध्यानमग्न श्रोताओं के सम्मुख भाषण देने वाले स्वयं स्वामी विवेकानन्द नहीं रह जाते थे, श्रोताओं के सब प्रकार के भेद-भाव तथा व्यक्तित्व विलुप्त हो जाते थे, नाम और रूप नष्ट हो जाते थे तथा केवल वह सर्वव्यापी आत्म-तत्त्व रह जाता था, जिसमें श्रोता, वक्ता तथा उच्चारित शब्द वस एकरूप होकर रह जाते थे।

## मरिच

(सिवास्कोट में दिया हुआ वाक्य)

पंजाब तथा काश्मीर से निर्गमन मिलने पर स्वामी जी भाग्य की। काश्मीर में वे एक ज़मीने से अपना अपना एक एक गेहस तथा उनके भाइयों में स्वामी जी के कर्म की बड़ी उपलब्धि के कारण वे कुछ दिनों तक बड़ी राजकपिणी और बम्बू में रहे, कहीं कहीं कहीं कहीं कहीं व्याख्यान दिया। फिर वह सिवास्कोट बने और कहीं कहीं की व्याख्यान दिए। एक व्याख्यान अनेकी में था और एक हिन्दी में। हिन्दी व्याख्यान का नाम 'भक्ति' जिसका संक्षिप्त स्वरूप नीचे दिया जा रहा है।

संसार में कितने धर्म हैं उनकी उपासना प्रथाओं में विभिन्न होते हैं वे अस्तुत एक ही हैं। किसी किसी स्थान पर लोग जिनमें का निर्माण करने में उपासना करते हैं, कुछ लोग जिन की उपासना करते हैं किसी किसी जगह में लोग भक्ति-पूजा करते हैं तथा कितने ही वास्नी ईश्वर के अस्तित्व में ही विश्वास नहीं करते। ये सब ठीक हैं इन सबमें प्रथम विभिन्नता विद्यमान है, किन्तु सब प्रत्येक धर्म के लिए, उनके मूक तथा उनके वास्तविक स्वयं के अंतर विचार कर देखें तो वे सर्वथा अभिन्न हैं। इस प्रकार के भी धर्म हैं जो ईश्वरोपासना की आवश्यकता ही नहीं स्वीकार करते। यही क्या वे ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं मानते। किन्तु तुम देखोगे वे सभी धर्मावलम्बी साधु-महात्माओं की ईश्वर की उपासना करते हैं। बौद्ध धर्म इस बात का उल्लेखनीय उदाहरण है। भक्ति सभी धर्मों में है, कहीं ईश्वर भक्ति है तो कहीं महात्माओं के प्रति भक्ति का भाव है। सभी जगह इस जगत्-रूप उपासना का सर्वोपरि प्रमाण देखा जाता है। ज्ञान-धाम की अपेक्षा भक्ति-ज्ञान करना सत्य है। ज्ञान-धाम करने में कठिन ज्ञान और अनुकूल परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। यदि सर्वथा स्वयं एवं रोचक न होने से तथा मन सर्वथा विषयो से ज्ञानधाम न होने से मन का ज्ञान नहीं किया जा सकता किन्तु सभी धर्मावलम्बी के लोग बड़ी सरलता से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। भक्तिमार्ग के मार्गार्थ साक्षिण्य प्राप्ति में कहा है कि ईश्वर के प्रति, अस्तित्व, अनुराग, लो, प्रकृत, करते हैं। प्रार्थना में ही, कहीं कहीं, कहीं है। यदि किसी व्यक्ति को एक दिन मोक्ष न मिले तो उसे ज्ञानधाम ही प्राप्त करने की मृत्यु होने पर उसको कहीं जन्मना होती है। जो जन्मना

उनके भी प्राण भगवान् के विरह में इसी प्रकार छटपटाते हैं। भक्ति में यह बड़ा गुण है कि उसके द्वारा चित्त शुद्ध हो जाता है और परमेश्वर के प्रति दृढ़ भक्ति होने से केवल उसीके द्वारा चित्त शुद्ध हो जाता है। नाम्नामकारि बहुधा निजसर्व-शक्ति—‘हे भगवन् तुम्हारे असख्य नाम हैं और तुम्हारे प्रत्येक नाम में तुम्हारी अनन्त शक्ति वर्तमान है।’ और प्रत्येक नाम में गम्भीर अर्थ गर्भित है। तुम्हारे नाम उच्चारण करने के लिए स्थान, काल आदि किसी भी चीज का विचार करना आवश्यक नहीं। हमें सदा मन में ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए और इसके लिए स्थान, काल का विचार नहीं करना चाहिए।

ईश्वर विभिन्न साधकों के द्वारा विभिन्न नामों से उपासित होते हैं, किन्तु यह भेद केवल दृष्टिमात्र का है, वास्तव में कोई भेद नहीं है। कुछ लोग सोचते हैं कि हमारी ही साधना-प्रणाली अधिक कार्यकारी है, और दूसरे अपनी साधना-प्रणाली को ही मुक्ति पाने का अधिक सक्षम उपाय बताते हैं। किन्तु यदि दोनों की ही मूल भित्ति का अनुसन्धान किया जाय तो पता चलेगा कि दोनों ही एक हैं। शैव शिव को ही भवपिक्षा अधिक शक्तिशाली समझते हैं। वैष्णव विष्णु को ही सर्वशक्तिमान मानते हैं, देवी के उपासकों के लिए देवी ही जगत् में सबसे अधिक शक्तिशालिनी हैं। प्रत्येक उपासक अपने सिद्धान्त की अपेक्षा और किमी बात का विश्वास ही नहीं करता, किन्तु यदि मनुष्य को स्थायी भक्ति की उपलब्धि करनी है तो उसे यह द्वेष-बुद्धि छोड़नी ही होगी। द्वेष भक्ति-पथ में बड़ा बाधक है—जो मनुष्य उसे छोड़ सकेगा, वही ईश्वर को पा सकेगा। तब भी इष्ट-निष्ठा विशेष रूप से आवश्यक है। भक्तश्रेष्ठ हनुमान ने कहा है

श्रीनाथे जानकीनाथे अभेद परमात्मनि ।

तथापि मम सर्वस्व राम कमललोचन ॥

—‘मैं जानता हूँ, जो परमात्मा लक्ष्मीपति हैं, वे ही जानकीपति हैं, तथापि कमललोचन राम ही मेरे सर्वस्व हैं।’ प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव जन्म से ही औरों से भिन्न होता है और वह तो उसके साथ बना ही रहेगा। समस्त ससार किसी समय एक धर्मावलम्बी नहीं हो सकता, इसका मुख्य कारण यही भावों में विभिन्नता है। ईश्वर करे, ससार कभी भी एक धर्मावलम्बी न हो। यदि कभी ऐसा हो जाय तो ससार का सामजस्य नष्ट होकर विश्रुखलता आ जायगी। अस्तु, मनुष्य को अपनी ही प्रकृति का अनुसरण करना चाहिए। यदि मनुष्य को ऐसे गुरु मिल

आर्य जो उसको उसीके भावानुरूप आर्य पर व्यवहार  
 मनुष्य उचित करने में समर्थ होया। उसको उन्हीं आर्यों  
 करनी होती। जो व्यक्ति जिस पत्र पर बचने की  
 बचने देना चाहिए किन्तु यदि इन उसे दूसरे आर्य पर  
 वह उसके पास जो कुछ है, उसे भी जो देना वह किसी  
 जिस भाँति एक मनुष्य का बेहरा दूसरे के बेहरे से भिन्न होता  
 मनुष्य की प्रकृति दूसरे की प्रकृति से भिन्न होती है। किसी  
 प्रकृति के ही अनुसार बचने देने में क्या आपत्ति है? एक बड़ी  
 है—यदि उसके बहाव को ठीक कर नहीं को करी  
 बारा अधिक तेज हो जायमी और तेज बड़ जायना। किन्तु यदि  
 की बिना को बरक कर उसे दूसरी बिना में प्रवाहित करने का  
 तो तुम यह परिणाम देखोगे कि उसका परिमाण बीच हो जायना  
 भी कम हो जायना। यह जीवन एक बड़े महत्व की चीज है। उक्त  
 आर्य के अनुसार ही चलाना चाहिए। भारत में विभिन्न वर्गों में  
 नहीं या बरन् प्रत्येक वर्ग स्वाधीन आर्य से अपना कार्य करता  
 यहाँ अभी तक प्रकृत वर्गनाश बना है। इस स्थान पर यह बात की  
 होगी कि विभिन्न वर्गों में तब विरोध उत्पन्न होता है, जब मनुष्य यह  
 सेवा है कि सत्य का मूल मंत्र मेरे ही पास है और जो मनुष्य मूल  
 करता वह मूर्ख है और दूसरा व्यक्ति सोचता है कि मनुष्य व्यक्ति  
 बगर वह ऐसा न होता तो मेरा अनुभवम करता।

यदि ईश्वर की वह इच्छा होती कि सभी लोग एक ही वर्ग का व्यवहार  
 करे तो इतने विभिन्न वर्गों की उत्पत्ति क्यों होती? एक लोगों की एक  
 बनाने के लिए अनेक प्रकार के कर्मों और चेष्टाएँ हुई किन्तु इसके कोई  
 नहीं हुआ। तत्कार के पौर से जिस स्थान पर लोगों की एक  
 की चेष्टा की गयी यहाँ भी एक की जबह बस वर्गों की उत्पत्ति हो गयी—  
 इस बात का प्रमाण है। समस्त संसार में सबके अनुसार एक वर्ग ही  
 किया तथा प्रतिक्रिया इन दो शक्तियों के अनुसार चलती रही है। यदि  
 शक्तियों का प्रयोग न कर न होता तो मनुष्य कुछ सोच ही न करता।  
 क्यों वह मनुष्य ही न कहा जा सकता। मनुष्य मनुष्य ही है, वह  
 है। 'मनु' शब्द से मनुष्य कर्म बनता है मनुष्य कर्म का वर्ग है मनुष्य-  
 की शक्ति के साथ ही जाने पर मनुष्य और एक साधारण पद में कोई  
 अंतर न रह जायना। ऐसे व्यक्ति को देखकर सबके हृदय में पूजा का संकल्प होता।

ईश्वर करे, भारतवर्ष में कभी ऐसी अवस्था न उत्पन्न हो। अतः मनुष्यत्व कायम रखने के लिए एकत्व में अनेकत्व की आवश्यकता है। सभी विषयों में इस अनेकत्व या विविधता की आवश्यकता है, कारण जितने दिन यह अनेकत्व रहेगा, उतने ही दिन जगत् का अस्तित्व भी रहेगा। अवश्य ही अनेकत्व या विविधता कहने से केवल यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि उनमें छोटे-बड़े का अन्तर है। परन्तु यदि सब जीवन के अपने-अपने कार्य को समान अच्छाई के साथ करते रहें, तब भी विविधता वैसे ही बनी रहेगी। सभी धर्मों में अच्छे-अच्छे लोग हैं, इसलिए सभी धर्म लोगों की श्रद्धा को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, अतएव किसी भी धर्म से घृणा करना उचित नहीं।

यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है—जो धर्म अन्याय की पुष्टि करे, क्या उस धर्म के प्रति भी सम्मान दिखाना होगा? अवश्य ही इस प्रश्न का उत्तर 'नहीं' के सिवा दूसरा क्या हो सकता है? ऐसे धर्म को जितनी जल्दी दूर किया जा सके उतना ही अच्छा है, कारण उससे लोगों का अमंगल ही होगा। नैतिकता के ऊपर ही सब धर्मों की भित्ति प्रतिष्ठित है, सदाचार को धर्म की अपेक्षा भी उच्च स्थान देना होगा। यहाँ पर यह भी समझ लेना चाहिए कि आचार का अर्थ बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार की शुद्धि से है। जल तथा अन्यान्य शास्त्रोक्त वस्तुओं के प्रयोग से शरीर-शुद्धि हो सकती है, आम्मान्तर शुद्धि के लिए मिथ्या भाषण, सुरापान एवं अन्य गहिष्ठ कार्यों का त्याग करना होगा। साथ ही परोपकार भी करना होगा। केवल भ्रष्टपान, चोरी, जुआ, झूठ बोलना आदि असत् कार्यों के त्याग से ही काम न चलेगा। इतना तो प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। इतना करने से मनुष्य किसी प्रशंसा का पात्र न हो सकेगा। अपने कर्तव्य-पालन के साथ साथ दूसरों की कुछ सेवा भी करनी चाहिए। जैसे तुम आत्मकल्याण करते हो, वैसे दूसरों का भी अवश्य कल्याण करो।

अब मैं भोजन के नियम के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूँ। इस समय भोजन की समस्त प्राचीन विधियों का लोप हो गया है। लोगों में एक यही धारणा विद्यमान है कि 'इनके साथ मत खाओ, उनके साथ मत खाओ।' सैकड़ों वर्ष पूर्व भोजन सम्बन्धी जो सुन्दर नियम थे, उनमें आज केवल छुआछूत का नियम ही बचा है। शास्त्र में भोजन के तीन प्रकार के दोष लिखे हैं—(१) जाति दोष—जो खाद्य पदार्थ स्वभाव से ही अशुद्ध है, जैसे प्याज, लहसुन आदि। यह जाति-दुष्ट पाद्य हुआ। जो व्यक्ति इन चीजों को अधिक मात्रा में खाता है, उनमें काम-वामना बढ़ती है और वह अनैतिक कार्यों में प्रवृत्त हो सकता है, जो ईश्वर तथा मनुष्य की दृष्टि में तब प्रवृत्त में घृणित है। (२) रस तथा कीड़े-मकोड़ों में



## विशेषज्ञान का हित

दूषित बाजार को निमित्तबोध के कृत्य कहते हैं। इस  
लिए ऐसे स्थान में योजना करना होना भी कुछ  
दोष — दुष्ट व्यक्ति से जुड़ा हुआ बाजार पचासों की लक्षण  
का अन्न जाने से मन में अपवित्र भाव पैदा होते हैं।  
यदि वह व्यक्ति सम्पन्न एवं कुकर्मी हो तो उसके हान्य का  
इस समय इन सब बातों

तो धिक्कं इसी बात का हठ नीचुर है कि जेबी के जेबी  
हान्य का जुमा न काममें चाहे वह व्यक्ति कितना ही अधिक  
आचरण का क्यों न हो। इन सब निमित्तों की कितनी जाति उभरती है, ~~उभरती है~~  
प्रमाण किसी हकमाई की हुकूमत पर बाजार देखने के लिए जानना। ~~किसी~~  
कि मस्तिष्क सब ओर नगनगली हुई सब चीजों पर बैठती है, ~~उभरती है~~  
उड़कर मिठाई के ऊपर पकती है और हकमाई के कपड़े ~~काम~~  
हैं। ज्यों नहीं सब खरीदनेवाले मस्तिष्क कहते कि हुकूमत के ~~काम~~  
हम शोष मिठाई न खरीदने। ऐसा करने से मस्तिष्क बाजार पचासों पर ~~काम~~  
एवं अपने साथ हीचा तथा अत्यान्व संक्रमक बीमारियों के बीछानु ~~काम~~  
भोजन के निमित्तों में हमें तुहार करना चाहिए, किन्तु इन उद्योग व ~~काम~~  
के मार्ग की ही ओर क्रमशः बहसर हुए हैं। मनुस्मृति में लिखा है, ~~काम~~  
न चाहिए, किन्तु हम नदियों में हर प्रकार का मूका फेंकते हैं। इन सब ~~काम~~  
विशेषज्ञान करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि बाजार चीज की विशेष ~~काम~~  
है। शास्त्रकार भी इस बात को नहीं मति चाहते थे। किन्तु इन सब ~~काम~~  
पवित्र-अपवित्र विचारों का प्रकृत उद्देश्य कुछ ही बना है इस समय ~~काम~~  
बाजार मात्र है। जोरों सम्पत्तों मतवाली अपराधियों को इन चीज ~~काम~~  
पाठि-बन्धु स्वीकार कर लेनी किन्तु यदि एक उच्च जातीय मनुष्य किसी ~~काम~~  
जातीय व्यक्ति के साथ जो उसीके समान सम्माननीय है, बैठकर ~~काम~~  
तो वह जाति श्रुत कर दिया जानना और फिर वह तथा के लिए ~~काम~~  
मान किया जानना। यह प्रथा हमारे देश के लिए विनाशकारी ~~काम~~  
अस्तु, वह स्पष्ट समझ देना चाहिए कि पापी के संतर्न से पाप और ~~काम~~  
संतर्न से साधुता जाती है और अस्तु संतर्न का दूर के परिहार ~~काम~~  
सीध है।

सांस्कृतिक बुद्धि नहीं अधिक दुस्तर कार्य है। सांस्कृतिक बुद्धि के  
लिए सब बाधन निर्धन विपन्न और अमानवस्य व्यक्तियों की  
जागरूकता है। किन्तु क्या इन सबका सब बीछनी है ?  
+ १

कि कोई मनुष्य अपने किसी काम के लिए किसी धनी व्यक्ति के मकान पर जाता है और उसे 'गरीब परवर,' 'दीनवन्वु' आदि बड़े बड़े विशेषणों से विभूषित करता है, चाहे वह धनी व्यक्ति अपने मकान पर आये हुए किसी गरीब व्यक्ति का गला ही क्यों न काटता हो। अतः ऐसे धनी व्यक्ति को गरीब परवर, दीनवन्वु कहना स्पष्ट झूठ है और हम ऐसी बातें कहकर ही अपने मन को भलिन करते हैं। इसीलिए शास्त्रों में लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति बारह वर्ष तक सत्य भाषणादि के द्वारा चित्तशुद्धि करे और बारह वर्ष तक यदि उसके मन में कोई खराब विचार न आये तो वह जो कहेगा, वही सत्य निकलेगा। सत्य में ऐसी ही अमोघ शक्ति है, और जिसने बाह्य और आभ्यन्तरिक शुद्धि की है वही भक्ति का अधिकारी है। पर भक्ति की विशेषता इस बात में है कि वह स्वयं मन को बहुत शुद्ध कर देती है। यद्यपि यहूदी, मुसलमान तथा ईसाई बाह्य शौच को हिन्दुओं की तरह इतना विशेष महत्त्व नहीं देते, तथापि वे भी किसी न किसी प्रकार से बाह्य शौच का अवलम्बन करते ही हैं—उन्हे भी मालूम हो गया है कि बाह्य शौच की किसी न किसी परिमाण में आवश्यकता है। यद्यपि यहूदियों में मूर्ति-पूजा निषिद्ध थी, पर उनका भी एक मन्दिर था। उस मन्दिर में 'आर्क' नामक एक सन्दूक रखी हुई थी और उस सन्दूक के भीतर 'मूसा के दस ईश्वरादेश' सुरक्षित रखे हुए थे। इस सन्दूक के ऊपर विस्तारित पक्षयुक्त दो स्वर्गीय द्वारों की मूर्तियाँ बनी थी, और उनके ठीक बीच में वे दादल के रूप में ईश्वर के आविर्भाव का दर्शन करते थे। बहुत दिन हुए, यहूदियों का वह प्राचीन मन्दिर नष्ट हो गया, किन्तु उनके नये मन्दिरों की रचना ठीक इसी पुराने ढंग पर हुई है, और इन मन्दिरों में सन्दूक के भीतर धर्म-पुस्तकें रखी हुई हैं। रोमन कैथोलिक और यूनानी ईसाइयों में कुछ रूपों में मूर्ति-पूजा प्रचलित है। वे ईसा की मूर्ति और उनके माता-पिता की मूर्तियों की पूजा करते हैं। प्रोटेस्टेन्टों में मूर्ति-पूजा नहीं है, किन्तु वे भी ईश्वर को व्यक्तिविशेष समझकर उपासना करते हैं। यह भी मूर्ति-पूजा का रूपान्तर मात्र है। पारसियों और ईरानियों में अग्नि-पूजा खूब प्रचलित है। मुसलमान अच्छे अच्छे पीरो-फकीरों की पूजा करते हैं और नमाज़ के समय कावे की ओर मुंह करते हैं। यह सब देखकर जान पड़ता है कि धर्म-साधना की प्रथमावस्था में मनुष्यों को कुछ बाह्य अवलम्बनों की आवश्यकता पड़ती है। जिस समय मन खूब शुद्ध हो जाता है, उस समय सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों में चित्त एकाग्र करना सम्भव हो सकता है।

'जब जीव ब्रह्म से एकत्व का प्रयत्न करता है, यह सर्वोत्तम है, जब ध्यान का अभ्यास किया जाता है, यह मध्यम कोटि है, जब नाम का

सूचित बाजार को निमित्तबोध से मुक्त करते हैं। इस

लिए ऐसे स्थान में जोड़ना करना होना जो स्व

रीय —दुष्ट व्यक्ति से दूना हुआ बाव पतनी

का अन्न जाने से मन में अपवित्र भाव पैदा होते हैं।

यदि वह व्यक्ति सम्पत् एवं कुर्मी ही तो उनके हान का

इस समय इन सब बातों

तो सिर्फ इन्हीं बात का हठ मौजूब है कि जैसी वे जैसी बातें कह न होंगी-  
हान का दूना न जाने कि चाहे वह व्यक्ति किन्तु ही कबिक कभी-कभी  
आचरण का क्यों न हो। हम सब निरर्थकों की किन्तु यदि उनका ही ही है-  
प्रमाण किसी हकनाई की दूना पर आकर देखने से निश्चय प्राप्त। किन्तु-  
कि मन्त्रियों सब और भनमनाती हुई सब चीजों पर देखती है, उनके-  
उत्तर मिठाई के उत्तर पकती है और हकनाई के अपने स्वयं-  
हैं। क्यों नहीं सब खरीदनेवाले मिठाई करते कि दूना में बीजा निश्चय-  
हम सोच मिठाई न खरीदेंगे। ऐसा करने से मन्त्रियों बाव पतनी पर न-  
एवं अपने साथ हुआ तथा अत्याय संशयनक बीमारियों के बीजानु-  
मोजन के नियमों में हम सुचारु करना चाहिए, किन्तु हम उचित न कर-  
के मार्ग की ही और सम्पत् अक्षर हुए हैं। अनुस्मृति में लिखा है, सब से दूना  
न चाहिए, किन्तु हम नदियों में हर प्रकार का मूला फेंकते हैं। इस सब बातों की  
विशेषता करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि बाह्य चीज की विशेष आवश्यकता  
है। सास्त्रकार भी इस बात को सही भाँति जानते थे। किन्तु इस समय हम सब  
पवित्र-अपवित्र विचारों का प्रकृत उद्देश्य मुक्त हो गया है, इस समय हम  
आश्चर्य मान रहे हैं। चोरी सम्पत्तों मठवालों अपराधियों को हम सब अपने  
पाठि-सन्तु स्वीकार कर लेते किन्तु यदि एक कल्प जातीय मनुष्य किसी की-  
वासीय व्यक्ति के साथ जो उसीके समान सम्पत्तीय है, देखकर चाहे,  
तो वह भाँति मुक्त कर दिया जायगा और फिर वह सब के लिए पकित  
मान लिया जायगा। यह प्रथा हमारे देश के लिए किताबकारी सिद्ध हुई है।  
अस्तु, यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि पापी के उत्सर्ग से पाप और ताप के  
संसर्ग से तापता जाती है और अक्षर उत्सर्ग का दूर से परिहार करना ही बाह्य  
चीज है।

आत्मन्तरिक शुद्धि कही अधिक दुस्तर कार्य है। आत्मन्तरिक शुद्धि के  
लिए सब आवश्यक निर्बल विपन्न और अभावग्रस्त व्यक्तियों को सेवा करनी ही  
आवश्यकता है। किन्तु क्या हम सर्वथा उत्पन्न बीजों हैं? अन्तर्गत-  
कर्म है

कि कोई मनुष्य अपने किसी काम के लिए किसी धनी व्यक्ति के मकान पर जाता है और उसे 'गरीब परवर,' 'दीनवन्वु' आदि बड़े बड़े विशेषणों से विभूषित करता है, चाहे वह धनी व्यक्ति अपने मकान पर आये हुए किसी गरीब व्यक्ति का गला ही क्यों न काटता हो। अतः ऐसे धनी व्यक्ति को गरीब परवर, दीनवन्वु कहना स्पष्ट झूठ है और हम ऐसी बातें कहकर ही अपने मन को मलिन करते हैं। इसीलिए शास्त्रों में लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति बारह वर्ष तक सत्य भाषणादि के द्वारा चित्तशुद्धि करे और बारह वर्ष तक यदि उसके मन में कोई खराब विचार न आये तो वह जो कहेगा, वही सत्य निकलेगा। सत्य में ऐसी ही अमोघ शक्ति है, और जिसने बाह्य और आभ्यन्तरिक शुद्धि की है वही भक्ति का अधिकारी है। पर भक्ति की विशेषता इस बात में है कि वह स्वयं मन को बहुत शुद्ध कर देती है। यद्यपि यहूदी, मुसलमान तथा ईसाई बाह्य शौच को हिन्दुओं की तरह इतना विशेष महत्त्व नहीं देते, तथापि वे भी किसी न किसी प्रकार से बाह्य शौच का अवलम्बन करते ही हैं—उन्हे भी मालूम हो गया है कि बाह्य शौच की किमी न किसी परिमाण में आवश्यकता है। यद्यपि यहूदियों में मूर्ति-पूजा निषिद्ध थी, पर उनका भी एक मन्दिर था। उस मन्दिर में 'आर्क' नामक एक सन्दूक रखी हुई थी और उस सन्दूक के भीतर 'मूसा के दस ईश्वरादेश' सुरक्षित रखे हुए थे। इस सन्दूक के ऊपर विस्तारित पक्षयुक्त दो स्वर्गीय द्वारों की मूर्तियाँ बनी थी, और उनके ठीक बीच में वे बादल के रूप में ईश्वर के आविर्भाव का दर्शन करते थे। बहुत दिन हुए, यहूदियों का वह प्राचीन मन्दिर नष्ट हो गया, किन्तु उनके नये मन्दिरों की रचना ठीक इसी पुराने ढंग पर हुई है, और इन मन्दिरों में सन्दूक के भीतर धर्म-पुस्तकें रखी हुई हैं। रोमन कैथोलिक और यूनानी ईसाइयों में कुछ रूपों में मूर्ति-पूजा प्रचलित है। वे ईसा की मूर्ति और उनके माता-पिता की मूर्तियों की पूजा करते हैं। प्रोटेस्टेन्टों में मूर्ति-पूजा नहीं है, किन्तु वे भी ईश्वर को व्यक्तिविशेष ममझकर उपासना करते हैं। यह भी मूर्ति-पूजा का रूपान्तर मात्र है। पारसियों और ईरानियों में अग्नि-पूजा खूब प्रचलित है। मुसलमान अच्छे अच्छे पीरों-फकीरों की पूजा करते हैं और नमाज के समय कावे की ओर मुँह करते हैं। यह सब देखकर जान पड़ता है कि धर्म-साधना की प्रथमावस्था में मनुष्यों को कुछ बाह्य अवलम्बनों की आवश्यकता पड़ती है। जिस समय मन खूब शुद्ध हो जाता है, उस समय सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों में चित्त एकाग्र करना सम्भव हो सकता है।

'जब जीव ब्रह्म से एकत्व का प्रयत्न करता है, यह सर्वोत्तम है, जब ध्यान का अभ्यास किया जाता है, यह मध्यम कोटि है, जब नाम का

पाप किया जाता है, यह निम्न कोटि है और बाह्य पूजा निम्नातिनिम्न है।'

किन्तु इस स्थान पर यह अच्छी तरह समझ लेना होगा कि बाह्य पूजा के निम्नातिनिम्न होने पर भी उसमें कोई पाप नहीं है। जो व्यक्ति वही उपासना कर सकता है, उसके लिए वही ठीक है। यदि उसे अपने पक्ष से निवृत्त किया गया तो वह अपने कल्याण के लिए, अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए दूसरे किसी मार्ग का अवलम्बन करेगा। इसलिए जो मूर्ति-पूजा करते हैं, उनकी निन्दा करना उचित नहीं। वे उन्नति की विद्युत् सीढ़ी तक पहुँचे हैं, उनके लिए वही आवश्यक है। ज्ञानी जनों को इन सब व्यक्तियों को अपसर होने में सहायता करने का प्रयत्न करना चाहिए किन्तु उपासना प्रणाली को लेकर झगड़ा करने की आवश्यकता नहीं है। कुछ भोग मन और कोई पुत्र की प्राप्ति के लिए ईश्वर की उपासना करते हैं और अपने को बड़े भागवत समझते हैं किन्तु यह वास्तविक भक्ति नहीं है—वे कोस भी सच्चे भागवत नहीं हैं। अगर वे सुम हों कि समुद्र स्थान पर एक साधु आया है और वह तबि का सेना बनाता है तो वे बर के पक्ष नहीं एकत्र हो पायेंगे तिस पर भी वे अपने को भागवत कहने में झगड़ते नहीं होते। पुत्र प्राप्ति के लिए ईश्वरोपासना को भक्ति नहीं कह सकते जनी होने के लिए ईश्वरोपासना को भक्ति नहीं कह सकते स्वर्ग-काम के लिए ईश्वरोपासना को भक्ति नहीं कह सकते यहाँ तक कि तरफ की यंत्रणा से छूटने के लिए भी वही ईश्वरोपासना का भी भक्ति नहीं कह सकते। भय वा क्रोध से कभी भक्ति की उत्पत्ति नहीं हो सकती। वे ही सच्चे भागवत हैं, जो कह सकते हैं— 'हे जगदीश्वर ! मैं जन जन परम सुन्दरी स्त्री बनना चाहित्य कुछ भी नहीं चाहता। हे ईश्वर ! मैं प्रत्येक जन्म में आपकी जड़तुकी भक्ति चाहता हूँ।' जिस समय यह अवस्था प्राप्त होती है, उस समय मनुष्य सब चीजों में ईश्वर को तथा ईश्वर में सब चीजों को देखने लगता है। उसी समय उसे पूर्ण भक्ति प्राप्त होती है। उसी समय वह ब्रह्मा से लेकर कीटाणु तक सभी वस्तुओं में विष्णु के दर्शन करता है। उसी वह पूरी तरह समझ सकता है कि ईश्वर के अतिरिक्त सत्कार में और कुछ नहीं है और केवल उसी वह अपने को हीम से हीन समझकर मकार्म भक्त की भाँति ईश्वर

१ ज्ञानो ब्रह्मसमाधिं प्यासतावस्तु मध्यमः ।

स्तुतिर्ब्रह्मोऽवमो ज्ञानो ब्राह्मपूजावमावमा ॥ महागिर्वाण तंत्र १७।१२२॥

२ न जने न जने न च सुन्दरी कस्ति वा जगदीश्वर कामदे ।

मन जगदि जगदीश्वरे भवतावभितरहृत्तुकी त्वधि ॥

की उपासना करता है। उस समय उसे बाह्य अनुष्ठान एवं तीर्थ-यात्रा आदि की प्रवृत्ति नहीं रह जाती—वह प्रत्येक मनुष्य को ही यथार्थ देवमन्दिरस्वरूप समझता है।

शास्त्रों में भक्ति का नाना प्रकार से वर्णन किया गया है। हम ईश्वर को अपना पिता कहते हैं, इसी प्रकार हम उसे माता आदि भी कहते हैं। हम लोगो में भक्ति की दृढ़ स्थापना के लिए इन सम्बन्धों की कल्पना की गयी है, जिससे हम ईश्वर के अधिक सान्निध्य और प्रेम का अनुभव कर सकें। ये शब्द अत्यन्त प्रेमपूर्ण हैं। सच्चे धार्मिक ईश्वर को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं, इसलिए वे उसे माता-पिता कहे बिना नहीं रह सकते। रासलीला में राधा और कृष्ण की कथा को लो। यह कथा भक्त के यथार्थ भाव को व्यक्त करती है, क्योंकि ससार में स्त्री-पुरुष के प्रेम से अधिक प्रबल कोई दूसरा प्रेम नहीं हो सकता। जहाँ इस प्रकार का प्रबल अनुराग होगा, वहाँ कोई भय, कोई वासना या कोई आसक्ति नहीं रह सकती—केवल एक अच्छे-बन्धन दोनों को तन्मय कर देता है। माता-पिता के प्रति सन्तान का जो प्रेम है वह भयमिश्रित है, कारण उनके प्रति उसका श्रद्धा-भाव रहता है। ईश्वर सृष्टि करता है या नहीं, वह हमारी रक्षा करता है या नहीं, इस सबसे हमारा क्या मतलब है और इसकी हम क्यों चिन्ता करें? वह हम लोगो का प्रियतम, आराध्य देवता है, अतः भय के भाव को छोड़कर हमें उसकी उपासना करनी चाहिए। जिस समय मनुष्य की सब वासनाएँ मिट जाती हैं, जिस समय वह और किसी विषय का चिन्तन नहीं करता, जिस समय वह ईश्वर के लिए पागल हो जाता है, उसी समय मनुष्य ईश्वर से वस्तुतः प्रेम करता है। सासारिक प्रेमी जिस भाँति अपने प्रियतम से प्रेम करते हैं, उसी प्रकार हमें ईश्वर से भी प्रेम करना होगा। कृष्ण स्वयं ईश्वर थे, राधा उनके प्रेम में पागल थी। जिन ग्रन्थों में राधा-कृष्ण की प्रेमकथाएँ वर्णित हैं, उन्हें पढ़ो तो पता चलेगा कि ईश्वर से कैसे प्रेम करना चाहिए। किन्तु इस अपूर्व प्रेम के तत्त्व को कितने लोग समझते हैं? बहुत से ऐसे मनुष्य हैं जिनका हृदय पाप से परिपूर्ण है, वे नहीं जानते कि पवित्रता या नैतिकता किसे कहते हैं। वे क्या इन तत्त्वों को समझ सकते हैं? वे किसी भाँति इन तत्त्वों को समझ ही नहीं सकते। जिस समय मन से सारे सासारिक वासनापूर्ण विचार दूर हो जाते हैं और जब निर्मल नैतिक तथा आध्यात्मिक भाव-जगत् में मन की अवस्थिति हो जाती है, उस समय वे अशिक्षित होने पर भी शास्त्र की अति जटिल समस्याओं के रहस्य को समझने में समर्थ होते हैं। किन्तु इस प्रकार के मनुष्य ससार में कितने हैं या हो सकते हैं? ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसे लोग विकृत न कर दें। उदाहरणार्थ ज्ञान की

हाई देकर लोग अनायास ही कह सकते हैं कि आत्मा जब देह से सम्पूर्णतया मुक्त है, तो देह चाहे जो पाप करे, आत्मा उस कार्य में सिद्ध नहीं हो सकती। यदि वे ठीक तरह से धर्म का अनुसरण करते तो हिन्दू, मुसलमान ईसाई सबका कोई भी दूसरा धर्मविस्मयी क्यों न हो सभी पवित्रता के बरतारस्वरूप होते। केन्दु मनुष्य अपनी अपनी अच्छी या बुरी प्रकृति के अनुसार परिचायित होते हैं, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु संसार में सदा कुछ मनुष्य ऐसे भी होते हैं जो ईश्वर का नाम सुनते ही उत्पन्न हो जाते हैं। ईश्वर का मुषगाम करत करते जिनकी आँसों से प्रेमाशु की प्रबल धारा बहने लगती है। इसी प्रकार लोग सच्चे भक्त हैं।

भक्ति की प्रथम अवस्था में भक्त ईश्वर को प्रभु और अपने को दास समझता है। अपनी वैभक्ति आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह ईश्वर के प्रति कृतज्ञ अनुभव करता है। इस प्रकार के भावों को एकत्र जोड़ देना चाहिए। प्रथम एक ही आकर्षक शक्ति है और वह है ईश्वर। उसी आकर्षक शक्ति के कारण सूर्य चन्द्र एवं जन्मात्म सभी चीजें घटिमान होती हैं। इस संसार की अच्छी या बुरी सभी चीजें ईश्वरप्रतिमुख भक्त रहीं हैं। हमारे जीवन की सारी घटनाएँ, अच्छी या बुरी हमें उसीकी ओर ले जाती हैं। एक मनुष्य ने दूसरे का अपने स्वार्थ के लिए हानि किया; जो कुछ भी हो अपने लिए हो या दूसरों के लिए हो प्रेम ही इस कार्य का मूल है। खराब हो या अच्छा हो प्रेम ही सब चीजों का प्रेरक है। धेर जब मैंस को मारता है तब वह अपनी या अपने बच्चों की मूल मिटाने के लिए ऐसा करता है।

ईश्वर प्रेम का मूर्त रूप है। सदा सब अपराधों को क्षमा करने के लिए प्रस्तुत बनादि अनन्त ईश्वर प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। लोय जानें या न जानें वे उसकी ओर आह्वय हो रहे हैं। पति की परमानुपमिनी स्त्री नहीं जानती कि उसके पति न भी नहीं महान् विषय आकर्षक शक्ति है जो उसको अपने स्वामी की ओर ले जाती है। हमारा उपास्य है—केवल यही प्रेम का ईश्वर। जब तक हम उसे सप्टा पाकनरुणी आदि समझते हैं तब तक उसकी बाह्य पूजा आदि की आवश्यकता है किन्तु जिस समय इन सारी भावनाओं का परिवर्तन कर उस प्रेम का बरतारस्वरूप समझते हैं एवं सब वस्तुओं में उसे और उसमें सब वस्तुओं को देखते हैं, उसी समय हम परा भक्ति प्राप्त हुनी है।

## हिन्दू धर्म के सामान्य आधार

लाहौर पहुँचने पर आर्य समाज और सनातन धर्मसभा दोनों के नेताओं ने स्वामी जी का भव्य स्वागत किया। स्वामी जी ने अपने अल्पकालीन लाहौर-प्रवास के दौरान में तीन भाषण दिये। पहला 'हिन्दू धर्म के सामान्य आधार' पर, दूसरा 'भक्ति' पर और तीसरा विख्यात भाषण 'वेदान्त' पर था। उनका पहला भाषण निम्नलिखित है

### स्वामी जी का भाषण

यह वही भूमि है, जो पवित्र आर्यावर्त में पवित्रतम मानी जाती है, यह वही ब्रह्मावर्त है, जिसका उल्लेख हमारे महर्षि मनु ने किया है। यह वही भूमि है, जहाँ से आत्म-तत्त्व की उच्चाकाक्षा का वह प्रबल स्रोत प्रवाहित हुआ है, जो आनेवाले युगों में, जैसा कि इतिहास से प्रकट है, ससार को अपनी बाढ से आप्लावित करनेवाला है। यह वही भूमि है, जहाँ से उसकी वेगवती नद-नदियों के समान आध्यात्मिक महत्त्वाकाक्षाएँ उत्पन्न हुईं और धीरे धीरे एक घारा में सम्मिलित होकर शक्तिसम्पन्न हुईं और अन्त में ससार की चारों दिशाओं में फैल गयी तथा वज्र-नाम्मीर ध्वनि से उन्होंने अपनी महान् शक्ति की घोषणा समस्त जगत् में कर दी। यह वही वीर भूमि है, जिसे भारत पर चढाई करनेवाले शत्रुओं के सभी आक्रमणों तथा अतिक्रमणों का आघात सबसे पहले सहना पडा था। आर्यावर्त में घुसनेवाली बाहरी बर्बर जातियों के प्रत्येक हमले का सामना इसी वीर भूमि को अपनी छाती खोलकर करना पडा था। यह वही भूमि है, जिसने इतनी आपत्तियाँ झेलने के बाद भी अब तक अपने गौरव और शक्ति को एकदम नहीं खोया। यही भूमि है, जहाँ बाद में दयालु नानक ने अपने अद्भुत विश्व-प्रेम का उपदेश दिया, जहाँ उन्होंने अपना विशाल हृदय खोलकर सारे ससार को—केवल हिन्दुओं को नहीं, बल्कि मुसलमानों को भी—गले लगाने के लिए अपने हाथ फैलाये। यही पर हमारी जाति के सबसे बाद के तथा महान् तेजस्वी वीरों में से एक, गुरु गोविन्द सिंह ने धर्म की रक्षा के लिए अपना एव अपने प्राण-प्रिय कुटुम्बियों का रक्त बहा दिया, और जिनके लिए यह खून की नदी बहायी गयी, उन लोगों ने भी जब उनका साथ छोड



दिया तब वे भर्माहृत सिंह की मूर्ति बुधबाप दक्षिण दिशा में निर्जन-वास के लिए चले गये और अपने देश-भाइयों के प्रति खबरों पर एक भी कट्टू बचन न लाकर, तनिक भी असन्तोष प्रकट न कर, शान्त भाव से इत्थोक छोड़ कर चले गये।

हे पंचनद देशवासी भाइयो! यहाँ अपनी इस प्राचीन पवित्र भूमि में तुम लोगों के सामने मैं आचार्य के रूप में नहीं खड़ा हुआ हूँ कारण तुम्हें घिसा देने योग्य ज्ञान मेरे पास बहुत ही थोड़ा है। मैं तो पूर्वी प्रान्त से अपने पश्चिमी प्रान्त के भाइयों के पास इसीलिए आया हूँ कि उनके साथ हृदय खोलकर वार्तालाप करूँ, उन्हें अपने अनुभव बताऊँ और उनके अनुभव से स्वयं लाभ उठाऊँ। मैं यहाँ यह देखने नहीं आया कि हमारे बीच क्या क्या मतभेद हैं, बरन् मैं तो यह खोजने आया हूँ कि हम लोगों की मिसन-भूमि कौन सी है। यहाँ मैं यह जानने का प्रयत्न कर रहा हूँ कि वह कौन सा आचार है, जिस पर हम लोग आपस में उबा भाई बने रह सकते हैं। किस मीठ पर प्रतिष्ठित होने से वह बाबी जो जनस्य काल से सुनायी है उठी है, उतरीतर अधिक प्रबल होती रहेगी। मैं यहाँ तुम्हारे सामने कुछ रचनात्मक कार्यक्रम रखने आया हूँ ध्वंसात्मक नहीं। कारण आलोचना के दिन अब चले गये और आज हम रचनात्मक कार्य करने के लिए उत्सुक हैं। यह सत्य है कि ससार को समय समय पर आलोचना की जरूरत हुआ करती है, यहाँ तक कि कठोर आलोचना की भी पर वह केवल अस्य काष्ठ के लिए ही होती है। हमसा के लिए तो उपरतिष्ठापी और रचनात्मक कार्य ही बाधित होते हैं आलोचनारत्मक या ध्वंसात्मक नहीं। जगमग पिछले छी वर्ष से हमारे इस देश में सर्वत्र आलोचना की बाड़ खी धा गयी है, उधर सभी बन्धकारमय प्रदेसों पर पा-बाल्य विमान का तीव्र प्रकाश डाला गया है, जिसे लोगों की दृष्टि अन्य स्थापना की अपेसा कोनों और गली-दूबों की ओर ही अधिक खिच गयी है। स्वभावतः इस देश में सर्वत्र महान् और तेजस्वी मेघासम्पन्न पुरखों का जन्म हुआ जिनके हृदय में मत्स्य और म्याय के प्रति प्रबल अनुराग था जिनके अन्त करण में अपने देश के लिए और सबसे बढ़कर ईदबर तथा अपने धर्म के लिए अगाध प्रेम था। क्योंकि ये महापुरुष अत्यधिक संवेदनशील थे सनमें देश के प्रति इतना गहरा प्रेम था इसलिए उन्होंने प्रत्येक पशु की जिसे बुरा समझा तीव्र आलोचना की। अनीतकालीन इस महापुरुषों की जय हो! उन्होंने देश का बहुत ही बस्याग किया है। पर आज हम एक महाबागी सुनायी दे रही हैं, बत बने बग बरो! निम्ना पर्यन्त हा चुकी बार-बर्तन बात ही चुका। अब तो पुनर्निर्माण का फिर से संयत्न करने का समय आ गया है। अब अपनी तमस

खिखरी हुई शक्तियों को एकत्र करने का, उन सबको एक ही केन्द्र में लाने का और उस सम्मिलित शक्ति द्वारा देश को प्रायः सदियों से रुकी हुई उन्नति के मार्ग में अग्रसर करने का समय आ गया है। घर की सफाई हो चुकी है। अब आवश्यकता है उसे नये सिरे से आबाद करने की। रास्ता साफ कर दिया गया है। आर्य सन्तानों, अब आगे बढ़ो।

सज्जनों! इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर मैं आपके सामने आया हूँ और आरम्भ में ही यह प्रकट कर देना चाहता हूँ कि मैं किसी दल या विशिष्ट सम्प्रदाय का नहीं हूँ। सभी दल और सभी सम्प्रदाय मेरे लिए महान् और महिमामय हैं। मैं उन सबसे प्रेम करता हूँ, और अपने जीवन भर मैं यही ढूँढने का प्रयत्न करता रहा कि उनमें कौन कौन सी बातें अच्छी और सच्ची है। इसीलिए आज मैंने सकल्प किया है कि तुम लोगों के सामने उन बातों को पेश करूँ, जिनमें हम एकमत हैं, जिससे कि हमें एकता की सम्मिलन-भूमि प्राप्त हो जाय, और यदि ईश्वर के अनुग्रह से यह सम्भव हो तो आओ, हम उसे ग्रहण करें और उसे सिद्धान्त की सीमाओं से बाहर निकालकर कार्यरूप में परिणत करें। हम लोग हिन्दू हैं। मैं 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग किसी बुरे अर्थ में नहीं कर रहा हूँ, और मैं उन लोगों से कदापि सहमत नहीं, जो उससे कोई बुरा अर्थ समझते हैं। प्राचीन काल में उस शब्द का अर्थ था—सिन्धु नदी के दूसरी ओर बसनेवाले लोग। हमसे घृणा करनेवाले बहुतेरे लोग आज उस शब्द का कुत्सित अर्थ भले ही लगाते हैं, पर केवल नाम में क्या घरा है? यह तो हम पर ही पूर्णतया निर्भर है कि 'हिन्दू' नाम ऐसी प्रत्येक वस्तु का द्योतक रहे, जो महिमामय हो, आध्यात्मिक हो, अथवा वह ऐसी वस्तु का द्योतक रहे जो कलक का समानार्थी हो, जो एक पददलित, निकम्मी और धर्म-भ्रष्ट जाति का सूचक हो। यदि आज 'हिन्दू' शब्द का कोई बुरा अर्थ है तो उसकी परवाह मत करो। आओ, अपने कार्यों और आचरणों द्वारा यह दिखाने को तैयार हो जाओ कि समग्र ससार की कोई भी भाषा इससे ऊँचा, इससे महान् शब्द का आविष्कार नहीं कर सकती है। मेरे जीवन के सिद्धान्तों में से एक यह भी सिद्धान्त रहा है कि मैं अपने पूर्वजों की सन्तान कहलाने में लज्जित नहीं होता। मुझे जैसा गर्वीला मानव इस ससार में शायद ही हो, पर मैं यह स्पष्ट रूप से बताना चाहता हूँ कि यह गर्व मुझे अपने स्वयं के गुण या शक्ति के कारण नहीं, बल्कि अपने पूर्वजों के गौरव के कारण है। जितना ही मैंने अतीत का अध्ययन किया है, जितनी ही मैंने भूतकाल की ओर दृष्टि डाली है, उतना ही यह गर्व मुझमें अधिक आता गया है। उससे मुझे श्रद्धा की उतनी ही दृढता और साहम प्राप्त हुआ है, जिसने मुझे घरी की घूल से ऊपर उठाया है और मैं अपने उन

महान् पूर्वजों के निश्चित किये हुए कार्यक्रम के अनुसार कार्य करने को प्रेरित हुआ हूँ। ऐउन्हीं प्राचीन जार्ज की सम्पत्ती! ईस्वर करे, तुम लोगों के हृदय में भी बड़ी गर्व जादिभूत हो जाय अपने पूर्वजों के प्रति वही विश्वास तुम लोगों के रक्त में भी बीजने लगे वह तुम्हारे जीवन से मिसकर एक हो जाय और संसार के उदार के लिए कार्यशील हो।

भाइयो! यह पता लगाने के पहले कि हम ठीक किस बात में एकमत हैं तथा हमारे जातीय जीवन का सामान्य आधार क्या है हमें एक बात स्मरण रखनी होगी। जैसे प्रत्येक मनुष्य का एक व्यक्तित्व होता है, ठीक उसी तरह प्रत्येक जाति का भी अपना एक व्यक्तित्व होता है। जिस प्रकार एक व्यक्ति कुछ विशिष्ट बातों में अपने विशिष्ट सवालों में अन्य व्यक्तियों से भिन्न होता है उसी प्रकार एक जाति भी कुछ विशिष्ट समस्याओं में दूसरी जाति से भिन्न हुआ करती है। और जिस प्रकार प्रकृति की व्यवस्था में किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति करना हर एक मनुष्य का जीवनोद्देश्य होता है जिस प्रकार अपने पूर्व कर्म द्वारा निर्धारित विशिष्ट मार्ग से उस मनुष्य को चलना पड़ता है, ठीक ऐसा ही जातियों के विषय में भी है। प्रत्येक जाति को किसी न किसी ईशनिर्दिष्ट उद्देश्य को पूरा करना पड़ता है प्रत्येक जाति को संसार में एक अन्वेष बना पड़ता है तथा प्रत्येक जाति को एक प्रतिबोध का अन्वेषण करना होता है। अतः आरम्भ से ही हमें यह समझ लेना चाहिए कि हमारी जाति का वह बत क्या है, बिबाधा न उसे भविष्य के किस विशिष्ट उद्देश्य के लिए निमुक्त किया है, विभिन्न राष्ट्रों की पूबक-पूबक उत्पत्ति और अधिकार में हमें कौन सा स्थान प्रदत्त करना है विभिन्न राष्ट्रीय स्वयं की समरसता में हमें कौन सा स्वर अन्वेषण है। हम अपने देश में अन्वेषण में यह किस्सा सुना करते हैं कि कुछ सपनों के फल में मणि होती है और जब तक मणि नहीं है तब तक तुम सपनों को मारने का कोई भी उपाय करो वह नहीं मर सकता। हम लोगों ने क्रिस्ते-कड़ानियों में बँटपों और राज्यों की बाँटें पड़ी हैं। उनके प्राण 'हीरामन तोते' के कमेरे में बन्द रहते हैं और जब तक उस 'हीरामन तोते' की जान में जान रहती तब तक उस जानब का बाक भी बाँका न होना चाहे तुम उसके टुकड़े टुकड़े ही क्यों न कर डालो। यह बात राष्ट्रों के सम्बन्ध में भी सत्य है। राष्ट्रविशेष का जीवन भी ठीक उसी प्रकार मानो किसी विन्दु में केन्द्रित रहता है वही उस राष्ट्र की राष्ट्रीयता रहती है और जब तक उस मर्मस्थान पर चोट नहीं पड़ती तब तक वह राष्ट्र मर नहीं सकता। इस तथ्य के प्रकाश में हम संसार के इतिहास की एक अद्वितीय एवं सबसे अपूर्व घटना को समझ सकते हैं। हमारी इन अज्ञातमय मान्यमूर्ति पर बारम्बार बर्बर जातिवी

के आक्रमणों के दौर आते रहे हैं। 'अल्लाहो अकबर' के गगनभेदी नारों से भारत-गगन सदियों तक गूँजता रहा है और मृत्यु की अनिश्चित छाया प्रत्येक हिन्दू के सिर पर मँडराती रही है। ऐंम, कोई हिन्दू न रहा होगा, जिमें पल पल पर मृत्यु की आशका न होती रही हो। ससार के इतिहास में इस देश में अधिक दुःख पानेवाला तथा अधिक पराधीनता भोगनेवाला और कौन देश है? पर तो भी हम जैसे पहले थे, आज भी लगभग वैसे ही बने हुए हैं, आज भी हम आवश्यकता पड़ने पर वारम्बार विपत्तियों का सामना करने को तैयार हैं, और इतना ही नहीं, हाल में ऐंम भी लक्षण दिखायी दिये हैं कि हम केवल शक्तिमान ही नहीं, बरन् बाहर जाकर दूसरों को अपने विचार देने के लिए भी उत्पन्न हैं, कारण, विस्तार ही जीवन का लक्षण है।

हम आज देखते हैं कि हमारे भाव और विचार भारत की सरहदों के पिंजड़े में ही बन्द नहीं हैं, बल्कि वे तो, हम चाहे या न चाहे, भारत के बाहर बढ रहे हैं, अन्य देशों के साहित्य में प्रविष्ट हो रहे हैं, उन देशों में अपना स्थान प्राप्त कर रहे हैं और इतना ही नहीं, कहीं कहीं तो वे आदेशदाता गुरु के आसन तक पहुँच गये हैं। इसका कारण यही है कि ससार की सम्पूर्ण उन्नति में भारत का दान सबसे श्रेष्ठ रहा है, क्योंकि उसने ससार को ऐसे दर्शन और धर्म का दान दिया है, जो मानव-मन को सलग्न रखनेवाला सबसे अधिक महान्, सबसे अधिक उदात्त और सबसे श्रेष्ठ विषय है। हमारे पूर्वजों ने बहुतेरे अन्य प्रयोग किये। हम सब यह जानते हैं कि अन्य जातियों के समान, वे भी पहले बहिर्जगत् के रहस्य के अन्वेषण में लग गये, और अपनी विशाल प्रतिभा से वह महान् जाति, प्रयत्न करने पर, उस दिशा में ऐंम ऐसे अद्भुत आविष्कार कर दिखाती, जिन पर समस्त ससार को सदैव अभिमान रहता। पर उन्होंने इस पथ को किसी उच्चतर ध्येय की प्राप्ति के लिए छोड़ दिया। वेद के पृष्ठों से उसी महान् ध्येय की प्रतिध्वनि सुनायी देती है—अथ परा, घया तदक्षरमधिगम्यते—'वही परा विद्या है, जिससे हमें उस अविनाशी पुरुष की प्राप्ति होती है।' इस परिवर्तनशील, नश्वर प्रकृति सम्बन्धी विद्या—मृत्यु, दुःख और शोक से भरे इस जगत् से सम्बन्धित विद्या बहुत बड़ी भले ही हो, एव सचमुच ही वह बड़ी है, परन्तु जो अपरिणामी और आनन्दमय है, जो चिर शान्ति का निधान है, जो शाश्वत जीवन और पूर्णत्व का एकमात्र आश्रय-स्थान है, एकमात्र जहाँ ही सारे दुःखों का अवसान होता है, उस ईश्वर से सम्बन्ध रखनेवाली विद्या ही हमारे पूर्वजों की राय में सबसे श्रेष्ठ और उदात्त है। हमारे पूर्वज यदि चाहते, तो ऐसे विज्ञानों का अन्वेषण सहज ही कर सकते थे, जो हमें केवल अन्न, वस्त्र और अपने साथियों पर आविपत्य

वे सकते हैं जो हमें कबल दूसरों पर विजय प्राप्त करना और उन पर प्रभुत्व  
 करना सिखाते हैं जो बली को निर्बल पर हुकूमत करने की शिक्षा देते हैं। पर  
 उद्यमपरमेष्ठिन की अपार दया से हमारे पूर्वजों ने उद्यम और बिल्कुल ध्यान न देकर  
 एकदम दूसरी शिक्षा पकड़ी जो पूर्वोक्त मार्ग से अत्यन्त गुनी भेष्ट और महान् की  
 जिसमें पूर्वोक्त पक्ष की अपेक्षा अत्यन्त युवा मानस्य था। इस मार्ग को अपनाकर वे ऐसी  
 अत्यन्त निष्ठ्य के साथ उस पर अग्रसर हुए कि आज यह हमारा राष्ट्रीय विशेषरूप बन  
 गया। सहस्रों वर्ष से पिता-पुत्र की उत्तराधिकार-परम्परा से आता हुआ आज  
 यह हमारे जीवन से घुस-मिल गया है। हमारी रसों में बहनेवाले रस की दूर  
 दूर से मिश्रकर एक हो गया है। यह मानो हमारा दूसरा स्वभाव ही बन गया है।  
 यहाँ तक कि आज 'बर्म' और 'हिन्दू' ये दो शब्द समानार्थी हो गये हैं। यही हमारी  
 जाति का वैशिष्ट्य है और इस पर कोई आपात नहीं कर सकता। बर्बर जातियों  
 में यही आकर लसकारों और टोपों के बरत पर अपने बर्बर धर्मों का प्रचार किया  
 पर उनमें से एक ही हमारे धर्मस्थल को स्पर्श न कर सका। सूर्य की उद्यम 'मभि' को  
 न छू सका। आर्य जीवन के प्राणस्वरूप उस 'हीरामन घोड़े' को न मार सका।  
 अतः यही हमारी जाति की जीवनी शक्ति है और जब तक यह अस्पर्श है,  
 जब तक संसार में ऐसी कोई शक्ति नहीं जो इस जाति का विनाश कर सके।  
 यदि हम अपनी इस सर्वश्रेष्ठ विरासत आध्यात्मिकता को न छोड़ें तो संसार के  
 सारे अत्याचार-उत्पीड़न और दुःख हमें बिना थोड़े पहुँचाव ही निकल जायेंगे  
 और हम लोग पुनः-ऋष्यात्मि की उन उपासकों में से प्रह्लाद के समान बिना  
 जले बाहर निकल आयेगे। यदि कोई हिन्दू शक्ति नहीं है तो मैं उसे हिन्दू  
 ही नहीं कहूँगा। दूसरे देशों में जैसे ही मनुष्य पहले राजनीतिक हो और फिर  
 धर्म से बौद्धा सा अगाध रहे पर यहाँ भारत में तो हमारे जीवन का सबसे बड़ा  
 और प्रबल कर्तव्य धर्म का अनुष्ठान है और फिर उसके बाद धर्म अथवा धर्म  
 तो दूसरे विषय मळे ही आ जायें। इस उद्यम को ध्यान में रखते से हम यह बात  
 अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे कि अपने राष्ट्रीय हित के लिए हमें आज क्यों  
 सबसे पहले अपनी जाति की समस्त आध्यात्मिक शक्तियों को बूँद निकालना  
 होगा। जैसा कि अतीत काल में किया गया था और फिर काक तक किया जायगा।  
 अपनी विपरीत हुई आध्यात्मिक शक्तियों का एकत्र करना ही भारत में राष्ट्रीय  
 एकता स्थापित करने का एकमात्र उपाय है। जिनकी इतनी एक ही आध्यात्मिक  
 शक्ति न बँधी है, उन सबके सम्मिलन से ही भारत में जाति का संयोजन  
 होगा।

इस देश में पर्याप्त पक्ष था सम्प्रदाय हुए हैं। आज भी ये पक्ष पर्याप्त संख्या

मे हैं और भविष्य मे भी पर्याप्त सख्या मे रहेगे, क्योकि हमारे धर्म की यह विशेषता रही है कि उसमे व्यापक तत्त्वो की दृष्टि से इतनी उदारता है कि यद्यपि वाद मे उनमे से अनेक सम्प्रदाय फँले हैं और उनकी बहुविध शाखा-प्रशाखाएँ फूटी हैं तो भी उनके तत्त्व हमारे सिर पर फँले हुए इस अनन्त आकाश के समान विशाल हैं, स्वय प्रकृति की भाँति नित्य और सनातन हैं। अत सम्प्रदायो का होना तो स्वाभाविक ही है, परन्तु जिसका होना आवश्यक नही है, वह है इन सम्प्रदायो के बीच के झगडे-झमेले। सम्प्रदाय अवश्य रहे, पर साम्प्रदायिकता दूर हो जाय। साम्प्रदायिकता से ससार की कोई उन्नति नही होगी, पर सम्प्रदायो के न रहने से ससार का काम नही चल सकता। एक ही साम्प्रदायिक विचार के लोग सब काम नही कर सकते। ससार की यह अनन्त शक्ति कुछ थोडे से लोगो से परिचालित नही हो सकती। यह बात समझ लेने पर हमारी समझ मे यह भी आ जायगा कि हमारे भीतर किसलिए यह सम्प्रदाय-भेदरूपी श्रमविभाग अनिवार्य रूप से आ गया है। भिन्न भिन्न आध्यात्मिक शक्ति-समूहो का परिचालन करने के लिए सम्प्रदाय कायम रहे। परन्तु जब हम देखते हैं कि हमारे प्राचीनतम शास्त्र इस बात की घोषणा कर रहे हैं कि यह सब भेद-भाव केवल ऊपर का है, देखने भर का है, और इन सारी विभिन्नताओ के वावजूद इनको एक साथ बाँधे रहनेवाला परम मनोहर स्वर्ण सूत्र इनके भीतर पिरोया हुआ है, तब इसके लिए हमे एक दूसरे के साथ लडने-झगडने की कोई आवश्यकता नही दिखायी देती। हमारे प्राचीनतम शास्त्रो ने घोषणा की है कि एक सद्धिप्रा बहुधा वदन्ति—‘विश्व मे एक ही सद्धस्तु विद्यमान है, ऋषियो ने उसी एक का भिन्न भिन्न नामो से वर्णन किया है।’ अत ऐसे भारत मे, जहाँ सदा से सभी सम्प्रदाय समान रूप से सम्मानित होते आये हैं, यदि अब भी सम्प्रदायो के बीच ईर्ष्या-द्वेष और लडाई-झगडे बने रहे तो धिक्कार है हमे, जो हम अपने को उन महिमान्वित पूर्वजो के वशधर वताने का दु साहस करें !

मेरा विश्वास है कि कुछ ऐसे महान् तत्त्व हैं, जिन पर हम सब सहमत हैं, जिन्हे हम सभी मानते हैं—चाहे हम वैष्णव हो या शैव, शाक्त हो या गाणपत्य, चाहे प्राचीन वेदान्ती सिद्धान्तो को मानते हो या अर्वाचीनो के ही अनुयायी हो, पुरानी लकीर के फकीर हो अथवा नवीन सुधारवादी हो—और जो भी अपने को हिन्दू कहता है, वह इन तत्त्वो मे विश्वास रखता है। सम्भव है कि इन तत्त्वो की व्याख्याओ मे भेद हो—और वैसा होना भी चाहिए, क्योकि हमारा यह मानदड रहा है कि हम सबको जबरदस्ती अपने साँचे मे न ढालें। हम जिस तरह की व्याख्या करें, सबको वही व्याख्या माननी पडेगी अथवा हमारी ही प्रणाली का अनुसरण

करना होगा—बदरबस्ती ऐसी बेवटा करना पाप है। आज यहाँ पर जो लोग एकत्र हुए हैं घायब वे सभी एक स्वर से यह स्वीकार करते कि हम लोग वेदों को अपन धर्म-ग्रन्थों का सनातन उपवेश मानते हैं। हम सभी यह विश्वास करते हैं कि वेदों की यह पवित्र शक्ति अनादि और अनन्त है। जिस प्रकार प्रकृति का न नादि है न अनन्त उसी प्रकार इसका भी आदि-अन्त नहीं है। और जब तक हम इस पवित्र ग्रन्थ के प्रकाश में आते हैं तब हमारे धर्म-सम्बन्धी सारे भेद भाव और झगड़े मिट जाते हैं। इसमें हम सभी सहमत हैं कि हमारे धर्म विषयक जितने भी भेद हैं, उनको अन्तिम मीमांसा करनेवाला यही वेद है। वेद कम है, इस पर हम लोगों में मतभेद हो सकता है। कोई सम्प्रदाय वेद के किसी एक अक्षर को दूसरे अक्षर से अधिक पवित्र मान सकता है। पर इससे तब तक कुछ बनता विपत्तियाँ नहीं जब तक हम यह विश्वास करते हैं कि वेदों के प्रति श्रद्धा होने के कारण हम सभी आपस में भाई भाई हैं तथा उन सनातन पवित्र और अपूर्व ग्रन्थों से ही ऐसी प्रत्येक पवित्र महान् और उत्तम वस्तु का उद्भव हुआ है जिसके हम आज शपथकाटी हैं। अच्छा यदि हमारा ऐसा ही विश्वास है तो फिर सबसे पहले हमी स्वयं का भारत में सर्वत्र प्रचार किया जाय। यदि यही सत्य है तो फिर वेद सर्वदा ही विम प्रामाण्य के शपथकाटी हैं तथा जिसमें हम सभी विश्वास करते हैं वह प्रामाण्य वेदों को ही जाय। अतः हम सबकी प्रथम मितलन मुमि है वेद।

दूसरी बात यह है कि हम सब ईश्वर में विश्वास करते हैं जो संसार की सृष्टि-स्वप्ति-लय-वारिषी शक्ति है जिसमें यह सारा ब्रह्मण्ड ब्रह्माण्ड में रूप होकर हमारे कर्म के कारण में पुनः अनुभूत जगत् प्रपञ्च रूप से बाहर निकल आता एक अभिव्यक्त होता है। हमारी ईश्वर विषयक कल्पना भिन्न भिन्न प्रकार की हो सकती है—कुछ लोग ईश्वर का सम्पूर्ण समुच्च रूप में कुछ उन्हें समुच्च पर मानकर भाषावत् रूप में नहीं और कुछ उन्हें सम्पूर्ण विषुव रूप में ही मान सकते हैं और सभी अपनी अपनी धारणा की शक्ति में वेद के प्रमाण भी देखते हैं। पर इन सब विभिन्नताओं के होते हुए भी हम सभी ईश्वर में विश्वास करते हैं। सभी बात को सुन्दर धारण में ऐसा भी बन सकते हैं कि विनायक वत् शक्ति ब्रह्मण्ड उन्मत्त हुआ है जिसके अन्तर्गत में वह जीवित है और अन्त में विनायक का शक्ति व लीन है। अतः उन अनुभूत अन्तर्गत शक्ति पर जो विश्वास नहीं करना बन आने को शिष्य की बन सकता। यदि ऐसी बात है तो इन तरह की भी शपथ धारण में बनाने को बनता बनती होगी। तुम इन ईश्वर का जाने किन भाव में प्रचार करो ईश्वर शपथकी श्रद्धा मान न ही देने धार में भिन्न है। पर इन हमारे शिष्य आगम में शपथ नहीं करे। इन शपथों में ईश्वर का प्रचार शिष्य

वह किसी भी रूप में ब्यो न हो। हो सकता है, ईश्वर सम्बन्धी इन विभिन्न धारणाओं में कोई अधिक श्रेष्ठ हो, पर याद रखना, उनमें कोई भी धारणा बुरी नहीं है। उन धारणाओं में कोई उत्कृष्ट, कोई उत्कृष्टतर और कोई उत्कृष्टतम हो सकती है, पर हमारे धर्म-तत्त्व की पारिभाषिक शब्दावली में 'बुरा' नाम का कोई शब्द नहीं है। अतः, ईश्वर के नाम का चाहे जो कोई जिस भाव से प्रचार करे, वह निश्चय ही ईश्वर के आशीर्वाद का भाजन होगा। उसके नाम का जितना ही अधिक प्रचार होगा, देश का उतना ही कल्याण होगा। हमारे बच्चे बचपन से ही इस भाव को हृदय में धारण करना सीखें—अत्यन्त दरिद्र और नीचातिनीच मनुष्य के घर से लेकर बड़े से बड़े धनी-मानी और उच्चतम मनुष्य के घर में भी ईश्वर के शुभ नाम का प्रवेश हो।

अब तीसरा तत्त्व मैं तुम लोगों के सामने प्रकट करना चाहता हूँ। हम लोग औरों की तरह यह विश्वास नहीं करते कि इस जगत् की सृष्टि केवल कई हजार वर्ष पहले हुई है और एक दिन इसका सदा के लिए ध्वंस हो जायगा। साथ ही, हम यह भी विश्वास नहीं करते कि इसी जगत् के साथ शून्य से जीवात्मा की भी सृष्टि हुई है। मैं समझता हूँ कि इस विषय में भी हम सब सहमत हो सकते हैं। हमारा विश्वास है कि प्रकृति अनादि और अनन्त है, पर हाँ, कल्पान्त में यह स्थूल बाह्य जगत् अपनी सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होता है, और कुछ काल तक उस सूक्ष्मावस्था में रहने के बाद पुनः उसका प्रक्षेपण होता है तथा प्रकृति नामक इस अनन्त प्रपञ्च की अभिव्यक्ति होती है। यह तरगाकार गति अनन्त काल से—जब स्वयं काल का ही आरम्भ नहीं हुआ था तभी से—चल रही है और अनन्त काल तक चलती रहेगी।

पुनः हिन्दू मात्र का यह विश्वास है कि मनुष्य केवल यह स्थूल जड़ शरीर ही नहीं है, न ही उसके अभ्यन्तरस्थ यह 'मन' नामक सूक्ष्म शरीर ही प्रकृत मनुष्य है, वरन् प्रकृत मनुष्य तो इन दोनों से अतीत एव श्रेष्ठ है। कारण, स्थूल शरीर परिणामी है और मन का भी वही हाल है, परन्तु इन दोनों से परे 'आत्मा' नामक अनिवर्चनीय वस्तु है जिसका न आदि है, न अन्त। मैं इस 'आत्मा' शब्द का अग्रेजी में अनुवाद नहीं कर सकता, क्योंकि इसका कोई भी पर्याय गलत होगा। यह आत्मा 'मृत्यु' नामक अवस्था से परिचित नहीं। इसके सिवाय एक और विशिष्ट बात है, जिसने हमारे साथ अन्यान्य जातियों का विलकुल मतभेद है। वह यह है कि आत्मा एक देह का अन्त होने पर दूसरी देह धारण करती है, ऐसा करते करते वह एक ऐसी अवस्था में पहुँचती है, जब उसे फिर शरीर धारण करने की कोई इच्छा या आवश्यकता नहीं रह जाती, तब वह मुक्त हो जाती है



और फिर संकमी कर्म नहीं होती। यहाँ मेरा तात्पर्य अपने शास्त्रों के संसार बाद या पुनर्जन्मवाद तथा आत्मा के नित्यत्ववाद से है। हम चाहे जिस सम्प्रदाय के हों पर इस विषय में हम सभी सहमत हैं। इस आत्मा-परमात्मा के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में हमारे मत भिन्न हो सकते हैं। एक सम्प्रदाय आत्मा को परमात्मा से अनन्त काल तक अल्प भाग सकता है, दूसरे के मत से आत्मा उसी अनन्त अग्नि की एक चिनमायी हो सकती है और फिर अन्यो के मतानुसार वह उस अनन्त से एककर्म और अभिन्न हो सकती है। पर जब तक हम सब कोय इस मौक्तिक तत्त्व की मागते हैं कि आत्मा अनन्त है उसकी सृष्टि कभी नहीं हुई और इसलिए उसका माया भी कभी नहीं हो सकता उस तो भिन्न भिन्न धरियों से क्रमशः उत्पत्ति करते करते अन्त में मनुष्य धारीर बारण कर पूर्णत्व प्राप्त करना होगा—तब तक हम आत्मा एक परमात्मा के इस सम्बन्ध के विषय में चाहे कौसी प्यात्मा क्यों न करें, उससे कुछ मतान्तरिता नहीं। इसके विषय में हम सभी सहमत हैं। और इसके बाद आध्यात्मिकता के क्षेत्र में सबसे उपात्त सर्वाधिक विवेक को व्यवहृत करनेवाले और आज तक के सबसे अपूर्व आविष्कार की बात आती है। तुम लोगों में से जिन्होंने पारश्चात्य चिन्तन प्रजापति का अध्ययन किया होना उन्होंने सम्भवत यह कल्प किया होना कि एक ऐसा मौक्तिक प्रमेय है, जो पारश्चात्य विचारों को एक ही आशय में पौर्वात्य विचारों से पूरक कर देता है। वह यह है कि भारत में हम सभी चाहे हम शाक्त हों या सौर या वैष्णव जबदा बौद्ध या जैन ही क्यों न हों—हम सब के सब यही विश्वास करते हैं कि आत्मा स्वभावतः शुद्ध पूर्ण अनन्त सक्षितसम्पन्न और आत्मत्वमय है। अन्तर केवल इतना है कि ईतदादियों के मत से आत्मा का वह स्वाभाविक आत्मत्वस्वभाव पिछले बुरे कर्मों के कारण संकुचित हो गया है एवं ईश्वर के अनुग्रह से वह फिर विकसित हो जायगा और आत्मा पुनः अपने पूर्ण स्वभाव को प्राप्त हो जायगी। पर अद्वैतवादी कहते हैं कि आत्मा के संकुचित होने की यह कारण भी अल्पतः अनात्मक है—हम तो माया के आवरण के कारण ही ऐसा समझते हैं कि आत्मा अपनी धारी संश्लिष्ट बना बैठी है, जब कि वास्तव में उसकी समस्त सक्षित तब भी पूर्ण रूप से अभिव्यक्त रहती है। जो भी अन्तर हो पर हम एक ही केन्द्रीय तत्त्व पर पहुँचते हैं कि आत्मा स्वभावतः ही पूर्ण है और यही प्राण्य और पारश्चात्य भावों के बीच एक ऐसा अन्तर डाल देता है जिसमें कहीं समझौता नहीं है। जो कुछ महान् है, जो कुछ सूक्ष्म है, पौर्वात्य उसका अन्वेषण अन्वयन्तर में करता है। जब हम पूजा-उपासना करते हैं तब आँसू बन्द कर ईश्वर को अन्तर ईश्वर का प्रयत्न करते हैं, और पारश्चात्य अपने बाहर ही ईश्वर की ईश्वरता फिरता है। पारश्चात्यो

के धर्मग्रन्थ प्रेरित (inspired) हैं, जब कि हमारे धर्मग्रन्थ अन्त प्रेरित (expired) हैं, निश्वास की तरह वे निकले हैं, ईश्वरनिश्वासित हैं, मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के हृदयों में निकले हैं।<sup>१</sup>

यह एक प्रधान बात है, जिसे अच्छी तरह समझ लेने की आवश्यकता है। प्यारे भाइयों! मैं तुम लोगों को यह बताये देता हूँ कि यही बात भविष्य में हमें विशेष रूप से बार-बार बतलानी और समझानी पड़ेगी। क्योंकि यह मेरा दृढ़ विश्वास है और मैं तुम लोगों से भी यह बात अच्छी तरह समझ लेने को कहता हूँ कि जो व्यक्ति दिन-रात अपने को दीन-हीन या अयोग्य समझे हुए बैठा रहेगा, उसके द्वारा कुछ भी नहीं हो सकता। वास्तव में अगर दिन-रात वह अपने को दीन, नीच एवं 'कुछ नहीं' समझता है तो वह 'कुछ नहीं' ही बन जाता है। यदि तुम कहो कि 'मेरे अन्दर शक्ति है' तो तुममें शक्ति जाग उठेगी। और यदि तुम सोचो कि 'मैं 'कुछ नहीं हूँ,' दिन-रात यही सोचा करो, तो तुम सचमुच ही 'कुछ नहीं' हो जाओगे। तुम्हें यह महान् तत्त्व सदा स्मरण रखना चाहिए। हम तो उसी सर्वशक्तिमान् परम पिता की सन्तान हैं, उसी अनन्त ब्रह्माग्नि की चिनगारियाँ हैं—भला हम 'कुछ नहीं' क्योंकर हो सकते हैं? हम सब कुछ हैं, हम सब कुछ कर सकते हैं, और मनुष्य को सब कुछ करना ही होगा, हमारे पूर्वजों में ऐसा ही दृढ़ आत्मविश्वास था। इसी आत्मविश्वास रूपी प्रेरणा-शक्ति ने उन्हें सभ्यता की उच्च से उच्चतर सीढ़ी पर चढाया था। और, अब यदि हमारी अवनति हुई हो, हममें दोष आया हो तो मैं तुमसे सच कहता हूँ, जिस दिन हमारे पूर्वजों ने अपना यह आत्मविश्वास गँवाया, उसी दिन से हमारी यह अवनति, यह दुरवस्था आरम्भ हो गयी। आत्मविश्वास-हीनता का मतलब है ईश्वर में अविश्वास। क्या तुम्हें विश्वास है कि वही अनन्त मंगलमय विघाता तुम्हारे भीतर से काम कर रहा है? यदि तुम ऐसा विश्वास करो कि वही सर्वव्यापी अन्तर्यामी प्रत्येक अणु-परमाणु में—तुम्हारे शरीर, मन और आत्मा में ओत-प्रोत है, तो फिर क्या तुम कभी उत्साह से वचित रह सकते हो? मैं पानी का एक छोटा सा बुलबुला हो सकता हूँ, और तुम एक पर्वताकार तरंग, तो इससे क्या? वह अनन्त समुद्र जैसा तुम्हारे लिए, वैसा ही मेरे लिए भी आश्रय है। उस जीवन, शक्ति और आध्यात्मिकता के असीम सागर पर जैसा तुम्हारा, वैसा ही मेरा भी अधिकार है। मेरे जन्म से ही, मुझमें जीवन होने से ही, यह प्रमाणित हो रहा है कि तुम्हारे समान, चाहे तुम पर्वताकार तरंग ही क्यों न हो, मैं भी उसी

१ Inspire का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है—श्वास का बाहर से अन्दर जाना और Expire का—श्वास का भीतर से बाहर निकलना।

अनन्त जीवन अनन्त सिध और अनन्त सक्ति के साधन निरपसंपुक्त है। अतएव माइमी ! तुम अपनी मर्यादा को उनके प्रथम-काल से ही इस महान्, जीवनप्रद, उच्च और उदात्त स्वस्व की मिला देना शुरू कर दो। उन्हें अद्वैतवाप की ही पिला बिन की आशयप्रकृता नहीं तुम बाहू द्वैतवाद की सिखा दो या जिस किसी 'बाब' की जा भी तुम्हें सब। परन्तु हम पहले ही देख चुके हैं कि यही सर्वमान्य 'बाब' भारत में सर्वत्र स्वीकृत है। आत्मा की पूर्णता के इस अपूर्ण सिद्धान्त को सभी सम्प्रदायवाले समान रूप समानत हैं। हमारे महान् दार्शनिक कपिल महर्षि ने कहा है कि पवित्रता यदि आत्मा की प्रकृति न हो तो आत्मा बाब में कभी भी पवित्रता को प्राप्त नहीं हो सकती क्योंकि जो स्वभावतः पूर्ण नहीं है, वह यदि किसी प्रकार पूर्णता पा भी स तो वह पूर्णता उसमें स्थिर भाव स नहीं रह सकती उससे पुनः लक्ष्मी आसमी। यदि अपवित्रता ही मनुष्य का स्वभाव हो तो उसे ही वह कुछ समय के लिए पवित्रता प्राप्त कर स पर वह सब क लिए अपवित्र ही बना रहेगा। कभी न कभी ऐसा समय आसना जब वह पवित्रता शुरू आसगी दूर हो आसगी और फिर वही पुनः ही स्वाभाविक अपवित्रता अपना सिक्का जमा करनी। अतएव हमारे सभी दार्शनिक कहते हैं कि पवित्रता ही हमारा स्वभाव है, अपवित्रता नहीं पूजता ही हमारा स्वभाव है, अपूर्णता नहीं। इस बात को तुम सब स्मरण रखो। उस महर्षि के सुन्दर बुद्धान्त को सब स्मरण रखो जो सरीर त्याग करते समय अपने मन से अपने किम हुए उल्लेख कार्यों और उच्च विचारों का स्मरण करने के लिए कहते हैं। देखो उन्होंने अपने मन से अपने दोषों और दुर्बलताओं को बाह कराने के लिए नहीं कहा है। यह सब है कि मनुष्य संशय है, दुर्बलताएँ हैं पर तुम सब बा अपने वास्तविक स्वरूप का स्मरण करो। सब यही इन बाबा और दुर्बलताओं क दूर करान का असौख उपाय है।

मैं समझता हूँ कि ये कठिनपम तत्त्व भारतीय क सभी मित्र मित्र सम्प्रदायवाले स्वीकार करत हैं और सम्भजन जगत् में इसी सर्वस्वीकृत भाषा पर सबस सम्प्रदाया क मोल—मे उधार हों या कट्टर, पुनः ही कट्टर क कट्टर हों या लक्ष्मी राखनीबास—सभी क सभी आपस में निककर रहेये। पर सबस कट्टर एक जय बास भी हम बाह रखनी चाहिए, सब है कि इसे हम प्रायः शुरू करते हैं। यह यह है कि भारत में परम का उत्पन्न है 'प्रत्यक्षानुभूति' इससे नाम कहापि नहीं। हम ऐसी बात कोई नहीं सिखा सकता कि 'यदि तुम इस मठ को स्वीकार करो तो तुम्हारा उधार हो आसना क्योंकि हम उस बात पर विश्वास करते ही नहीं।

तुम अपने को जैसा बनाओगे, अपने को जैसे साँचे में ढालोगे, वैसे ही बनोगे। तुम जो कुछ हो, जैसे हो, वह ईश्वर की कृपा और अपने प्रयत्न से बने हो। किसी मतामत में विश्वास मात्र से तुम्हारा कोई विशेष उपकार नहीं होगा। 'अनुभूति', 'अनुभूति' की यह महती शक्तिमयी वाणी भारत के ही आध्यात्मिक गगनमण्डल से आविर्भूत हुई है, और एकमात्र हमारे ही शास्त्रों ने यह बारम्बार कहा है कि 'ईश्वर के दर्शन' करने होंगे। यह बात बड़े साहस की है, इसमें सन्देह नहीं, पर इसका लेशमात्र भी मिथ्या नहीं है, यह अक्षरशः सत्य है। धर्म की प्रत्यक्ष अनुभूति करनी होगी, केवल सुनने से काम नहीं चलेगा, तोते की तरह कुछ थोड़े से शब्द और धर्म विषयक बातें रट लेने से काम नहीं चलेगा, केवल बुद्धि द्वारा स्वीकार कर लेने से भी काम न चलेगा—आवश्यकता है हमारे अन्दर धर्म के प्रवेश करने की। अतः ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास रखने का सबसे बड़ा प्रमाण यह नहीं है कि तर्क से सिद्ध है, वरन् ईश्वर के अस्तित्व का सर्वोच्च प्रमाण तो यह है कि हमारे यहाँ के प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी पहुँचे हुए लोगों ने ईश्वर का साक्षात्कार किया है। आत्मा के अस्तित्व पर हम केवल इसलिए विश्वास नहीं करते कि हमारे पास उसके प्रमाण में उत्कृष्ट युक्तियाँ हैं, वरन् इसलिए कि प्राचीन काल में भारतवर्ष के सहस्रो व्यक्तियों ने आत्मा के प्रत्यक्ष दर्शन किये हैं, आज भी ऐसे बहुत से हैं, जिन्होंने आत्मोपलब्धि की है, और भविष्य में भी ऐसे हजारों लोग होंगे, जिन्हें आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति होगी। और जब तक मनुष्य ईश्वर के दर्शन न कर लेगा, आत्मा की उपलब्धि न कर लेगा, तब तक उसकी मुक्ति असम्भव है। अतएव, आओ, सबसे पहले हम इस बात को भली भाँति समझ लें, और हम इसे जितना ही अधिक समझेंगे, उतना ही भारत में साम्प्रदायिकता का ह्रास होगा, क्योंकि यथार्थ धार्मिक वही है, जिसने ईश्वर के दर्शन पाये हैं, जिसने अन्तर में उसकी प्रत्यक्ष उपलब्धि की है। तब तो, 'जिसने उसे देख लिया, जो हमारे निकट से भी निकट और फिर दूर से भी दूर है, उसके हृदय की गाँठें खुल जाती हैं, उसके सारे सशय दूर हो जाते हैं और वह कर्मफल के समस्त बन्धनों से छुटकारा पा जाता है।''

हा हन्त ! हम लोग बहुधा अर्थहीन वागाडम्बर को ही आध्यात्मिक सत्य ममज्ञ बैठते हैं, पांडित्य से भरी सुललित वाक्य-रचना को ही गम्भीर धर्मानुभूति समझ लेते हैं। इसीमें यह सारी साम्प्रदायिकता आती है, सारा विरोध-भाव उत्पन्न होता है। यदि हम एक बार इस बात को भली भाँति समझ लें कि

१ भिद्यते हृदयप्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया ।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ मुडकोपनियद् २।२।८॥

प्रत्यक्षानुभूति ही प्रकृत धर्म है तो हम अपने ही हृदय को टटोछेने और यह समझने का प्रयत्न करेंगे कि हम धर्म-न्तःराज्य के सत्यों की उपछात्रि की ओर कहाँ तक अग्रसर हुए हैं। और तब हम यह समझ पायेंगे कि हम स्वयं अन्धकार में भटक रहे हैं और अपने साम ब्रह्मों को भी उसी अन्धकार में भटका रहे हैं। बस इतना समझने पर हमारी साम्प्रदायिकता और सड़ाई मिट जायगी। यदि कोई तुमसे साम्प्रदायिक झगड़ा करने को तैयार हो तो उससे पूछो "तुमने क्या ईश्वर के दर्शन किये हैं? क्या तुम्हें कभी आत्म-दर्शन प्राप्त हुआ है? यदि नहीं तो तुम्हें ईश्वर के नाम का प्रचार करने का क्या अधिकार है? तुम तो स्वयं अंधेरे में भटक रहे हो और मुझे भी उसी अंधेरे में बसीटने की कोशिश कर रहे हो? 'अन्धा अन्धे को राह दिखावे' के अनुसार तुम मुझे भी सड़के में ले विरोगे। अतएव किसी ब्रह्मों के बीच निकालने के पहले तुमको अधिक विचार कर लेना चाहिए। सबको अपनी अपनी राह से चलने दो—'प्रत्यक्ष अनुभूति' की ओर अग्रसर होने दो। सभी अपने अपने हृदय में उस सत्यस्वरूप आत्मा के दर्शन करने का प्रयत्न करें। और जब वे उस भूमा के उस अनादृत सत्य के दर्शन कर लेंगे तभी उससे प्राप्त होनेवाले अपूर्व आनन्द का अनुभव कर सकेंगे। आत्मोपलब्धि से प्रसूत होनेवाला यह अपूर्व आनन्द कपोल-कल्पित नहीं है। बरन् भारत के प्रत्येक व्यक्ति में प्रत्येक क्षण इष्टा पुरुष में इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया है। और तब उस आत्मदर्शी हृदय से आप ही आप प्रेम की जाली फूट निकलेगी क्योंकि उसे ऐसे परम पुरुष का स्पर्श प्राप्त हुआ है जो स्वयं प्रेमस्वरूप है। बस तभी हमारे सारे साम्प्रदायिक सड़ाई झगड़े दूर होंगे और तभी हम 'हिन्दू' शब्द को तथा प्रत्येक हिन्दू-नामवादी व्यक्ति को यथार्थ समझने हृदय में धारण करने तथा यन्मीर रूप से प्रेम करने व आतिथान करने में समर्थ होंगे। मेरी बात पर ध्यान दो केवल तभी तुम भारत में हिन्दू कहलाने योग्य होंगे जब 'हिन्दू' शब्द को सुनते ही तुम्हारे अन्दर विजयी होइने लय जायगी। केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू कहला सकोगे जब तुम किसी भी प्रान्त के कोई भी भाषा बोलनेवाले प्रत्येक हिन्दू-सजक व्यक्ति को एकदम अपना तथा और स्नेही समझने लगोमे। केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू माने जाओगे जब किसी भी हिन्दू कहलानेवाले का गुण तुम्हारे हृदय में तीर की तरह आकर चुमेगा मानो तुम्हारा अपना सड़ाई ही विपत्ति में पड़ गया हो। केवल तभी तुम यथार्थ 'हिन्दू' नाम के योग्य होंगे जब तुम उनके लिए समस्त आत्माचार और उत्पीड़न सहने के लिए तैयार रहोमे। इसके उल्लेख दृष्टान्त हैं—तुम्हारे ही मुक घोषित सिद्ध विजयी वर्धा में आरम्भ म ही कर चुका है। इन महारामा में देश के सन्तुओं के विरुद्ध लोढ़ा किया हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपने हृदय का रक्त बहाया अपने पुत्रों को

अपनी आँखों के सामने मौत के घाट उतरते देता—पर जिनके लिए इन्होंने अपना और अपने प्राणों से बढकर प्यारे पुत्रों का खून बहाया, उन्हीं लोगों ने, इनकी सहायता करना तो दूर रहा, उल्टे इन्हे त्याग दिया। —यहाँ तक कि उन्हें इस प्रदेश से भी हटना पडा। अन्त में मरान्तिक चोट खाये हुए सिंह की भाँति यह नरकेसरी शान्तिपूर्वक अपने जन्म-स्थान को छोड दक्षिण भारत में जाकर मृत्यु की राह देखने लगा, परन्तु अपने जीवन के अन्तिम मुहूर्त तक उसने अपने उन कृतघ्न देशवासियों के प्रति कभी अभिशाप का एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाला। मेरी बात पर ध्यान दो। यदि तुम देश की भलाई करना चाहते हो तो तुमसे प्रत्येक को गुरु गोविन्द सिंह बनना पडेगा। तुम्हें अपने देशवासियों में भले ही हज़ारों दोष दिखायी दें, पर तुम उनकी रग रग में बहनेवाले हिन्दू रक्त की ओर ध्यान दो। तुम्हें पहले अपने इन स्वजातीय नर-रूप देवताओं की पूजा करनी होगी, भले ही वे तुम्हारी बुराई के लिए लाख चेष्टा किया करे। इनमें से प्रत्येक व्यक्ति यदि तुम पर अभिशाप और निन्दा की बौछार करे तो भी तुम इनके प्रति प्रेमपूर्ण वाणी का ही प्रयोग करो। यदि ये तुम्हें त्याग दें, पैरों से ठुकरा दें तो तुम उसी वीरकेसरी गोविन्द सिंह की भाँति समाज से दूर जाकर नीरव भाव से मौत की राह देखो। जो ऐसा कर सकता है, वही सच्चा हिन्दू कहलाने का अधिकारी है। हमें अपने सामने सदा इसी प्रकार का आदर्श उपस्थित रखना होगा। पारस्परिक विरोध-भाव को भूलकर चारों ओर प्रेम का प्रवाह बहाना होगा।

लोग भारत के पुनरुद्धार के लिए जो जी में आये, कहे। मैं जीवन भर काम करता रहा हूँ, कम से कम काम करने का प्रयत्न करता रहा हूँ, मैं अपने अनुभव के बल पर तुमसे कहता हूँ कि जब तक तुम सच्चे अर्थों में धार्मिक नहीं होते, तब तक भारत का उद्धार होना असम्भव है। केवल भारत ही क्यों, सारे ससार का कल्याण इसी पर निर्भर है। क्योंकि, मैं तुम्हें स्पष्टतया बताये देता हूँ कि इस समय पाश्चात्य सभ्यता अपनी नींव तक हिल गयी है। भौतिकवाद की कच्ची रेतीली नींव पर खड़ी होनेवाली बड़ी से बड़ी इमारतें भी एक न एक दिन अवश्य ही आपद्ग्रस्त होगी, ढह जायँगी। इस विषय में ससार का इतिहास ही सबसे बड़ा साक्षी है। जाति पर जाति उठी हैं और भौतिकवाद की नींव पर उन्होंने अपने गौरव का प्रासाद खडा किया है। उन्होंने ससार के समक्ष यह घोषणा की है कि जड के सिवा मनुष्य और कुछ नहीं है। ध्यान दो, पाश्चात्य भाषा में 'मनुष्य आत्मा छोडता है' (A man gives up the ghost), पर हमारी भाषा में 'मनुष्य शरीर छोडता है।' पाश्चात्य मनुष्य अपने सम्बन्ध में पहले देह को ही लक्ष्य करता है, उसके बाद उसके एक आत्मा है। पर हम लोगों के अनुसार मनुष्य पहले आत्मा ही है, और फिर उसके एक देह

मी है। इन दो विभिन्न भाषों की छानबीन करने पर तुम देखोग कि प्राच्य और पाश्चात्य विचार-प्रवाही में आकाश पाताल का अन्तर है। इसीलिए जितनी सम्मताएँ मौखिक सुख-स्वच्छन्दता की रेटीसी नींव पर कायम हुई थीं वे सभी बोधे ही समय के लिए जीवित रहकर एक एक करके ससार से लुप्त हो गयीं परन्तु भारत की सम्मता और भारत के चरणों के पास बैठकर शिक्षा ग्रहण करनेवाके चीन और जापान की सम्मता आज भी जीवित है और इतना ही नहीं बल्कि उनमें पुनरुत्थान के कक्षय भी दिखायी दे रहे हैं। 'फ़िनिस' के समान हजारों बार मर्य होने पर भी वे पुनः अधिक तेजस्वी होकर प्रस्फुरित होने को तैयार हैं। पर मौखिक वाद के आधार पर जो सम्मताएँ स्थापित हैं वे यदि एक बार मर्य हो गयीं तो फिर उठ नहीं सकती—एक बार यदि महसूद बहु पड़ा तो बस सदा के लिए बुर में मिल गया। अतएव धर्म के साथ रह देखते रहो हम लोगों का भविष्य उज्ज्वल है।

उठावके मत बनो किसी बूसरे का अनुकरण करने की चेष्टा मत करो। बूसरे का अनुकरण करना सम्मता की निघानी नहीं है यह एक महान् पाठ है जो हमें याद रखना है। मैं यदि आपही राजा की सी पोशाक पहनूँ तो क्या इतने ही से मैं राजा बन जाऊँगा ? घेर की खास मोड़कर यथा कमी देर नहीं बन सकता। अनुकरण करना हीन और डरपोक की तरह अनुकरण करना कमी उन्नति के पथ पर जागे नहीं बढ़ा सकता। वह तो मनुष्य के अध-पतन का कक्षय है। जब मनुष्य अपने आप पर नृपा करने लग जाता है, तब समझना चाहिए कि उस पर अन्तिम चोट बैठ चुकी है। जब वह अपने पूर्वजों को मानने में रुग्णित होता है तो समझ लो कि उसका विनाश निकट है। यद्यपि मैं हिन्दू जाति में एक नमस्व्य व्यक्ति हूँ तथापि अपनी जाति और अपने पूर्वजों के शीरव से मैं अपना शीरव मानता हूँ। अपने को हिन्दू बताते हुए, हिन्दू नहकर अपना परिचय देते हुए, मुझे एक प्रकार का गर्व सा होता है। मैं तुम लोगों का एक तुच्छ सेवक होने में अपना शीरव समझता हूँ। तुम लोग आर्य ऋषियों के अधर हो—उन ऋषियों के जिनकी महत्ता की तुम्हना नहीं हो सकती। मुझे इसका गर्व है कि मैं तुम्हारे देश का एक नमस्व्य नागरिक हूँ। अतएव भाइयो आत्मविश्वासी बनो। पूर्वजों के नाम से अपने को रुग्णित नहीं गौरवाञ्जित समझो। यदि यह किसीका अनुकरण कदापि न करो। कदापि नहीं। जब कभी तुम जीतों के विचारों का अनुकरण करते हो तुम अपनी स्वाधीनता रेंवा बैठने हो। यहाँ तक कि आध्यात्मिक विषय में भी यदि बूसरों के

१ पुनः पुनः उत्पन्न होने के समुदाय फ़िनिस (Phoenix) एक चिड़िया है जो बरैसी ५ वर्ष तक जीती है और पुनः अपने मर्य में से जी उठती है।

आज्ञावीन हो कार्य करोगे, तो अपनी सारी शक्ति, यहाँ तक कि विचार की शक्ति भी खो बैठोगे। अपने स्वयं के प्रयत्नो द्वारा अपने अन्दर की शक्तियों का विकास करो। पर देखो, दूसरे का अनुकरण न करो। हाँ, दूसरो के पास जो कुछ अच्छाई हो, उसे अवश्य ग्रहण करो। हमे दूसरो से अवश्य सीखना होगा। जमीन में बीज बो दो, उसके लिए पर्याप्त मिट्टी, हवा और पानी की व्यवस्था करो, जब वह बीज अकुरित होकर कालान्तर में एक विशाल वृक्ष के रूप में फल जाता है, तब क्या वह मिट्टी बन जाता है, या हवा या पानी? नहीं, वह तो विशाल वृक्ष ही बनता है—मिट्टी, हवा और पानी से रस खींचकर वह अपनी प्रकृति के अनुसार एक महीरूह का रूप ही धारण करता है। उसी प्रकार तुम भी करो—औरो से उत्तम बातें सीखकर उन्नत बनो। जो सीखना नहीं चाहता, वह तो पहले ही मर चुका है। महर्षि मनु ने कहा है

आददीत परा विद्या प्रयत्नादवरादपि ।  
अन्त्यादपि पर धर्म स्त्रीरत्न दुष्कुलादपि ॥

—‘स्त्री-रत्न को, भले ही वह कुलीन न हो, अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करो और नीच व्यक्ति की सेवा करके उससे भी श्रेष्ठ विद्या सीखने का प्रयत्न करो। चाडाल द्वारा भी श्रेष्ठ धर्म की शिक्षा ग्रहण करो।’ औरो के पास जो कुछ भी अच्छा पाओ, सीख लो, पर उसे अपने भाव के साँचे में ढालकर लेना होगा। दूसरे की शिक्षा ग्रहण करते समय उसके ऐसे अनुगामी न बनो कि अपनी स्वतन्त्रता गँवा बैठो। भारत के इस जातीय जीवन को भूल मत जाना। पल भर के लिए भी ऐसा न सोचना कि भारतवर्ष के सभी अधिवासी यदि अमुक जाति की वेश-भूषा धारण कर लेते या अमुक जाति के आचार-व्यवहारादि के अनुयायी बन जाते तो बड़ा अच्छा होता। यह तो तुम भली भाँति जानते हो कि कुछ ही वर्षों का अभ्यास छोड़ देना कितना कठिन होता है! फिर यह ईश्वर ही जानता है कि तुम्हारे रक्त में कितने सहस्र वर्षों का संस्कार जमा हुआ है, कितने सहस्र वर्षों से यह प्रबल जातीय जीवन-स्रोत एक विशेष दिशा की ओर प्रवाहित हो रहा है। और क्या तुम यह समझते हो कि वह प्रबल धारा, जो प्रायः अपने समुद्र के समीप पहुँच चुकी है, पुनः उलटकर हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों पर वापस जा सकती है? यह असम्भव है! यदि ऐसी चेष्टा करोगे तो जाति ही नष्ट हो जायगी। अतः, इस जातीय जीवन-स्रोत को पूर्ववत् प्रवाहित होने दो। हाँ, जो बाँध इसके रास्ते में रुकावट डाल रहे हैं, उन्हें काट दो, इसका रास्ता साफ़ करके प्रवाह को मुक्त कर दो, देखोगे, यह जातीय जीवन-स्रोत अपनी स्वाभाविक प्रेरणा से फूट कर आगे बढ़ निकलेगा और



यह जाति अपनी सर्वांगीण उन्नति करते करते अपने चरम सख्य की ओर अग्रसर होती जायगी।

भाइयो ! यही कार्य-प्रणाली है, जो हमें भारत में धर्म के क्षेत्र में अपनाती होगी। इसके सिवा और भी कई महती समस्याएँ हैं, जिनकी चर्चा समयाभाव के कारण इस पत्र में नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए जाति-भेद सम्बन्धी अद्भुत समस्या को ही के लो। मैं जीवन भर इस समस्या पर हर एक पल्लू से विचार करता रहा हूँ। भारत के प्रायः प्रत्येक प्रान्त में जाकर मैंने इस समस्या का अध्ययन किया है। इस देश के कममग हर एक भाग की विभिन्न जातियों से मैं मिला-जुटा हूँ। पर जितना ही मैं इस विषय पर विचार करता हूँ मेरे सामने उतनी ही कठिनाइयाँ आ पड़ती हैं और मैं इसके उद्देश्य अपना तात्पर्य के विषय में किन्तर्लभ्यनिमुक्त सा हो जाता हूँ। अन्त में जब मेरी जानों के सामने एक शीघ्र आलोचक-रैखा बिसामी बने लगी है, इपर कुछ ही समय से इसका मूल उद्देश्य मेरी समझ में आने लगा है।

इसके बाद फिर ज्ञान-दान की समस्या भी बड़ी विषय है। वास्तव में यह एक बड़ी जटिल समस्या है। सामारणतः हम लोग इसे जितना जनावश्यक समझते हैं, उतना ही यह उतनी जनावश्यक नहीं है। मैं तो इस सिद्धान्त पर आ पहुँचा हूँ कि मानकक दान-दान के बारे में हम लोग जिस बात पर खोर बैठे हैं वह एक बड़ी विचित्र बात है—वह शास्त्रानुमोदित नहीं है। तात्पर्य यह कि दान-दान में वास्तविक पवित्रता की अवसेहना करके ही हम लोग कष्ट पा रहे हैं। उन शास्त्रानुमोदित आहार प्रथा के वास्तविक समिप्राय को विस्तृत मूल गये हैं।

इसी प्रकार, और भी कई समस्याएँ हैं जिन्हें मैं तुम लोगों के समझ रखना चाहता हूँ और गाब ही यह बतलाना चाहता हूँ कि इन समस्याओं में समाधान क्या है तथा किस प्रकार इन समाधानों को कार्यरूप में परिणत किया जा सकता है। पर दुःख है समा के व्यवस्थित रूप में आरम्भ होने में देर हुई गयी और अब मैं तुम लोगों को और अपिष्ट नहीं रोहना चाहता। अतः जाति भेद तथा अस्याय्य समस्याओं पर मैं फिर भविष्य में कभी कुछ नहीं गा।

अप्य विषय पर बात और बढ़कर मैं आप्पारिभक तरय विषयक अपना बलप्य गमालन कर हूँगा। भारत में धर्म बना जिनों में गौर्दीन बना हुआ है। हम चाहते हैं कि उगास यदि गमाल हो। मैं चाहता हूँ कि प्रयोग मनुष्य के जीवन में धर्म प्रतिष्ठित हो। मैं चाहता हूँ कि प्राचीन भारत की तन्त्र राजभक्त के लेखक बलि के लोग तब गरीब गमाल बाद से धर्म का प्रयोग हो। धार रहे धर्म ही इस जाति का गमाल उगासविषयक एवं जगद्विद उगास है। इस धर्म को हर एक भाइयो के हृदयों में तब निरुधम बाध में बढ़वाना होगा। ईश्वर के राज्य में भिन्न प्रकार

वायु सबके लिए समान रूप से प्राप्त होती है, उसी प्रकार भारतवर्ष में धर्म को सुलभ बनाना होगा। भारत में इसी प्रकार का कार्य करना होगा। पर छोटे छोटे दल बाँध आपसी मतभेदों पर विवाद करते रहने से नहीं बनेगा, हमें तो उन बातों का प्रचार करना होगा, जिनमें हम सब सहमत हैं और तब आपसी मतभेद आप ही आप दूर हो जायेंगे। मैंने भारतवासियों से बारम्बार कहा है और अब भी कह रहा हूँ कि कमरे में यदि सैकड़ों वर्षों से अन्धकार फैला हुआ है, तो क्या 'घोर अन्धकार', 'भयकर अन्धकार' कहकर चिल्लाने से अन्धकार दूर हो जायगा? नहीं, रोशनी जला दो, फिर देखो कि अँधेरा आप ही आप दूर हो जाता है या नहीं। मनुष्य के सुधार का, उसके सस्कार का यही रहस्य है। उसके समक्ष उच्चतर बातें, उच्चतर प्रेरणाएँ रखो, पहले मनुष्य में, उसकी मनुष्यता में विश्वास रखो। ऐसा विश्वास लेकर क्यों प्रारम्भ करें कि मानव हीन और पतित है? मैं आज तक मनुष्य पर, बुरे से बुरे मनुष्य पर भी, विश्वास करके कभी विफल नहीं हुआ हूँ। जहाँ कहीं भी मैंने मानव में विश्वास किया, वहाँ मुझे इच्छित फल ही प्राप्त हुआ है—सर्वत्र सफलता ही मिली है, यद्यपि प्रारम्भ में सफलता के अच्छे लक्षण नहीं दिखायी देते थे। अतः, मनुष्य में विश्वास रखो, चाहे वह पंडित हो या घोर मूर्ख, साक्षात् देवता जान पड़े या मूर्तिमान शैतान, सबसे पहले मनुष्य में विश्वास रखो, और तदुपरान्त यह विश्वास लाने का प्रयत्न करो कि यदि उसमें दोष हैं, यदि वह गलतियाँ करता है, यदि वह अत्यन्त घृणित और असार सिद्धान्तों को अपनाता है तो वह अपने यथार्थ स्वभाव के कारण ऐसा नहीं करता, वरन् उच्चतर आदर्शों के अभाव में वैसा करता है। यदि कोई व्यक्ति अमत्य की ओर जाता है, तो उसका कारण यही समझो कि वह सत्य को ग्रहण नहीं कर पाता। अतः, मिथ्या को दूर करने का एकमात्र उपाय यही है कि उसे सत्य का ज्ञान कराया जाय। उसे सत्य का ज्ञान दे दो और उसके साथ अपने पूर्व मन के भाव की तुलना उसे करने दो। तुमने तो उसे सत्य का असली रूप दिखा दिया, वस यही तुम्हारा काम समाप्त हो गया। अब वह स्वयं उस सत्य के साथ अपने पूर्व भाव की तुलना करके देखे। यदि तुमने वास्तव में उसे सत्य का ज्ञान करा दिया है तो निश्चय जानो, मिथ्या भाव अवश्य दूर हो जायगा। प्रकाश कभी अन्धकार का नाश किये बिना नहीं रह सकता। सत्य अवश्य ही उसके भीतर के सद्भावों को प्रकाशित करेगा। यदि सारे देश का आध्यात्मिक सस्कार करना चाहते हों, तो उसके लिए यही रास्ता है—'नान्य पन्था'। वाद-विवाद या लड़ाई-झगड़ों में कभी अच्छा फल नहीं हो सकता। लोगों से यह भी कहने की आवश्यकता नहीं कि तुम लोग जो कुछ कर रहे हो, वह ठीक नहीं है, खराब है। जो कुछ अच्छा है, उसे उनके सामने रख दो, फिर देखो, वे कितने आग्रह के साथ उसे ग्रहण करते

हैं और फिर देखोगे कि मनुष्य मात्र में जो अविनाशी ईश्वरीय शक्ति है, वह जाग्रत हो जाती है और जो कुछ उत्तम है, जो कुछ महिमाय है उसे ग्रहण करने के लिए हाथ फेंका देती है।

जो हमारी समग्र जाति का सप्टा पाञ्चक एवं रक्षक है, हमारे पूर्वजों का ईश्वर है भग्ये ही वह विष्णु, शिव शक्ति या गणेश आदि नामों से पुकारा जाता हो सगुण या निर्गुण बनना साकार या निरकार रूप से उसको उपासना की जाती हो जिसे जानकर हमारे पूर्वज एक सखिमा बहुधा बहन्ति कह गये हैं वह अपनी अनस्त प्रेम-शक्ति के साथ हममें प्रवेश कर, अपने क्षुमाधीनियों की हम पर बर्पा करे, हमें एक दूसरे को समझने की सामर्थ्य दे जिससे हम परार्थ प्रेम के साथ सत्य के प्रति तीव्र अनुराग के साथ एक दूसरे के हित के लिए कार्य कर सके जिससे भारत के आध्यात्मिक पुनर्निर्माण के इस महत्कार्य में हमारे अन्तर अपने व्यक्तिगत नाम यद्यपि व्यक्तिगत स्वार्थ व्यक्तिगत बहुप्यन की वासना के अक्षुर न फूटें।

## भक्ति

[लाहौर में ९ नवम्बर, १८९७ को दिया हुआ भाषण]

समस्त उपनिषदों के गम्भीर निनादी प्रवाह के अतराल से, बड़ी दूर से आने-वाली प्रतिध्वनि की तरह, एक शब्द हमारे कानों तक पहुँचता है। यद्यपि उसके आयतन और उच्चता में उसकी बहुत कुछ वृद्धि हुई है, पर समग्र वेदान्त साहित्य में, स्पष्ट होने पर भी वह उतना प्रबल नहीं है। उपनिषदों का प्रधान उद्देश्य हमारे आगे भूमा का भाव और चित्र अंकित करना ही जान पड़ता है। फिर भी इस अपूर्व उदात्त भाव के पीछे कहीं कहीं हमें कवित्व का भी आभास मिलता है, जैसे हम पढ़ते हैं

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम् ।

नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ॥

(कठोपनिषद् २।२।१५)

—‘वहाँ सूर्य प्रकाश नहीं करता, चन्द्र और सितारे भी वहाँ नहीं हैं, ये विजलियाँ भी वहाँ नहीं चमकती, फिर इस भौतिक अग्नि का तो कहना ही क्या है!’ इन दोनों अद्भुत पक्तियों का अपूर्व हृदयस्पर्शी कवित्व सुनते सुनते हम मानो इस इन्द्रियगम्य जगत् से—यहाँ तक कि बुद्धि-जगत् से भी दूर, बहुत दूर, ऐसे एक जगत् में जा पहुँचते हैं जिसे किसी काल में ज्ञान का विषय नहीं बनाया जा सकता, यद्यपि वह सदा हमारे पास ही मौजूद रहता है। इसी महान् भाव की छाया की तरह उसका अनुगामी एक और महान् भाव है, जिसको मानव जाति और भी आसानी के साथ प्राप्त कर सकती है, जो मनुष्य के दैनिक जीवन में अनुसरण करने के अधिक उपयुक्त है, और जिसे मानव जीवन के प्रत्येक विभाग में प्रविष्ट कराया जा सकता है। वह क्रमशः पुष्ट होता आया है और परवर्ती युगों में पुराणों में और भी पूर्णता के साथ, और भी स्पष्ट भाषा में व्यक्त किया गया है—और वह है भक्ति का आदर्श। भक्ति का बीज पहले से ही विद्यमान है, संहिताओं में भी इसका थोड़ा बहुत परिचय मिलता है, उससे कुछ अधिक विकास उपनिषदों में देखने में आता है, किन्तु पुराणों में उसका विस्तृत निरूपण दिखायी देता है।

अतः भक्ति को भली भाँति समझने के लिए हमें अपने पुराणों को समझना

होगा। इस बीच पुराणों की प्रामाणिकता को लेकर बहुत कुछ बाद-विचार हो चुका है, किन्तु ही अनिश्चित और अस्पष्ट अर्थों को लेकर आलोचना-प्रत्यालोचना हो चुकी है, किन्तु ही समालोचकों ने कई अंशों के विषय में यह दिखाया है कि वर्तमान विज्ञान के आलोक में बैठकर नहीं सकते जादि जादि। परन्तु इन बाद-विचारों को छोड़ देने पर, पौराणिक उक्तियों के वैज्ञानिक भौतिक और ज्योतिषिक सत्यासत्य का निर्णय करना छोड़ देने पर, तथा प्रायः सभी पुराणों का आरम्भ से अन्त तक मधी मोधि निरीक्षण करने पर हमें एक उत्तम निश्चित और स्पष्ट रूप से दिखायी देता है, वह है भक्तिवाद। साधु, महात्मा और राजर्षियों के चरित का वर्णन करते हुए भक्तिवाद बारम्बार उल्लिखित उदाहरण और आलोचित हुआ है। सौन्दर्य के महान् आदर्श क—भक्ति के आदर्श के दृष्टान्तों की समझना और वर्णना ही सब पुराणों का प्रधान उद्देश्य जान पड़ता है। मैंने पहले ही कहा है कि यह आदर्श साधारण मनुष्यों के लिए अधिकतर उपयोगी है। ऐसे लोग बहुत कम हैं जो वेदान्तालोक की पूर्ण छटा का बीज समझ सकते हैं। जबकि उसका बोधित आरंभ कर सकते हैं—उसके तत्त्वों पर अमल करना बड़ी दूर की बात है। क्योंकि वास्तविक वेदान्ती का सबसे पहला काम है जमी जबदि निर्भीक होना। यदि कोई वेदान्ती होने का दावा करता हो तो उसे अपने हृदय से मय को सदा के लिए निर्वासित कर देना होना। और हम जानते हैं कि ऐसा करना कितना कठिन है। जिन्होंने संसार के सब प्रकार के लगाव छोड़ दिये हैं और जिनके ऐसे बन्धन बहुत ही कम रहे हैं जो उन्हें दुर्बल हृदय कापुंस्य बना सकते हैं वे भी मन ही मन इस बात को अनुभव करते हैं कि वे समय समय पर कितने दुर्बल और जैसे निर्भीक हो जाते हैं। जिन लोगों के चारों ओर ऐसे बन्धन हैं जो भीतर-बाहर सर्वत्र हथारों विषयों में उत्तम हुए हैं जीवन में प्रत्येक क्षण विषयों का बाधत्व जिन्हें नीचे से नीचे छिये जा रहा है वे कितने दुर्बल होते हैं क्या यह भी कहना होना? हमारे पुराण ऐसे ही लोगों को भक्ति का अत्यन्त मनोहारी उद्देश्य देते हैं।

सम लोगों के लिए ही सुकोमल और कवित्वमय भावों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। मृग प्रह्लाद तथा अश्वाम्य वीरुओं हथारों सत्तों की बहुमुन और अनोखी जीवन-कथाएँ बर्णित की गयी हैं। इन दृष्टान्तों का उद्देश्य यही है कि लोग जसी भक्ति का अपने अपने जीवन में बिठाव करें और उन्हें इन दृष्टान्तों द्वारा रास्ता साफ दिखायी दे। तुम लोग पुराणों की वैज्ञानिक सत्यता पर विरवाह करो या न करो पर तुम लोगों में ऐसा कोई भी आदमी नहीं है जिस पर प्रह्लाद मृग या इन पौराणिक सत्तों के आख्यानों में से किसी एक का कुछ भी अंतर न

पडा हो। और यह भी नहीं कहा जा सकता कि इन पुराणों की उपयोगिता केवल आजकल के जमाने में ही है, पहले नहीं थी। पुराणों के प्रति हमारे कृतज्ञ रहने का एक और कारण यह भी है कि पिछले युग में अवनत बौद्ध धर्म हमें जिस राह से ले चल रहा था, पुराणों ने उसकी अपेक्षा प्रशस्ततर, उन्नततर और सर्वसाधारण के उपयुक्त धर्म-मार्ग बताया। भक्ति का सहज और सरल भाव सुबोध भाषा में व्यक्त अवश्य किया गया है, पर उतने से ही काम नहीं चलेगा। हमें अपने दैनिक जीवन में उस भाव का व्यवहार करना होगा। ऐसा करने से हम देखेंगे कि भक्ति का वही भाव क्रमशः परिस्फुट होकर अन्त में प्रेम का सारभूत बन जाता है। जब तक व्यक्तिगत और जड़ वस्तुओं के प्रति प्रीति रहेगी, तब तक कोई पुराणों के उपदेशों से आगे न बढ़ सकेगा। जब तक दूसरों की सहायता अपेक्षित रहेगी, अथवा दूसरों पर निर्भर किया जायगा, जब तक यह मानवीय दुर्बलता बनी रहेगी, तब तक ये पुराण भी किसी न किसी रूप में मौजूद रहेंगे। तुम उन पुराणों के नाम बदल सकते हो, उनकी निन्दा कर सकते हो, पर तुमको दूसरे कुछ नये पुराण बना लेने ही पड़ेंगे। अगर हम लोगों में किसी ऐसे महापुरुष का आविर्भाव हो जो इन पुराणों को ग्रहण करना अस्वीकार कर दे, तो तुम देखोगे कि उनके देहान्त हो जाने के बीस ही वर्ष बाद उनके शिष्यों ने उनके जीवन के आधार पर एक नया पुराण रच डाला है। वस यही अन्तर होगा।

मनुष्य की प्रकृति यही चाहती है, उसके लिए ये आवश्यक हैं। पुराणों की आवश्यकता केवल उन्हीं लोगों को नहीं है जो सारी मानवीय दुर्बलताओं के परे होकर परमहोसोचित निर्भीकता प्राप्त कर चुके हैं, जिन्होंने माया के सारे बन्धन काट डाले हैं, यहाँ तक कि स्वाभाविक अभावों तक को भी पार कर गये हैं जो सब कुछ जीत चुके हैं और जो इस लोक में देवता हैं, केवल ऐसे महापुरुषों को ही पुराणों की आवश्यकता नहीं है। सगुण रूप में ईश्वर की उपासना किये बिना साधारण मनुष्य का काम नहीं चल सकता। यदि वह प्रकृति के मध्य स्थित भगवान् की पूजा नहीं करता, तो उसे स्त्री, पुत्र, पिता, भाई, आचार्य या किसी न किसी व्यक्ति को भगवान् के स्थान पर प्रतिष्ठित करके उसकी पूजा करनी पड़ती है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को ऐसा करने की अधिक आवश्यकता पड़ती है। प्रकाश का स्पन्दन सर्वत्र रहता है। विल्ली या उसी श्रेणी के अन्य जानवरों के अँधेरे में भी देख पाते हैं। इसी बात से प्रकाश का स्पन्दन अन्धकार में होना भी सिद्ध होता है। परन्तु हम यदि किसी चीज़ को देखना चाहते हैं, तो उस चीज़ में उसी स्तर के अनुकूल स्पन्दन होना चाहिए, जिस स्तर में हम लोग मौजूद हैं। मतलब यह कि हम एक निर्गुण, निराकार सत्ता के विषय में बातचीत या चर्चा भले ही करें, पर जब तक

हम सोच इस मर्त्यलोक के साधारण मनुष्य की स्थिति में खूबि तब तक हमें मनुष्यों में ही मयवान् को देखना पड़ेगा। इसीलिये हमारी मयवान् विषयक धारणा एवं उपासना स्वभावतः मानवी है। सबभूत ही 'यह शरीर मयवान् का सबसे ठ मन्दिर है। इसीसे हम देखते हैं कि पुर्णों से मनुष्य मनुष्य की ही उपासना कर्ता जा रहा है। लोगों का इस मनुष्योपासना के विषय में जब कभी स्वाभाविक रूप से विकसित अभिप्राय देखने में आता है, तो उनकी निम्ना या आलोचना भी होती है। फिर भी हमें यह विद्यायी देता है कि इसकी रीढ़ काड़ी मयबूत है। ऊपर की शाखा-प्रधाबाएँ मके ही करी आलोचना के योग्य हैं पर उनकी जड़ बहुत ही गहरी तक पहुँची हुई और सुदृढ़ है। ऊपरी भागम्बरों के होने पर भी उसमें एक सार-तत्त्व है। मैं तुमसे यह कहना नहीं चाहता कि तुम बिना समझे कूने किन्हीं पुरानी कथानों बचवा नवीनतमिक अनर्थक सिद्धान्ता को पबरबस्तो गळे के नीचे उतार आओ। पुर्णाम्बरस कई पुराणों में बामावापी व्याख्याएँ प्रवेश पायी हैं। मैं यह नहीं चाहता कि तुम उन सब पर विश्वास करो। मैं ऐसा करने को नहीं कह सकता बल्कि मेरा मतलब यह है कि इन पुराणों के अस्तित्व की रक्षा का कारण एक सार-तत्त्व है जिसे कल्प नहीं होने देना चाहिए। और यह सार-तत्त्व है उनमें निहित मक्ति सम्प्रत्नी उपदेश बर्म को मनुष्य के दैनिक जीवन में परिणत करना बर्धनों के उन्नाकाश में विचरण करनेवासे बर्म को साधारण मनुष्यों के लिए दैनिक जीवनोपयोगी एवं व्यावहारिक बनाना।

### ट्रिम्पून' में प्रकाशित रिपोर्ट

इस धायन की जो रिपोर्ट 'ट्रिम्पून' में प्रकाशित हुई उसका विवरण निम्न लिखित है

बकता महोदय ने भक्ति की साधना में प्रतीक-भक्तिमार्थों को उपबोधिता वा समर्पन किया और उन्होंने कहा कि मनुष्य इस समय अति अवस्था में है, ईश्वरेच्छा से यदि ऐसी अवस्था न होती तो बड़ा अच्छा होता। परन्तु विद्यमान तप्य का प्रतिपाद स्थान है। मनुष्य वैतन्य और आध्यात्मिकता आदि विषयों पर चाहे जितनी बातें क्यों न बनाये पर वास्तव में वह अभी पड़मानागत ही है। ऐसे जड़ मनुष्य को हाथ पकड़कर धीरे धीरे उठाना होगा—तब तक उठाना होगा जब तक वह वैतन्यमय सम्पूर्ण आध्यात्मिक आधापय न हो जाय। आजकल के जमाने में ९९ छोटी छोटी ऐसे आदमी हैं जिनके लिए आध्यात्मिकता को समझना कठिन है। जो प्रेरक शक्तियाँ हमें उपेक्षकर जाने बड़ा रही हैं, तथा हम जो कर्म प्राप्त करता जाहने हैं वे सभी जड़ हैं। हर्ष स्वेत्तर के शब्दों में देता बटना है कि इन

केवल उसी रास्ते से आगे बढ़ सकते हैं, जो अल्पतम प्रतिरोध का हो। और पुराण-प्रणेताओं को यह बात भली भाँति मालूम थी, तभी वे हमारे लिए ऐसी पद्धति बता गये हैं। इस प्रकार के कार्य में पुराणों को विस्मयजनक और वेजोड सफलता मिली है। भक्ति का आदर्श अवश्य ही आध्यात्मिक है, पर उसका रास्ता जड़ वस्तु के भीतर से होकर है और इस रास्ते के सिवा दूसरा रास्ता भी नहीं है। अतः, जड़ जगत् में जो कुछ ऐसा है, जो आध्यात्मिकता प्राप्त करने में हमारी सहायता कर सकता है, उसे ग्रहण करना होगा, और उसे इस तरह काम में लाना होगा कि मानव क्रमशः आगे बढ़ता हुआ पूर्ण आध्यात्मिक स्थिति में विकसित हो सके। शास्त्र आरम्भ से ही लिंग, जाति या धर्म का भेदभाव छोड़कर सबको वेद-पाठ करने का अधिकार प्रदान करते हैं। हमें भी इसी तरह उदार होना चाहिए। यदि मनुष्य जड़ मन्दिर बनाकर भगवान् में प्रीति कर सके तो अच्छा ही है। यदि भगवान् की मूर्ति बनाकर इस प्रेम के आदर्श पर पहुँचने में मनुष्य को कुछ भी सहायता मिलती है तो उसे एक ही जगह बीस मूर्तियाँ पूजने दो। चाहे कोई भी काम क्यों न हो, यदि उसके द्वारा धर्म के उस उच्चतम आदर्श पर पहुँचने में सहायता मिलती हो तो उसे वह अबाध गति से करने दो, पर हाँ, वह काम नैतिकता के विरुद्ध न हो। 'नैतिकता के विरुद्ध न हो', ऐसा इसलिए कहा गया कि नैतिकता विरोधी काम हमारे धर्म-मार्ग के सहायक नहीं होते, बल्कि विघ्न ही उपस्थित किया करते हैं।

स्वामी जी ने मूर्ति-पूजा के विरोध की समीक्षा करते हुए कहा कि भारतवर्ष में सर्वप्रथम कबीर ने ही ईश्वरोपासना के लिए मूर्ति का व्यवहार करने के विरुद्ध आवाज उठायी थी। परन्तु भारत में ऐसे कितने ही बड़े बड़े दार्शनिक और धर्म-संस्थापक हुए हैं, जिन्होंने भगवान् का सगुण रूप अस्वीकार कर निर्भीकता के साथ अपने निर्गुण मत का प्रचार करने पर भी मूर्ति-पूजा की निन्दा नहीं की। हाँ, उन्होंने मूर्ति-पूजा को उच्चकोटि की उपासना नहीं माना है, और न किसी पुराण में ही मूर्ति-पूजन को ऊँचे दर्जे की उपासना ठहराया गया है।

यहूदियों के मूर्ति-पूजन के इतिहास का जिक्र करते हुए स्वामी जी ने कहा कि जिहोवा एक सन्दूक के भीतर रहते हैं, ऐसा विश्वास करनेवाले यहूदी लोग भी मूर्तिपूजक ही थे। इस ऐतिहासिक दृष्टान्त के उपस्थित रहते हमें मूर्ति-पूजा की इसलिए निन्दा नहीं करनी चाहिए कि और लोग उसे दोषपूर्ण बताते हैं। मूर्ति या किसी और भी जड़ वस्तु के प्रतीक को, जो मनुष्य को धर्म की प्राप्ति में सहायता करे, बिना सकोच ग्रहण करना चाहिए। पर हमारा कोई भी धर्मग्रन्थ ऐसा नहीं है, जो स्पष्ट शब्दों में यह नहीं कहता कि जड़ वस्तु की सहायता से अनुष्ठित होने-वाली उपासना निकृष्ट श्रेणी की है। सारे भारतवर्ष के सब लोगों को बलपूर्वक



ही प्रकाशित होते हैं, इसलिये वे सभी एक ही प्रकार या एक ही श्रेणी के हैं। जिस तरह दूर और पास से फोटोग्राफ लेने पर एक ही सूर्य का चित्र अनेक प्रकार से बीज पड़ता है और ऐसा माकूम होता है कि प्रत्येक चित्र भिन्न भिन्न सूर्यों का है, उसी तरह सापेक्ष सत्य के विषय में भी समझना चाहिए। सभी सापेक्ष सत्य निरपेक्ष सत्य के साथ ठीक इसी रीति से सम्बन्ध हैं। अतएव प्रत्येक सापेक्ष सत्य या धर्म उसी निरपेक्ष सत्य का आभास होने के कारण सत्य है।

‘विश्वास ही धर्म का मूल है’—मेरे इस कथन पर स्वामी जी ने मुसकराकर कहा “राजा होने पर फिर खाने-पीने का कष्ट नहीं रहता किन्तु राजा होना ही तो कठिन है। क्या विश्वास कभी बार-बारबस्ती करने से होता है? बिना अनुभव के ठीक ठीक विश्वास होना सम्भव है।

किसी प्रसंग में उनको ‘साधु’ कहने पर उन्होंने उत्तर दिया ‘हम जोय क्या साधु हैं? ऐसे अनेक साधु हैं, जिनके दर्शन या स्पर्श मात्र से ही विष्व ज्ञान का उदय होता है।

‘संस्थाही इस प्रकार आकषी होकर क्यों समय बिताते हैं? दूसरों की सहायता के ऊपर क्यों निर्भर रहते हैं और समाज के लिये कोई हितकर काम क्यों नहीं करते? —इन सब प्रश्नों के उत्तर में स्वामी जी बोले “बच्चा बतानी तो मक्का तुम इतने कष्ट से मर्चोपार्जन कर रहे हो। उसका बहुत बोझ सा जब केवक अपने लिए व्यय करते हो। खेप में से कुछ बँस दूसरे लोगों के लिए, जिन्हें तुम अपना समझते हो, व्यय करते हो। वे भीम उसके लिये न तुम्हारा उपकार मानते हैं और न उनक लिये जितना व्यय करते हो उससे सन्तुष्ट ही होते हैं। रकम तुम कौड़ी कौड़ी जोड़े जा रहे हो। तुम्हारे मर जाने पर कोई धूमरा उसका मोम करेगा और ही सकता है, यह कहकर यामी जी ने कि तुम अधिक श्रमा नहीं रख मये। ऐसा तो गया-मुजरा तुम्हारा हाल है। और मैं तो बेगा कुछ भी नहीं करता। भूत कर्मन पर पैठ पर हाथ रखकर, हाथ को मुँह के पास से जाकर लियता देता हूँ जो पाता हूँ या सिता हूँ कुछ भी कष्ट नहीं उठाता कुछ भी संघर्ष नहीं करता। हम बालों में कौन बुद्धिमान है?—तुम या मैं।” मैं तो मुनकर बचाक रह गया। इसके पहले मैंने अपने सामने किमीको भी इस प्रकार स्पष्ट रूप से बोलने का साहस करते नहीं देगा था।

साहार आदि करके कुछ विधाय कर बुरुने के बाद फिर उन्ही कबील महात्मय के निराश-स्थान कर गया। वहाँ अनेक प्रकार के वातावरण और धर्मा चलने लगी। लमनन भी सब राज की स्वामी जी की लेकर मैं अपने निवाग-स्थान की ओर

लौटा। आते आते मैंने कहा, “स्वामी जी, आपको आज तर्क-वितर्क में बहुत कष्ट हुआ।”

वे बोले, “वच्चा, तुम लोग तो ठहरे उपयोगितावादी (utilitarian)। यदि मैं चुप होकर बैठा रहूँ, तो क्या तुम लोग मुझे एक मुट्ठी भी खाने को दोगे। मैं इस प्रकार अनवरत वकता हूँ, लोगों को सुनकर आनन्द होता है, इसीलिए वे दल के दल आते हैं। किन्तु यह जान लो, जो लोग सभा में तर्क-वितर्क करते हैं, अनेक प्रश्न पूछते हैं, वे वास्तविक सत्य को समझने की इच्छा से वैसा नहीं करते। मैं भी समझ जाता हूँ, कौन किस भाव से क्या कह रहा है और उसे उसी तरह उत्तर देता हूँ।”

मैंने स्वामी जी से पूछा, “अच्छा स्वामी जी, सभी प्रश्नों के इस प्रकार उत्तम उत्तम उत्तर आप तुरन्त किस प्रकार दे लेते हैं?”

वे बोले, “ये सब प्रश्न तुम्हारे लिए नवीन हैं, किन्तु मुझसे तो कितने ही मनुष्य कितनी बार इन प्रश्नों को पूछ चुके हैं, और उनका उत्तर कितनी ही बार दे चुका हूँ।” रात में भोजन करते समय और भी अनेक बातें उन्होंने कही। पैसा न छूते हुए देश-भ्रमण करते करते कहीं कौसी कौसी घटनाएँ हुईं, यह सब वर्णन करने लगे। सुनते सुनते मेरे मन में हुआ—अहा! न जाने इन्होंने कितना कष्ट, कितनी विपत्तियाँ सही हैं। किन्तु वे तो उन सब घटनाओं को इस प्रकार हँसते हँसते सुनाने लगे, मानो वे अत्यन्त मनोरंजक कहानियाँ हो। कही पर उनका तीन दिन तक बिना कुछ खाये रहना, किसी स्थान में मिर्चा खाने के कारण पेट में ऐसी जलन होना, जो एक कटोरी इमली का पना पीने पर भी शान्त नहीं हुई, कही पर ‘यहाँ साधु-सन्यासियों को स्थान नहीं’—इस प्रकार झिड़के जाना, और कही खुफिया पुलिस की कड़ी नज़र में रहना—आदि सब घटनाएँ, जिन्हे सुनकर हमारे शरीर का खून पानी हो जाय, उनके लिए तो मानो एक तमाशा थी।

रात अधिक हुई देखकर उनके लिए सोने का प्रबन्ध कर मैं भी सोने के लिए चला गया, किन्तु रात में नीद नहीं आयी। सोचने लगा—कौसा आश्चर्य, इतने वर्षों का दृढ़ सन्देह और अविश्वास स्वामी जी को देखकर और उनकी दो-चार बातें सुनकर ही दूर हो गया। अब और कुछ पूछने को नहीं रहा। जैसे जैसे दिन बीतने लगे, हमारी ही क्या—हमारे नौकर-चाकरों की भी उनके प्रति इतनी श्रद्धा-भक्ति हो गयी कि कभी कभी स्वामी जी उन लोगों की सेवा और आग्रह के मारे परेशान हो उठते थे।

२० अक्तूबर, १८९२ ई०। सबेरे उठकर स्वामी जी को प्रणाम किया। इस समय साहस कुछ बढ़ गया है, श्रद्धा-भक्ति भी हुई है। स्वामी जी भी मुझसे

अनेक वन नहीं बरम्भ भाबि का बिबरन सुनकर सन्तुष्ट हुए हैं। इस सहर में आज उनका चौथा दिन है। पाँचवें दिन उन्होंने कहा 'संन्यासियों को नगर में तीन दिन से बीर जीव में एक दिन से अधिक ठहरना उचित नहीं। मैं अब पत्नी बना जाना चाहता हूँ।' परन्तु मैं किसी प्रकार उनकी यह बात मानने को राजी न था। बिना ठर्क द्वारा समझे मैं कैसे मानूँ! फिर अनेक बार-बिबाब के बाद वे बोले 'एक स्थान में अधिक दिन रहने पर माया-ममता बढ़ जाती है। हम लोगों ने नर बीर आत्मीय जनों का परिव्राम किया है। अतः जिन भावों से उस प्रकार की माया में मुग्ध होने की सम्भावना है उनसे दूर रहना ही हम लोगों के लिए अच्छा है।

मैंने कहा 'आप कभी भी मुग्ध होनेवाले नहीं हैं। अन्त में मेरा बतिसय आपसे बेसकर बीर जी बो-बार दिन ठहरना उन्होंने स्वीकार कर लिया। इस बीच मेरे मन में हुआ यदि स्वायी भी सर्वसाधारण के लिए व्याख्यान में तो हम लोग भी उनका व्याख्यान सुनने और पुस्तकों का भी कस्याव होगा। मैंने इसके लिए बहुत अनुरोध किया किन्तु व्याख्यान देने पर सायब नाम-यस की स्तुति बन उठे, ऐसा कहकर उन्होंने मेरे अनुरोध को किसी भी तरह नहीं माना। पर उन्होंने यह भी बात मुझे बतायी कि उन्हें समा में प्रश्नों का उत्तर देने में कोई आपत्ति नहीं है।

एक दिन बातचीत के सिद्धसिद्धे में स्वामी जी 'पिकनिक पेपर्स' (Pickwick Papers) के दो-तीन पृष्ठ कण्ठस्थ बोल गये। मैंने उस पुस्तक को अनेक बार पढ़ा है। समझ गया—उन्होंने पुस्तक के किस स्थान से आशुति की है। सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। सीधने क्या—संन्यासी होकर सामाजिक ग्रन्थ में से इन्होंने इतना कैसे कण्ठस्थ किया! ही न ही इन्होंने पहले इस पुस्तक को अनेक बार पढ़ा है। पूछने पर उन्होंने कहा 'दो बार पढ़ा है। एक बार स्कूल में पढ़ने के समय और दूसरी बार आज से पाँच-छ मास पहले।

आश्चर्यचकित होकर मैंने पूछा 'फिर आपको किस प्रकार यह स्मरण रहा? और हम लोगों को क्यों नहीं रहता?

स्वामी जी ने उत्तर दिया "एकप्र मग से पढ़ना चाहिए और बाध के सार भाग द्वारा निर्मित शीर्ष का नाश न करके उसका अधिकाधिक परिपक्व (assimilation) कर लेना चाहिए।

और एक दिन की बात है। स्वामी जी दोपहर में बिछीने पर लेटे हुए एक पुस्तक पढ़ रहे थे। मैं दूसरे कमरे में था। एकाएक स्वामी जी हटने और से हँस पड़े कि क्या ही क्या सीधकर मैं उनके कमरे के दरवाजे के पास जाकर लड़ा

हो गया। देखा, बात कोई विशेष नहीं है। वे जैसे पुस्तक पढ़ रहे थे, वैसे ही पढ़ रहे हैं। लगभग पन्द्रह मिनट खड़ा रहा, तो भी उनका ध्यान मेरी ओर नहीं गया। पुस्तक छोड़कर उनका ध्यान किसी दूसरी ओर नहीं था। कुछ देर बाद मुझे देखकर अन्दर आने के लिए कहा, और मैं इतनी देर से खड़ा हूँ, यह सुनकर बोले, “जब जो काम करना हो, तब उसे पूरी लगन और शक्ति के साथ करना चाहिए। गाजीपुर के पवहागी बाबा ध्यान, जप, पूजा-पाठ जिस प्रकार एकचित्त से करते थे, उसी प्रकार वे अपने पीतल के लोटे को भी एकचित्त से माँजते थे। ऐसा माँजते थे कि सोने के समान चमकने लगता था।”

एक बार मैंने स्वामी जी से पूछा, “स्वामी जी, चोरी करना पाप क्यों है? सभी धर्म चोरी करने का निषेध क्यों करते हैं? मेरे विचार में तो ‘यह मेरा है’, ‘यह दूसरे का’—ये सब भावनाएँ केवल कल्पना मात्र हैं। मुझसे बिना पूछे ही जब कोई मेरा आत्मीय वस्तु मेरी किसी वस्तु का व्यवहार करता है, तो वह चोरी क्यों नहीं कहलाती? और पशु-पक्षी आदि जब हमारी कोई वस्तु नष्ट कर देते हैं, तो हम उसे चोरी क्यों नहीं कहते?”

स्वामी जी ने कहा, “हाँ, ऐसी कोई वस्तु या कार्य नहीं है, जो सभी अवस्था में और सभी समय बुरा और पाप कहा जा सके। फिर दूसरी ओर, अवस्था-भेद से प्रत्येक वस्तु ही बुरी और प्रत्येक कार्य ही पाप कहा जा सकता है। फिर भी, जिससे दूसरे को किसी प्रकार का कष्ट हो एव जिसके आचरण से शारीरिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक किसी प्रकार की दुर्बलता आये, उस कर्म को नहीं करना चाहिए, वह पाप है, और उससे विपरीत कर्म ही पुण्य है। सोचो, तुम्हारी कोई वस्तु किसीने चुरा ली, तो तुम्हें दुःख होगा या नहीं? तुम्हें जैसा लगता है, वैसा ही सम्पूर्ण जगत् के बारे में भी समझो। इस दो दिन की दुनिया में जब किसी छोटी वस्तु के लिए तुम एक प्राणी को दुःख दे सकते हो, तो धीरे धीरे भविष्य में क्या बुरा काम नहीं कर सकोगे? फिर, यदि पाप-पुण्य न रहे, तो समाज ही न चले। समाज में रहने पर उसके नियम आदि पालन करने पड़ते हैं। वन में जाकर नगे होकर नाचो—कोई कुछ न कहेगा, किन्तु शहर में इस प्रकार का आचरण करने पर पुलिस द्वारा तुम्हें पकड़वाकर किसी निर्जन स्थान में बन्द रख देना ही उचित होगा।”

स्वामी जी कई बार हास-परिहास के भीतर से विशेष शिक्षा दिया करते थे। वे गुरु होते हुए भी, उनके पास बैठना मास्टर के पास बैठने के समान नहीं था। अभी खूब रग-रस चल रहा है, बालक के समान हँसते हँसते हँसी के वहाने कितनी ही बातें कहे जा रहे हैं, सभी लोगो को हँसा रहे हैं, और दूसरे

ही क्षण ऐसे गम्भीर होकर अटिष्ठ प्रश्नों की व्याख्या करना आरम्भ कर देते हैं कि उपस्थित सभी लोग विस्मित होकर सोचने लगते हैं, 'इसके भीतर इतनी शक्ति! अभी तो बस रहे थे कि ये हमारे ही समान एक व्यक्ति हैं।'

छोम सभी समय उनके पास घिझा झेन के लिए आते। उनका द्वार सभी समय खुला रहता। दर्शनार्थियों में से अनेक भिन्न भिन्न उद्देश्य से भी आते—कोई उनकी परीक्षा लेने के लिए, तो कोई भजेदार वाद्य सुनने के लिए, कोई इसलिए कि उनके पास ज्ञान से बड़े बड़े पनी लोगों से बातचीत हो सकेगी, और कोई संसार-त्याग से अर्बरित होकर उनके पास शो पड़ी शीतल होने एवं ज्ञान और धर्म का छात्र करने के लिए। किन्तु उनकी ऐसी अप्सुत क्षमता थी कि कोई किसी भाव से क्यों न आये उसे उसी क्षण समझ आते थे और उसके साथ उसी तरह व्यवहार करते थे। उनकी मर्मभेदी दृष्टि से किसीके लिए अपना या कुछ छियाकर रखना सम्भव नहीं था। एक समय किसी प्रतिष्ठित पनी का एकमात्र पुत्र विश्वविद्यालय की परीक्षा से बचने के लिए स्वामी जी के निकट आरम्भ करने लगा और साधु होकर ऐसा भाव प्रकाशित करने लगा। वह मेरे एक मित्र का पुत्र था। मैंने स्वामी जी से पूछा 'यह लड़का आपके पास किस मरुत्त से इतना अधिक आता-जाता है? उसे क्या आप संन्यासी होने का उपदेश देंगे? उराना आप मेरा मित्र हैं।'

स्वामी जी ने कहा 'वह केवल परीक्षा के मय से साधु होता जाइता है। मैं उससे कहा है एम ए पास कर चुकने के बाद साधु होने के लिए जाना साधु होने की अपेक्षा एम ए पास करना कहीं सरल है।'

स्वामी जी जितने दिन मेरे यहाँ ठहरे, प्रत्येक दिन सन्ध्या समय उनका वार्तालाप सुनने के लिए इतनी अधिक संख्या में लोगों का आगमन होता था माना कोई समाजकी ही। इसी समय एक दिन मेरे निवास-स्थान पर, एक चम्बन के बूझ के नीचे लकिया के सहारे बैठकर उन्होंने या बात कही थी उन्हें आश्चर्य न भूझ सकूँगा। उस प्रसंग की उठान में बहुत सी बातें कहनी होंगी। इसलिए उसे दूसरे समय के लिए ही रख छोड़ना युक्तिसंगत है। इस समय और एक अपनी बात कहूँगा। कुछ समय पहले से मेरी पत्नी की दृष्टि किसी बुद्ध से मन्व-सीसा करने की थी। मुझे उमरमं आपत्ति नहीं थी। उस समय मैं उससे कहा था "ऐसे व्यक्ति को मुझ बताना जिसकी मरिा मैं भी कर सकूँ। गुरु के घर में प्रवेश करते ही यदि तुममें अन्धका भाव जा जाय तो तुम्हें किसी प्रकार का आनन्द का उर नार नहीं हीगा। यदि किसी सत्युत्त को बुद्ध रूप में पाऊँगा तो हम दोनों साथ ही दीक्षा-मन्त्र लेने आगवा नहीं। इस बात को उमन भी स्वीकार किया।

स्वामी जी के आगमन के बाद मैंने उससे पूछा, "यदि ये सन्यासी तुम्हारे गुरु हो, तो तुम उनकी शिष्या हो सकती हो?"

वह उन्कण्ठा से बोली, "क्या वे गुरु होंगे? हानि से तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगी।"

स्वामी जी से एक दिन डरते डरते मैंने पूछा, "स्वामी जी, मेरी एक प्रार्थना पूर्ण करेंगे?" स्वामी जी ने पूछा, "कहो, क्या कहना है?" तब मैंने उनमें अनुरोध-पूर्वक कहा, "आप हम दोनों को दीक्षा दें।"

वे बोले, "गृहस्थ के लिए गृहस्थ गुरु ही ठीक है। गुरु होना बहुत कठिन है। शिष्य का समस्त भार ग्रहण करना पड़ता है। दीक्षा के पहले गुरु के साथ शिष्य का कम से कम तीन बार साक्षात्कार होना आवश्यक है।" इस प्रकार स्वामी जी ने मुझे टालने की चेष्टा की। जब उन्होंने देखा कि मैं किसी भी तरह माननेवाला नहीं, तो अन्त में उन्हें स्वीकृति देनी ही पड़ी और २५ अक्तूबर, १८९२ ई० को उन्होंने हम दोनों को दीक्षा दी। इस समय मेरी प्रबल इच्छा हुई कि स्वामी जी का फोटो खिंचवाऊँ। परन्तु इसके लिए वे शीघ्र राजी नहीं हुए। अन्त में बहुत वाद-विवाद के बाद, मेरा तीव्र आग्रह देखकर २८ तारीख का फोटो खिंचवाने के लिए सम्मत हुए, फोटो खींचा गया। इसके पहले एक व्यक्ति के अतिशय आग्रह पर भी स्वामी जी ने फोटो नहीं खिंचवाया था, इसलिए फोटों की दो प्रतियाँ उस व्यक्ति को भी भेज देने के लिए उन्होंने मुझसे कहा। मैंने स्वामी जी की इस आज्ञा को बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया। एक दिन बातचीत के सिलसिले में स्वामी जी ने कहा, "कुछ दिन तुम्हारे साथ जंगल में तम्बू डालकर रहने की मेरी इच्छा है। किन्तु शिकागो में धर्म-महासभा होगी, यदि वहाँ जाने की सुविधा हुई, तो वही जाऊँगा।" मैंने चन्दे की सूची तैयार कर धनसंग्रह करने का प्रस्ताव किया, परन्तु उन्होंने न जाने क्या सोचकर उसे स्वीकार नहीं किया। स्वामी जी का इस समय व्रत ही था—रूपये-पैसे का स्पर्श या ग्रहण न करना। मेरे अत्यधिक अनुरोध करने पर स्वामी जी मरहठी चप्पल के बदले एक जोड़ा जूता और वेत की एक छड़ी स्वीकार करने के लिए राजी हुए। इसके पहले कोल्हापुर की रानी ने स्वामी जी से बहुत अनुरोध किया था कि वे कुछ ग्रहण करें, पर स्वामी जी इससे सहमत नहीं हुए थे। अन्त में रानी ने दो गेरुए वस्त्र स्वामी जी के लिए भेजे, स्वामी जी ने यह ग्रहण कर लिया, और पुराने वस्त्र वही छोड़ते हुए बोले, "सन्यासियों के पास जितना कम बोझा हो, उतना ही अच्छा।"

इसके पहले मैंने भगवद्गीता पढ़ने की अनेक बार चेष्टा की थी, किन्तु समय न सकने के कारण मैंने ऐसा सोच लिया कि उसमें समझने के लायक ऐसी कोई बड़ी बात नहीं है, और उसे पढ़ना ही छोड़ दिया। स्वामी जी एक दिन

गीता छेकर हम लोगों को समझाने लगे। तब ज्ञात हुआ कि पीता कैसा अनुभूत प्रान्त है। गीता का मर्म समझना जिस प्रकार मैंने उनसे सीखा उसी प्रकार दूसरी और व्युक्ति बर्णों के वैज्ञानिक उपस्थास एवं कार्यालय का सातोंर रिवाजत' पढ़ना भी उन्हींसे सीखा।

उस समय स्वास्थ्य के लिए मैं औषधियों का अत्यधिक व्यवहार करता था। इस बात को जानकर वे एक दिन बोले 'जब देखो कि किसी रोग ने अत्यधिक प्रबल होकर घम्याघायी कर दिया है उठने की शक्ति नहीं रही तभी औषधि का सेवन करना अल्पता नहीं। स्नायुर्मों की दुर्बलता आदि रोगों में से तो ९० प्रतिशत काल्पनिक हैं। इन सब रोगों से डॉक्टर लोग बितने लोगों को बचाते हैं उससे अधिक को तो मार जास्ते हैं। फिर इस प्रकार सर्वथा रोग रोग करते रहने से क्या होगा? बितने दिन बिना आनन्द से रहो। पर जिस आनन्द से एक बार कष्ट हो चुका है, उसके पीछे फिर और कभी न बढ़ना। तुम्हारे-हमारे समान एक के मर जाने से पूरबी अपने केन्द्र से कोई दूर तो हट न पायगी और न जगत् का किसी तरह का कोई नुकसान ही होया। इस समय कुछ कार्यों से अपने ऊपर के अङ्गुस्रों के साथ मेरी बसती नहीं थी। उनके सामान्य कुछ कहने से ही मेरा सिर परम हो जाता था और इस प्रकार इस जगत् की नीकरी से भी मैं एक दिन के लिए भी सुखी न हुआ। स्वामी जी से मैंने जब ये सब बातें कही तो वे बोले 'नीकरी किसलिए करते हो? बैठन के लिए ही न बैठन तो ठीक महीने के महीने नियमित रूप से पाठे ही रहते हो? फिर मन में कुछ क्यों? और यदि नीकरी छोड़ देने की इच्छा हो तो कभी भी छोड़ दे सकते हो किसीने तुम्हें बाँधकर तो रखा नहीं है फिर 'विषम बन्धन में पड़ा हूँ' सोचकर इस दुःखमरे संसार में और भी दुःख क्यों बढ़ाते हो? और एक बात पर सोचो जिसके लिए तुम बैठन पाठे हो आशुस्र के उन सब कार्यों को करने के अतिरिक्त तुमने अपने ऊपरवाले साहबों को सन्तुष्ट करने के लिए कभी कुछ किया भी है? कभी तो तुमने उसके लिए बेप्या नहीं की फिर भी वे सोच तुमसे सन्तुष्ट नहीं हैं ऐसा सोचकर उनके ऊपर पीसे हुए हो। क्या यह बुद्धिमार्गों का काम है? यह जान लो हम लोग दूसरों के प्रति दुरद में वैसा भाव रखते हैं, वही कार्य में प्रकाशित होता है और प्रकाशित न होने पर भी उन लोगों के भी भीतर हमारे प्रति ठीक उसी भाव का उदय होता है। हम अपने मन के अनुकूल ही जगत् को देखते हैं— हमारे भीतर वैसा ही वैसा ही जगत् में प्रकाशित देखते हैं। 'जाय भक्त तो जन भक्त'—बहु उक्ति बितनी सरल है कोई नहीं समझता। आज से किसीकी बुराई होगा एकदम छोड़ देने की जग्या करो। बेगाने तुम जितना ही वैसा

कर सकोगे, उतना ही उनके भीतर का भाव और उनके कार्य तक परिवर्तित हो जायँगे।” बस, उसी दिन से औषधि-सेवन का मेरा पागलपन दूर हो गया, और दूसरो के दोष ढूँढने की चेष्टा को त्याग देने के फलस्वरूप क्रमशः मेरे जीवन का एक नया पृष्ठ खुल गया।

एक बार स्वामी जी के सामने यह प्रश्न उपस्थित किया गया—“अच्छा क्या है और बुरा क्या है?” इस पर वे बोले, “जो अभीष्ट कार्य का साधनभूत है, वही अच्छा है और जो उसका प्रतिरोधक है, वही बुरा। अच्छे-बुरे का विचार जगह की ऊँचाई-निचाई के विचार के समान है। तुम जितने ऊपर उठोगे, उतने ही वे दोनों एक होते जायँगे। कहा जाता है, चन्द्रमा मे पहाड़ और समतल दोनों हैं, किन्तु हम लोग सब एक देखते हैं, वैसा ही अच्छे-बुरे के सम्बन्ध में भी समझो।” स्वामी जी में यह एक असाधारण शक्ति थी कि कोई चाहे कैसा भी प्रश्न क्यों न पूछे, तुरन्त उनके भीतर से ऐसा सुन्दर और उपयुक्त उत्तर आता था कि मन का सन्देह एकदम दूर हो जाता था।

और एक दिन की बात है—स्वामी जी ने समाचारपत्र में पढ़ा कि अनाहार के कारण कलकत्ते में एक मनुष्य मर गया। यह समाचार पढ़कर स्वामी जी इतने दुःखी हुए कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। वे बारम्बार कहने लगे, “अब तो देश गया।” कारण पूछने पर बोले, “देखते नहीं, दूसरे देशों में गरीबों की सहायता के लिए ‘पूवर-हाउस’, ‘वकं-हाउस’, ‘चैरिटी फंड’ आदि सस्थाओं के रहने पर भी प्रतिवर्ष सैकड़ों मनुष्य अनाहार की ज्वाला में समाप्त हो जाते हैं—समाचारपत्रों में ऐसा देखने में आता है। पर हमारे देश में एक मुट्ठी भिक्षा की प्रथा होने से अनाहार के कारण लोगों का मरना कभी सुना नहीं गया। मैंने आज पहली बार अखबार में यह समाचार पढ़ा कि दुर्भिक्ष न होते हुए भी कलकत्ता जैसे शहर में अन्न के बिना मनुष्य मरे।”

अप्रेषी शिक्षा की कृपा से मैं भिखारियों को दो-चार पैसे देना अपव्यय समझता था। सोचता था, इस प्रकार जो कुछ थोड़ा सा दान किया जाता है, उससे उनका कोई उपकार तो होता नहीं, अपितु बिना परिश्रम के पैसा पाकर, उसे शराब-गाँजा आदि में खर्च कर वे और भी अघ पतित हो जाते हैं। लाभ इतना ही है कि दाता का व्यर्थ खर्च कुछ बढ़ जाता है। इसलिए सोचता था, बहुत लोगों को कुछ कुछ देने की अपेक्षा एक को अधिक देना अच्छा है। स्वामी जी से इस विषय में जब मैंने पूछा, तो वे बोले, “भिखारी के आने पर यदि शक्ति हो, तो कुछ देना ही अच्छा है। दोगे तो केवल दो-एक पैसा, उसके लिए, वह किसमें खर्च करेगा सद्व्यय होगा या अपव्यय, ये सब बातें लेकर माथापच्ची



बुरम की क्या आवश्यकता? भीर यों गन्धमुख ही वह उग वृक्ष का शीशु मैं उड़ा दया ही। गो भी उसे दैन मे ममात्र का काम ही है मुद्रगान नहीं। स्वार्थि मुद्रहारे ममात्र सीम यदि क्या करके उगे कुछ न हों तो वह तुम लोगों के पास से लौरी करके लया। बेसा न कर वह ज्ञा दो वृक्ष मीगमन शीशु पीतन नुर होकर बैठा रहता है वह क्या तुम लोगों का ही काम नहीं है? अगएव इस प्रकार क जान में भी लोगों का उपकार ही है अपकार नहीं।”

मैंने पढ़ते से ही स्वामी जी को वास्तव विवाह क विस्तृत विवरण देना है। वे सर्व्व मनी को विशेषतः बालिका को हिम्मत बांधकर ममात्र के इन कलन के विशेष में गान हान के लिए तथा उद्योगी और मनुष्यचित्त होने के लिए उपाय देने के। स्वयं के प्रति इस प्रकार अनुपम भी मैं और जिनीमें नहीं देगा। स्वामी जी के पाश्चात्य देशों में लौटने के बाद त्रिभूत लोगों में उनसे प्रथम कर्षण विषय है वे नहीं जानते कि बड़ी जाने क पूर्ण वे संन्यास-आश्रम के गठोर नियमों का पालन करते हुए, कौशल का स्वयं तद्र न करते हुए कितने दिनों तक भारत के समस्त प्रान्तों में भ्रमण करते रहे। जिनीके एक बार ऐसा कहने पर कि उनके सामान्य पक्किमान पुत्र क लिए नियम आदि का इतना बंधन आवश्यक नहीं है वे बोले, 'दंगो मन बड़ा पामस है बड़ा उग्रमत्त है कभी भी शास्त नहीं रहता पांडा मीका पाठे ही अपन रास्ते लीच से जाता है। इतलिय सभी को निर्धारित नियमों क भीतर रहना आवश्यक है। संन्यासी को भी मन पर अधिकार गमन के लिए नियम के अनुसार चलना पड़ता है। सभी मन में सोचते हैं कि मन के ऊपर उनका पूरा अधिकार है वे तो आम-भूतकर कभी कभी मन को बांधी छूट दे देते हैं। किन्तु मन पर किंचित् कितना अधिकार हुआ है, वह एक बार ध्यान करने के लिए बैठते ही माकूम ही जाता है। 'एक विषय पर विस्तृत कहेगा' ऐसा सोचकर बैठन पर बस मिनट भी उस विषय में मन स्थिर रखना अशक्य हो जाता है। सभी सोचते हैं कि वे पत्नी के बधीभूत नहीं हैं वे तो बेशक प्रेम के कारण पत्नी को अपने ऊपर अधिकार करने बैठे हैं। मन को बधीभूत कर लिया है—यह सोचना भी ठीक उसी तरह है। मन पर विश्वास करके कभी निश्चिन्त न रहना।

एक दिन बातचीत के सिद्धसिके में मैंने कहा "स्वामी जी बेशक हैं धर्म को ठीक ठीक समझने के लिए बहुत अध्ययन की आवश्यकता है।

वे बोले 'अपने धर्म समझने के लिए अध्ययन की आवश्यकता नहीं किन्तु दूसरों को समझाने के लिए उसकी विशेष आवश्यकता है। भगवान् श्री रामकृष्ण जब तो 'रामकेष्ट' नाम से हस्ताक्षर करते थे किन्तु धर्म का सार-रत्न उनसे अधिक भला किसने समझा है?

मेरा विश्वास था, मावु-मन्यासियों का स्थूलकाय और गर्वदा सन्तुष्टिचित्त होना असम्भव है। एक दिन हँसते हँसते उनके ऊपर ऐसा कटाक्ष करने पर उन्होंने भी मजाक में कहा, “यही तो मेरा ‘अकाल रक्षाकोप’ (फैमिन इन्फ्योरेन्स फड) है। यदि मैं पाँच-सात दिन तक भोजन न पाऊँ, तो भी मेरी चर्बी मुझे जीवित रखेगी। तुम लोग तो एक दिन न खाने से ही चारों ओर अन्वकार देखने लगोगे। जो धर्म मनुष्य को सुखी नहीं बनाता, वह वास्तविक धर्म है ही नहीं, उसे मन्दाग्नि-प्रसूत रोगविशेष समझो।” स्वामी जी सगीत-विद्या में विशेष पारंगत थे। एक दिन एक गाना भी उन्होंने प्रारम्भ किया था, किन्तु मैं तो ‘सगीत में औरगजेव’ था, फिर मुझे सुनने का अवसर ही कहाँ? उनके वार्तालाप ने ही हम लोगों को मोहित कर लिया था।

आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान के सभी विभाग, जैसे—रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, मिश्रित गणित आदि पर उनका विशेष अधिकार था एवं उन विषयों से सम्बद्ध सभी प्रश्नों को वे बड़ी सरल भाषा में दो-चार बातों में ही समझा देते थे। फिर, पाश्चात्य विज्ञान की सहायता एवं दृष्टान्त से धर्मविषयक तथ्यों को विशद रूप से समझाने तथा यह दिखाने में कि धर्म और विज्ञान का एक ही लक्ष्य है, एक ही दिशा में गति है—उनकी क्षमता अद्वितीय थी।

लाल मिर्च, काली मिर्च आदि तीखे पदार्थ उन्हें बड़े प्रिय थे। इसका कारण पूछने पर उन्होंने एक दिन कहा, “पर्यटन-काल में सन्यासियों को देश-विदेश में अनेक प्रकार का दूषित जल पीना पड़ता है, यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। इस दोष को दूर करने के लिए उनमें से बहुत से गाँजा, चरस आदि मादक द्रव्य पीते हैं। मैं भी इसीलिए इतनी मिर्च खाता हूँ।”

खेतड़ी के राजा, कोल्हापुर के छत्रपति एवं दक्षिण के अनेक राजा उन पर विशेष भक्ति करते थे। उनका भी उन लोगों पर बड़ा प्रेम था। असाधारण त्यागी होकर, राजे-रजवाडों के साथ इतनी घनिष्ठता वे क्यों रखते हैं, यह बात बहुतांश की समझ में नहीं आती थी। कोई कोई निर्वोध तो इस बात को लेकर उनके ऊपर आक्षेप करने में भी नहीं चकते थे।

इसका कारण पूछने पर एक दिन उन्होंने कहा, “जबरा सोच तो देखो, हजार हजार दरिद्र लोगों को उपदेश देने और सत्कार्य के अनुष्ठान में तत्पर कराने से जो कार्य होगा, उसकी अपेक्षा एक राजा को इस दिशा में ला सकने पर कितना अधिक कार्य हो जायगा। निर्धन प्रजा की इच्छा करने पर भी सत्कार्य करने की क्षमता उसके पास कहाँ? किन्तु राजा के हाथ में सहस्रो प्रजाओं के मंगल-विधान की क्षमता पहले से ही है, केवल उसे करने की इच्छा भर नहीं है। वह इच्छा यदि

करन की क्या आवश्यकता? भीरु भी गहमय ही वह उग पैग को दीया में उड़ा देता ही तो भी उसे देन में तमास का भाव ही है नृसमान नहीं। बसोकि गुप्तहारे समान लीन यदि देना बन्धे उग बण न दें तो वह गुम गीली के पास में गौरी करने लेगा। बीगा न कर बह आ दो पैग मीदकर लीजा पीकर पुर हाकर बँडा रहता है वह क्या गुम गीला का ही ताम नहीं? ? अतएव हम प्रहार क दान में भी गीला का उपहार ही है भयवार नहीं।”

मैंने पढ़ने में ही स्वामी जी को वाक्य विच्छेद व विस्तृत विच्छेद देना है। वे सर्व्व गर्भा की विशेषता वाक्यों की हिम्मा बोधकर मन्त्र के दृग रहता के विरोंग में गान्हीन के लिए तथा उदीगी और गन्तुच्छिन्न हीन के लिए उद्यम देते थे। स्वप्न के प्रति हम प्रहार अनुपम भी मैं भीरु निर्मा में नहीं देता। स्वामी जी के वाक्यात्म्य देगों ग मीदने के बाद जिन लोगों में उनके प्रथम दर्शन विषय में बनी जानने कि बहो जाने के पूर्व्व के मन्त्रात्म-आत्म व बड़ीर नियमों का पालन करने हुए, वाक्य का रत्ना उद्यम व करने हुए विस्तृत निर्मा तक भारत के समस्त प्रास्था में प्रमन करते रहे। निर्मात एक बार एका बन्धे पर वि उनम तमान गतिमान पुत्र के लिए निरम आदि का इतना बणन आनन्दक नहीं है वे बान्धे,

दगों मन बड़ा पालन है बड़ा उमरा है कभी भी गान्त नहीं रहता बीड़ा मीदा पाठे ही भाव रास गीब से जाना है। इसलिए गर्भा की निर्धारित नियमों के भीतर रहना आवश्यक है। मन्त्रात्म का भी मन पर अधिहार एतदि के लिए नियम के अनुसार चलना पड़ता है। सभी मन में सोचने हैं कि मन के ऊपर उनका पूरा अधिहार है वे तो जान-बूझकर कभी कभी मन को पोंड़ी छूट दे देते हैं। किन्तु मन पर कियका विद्वाना अधिहार हुआ है, वह एक बार ध्यान करने के लिए बैठते ही मात्स ही जाता है। एक विषय पर विस्तृत कहेगा' ऐसा सोचकर बैठने पर दग मिनट भी उस विषय में मन स्थिर रहना अयमभव हो जाता है। सभी सोचते हैं कि वे पत्नी के बरीमूठ नहीं हैं वे ही केवल प्रेम के कारण पत्नी को अपन रूप आधिपत्य करने देते हैं। मन को बरीमूठ कर लिया है—यह सोचना भी ठीक उची तरह है। मन पर विस्वास करके कभी निश्चिन्त न रहता।”

एक दिन वाचपीठ के सिलसिले में मैंने कहा “स्वामी जी देखा हूँ बर्म को ठीक ठीक समझने के लिए बहुत अध्ययन की आवश्यकता है।”

वे बोले 'अपने बर्म समझने के लिए अध्ययन की आवश्यकता नहीं किन्तु दूसरों को समझाने के लिए उसकी विशेष आवश्यकता है। अनवान् भी रामहृन्म देव तो 'रामकेष्ट नाम से हस्ताक्षर करते थे किन्तु बर्म का सार-रत्न उनसे अधिक मला किन्तु समझा है ?

अनन्त है, यह नहीं समझा। जो भी हो, एक वस्तु अनन्त है, यह बात समझ मे आती है, किन्तु दो वस्तुएं यदि अनन्त हो, तो कौन कहां रहेगी? कुछ और आगे बढ़ो, तो देखोगे, काल जो है, देश भी वही है, फिर और अग्रसर होने पर समझोगे, सभी वस्तुएं अनन्त हैं, और वे सभी अनन्त वस्तुएं एक है, दो या दस नहीं।”

इस प्रकार स्वामी जी के पदार्पण से २६ अक्टूबर तक मेरे निवास-स्थान पर आनन्द का स्रोत बहता रहा। २७ तारीख को वे बोले, “और नहीं ठहरेगा, रामेश्वर जाने के विचार से बहुत दिन हुए इस ओर निकला हूँ। पर यदि इसी प्रकार चला, तो इस जन्म मे शायद रामेश्वर पहुँचना न हो सकेगा।” मैं बहुत अनुरोध करके भी उन्हें नहीं रोक सका। २७ अक्टूबर की ‘मेल’ से उनका मरमागोआ जाना ठहरा। इस थोड़े से समय मे उन्होंने कितने लोगो को मुग्ध कर लिया था, यह कहा नहीं जा सकता। टिकट खरीदकर उन्हें गाडी मे बिठाया और साष्टांग प्रणाम कर मैंने कहा, “स्वामी जी, मैंने जीवन मे आज तक किसीको भी आन्तरिक भक्ति के साथ प्रणाम नहीं किया। आज आपको प्रणाम कर मैं कृतार्थ हो गया।”

\*

\*

\*

स्वामी जी को मैंने केवल तीन बार देखा। प्रथम, उनके अमेरिका जाने से पूर्व। उस समय की बहुत सी बातें आप लोगो को सुना चुका हूँ। बेलगाँव मे उनके साथ मेरा प्रथम साक्षात्कार हुआ। द्वितीय, जब उन्होंने दूसरी बार इंग्लैण्ड और अमेरिका की यात्रा की थी, उसके कुछ दिन पहले। तृतीय एव अन्तिम बार दर्शन हुआ उनके देहत्याग के छ-सात मास पहले। पर इतने ही अवसरो पर मैंने उनसे जो कुछ सीखा, उसका आद्योपान्त वर्णन करना असम्भव है। बहुत सी बातें मेरे अपने सम्बन्ध की हैं, इसलिए उन्हें कहने की आवश्यकता नहीं, और बहुत सी बातो को भूल भी गया हूँ। जो कुछ स्मरण है, उसमे से पाठको के लिए उपयोगी विषयो को बतलाने की चेष्टा करूँगा।

इंग्लैण्ड से लौट आने के बाद उन्होंने हिन्दुओ के जाति-विचार के सम्बन्ध मे और किसी किसी सम्प्रदाय के व्यवहार के ऊपर तीव्र आलोचना करते हुए मद्रास मे जो व्याख्यान दिये थे, उन्हें पढकर मैंने सोचा, स्वामी जी की भाषा कुछ अधिक कडी हो गयी है। और उनके समीप मैंने अपने इस अभिप्राय को प्रकट भी किया। सुनकर वे बोले, “जो कुछ मैंने कहा है, सब सत्य कहा है। और जिनके सम्बन्ध मे मैंने इस प्रकार की भाषा का व्यवहार किया है, उनके कार्यों की तुलना मे वह बिन्दु मात्र भी कडी नहीं है। सत्य बात मे सकोच का या उसे छिपाने का तो मैं कोई कारण नहीं देखता। यह न सोचना कि जिनके कार्यों पर मैंने इस प्रकार समालोचना की है, उनके ऊपर मेरा क्रोध था या है, अथवा जैसा कोई कोई सोचते हैं कि कर्तव्य

उसके भीतर किसी प्रकार पामरिख कर सकूँ तो ऐसा होने पर उसके साथ साथ उसके अपीन सारी प्रजा की अवस्था बचक सकती है और इन प्रकार बचपू का कियना अधिक नस्याम हो सकता है।

धर्म वाद-विवाद में नहीं है बहती प्रत्यक्ष अनुभव का विषय है इसको समझाने के लिए वे बात बात में कहा करते थे 'गुड़ का स्वाद खाने में ही है। अनुभव करो बिना अनुभव किये कुछ भी न समझोगे। उन्हें होंगी संन्यासियों से अत्यन्त विडंबी। वे कहते थे "घर में रहकर मन पर अधिकार स्थापित करके फिर बाहर निकलना अच्छा है नहीं तो जब अनुचाय कम होने पर ऐसे संन्यासी प्रायः यामा तौर संन्यासियों के दल में मिल जाते हैं।

मैंने कहा किन्तु घर में रहकर बीसा होता तो अत्यन्त कठिन है। सभी प्राणियों को समान दृष्टि से देखना राम-रूप का त्याग करना यदि जिन बातों को आप धर्मकाम में प्रबल सहायक कहते हैं उनका अनुष्ठान करना यदि मैं आज से ही आरम्भ कर दूँ तो कल से ही मेरे नौकर-बाकर और अमीनत्व कर्मचारीगण यहाँ तक कि सवे-सम्बन्धी लोग भी मुझे एक साथ भी धारिष्ठ से न रहने देंगे।"

उत्तर में मगवान् भी रामरूप के बीस की सर्प और संन्यासीवादी कथा का पृष्टान्त देकर उन्होंने कहा 'फुफकारना कभी बन्द मत करना और कर्तव्य-पारण करने की दृष्टि से सभी काम किये जाना। कोई अपराध करे, तो दण्ड देना किन्तु दण्ड देते समय कभी भी क्रुद्ध न होना। फिर पूर्वोक्त प्रसंग को छोड़ते हुए बोले 'एक समय मैं एक तीर्थस्वामि के पुत्रिष्ठ इस्पेक्टर का अतिथि हुआ। वह बड़ा धार्मिक और भयान्क था। उसका वेतन १२५ रु था किन्तु देखा उसका घर का खर्च मासिक बी-तीन सौ का रहा होता। जब अधिक परिचय हुआ तो मैंने पूछा आज की अपेक्षा आपका खर्च तो अधिक देख रहा हूँ—यह कैसे चकटा है? वह बोड़ा हँसकर बोला 'आप ही ज्ञेय चकते हैं। इस तीर्थस्वामि में जो धानु-संन्यासी आते हैं वे सब आपके समान तो नहीं होते। सन्नेह होने पर उनके पास क्या है क्या नहीं इसकी तलाशी करता हूँ। बहुतों के पास प्रचुर मात्रा में खजाना-पैसा निकलता है। जिन पर मुझे चोरी का सन्नेह होता है वे खजाना-पैसा छोड़कर भाग जाते हैं, और मैं उन पैसों को अपने कम्बे में कर लेता हूँ। पर अन्य किसी प्रकार का घूस यदि नहीं लेता।"

स्वामी जी के साथ एक दिन अनन्त (infinity) बस्तु के सम्बन्ध में बातलाप हुआ। उन्होंने भी बात कही वह बड़ी ही सुन्दर एवं सत्य है। वे बोले 'जो अनन्त बस्तुएँ कभी नहीं रह सकतीं। पर मैंने कहा "काल तो अनन्त है और वेस भी अनन्त है। इस पर वे बोले "वेद्य अनन्त है यह तो समझा किन्तु काल

है, हमारे की नहीं, इस प्रकार का भाव क्या अन्याय नहीं है ?' मैं तो सुनकर दग रह गया ।

“नाक और पैर की लघुता लेकर ही चीन में सीन्दर्य का विचार होता है, यह सभी जानते हैं। आहार आदि के सम्बन्ध में भी ऐसा ही है। अंग्रेज हम लोगों के समान खुशबूदार चावल का भात खाना पसन्द नहीं करते। एक समय किसी जगह के एक जज साहब की अन्यत्र बदली हो जाने पर वहाँ के बहुत से वकीलों ने उनके सम्मान के लिए बढिया अनाज आदि भेजा। उसमें कुछ सेर खुशबूदार चावल भी थे। जज साहब ने उस चावल का भात खाकर मन में सोचा—यह सडा हुआ चावल है, और वकीलों से भेट होने पर कहा, 'तुम लोगों को भेरे लिए मडा चावल भेजना उचित न था।'

“किसी समय मैं रेलगाडी में जा रहा था। उसी डब्रे में चार-पाँच साहब भी बैठे थे। बातचीत के सिलसिले में तम्बाकू के बारे में मैंने कहा, 'सुगन्धित गुडाकू का पानी से भरे हुए हुक्के में व्यवहार करना ही तम्बाकू का श्रेष्ठ उपभोग है।' मेरे पास खूब अच्छा तम्बाकू था। मैंने उन लोगों को देखने के लिए दिया। वे सूँघकर बोले, 'यह तो अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त है।' इसे आप सुगन्धित कहते हैं।' इस प्रकार गन्ध, आस्वाद, सीन्दर्य आदि सभी विषयों में समाज, देश और काल के भेद से भिन्न भिन्न मत हैं।”

स्वामी जी की पूर्वोक्त कथाओं को हृदयगम करते मुझे देरी नहीं लगी। मैंने सोचा, पहले मुझे शिकार करना कितना प्रिय था, किसी पशु-पक्षी को देखने पर उसे मारने के लिए मन छटपटाने लगता था। न मार सकने पर अत्यन्त कष्ट भी मालूम होता था। पर अब उस प्रकार प्राणियों का वध करना बिल्कुल ही अच्छा नहीं लगता। अतएव किसी वस्तु का अच्छा या बुरा लगना केवल अभ्यास पर निर्भर है।

अपने मत को अक्षुण्ण रखने में प्रत्येक मनुष्य का एक विशेष आग्रह देखा जाता है। धर्म के क्षेत्र में तो उमका विशेष प्रकाश दिखायी देता है। स्वामी जी इस सम्बन्ध में एक कहानी बतलाया करते थे। एक समय एक छोटे राज्य को जीतने के लिए एक दूसरे राजा ने दल-बल के साथ चढाई की। शत्रुओं के हाथ से बचाव कैसे हो, इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए उस राज्य में एक बड़ी सभा बुलायी गयी। सभा में इजीनियर, बढई, चमार, लोहार, वकील, पुरोहित आदि सभी उपस्थित थे। इजीनियर ने कहा, “शहर के चारों ओर एक बहुत बड़ी खाई खुदवाइए।” बढई बोला, “काठ की एक दीवाल खडी कर दी जाय।” चमार बोला, “धमडों के समान मजबूत और कोई चीज नहीं है, चमडे की ही दीवाल खडी की जाय।” लोहार बोला, “इस सबकी कोई आवश्यकता नहीं है, लोहे की दीवाल

समझकर जो कुछ मैंने किया है उसके लिए जब मैं बुद्धिमान हूँ। इन सब बातों में कोई सार नहीं। मैंने क्रोध के कारण ऐसा नहीं किया है और जो मैंने किया है उसके लिए मैं बुद्धिमान नहीं हूँ। आज भी यदि उस प्रकार का कोई अप्रिय कार्य करना कर्तव्य मानसूय होता तो अवश्य निःसंकोच वैसा करूँगा।

होगी संन्यासियों के विषय में उनका मत पहले कुछ कह चुका हूँ। किसी दूसरे दिन इस सम्बन्ध में प्रसंग उठने पर उन्होंने कहा 'हैं अबस्य बहुत से ब्रह्मचारी ब्राह्मण के घर से बचका धोर बुद्धिमान करके छिपने के लिए संन्यासी के रूप में चूमते फिरते हैं। किन्तु तुम लोगों का भी कुछ बोध है। तुम लोग सोचते हो संन्यासी होते ही उस ईश्वर के समान विद्युत्पातीत हो जाना चाहिए। उस पैर नर बच्छी तरह खाने में बोध बिछीन पर सोने में बोध यहाँ तक कि उसे चूता और छाता तक व्यवहार में माने की मुंजाइस नहीं। क्यों वह भी तो मनुष्य है। तुम लोगों के मन में जब तक कोई पूर्ण परमार्थ न हो जाय तब तक उसे वैसा बरन पहनने का अधिकार नहीं। पर यह भूल है। एक समय एक संन्यासी के साथ मेरा बार्ता-काय हुआ। अच्छी पोसाक पर उनकी खूब रुचि थी। तुम लोग उन्हें बसकर अबस्य ही धोर बिल्लासी समझते। किन्तु वे सचमुच बचार्थ संन्यासी थे।

स्वामी जी कहा करते थे 'दिस काल और पाप के भेद से मानसिक भावों और अनुभवों में काफी तात्पर्य हुआ करता है। धर्म के सम्बन्ध में भी ठीक वैसा ही है। प्रत्येक मनुष्य की भी एक न एक विषय में अधिक रुचि पामी जाती है। जबतू म समी अपन की अधिक बुद्धिमान समझते हैं। ठीक है वहाँ तक कोई विशेष हाति नहीं। किन्तु जब मनुष्य सोचने लगता है कि केवल मैं ही समझता हूँ दूसरा कोई नहीं तभी सारे बनेड़े उपस्थित हो जाते हैं। समी चाहते हैं कि दूसरे सब लोग भी उन्हींके समान प्रत्येक वस्तु को धरें और समझें। प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि उसने जिस बात को सत्य समझा है वा बिसे जाना है उसे छोड़कर और कोई सत्य ही ही नहीं सकता। सांसारिक विषय के क्षेत्र में हो जबवा धर्म के क्षेत्र में इस प्रकार के भाव को मत में किसी तरह न माने देना चाहिए।

'जबतू के किसी भी विषय में सब पर एक ही नियम लागू नहीं हो सकता। देश नाम और पाप के भेद से नीति एवं सौन्दर्य-ज्ञान भी विभिन्न देखा जाता है। विद्वत् की स्थितियों में यदु-वृत्ति की प्रथा प्रचलित है। हिमाचल भ्रमचकाक में मेरी इस प्रकार के एक विद्वत् परिवार से भेंट हुई थी। इस परिवार में छ पुत्रपुत्र के उन छ पुत्रियों की एक ही स्त्री थी। अधिक परिचय हो जाने के बाद मैंने एक दिन उनकी इस प्रथा के बारे में कुछ कहा इस पर वे कुछ खीझकर बोले 'तुम साधु-संन्यासी होकर लोगों को स्वार्थपरता सिपाना चाहते हो? यह मेरी ही उपमोष्य

अपनी माँ को खाना नहीं देता, वह दूसरे की माँ का क्या पालन करेगा ?” स्वामी जी यह स्वीकार करते थे कि हमारे प्रचलित धर्म में, आचार-व्यवहार में, सामाजिक प्रथा में अनेक दोष हैं। वे कहते थे, “उन सभी का सशोधन करने की चेष्टा करना हम लोगो का मुख्य कर्तव्य है, किन्तु इसके लिए सवाद-पत्रों में अग्रजों के समीप उन दोषों को घोषित करने की क्या आवश्यकता है ? घर की गलतियों को जो बाहर दिखलाता है, उसके समान गवा और कौन है ? गन्दे कपड़े को लोगो की आँखों के सामने नहीं रखना चाहिए।”

ईसाई मिशनरियों के वारे में एक दिन चर्चा हुई। वातचीत के सिलसिले में मैंने कहा कि उन लोगो ने हमारे देश का कितना उपकार किया है और कर रहे हैं। सुनकर वे बोले, “किन्तु अपकार भी तो कोई कम नहीं किया। देशवासियों के मन की श्रद्धा को बिल्कुल नष्ट कर देने का अद्भुत प्रवन्ध उन्होंने कर छोड़ा है। श्रद्धा के साथ साथ मनुष्यत्व का भी नाश हो जाता है। इस बात को क्या कोई समझता है ? हमारे देव-देवियों और हमारे धर्म की निन्दा किये बिना वे अपने धर्म की श्रेष्ठता क्यों नहीं दिखा पाते ? और एक बात है जो जिस धर्म-मत का प्रचार करना चाहते हैं, उन्हें उसमें पूर्ण विश्वास होना चाहिए और तद-नुरूप कार्य करना चाहिए। अधिकांश मिशनरी कहते कुछ हैं और करते कुछ। मुझे कपट से बड़ी चिढ़ है।”

एक दिन उन्होंने धर्म और योग के सम्बन्ध में अत्यन्त सुन्दर ढंग से बहुत सी बातें कही। उनका मर्म जहाँ तक स्मरण है, उद्धृत कर रहा हूँ

“समस्त प्राणी सतत सुखी होने की चेष्टा में रत रहते हैं, किन्तु बहुत ही थोड़े लोग सुखी हो पाते हैं। काम-धाम भी सभी सतत करते रहते हैं, किन्तु उसका ईप्सित फल पाना प्रायः देखा नहीं जाता। इस प्रकार विपरीत फल उपस्थित होने का कारण क्या है, वह भी समझने की कोई चेष्टा नहीं करता। इसी-लिए मनुष्य दुःख पाता है। धर्म के सम्बन्ध में कैसा भी विश्वास क्यों न हो, यदि कोई उस विश्वास के बल से अपने को यथार्थ सुखी अनुभव करता है, तो ऐसी स्थिति में उसके उस मत को परिवर्तित करने की चेष्टा करना किसीके लिए भी उचित नहीं है, और ऐसा करने से कोई अच्छा फल भी नहीं होगा। पर हाँ, मुँह से कोई कुछ भी क्यों न कहे, जब देखो कि किसीका केवल धर्म सम्बन्धी कथा-वार्ता सुनने में ही आग्रह है, पर उसके आचरण में नहीं, तो जानना कि उसे किसी भी विषय में दृढ़ विश्वास नहीं है।

“धर्म का मूल उद्देश्य है—मनुष्य को सुखी करना। किन्तु अगले जन्म में सुखी होने के लिए इस जन्म में दुःख-भोग करना कोई बुद्धिमानी का काम नहीं



सबसे अच्छी होती उसे भेदकर पीछी या गोळा नहीं आ सकता। बकील बोले, "कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है हमारा राज्य लेने का धनु को कोई अधिकार नहीं है—यही एक बात धनु को तर्क-बुद्धि द्वारा समझा दी जाए। पुरोहित बोले 'तुम लोग तो पापक जैसे बकते हो। होम-मान करो स्वस्वपन करो तुम्हारी तो धनु कुछ भी नहीं कर सकता।' इस प्रकार उन्होंने राज्य बचाने का कोई उपाय निश्चित करने के बखे अपने अपने मत का पक्ष लेकर घोर तर्क-वितर्क आरम्भ कर लिया। वही है मनुष्य का स्वभाव।

यह कहानी सुनकर मुझे भी मानव मन के एकतरफे झुकाव के सम्बन्ध में एक कथा याद आ गयी। स्वामी जी से मैंने कहा 'स्वामी जी मुझ बड़कपन में पागलों के साथ बातचीत करना बड़ा अच्छा लगता था। एक दिन मैंने एक पागल रेखा—बासा बुद्धिमान बोड़ी-बहुत अंग्रेजी भी जानता था वह केवल पानी ही चाहता था। उसके पास एक फूटा स्रोत था। पानी की कोई नयी जगह देखते ही चाहे नाका ही हीन ही बस वहीं का पानी पीने लगता था। मैंने उससे इतना पानी पीने का कारण पूछा तो वह बोला 'Nothing like water Sir ! (पानी जैसी दूसरी कोई चीज ही नहीं महाशय ! ) मैंने उसे एक बण्डा कोटा देने की इच्छा प्रकट की पर वह किसी प्रकार राजी नहीं हुआ। कारण पूछने पर बोला 'यह कोटा फूटा हुआ है, इसीलिए इतने दिनों तक भिरे पास टिका हुआ है। अच्छा रहता तो कब का चोरी चला गया होता।'

स्वामी जी यह कथा सुनकर बोले "वह तो बड़ा मजे का पागल दिखता है ! ऐसे लोगों को सक्की कहते हैं। हम सभी लोगों में इस प्रकार का कोई भाव ही या सक्कीपन हुआ करता है। हम लोगों में उसे बचा रखने की क्षमता है। पापक में वह नहीं है। हम लोगों में भी पागलों में भेद केबस इतना ही है। रोप पीक बहुकार, काम जोष ईर्ष्या या मय्य कोई अत्याचार बचवा जनाचार से दुर्बल होकर, मनुष्य के अपने इस संयम को खो बैठने से ही सारी यड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है ! मन के आवेग को वह फिर संभाल नहीं पाता। हम लोग तब कहते हैं, 'यह पापक ही पया है। बस इतना ही !

स्वामी जी का स्वयं के प्रति अत्यन्त अनुराग था यह बात पहले ही बता चुका हूँ। एक दिन इस सम्बन्ध में बातचीत के प्रसंग में उनसे कहा गया कि संसारी लोगों का अपने अपने देश के प्रति अनुराग रखना नित्य कर्तव्य है, परन्तु सच्चा दिलों को अपने देश की माया छोड़कर, सभी देशों पर समबुद्धि रखकर, सभी देशों की कल्याण-चिन्ता हृदय में रखना अच्छा है। इसके उत्तर में स्वामी जी ने जो अत्यन्त शर्ते कहीं उनको जीवन में कभी नहीं मूक सकता। वे बोले "जो

हुए कहते हैं—'काम करो, किन्तु फल मुझे अर्पण करो, अर्थात् मेरे लिए ही काम करो।' "

किमी विषय का इतिहास कहाँ तक ठीक ठीक लिखा जा सकता है, इस विषय में लेखक को बहुत मन्देह है। उसके अनेक कारण हैं। गवर्नर जनरल साह्य के किमी शहर में पदार्पण से लेकर उस शहर से जाने तक की घटना अपनी आँखों से देखने और बाद में उमीका विवरण प्रसिद्ध प्रसिद्ध सवाद-पत्रों में पढ़ने की सुविधा हमारे सदृश लोगों को अधिकतर होती है। आदि से अन्त तक हम लोगों की देखी हुई घटनाओं के साथ इन सभी विवरणों की इतनी विभिन्नता देखी जाती है कि विस्मित हो जाना पड़ता है। चार दिन पहले जो घटना हुई है, उसीको लिपिवद्ध करना जब इतना कठिन है, तो चार सौ, चार हजार अथवा चार लाख वर्ष पहले जो घटना हुई है, उसका इतिहास कहाँ तक ठीक ठीक लिपिवद्ध हुआ है, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

और एक बात है, ईसाई मिशनरियों में से बहुत से कहा करते हैं—'उनकी वाइविल की प्रत्येक घटना जिस वर्ष, जिस महीने, जिस दिन, जिस घंटे और जिस मिनट घटित हुई है, वह बिल्कुल सामने घड़ी रखकर लिपिवद्ध की गयी है।' किन्तु एक ओर conflict between religion and science ( धर्म और विज्ञान में द्वन्द्व ) आदि पुस्तकों में वाइविल की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उनके ही देश के आवुनिक पण्डितों का विचार पढ़कर वाइविल की ऐतिहासिकता जिस प्रकार अच्छी तरह समझी जा सकती है, उसी प्रकार दूसरी ओर मिशनरियों द्वारा अनूदित हिन्दू धर्मशास्त्रों का अपूर्व विवरण पढ़कर उनका लिखित इतिहास भी कहाँ तक सत्य है, इसे समझने में कुछ अवशिष्ट नहीं रहता। यह सब देख-सुनकर मानव जाति के सत्यानुराग एव इतिहास में लिपिवद्ध घटनाओं के ऊपर श्रद्धा प्रायः बिल्कुल उड़ सी जाती है।

गीता, वाइविल, कुरान, पुराण प्रभृति प्राचीन ग्रन्थों में निबद्ध घटनाओं की वास्तविक ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में इसीलिए पहले मुझे तनिक भी विश्वास नहीं होता था। एक दिन स्वामी जी से मैंने पूछा कि कुशक्षेत्र में युद्ध से थोड़ी देर पहले अर्जुन के प्रति भगवान् श्री कृष्ण का जो धर्मोपदेश भगवद्गीता में लिपिवद्ध है, वह यथार्थ ऐतिहासिक घटना है या नहीं? उत्तर में उन्होंने जो कहा, वह बड़ा ही सुन्दर है। वे बोले, "गीता एक अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ है। प्राचीन काल में इतिहास लिखने अथवा पुस्तक आदि छापने की आजकल के समान इतनी धूम-बाम नहीं थी, इसलिए तुम्हारे सदृश लोगों के सामने भगवद्गीता की ऐतिहासिकता प्रमाणित करना कठिन है। किन्तु गीता में उक्त घटना घटी थी

है। इस जन्म में ही इसी मुहूर्त से सुखी होना होगा। जिस बर्म के द्वारा यह सम्पन्न होमा नहीं मनुष्य के लिए उपयुक्त बर्म है। इन्द्रिय-भोगजनित सुख क्षणिक है और उसके साथ अवश्यम्भावी दुःख भी अनिवार्य है। सिधु भक्तानी और पाश्चात्तिक स्वभाववाले मनुष्य ही इस अवस्थावी पुण्यभिहित सुख को वास्तविक सुख समझते हैं। यदि इस सुख को भी कोई जीवन का एकमेव उद्देश्य बताकर चिरकाल तक सम्पूर्ण रूप से निश्चिन्त और सुखी रह सके, तो वह भी कुछ बुरा नहीं है। किन्तु आज तक तो इस प्रकार का मनुष्य देखा नहीं गया। सामान्यतः देना यही जाता है कि जो इन्द्रिय चरितार्थता को ही सुख समझते हैं, वे जनमानस एवं बिक्रमसी लोगों को अपने से अधिक सुखी समझकर उनसे द्वेष करते लगते हैं और बहुत व्यय से प्राप्त होनेवाले उनके उच्च श्रेणी के इन्द्रिय-भोग पदार्थों को देखकर उन्हें पाने के लिए काकायित होकर दुःखी हो जाते हैं। उदात्त चिन्तक समस्त पृथ्वी को जीतकर यही सोचकर दुःखी हुए थे कि जब पृथ्वी में जीतने का और कोई देश नहीं रह गया। इसीलिए बुद्धिमान मनीषियों ने बहुत देखा-सुनकर सोच-विचारकर जन्तु में सिद्धान्त स्थिर किया है कि किसी एक बर्म में यदि पूर्व विश्वास हो तभी मनुष्य निश्चिन्त और यथार्थ सुखी हो सकता है।

“विद्या बुद्धि आदि सभी विषयों में प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव पुण्य-पुण्य देना जाता है। इसी कारण उनके उपयुक्त बर्म का भी जिस जिन होना आवश्यक है अन्यथा वह किसी भी तरह उनके लिए सन्तोषप्रद न होमा वे किसी भी तरह उसका अनुष्ठान करके यथार्थ सुखी नहीं हो सकते। अपने अपने स्वभाव के अनुकूल बर्म-मार्ग को स्वयं ही देख-भाँककर, सोच-विचारकर चुन लेना चाहिए। इसने अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं। धर्मग्रन्थ का पाठ, मुन का उपदेश साधु-शरण सत्पुरुषों का संग आदि उस इस मार्ग में कबल सहायता मात्र देने हैं।

कर्म के सम्बन्ध में भी यह जान लेना आवश्यक है कि किसी न किसी प्रकार का कर्म किये बिना कोई भी रह नहीं सकता और जन्म में केवल अच्छा या केवल बुरा इस प्रकार का कोई कर्म नहीं है। सत्कर्म करने में कुछ न कुछ बुरा कर्म भी करना ही पड़ता है। और इसीलिए उस कर्म के द्वारा जैसे सुख होमा जैसे ही साथ ही साथ कुछ न कुछ दुःख एवं अभाव का भोग भी होगा—यह अवश्य मानी है। अतएव यदि उग बोड़े से दुःख को भी ग्रहण करने की इच्छा न हो तो फिर विषय-भोगजनित ऊपरी सुख की माया भी छोड़ देनी होगी अर्थात् स्वार्थ-मुक्त का अभ्यस्य करना छोड़कर कर्तव्य-बुद्धि से सभी कर्म करने हूँगे। समीचा नाम है निष्काम कर्म। अज्ञान गीता में अर्जुन की उगीहा उपदेश देने

हुए कहते हैं—'काम करो, किन्तु फल मुझे अर्पण करो, अर्थात् मेरे लिए ही काम करो।'”

किसी विषय का इतिहास कहाँ तक ठीक ठीक लिखा जा सकता है, इस विषय में लेखक को बहुत मन्देह है। उसके अनेक कारण हैं। गवर्नर जनरल साहब के किसी शहर में पदार्पण से लेकर उस शहर में जाने तक की घटना अपनी आँखों से देखने और बाद में उन्नीका विवरण प्रसिद्ध प्रसिद्ध सवाद-पत्रों में पढ़ने की सुविधा हमारे सदृश लोगों को अधिकतर होती है। आदि से अन्त तक हम लोगों की देखी हुई घटनाओं के माय इन सभी विवरणों की इतनी विभिन्नता देखी जाती है कि विस्मित हो जाना पड़ता है। चार दिन पहले जो घटना हुई है, उसीको लिपिवद्ध करना जब इतना कठिन है, तो चार सौ, चार हजार अथवा चार लाख वर्ष पहले जो घटना हुई है, उमका इतिहास कहाँ तक ठीक ठीक लिपिवद्ध हुआ है, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

और एक बात है, ईसाई मिशनरियों में से बहुत से कहा करते हैं—'उनकी वाइविल की प्रत्येक घटना जिस वर्ष, जिस महीने, जिस दिन, जिस घटे और जिस मिनट घटित हुई है, वह विल्कुल सामने घड़ी रखकर लिपिवद्ध की गयी है।' किन्तु एक ओर conflict between religion and science (धर्म और विज्ञान में द्वन्द्व) आदि पुस्तकों में वाइविल की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उनके ही देश के आधुनिक पण्डितों का विचार पढ़कर वाइविल की ऐतिहासिकता जिस प्रकार अच्छी तरह समझी जा सकती है, उसी प्रकार दूसरी ओर मिशनरियों द्वारा अनूदित हिन्दू धर्मशास्त्रों का अपूर्व विवरण पढ़कर उनका लिखित इतिहास भी कहाँ तक सत्य है, इसे समझने में कुछ अवशिष्ट नहीं रहता। यह सब देख-सुनकर मानव जाति के सत्यानुराग एव इतिहास में लिपिवद्ध घटनाओं के ऊपर श्रद्धा प्रायः विल्कुल उड़ सी जाती है।

गीता, वाइविल, कुरान, पुराण प्रभृति प्राचीन ग्रन्थों में निबद्ध घटनाओं की वास्तविक ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में इसीलिए पहले मुझे तनिक भी विश्वास नहीं होता था। एक दिन स्वामी जी से मैंने पूछा कि कुरुक्षेत्र में युद्ध से थोड़ी देर पहले अर्जुन के प्रति भगवान् श्री कृष्ण का जो धर्मोपदेश भगवद्गीता में लिपिवद्ध है, वह यथार्थ ऐतिहासिक घटना है या नहीं? उत्तर में उन्होंने जो कहा, वह बड़ा ही सुन्दर है। वे बोले, “गीता एक अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ है। प्राचीन काल में इतिहास लिखने अथवा पुस्तक आदि छापने की आजकल के समान इतनी धूम-वाम नहीं थी, इसलिए तुम्हारे सदृश लोगों के सामने भगवद्गीता की ऐतिहासिकता प्रमाणित करना कठिन है। किन्तु गीता में उक्त घटना घटी थी

या नहीं इसके लिए तुम सोग जो मायापत्नी करते हो इसका कोई कारण मुझे नहीं विजता। यदि कोई अकाट्य प्रमाण से तुम्हें यह समझा सकें कि मयबान् जो कृष्ण ने सारथी होकर अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था क्या कृष्ण तभी तुम सोग गीता में बतित बातों पर बिश्वास करोगे? जब अपने सामने साक्षात् मयबान् के मूर्तिमान् होकर माने पर भी तुम सोग उनकी परीक्षा करने के लिए पीड़ते हो और उनका इस्तरत्न प्रमाणित करने के लिए कहते हो तब गीता ऐतिहासिक है या नहीं इस ब्यर्थ की समस्या को लेकर क्यों परेक्षाम होते हो? यदि हो सके तो गीता के उपदेशों को बितना बने ग्रहण करो और उसे जीवन में परिणत कर कृतार्थ हो जाओ। श्री रामकृष्ण देव कहते थे—'जाम साबो पेड़ के पत्ते मिनने से क्या होगा! मेरी राय में धर्मशास्त्र में लिपिबद्ध बटना के ऊपर बिश्वास या अविश्वास करना बैयन्तिक अनुभव-मेक का बितम है—जबकि मनुष्य किसी एक बिधेय अवस्था में पड़कर, उससे उधार पान की इच्छा से रास्ता झुंझता और धर्मशास्त्र में लिपिबद्ध किसी बटना के साथ उसकी अवस्था का ठीक ठीक मेक होने पर वह उस बटना को ऐतिहासिक कहकर उस पर निश्चित बिश्वास करता है तब धर्मशास्त्रोक्त उस अवस्था के उपयोगी उपायों को भी साग्रह ग्रहण करता है।

स्वामी जी ने एक दिन सारीरिक एवं मानसिक शक्ति को जमीष्ट कार्य के लिए सरसित रखना प्रत्येक के लिए कहाँ तक कर्तव्य है इसे बड़े सुन्दर भाव से समझाते हुए कहा था—“जबकि कार बर्बा बयबा बुधा कार्य में जो शक्ति शय करता है वह जमीष्ट कार्य की सिद्धि के लिए पर्याप्त शक्ति कहाँ से प्राप्त करेगा? The sum total of the energy which can be exhibited by an ego is a constant quantity—जबकि प्रत्येक जीवात्मा के भीतर बिबिध भाव प्रकाशित करने की जो शक्ति रखी है वह एक नियत मात्रा में होती है बतएव उस शक्ति का जबकि शस एक भाग में प्रकाशित होने पर उतना शेष और किसी दूसरे भाग में प्रकाशित नहीं हो सकता। धर्म के गम्भीर सत्य को प्रत्यक्ष करने के लिए बहुत शक्ति की आवश्यकता होती है इसीलिए धर्म-यव के पबिकों के प्रति बिषय-शोध आदि में शक्ति शय न कर बहान्य के द्वारा शक्ति सरसज का उपदेश सभी जातियों के धर्मग्रन्थों में पाया जाता है।

स्वामी जी बंगाल के पारों तथा ग्वाँ के धीरों के अनेक व्यवहारों से समुष्ट नहीं थे। घाम के एक ही ताकाब में स्नान धीब आदि करना एवं सहीका पानी पीना यह प्रथा उन्हें बिस्मुक्त पसन्द न थी! वे प्रायः कहा करते थे 'बितका मस्तिष्क मख-मूख से भरा है, उन जनों से आधा-भरोसा कहाँ! और यह जो

ग्रामीण लोगो का अनधिकार चर्चा करना है, वह तो बड़ी खराब चीज है। शहर के लोग अनधिकार चर्चा न करने हों, ऐसी बात नहीं, परन्तु उन्हे समय कम मिलता है, क्योंकि शहर का खर्च अधिक है, इसलिए उन्हे काम भी बहुत करना पड़ता है। इतना परिश्रम करने के बाद, खाली बैठकर हुक्का पीने और परनिन्दा करने का समय नहीं मिलता। अन्यथा ये शहरी भूत इस विषय में तो ग्रामीण भूतों की गर्दन पर चढ़कर नाचते।”

स्वामी जी की प्रत्येक दिन की कथा-वार्ता यदि मगूहीत होती, तो प्रत्येक दिन की बातें एक एक मोटी पुस्तक होती। एक ही प्रश्न का बार बार एक ही भाव से उत्तर देना एव एक ही दृष्टान्त की सहायता से उसे समझाना उनकी रीति नहीं थी। एक ही प्रश्न का उत्तर जितनी बार देते, उतनी बार नये भाव और नये दृष्टान्त के द्वारा इस प्रकार देते कि वह सुननेवालों को एकदम नया मालूम होता था, और उनकी वाणी सुनते सुनते थकावट आना तो दूर की बात रही, बल्कि और अधिक सुनने का अनुराग उत्तरोत्तर बढ़ना जाता था। व्याख्यान देने की भी उनकी यही शैली थी। पहले से सोचकर व्याख्यान की रूपरेखा को लिखकर वे कभी भी व्याख्यान नहीं देते थे। व्याख्यान-प्रारम्भ से कुछ देर पहले तक वे हँसी-मजाक, साधारण भाव से बातचीत एव व्याख्यान से विल्कुल सम्बन्ध न रखनेवाले विषयों को लेकर भी चर्चा करते रहते थे। व्याख्यान में क्या कहेगे, यह उन्हे स्वयं नहीं मालूम रहता था। हम लोग जो कुछ दिन उनके सस्पर्श में रहकर धन्य हुए हैं, उन्हीं कुछ दिनों की कथा-वार्ता का विवरण जहाँ तक और भी सम्भव है, क्रमशः लिपिवद्ध कर रहा हूँ।

३

पहले ही कह चुका हूँ कि पाश्चात्य विज्ञान की सहायता से हिन्दू धर्म को समझाने एव विज्ञान और धर्म का सामजस्य प्रदर्शित करने में स्वामी जी के समान मैंने और कोई नहीं देखा। आज उसी प्रसंग में दो-चार बातें लिखने की इच्छा है। किन्तु यह जान लेना होगा, मुझे जहाँ तक स्मरण है, उतना ही लिख रहा हूँ। अतएव इसमें यदि कोई भूल रहे, तो वह मेरे समझने की भूल है, स्वामी जी की व्याख्या की नहीं।

स्वामी जी कहते थे—“चेतन-अचेतन, स्थूल-सूक्ष्म—सभी एकत्व की ओर दम साधकर दौड़ रहे हैं। पहले मनुष्य ने जिन भिन्न भिन्न पदार्थों को देखा, उनमें से प्रत्येक को भिन्न भिन्न समझकर उनको भिन्न भिन्न नाम दिये। बाद में

विचार करके मे समस्त पदार्थ १३ मूल द्रव्यों से उत्पन्न हुए हैं, ऐसा निश्चित किया।

इन मूल द्रव्यों में अनेक विभेद द्रव्य हैं ऐसा इस समय बहुतों को समझे हो रहा है। और जब रसायनशास्त्र अन्तिम भौमांसा पर पहुँचिगा उस समय सभी पदार्थ एक ही पदार्थ के अवस्था-भेद मात्र समझे जायेंगे। पहले ताप आलोक और विद्युत् को सभी विभिन्न समझते थे। अब प्रमाणित हो गया है वे सब एक हैं, एक ही शक्ति के अवस्थान्तर मात्र हैं। लोगों ने पहले समस्त पदार्थों को चेतन अचेतन और उद्भिद इन तीन श्रेणियों में विभक्त किया था। उसके बाद देखा कि उद्भिद में भी दूसरे सभी चेतन प्राणियों के समान प्राण हैं, केवल जल-शक्ति नहीं है इतना ही। अब बाकी रही दो श्रेणियाँ—चेतन और अचेतन। फिर कुछ दिनों बाद देखा जायगा हम लोग जिन्हें अचेतन कहते हैं उनमें भी सोझा-बहुत चैतन्य है।<sup>१</sup>

“पृथ्वी में जो ऊँची-नीची जमीन देखी जाती है वह भी समस्त होकर एक रूप में परिणत होने की सवत चेष्टा कर रही है। बर्षा के जल से पर्वत आदि ऊँची जमीन कुछ जाने पर उस मिट्टी से गड्ढे भर रहे हैं। एक उष्ण पदार्थ को किसी स्थान में रखने पर वह चारों ओर के द्रव्यों के साथ समान उष्ण मात्र धारण करने की चेष्टा करता है। सज्जता-शक्ति इस प्रकार संवाहन संवाहन विकिरण आदि उपायों से सर्वदा समताव या एकत्व की ओर ही अग्रसर ही रही है।

‘बृह’ के फल फूल पत्ते और उसकी जड़ हम लोगों द्वारा भिन्न भिन्न देखे जाने पर भी वे सब वस्तुएँ एक ही हैं, विज्ञान इसे प्रमाणित कर चुका है। विकीप काँच के नीचे से देखने पर सफ़ेद रंग इन्धनमय के साथ रंग के समान पुष्क पुष्क विभक्त दिखायी पड़ता है। लाली आँखों से देखने पर एक ही रंग और काल या नीले बरमे से देखने पर सभी कुछ काल या नीला दिखायी देता है।

इसी प्रकार, जो सत्य है, वह ही एक ही है। माया के द्वारा हम लोग उसे पुष्क पुष्क देखते हैं वह इतना ही। यद्यपि रंग और काल से अतीत जो जलजड अतीत सत्य है उसीके कारण मनुष्य को सब प्रकार के भिन्न भिन्न पदार्थों का ज्ञान होता है फिर भी वह उस सत्य को नहीं पकड़ पाता उसे नहीं देख सकता।

१ स्वामी जी ने जित्त समय पूर्वीयत विषयों का प्रतिपादन किया था परत समय विख्यात वैतानिक जगदीशचन्द्र बनू द्वारा प्रचारित तद्विपरबाहू से कई पदार्थों का चैतन्यरूप अपूर्व तत्त्व प्रकाशित नहीं हुआ था। स

इन सब बातों को सुनकर मैंने कहा, “स्वामी जी, हम लोग आँखों से जो कुछ देखते हैं, वही क्या सब समय सत्य है? दो समानान्तर रेल की पटरियों को देखने पर प्रतीत होता है, मानो वे अन्त में एक जगह मिल गयी हैं। उसीका नाम है, ‘लुप्त विन्दु’। मृगतृष्णा, रज्जु में सर्प-भ्रम आदि (optical illusion) (दृष्टि-विभ्रम) सर्वदा ही होता रहता है। Calcspars नामक पत्थर के नीचे एक रेखा double refraction (द्वि-आवर्तन) से दो दिखायी देती है। एक पेन्सिल को आधे गिलास पानी में डुबाकर रखने पर पेन्सिल का जलमग्न भाग ऊपरी भाग की अपेक्षा मोटा दिखायी देता है। फिर सभी प्राणियों के नेत्र भिन्न भिन्न क्षमतायुक्त एक एक लेन्स मात्र हैं। हम लोग किसी वस्तु को जितनी बड़ी देखते हैं, घोड़ा आदि अनेक प्राणी उसको तदपेक्षा अधिक बड़ी देखते हैं, क्योंकि उनके नेत्रों का लेन्स भिन्न शक्तिवाला है। अतएव हम जिसे अपनी आँखों से देखते हैं, वही सत्य है, इसका भी तो कोई प्रमाण नहीं। जॉन स्टुअर्ट मिल ने कहा है—मनुष्य सत्य सत्य करके ही पागल है, किन्तु निरपेक्ष सत्य (absolute truth) को समझने की क्षमता उसमें नहीं है, क्योंकि, घटना-क्रम से प्रकृत सत्य के आँखों के सामने आने पर भी यही वास्तविक सत्य है, यह मनुष्य कैसे समझेगा? हम लोगों का समस्त ज्ञान सापेक्ष है, निरपेक्ष को समझने की क्षमता हममें नहीं है। अतएव निरपेक्ष (निर्गुण) भगवान् या जगत्कारण को मनुष्य कभी भी नहीं समझ सकता।”

स्वामी जी ने कहा, “हो सकता है, तुम्हें या और सब लोगों को निरपेक्ष ज्ञान न हो, पर इसीलिए किसीको भी वह ज्ञान नहीं है, यह कैसे कह सकते हो? ज्ञान और अज्ञान अथवा मिथ्या ज्ञान नामक दो प्रकार के भाव या अवस्थाएँ हैं। इस समय तुम जिसे ज्ञान कहते हो, वह तो वस्तुतः मिथ्या ज्ञान है। सत्य ज्ञान के उदित होने पर वह अन्तर्हित हो जाता है, उस समय सब एक दिखायी देता है। द्वैतज्ञान अज्ञानजनित है।”

मैंने कहा, “स्वामी जी, यह तो बड़ी भयानक बात है! यदि ज्ञान और अज्ञान, ये दो ही वस्तुएँ हैं, तो ऐसा होने पर आप जिसे सत्य ज्ञान समझते हैं, वह भी तो मिथ्या ज्ञान हो सकता है, और हम लोगों के जिस द्वैत ज्ञान को आप मिथ्या ज्ञान कहते हैं, वह भी तो सत्य ज्ञान हो सकता है?”

उन्होंने कहा, “ठीक कहते हो, इसीलिए तो वेद में विश्वास करना चाहिए। हमारे पूर्वकालीन ऋषि-मुनिगण समस्त द्वैत ज्ञान को पारकर, इस अद्वैत सत्य का अनुभव कर जो कह गये हैं, उसीको वेद कहते हैं। स्वप्न और जाग्रत अवस्थाओं में से कौन सी सत्य है और कौन सी असत्य, इसे विचारने की क्षमता हम लोगों



में नहीं है। जब तक हम भोग इन वीणा अबस्वाओं को पारकर इनकी परीक्षा नहीं कर सकेंगे तब तक कैसे कह सकते हैं कि यह सत्य है और वह असत्य ? केवल दो विभिन्न अबस्वाओं का अनुभव होता है इतना ही कहा जा सकता है। जब तुम एक अबस्वा में रहते ही तो दूसरी अबस्वा तुम्हें मूल मासूम पड़ती है। स्वप्न में हो सकता है कसकतों में तुमने क्रय-विक्रय किया पर दूसरे ही क्षण अपने को बिछीने पर लेटे हुए पाते हो। जब सत्य ज्ञान का उदय होया तब एक से भिन्न और कुछ नहीं देखोगे उस समय यह समझ सकोगे कि पहले का ईत ज्ञान मिथ्या था। किन्तु यह सब बहुत दूर की बात है। हाथ में सड़िया केकर बसरास्म करते ही यदि कोई रामायण महाभारत पढ़ने की इच्छा करे, तो यह कैसे होगा ? धर्म अनुभव का विषय है मुद्रि के द्वारा समझने का नहीं। अनुभव के लिए प्रयत्न करना ही हीया तब उसका सत्यासत्य समझा जा सकेगा। यह बात तुम सोधों के पारचार्य विज्ञान रसायनशास्त्र भौतिकशास्त्र भूमर्माशास्त्र जारि से भी अनुमोदित है। दो मंश Hydrogen (उदुवन) और एक मंस Oxygen (ओपवन) केकर 'पानी कहाँ' कहने से क्या कहीं पानी होगा ? नहीं उनको एक सक्त स्थान में रखकर उनके भीतर electric current (विद्युत्प्रवाह) चलाकर उनका combination (संयोग मिश्रण नहीं) करने पर ही पानी दिखायी देगा और जात होगा कि उदुवन और ओपवन नामक मंस से पानी उत्पन्न हुआ है। अद्वैत ज्ञान की उपसम्भि के लिए भी ठीक उची तरह धर्म में विश्वास चाहिए, आग्रह चाहिए, अभ्यससाय चाहिए और चाहिए प्राणपण सं यत्न। तब कही अद्वैत ज्ञान होता है। एक महीने की आरत जोड़ना कितना कठिन होता है फिर उस सारु की आरत की तो बात ही क्या ! प्रत्येक व्यक्ति के सैकड़ों जर्मों का कर्मफल पीठ पर बैठा हुआ है। एक मुहूर्त भर रमधान बैराग्य हुआ मही कि बस कहने लगे कहाँ मुझे तो सब एक दिखायी मही पड़ता ?

मैंने कहा 'स्वामी जी आपकी यह बात सत्य होने पर तो Fatalism (अदुष्टवाद) आ जाता है। यदि बहुत जर्मों का कर्मफल एक जर्म में जाने का मही तो उसके लिए फिर प्रयत्न ही क्यों ! जब सभी को मुक्ति मिलेगी तो मुझे भी मिलेगी।

वे बोले बैसा नहीं है। कर्म का फल तो अवश्य दीपना होगा किन्तु जबक उपायों द्वारा ये सब कर्मफल बहुत बोड़े समय के भीतर समाप्त हो सकते हैं। भौतिक सैटन'की पचास तस्वीरें बस मिनट के भीतर भी दिखायी जा सकती हैं और दिपाने दिपाने समस्त रात भी काटी जा सकती है। यह ही अपने आग्रह क ऊपर निर्भर है।

सृष्टि-रहस्य के सम्बन्ध में भी स्वामी जी की व्याख्या अति सुन्दर है,—“सृष्टि वस्तु मात्र ही चेतन और अचेतन (सुविधा के लिए) इन दो भागों में विभक्त है। मनुष्य सृष्टि वस्तु के चेतन-भाग का श्रेष्ठ प्राणीविशेष है। किसी किमी धर्म के मतानुसार ईश्वर ने अपने ही ममान रूपवाली सर्वश्रेष्ठ मानव जाति का निर्माण किया है, कोई कहते हैं—मनुष्य पुच्छरहित वानरविशेष है, कोई कहते हैं—केवल मनुष्य में ही विवेचना-शक्ति है, उसका कारण यह है कि मनुष्य के मस्तिष्क में जल का अंश अधिक है। जो भी हो, मनुष्य प्राणीविशेष है और सब प्राणी सृष्टि पदार्थ के अंश मात्र है, इस विषय में मतभेद नहीं है। अब एक ओर पाश्चात्य विद्वान् ‘सृष्टि पदार्थ क्या है,’ यह समझने के लिए सश्लेषण-विश्लेषणात्मक उपायों का अवलम्बन कर ‘यह क्या,’ ‘वह क्या,’ इस प्रकार अनुसन्धान करने लगे, और दूसरी ओर हमारे पूर्वज लोग भारत की गर्म हवा और उर्वरा भूमि में, शरीर-रक्षा के लिए बिल्कुल थोड़ा समय देकर, कौपीन धारण कर, टिमटिमाते दिव्ये के प्रकाश में बैठकर, कमर बाँधकर विचार करने लगे—कस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति, अर्थात् ‘ऐसा कौन सा पदार्थ है, जिसके जान लेने पर सब कुछ जाना जा सकता है?’ उन लोगों में अनेक प्रकार के लोग थे। इसीलिए चार्वाक के, ‘जो कुछ दिखता है, वही सत्य है,’ इस मत (ultra-materialistic theory) से लेकर शंकराचार्य के अद्वैत मत तक सभी हमारे धर्म में पाये जाते हैं। ये दोनों ही दल धीरे धीरे एक स्थान में पहुँच रहे हैं और अब दोनों ने एक ही बात कहनी आरम्भ कर दी है। दोनों ही कहते हैं—इस ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थ एक अनिर्वचनीय, अनादि, अनन्त वस्तु के प्रकाश मात्र हैं। देश एव काल भी वही हैं। काल अर्थात् युग, कल्प, वर्ष, मास, दिन और मुहूर्त आदि समयसूचक काल, जिसके अनुभव में सूर्य की गति ही हमारी प्रधान सहायक है। ज़रा सोचकर तो देखो, वह काल क्या मालूम होता है? सूर्य अनादि नहीं है, ऐसा समय अवश्य था, जब सूर्य की सृष्टि नहीं हुई थी। और ऐसा समय भी आयेगा, जब यह सूर्य नहीं रहेगा, यह निश्चित है। अतः अखण्ड समय एक अनिर्वचनीय भाव या वस्तु विशेष के अतिरिक्त भला और क्या है? देश या आकाश कहने पर हम लोग पृथ्वी अथवा सौर जगत् सम्बन्धी सीमाबद्ध स्थानविशेष समझते हैं, किन्तु वह तो समग्र सृष्टि का अंश मात्र छोड़ और कुछ भी नहीं है। ऐसा भी स्थान हो सकता है, जहाँ पर कोई सृष्टि वस्तु नहीं है। अतएव अनन्त देश भी काल के समान एक अनिर्वचनीय भाव या वस्तुविशेष है। अब, सौर जगत् और सृष्टि पदार्थ कहाँ से और किस तरह आये? साधारणतः हम लोग कर्ता के अभाव में क्रिया नहीं देख पाते। अतएव समझते हैं कि इस सृष्टि का अवश्य कोई कर्ता है, किन्तु ऐसा

होने पर तो सृष्टिकर्ता का भी कोई सृष्टिकर्ता आवश्यक है। किन्तु ऐसा हो नहीं सकता। अतएव भावि कारण सृष्टिकर्ता या ईश्वर भी अनादि अनिर्बन्धीय अनस्त भाव या वस्तुविशेष है। पर अनस्त की अनेकता तो सम्भव नहीं है। अतएव ये सब अनस्त वस्तुएँ एक ही हैं एवं एक ही विविध रूपों में प्रकाशित हैं।

एक समय मैंने पूछा था "स्वामी जी मन्त्र भावि में जो सामारमठया विरवास प्रचलित है वह क्या सत्य है ?

उम्होंने उत्तर दिया 'सत्य न होने का कोई कारण तो दिखता नहीं। तुमसे कोई मवि कस्य स्वर एवं मधुर भाषा में कोई बात पूछे तो तुम समुष्ट होते हो पर कठोर स्वर एवं तीखी भाषा में पूछे तो तुम्हें क्रोध आ जाता है। तब फिर मन्त्रा प्रत्येक मूत्र के अविच्छाता देवता सुसंस्कृत उत्तम श्लोकों द्वारा क्यों न समुष्ट होमि ?

इन सब बातों को सुनकर मैंने कहा 'स्वामी जी मेरी विद्या-बुद्धि की बीड़ को तो आप अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस समय मेरा क्या कर्तव्य है, यह आप बतलाने की कृपा करें।

स्वामी जी ने कहा 'बिना प्रकार भी हो पहले मत को बच में छाने की चेष्टा करो बाह में सब आप ही ही ज्ञायमा। ध्यान रखो अद्वैत ज्ञान अस्पष्ट कल्पि है नहीं मामब-जीवन का चरम उद्देश्य या लक्ष्य है, किन्तु उस सक्रम तक पहुँचने के पहले अनेक चेष्टा और आसोजन की आवश्यकता होती है। साधु-संघ और यमार्थ-वैद्य को छोड़ उसके अनुभव का और कोई साधन नहीं।

## स्वामी जी की अस्फुट स्मृति ' १

१

आज से सोलह वर्ष पहले की बात है। सन् १८९७ ईस्वी, फरवरी मास। स्वामी विवेकानन्द ने पाश्चात्य देशों को जीतकर अभी अभी भारत में पदार्पण किया है। जिस क्षण से स्वामी जी ने शिकागो धर्म-महासभा में हिन्दू धर्म की विजय-पताका फहरायी है, तब से उनके सम्बन्ध में जो भी बात सवाद-पत्रों में प्रकाशित होती है, बड़े चाव से पढ़ता हूँ। कॉलेज छोड़े अभी दो-तीन वर्ष हुए हैं, किसी प्रकार का अर्थोपार्जन आदि नहीं कर रहा हूँ। इसलिए कभी मित्रों के घर जाकर, अथवा कभी घर के समीपवर्ती धर्मतला मुहल्ले में 'इण्डियन मिरर' आफिस के बाहरी भाग में बोर्ड पर चिपकी हुई 'इण्डियन मिरर' पत्रिका में स्वामी जी से सम्बन्धित जो कोई सवाद या उनका व्याख्यान प्रकाशित होता है, उसे बड़ी उत्सुकता से पढ़ा करता हूँ। इस प्रकार, स्वामी जी के भारत में पदार्पण करने के समय से सिंहल या मद्रास में जो कुछ उन्होंने कहा है, प्रायः सभी पढ़ चुका हूँ। इसके सिवाय आलमबाजार मठ में जाकर उनके गुरुभाइयों के पास एव मठ में आने-जानेवाले मित्रों के पास उनके विषय में बहुत सी बातें सुन चुका हूँ और सुनता हूँ, तथा विभिन्न सम्प्रदायों के मुखपत्र, जैसे—बगवासी, अमृतबाजार, होप, थियोसॉफिस्ट प्रभृति, अपनी अपनी समझ के अनुसार—कोई व्यग से, कोई उपदेश देने के बहाने, तो कोई बडप्पन के ढग से—उनके वारे में जो कुछ लिखता है, वह भी लगभग सब पढ़ चुका हूँ।

आज वे ही स्वामी विवेकानन्द सियालदह स्टेशन पर अपनी जन्मभूमि कलकत्ता नगरी में पदार्पण करेंगे। अब आज उनकी श्री मूर्ति के दर्शन से आँख-कान का विवाद समाप्त हो जायगा, इस हेतु बड़े तडके ही उठकर सियालदह स्टेशन पर जा उपस्थित हुआ। इतने सवरे से ही स्वामी जी की अभ्यर्थना के लिए बहुत से लोग एकत्र हो गये हैं। अनेक परिचित व्यक्तियों से भेंट हुई। स्वामी जी

१ बगला सन् १३२० के आषाढ़ मास के बगला मासिक-पत्र 'उद्बोधन' में स्वामी शुद्धानन्द का यह लेख प्रकाशित हुआ था। स०

होने पर तो सृष्टिकर्ता का भी कोई सृष्टिकर्ता आवश्यक है। किन्तु वैसा हो नहीं सकता। अतएव यदि कारण सृष्टिकर्ता या ईश्वर भी अनादि, अनिर्बन्धीय अनन्त भाव या वस्तुविशेष है। पर अनन्त को अनिक्ता तो सम्भव नहीं है। अतएव ये सब अमन्त वस्तुएँ एक ही हैं। एवं एक ही विविध रूपों में प्रकाशित हैं।

एक समय मैंने पूछा था 'स्वामी जी मन्त्र आदि में जो साधारणतया विश्वास प्रदर्शित है वह क्या सत्य है ?

उन्होंने उत्तर दिया 'सत्य न होने का कोई कारण तो दिखता नहीं। तुमसे कोई यदि कश्चि स्वर एवं मन्त्र माया में कोई बात पूछे तो तुम अनुप्य होते हो पर कठोर स्वर एवं तीक्ष्ण भाषा में पूछे तो तुम्हें क्रोध आ जाता है। तब फिर यथा प्रत्येक मूत के अधिष्ठाता देवता सुकृष्टित उत्तम स्त्रोत्रों द्वारा क्यों न अनुप्य होगी ?

इन सब बातों को सुनकर मैंने कहा 'स्वामी जी मेरी विद्या-बुद्धि की रीढ़ की जो आप बख्शी तरह समझ सकते हैं। इस समय मेरा क्या कर्तव्य है यह आप बतलाने की कृपा करें।

स्वामी जी ने कहा "बिना प्रकार भी हो पहले मन को बस में साने की चेष्टा करो बाद में सब आप ही हो जायगा। ध्यान रखो धैर्य ज्ञान अत्यन्त कठिन है वही मानव-जीवन का चरम उद्देश्य या सत्य है, किन्तु उस कठ्य तक पहुँचने के पहले अनेक चेष्टा और आयोजन की आवश्यकता होती है। साधु-संग और यत्नार्थ ईश्वर की छोड़ उसके अनुभव का और कोई साधन नहीं।

के इशारे से जनता को नियन्त्रित कर रहे हैं, और दूसरी गाडी मे गुडविन, हैरिसन (सिंहल से स्वामी जी के साथ आये हुए बौद्ध धर्मावलम्बी एक साहव), जी० जी०, किडी और आलार्सिंगा नामक तीन मद्रासी शिष्य एव स्वामी त्रिगुणातीतानन्द जी बैठे हुए हैं।

थोड़ी देर गाडी रुकने के बाद, बहुतो के अनुरोधवश स्वामी जी रिपन कॉलेज मे प्रवेश कर दो-तीन मिनट अग्रेजी मे थोडा बोले और लौटकर गाडी मे आकर बैठ गये। यहाँ से जुलूस आगे नहीं गया। गाडी वागवाज्जार मे पशुपति बाबू के घर की ओर चली। मैं भी मन ही मन स्वामी जी को प्रणाम कर अपने घर की ओर लौटा।

## २

भोजन करने के बाद मध्याह्न काल मे चाँपातला मुहल्ले मे खगेन (स्वामी विमलानन्द) के घर गया। वहाँ से खगेन और मैं उसके टांगे मे बैठकर पशुपति बोस के घर की ओर चले। स्वामी जी ऊपर के कमरे मे विश्राम कर रहे थे, अधिक लोगो को नहीं जाने दिया जा रहा था। सौभाग्यवश हमारे परिचित, स्वामी जी के अनेक गुरुभाइयो से भेंट हो गयी। स्वामी शिवानन्द जी हम लोगो को स्वामी जी के पास ले गये और हम लोगो का परिचय देते हुए कहा, “ये सब आपके खूब admirers (प्रेमी) हैं।”

स्वामी जी और स्वामी योगानन्द पशुपति बाबू के घर की दूसरी मजिल पर एक मुसज्जित बैठकखाने मे पास पास दो कुर्सियो पर बैठे थे। अन्य साधुगण उज्ज्वल गौरिक वस्त्र धारण किये हुए इधर-उधर घूम रहे थे। फर्श पर दरी बिछी हुई थी। हम लोग प्रणाम करके दरी पर बैठे। स्वामी जी उस समय स्वामी योगानन्द से बातचीत कर रहे थे। अमेरिका और यूरोप मे स्वामी जी ने क्या देखा, यह प्रसंग चल रहा था। स्वामी जी कह रहे थे—

“देख योगेन, क्या देखा, बताऊँ? समस्त पृथ्वी मे एक महाशक्ति ही क्रीडा कर रही है। हमारे पूर्वजो ने उसको religion (धर्म) की ओर manifest (प्रकाशित) किया था, और आधुनिक पारश्चात्य देशीय लोग उसीको महा रजो-गुणात्मक क्रिया के रूप मे manifest (प्रकाशित) कर रहे हैं। वस्तुतः समग्र जगत् मे वही एक महाशक्ति भिन्न भिन्न रूप मे क्रीडा कर रही है।”

खगेन की ओर देखकर स्वामी जी ने कहा, “इस लडके को बहुत sickly (कमजोर) देखता हूँ।”

क सम्बन्ध में बातचीत होने लगी। देखा अंग्रेजी में मुद्रित दो परपे बितरित किये जा रहे हैं। पढ़कर मामूम हुआ कि ईंग्लैण्ड और अमेरिकावासी उनके छात्रवृत्त में उनके प्रस्थान के अवसर पर उनके मुँहों का दर्शन करते हुए, उनके प्रति इतजता-सूचक जो जो अभिनन्दन-यत्र अर्पित किये थे वे ही य है। धीरे धीरे स्वामी जी के बर्षगाभी लोम मुण्ड के मुण्ड जाने लगे। प्लेटफार्म लोगों से भर गया। सभी आपस में एक दूसरे से उत्कण्ठा के साथ पूछते हैं 'स्वामी जी के जाने में और कितना विरम्व है? सुना मया वे एक 'स्पेशल ट्रेन' से मायेंगे जाने में जब और बेरी नहीं है। अरे, यह तो है,—गाड़ी का सभ्य मुतापी वे रहा है। कमस जाबाज के साथ गाड़ी ने प्लेटफार्म के मीतर प्रवेश किया।

स्वामी जी जिस विम्बे में थे वह जिस जगह जाकर बका सीमाय से मैं ठीक उसीके सामने खड़ा था। गाड़ी रुकते ही देखा स्वामी जी बाड़े हाथ जोड़कर सबको नमस्कार कर रहे हैं। इस एक ही नमस्कार से स्वामी जी ने मेरे हृदय को आकृष्ट कर लिया। उस समय गाड़ी में बैठ हुए स्वामी जी की मूर्ति को मैंने साधारणतः देखा लिया। उसके बाद स्वागत-समिति के भीमठ नरेन्द्रनाथ सेन जादि व्यक्तियों ने जाकर स्वामी जी को गाड़ी से उतारा और कुछ दूर खड़ी एक माड़ी में बिठाया। बहुत से छोटा स्वामी जी को प्रणाम करने और उनकी चरण रेणु छेने के लिए अग्रसर हुए। उस जगह खड़ी भीड़ जमा हो गयी। इधर दर्शकों के हृदय से माप ही 'जय स्वामी विवेकानन्द जी की जय 'जय श्री रामकृष्ण देव की जय की आनन्द-ध्वनि निकलने लगी। मैं भी हृदय से उस आनन्द-ध्वनि में सह योग देकर जनता के साथ अग्रसर होने लगा। कमस जब स्टेशन के बाहर निकले तो देखा बहुत से मुचक स्वामी जी की माड़ी के बोड़े लोलकर खूब ही माड़ी लीचने के लिए अग्रसर हो रहे हैं। मैंने भी उन लोगों को सहयोग देना चाहा परन्तु भीड़ के कारण बीसा न कर सका। इसलिये उस जेप्टा को छोड़कर कुछ दूर से स्वामी जी की माड़ी के साथ चलने लगा। स्टेशन पर स्वामी जी के स्वागतार्थ माये हुए एक हरिनाम-सकीर्तन-दल को देखा जा। रास्ते में एक बँध बजायेवाके दल को बँध बजाते हुए स्वामी जी के साथ चलते देखा। रिपन कॉलेज तक का मार्ग अनेक प्रकार की पताकाओं एवं क्स्ता पत्र और पुष्पों से सुसज्जित था। माड़ी जाकर रिपन कॉलेज के सामने खड़ी हुई। इस बार स्वामी जी को देखने का बन्धा सुयोग मिला। देखा वे किसी परिचित व्यक्ति से कुछ कह रहे हैं। मुस उपकाचनचर्च हैं मानो ज्योति फूटकर बाहर निकल रही है। मार्गजतिव धम के कारण कुछ पछीना जा रहा है। दो माड़ियाँ हैं—एक से स्वामी जी एवं श्रीमान और भीमठी सेबियर बैठे हैं जिसमें खड़े होकर माननीय चारुचन्द्र मिश्र हाथ

के इशारे से जनता को नियन्त्रित कर रहे है, और दूसरी गाडी मे गुडविन, हैरिसन (सिंहल से स्वामी जी के साथ आये हुए बौद्ध धर्मावलम्बी एक साहब), जी० जी०, किडी और आलार्सिंगा नामक तीन मद्रासी शिष्य एव स्वामी त्रिगुणातीतानन्द जी बैठे हुए हैं।

थोड़ी देर गाडी रुकने के बाद, बहुतो के अनुरोधवश स्वामी जी रिपन कॉलेज मे प्रवेश कर दो-तीन मिनट अग्रेजी मे थोडा बोले और लौटकर गाडी मे आकर बैठ गये। यहाँ से जुलूस आगे नहीं गया। गाडी वागवाज़ार मे पशुपति बाबू के घर की ओर चली। मैं भी मन ही मन स्वामी जी को प्रणाम कर अपने घर की ओर लौटा।

२

भोजन करने के बाद मध्याह्न काल मे चाँपातला मुहुल्ले में खगेन (स्वामी विमलानन्द) के घर गया। वहाँ से खगेन और मैं उसके टाँगे मे बैठकर पशुपति चोस के घर की ओर चले। स्वामी जी ऊपर के कमरे मे विश्राम कर रहे थे, अधिक लोगो को नहीं जाने दिया जा रहा था। सौभाग्यवश हमारे परिचित, स्वामी जी के अनेक गुरुभाइयो से भेंट हो गयी। स्वामी शिवानन्द जी हम लोगो को स्वामी जी के पास ले गये और हम लोगो का परिचय देते हुए कहा, “ये सब आपके खूब admirers (प्रेमी) हैं।”

स्वामी जी और स्वामी योगानन्द पशुपति बाबू के घर की दूसरी मज़िल पर एक सुसज्जित बैठकखाने मे पास पास दो कुर्सियो पर बैठे थे। अन्य साधुगण उज्ज्वल गैरिक वस्त्र धारण किये हुए इधर-उधर घूम रहे थे। फर्श पर दरी बिछी हुई थी। हम लोग प्रणाम करके दरी पर बैठे। स्वामी जी उस समय स्वामी योगानन्द से बातचीत कर रहे थे। अमेरिका और यूरोप मे स्वामी जी ने क्या देखा, यह प्रसंग चल रहा था। स्वामी जी कह रहे थे—

“देख योगेन, क्या देखा, बतारूँ? समस्त पृथ्वी मे एक महाशक्ति ही क्रीडा कर रही है। हमारे पूर्वजो ने उसको religion (धर्म) की ओर manifest (प्रकाशित) किया था, और आधुनिक पाश्चात्य देशीय लोग उसीको महा रजो-गुणात्मक क्रिया के रूप मे manifest (प्रकाशित) कर रहे हैं। वस्तुतः ममग्र जगत् मे वही एक महाशक्ति भिन्न भिन्न रूप मे क्रीडा कर रही है।”

खगेन की ओर देखकर स्वामी जी ने कहा, “इस लडके को बहुत sickly (कमज़ोर) देखता हूँ।”



स्वामी त्रिपालर जी ने उत्तर दिया "यह बड़ा लिंग मे chronic dyspepsia (गुगन बर्जित रोग) मे पीड़ित है।"

स्वामी जी न बहो हमारा बहना देज बहुत sentimental (भावुक) है न हमीलिए मनी इतना dyspepsia होता है।

कुछ देर बाद हम लोग प्रणाम करके भाग्य भाग्य पर लौट आये।

३

स्वामी जी और उनका पिता श्रीमान और श्रीमती मेडिकर बाबापुर मे स्व. गौतमनाथ शंकर व वैद्यक संनिताग बन रहे है। स्वामी जी के श्रीमता स बधा बार्ता गुगन क लिए करने बहुत से दिवा के गाय मे हम स्थान पर कई बार गया था। वहाँ का प्रमाण जो कुछ स्मरण है, वह इस प्रकार है

स्वामी जी क गाय मुस बाबाबाग का गौनाथ शंकरबन उगी शंकर के एक कमरे मे हुआ। स्वामी जी धाकर बैठे है मे भी जाकर प्रणाम करके बैठे है उम समय बाबाजीर कोई नहीं है। न जाने क्यों, स्वामी जी मे एकएक मुससे पूछा क्या तु तम्बाक पीता है ?

मिने कहा जी नहीं।

उग पर स्वामी जी बीन ही बहुत मे साग बनत है—तम्बाक पीता बण्डा नहीं।

एक हमरे दिन स्वामी जी क पास एक वंज्यम आये हुए है। स्वामी जी उनका साथ बाबाबाग बन रहे है। मे कुछ दूर पर बैठे हूँ और कोन नहीं है। स्वामी जी कह रहे है बाबा जी अमरिका मे मैं भी इष्य के सम्बन्ध मे एक बार व्याख्यान दिया। उसको सुनकर एक परम सुन्दरी अगाध एरबरी की अधिकारिणी पुबती सर्वस्व त्यागकर एक मिर्जन द्वीप मे जाकर श्री इष्य के ध्यान मे उन्मत्त हो गयी। उसके बाद स्वामी जी त्याग के सम्बन्ध मे कहने लगे "दिल सम्प्रदायी मे त्याग-आव का प्रचार उतमे उज्ज्वल रूप मे नहीं है उनका भीतर सीध ही अवनति आ जाती है जैसे—बसुमाचार्य का सम्प्रदाय।"

और एक दिन स्वामी जी के पास गया। देखता हूँ बहुत से लोग बैठे है और स्वामी जी एक मुकक को बकस कर बाबाबाग बन रहे है। मुकक बंधाक चियो-सोडिकक सीसाबटी के मबन मे रहता है। वह कह रहा है "मे अनेक सम्प्रदायी मे जाता हूँ किन्तु सत्य क्या है, यह निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ।"

स्वामी जी अत्यन्त स्नेहपूर्ण स्वर में कह रहे हैं, “देखो बच्चा, मेरी भी एक दिन तुम्हारी जैसी अवस्था थी। फिर भय क्या? अच्छा, भिन्न भिन्न लोगो ने तुमसे क्या क्या कहा था, और तुमने क्या क्या किया, बताओ तो सही?”

युवक कहने लगा, “महाराज, हमारी सोसाइटी में भवानीशकर नामक एक विद्वान् प्रचारक हैं। मूर्तिपूजा के द्वारा आध्यात्मिक उन्नति में जो विशेष सहायता मिलती है, उसे उन्होंने मुझे बहुत सुन्दर ढंग से समझा दिया। मैंने भी तदनुसार कुछ दिनों तक खूब पूजा-अर्चना की, किन्तु उससे शान्ति नहीं मिली। उसी समय एक महाशय ने मुझे उपदेश दिया—‘देखो, मन को बिल्कुल शून्य करने की कोशिश करो, उससे तुम्हें परम शान्ति मिलेगी।’ मैं बहुत दिनों तक उसी कोशिश में लगा रहा किन्तु उससे भी मेरा मन शान्त न हुआ। महाराज, मैं अब भी एक कोठरी में, दरवाजा बन्द कर, जब तक बन पड़ता है, बैठा रहता हूँ, किन्तु शान्ति तो किसी भी तरह नहीं मिल रही है। क्या आप दया कर यह बता सकेंगे, शान्ति किससे मिलेगी?”

स्वामी जी स्नेहभरे स्वर में कहने लगे, “बच्चा, यदि तुम मेरी बात सुनो, तो तुम्हें अब पहले अपनी कोठरी का दरवाजा खुला रखना होगा। तुम्हारे घर के पास, बस्ती के पास कितने अभावग्रस्त लोग रहते हैं, उनकी तुम्हें यथासाध्य सेवा करनी होगी। जो पीडित है, उसके लिए औषधि और पथ्य का प्रबन्ध करो और शरीर के द्वारा उसकी सेवा-शुश्रूषा करो। जो भूखा है, उसके लिए खाने का प्रबन्ध करो। तुमने तो इतना पढा-लिखा है, अतः जो अज्ञानी है, उसे वाणी द्वारा जहाँ तक हो सके, समझाओ। यदि तुम मेरा परामर्श मानो, तो इस प्रकार लोगो की यथासाध्य सेवा करो। यदि तुम इस प्रकार कर सकोगे, तो तुम्हारे मन को अवश्य शान्ति मिलेगी।”

युवक बोला, “अच्छा, महाराज, मान लीजिए, मैं एक रोगी की सेवा करने के लिए गया, किन्तु उसके लिए रात भर जगने से, समय पर भोजन आदि न करने तथा अधिक परिश्रम से यदि मैं स्वयं ही रोगग्रस्त हो जाऊँ तो?”

स्वामी जी अब तक उस युवक के साथ स्नेहपूर्ण स्वर में सहानुभूति के साथ बातें कर रहे थे। इस अन्तिम वाक्य से ऐसा जान पड़ा कि वे कुछ विरक्त से हो गये। वे कुछ व्यग-भाव से कह उठे, “देखो जी, रोगी की सेवा करने के लिए जाने पर तुम अपने रोग की आशंका कर रहे हो, किन्तु तुम्हारी बातचीत सुनने पर और तुम्हारा मनोभाव देखने पर मुझे तो मालूम पड़ता है—और जो यहाँ उपस्थित हैं, वे भी खूब अच्छी तरह समझ सकते हैं—कि तुम ऐसे रोगी की सेवा कभी भी नहीं करोगे, जिससे तुम्हें खुद को ही रोग हो जाय।”

मुक्क के साथ और कोई विरोध बातचीत नहीं हुई। हम सोच समझ मने मह स्वन्ति 'शैची शेणी का है मयत्तु जैसे शैची थो कुछ भी मिछे उछीको काट देती है उसी प्रकार एक मर्चा के मनुष्य है जो कोई अनुपवेश सुनने से ही उसमे मुक्ति निकालते है जिनकी निगाह इन उपरिष्ट विषयों में दीप देखने के लिए बड़ी पैनी रखी है। ऐसे सोचों से चाह किन्तनी ही मन्की बात क्यों न कहिए, सभी की बात वे तर्क द्वारा काट देते है।

एक दूसरे दिन मास्टर महाशय (श्री रामकृष्ण बचनामृत के प्रणेता श्री 'म') के साथ बातशाय हो रहा है। मास्टर महाशय कह रहे है 'देखो तुम जो क्या परोपकार और जीव-सेवा आदि की बातें करते हो वे तो माया के राज्य की बातें हैं। जब देवान्त-मय में मानव का चरम सद्य मुक्ति-काम और माया-बन्धन का विच्छेद है तो फिर उन सब माया-व्यापारों में लिप्त होकर लोगों को क्या परोपकार आदि विषयों का उपवेश देने में क्या काम ?'

स्वामी जी ने तत्पश्च उत्तर दिया 'मुक्ति भी क्या मामा के अन्तर्गत नहीं है? आत्मा तो नित्य मुक्त है फिर उसकी मुक्ति के लिये क्या करना ?'

मास्टर महाशय चुप हो गये।

मैं समझ गया मास्टर महाशय क्या सेवा परोपकार आदि सब छोड़कर, सभी प्रकार के अधिकारियों के लिए केवल जप-तप ध्यान-धारणा या भक्ति का ही एकमात्र साधन के रूप में समर्पण कर रहे थे किन्तु स्वामी जी के मतानुसार, एक प्रकार के अधिकारियों के लिए इन सबका अनुष्ठान निश्च तरह मुक्ति-काम के लिए आवश्यक है उसी प्रकार ऐसे भी बहुत से अधिकारी हैं जिनके लिए परोपकार, दान सेवा आदि आवश्यक है। एक को उड़ा देने से दूसरे को भी उड़ा देना होमा एक को स्वीकार करने पर दूसरे को भी स्वीकार करना पड़ेगा। स्वामी जी के इस प्रत्युत्तर से यह बात अच्छी तरह समझ में आ गयी कि मास्टर महाशय क्या सेवा आदि की 'माया' छत्र से उड़ाकर और जप-ध्यान आदि की ही मुख्य रूपकर सर्वोच्च ज्ञान का परिपोषण कर रहे थे। परन्तु स्वामी जी का उत्तर हृदय और धूरे की चारक समान उनकी तीक्ष्ण बुद्धि उसे सहन न कर सकी। अपनी अनुभूत मुक्ति से उन्होंने मुक्ति-काम की चेष्टा को भी माया के अन्तर्गत ही निर्धारित क्रिया एव क्या सेवा आदि के साथ उसको एक श्रेणी में लाकर उन्होंने सर्वोप के पथिक को भी आशय दिया।

बौद्ध-प-कैम्पस के 'मिता-अनुकरण' (Imitation of Christ) का प्रथम उपा। बहुत से लोग जानने होंगे कि स्वामी जी सत्कार-स्वागत करन से कुछ पहले इस ग्रन्थ की विरोध का से चर्चा किया करते थे और बराहमणर मठ में रहते

समय उनके सभी गुरुभाई उन्हींके समान इस ग्रन्थ को साधक-जीवन में विशेष सहायक समझकर सर्वदा इस पर विचार किया करते थे। स्वामी जी इस ग्रन्थ के इतने अनुरागी थे कि उस समय के 'साहित्य-कल्पद्रुम' नामक मासिक पत्र में उसकी एक प्रस्तावना लिखकर उन्होंने 'ईसा-अनुसरण' नाम से उसका सुन्दर अनुवाद करना भी आरम्भ कर दिया था। प्रस्तावना पढ़ने से ही यह मालूम हो जाता है कि स्वामी जी इस ग्रन्थ तथा ग्रन्थकार को कितनी गम्भीर श्रद्धा से देखते थे। वास्तव में, उसमें विवेक, वैराग्य, दीनता, दास्य, भक्ति आदि के ऐसे सैकड़ों ज्वलन्त उपदेश हैं कि जो उसे पढ़ेंगे, उनके हृदय में वे भाव कुछ न कुछ अवश्य उद्दीपित होंगे। उपस्थित व्यक्तियों में से एक सज्जन यह जानने के लिए कि स्वामी जी का इस समय उस ग्रन्थ के प्रति कैसा भाव है, उस ग्रन्थ में वर्णित दीनता के उपदेश का प्रसंग उठाते हुए बोले, "अपने को इस प्रकार अत्यन्त हीन समझे बिना आध्यात्मिक उन्नति कैसे हो सकती है?" स्वामी जी यह सुनकर कहने लगे, "हम लोग हीन कैसे? हम लोगो के लिए अन्धकार कहाँ? हम लोग तो ज्योति के राज्य में वास करते हैं, हम लोग तो ज्योति के तनय हैं।"

उनका इस प्रकार प्रत्युत्तर सुनकर मैं समझ गया कि स्वामी जी उक्त ग्रन्थ-निर्दिष्ट इन प्राथमिक साधन-सोपानों को पारकर साधना-राज्य की कितनी उच्च भूमि में पहुँच गये हैं।

हम लोग यह विशेष रूप से देखते थे कि ससार की अत्यन्त सामान्य घटनाएँ भी उनकी तीक्ष्ण दृष्टि को धोखा नहीं दे सकती थी। वे उन घटनाओं की सहायता से भी उच्च धर्मभाव का प्रचार करने की चेष्टा करते थे।

श्री रामकृष्ण देव के भतीजे श्रीयुत रामलाल चट्टोपाध्याय (मठ के पुराने साधुगण, जिन्हें रामलाल दादा कहकर पुकारते हैं) दक्षिणेश्वर से एक दिन स्वामी जी से मिलने आये। स्वामी जी ने एक कुर्सी मँगवाकर उनसे बैठने के लिए अनुरोध किया और स्वयं टहलने लगे। श्रद्धाविनम्र दादा इससे कुछ सकुचित होकर कहने लगे, "आप बैठें, आप बैठें।" पर स्वामी जी उन्हें किसी तरह छोड़नेवाले नहीं थे। बहुत कह-सुनकर दादा को कुर्सी पर बिठाया और स्वयं टहलते टहलते कहने लगे, "गुरुवत् गुरुपुत्रेषु।" (गुरु के पुत्र एवं सम्बन्धियों के साथ गुरु जैसा ही व्यवहार करना चाहिए।) मैंने देखा, इतना ऐश्वर्य, इतना मान पाकर भी हमारे स्वामी जी को थोड़ा सा भी अभिमान नहीं हुआ है। यह भी समझा, गुरुभक्ति इसी तरह की जाती है।

बहुत से छात्र आये हुए हैं। स्वामी जी एक कुर्सी पर बैठे हुए हैं। सभी उनके पास बैठकर उनकी दो-चार बातें सुनने के लिए उत्सुक हैं। वहाँ पर और

स्वामी जी के कथन का सम्पूर्ण भर्म न समझ सकने के कारण वे जब विमान-  
घर में प्रवेश कर रहे थे तब आगे बढ़कर उनके पास आकर खड़ी बाव बोले  
“सुन्दर लड़कों की आप क्या बात कर रहे थे?”

स्वामी जी ने कहा “जिनकी मूढाकृति सुन्दर ही ऐसे लड़के में नहीं चाहता—  
मैं तो चाहता हूँ जब स्वस्थ शरीर, कर्मठ एवं सत्प्रकृति युक्त कुछ लड़के। उन्हें  
train करना (शिक्षा देना) चाहता हूँ जिससे वे अपनी मुक्ति के लिए और  
जगत के कल्याण के लिए प्रस्तुत हो सकें।

और एक दिन जाकर देखा स्वामी जी टहक रहे हैं। श्रीयुत सरस्वत चक्रवर्ती  
(‘स्वामी-विश्व-सबाद’ नामक पुस्तक के रचयिता) स्वामी जी के साथ कुछ  
बनिष्ठ भाव से बातें कर रहे हैं। स्वामी जी से एक प्रश्न पूछने की हमें अवसरिक  
उत्कण्ठ हुई। प्रश्न यह था—अबतार और मुक्त या सिद्ध पुरुष में क्या अन्तर  
है? हमने शरत् बाबू से स्वामी जी के सम्मुख इस प्रश्न को उठाने के लिए विशेष  
अनुरोध किया। अब उन्होंने स्वामी जी से यह प्रश्न पूछा। हम सोच गए  
बाबू के पीछे पीछे यह सुनने के लिए गये कि देखें स्वामी जी इस प्रश्न का क्या  
उत्तर देते हैं। स्वामी जी उस प्रश्न के सम्बन्ध में बिना कोई प्रकट उत्तर बिना  
कहने लगे ‘विदेह-मुक्त ही सर्वोच्च अवस्था है—यही मेरा सिद्धान्त है। जब  
मैं साधनावस्था में भारत के अनेक स्थानों में भ्रमण कर रहा था उस समय  
कितनी निर्जन गुफाओं में अकेले बैठकर कितना समय बिताया है। मुक्ति प्राप्त  
नहीं हुई, यह सोचकर कितनी बार प्रायोगेयन द्वारा देह त्याग देने का भी संकल्प  
किया है कितना ध्यान कितना साधन-भजन किया है! किन्तु अब मुक्ति-  
भ्रम के लिए वह ‘विजातीय’ आग्रह नहीं रहा। इस समय तो मन में केवल यही  
होता है कि जब तक पृथ्वी पर एक भी मनुष्य अमुक्त है तब तक मुझे अपनी  
मुक्ति की कोई आवश्यकता नहीं।

मैं तो स्वामी जी की उक्त बाणी सुनकर उनके हृदय की अपार कल्याण की  
बात सोचकर चिस्मित हो गया और सोचने लगा इन्होंने क्या अपना कष्टान्त देकर  
अबतार पुरुषों का लक्षण समझाया है? क्या ये भी एक अबतार हैं? सोचा  
स्वामी जी अब मुक्त ही गये हैं इसीलिए मानूम होता है, उन्हें अपनी मुक्ति के  
लिए अब आग्रह नहीं है।

और एक दिन सन्ध्या के बाद मैं और जनेम (स्वामी विश्वकामन्द) स्वामी  
जी के पास गये। हरमोहन बाबू (श्री रामहृष्य देव के भक्त) हम लोगों को  
स्वामी जी के साथ विशेष रूप से परिचित कराने के लिए बोले “स्वामी जी  
ये दोनों आपके कुछ admirers (प्रसंसक) हैं और वेदांत का अध्ययन भी

धर्म-साधन के लिए अत्यन्त प्रयोजनीय है, तथापि वे पूर्ण रूप से उसका अनुष्ठान नहीं कर पाते थे। वे सर्वदा लड़को को लेकर अध्यापन-कार्य में ही लगे रहते थे, इसलिए धर्म-साधन और सत्-शिक्षा के अभाव एवं कुसंगति के कारण अत्यन्त अल्प अवस्था में ही उन लोगों का ब्रह्मचर्य किस तरह नष्ट हो जाता है, इसे वे अच्छी तरह जानते थे, और किस उपाय से उसे रोका जाय, इसकी शिक्षा उन बच्चों को देने के लिए वे सर्वदा प्रयत्नशील रहते थे। किन्तु स्वयमसिद्ध. कथ परान् साधयेत्—अर्थात् 'स्वयं असिद्ध होकर दूसरों को कैसे सिद्ध किया जा सकता है।' अतएव किसी भी तरह अपने या दूसरे के भीतर ब्रह्मचर्य-भाव को प्रविष्ट करने में असमर्थ हो समय समय पर वे अत्यन्त दुःखित हो जाते थे। इस समय परम ब्रह्मचारी स्वामी जी की ज्वलन्त उपदेशावली और ओजस्विनी वाणी सुनकर अकस्मात् उनके हृदय में यह भाव उदित हुआ कि ये महापुरुष एक बार इच्छा करने पर मेरे तथा बालकों के भीतर उस प्राचीन ब्रह्मचर्य भाव को निश्चित ही उद्दीप्त कर सकते हैं। पहले ही कहा जा चुका है कि ये एक भावुक व्यक्ति थे। वे एकाएक पूर्वोक्त रूप से उत्तेजित हो अंग्रेजी में चिल्लाकर बोल उठे, "Oh Great Teacher ! tear up the veil of hypocrisy and teach the world the one thing needful—how to conquer lust" अर्थात् "हे आचार्यवर, जिस कपटता के आवरण से अपने यथार्थ स्वभाव को छिपाकर हम लोग दूसरों के निकट अपने को शिष्ट, शान्त या सभ्य बतलाने की चेष्टा करते हैं, उसे आप अपनी दिव्य शक्ति के बल से छिन्न करके दूर कर दें एवं लोगों के भीतर जो घोर काम-प्रवृत्ति विद्यमान है, उसका जिससे समूल विनाश हो, वैसी शिक्षा दें।"

स्वामी जी ने चड़ी बावू को शान्त और आश्वस्त किया।

वाद में एडवर्ड कारपेन्टर का प्रसंग उपस्थित हुआ। स्वामी जी ने कहा, "लन्दन में ये बहुधा मेरे पास आते रहते थे। और भी बहुत से समाजवादी, प्रजातन्त्रवादी आदि आया करते थे। वे सब वेदान्तोक्त धर्म में अपने अपने मत की पोषकता पाकर उसके प्रति विशेष आकृष्ट होते थे।"

स्वामी जी उक्त कारपेन्टर साहब की 'एडम्स पीक टु एलिफेन्टा' नामक पुस्तक पढ़ चुके थे। इसी समय उक्त पुस्तक में दी हुई चड़ी बावू की तस्वीर उन्हें याद आयी, वे बोले, "आपका चेहरा तो पुस्तक में पहले ही देख चुका हूँ।" और भी कुछ देर बातचीत करने के बाद सन्ध्या हो जाने के कारण स्वामी जी विश्राम के लिए उठे। उठने के समय चड़ी बावू को मम्ब्रोषित करके बोले, "चड़ी बावू, आप तो बहुत से लड़कों के ससर्ग में आते हैं। क्या आप मुझे कुछ मुन्दर मुन्दर लड़के दे सकते हैं?" शायद चड़ी बावू कुछ अन्यमनस्क थे।

कोई आसन नहीं है, जिस पर स्वामी जी लड़कों से बैठने को कह सकें इसलिए उन खोमों को मूमि पर बैठना पड़ा। ऐसा ज्ञात हुआ कि स्वामी जी मन में सीब रहे हैं यदि इनके बैठने के लिए कोई आसन होता तो अच्छा है। किन्तु ऐसा लगा कि दूसरे ही क्षण उनके हृदय में बुराया भाव उत्पन्न हो गया। वे बोध उठे, "सो ठीक है, तुम खोप ठीक बैठे हो बोड़ी बोड़ी तपस्मा करता भी ठीक है।"

एक दिन अपने मुहूर्त्सके के बंड़ीचरण वर्धन को साथ लेकर मैं स्वामी जी के पास गया। बंड़ी बाबू 'हिन्दू ब्यामेज' स्कूल' नामक एक संस्था के मासिक थे। वही बंड़ेजी स्कूल की तृतीय श्रेणी तक पढ़ाया जाता था। वे पहले से ही बूब ईस्वरानुरागी थे बाद में स्वामी जी की बकसूठा जाति पढ़कर उनके प्रति अत्यन्त भ्रष्टास हो गये। पहले कभी कभी बर्म-साधना के लिए ब्याकुल ही संसार परित्याग करने की भी उम्हंति चेष्टा की थी किन्तु उसमें सफल नहीं हो सके। कुछ दिन सौकर के लिए बियेटर में अभिनय जाति एवं एकाध नाटक की रचना भी की थी। ये भावुक ब्यक्ति थे। बिस्वात प्रजातन्त्रवादी एडवर्ड कारपेस्टर जब भारत भ्रमण कर रहे थे उस समय उनके साथ बंड़ी बाबू का परिचय और बातचीत हुई थी। उम्हंति 'एडमंड पीक टू एक्लिफ्रेटा' नामक अपने ग्रन्थ में बंड़ी बाबू के साथ हुए वार्तालाप का संक्षिप्त विवरण और उनका एक चित्र भी दिया था।

बंड़ी बाबू जाकर मक्ति-भाव से स्वामी जी को प्रणाम कर पूछने लगे "स्वामी जी किस प्रकार के ब्यक्ति को गुरु बनाना चाहिए ?"

स्वामी जी— 'जो तुम्हें तुम्हाय गुरु-भविष्य बतला सके, वही तुम्हाय गुरु है। इसी न मेरे गुरु ने मेरा गुरु-भविष्य सब बतला दिया था।

बंड़ी बाबू ने पूछा "अच्छा स्वामी जी कौपीन पहनने से क्या काम-बसत में कुछ विशेष सहायता मिलती है।

स्वामी जी— "बोड़ी-बहुत सहायता मिल सकती है। किन्तु इस वृत्ति के प्रबल ही उठने पर कौपीन भी मछा क्या करेगा ? जब तक मन समबान् मे लगभग नहीं ही जाता तब तक किसी भी बाह्य उपाय से काम पूर्वतया रोक नहीं जा सकता। फिर भी बात क्या है जानते ही जब तक समुष्य उस बबस्वा को पूर्वतया काम नहीं कर देता तब तक अनेक प्रकार के बाह्य उपायों के अवलम्बन की चेष्टा स्वभावत ही किया करता है।

ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में बंड़ी बाबू स्वामी जी से बहुत से प्रस्न पूछने लगे। स्वामी जी भी बड़े सरल ढंग से सभी प्रस्नों का उत्तर देते लगे। बंड़ी बाबू बर्म साधना के लिए आन्तरिक भाव से प्रयत्न करते थे किन्तु पृथक् होने के कारण श्रच्छानुसार नहीं कर पाते थे। यद्यपि उनकी यह बड़ बाराया थी कि ब्रह्मचर्य

खूब करते हैं।” हरमोहन बाबू के वाक्य का प्रथम अंश सम्पूर्ण सत्य होने पर भी, द्वितीयांश कुछ अतिरजित था, क्योंकि हम लोगो ने उस समय केवल गीता का ही अध्ययन किया था। हम लोगों ने वेदान्त के छोटे छोटे कुछ ग्रन्थ और दो-एक उपनिषदों का अनुवाद एकाध बार देखा था, परन्तु इन सब शास्त्रों की हम लोगो ने विद्यार्थी के समान उत्तम रूप से आलोचना नहीं की थी और न मूल सस्कृत ग्रन्थों को भाष्य आदि की सहायता से पढ़ा था। जो हो, स्वामी जी वेदान्त की बात सुनकर बोल उठे, “उपनिषद् कुछ पढ़ा है?”

मैंने कहा, “जी हाँ, थोड़ा-बहुत देखा है।”

स्वामी जी ने पूछा, “कौन सा उपनिषद् पढ़ा है?”

मैंने मन के भीतर टटोलकर और कुछ न पाकर कह डाला, “कठोपनिषद् पढ़ा है।”

स्वामी जी ने कहा, “अच्छा, कठ ही सुनाओ, कठोपनिषद् खूब grand (सुन्दर) है—कवित्व से भरा है।”

क्या मुसीबत! स्वामी जी ने शायद समझा कि मुझे कठोपनिषद् कण्ठस्थ है, इसीलिए मुझसे सुनाने के लिए कहा। मैंने उसके सस्कृत मंत्रों को यद्यपि एकाध बार देखा था, किन्तु कभी भी अर्थानुसन्धानपूर्वक पढ़ने और मुखान्न करने की चेष्टा नहीं की थी। सो बड़ी मुश्किल में पड़ गया। क्या कहूँ? इसी समय एक बात स्मरण आयी। इसके कुछ वर्ष पहले से ही प्रत्यह नियमपूर्वक थोड़ा थोड़ा गीता का पाठ किया करता था। इस कारण गीता के अधिकांश श्लोक मुझे कण्ठस्थ थे। सोचा, जैसे भी हो, कुछ शास्त्रीय श्लोकों की आवृत्ति यदि न करूँ, तो फिर स्वामी जी को मुँह दिखाते न बनेगा। अतएव बोल उठा, “कठ तो कण्ठस्थ नहीं है—गीता से कुछ सुनाता हूँ।”

स्वामी जी बोले, “अच्छा, वही सही।”

तब गीता के ग्यारहवें अध्याय के अन्तिम भाग से स्थाने हृषीकेश! तव प्रकीर्त्या से आरम्भ करके अर्जुनकृत सपूर्ण स्तव स्वामी जी को सुना दिया। स्वामी जी उत्साह देते हुए “बहुत अच्छा, बहुत अच्छा” कहने लगे।

इसके दूसरे दिन मैं अपने मित्र राजेन्द्र घोष के पास गया। उससे मैंने कहा, “भाई, कल उपनिषद् के कारण स्वामी जी के सम्मुख बड़ा लज्जित हुआ। तुम्हारे पान यदि कोई उपनिषद् हो, तो जेब में लेते चलो। यदि कल की तरह उपनिषद् की बात निकालोगे, तो पढ़ने से ही हो जायगा।” राजेन्द्र के पास प्रमन्नकुमार शान्नीहिन ईश-केन-कठ आदि उपनिषद् और उनके वगानुवाद का एक गुटका मत्करण था। उसे जेब में रखकर हम लोग स्वामी जी के दर्शनार्थ चले। आज



स्वामी जी के कपल का सम्पूर्ण मर्म न समझ सकने के कारण वे जब विमान घर में प्रवेश कर रहे थे तब जाने बड़कर उनके पास आकर बाँधी बाब बोले "सुन्दर लड़कों की आप क्या बात कर रहे थे ?"

स्वामी जी ने कहा "बिनकी मुखाकृति सुन्दर हो ऐसे लड़के मैं नहीं चाहता— मैं तो चाहता हूँ खूब स्वस्थ घरीर, कर्मठ एवं सत्प्रकृतिपुस्त कुछ लड़के। उन्हें प्रशिक्षण करना (घिसा देना) चाहता हूँ जिससे वे अपनी मुक्ति के लिए वीर बगत् के कल्याण के लिए प्रस्तुत हो सकें।"

बीर एक दिन आकर देखा स्वामी जी टहल रहे हैं भीमूत घारण्वर चक्रवर्ती ('स्वामी-शिष्य-संवाद' नामक पुस्तक के रचयिता) स्वामी जी के साथ खूब बनिष्ठ भाव से बातें कर रहे हैं। स्वामी जी से एक प्रश्न पूछने की हमें वरत्मिक उत्कण्ठा हुई। प्रश्न यह था—बगत्‌वार बीर मुक्त या सिद्ध पुरुष में क्या अन्तर है? हमने सरल भाव से स्वामी जी के सम्मुख इस प्रश्न को उठाने के लिए विषय अनुरोध किया। अतः उन्होंने स्वामी जी से यह प्रश्न पूछा। हम लोग सरल भाव से पीछे पीछे यह मुत्तने के लिए मये कि देखें स्वामी जी इस प्रश्न का क्या उत्तर देते हैं। स्वामी जी उस प्रश्न के सम्बन्ध में बिना कोई प्रकट उत्तर दिये कहने लगे "विदेह-मुक्त ही सर्वोच्च अवस्था है—यही मेरा सिद्धान्त है। जब मैं साधनावस्था में भारत के अनेक स्थानों में भ्रमण कर रहा था उस समय कितनी निर्बल मुठानों में अकेले बैठकर कितना समय बिताया है, मुक्ति प्राप्त नहीं हुई, महँ सोचकर कितनी बार प्रायोपवेशन द्वारा देह त्याग देने का भी संकल्प किया है कितना ध्यान कितना साधन-भजन किया है! किन्तु अब मुक्ति काम के लिए वह 'विजातीय' बाध नहीं रहा। इस समय तो मन में कबल नहीं होता है कि अब तक पृथ्वी पर एक भी मनुष्य अमुक्त है तब तक मुझे अपनी मुक्ति की कोई आवश्यकता नहीं।"

मैं तो स्वामी जी की उक्त बाणी सुनकर उनके हृदय की अपार कल्या की बात सोचकर विस्मित हो गया और सोचने लगा इन्होंने क्या अपना वृष्टान्त लेकर बगत्‌वार पुरुषों का कल्याण समझाया है? क्या वे भी एक बगत्‌वार है? सोचा स्वामी जी अब मुक्त हो मये हैं इसीलिए मानस होता है उन्हें अपनी मुक्ति के लिए अब आवश्यकता नहीं है।

बीर एक दिन साध्या के बाद मैं बीर बोग (स्वामी विवेकानन्द) स्वामी जी के पास मये। हरमोहन बाबू (भी रामकृष्ण देव के भक्त) हम लोगों को स्वामी जी के साथ विषय रूप से परिचित कराने के लिए बोले 'स्वामी जी, वे दोनों आपके खूब admirers (प्रशंसक) हैं और वेदांत का अध्ययन भी

खूब करते हैं।" हरमोहन बाबू के वाक्य का प्रथम अंश सम्पूर्ण मत्प्य होने पर भी, द्वितीयांश कुछ अतिरजित था, क्योंकि हम लोगों ने उस समय वेवल गीता का ही अव्ययन किया था। हम लोगों ने वेदान्त के छोटे छोटे कुछ ग्रन्थ और दो-एक उपनिषदों का अनुवाद एकाध बार देखा था, परन्तु इन नव शास्त्रों की हम लोगों ने विद्यार्थी के समान उत्तम रूप में आलोचना नहीं की थी और न मूल मस्युत ग्रन्थों को भाष्य आदि की महायता ने पढा था। जो हो, स्वामी जी वेदान्त की बात सुनकर बोल उठे, "उपनिषद् कुछ पढा है?"

मैंने कहा, "जी हाँ, थोड़ा-बहुत देखा है।"

स्वामी जी ने पूछा, "कौन ना उपनिषद् पढा है?"

मैंने मन के भीतर टटोलकर और कुछ न पाकर कह डाला, "कठोपनिषद् पढा है।"

स्वामी जी ने कहा, "अच्छा, कठ ही सुनाओ, कठोपनिषद् खूब grand (सुन्दर) है—कवित्व से भरा है।"

क्या मुसीबत! स्वामी जी ने शायद समझा कि मुझे कठोपनिषद् कण्ठस्थ है, इसीलिए मुझसे सुनाने के लिए कहा। मैंने उसके सस्कृत मन्त्रों को यद्यपि एकाध बार देखा था, किन्तु कभी भी अर्थानुमन्वानपूर्वक पढने और मुखाम्प्र करने की चेष्टा नहीं की थी। सो बड़ी मुश्किल में पड गया। क्या कहूँ? इसी समय एक बात स्मरण आयी। इसके कुछ वर्ष पहले से ही प्रत्यह नियमपूर्वक थोड़ा थोड़ा गीता का पाठ किया करता था। इस कारण गीता के अविकाश श्लोक मुझे कण्ठस्थ थे। सोचा, जैसे भी हो, कुछ शास्त्रीय श्लोकों की आवृत्ति यदि न करूँ, तो फिर स्वामी जी को मुँह दिखाते न वनेगा। अतएव बोल उठा, "कठ तो कण्ठस्थ नहीं है—गीता से कुछ सुनाता हूँ।"

स्वामी जी बोले, "अच्छा, वही सही।"

तब गीता के ग्यारहवें अध्याय के अन्तिम भाग से स्थाने हृषीकेश! तव प्रकीर्त्या से आरम्भ करके अर्जुनकृत सपूर्ण स्तव स्वामी जी को सुना दिया। स्वामी जी उत्साह देते हुए "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा" कहने लगे।

इसके दूसरे दिन मैं अपने मित्र राजेन्द्र घोष के पास गया। उससे मैंने कहा, "भाई, कल उपनिषद् के कारण स्वामी जी के सम्मुख बडा लज्जित हुआ। तुम्हारे पास यदि कोई उपनिषद् हो, तो जेब में लेते चलो। यदि कल की तरह उपनिषद् की बात निकालेंगे, तो पढने से ही हो जायगा।" राजेन्द्र के पास प्रसन्नकुमार शास्त्रीकृत ईश-केन-कठ आदि उपनिषद् और उनके वगानुवाद का एक गुटका सस्करण था। उसे जेब में रखकर हम लोग स्वामी जी के दर्शनार्थ चले। आज

अपराह्न में स्वामी जी का कमरा सोगों से भरा हुआ था। जो सींचा था वही हुआ। भाग भी यह तो ठीक स्मरण नहीं कि कैसे पर कठोपनिषद् का ही प्रसंग उठा। मैंने झट बेच से उपनिषद् निकाला और उसे गुरु से पढ़ना आरम्भ किया। पाठ के बीच में स्वामी जी नचिकेता की भद्रा की कथा—जिस भद्रा क ब्रह्म से वे निर्भीक चित्त से यम-सहन जाने के लिए भी चाहती हुए थे—कहने लगे। जब नचिकेता के द्वितीय वर स्वर्ग प्राप्ति की कथा का पाठ आरम्भ हुआ तब स्वामी जी ने उस स्थल को अधिक न पढ़कर कुछ कुछ छोड़कर तृतीय वर का प्रसंग पढ़ने के लिए कहा।

नचिकेता के प्रश्न—भूत्यु के बाद सोगों का सन्देश—सरीर शून्य जाने पर कुछ रहता है या नहीं—उसके बाद यम का नचिकेता को प्रलोभन बिलाना और नचिकेता का बड़ भाग से उम सनी का प्रत्याख्यान—इन सब स्थलों का पाठ ही जाने के बाद स्वामी जी ने अपनी स्वभाष-सुखम जोरस्विनी भाषा में क्या क्या कहा—श्रीग स्मृति सोकह क्यों मे उसका कुछ भी चिह्न न रह सक्ती।

किन्तु इन दो दिनों के उपनिषद्-असंग में स्वामी जी की उपनिषद् के प्रति भद्रा और अनुराग का कुछ बँस मेरे अन्तःकरण में भी सञ्चरित हो गया क्योंकि उसके दूसरे ही दिन से जब कभी सुयोग पाता परम भद्रा के साथ उपनिषद् पढ़ने की चेष्टा करता था। और यह कार्य आज भी कर रहा हूँ। विभिन्न समय में उनके भीमूह से उन्मरित अपूर्व स्वर, कव्य और तेजस्विता के साथ पठित उपनिषद् के एक एक मन्त्र मानो आज भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं। जब परबन्धी में मन्त्र हो आरम-वर्षा भूक जाता हूँ तो सुम पाता हूँ—उनके उस सुपरिचित किमरकण्ड से उन्मरित उपनिषद्-वाणी की विष्व गंभीर बोधका—

तमेवैवं ज्ञानम आस्मानमग्न्या बाधो विमुञ्चयामृतस्यैव सेतुः—'एकमात्र उस आत्मा को ही पहचानो बन्ध सब बाधें छोड़ दो—वही अमृत का सेतु है।

जब आकाश में जोर पटाएँ छा जाती हैं और दामिनी हमकने लगती है उस समय मानो सुम पाता हूँ—स्वामी जी उस आकाशस्व सौदामिनी की ओर दंगित करते हुए कह रहे हैं—

न तत्र सूर्यो मास्ति न चन्द्रतारकम् ।

मेमा विद्युतो मास्ति कुतोऽप्यनग्निः ।

तमेव मात्मसमुपस्ति सर्वं ।

तस्य भासा सर्वमिदं विभस्ति ॥<sup>१</sup>

—'वहाँ सूर्य भी प्रकाशित नहीं होता—चन्द्रमा और तारे भी नहीं, ये सब विद्युत् भी वहाँ प्रकाशित नहीं होती—फिर इस सामान्य अग्नि की भला वात ही क्या ? उनके प्रकाशित होने से फिर सभी प्रकाशित होते हैं, उनका प्रकाश इन सबको प्रकाशित करता है।'

पुन , जब तत्त्वज्ञान को असाध्य जान हृदय हताश हो जाता है, तब जैसे सुन पाता हूँ—स्वामी जी आनन्दोत्फुल्ल हो उपनिषद् की आश्वासन देनेवाली इस वाणी की आवृत्ति कर रहे हैं—

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा  
 आ ये धामानि दिव्यानि तस्यु ॥  
 वेदाहमेत पुरुष महान्तम्  
 आदित्यवर्णं तमसं परस्तात् ॥  
 तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति  
 नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय ॥'

—'हे अमृत के पुत्रो, हे दिव्यधामनिवासियो, तुम लोग सुनो। मैंने उस महान् पुरुष को जान लिया है, जो आदित्य के समान ज्योतिर्मय और अज्ञानान्वकार से अतीत है। उसको जानने से ही लोग मृत्यु का अतिक्रमण करते हैं—मुक्ति का और दूसरा कोई मार्ग नहीं।'

अस्तु, और एक दिन की घटना का विषय यहाँ पर सक्षेप में कहूँगा। इस दिन की घटना का शरत् वाबू ने 'विवेकानन्द जी के सग मे' नामक अपने ग्रन्थ में विस्तृत रूप से वर्णन किया है।

मैं उस दिन दोपहर में ही जा उपस्थित हुआ था। देखा, कमरे में बहुत से गुजराती पण्डित बैठे हैं, स्वामी जी उनके पास बैठकर धाराप्रवाह रूप से संस्कृत भाषा में धर्मविषयक विचार कर रहे हैं। भक्ति-ज्ञान आदि अनेक विषयों की चर्चा हो रही थी। इसी बीच हल्ला हो उठा। ध्यान देने पर समझा कि स्वामी जी संस्कृत भाषा में बोलते बोलते कोई एक व्याकरण की भूल कर गये। इस पर पण्डित-गण ज्ञान-भक्ति-विवेक-वैराग्य आदि विषयों की चर्चा छोड़कर इस व्याकरण की त्रुटि को लेकर, 'हमने स्वामी जी को हरा दिया' यह कहते हुए खूब शोर-गुल मचा रहे हैं और प्रसन्न हो रहे हैं। उस समय श्री रामकृष्ण देव की वह वात याद आ गयी—'गिद्ध उड़ता तो खूब ऊपर है, किन्तु उसकी दृष्टि रहती है मरे पशुओं पर।'

यो ही स्वामी जी क्विचित् भी विचसित नहीं हुए और कहा पश्चिमात्मा शालोष्णं  
 वासायमेतत्सखलमम् । बोड़ी देर के बाद स्वामी जी उठ गये और पश्चिमवक्त्र बंगला  
 जी में हाथ-मुँह धोने के लिए गये । मैं भी बपीचे में घूमते घूमते बंगला जी के लट पर  
 गया । वहाँ पश्चिमवक्त्र स्वामी जी के सम्मुख में आलोचना कर रहे थे । मुत्ता ने  
 कह रहे थे—“स्वामी जी उस प्रकार के पश्चिम नहीं हैं परन्तु उनकी आँखों में एक  
 मोहिनी शक्ति है । उसी शक्ति के बल से उन्होंने अनेक स्थानों में विमिश्रण की है ।

शोभा पश्चिमी न तो ठीक ही समझा है । आँखों में यदि मोहिनी शक्ति न होती  
 तो क्या यहाँ ही रहने विद्वान् बना मानी प्राण्य-पादचार्य देश के विभिन्न प्रकृति के  
 स्त्री-पुरुष इसके पीछे पीछे हाथ के समान दीड़ते । यह तो विद्या के कारण नहीं  
 रूप के कारण नहीं एतदर्थ के भी कारण नहीं—यह सब उनकी आँखों की उस  
 मोहिनी शक्ति के ही कारण है ।

पाठकगण ! आँखों में यह मोहिनी शक्ति स्वामी जी को वहाँ से किसी  
 हम जानने का यदि कौतूहल ही तो अपने भी घुब के साथ उनके दिव्य सम्मुख  
 एवं उनके अर्पण सामन-वृत्तान्त पर अज्ञा के साथ एक बार मनन करो—इसका  
 रहस्य साध ही जायगा ।

सन् १८९७ अश्विन मास का अन्तिम भाग । आसमबाजार मठ । अभी चार  
 पाँच दिन ही हुए हैं । घर छोड़कर मठ में रह रहा हूँ । पुण्ये संस्थासिधियों में केवल  
 स्वामी प्रेमानन्द स्वामी निर्मलानन्द और स्वामी सुदीपानन्द हैं । स्वामी जी  
 शक्तिशालिने से आये—माघ में स्वामी ब्रह्मानन्द स्वामी योषानन्द स्वामी जी  
 क अश्वी शिष्य आत्मसिद्धा वेदमल सिद्धी और जी जी आदि हैं ।

स्वामी निरपामन्द कुछ दिन हुए, स्वामी जी द्वारा सम्पाद्यत में ही जित हुए  
 हैं । इन्होंने स्वामी जी से कहा “इस समय बहुत से नये नये लड़के समाप्त छोड़कर  
 सम्पत्ती हुए हैं उनके लिए एक निश्चित नियम से शिक्षा-दान की व्यवस्था करना  
 अनुमत होगा ।

स्वामी जी उनका अभिप्राय वा अनुमोदन करते हुए बोले हाँ हाँ नियम  
 बनाना तो अच्छा ही है । बुझाओ गयीं की । जब आचार बड़े समरे में जाता  
 हुए । जब स्वामी जी ने कहा “कोई एक व्यक्ति निम्नतः शुरू करो मैं सोचता  
 जाता हूँ । उस समय जब एक दुगार की ऐक्यता आगे करने लगे—कोई अग्रमर  
 लगी होता जाता वा अन्त में कुछ इदरेक्यता आने बन दिया । उस समय मठ में  
 निम्नतः-यहूँ के प्रति सम्पादनना एक प्रचार की उदेश्य थी । लगी चारका  
 प्रत्येक की वि सम्पन्न करने सम्पत्ती वा सम्पादन कराना ही सम्पादन मात  
 है निम्नतः-यहूँ के तो सम्पन्न और मठ की इच्छा ही है । जो सम्पत्ती के द्वारा

आदिष्ट होकर प्रचार-कार्य आदि करेंगे, उनके लिए भले वह आवश्यक हो, पर साधको के लिए तो उसका कोई प्रयोजन नहीं है, उलटे वह हानिकारक ही है। जो हो, मैं पहले ही कह चुका हूँ कि स्वभाव से मैं ज़रा forward (अग्रिम) और लापरवाह हूँ—मैं अग्रसर हो गया। स्वामी जी ने एक बार आकाश की ओर देखकर पूछा, “यह क्या रहेगा ?” (अर्थात् क्या मैं ब्रह्मचारी होकर वहाँ रहूँगा, अथवा दो-एक दिन मठ में घूमने के लिए ही आया हूँ और बाद में चला जाऊँगा।) सन्यासियों में से एक ने कहा, “हाँ।” तब मैंने कागज़-कलम आदि ठीक से लेकर गणेश का आसन ग्रहण किया। नियम लिखाने से पहले स्वामी जी कहने लगे, “देखो, हम ये सब नियम बना तो रहे हैं, किन्तु पहले हमें समझ लेना होगा कि इन नियमों के पालन का मूल लक्ष्य क्या है। हम लोगों का मूल उद्देश्य है—सभी नियमों से परे होना। तो भी, नियम बनाने का अर्थ यही है कि हममें स्वभावतः बहुत से कुनियम हैं—सुनियमों के द्वारा उन कुनियमों को दूर कर देने के बाद हमें सभी नियमों से परे जाने की चेष्टा करनी होगी। जैसे काँटे से काँटा निकाल-कर अन्त में दोनों ही काँटों को फेंक दिया जाता है।”

उसके बाद स्वामी जी ने नियम लिखाने प्रारम्भ किये। प्रातः काल और सायंकाल जप-ध्यान, मध्याह्न विश्राम के बाद स्वस्थ होकर शास्त्र-ग्रन्थों का अध्ययन और अपराह्न सबको मिलकर एक अध्यापक के निकट किसी निर्दिष्ट शास्त्र-ग्रन्थ का श्रवण करना होगा—यह व्यवस्था हुई। प्रत्येक दिन प्रातः और सायं थोड़ा थोड़ा ‘डेल्सर्ट’ व्यायाम करना होगा, यह भी निश्चित हुआ। अन्त में लिखाना समाप्त कर स्वामी जी ने कहा, “देख, इन नियमों को ज़रा देख-भालकर अच्छी तरह प्रतिलिपि करके रख ले—देखना, यदि कोई नियम negative (निषेध-वाचक) भाव से लिखा गया हो, तो उसे positive (विधिवाचक) कर देना।”

इस अन्तिम आदेश का पालन करते समय हमें ज़रा कठिनाई भालूम हुई। स्वामी जी का उपदेश था कि किसीको खराब कहना, उसके विरुद्ध आलोचना करना, उसके दोष दिखाना, उससे ‘तुम ऐसा मत करो, वैसा मत करो’ कहकर negative (निषेधात्मक) उपदेश देना—इस सबसे उसकी उन्नति में विशेष सहायता नहीं होती, किन्तु उसको यदि एक आदर्श दिखा दिया जाय, तो फिर उसकी उन्नति सरलता से हो सकती है, उसके दोष अपने आप चले जाते हैं। यही स्वामी जी का अभिप्राय था।

अपूर्व शोभा धारण कर बैठे हुए हैं। अनेक प्रसंग चल रहे हैं। वहाँ हम सौम्यों के मित्र विजयमङ्गल बसु (भाजकक मलीपुर जहालत के विख्यात बकीक) महाशय भी उपस्थित हैं। उस समय विजय बाबू समय समय पर अनेक लभामों में और कभी कभी काँग्रेस में जाड़े होकर अंग्रेजों में व्याख्यान दिया करते थे। उनकी इस व्याख्यान-शक्ति का उल्लेख किसीने स्वामी जी के समक्ष किया। इस पर स्वामी जी ने कहा 'सो बहुत अच्छा है। अच्छा यहाँ पर बहुत से लोग एकत्र हैं—बरा जाड़े होकर एक व्याख्यान तो सो soul (आत्मा) के सम्बन्ध में तुम्हारी जो idea (धारणा) है उसी पर कुछ कहो।' विजय बाबू अनेक प्रकार के बहाने बताने लगे। स्वामी जी एवं और भी बहुत से लोग उनसे खूब आग्रह करने लगे। १५ मिनट तक अनुसंधान करने पर भी जब कोई उनके संकोच को दूर करने में सफल नहीं हुआ तब अन्ततोगत्या हार मानकर उन सौम्यों की वृष्टि विजय बाबू से हटकर मेरे ऊपर पड़ी। मैं मठ में सहयोग देने से पूर्व कभी कभी बर्म के सम्बन्ध में बंगला भाषा में व्याख्यान देता था और हम लोगों का एक 'डिबेटिंग क्लब' (बाप-विवाह समिति) भी था—उसमें अंग्रेजी बोलने का अभ्यास करता था। मेरे सम्बन्ध में इन सब बातों का किसीने उल्लेख किया ही था कि जब मेरे ऊपर बापी पड़ती। पहले ही कह चुका हूँ मैं बहुत कुछ आपरवाहू सा था। *Fools rush in where angels fear to tread.* (वहाँ वेवता भी जाने में समझीत होते हैं वहाँ मूर्ख चुप पड़ते हैं।) मुझसे उन्हें अधिक कहना नहीं पड़ा। मैं एकदम सड़ा हो गया और बुद्धारभ्यक्त उपनिषद् के याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद के अन्तर्मत आत्म तत्त्व को लेकर आत्मा के सम्बन्ध में लगभग बाध बटे तक जो मुँह में बाया बोलना गया। भाषा या व्याकरण की मूर्ख हो रही है अथवा भाव का अज्ञानमय ही रहा है इस सबका मैंने विचार ही नहीं किया। क्या के सागर स्वामी जी मेरी इस अपरव्या पर पीड़ा भी भिरकत न हो मुझे उत्साहित करने लगे। मेरे बाप स्वामी जी द्वारा अभी संन्यासाश्रम में दीक्षित स्वामी प्रकाशानन्द<sup>१</sup> कमसय इस मिनट तक आत्मतत्त्व के सम्बन्ध में बोले। वे स्वामी जी की व्याख्यान-पैली का अनुकरण कर बड़े गम्भीर स्वर में अपना वक्तव्य देने लगे। उनके व्याख्यान की भी स्वामी जी ने खूब प्रशंसा की।

१ ये सैन द्वांसिस्को (यू एल ए ) की वेदान्त-समिति के अध्यक्ष थे। अमेरिका में इनका कार्य-काल १९६ ई से १९२७ ई तक था। ८ जुलाई, सन् १८७४ को कसकसे में इनका जन्म हुआ था एवं १३ फ़रवरी, १९२७ ई को सैन द्वांसिस्को की वेदान्त-समिति में इनका वेदान्त हुआ। स

अहा ! स्वामी जी सचमुच ही किसीका दोष नहीं देखते थे। वे, जिसमें जो भी कुछ गुण या शक्ति देखते, उसीके अनुसार उसे उत्साह देकर, जिससे उसके भीतर की अव्यक्त शक्तियाँ प्रकाशित हो जायँ, इसीकी चेष्टा करते थे। किन्तु, पाठक, आप लोग इससे ऐसा न समझ बैठें कि वे सबको सभी कार्यों में प्रश्रय देते थे। क्योंकि अनेक बार देख चुका हूँ, लोगो के, विशेषतः अपने अनुगामी गुरु-भ्राता और शिष्यों के, दोष दिखलाने में समय समय पर वे कठोर रूप भी धारण करते थे। किन्तु वह हम लोगो के दोषो को हटाने के लिए—हम लोगो को सावधान करने के लिए ही होता था, हमें निरुत्साह करने या हम लोगो के समान केवल पराङ्गान्वेषण वृत्ति को सार्थक करने के लिए नहीं। ऐसा उत्साह और भरोसा देनेवाला हम अब और कहाँ पायेंगे ? कहाँ पायेंगे ऐसा व्यक्ति, जो शिष्यवर्ग को लिख सके, “I want each one of my children to be a hundred times greater than I could ever be Everyone of you must be a giant—must, that is my word”—‘मैं चाहता हूँ कि तुम लोगो में से प्रत्येक, मैं जितना हो सकूँ, तदपेक्षा सौगुना बड़ा होवे। तुम लोगो में से प्रत्येक को आध्यात्मिक दिग्गज होना पड़ेगा—होना ही होगा, न होने से नहीं बनेगा।’

## ५

इसी समय स्वामी जी द्वारा इंग्लैण्ड में दिये गये ज्ञानयोग सम्बन्धी व्याख्यानो को लन्दन से ई० टी० स्टर्डी साहब छोटी छोटी पुस्तिकाओ के आकार में प्रकाशित करने लगे। मठ में भी उनकी एक एक दो दो प्रतियाँ आने लगी। स्वामी जी उस समय दार्जिलिंग से नहीं लौटे थे। हम लोग विशेष आग्रह के साथ अद्वैत तत्त्व के अपूर्व व्याख्यारूप, उद्दीपना से भरे उन व्याख्यानो को पढ़ने लगे। वृद्ध स्वामी अद्वैतानन्द अग्रेजी अच्छी तरह नहीं जानते थे, किन्तु उनकी यह विशेष इच्छा थी कि नरेन्द्र ने वेदान्त के सम्बन्ध में विलायत में क्या कहकर लोगो को मुग्ध किया है, यह सुनें। अतः उनके अनुरोध से हम लोग उन्हें उन पुस्तिकाओ को पढ़कर, उनका अनुवाद करके सुनाने लगे। एक दिन स्वामी प्रेमानन्द नये सन्यासियो और ब्रह्मचारियो से बोले, “तुम लोग स्वामी जी के इन व्याख्यानो का बगला अनुवाद करो न।” तब हममें से कई लोगो ने अपनी अपनी इच्छानुसार उन पुस्तिकाओ में से एक एक को चुन लिया और उनका अनुवाद करना आरम्भ कर दिया। इसी बीच स्वामी जी लौट आये। एक दिन स्वामी प्रेमानन्द जी स्वामी जी से बोले, “इन लडको ने आपके व्याख्यानो का अनुवाद करना प्रारम्भ कर दिया है।” बाद में हम लोगो को लक्ष्य करके कहा, “तुम लोगो में से कौन क्या अनुवाद कर रहा है, यह स्वामी जी



की सुनाओ। तब हम लोगों ने अपना अपना अनुवाद लाकर स्वामी जी को थोड़ा थोड़ा सुनाया। स्वामी जी ने भी अनुवाद के बारे में अपने कुछ विचार प्रकट किये और अमुक शब्द का अमुक अनुवाद ठीक रहेगा इस प्रकार दो-एक बातें भी बतायीं। एक दिन स्वामी जी के पास केबल में ही बैठा था उन्होंने अचानक मुझसे कहा "राजयोग का अनुवाद कर न। मेरे समान अनुपयुक्त व्यक्ति को स्वामी जी ने इस प्रकार आदेश किये क्या ? मैं उसके बहुत दिन पहले से ही राजयोग का अभ्यास करने की चेष्टा किया करता था। इस योग के ऊपर कुछ दिन मेरा इतना अनुसंग हुआ था कि मक्ति ज्ञान और कर्मयोग को मानो एक प्रकार से बचका से ही देखने लगा था। सोचता था मठ के साधु जोम योग-योग कुछ भी नहीं जानते इसीलिए वे योग-साधना में उत्साह नहीं देते। पर जब मैंने स्वामी जी का 'राजयोग' ग्रन्थ पढ़ा तो भावुक हुआ कि स्वामी जी केवल राजयोग में ही पटु नहीं बल्कि भक्ति ज्ञान प्रभृति अस्थान्य योगों के साथ उसका सम्बन्ध भी उन्होंने अत्यन्त सुन्दर ढंग से दिखलाया है। राजयोग के सम्बन्ध में मेरी जो धारणा थी उसका उत्तम स्पष्टीकरण भी मुझे उनके उस 'राजयोग' ग्रन्थ में मिला। स्वामी जी के प्रति मेरी विशेष भक्ति का यह भी एक कारण हुआ। तो क्या इस उद्देश्य से कि राजयोग का अनुवाद करने से उस ग्रन्थ की चर्चा उत्तम रूप से होनी और उससे मेरी भी आध्यात्मिक उन्नति में सहायता पहुँचनी उन्होंने मुझे इस कार्य में प्रवृत्त किया ? जबका बय देस में यवार्थ राजयोग की चर्चा का अभाव देखकर, सर्वसाधारण के भीतर इस योग के यवार्थ मर्म का प्रचार करने के लिए ही उन्होंने ऐसा किया ? उन्होंने स्व प्रमदावास मित्र को एक पत्र में लिखा था 'बंका में राजयोग की चर्चा का बिल्कुल अभाव है। जो कुछ है वह भी नाक बजाता हवादि छोड़ और कुछ नहीं।

जो भी हो स्वामी जी की आज्ञा या अपनी अनुपयुक्तता आदि की बात मन में न सोचकर उसका अनुवाद करने में उसी समय रूप मया।

## ६

एक दिन अपराह्न काळ में बहुत से लोग बैठे हुए थे। स्वामी जी के मन में आया कि गीता-पाठ होना चाहिए। गीता आयी गयी। सभी उत्प्रेरित होकर मुझसे लगे कि देखो स्वामी जी गीता के सम्बन्ध में क्या कहते हैं। गीता के सम्बन्ध में उस दिन उन्होंने जो कुछ भी कहा था वह सब दो-चार दिन के बाद ही स्वामी प्रेमानन्द जी की आज्ञा से मैंने स्मरण करके यथासाम्य क्रियवत् कर लिया। वह पहले 'गीता-वचन' के नाम से 'उद्बोधन' के द्वितीय बर्ष में प्रकाशित हुआ और

वाद मे 'भारत मे विवेकानन्द' पुस्तक मे अन्तर्भूत कर दिया गया। अतएव उन बातों की पुनरावृत्ति कर प्रस्तुत लेख का कलेवर बढ़ाने की इच्छा नहीं है, किन्तु उस दिन गीता की व्याख्या के सिलसिले मे स्वामी जी ने जो एक नयी ही भावधारा बहायी थी, उसीको यहाँ लिपिबद्ध करने की इच्छा है। हम लोग महापुरुषों की वचनावली को अनेक बार यथासम्भव लिपिबद्ध तो करते हैं, किन्तु जिन भावों से अनुप्राणित होकर वे वाक्य उनके श्रीमुख से निकलते हैं, वे प्रायः लिपिबद्ध नहीं रहते। फिर ऐसे महापुरुषों के साक्षात् सस्पर्श मे आये बिना हज़ार वर्णन करने पर भी लोग उनकी बातों के भीतर का गूढ मर्म नहीं समझ सकते। तो भी, जिन्हे उन लोगों के साथ साक्षात् सम्पर्क मे आने का सौभाग्य नहीं मिला है, उनके लिए उन महापुरुषों के सम्बन्ध मे लिपिबद्ध थोड़ी सी भी बातें बहुत आदर की वस्तु होती हैं, और उनकी आलोचना एव ध्यान से उनका कल्याण होता है। पाठक-वर्ग ! उन महापुरुष की जिस आकृति को मैं मानो आज भी अपनी आँखों के सामने देख रहा हूँ, वह मेरे इस क्षुद्र प्रयास से आपके मनश्चक्षु के सामने भी उद्भासित हो। उनकी कथा का स्मरण कर मेरे मनश्चक्षु के सामने आज उन्हीं महापण्डित, महातेजस्वी, महाप्रेमी की तस्वीर आ खड़ी हुई है। आप लोग भी एक बार देश-काल के व्यवधान का उल्लघन कर मेरे साथ हमारे स्वामी जी के दर्शन करने की चेष्टा करें।

हाँ, तो जब उन्होंने व्याख्या आरम्भ की, उस समय वे एक कठोर समालोचक मालूम पड़े। कृष्ण, अर्जुन, व्यास, कुरुक्षेत्र की लड़ाई आदि की ऐतिहासिकता के बारे मे सन्देह की कारण-परम्परा का विवरण जब वे सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव से करने लगे, तब बीच बीच मे ऐसा बोध होने लगा कि इस व्यक्ति के सामने तो कठोर समालोचक भी हार मान जाय। यद्यपि स्वामी जी ने ऐतिहासिक तत्त्व का इस प्रकार तीव्र विश्लेषण किया, किन्तु इस विषय मे वे अपना मत विशेष रूप से प्रकाशित किये बिना ही आगे समझाने लगे कि धर्म के साथ इस ऐतिहासिक गवेषणा का कोई सम्पर्क नहीं है। ऐतिहासिक गवेषणा मे शास्त्रोल्लिखित व्यक्ति यदि काल्पनिक भी ठहरे, तो भी उससे सनातन धर्म को कोई ठेस नहीं पहुँचती। अच्छा, यदि धर्म-साधना के साथ ऐतिहासिक गवेषणा का कोई सम्पर्क न हो, तो ऐतिहासिक गवेषणा का क्या फिर कोई मूल्य नहीं है?—इसका उत्तर देते हुए स्वामी जी ने समझाया कि निर्भीक भाव से इन सब ऐतिहासिक सत्यानु-सन्धानों का भी एक विशेष प्रयोजन है। उद्देश्य महान् होने पर भी उसके लिए मिथ्या इतिहास की रचना करने का कोई प्रयोजन नहीं। प्रत्युत यदि मनुष्य सभी विषयों मे सत्य का सम्पूर्ण रूप से आश्रय लेने के लिए प्राणपण से यत्न करे,

तो वह एक दिन सत्यस्वरूप भगवान् का भी साक्षात्कार कर सकता है। उसके बाद उन्होंने पीता के मूक उत्तर सर्वधर्मसमाख्य और मिष्काम कर्म की संक्षेप में व्याख्या करके स्लोक पढ़ना प्रारम्भ किया। द्वितीय अध्याय के अन्त्य भाग तक पार्य इत्यादि में युद्ध के लिए अर्जुन के प्रति श्री कृष्ण के जो उल्लेखनात्मक वचन हैं उन्हें पढ़कर वे स्वयं सर्वसाधारण को जिस मात्र से उपदेश देते थे वह उन्हें स्मरण ही आया—**‘नतस्वयमुपपद्यते—मह तो तुम्हें घोसा नहीं देता’—**तुम सर्वधर्मिताम हो तुम बड़ा हो तुममें जो अनेक प्रकार के विपरीत भाव पैदा रहा हूँ वह सब तो तुम्हें घोसा नहीं देता। मसीहा के समान बीजस्वनी माया में इन सब वर्णों को समझाते समझाते उनके भीतर से मानो वेब निकलने लगा। स्वामी जी कहते लगे **‘जब सबको ब्रह्म-वृष्टि से देखना है तो महापापी को भी भूषा-वृष्टि से देखना उचित न होगा। महापापी से भूषा मत करो’** यह कहते कहते स्वामी जी के मुख पर जो मानास्तर हुआ वह जबि आप भी मेरे मानसपटल पर अंकित है—मानो उनके श्रीमुख से प्रेम शतबारस बन यह निकला। श्रीमुख मानो प्रेम से शीप हो उठा—उसमें कठीरवा का संशयान भी नहीं।

इस एक श्लोक में ही सम्पूर्ण पीता का छार निहित देखकर स्वामी जी ने अन्त में यह कहते हुए उपसंहार किया **‘इस एक श्लोक को पढ़ने से ही समग्र पीता के पाठ का फल होता है।**

७

एक दिन स्वामी जी ने ब्रह्मसूत्र ज्ञान के लिए कहा। कहते लगे **‘ब्रह्मसूत्र के माध्य को बिना पढ़े इस समय स्वतंत्र रूप से तुम सब लोग सूत्रों का अर्थ समझने की चेष्टा करो। प्रथम अध्याय के प्रथम पाठ के सूत्रों का पढ़ना प्रारम्भ हुआ। स्वामी जी कुछ रूप से संसृत उच्चारण करने की शिक्षा देने लगे कहते लगे संसृत भाषा का उच्चारण इन लोग ठीक ठीक नहीं करते। इसका उच्चारण तो इतना सरल है कि बीड़ी चेटा करने से ही सब लोग संसृत का कुछ उच्चारण कर सकते हैं। हम लोग बचपन से ही दूसरे प्रकार का उच्चारण करने के बादी हो गये हैं इसीलिए इस प्रकार का उच्चारण अभी हम लोगों को इतना मया और कठिन मान्य होता है। हम लोग आरमा' शब्द का उच्चारण आत्मा' न करके 'आत्ता' क्यों करते हैं? महर्षि परब्रह्मि अपने महाभाष्य में कहते हैं—**‘अपसन्द उच्चारण करनेवाला म्लेच्छ है। अतः उनके मत से हम सब तो म्लेच्छ ही हुए।** तब नवीन ब्रह्मचारी और सत्यासीगण एक एक करके जहाँ तक बन सका ठीक ठीक उच्चारण करके ब्रह्मसूत्र पढ़ने लगे। बाद में स्वामी जी यह उपाय बतलाने**

लगे, जिससे सूत्र का प्रत्येक शब्द लेकर उसका अक्षरार्थ किया जा सके। उन्होंने कहा, “कौन कहता है कि ये सूत्र केवल अद्वैत मत के परिपोषक हैं? शंकर अद्वैतवादी थे, इसलिए उन्होंने सभी सूत्रों की केवल अद्वैत मतपरक व्याख्या करने की चेष्टा की है, किन्तु तुम लोग सूत्र का अक्षरार्थ करने की चेष्टा करना—व्यास का यथार्थ अभिप्राय क्या है, यह समझने की चेष्टा करना। उदाहरण के रूप में देखो—अस्मिन्नस्य च तद्योग शास्त्रिः—मेरे मतानुसार इस सूत्र की ठीक ठीक व्याख्या यह है कि यहाँ अद्वैत और विशिष्टाद्वैत, दोनों ही वाद भगवान् वेदव्यास द्वारा इंगित हुए हैं।

स्वामी जी एक ओर जैसे गम्भीर प्रकृतिवाले थे, उसी तरह दूसरी ओर रसिक भी थे। पढ़ते पढ़ते कामाच्च नानुमानापेक्षा<sup>१</sup> सूत्र आया। स्वामी जी इस सूत्र को लेकर स्वामी प्रेमानन्द के निकट इसका विकृत अर्थ करके हँसने लगे। सूत्र का सच्चा अर्थ यह है—जब उपनिषद् में, जगत्कारण के प्रसंग में ‘सोऽकामयत’ (उन्होंने अर्थात् उन्हीं जगत्कारण ने कामना की) इस तरह का वचन है, तब ‘अनुमानगम्य’ (अचेतन) प्रवान या प्रकृति को जगत्कारण रूप में स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं। जिन्होंने शास्त्र-ग्रन्थों का अपनी अपनी अद्भुत रुचि के अनुसार कुत्सित अर्थ करके ऐसे पवित्र सनातन धर्म को घोर विकृत कर डाला है और ग्रन्थकार का जो अर्थ किसी भी काल में अभिप्रेत नहीं था, ग्रन्थकार ने जिसे स्वप्न में भी नहीं सोचा था, ऐसे सभी विषयों को जिन्होंने ग्रन्थ-प्रतिपाद्य बातें सिद्ध करते हुए धर्म को शिष्ट जनों से ‘द्वारात्परिहर्तव्य’ कर डाला है, क्या स्वामी जी उन्हीं लोगों का तो उपहास नहीं कर रहे थे? अथवा, वे जैसे कभी कभी कहा करते थे, कठिन शुष्क ग्रन्थ की धारणा कराने के लिए वे बीच बीच में साधारण मन के उपयुक्त रसिकता लाकर दूसरों को अनायास ही उस ग्रन्थ की धारणा करा देते थे, तो सम्भवतः कहीं वही चेष्टा तो नहीं कर रहे थे?

जो भी हो, पाठ चलने लगा। बाद में शास्त्रदृष्ट्या तूपवेशो वामदेववत्<sup>२</sup> सूत्र आया। इस सूत्र की व्याख्या करके स्वामी जी स्वामी प्रेमानन्द की ओर देखकर कहने लगे, “देखो, तुम्हारे ठाकुर<sup>३</sup> जो अपने को भगवान् कहते थे, सो ईसी भाव से कहते थे।” पर यह कहकर ही स्वामी जी दूसरी ओर मुँह फेरकर कहने

१ ब्रह्मसूत्र ॥११११११॥

२ वही, १८

३ वही, ३०

४ भगवान् श्री रामकृष्ण देव।

छगे "किन्तु उन्होंने मुझसे अपने अंतिम समय में कहा था—'जो राम जो कृष्ण नहीं अब रामकृष्ण तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं।" यह कहकर इसका सूत्र पढ़ने के लिए कहा।

यहाँ पर इस सूत्र के सम्बन्ध में कुछ व्याख्या करनी आवश्यक है। कौपीणकी उपनिषद् में इन्द्र प्रथर्वन संवाद नामक एक आख्यायिका है। उसमें सिखा है, प्रथर्वन नामक एक राजा ने देवराज इन्द्र को सन्तुष्ट किया। इन्द्र ने उसे बर देना चाहा। इस पर प्रथर्वन ने उनसे यह बर माँगा कि आप मानव के लिए जो सबसे अधिक कल्याणकारी समझते हैं वही बर मुझे दें। इस पर इन्द्र ने उसे उपदेश दिया—'सो बिजानीहि—'मुझे जानो। यहाँ पर सूत्रकार ने यह प्रश्न उठाया है कि 'मुझे' के अर्थ में इन्द्र ने किसको लक्ष्य किया है। सम्पूर्ण आख्यायिका का अभ्ययन करने पर पहासे अनेक संदेह होते हैं—'मुझे' कहते से स्वान स्वान पर ऐसा भाव होता है कि उसका आशय 'देवता' से है, कहीं कहीं पर ऐसा मान्य होता है कि उसका आशय 'प्राण' से है कहीं पर 'जीव' से तो कहीं पर 'ब्रह्म' से। यहाँ पर अनेक प्रकार के विचार द्वारा सूत्रकार सिद्धान्त करते हैं कि इस स्वस में 'मुझे' पद का आशय है 'ब्रह्म' से। 'सास्त्रबुद्ध्या' इत्यादि सूत्र के द्वारा सूत्रकार ऐसा एक उदाहरण बिखलाते हैं जिससे इन्द्र का उपदेश इती अर्थ में संगत होता है। उपनिषद् के एक स्थल में है कि कामदेव ऋषि ब्रह्मज्ञान काम कर बोके थे—'मैं मनु हुआ हूँ मैं सूर्य हुआ हूँ। इन्द्र ने भी इसी प्रकार सास्त्र प्रतिपाद्य ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त कर कहा था—'सो बिजानीहि (मुझे जानो)। यहाँ पर 'मैं' और 'ब्रह्म' एक ही बात है।

स्वामी जी भी स्वामी प्रेमानन्द से कहते अने 'श्री रामकृष्ण देव जो कभी कभी अपने को बगवान् कहकर निर्वेष करते थे वो वह इस ब्रह्मज्ञान की अवस्था प्राप्त होने के कारण ही करते थे। वास्तव में वे तो सिद्ध पुरुष मात्र थे अबतार नहीं। पर यह बात कहकर ही उन्होंने धीरे से एक दूसरे व्यक्ति से कहा "श्री रामकृष्ण स्वयं अपने सम्बन्ध में कहते थे मैं केवल ब्रह्मज्ञ पुरुष ही नहीं हूँ मैं अबतार हूँ। अब' जैसा कि हमारे एक मित्र कहा करते थे श्री रामकृष्ण को एक साधु या सिद्ध पुरुष मात्र नहीं कहा जा सकता बरि उनकी बातों पर विरचास करना है तो उन्हें अबतार कहकर मानना हीना नहीं तो डॉपी कहना हीना।

जो ही स्वामी जी की बात से मेरा एक विशेष उपकार हुआ। सामान्य धर्मिकी, लक्ष्मण, कादे, और कुछ सीता, हो, या न, सीता, ही, किन्तु सदैव कल्याण ही बचपी तरह सीता वा। मेरी यह पारना की कि महापुरुषों के विषयमें अपने गुण की बड़ाई कर उन्हें अनेक प्रकार की कल्पना और अतिरंजना का विषय बना

देते हैं। परन्तु स्वामी जी की अद्भुत अकपटता और सत्यनिष्ठा को देखकर, वे भी किसी प्रकार की अतिरजना कर सकते हैं, यह धारणा एकदम दूर हो गयी। स्वामी जी के वचन ध्रुव सत्य है, यही धारणा हुई। इसलिए उनके वाक्य में श्री रामकृष्ण देव के सम्बन्ध में एक नवीन प्रकाश पाया। जो राम, जो कृष्ण, वही अब रामकृष्ण—यह बात उन्होंने स्वयं कही है, अभी यही बात हम समझने की चेष्टा कर रहे हैं। स्वामी जी में अपार दया थी, वे हम लोगों से सन्देह छोड़ देने को नहीं कहते थे, चट से किसीकी बात में विश्वास कर लेने के लिए उन्होंने कभी नहीं कहा। वे तो कहते थे, “इस अद्भुत रामकृष्ण-चरित्र की तुम लोग अपनी विद्या-बुद्धि के द्वारा जहाँ तक हो सके, आलोचना करो, इसका अध्ययन करो—मैं तो इसका एक लक्षांश भी समझ न पाया। उनको समझने की जितनी चेष्टा करोगे, उतना ही सुख पाओगे, उतना ही उनमें डूब जाओगे।”

८

स्वामी जी एक दिन हम सबको पूजा-गृह में ले जाकर साधन-भजन सिखलाने लगे। उन्होंने कहा, “पहले सब लोग आसन लगाकर बैठो, चिन्तन करो—मेरा आसन दृढ़ हो, यह आसन अचल-अटल हो, इसीकी सहायता से मैं ससार-समुद्र के पार होऊँगा।” सभी ने बैठकर कई मिनट तक इस प्रकार चिन्तन किया। उसके बाद स्वामी जी फिर कहने लगे, “चिन्तन करो—मेरा शरीर नीरोग और स्वस्थ है, वज्र के समान दृढ़ है, इसी देह की सहायता से मैं ससार को पार करूँगा।” इस प्रकार कुछ देर तक चिन्तन करने के बाद स्वामी जी फिर कहने लगे, “अब इस प्रकार चिन्तन करो कि मेरे निकट से पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओं में प्रेम का प्रवाह बह रहा है—हृदय के भीतर से सम्पूर्ण जगत् के लिए शुभकामना हो रही है—सभी का कल्याण हो, सभी स्वस्थ और नीरोग हो। इस प्रकार चिन्तन करने के बाद कुछ देर प्राणायाम करना, अधिक नहीं, तीन प्राणायाम करने से ही काफी है। इसके बाद हृदय में अपने अपने इष्टदेव की मूर्ति का चिन्तन और मन्त्र-जप लगभग आठ घंटे तक करना।” सब लोग स्वामी जी के उपदेशानुसार चिन्तन आदि की चेष्टा करने लगे।

इस प्रकार सामूहिक साधनानुष्ठान मठ में दीर्घ काल तक होता रहा है, एवं स्वामी जी की आज्ञा से स्वामी तुरीयानन्द नवीन सन्यासियों और ब्रह्मचारियों को लेकर बहुत समय तक, ‘इस बार इस प्रकार चिन्तन करो, उसके बाद ऐसा करो,’ इस तरह बतला बतलाकर और स्वयं अनुष्ठान कर स्वामी जी द्वारा बतलायी गयी साधना-प्रणाली का अभ्यास कराते थे।

९

एक दिन सवेरे ९:१ बजे मैं एक कमरे में बैठकर कुछ कर रहा था उसी समय सहसा तुलसी महाराज (स्वामी निर्मलानन्द) आकर बीसे 'स्वामी जी से यौजा कोने?' मैंने कहा 'जी हाँ। इसके पहले मैंने कुछ मुत्त या और किसीके पास किसी प्रकार मन्त्र-बीजा नहीं की थी। एक योमी के पास प्राणायाम आदि कुछ यौग-क्रियाओं का मैंने ठीम बर्य तक साधन किया था और उससे बहुत कुछ पारैरिक उन्नति और मन की स्थिरता भी मुझे प्राप्त हुई थी किन्तु वे गृहस्थाश्रम का अवलम्बन करना अत्यावश्यक बतलाते थे और प्राणायाम आदि यौग-क्रिया को छोड़कर ज्ञान भक्ति आदि अन्यान्य मार्गों को बिल्कुल बर्ष्य कहते थे। इत प्रकार की कट्टरता मुझे बिस्कुल अच्छी नहीं लगती थी। दूसरी ओर, मठ के कोई कोई संन्यासी और उनके भक्तगण यौग का नाम सुनते ही बात को हँसी में उड़ा देते थे। 'उससे विशेष कुछ नहीं होता थी रामकृष्ण देव उसके उतने पक्षपाती नहीं थे इत्यादि बातों में उन लोगों से मुता करता था। पर जब मैंने स्वामी जी का राजयोग पढ़ा तो समझा कि इस ग्रन्थ के प्रवेत्ता जैसे यौगमार्ग के समर्थक हैं वैसे ही अन्याय मार्गों के प्रति भी धडाकु है अतएव कट्टर तो हैं ही नहीं अपितु इस प्रकार के उदार भावसम्पन्न आचार्य मुझे कभी इष्टिगीचर नहीं हुए तिस पर वे संन्यासी भी हैं — अतएव उनके प्रति यदि मेरे हृदय में विशेष धडा हो तो उसमें आश्चर्य ही क्या? बाद में मैंने विशेष रूप से जाना कि श्री रामकृष्ण देव साधारणतया प्राणायाम आदि यौग-क्रिया का उपदेश नहीं दिया करते थे। वे जब और ध्यान पर ही विशेष रूप से जोर देते थे। वे कहा करते थे 'ध्यानवस्था के पगाड़ होने पर अथवा भक्ति की प्रकलता माने पर प्राणायाम स्वयमेव हा जाता है इन सब वैदिक क्रियाओं का अनुष्ठान करने से बनेक बार मन देह की ओर आकृष्ट हो जाता है। किन्तु अन्तरय शिष्यों से वे यौग के उन्नत बनों की साधना कहते थे उन्हें स्वर्ष करके अपनी आध्यात्मिक शक्ति के बल से उन लोगों की कुशलिनी शक्ति को जाग्रत कर देने से एवं पद्वक के विभिन्न बनों में मन की स्थिरता की सुविधा के लिए समय समय पर शरीर के विधी विधिष्ट भंग में मुर् चुमाकर वहाँ मन की स्थिर करने के लिए कहते थे। स्वामी जी ने जाने पा-बाय शिष्यों से वे बटुनों को ज्ञानायाम आदि क्रियाओं का जो उपदेश दिया था वह मैं समझता हूँ उनका मतना कापीकल्पित नहीं था बल्कि उनके गुरु शरय उपदिष्ट मार्ग था। स्वामी जी एत बात बता करने से कि यदि शिष्यों को सपमुख सगमार्ग में प्रयुक्त करना हो तो उमीती माया में उस उपदेश देना होगा। इनी भाव का अनुकरण करके वे शक्तिविशेष भयवा अविताटीविषय को विप्र भिप्र पायना

प्रणाली की शिक्षा देते थे और इस तरह सभी प्रकार की प्रकृतिवाले मनुष्यों को थोड़ी-बहुत आध्यात्मिक सहायता देने में सफल होते थे।

जो हो, मैं इतने दिनों से उनका उपदेश सुन रहा हूँ, किन्तु उनके पास से मुझे अभी तक किसी प्रकार की प्रत्यक्ष आध्यात्मिक सहायता नहीं मिली, और उसके लिए मैंने चेष्टा भी नहीं की। चेष्टा न करने का कारण यह था कि मुझे करने का साहस नहीं होता था, और शायद मन के भीतर यह भी भाव था कि जब मैं इनके आश्रित हुआ हूँ, तो जो जो मेरे लिए आवश्यक है, सभी पाऊँगा। किस प्रकार वे मेरी आध्यात्मिक सहायता करेंगे, यह मैं नहीं जानता था। इस समय स्वामी निर्मलानन्द के ऐसे विनम्र आह्वान से मन में और किसी प्रकार की दुविधा नहीं रही। 'लूंगा' ऐसा कहकर उनके साथ पूजा-गृह की ओर बढ़ा। मैं नहीं जानता था कि उस दिन श्रीयुत शरच्चन्द्र चक्रवर्ती भी दीक्षा ले रहे हैं। उस समय दीक्षा-दान समाप्त नहीं हुआ था, इसलिए, स्मरण है, पूजा-गृह के बाहर कुछ देर तक मुझे प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। बाद में शरत् बाबू बाहर आये, तो उसी समय तुलसी महाराज मुझे ले जाकर स्वामी जी से बोले, "यह दीक्षा लेगा।" स्वामी जी ने मुझसे बैठने के लिए कहा। पहले ही उन्होंने पूछा, "तुझे साकार अच्छा लगता है या निराकार?"

मैंने कहा, "कभी साकार अच्छा लगता है, कभी निराकार।"

इसके उत्तर में वे बोले, "वैसा नहीं, गुरु समझ सकते हैं, किसका क्या मार्ग है, हाथ देखूँ।" ऐसा कहकर मेरा दाहिना हाथ कुछ देर तक लेकर थोड़ी देर जैसे ध्यान करने लगे। उसके बाद हाथ छोड़कर बोले, "तूने कभी घट-स्थापना करके पूजा की है?" घर छोड़ने के कुछ पहले घट-स्थापना करके मैंने बहुत देर तक कोई पूजा की थी। वह बात मैंने उनसे बतायी। तब एक देवता का मन्त्र बताकर उन्होंने उसे अच्छी तरह मुझे समझा दिया और कहा, "इस मन्त्र से तेरा कल्याण होगा। और घट-स्थापना करके पूजा करने से तेरा कल्याण होगा।" उसके बाद मेरे सम्बन्ध में एक भविष्यवाणी करके, उन्होंने सामने पड़े हुए कुछ फलों को गुरु-दक्षिणा के रूप में देने के लिए मुझसे कहा।

मैंने देखा, यदि मुझे भगवान् के शक्तिस्वरूप किन्हीं देवता की उपासना करनी हो, तो मुझे स्वामी जी ने जिन देवता के मन्त्र का उपदेश दिया है, वे ही देवता मेरी प्रकृति के साथ पूर्णरूपेण मेल खाते हैं। सुना था—सच्चे गुरु शिष्य की प्रकृति को समझकर मन्त्र देते हैं। स्वामी जी में आज उसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिला।

दीक्षा-दान के कुछ देर बाद स्वामी जी का भोजन हुआ। स्वामी जी की थाली में से मैंने और शरच्चन्द्र बाबू ने प्रसाद ग्रहण किया।



उस समय भीमूत मरेकनाथ सेन द्वारा सम्पादित 'इन्डियन मिरर' नामक अंग्रेजी दैनिक मठ में बिना मूल्य दिया जाता था किन्तु मठ के सम्पादकों की ऐसी स्थिति नहीं थी कि उसका डाक-सर्व भी दे सकते। वह पत्र एक पत्रवाहक द्वारा बराहनपर तक बितरित होता था। बराहनपर में 'विश्वकान्त' के प्रतिष्ठाता सेवा प्रती भी सक्षिपद बन्धोपाध्याय द्वारा प्रतिष्ठित एक विभवाश्रम था। वहाँ पर इस आश्रम के लिए उक्त पत्र की एक प्रति जाती थी। 'इन्डियन मिरर' का पत्रवाहक वस वही तक जाता था इसलिए मठ का समाचारपत्र भी वही दे जाता था। वहाँ से प्रतिदिन पत्र को मठ में लाना पड़ता था। उक्त विभवाश्रम के ऊपर स्वामी जी की मनेष्ट सहायभूति थी। अमेरिका-मनास में इस आश्रम की सहायता के लिए स्वामी जी ने अपनी इच्छा से एक व्याख्यान दिया था और उस व्याख्यान के टिकट बेचकर जा कुछ आय हुई, उसे इस आश्रम में दे दिया था। अस्तु, उस समय मठ के लिए बाजार करना पूजा का आयोजन करना आदि सभी कार्य कन्हारी महाराज (स्वामी निर्मयानन्द) की करना पड़ता था। इस 'इन्डियन मिरर' पत्र को काम का भार भी उन्हींके ऊपर था। उस समय मठ में हम लोग बहुत से नवशिक्षित संस्थापी ब्राह्मचारी आ जुटे थे किन्तु सब भी मठ के सब कार्यों का भार सब पर नहीं बाँटा गया था। इसलिए स्वामी निर्मयानन्द की मनेष्ट कार्य करना पड़ता था। अतएव उनके नी मन में आता था कि अपने कार्यों में सँ जोड़ा जोड़ा कार्य यदि तभीन सामुझों को दे सकें तो कुछ अवकाश मिले। इस उद्देश्य से उन्होंने मुझसे कहा 'बेटो जिस जगह 'इन्डियन मिरर' जाता है उस स्थान को तुम्हें बिलका देना — तुम वहाँ से प्रतिदिन समाचारपत्र लँ लाना।' मैंने उसे अत्यन्त सरल कार्य समझकर एव इससे एक व्यक्ति का कार्य-भार कुछ हलका होगा ऐसा सोचकर, सहज मे ही स्वीकार कर लिया। एक दिन बीपहर के भोजन के बाद कुछ देर विभाम कर देने पर निर्मयानन्द जी ने मुझसे कहा 'बेटो वह विभवाश्रम तुम्हें बिलका दे। मैं उनके साथ जाने के लिए तैयार हुआ। इसी बीच स्वामी जी ने मुझे देखकर बेचान्त पढ़ने के लिए बुलाया। मैंने कहा कि मैं अमुक कार्य से जा रहा हूँ। इस पर स्वामी जी कुछ नहीं बोले। मैं कन्हारी महाराज के साथ बाहर जाकर उस स्थान को देख आया। जाँटकर जब मठ में आया तो अपने एक ब्राह्मचारी मित्र सँ सुना कि मेरे बड़े जाने के कुछ देर बाद स्वामी जी किसीसे कह रहे थे "यह कड़का कहाँ गया है? क्या रिश्वों को तो देखने नहीं गया? इस बात को सुनकर मैंने कन्हारी महाराज से कहा 'मार्ग, मैं स्थान देख तो आया पर समाचारपत्र लाने के लिए अब वहाँ न जा सकूँगा।

शिष्यों के, विशेषतः नवीन ब्रह्मचारियों के चरित्र की जिनसे रक्षा हो, उस विषय में स्वामी जी विशेष सावधान थे। कलकत्ते में विशेष प्रयोजन के बिना कोई साधु-ब्रह्मचारी रहे या रात बिताये—यह उन्हें बिल्कुल पसन्द न था, और विशेषतः वह स्थान, जहाँ स्त्रियों के सस्पर्श में आना होता था। इसके सैकड़ों उदाहरण देग चुका हूँ।

स्वामी जी जिन दिन मठ से खाना होकर अलमोडा जाने के लिए कलकत्ता गये, उस दिन सीढी के बगल के बरामदे में खड़े होकर अत्यन्त आग्रह के साथ नवीन ब्रह्मचारियों को सम्बोधन करके ब्रह्मचर्य के बारे में उन्होंने जो बातें कही थी, वे मानो अभी भी मेरे कानों में गूँज रही हैं। उन्होंने कहा—

“देवो बच्चो, ब्रह्मचर्य के बिना कुछ भी न होगा। धर्म-जीवन का लाभ करना ही, तो उममें ब्रह्मचर्य ही एकमात्र सहायक है। तुम लोग स्त्रियों के सस्पर्श में बिल्कुल न आना। मैं तुम लोगों को स्त्रियों से घृणा करने के लिए नहीं कहता, वे तो साक्षात् भगवतीस्वरूपा हैं, किन्तु अपने को बचाने के लिए तुम लोगों को उनसे दूर रहने के लिए कहता हूँ। मैंने अपने व्याख्यानो में बहुत जगह जो कहा है कि ससार में रहकर भी धर्म होता है, सो वह पढ़कर मन में ऐमा न समझ लेना कि मेरे मत में ब्रह्मचर्य या सन्यास धर्म-जीवन के लिए अत्यावश्यक नहीं है। क्या करता, उन सब भाषणों के सुननेवाले सभी समारी थे, सभी गृही थे—उनके सामने पूर्ण ब्रह्मचर्य की बात यदि एकदम कहने लगता, तो दूसरे दिन से कोई भी मेरा व्याख्यान सुनने न आता। ऐसे लोगों के लिए छूट-दिलाई दिये जाने पर, वे क्रमशः पूर्ण ब्रह्मचर्य की ओर आकृष्ट होते हैं, इसीलिए मैंने उस प्रकार के भाषण दिये थे। किन्तु अपने मन की बात तुम लोगों से कहता हूँ—ब्रह्मचर्य के बिना तनिक भी धर्मलाभ न होगा। काया, मन और वाणी से तुम लोग ब्रह्मचर्य का पालन करना।”

१०

एक दिन विलायत से कोई पत्र आया। उसे पढ़कर स्वामी जी उसी प्रसंग में, धर्म-प्रचारक में कौन कौन से गुण रहने पर वह सफल हो सकेगा, यह बताने लगे। अपने शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों की ओर लक्ष्य करके कहने लगे कि धर्म-प्रचारक का अमुक अंग खुला रहना आवश्यक है और अमुक अंग बन्द। अर्थात् उसका सिर, हृदय और मुख खुला रहना चाहिए, यानी उसे प्रबल मेधावी, सहृदय और वाग्मी होना चाहिए। और उसके अधोदेश के अंगों का कार्य बन्द होगा, अर्थात् वह पूर्ण ब्रह्मचारी होगा। एक प्रचारक को लक्ष्य करके कहने लगे,

“उसमें सभी गुण हैं केवल एक हृदय का अभाव है—ठीक है कमरा हृदय भी बल आया।

उस पत्र में यह संवाद था कि भूमिमी निवेदिता (उस समय कुमारी नोबल) ईश्वर से भारत के लिए सौम्य ही रहना होंगी। निवेदिता की प्रशंसा करने में स्वामी जी सतमुक्त हो गये। कहने लगे ‘ईश्वर में इस प्रकार की पवित्र चरित महानुभाव नारियाँ बहुत कम हैं। मैं यदि कष्ट भर जाऊँ, तो वह मेरे काम को चाल रहेगी। स्वामी जी की यह भविष्यवाणी सफल हुई थी।

२१

स्वामी जी के पास पत्र आया है कि बेपान्त के श्रीभाष्य के अंग्रेजी अनुबाधक तथा स्वामी जी की सहायता द्वारा मद्रास से प्रकाशित होनेवाके विख्यात ‘ब्रह्म वादिन्’ पत्र के प्रधान लेखक एवं मद्रास के प्रतिष्ठित अध्यापक श्रीयुक्त रंगाचार्य जीव भ्रमण के सिद्धसिद्धे में सौम्य ही कसकता जायेंगे। स्वामी जी मध्याह्न समय मुझसे बोले ‘पत्र लिखने के लिए कागज और कलम लाकर चला लाओ और देखा पौड़ा पीने के लिए पानी भी लेता आ। मैंने एक गिलास पानी लाकर स्वामी जी को दिया और डरते हुए बीरे बीरे बोला ‘मेरे हाथ की लिखावट उतनी भच्छी नहीं है। मैंने सोचा था चायब बिलायत या अमेरिका के लिए कोई पत्र लिखना होगा। स्वामी जी इस पर बोले ‘कोई हुरज नहीं था बिल foreign letter (बिधायती पत्र) नहीं है। तब मैं कागज-कलम लेकर पत्र लिखने के लिए बैठा। स्वामी जी अंग्रेजी में बोलने लगे। उन्होंने अध्यापक रंगाचार्य की एक पत्र लिखाया और एक पत्र किसी दूसरे को किसे—यह ठीक स्मरण नहीं है। मुझे याद है—रंगाचार्य को बहुत सी दूसरी बातों में एक यह भी बात लिखायी थी ‘बंगाल में बेदास्त की बीसी बर्षा नहीं है अतएव जब आप कलकत्ता आ रहे हैं तो कलकत्तावासियों को बरा हिलाकर जायें। कलकत्ते में जिससे बेदास्त की बर्षा बड़े कलकत्तावासी जिससे बौड़ा समेत हों उसके लिए स्वामी जी कितने सचेष्ट थे! स्वामी जी ने अस्वस्थ होने के कारण बिक्रिसकों के साथ बनुदोष से कलकत्ते में कलकत्तो व्याख्यान लेकर फिर व्याख्यान देना बन्द कर दिया था किन्तु तो भी जब कभी मुजिया पाते कलकत्तावासियों की यम भावना को जाइत करने की चेष्टा करते रहते थे। स्वामी जी के इस पत्र के फलस्वरूप इसके कुछ दिनों बाद कलकत्तावासियों ने बरदार रंगभद्र पर उच्च प्रतिष्ठ प्रदर का दि प्रोत्सा एण्ड नि प्रोत्से (पुरोहित और ज्जिदि) नामक सार्वभित व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त किया था।

१२

इसी समय, एक बगाली युवक मठ में आया और उसने वहाँ साधु होकर रहने की इच्छा प्रकट की। स्वामी जी तथा वहाँ के अन्यान्य साधु उसके चरित्र से पहले ही से विशेषतया परिचित थे। उसको आश्रमवासी होने में अनुपयुक्त समझकर कोई भी उसे मठ में रखने के पक्ष में नहीं था। पर उसके पुनः पुनः प्रार्थना करने पर स्वामी जी ने उससे कहा, “मठ के साधुओं का यदि मत हो, तो तुम्हें रख सकता हूँ।” यह कहकर पुराने साधुओं को बुलाकर उन्होंने पूछा, “इसको मठ में रखने के बारे में तुम लोगो का क्या मत है?” उस पर सभी साधुओं ने उसे मठ में रखने में अनिच्छा प्रदर्शित की। अतः उस युवक को मठ में नहीं रखा गया। इसके कुछ दिनों बाद सुना कि वह व्यक्ति किसी तरह विलायत गया, और पास में पैसा-कौड़ी न रहने के कारण उसे ‘वर्क-हाउस’ में रहना पड़ा।

१३

एक दिन अपराह्न काल में स्वामी जी मठ के बरामदे में हम लोगो को लेकर वेदान्त पढ़ाने बैठे। सन्ध्या होने ही वाली थी। स्वामी रामकृष्णानन्द को इससे कुछ दिन पहले स्वामी जी ने प्रचार-कार्य के लिए मद्रास भेजा था। इसीलिए उस समय मठ में पूजा-आरती आदि उनके एक दूसरे गुरुभ्राता सँभालते थे। आरती आदि में जो लोग उनकी सहायता करते थे, उन्हें भी लेकर स्वामी जी वेदान्त पढ़ाने बैठे थे। उसी समय उक्त गुरुभ्राता आकर नवीन सन्यासी-ब्रह्म-चारियों से कहने लगे, “चलो जी, चलो, आरती करनी होगी, चलो।” उस समय एक ओर स्वामी जी के आदेश से सभी वेदान्त पढ़ने में लगे हुए थे, और दूसरी ओर इनके आदेश से ठाकुर जी की आरती में सहयोग देना चाहिए। अतएव नवीन साधु लोग कुछ समय असमजस में पड़ गये। तब स्वामी जी अपने गुरुभ्राता को सम्बोधित करके उत्तेजित होकर कहने लगे, “यह जो वेदान्त पढ़ा जा रहा था, यह क्या ठाकुर की पूजा नहीं है? केवल एक चित्र के सामने जलती हुई वत्ती घुमाना और झंझ पीटना—मालूम होता है, इसीको तुम भगवान् की आराधना समझते हो! तुम्हारी बुद्धि बड़ी ओछी है।” इस तरह कहते कहते, जरा और भी अधिक उत्तेजित हो इस प्रकार वेदान्त-पाठ में बाधा उपस्थित करने के कारण कुछ और भी अधिक कड़े वाक्य कहने लगे। फल यह हुआ कि वेदान्त-पाठ बन्द हो गया। कुछ देर बाद आरती भी नमाप्त हो गयी। किन्तु आरती के बाद उक्त गुरुभ्राता चुपके से कहीं चले गये। तब तो स्वामी जी भी अत्यन्त व्याकुल होकर वाग्म्वार “वह कहाँ गया, क्या वह मेरी गाली खाकर गंगा में तो नहीं

हुब गया। इस तरह कहने लगे और सभी लोगों को उन्हें हँसने के लिए पारों और भेजा। बहुत देर बाद मठ की छत पर चिन्तित भाव से उन्हें बैठे हुए देखकर एक व्यक्ति उन्हें स्वामी जी के पास ले आये। उस समय स्वामी जी का भाव एकदम परिवर्तित हो गया। उन्होंने उनका कितना हुआ क्रिया और कितनी मधुर वाणी में उनसे बातें करने लगे। हम लोग स्वामी जी का गुरुमार्ग के प्रति अपूर्व प्रेम देखकर मुग्ध हो गये। तब हम लोगों को मालूम हुआ कि गुरुमार्गियों के ऊपर स्वामी जी का अगाध विश्वास और प्रेम है। उनकी आन्तरिक चेष्टा यही रही थी कि वे ज्ञान अपनी निष्ठा को सुरक्षित रखकर अधिकधिक उमर एवं उदार बन सकें। बाद में स्वामी जी के शिष्य से अनेक बार सुना है कि स्वामी जी जिनकी अधिक भर्त्सना करते थे वे ही उनके विशेष प्रीति-पात्र थे।

१४

एक दिन बरामदे में टहलते-टहलते उन्होंने मुझसे कहा 'देख मठ की एक डायरी रखना और प्रत्येक सप्ताह मठ की एक रिपोर्ट भेजना। स्वामी जी के इस आदेश का मैंने और बाद में अन्य व्यक्तियों ने भी पालन किया था। अभी भी मठ की वह आधिक (छोटी) डायरी मठ में सुरक्षित है। उससे अभी भी मठ के क्रम-विकास और स्वामी जी के सम्बन्ध में बहुत से तथ्य संप्रह किये जा सकते हैं।

प्रश्नोत्तर

## प्रश्नोत्तर

१

(बेलूड मठ की डायरी से)

प्रश्न—गुरु किसे कह सकते हैं ?

उत्तर—जो तुम्हारे भूत-भविष्य को बता सकें, वे ही तुम्हारे गुरु हैं।

प्रश्न—भक्ति-लाभ किस प्रकार होता है ?

उत्तर—भक्ति तो तुम्हारे भीतर ही है—केवल उसके ऊपर काम-काचन का एक आवरण सा पडा हुआ है। उसको हटाते ही भीतर की वह भक्ति स्वयमेव प्रकट हो जायगी।

प्रश्न—हमें आत्मनिर्भर होना चाहिए—इस कथन का सच्चा अर्थ क्या है ?

उत्तर—यहाँ 'आत्म' का अर्थ है, चिरतन नित्य आत्मा। फिर भी, इस 'अनित्य अह' पर निर्भरता का अभ्यास भी हमें धीरे धीरे सच्चे लक्ष्य पर पहुँचा देगा, क्योंकि जीवात्मा भी तो वस्तुतः नित्यात्मा की मायिक अभिव्यक्ति ही तो है।

प्रश्न—यदि सचमुच एक ही वस्तु सत्य हो, तो फिर यह द्वैत-बोध, जो सदा-सर्वदा सबको हो रहा है, कहाँ से आया ?

उत्तर—किसी विषय के प्रत्यक्ष में कभी द्वैत-बोध नहीं होता। प्रत्यक्ष के पुनः उपस्थित होने में ही द्वैत का बोध होता है। यदि विषय-प्रत्यक्ष के समय द्वैत-बोध रहता, तो ज्ञेय ज्ञाता से सम्पूर्ण स्वतन्त्र रूप में तथा ज्ञाता भी ज्ञेय से स्वतन्त्र रूप में रह सकता।

प्रश्न—चरित्र का सामजस्यपूर्ण विकास करने का सर्वोत्तम उपाय कौन सा है ?

उत्तर—जिनका चरित्र उस रूप से गठित हुआ हो, उनका सग करना ही इसका सर्वोत्कृष्ट उपाय है।

प्रश्न—वेद के विषय में हमारा दृष्टिकोण किस प्रकार का होना चाहिए ?

उत्तर—वेदों के केवल उन्हीं अंशों को प्रमाण मानना चाहिए, जो युक्ति-विरोधी नहीं हैं। पुराणादि अन्यान्य शास्त्र वही तक ग्राह्य हैं, जहाँ तक वे वेद से अविरोधी हैं। वेद के पश्चात् इस ससार में जहाँ कहीं जो भी धर्म-भाव आविर्भूत हुआ है, उसे वेद से ही गृहीत समझना चाहिए।

प्रश्न—यह चार युगों का काङ्क-विभाजन क्या ज्योतिषशास्त्र की सहायता से अनुसार सिद्ध है अथवा केवल रुढ़िमत ही है?

उत्तर—वेदों में तो कहीं ऐसे विभाजन का उल्लेख नहीं है। यह पीछे के युग की निराधार कल्पना मात्र है।

प्रश्न—शब्द और माण के बीच क्या सम्बन्ध कोई निरर्थक सम्बन्ध है? अथवा माण संयोग्य और रुढ़िमत?

उत्तर—इस विषय में अनेक तर्क किये जा सकते हैं, किसी स्थिर सिद्धान्त पर पहुँचना बड़ा कठिन है। मान्य होता है कि शब्द और अर्थ के बीच निरर्थक सम्बन्ध है पर पूर्णतया नहीं जैसा भाषाजनों की विचिन्ता से सिद्ध होता है। हाँ कोई सूक्ष्म सम्बन्ध हो सकता है जिसे हम अभी नहीं पकड़ पा रहे हैं।

प्रश्न—भारत में कार्य-सफलता कैसे होती चाहिए?

उत्तर—यहसे तो व्यावहारिक और शरीर से संबंध होने की धारणा देनी चाहिए। ऐसे केवल बाह्य नर-केसरी संसार पर विजय प्राप्त कर सकते हैं परन्तु मान-मान भिड़ों का यह नहीं होने का। और दूसरे, किसी व्यक्तिगत आदर्श के अनुकरण की धारणा नहीं देनी चाहिए, बाह्य वह आदर्श कितना ही बड़ा क्यों न हो।

इसके परचात् स्वामी जी ने कुछ हिन्दू प्रतीकों की अवलोकन का वर्णन किया। उन्होंने ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग का भेद समझाया। वास्तव में ज्ञानमार्ग मार्ग का या और इसलिए उसमें अधिकारी-विचार के इतने बड़े नियम थे। भक्ति मार्ग की उत्पत्ति शक्तिमत्त्व से—आर्सेतर जाति से हुई है इसलिए उसमें अधिकारी-विचार नहीं है।

प्रश्न—भारत का इस पुनरुत्थान में समस्त मित्र क्या कार्य करेगा?

उत्तर—इस कठ से परिचयान व्यक्ति निकलकर सारे संसार को आत्मा रिक्तता की बाढ़ से प्लावित कर देगा। इसके साथ साथ दुनरे क्षेत्रों में भी पुनरुत्थान होगा। इस तरह बाह्य धर्म और वैयक जाति का सम्मुख होगा। नूतन जाति का अस्तित्व समाप्त हो जायगा—वे लोग आज जो काम कर रहे हैं वे सब यंत्रों की सहायता से किये जायेंगे। भारत की वर्तमान अवस्था है—  
धर्म-शक्ति।

प्रश्न—क्या मनुष्य के उत्पन्न अपांगानी पुनरुत्थान संभव है?

उत्तर—हाँ पुनरुत्थान कर्म पर निर्भर करता है। यदि मनुष्य वसु के समान आचरण करे, तो वह मनुष्योक्ति में निश्चय जाता है।



एक समय (सन् १८९८ ई०) में इस प्रकार के प्रश्नोत्तर-काल में स्वामी जी ने मूर्ति-पूजा की उत्पत्ति बौद्ध युग में मानी थी। उन्होंने कहा था—पहले बौद्ध चैत्य, फिर स्तूप, और तत्पश्चात् बुद्ध का मन्दिर निर्मित हुआ। उसके साथ ही हिन्दू देवताओं के मन्दिर खड़े हुए।

प्रश्न—क्या कुण्डलिनी नाम की कोई वास्तविक वस्तु इस स्थूल शरीर के भीतर है ?

उत्तर—श्री रामकृष्ण देव कहते थे, 'योगी जिन्हें पद्म कहते हैं, वास्तव में वे मनुष्य के शरीर में नहीं हैं। योगाभ्यास से उनकी उत्पत्ति होती है।'

प्रश्न—क्या मूर्ति-पूजा के द्वारा मुक्ति-लाभ हो सकता है ?

उत्तर—मूर्ति-पूजा से साक्षात् मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती, फिर भी वह मुक्ति-प्राप्ति में गौण कारणस्वरूप है—सहायक है। मूर्ति-पूजा की निन्दा करना उचित नहीं, क्योंकि बहुतों के लिए मूर्ति-पूजा ही अद्वैत ज्ञान की उपलब्धि के लिए मन को तैयार कर देती है—और केवल इस अद्वैत-ज्ञान की प्राप्ति से ही मनुष्य मुक्त हो सकता है।

प्रश्न—हमारे चरित्र का सर्वोच्च आदर्श क्या होना चाहिए ?

उत्तर—त्याग।

प्रश्न—बौद्ध धर्म ने अपने दाय के रूप में भ्रष्टाचार कैसे छोड़ा ?

उत्तर—बौद्धों ने प्रत्येक भारतवासी को भिक्षु या भिक्षुणी बनाने का प्रयत्न किया था। परन्तु सब लोग तो वैसा नहीं हो सकते। इस तरह किसी भी व्यक्ति के साथ बन जाने से भिक्षु-भिक्षुणियों में क्रमशः शिथिलता आती गयी। और भी एक कारण था—धर्म के नाम पर तिब्बत तथा अन्यान्य देशों के बर्बर आचारों का अनुकरण करना। वे इन स्थानों में धर्म-प्रचार के हेतु गये और इस प्रकार उनके भीतर उन लोगों के दूषित आचार प्रवेश कर गये। अन्त में उन्होंने भारत में इन सब आचारों को प्रचलित कर दिया।

प्रश्न—माया क्या अनादि और अनन्त है ?

उत्तर—समष्टि रूप से अनादि-अनन्त अवश्य है, पर व्यष्टि रूप से सान्त है।

प्रश्न—ब्रह्म और माया का बोध युगपत् नहीं होता। अतः उनमें से किसी-की भी पारमाथिक सत्ता एक दूसरे से अद्भुत कैसे सिद्ध की जा सकती है ?

उत्तर—उसको केवल साक्षात्कार द्वारा ही सिद्ध किया जा सकता है। जब व्यक्ति को ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है, तो उसके लिए माया की सत्ता नहीं रह जाती, जैसे गस्ती की वास्तविकता जान लेने पर सर्प का भ्रम फिर उत्पन्न नहीं होता।

प्रश्न—माया क्या है ?

उत्तर—वास्तव में वस्तु केवल एक ही है—बाहे उसको चेतन्य कहा जा सकता है। पर उनमें से एक को दूसरे से निर्वात स्वतंत्र मानना केवल कठिन ही नहीं असम्भव है। इसीको माया या भ्रमण कहते हैं।

प्रश्न—मुक्ति क्या है ?

उत्तर—मुक्ति का अर्थ है पूर्ण स्वाधीनता—धूम और अधुम दोनों प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाना। कोहे की शृंखला भी शृंखला ही है और सोने की शृंखला भी शृंखला है। श्री रामकृष्ण देव कहते थे 'पर में काटा धुमने पर उसे निकालने के लिए एक दूसरे काँटे की आवश्यकता होती है। काँटा निकल जाने पर दोनों काँटे फेंक दिये जाते हैं। इसी तरह सत्प्रवृत्ति के द्वारा असत् प्रवृत्तियों का वधन करना पड़ता है, परन्तु बाद में सत्प्रवृत्तियों पर भी विषय प्राप्त करनी पड़ती है।'

प्रश्न—मगबद्धपा बिना क्या मुक्ति-काम हो सकता है ?

उत्तर—मुक्ति के साथ ईश्वर का कोई सम्बन्ध नहीं है। मुक्ति तो पहले से ही वर्तमान है।

प्रश्न—हमारे भीतर जिसे 'मैं' या 'मैं' कहा जाता है वह वेह आदि से उत्पन्न नहीं है, इसका क्या प्रमाण है ?

उत्तर—अनात्मा की भाँति 'मैं' या 'मैं' भी वेह-मन आदि से ही उत्पन्न होता है। वास्तविक 'मैं' के अस्तित्व का एकमात्र प्रमाण है साक्षात्कार।

प्रश्न—सच्चा ज्ञानी और सच्चा भक्त किसे कह सकते हैं ?

उत्तर—जिसके हृदय में अथाह प्रेम है और जो सभी अवस्थाओं में अर्द्धतत्त्व का साक्षात्कार करता है, वही सच्चा ज्ञानी है। और सच्चा भक्त वह है जो परमात्मा के साथ बीबात्मा की अनिष्ट रूप से उपलब्धि कर यथार्थ ज्ञानसम्पन्न हो गया है, जो सबसे प्रेम करता है और जिसका हृदय सबके लिए खल करता है। ज्ञान और भक्ति में से किसी एक का पक्ष लेकर जो दूसरे की निन्दा करता है वह न तो ज्ञानी है, न भक्त—वह तो डोंगी और भ्रष्ट है।

प्रश्न—ईश्वर की सेवा करने की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—यदि तुम एक बार ईश्वर के अस्तित्व की मान लेते हो तो उनकी सेवा करने के अनेक कारण पाओगे। सभी शास्त्रों के मतानुसार मगबद्धपा का अर्थ है 'स्मरण'। यदि तुम ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखते हो, तो तुम्हारे जीवन में पय पय पर उनको स्मरण करने का हेतु सामने आयेगा।

प्रश्न—क्या भावाचार अर्द्धतत्त्व से निष्पन्न है ?

उत्तर—नहीं, दोनों एक ही हैं। मायावाद को छोड़ अद्वैतवाद की और कोई भी व्याख्या सम्भव नहीं।

प्रश्न—ईश्वर तो अनन्त हैं, वे फिर मनुष्य रूप धारण कर इतने छोटे किस प्रकार हो सकते हैं ?

उत्तर—यह सत्य है कि ईश्वर अनन्त है। परन्तु तुम लोग अनन्त का जो अर्थ सोचते हो, अनन्त का वह अर्थ नहीं है। अनन्त कहने से तुम एक विराट् जड़ सत्ता समझ बैठते हो। इसी समझ के कारण तुम भ्रम में पड़ गये हो। जब तुम यह कहते हो कि भगवान् मनुष्य रूप धारण नहीं कर सकते, तो इसका अर्थ तुम ऐसा समझते हो कि एक विराट् जड़ पदार्थ को इतना छोटा नहीं किया जा सकता। परन्तु ईश्वर इस अर्थ में अनन्त नहीं है। उसका अनन्तत्व चैतन्य का अनन्तत्व है। इसलिए मानव के आकार में अपने को अभिव्यक्त करने पर भी उनके स्वरूप को कुछ भी क्षति नहीं पहुँचती।

प्रश्न—कोई कोई कहते हैं कि पहले सिद्ध बन जाओ, फिर तुम्हें कर्म करने का ठीक ठीक अधिकार होगा, परन्तु कोई कहते हैं कि शुरू से ही कर्म करना, दूसरों की सेवा करना उचित है। इन दो विभिन्न मतों का सामजस्य किस प्रकार हो सकता है ?

उत्तर—तुम तो दो अलग अलग बातों को एक में मिलाये दे रहे हो, इसलिए भ्रम में पड़ गये हो। कर्म का अर्थ है मानव जाति की सेवा अथवा धर्म-प्रचार-कार्य। यथार्थ प्रचार-कार्य में अवश्य ही सिद्ध पुरुष के अतिरिक्त और किसीका अधिकार नहीं है, परन्तु सेवा में तो सभी का अधिकार है, इतना ही नहीं, जब तक हम दूसरों से सेवा ले रहे हैं, तब तक हम दूसरों की सेवा करने को बाध्य भी हैं।

२

(ब्रुकलिन नैतिक सभा, ब्रुकलिन, अमेरिका)

प्रश्न—आप कहते हैं कि सब कुछ मंगल के लिए ही है, परन्तु देखने में आता है कि ससार सब ओर अमंगल और दुःख-कष्ट से घिरा है। तो फिर आपके मत के साथ इस प्रत्यक्ष दीखनेवाले व्यापार का सामजस्य किस प्रकार हो सकता है ?

उत्तर—आप यदि पहले अमंगल के अस्तित्व को प्रमाणित कर सकें, तभी मैं इस प्रश्न का उत्तर दे सकूंगा। परन्तु वैदान्तिक धर्म तो अमंगल का अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करता। सुख से रहित अनन्त दुःख कहीं हो, तो उसे अवश्य प्रकृत अमंगल कहा जा सकता है। पर यदि सामयिक दुःख-कष्ट हृदय की कोमलता

धीरे महत्ता में वृद्धि कर मनुष्य को अनन्त सुख की ओर अप्रसर कर दे, तो फिर उसे अमंगल नहीं कहा जा सकता बल्कि उसे तो परम मंगल कहा जा सकता है। जब तक हम यह अनुसन्धान नहीं कर लेते कि किसी वस्तु का अनन्त के राज्य में क्या परिणाम होता है तब तक हम उसे बुद्ध नहीं कह सकते।

शैतान की उपासना हिन्दू धर्म का अंग नहीं है। मानव जाति क्रमोन्नति के मार्ग पर चल रही है, परन्तु सब लोग एक ही प्रकार की स्थिति में नहीं पहुँच सके हैं। ईर्ष्यासिद्धि पाश्चिमी जीवन में कोई कोई कोम अस्यान्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक महान् और पवित्र देखे जाते हैं। प्रत्येक मनुष्य के लिए उसके अपने वर्तमान उन्नति-क्षेत्र के भीतर स्वयं को उत्तम बनाने के लिए अबतक विद्यमान है। हम अपना नाश नहीं कर सकते हम अपने भीतर की बीवनी छिपि को तप्य या दुर्बल नहीं कर सकते परन्तु उस क्षिति को विभिन्न दिशा में परिचासित करने के लिए हम स्वतन्त्र हैं।

प्रश्न—पाश्चिमी जड़ वस्तु की सत्यता क्या हमारे मन की केवल कल्पना नहीं है?

उत्तर—मेरे मन में बाह्य जगत् की अवस्था एक सत्ता है—हमारे मन के विचार के बाहर भी उमका एक अस्तित्व है। शैतन्य के कमविकास-रूप महान् विनाश का अनुवर्ती होकर यह समस्त बिन्दु उन्नति के पथ पर अप्रसर हो रहा है। शैतन्य का यह कमविकास जड़ के कमविकास से पूर्वक है। जड़ का कमविकास शैतन्य की विक्राम-मण्डली का सूचक या प्रतीकस्वरूप है किन्तु उसके द्वारा इस प्रणाली की व्याख्या नहीं हो सकती। वर्तमान पाश्चिमी परिस्थिति में बड़ा रहने के कारण हम अभी तक व्यक्तित्व नहीं प्राप्त कर सके हैं। जब तक हम उस उन्नततर भूमि में नहीं पहुँच जाते जहाँ हम अपनी अन्तःशक्ति के परम रूपों को प्रकट करने के उपयुक्त यन्त्र बन जाते हैं तब तक हम प्रकृत व्यक्तित्व की प्राप्ति नहीं कर सकते।

प्रश्न—ज्या मनीह के पास एक अन्धाय चिप्यु को ले जाकर उनसे पूछा गया कि चिप्यु अपने किये हुए पाप के फल से भयानक हुआ है अथवा अपने माता पिता के पाप के फल से—इस समस्या की सीमासा आप किस प्रकार करते हैं?

उत्तर—इस समस्या में पाप की बात को से जाने का कोई भी प्रयोजन नहीं होना पड़ता। तो भी मनु बूढ़ विरहाम है कि चिप्यु की यह अन्धता उनके पूर्व जन्म हुए किसी धर्म का ही फल हीमी। मेरे मन में पूर्व जन्म को स्वीकार करने पर ही ऐसी समस्याओं की सीमासा हो सकती है।

प्रश्न—मनु के परवान् हमारी आत्मा क्या आनन्द की अवस्था की प्राप्ति करनी है?

उत्तर—मृत्यु तो केवल अवस्था का परिवर्तन मात्र है। देश-काल आपके ही भीतर वर्तमान है, आप देश-काल के अन्तर्गत नहीं है। वस इतना जानने से ही यथेष्ट होगा कि हम, इहलोक में या परलोक में, अपने जीवन को जितना पवित्र और महान् बनायेंगे, उतना ही हम उन भगवान् के निकट होते जायेंगे, जो सारे आध्यात्मिक सौन्दर्य और अनन्त आनन्द के केन्द्रस्वरूप हैं।

३

(ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी क्लब, बोस्टन, अमेरिका)

प्रश्न—क्या वेदान्त का प्रभाव इस्लाम धर्म पर कुछ पड़ा है ?

उत्तर—वेदान्त मत की आध्यात्मिक उदारता ने इस्लाम धर्म पर अपना विशेष प्रभाव डाला था। भारत का इस्लाम धर्म ससार के अन्यान्य देशों के इस्लाम धर्म की अपेक्षा पूर्ण रूप से भिन्न है। जब दूसरे देशों के मुसलमान यहाँ आकर भारतीय मुसलमानों को फुसलाते हैं कि तुम विधर्मियों के साथ मिल-जुलकर कैसे रहते हो, तभी अशिक्षित कट्टर मुसलमान उत्तेजित होकर दगा-फसाद मचाते हैं।

प्रश्न—क्या वेदान्त जाति-भेद मानता है ?

उत्तर—जाति-भेद वेदान्त धर्म का विरोधी है। जाति-भेद एक सामाजिक प्रथा मात्र है और हमारे बड़े बड़े आचार्यों ने उसे तोड़ने के प्रयत्न किये हैं। वीर्य धर्म से लेकर सभी सम्प्रदायों ने जाति-भेद के विरुद्ध प्रचार किया है, परन्तु ऐसा प्रचार जितना ही बढ़ता गया, जाति-भेद की शृंखला उतनी ही दृढ़ होती गयी। जाति-भेद की उत्पत्ति भारत की राजनीतिक सस्थायों से हुई है। वह तो वंश-परम्परागत व्यवसायों का समवाय (trade-guild) मात्र है। किसी प्रकार के उपदेश की अपेक्षा यूरोप के साथ व्यापार-वाणिज्य की प्रतियोगिता ने जाति-भेद को अधिक मात्रा में तोड़ा है।

प्रश्न—वेदों की विशेषता किस बात में है ?

उत्तर—वेदों की एक विशेषता यह है कि सारे शास्त्र-ग्रन्थों में एकमात्र वेद ही बारम्बार कहते हैं कि वेदों के भी अतीत हो जाना चाहिए। वेद कहते हैं कि वे केवल बाल-बुद्धि व्यक्तियों के लिए लिखे गये हैं। इसलिए विकाम कर चुकने पर वेदों के परे जाना पड़ेगा।

प्रश्न—आपके मत में प्रत्येक जीवात्मा क्या नित्य सत्य है ?

उत्तर—जीवात्मा मनुष्य की वृत्तियों की समष्टिस्वरूप है, और इन वृत्तियों का प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। इसलिए यह जीवात्मा अनन्त काल के

मिष्ट कमी सत्य नहीं हो सकती। इस मायिक जगत्-मर्षक के भीतर ही उसकी सत्यता है। जीवार्त्मा तो विचार और स्मृति की समष्टि है—वह नित्य सत्य कैसे हो सकती है ?

प्रश्न—भारत में बौद्ध धर्म का पतन क्यों हुआ ?

उत्तर—वास्तव में भारत में बौद्ध धर्म का लोप नहीं हुआ। वह एक विरह सामाजिक आन्दोलन मात्र था। बुद्ध के पहले यज्ञ के नाम से तथा अग्न्य विभिन्न कार्यों से बहुत प्रायश्चित्त होती थी और लोग बहुत मद्यपान एवं कामिय-आहार करते थे। बुद्ध के उपदेश के फल से मद्यपान और जीव-हत्या का भारत से प्रायः लोप सा हो गया है।



(अमेरिका के हार्डमोर्ड में 'भारत, ईश्वर और धर्म' विषय पर स्वामीजी का एक भाषण समाप्त होने पर वहाँ के श्रोताओं ने कुछ प्रश्न पूछे थे। वे प्रश्न तथा उनके उत्तर नीचे दिये गये हैं।)

श्रोतकों में से एक ने कहा—अगर पुरोहित लोग मरक की जगह के बारे में बातें करना छोड़ दें तो लोगों पर से उनका प्रभाव ही उठ जाय।

उत्तर—उठ जाय तो अच्छा ही हो। अगर भारतक से कोई किसी धर्मको मानता है, तो वस्तुतः उसका कोई भी धर्म नहीं। इससे तो मनुष्य को उसकी पापयुक्त प्रकृति क बचाय उसकी ईनी प्रकृति के बारे में उपदेश देना कही अच्छा है।

प्रश्न—अब प्रभु (ईसा) ने यह कहा कि स्वर्ग का राज्य इस संसार में नहीं है तो इससे उनका क्या तात्पर्य था ?

उत्तर—यह कि स्वर्ग का राज्य हमारे अन्दर है। मनुषी लोगों का विश्वास था कि स्वर्ग का राज्य इसी पृथ्वी पर है। पर ईसा मसीह ऐसा नहीं मानते थे।

प्रश्न—क्या आप मानते हैं कि मनुष्य का विकास पशु से हुआ है ?

उत्तर—मैं मानता हूँ कि विकास के नियम के अनुसार ऊँचे स्तर के प्राणी अपेक्षाकृत निम्न स्तर से विकसित हुए हैं।

प्रश्न—क्या आप किसी ऐसे व्यक्ति को मानते हैं, जो अपने पूर्व जन्म की बातें जानता हो ?

उत्तर—हाँ कुछ ऐसे लोगों से भरी घंट हुई है, जो कहते हैं कि उन्हें अपने पिछले जीवन की बातें याद हैं। वे इतना ऊपर उठ चुके हैं कि अपने पूर्व जन्म की बातें याद कर सकते हैं।

१ यह भाषण 'त्रिवेदान्त साहित्य' द्वितीय खंड में प्रकाशित हुआ है। स

प्रश्न—ईसा मसीह के क्रूस पर चढ़ने की बात में क्या आपको विश्वास है ?

उत्तर—ईसा मसीह ईश्वर के अवतार थे। कोई उन्हें मार नहीं सकता था। देह, जिसको क्रूस पर चढ़ाया गया, एक छाया मात्र थी, एक मृगतृष्णा थी।

प्रश्न—अगर वे ऐसे छाया-शरीर का निर्माण कर सके, तो क्या यह सबसे बड़ा चमत्कारपूर्ण कार्य नहीं है ?

उत्तर—चमत्कारपूर्ण कार्यों को मैं आध्यात्मिक मार्ग का सबसे बड़ा रोड़ा मानता हूँ। एक बार बुद्ध के शिष्यो ने उनसे एक ऐसे व्यक्ति की चर्चा की, जो तथाकथित चमत्कार दिखाता था—वह एक कटोरे को बिना छुए ही काफ़ी ऊँचाई पर रोके रखता था। उन लोगो ने बुद्ध को वह कटोरा दिखाया, तो उन्होंने उसे अपने पैरो से कुचल दिया और कहा—कभी तुम इन चमत्कारो पर अपनी आस्था मत आधारित करो, बल्कि शाश्वत सिद्धान्तो में सत्य की खोज करो। बुद्ध ने उन्हें सच्चे आन्तरिक प्रकाश की शिक्षा दी—वह प्रकाश, जो आत्मा की देन है और जो एकमात्र ऐसा विश्वसनीय प्रकाश है, जिसके सहारे चला जा सकता है। चमत्कार तो केवल मार्ग के रोडे हैं। उन्हें हमे रास्ते से अलग हटा देना चाहिए।

प्रश्न—क्या आप मानते हैं कि 'शैलोपदेश' सचमुच ईसा मसीह के हैं ?

उत्तर—हाँ, मैं ऐसा मानता हूँ। और इस सम्बन्ध में मैं अन्य विचारको की तरह पुस्तको पर ही भरोसा करता हूँ, यद्यपि मैं यह भी समझता हूँ कि पुस्तको को प्रमाण बनाना बहुत ठोस आधार नहीं है। पर इन सारी बातो के बावजूद हम सभी 'शैलोपदेश' को निःसर्कोच अपना पथप्रदर्शक मान सकते हैं। जो हमारी अन्तरात्मा को जँचे, उसे हमे स्वीकार करना है। ईसा के पाँच सौ साल पहले बुद्ध ने उपदेश दिया था और सदा उनके उपदेश आशीषो से भरे रहते थे। कभी उन्होंने अपने जीवन में अपने कार्यों अथवा अपने शब्दो से किसीकी हानि नहीं की, और न जरथुष्ट्र अथवा कन्फ्यूशस ने ही।

#### ५

(निम्नलिखित प्रश्नोत्तर अमेरिका में दिये हुए विभिन्न भाषणों के अन्त में हुए थे। वहीं से इनका सग्रह किया गया है। इनसे से यह अमेरिका के एक सवाद-पत्र से सगृहीत है।)

प्रश्न—आत्मा के आवागमन का हिंदू सिद्धान्त क्या है ?

उत्तर—वैज्ञानिको का ऊर्जा या जड-संभारण (conservation of energy or matter) का सिद्धान्त, जिस भित्ति पर प्रतिष्ठित है, आवागमन का सिद्धान्त भी उसी भित्ति पर स्थापित है। इस सिद्धान्त (conservation of energy or

matter) का प्रार्थन करनेपर हमारे देह के एक दार्शनिक ने ही किया था। प्रार्थना 'मृष्टि' पर विराम नहीं करते थे। 'मृष्टि' नाम में तात्पर्य निम्नलिखित है—दुःख नहीं, न दुःख का होना अभाव में 'भार' की उत्पत्ति। यह अमम्भ है। जिस प्रकार नाम का भार नहीं है उन्हीं प्रकार मृष्टि का भी भार नहीं है। ईश्वर और मृष्टि मानो की समानताएँ वेगार्थों के अभाव है—उनका न भार है न अम्भ—वे शिष्य पूजक हैं। मृष्टि के बारे में हमारा मत यह है—'बहु' की है और रहेगी। पापपाप के कारणों की कारण में एक पाप मीनकी है—यह है परमेश्वर-सहिष्णुता। बर्तन की पर्ये हुए नहीं है, बरकरार सब पर्ये का मार एक ही है।

प्रश्न—भारत की स्थिति उतनी उन्नत क्यों नहीं है?

उत्तर—विभिन्न समयों में अनेक अमम्भ जातिवर्गों ने भारत पर आक्रमण किया था प्रभावशाली उन्हींके कारण भारतीय महिलाएँ इतनी अनुपम हैं। किन्तु हममें कुछ लोग तो भारतवागियों के निर्भीक भी हैं।

किन्ती समय अमेरिका में स्वामी जी से कहा गया था कि हिन्दू धर्म ने कभी किसी अन्य पर्यायसम्भों की अलग धर्म में नहीं मिलना है। इसके उत्तर में उन्होंने कहा "पैंस पूर्व के लिए बुद्धदेव के पास एक विशेष मन्त्रों का उणी प्रकार पदिचम के लिए मेरे पास भी एक सन्देश है।

प्रश्न—आप क्या यहाँ (अमेरिका में) हिन्दू धर्म के विचारकलाप अनुष्ठान आदि को चलाना चाहते हैं?

उत्तर—मैं तो केवल दार्शनिक तर्कों का ही प्रचार कर रहा हूँ।

प्रश्न—क्या आपकी ऐसा नहीं मान्य होता कि यदि भारी मरक वा डर मनुष्य के सामने से हटा दिया जाय तो निभी भी क्या से उसे क्रांति में रचना असम्भव ही जायगा?

उत्तर—नहीं बल्कि मैं तो यह समझता हूँ कि मय की अपेक्षा हृदय में प्रेम और माया का संघार होने से वह अधिक अच्छा ही सकेगा।

६

(स्वामी जी ने २५ मार्च सन् १८९६ ई की संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के हार्बर्ड विश्वविद्यालय की 'जेम्स एडवार्ड सभा' में बैरान्त बर्नन के बारे में एक व्याख्यान किया था। व्याख्यान समाप्त होने पर श्रोताओं के साथ निम्नलिखित प्रश्नोत्तर हुए।)

प्रश्न—मैं यह जानना चाहता हूँ कि भारत में दार्शनिक विचारों की वर्तमान अवस्था कैसी है? इन सब बातों की वहाँ आवश्यक कहीं तक आलोचना होती है?



उत्तर—मैंने पहले ही कहा है कि भारत में अधिकांश लोग द्वैतवादी हैं। अद्वैतवादियों की संख्या बहुत अल्प है। उस देश में (भारत में) आलोचना का प्रधान विषय है मायावाद और जीव-तत्त्व। मैंने इस देश में आकर देखा कि यहाँ के श्रमिक संसार की वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति से भली भाँति परिचित हैं, परन्तु जब मैंने उनसे पूछा, 'धर्म कहने से तुम क्या समझते हो, अमुक अमुक सम्प्रदाय का धर्म-मत किस प्रकार का है', तो उन्होंने कहा, 'ये सब बातें हम नहीं जानते—हम तो बस चर्च में जाते भर हैं।' परन्तु भारत में किसी किसान के पास जाकर यदि मैं पूछूँ कि तुम्हारा शासनकर्ता कौन है, तो वह उत्तर देगा, 'यह बात मैं नहीं जानता, मैं तो केवल टैक्स (कर) दे देता हूँ।' पर यदि मैं उससे धर्म के विषय में पूछूँ, तो वह तत्काल बता देगा कि वह द्वैतवादी है, और माया तथा जीव-तत्त्व के सम्बन्ध में वह अपनी धारणा को विस्तृत रूप से कहने के लिए भी तैयार हो जायगा। वे लिखना-पढ़ना नहीं जानते, परन्तु इन बातों को उन्होंने साधु-संन्यासियों से सीखा है, और इन विषयों पर विचार करना उन्हें बहुत अच्छा लगता है। दिन भर काम करने के पश्चात् पेड़ के नीचे बैठकर किसान लोग इन सब तत्त्वों पर विचार किया करते हैं।

प्रश्न—कट्टर या असल हिन्दू किसे कह सकते हैं? हिन्दू धर्म में कट्टरता (orthodoxy) का क्या अर्थ है?

उत्तर—वर्तमान काल में तो खान-पान अथवा विवाह के विषय में जातिगत विधि-निषेध का पालन करने से ही कट्टर या असल हिन्दू हो जाता है। फिर वह चाहे जिस किसी धर्म-मत में विश्वास क्यों न करे, कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। भारत में कभी भी कोई नियमित धर्मसंघ या चर्च नहीं था, इसलिए कट्टर या असल हिन्दूपन गठित तथा नियमित करने के लिए सघन रूप से कभी चेष्टा नहीं हुई। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जो वेदों में विश्वास रखते हैं, वे ही असल या कट्टर हिन्दू हैं। पर वास्तव में, देखने में यह आता है कि द्वैतवादी सम्प्रदायों में से अनेक केवल वेद-विश्वासी न होकर पुराणों में ही अधिक विश्वास रखते हैं।

प्रश्न—आपके हिन्दू दर्शन ने यूनानियों के स्टोइक दर्शन<sup>१</sup> पर किस प्रकार प्रभाव डाला था?

१ सम्भवतः ईसा से ३०८ वर्ष पूर्व ग्रीस के दार्शनिक जीनो (Zeno) ने इस दर्शन का प्रचार किया था। इनके मत से, सुख-दुःख, भला-बुरा, सब विषयों में समभावसम्पन्न रहना और अविचलित रहकर सबको सहना ही मनुष्य जीवन का परम पुरुषार्थ है। स०

उत्तर—यहूत सम्भव है कि उसने विकल्परिया विधायियों द्वारा उस पर कुछ प्रभाव डाला था। ऐसा सन्देह किया जाता है कि पारंपारिक के उपदेशों में सांख्य दर्शन का प्रभाव विद्यमान है। जो है। हमारे यह धारणा है कि सांख्य दर्शन ही वेदों में निहित सार्वभौम तत्त्वों का पुनित-विचार द्वारा समन्वय करने का सबसे प्रथम प्रयत्न है। हम वेदों तक में कपिल के नाम का उल्लेख पाते हैं—ऋषि प्रसूतं कपिलं वास्तमये।<sup>१</sup>

— जिन्होंने उन कपिल ऋषि को पहले प्रसन्न किया था।

प्रश्न—पारंपारिक विज्ञान के साथ इस मत का विरोध कहीं पर है ?

उत्तर—विरोध कुछ भी नहीं है। बल्कि हमारे इस मत के साथ पारंपारिक विज्ञान का सादृश्य ही है। हमारा परिणामवाद तथा आकाश और प्राण तत्त्व ठीक आपक आपुनिक दर्शनों के सिद्धान्त के समान है। आपका परिणामवाद या कमविकास हमारे प्राण और सांख्य दर्शन में पाया जाता है। बुद्ध्यान्तस्वरूप शक्ति—पतञ्जलि न पतञ्जाली है कि प्रकृति के आपूरण के द्वारा एक वांछित नव्य वांछित में परिणत होती है—आख्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यन्तुरात्। केवल इसकी व्याख्या के विषय में पतञ्जलि के साथ पारंपारिक विज्ञान का मतभेद है। पतञ्जलि की परिणाम की व्याख्या आध्यात्मिक है। वे कहते हैं—जब एक किसान अपने खेत में पानी देने के लिए पास के ही जलाशय से पानी सभा चाहता है तो वह बस पानी को रोक रखनेवाले द्वार को खोल कर देता है—निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरचमेवस्तु ततः शोचिकम्। उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य पहले से ही मनन है केवल इन सब विभिन्न अवस्था-व्यवस्था द्वारों या प्रतिबन्धों में उसे बंध कर रखा है। इन प्रतिबन्धों को हटाने मात्र से ही उसकी यह अनन्त शक्ति बड़े पैमाने के साथ अभिव्यक्त होन लगती है। तिर्यक् योनि में मनुष्यत्व पुत्र मात्र से निहित है मनुष्यत्व परिस्थिति उपस्थित होने पर वह तत्क्षण ही मानव रूप में अभिव्यक्त हो जाता है। उसी प्रकार उपमुक्त सुपीय तथा अवसर उपस्थित होने पर मनुष्य के भीतर जो ईश्वरत्व विद्यमान है वह अपने को अभिव्यक्त कर देता है। इसलिए आधुनिक नूतन मतवाचकियों के साथ विवाद करने को विशेष कुछ नहीं है। उदाहरणार्थ विषय-सत्यता के सिद्धान्त के सम्बन्ध में सांख्य मत के साथ आधुनिक शरीर विज्ञान (Physiology) का बहुत ही नज़ीर मतभेद है।

प्रश्न—परन्तु आप जोनों की प्रकृति भिन्न है।

उत्तर—हाँ, हमारे मतानुसार मन की समस्त शक्तियों को एकमुखी करना ही ज्ञान-लाभ का एकमात्र उपाय है। वहिर्विज्ञान में बाह्य विषयों पर मन को एकाग्र करना होता है और अन्तर्विज्ञान में मन की गति को आत्माभिमुखी करना पड़ता है। मन की इस एकाग्रता को ही हम योग कहते हैं।

प्रश्न—एकाग्रता की दशा में क्या इन सब तत्त्वों का यथार्थ ज्ञान आप ही आप प्रकट होता है ?

उत्तर—योगी कहते हैं कि इस एकाग्रता शक्ति का फल अत्यन्त महान् है। उनका कहना है कि मन की एकाग्रता के बल से ससार के सारे सत्य—बाह्य और अन्तर दोनों जगत् के सत्य—करामलकवत् प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

प्रश्न—अद्वैतवादी सृष्टि-तत्त्व के विषय में क्या कहते हैं ?

उत्तर—अद्वैतवादी कहते हैं कि यह सारा सृष्टि-तत्त्व तथा इस ससार में जो कुछ भी है, सब माया के, इस आपातप्रतीयमान प्रपञ्च के अन्तर्गत है। वास्तव में इस सबका कोई अस्तित्व नहीं है। परन्तु जब तक हम बद्ध हैं, तब तक हमें यह दृश्य जगत् देखना पड़ेगा। इस दृश्य जगत् में घटनाएँ कुछ निर्दिष्ट क्रम के अनुसार घटती रहती हैं। परन्तु उनके परे न कोई नियम है, न क्रम। वहाँ सम्पूर्ण मुक्ति—सम्पूर्ण स्वाधीनता है।

प्रश्न—अद्वैतवाद क्या द्वैतवाद का विरोधी है ?

उत्तर—उपनिषद् प्रणालीबद्ध रूप से लिखित न होने के कारण जब कभी दार्शनिकों ने किसी प्रणालीबद्ध दर्शनशास्त्र की रचना करनी चाही, तब उन्होंने इन उपनिषदों में से अपने अभिप्राय के अनुकूल प्रामाणिक वाक्यों को चुन लिया है। इसी कारण सभी दर्शनकारों ने उपनिषदों को प्रमाण रूप से ग्रहण किया है,—अन्यथा उनके दर्शन को किसी प्रकार का आधार ही नहीं रह जाता। तो भी हम देखते हैं कि उपनिषदों में सब प्रकार की विभिन्न चिन्तन-प्रणालियाँ विद्यमान हैं। हमारा यह सिद्धान्त है कि अद्वैतवाद द्वैतवाद का विरोधी नहीं है। हम तो कहते हैं कि चरम ज्ञान में पहुँचने के लिए जो तीन सोपान हैं, उनमें से द्वैतवाद एक है। धर्म में सर्वदा तीन सोपान देखने में आते हैं। प्रथम—द्वैतवाद। उसके बाद मनुष्य अपेक्षाकृत उच्चतर अवस्था में उपस्थित होता है—वह है विशिष्टा-द्वैतवाद। और अन्त में उसे यह अनुभव होता है कि वह समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड के साथ अभिन्न है। यही चरम दशा अद्वैतवाद है। इसलिए इन तीनों में परस्पर विरोध नहीं है, बल्कि वे आपस में एक दूसरे के सहायक या पूरक हैं।

प्रश्न—माया या अज्ञान के अस्तित्व का क्या कारण है ?

उत्तर—कार्य-कारण संघात की सीमा के बाहर 'क्यों' का प्रश्न नहीं पूछा जा सकता। माया-राज्य के भीतर ही 'क्यों' का प्रश्न पूछा जा सकता है। हम कहते हैं कि यदि श्वायघात्म के अनुसार यह प्रश्न पूछ सका जाय तभी हम उसका उत्तर देंगे। उसका पहले उसका उत्तर देने का हमें अधिकार नहीं है।

प्रश्न—समुच्च ईश्वर क्या माया के अन्तर्गत है ?

उत्तर—हाँ पर यह समुच्च ईश्वर मायाकामी आवरण के भीतर से परिदृश्यमान उस निर्बुद्ध ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। माया या प्रकृति के अन्तर्गत होने पर वही निर्बुद्ध ब्रह्म जीवार्थक कहलाता है और मायावीच या प्रकृति के नियन्त्रा के रूप में वही ईश्वर या समुच्च ब्रह्म कहलाता है। यदि कोई व्यक्ति सूर्य को देखने के लिए यहाँ से ऊपर की ओर जाना करे, तो जब तक वह असल सूर्य के निकट नहीं पहुँचता तब तक वह सूर्य को कमजोर अधिकाधिक बड़ा ही देखता जायगा। वह जितना ही आगे बढ़ेगा उसे ऐसा मालूम होगा कि वह मिल मिल सूर्यों को देख रहा है परन्तु वास्तव में वह उसी एक सूर्य को देख रहा है इसमें सन्देह नहीं। इसी प्रकार, हम जो कुछ देख रहे हैं सभी उसी निर्बुद्ध ब्रह्मसत्ता के विभिन्न रूप मात्र हैं इसलिए उस दृष्टि से ये सब सत्य हैं। इनमें से कोई भी मिथ्या नहीं है परन्तु यह कहा जा सकता है कि ये निम्नतर सौपान मात्र हैं।

प्रश्न—उस पूर्ण निरपेक्ष सत्ता को जानने की विशेष प्रणाली कौन सी है ?

उत्तर—हमारे मत में दो प्रणालियाँ हैं। उनमें से एक तो अस्तिभावसोपेक्ष या प्रवृत्ति मार्ग है और दूसरी नास्तिभावसोपेक्ष या निवृत्ति मार्ग है। प्रथमीकृत मार्ग से साधु निश्चल बसता है—इसी पथ से हम प्रेम के द्वारा उस पूर्ण वस्तु को प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं। यदि प्रेम की परिधि अनन्त घुनी बड़ा ही जाय तो हम उसी निश्चल-प्रेम में पहुँच जायेंगे। दूसरे पथ में 'निति' 'निति' बर्तित् 'यह नहीं' 'यह नहीं' इस प्रकार की साधना करनी पड़ती है। इस साधना में चित्त की जो कोई तरंग मन को बहिर्मुखी बनाने की चेष्टा करती है उसका निवारण करना पड़ता है। अन्त में मन ही मानो भर जाता है तब सत्य स्वयं प्रकाशित हो जाता है। हम इसीको समाधि या ज्ञानावीच अवस्था या पूर्ण ज्ञानावस्था कहते हैं।

प्रश्न—तब तो यह विषयी (ज्ञाता या ज्ञेया) को विषय (ज्ञेय या बुद्ध्य) में क्या देने की अवस्था हुई ?

उत्तर—विषयी को विषय में नहीं बल्कि विषय को विषयी में डूबा देने की। वास्तव में यह जगत् विहीन ही जाता है केवल में रह जाता है—एकमात्र में ही वर्तमान रहता है।

प्रश्न—हमारे कुछ जर्मन दार्शनिकों का मत है कि भारतीय भक्तिवाद सम्भवतः पाश्चात्य प्रभाव का ही फल है।

उत्तर—इस विषय में मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। इस प्रकार का अनुमान एक क्षण के लिए भी नहीं टिक सकता। भारतीय भक्ति पाश्चात्य देशों की भक्ति के समान नहीं है। भक्ति के सम्बन्ध में हमारी मुख्य धारणा यह है कि उसमें भय का भाव बिल्कुल ही नहीं रहता—रहता है केवल भगवान् के प्रति प्रेम। दूसरी बात यह है कि ऐसा अनुमान बिल्कुल अनावश्यक है। भक्ति की बातें हमारी प्राचीनतम उपनिषदों तक में विद्यमान हैं और ये उपनिषद् ईसाइयों की बाइबिल से बहुत प्राचीन हैं। संहिता में भी भक्ति का बीज देखने में आता है। फिर 'भक्ति' शब्द भी कोई पाश्चात्य शब्द नहीं है। वेद-मन्त्र में 'श्रद्धा' शब्द का जो उल्लेख है, उसीसे क्रमशः भक्तिवाद का उद्भव हुआ था।

प्रश्न—ईसाई धर्म के सम्बन्ध में भारतवासियों की क्या धारणा है ?

उत्तर—बड़ी अच्छी धारणा है। वेदान्त सभी को ग्रहण करता है। दूसरे देशों की तुलना में भारत में हमारी धर्म-शिक्षा का एक विशेषत्व है। मान लीजिए, मेरे एक लड़का है। मैं उसे किसी धर्म-मत की शिक्षा नहीं दूँगा, मैं उसे प्राणायाम सिखाऊँगा, मन को एकाग्र करना सिखाऊँगा और थोड़ी-बहुत सामान्य प्रार्थना की शिक्षा दूँगा, परन्तु वैसी प्रार्थना नहीं, जैसी आप समझते हैं; वरन् इस प्रकार की कुछ प्रार्थना—'जिन्होंने इस विश्व-ब्रह्माण्ड की सृष्टि की है, मैं उनका ध्यान करता हूँ—वे मेरे मन को ज्ञानालोक से आलोकित करें।' इस प्रकार उसकी धर्म-शिक्षा चलती रहेगी। इसके बाद वह विभिन्न मतावलम्बी दार्शनिकों एवं आचार्यों के मत सुनता रहेगा। उनमें से जिनका मत वह अपने लिए सबसे अधिक उपयुक्त समझेगा, उन्हींको वह गुरु रूप से ग्रहण करेगा और वह स्वयं उनका शिष्य बन जायगा। वह उनसे प्रार्थना करेगा, 'आप जिस दर्शन का प्रचार कर रहे हैं, वही सर्वोत्कृष्ट है, अतएव आप कृपा करके मुझे उसकी शिक्षा दीजिए।'।

हमारी मूल बात यह है कि आपका मत मेरे लिए तथा मेरा मत आपके लिए उपयोगी नहीं हो सकता। प्रत्येक का साधन-पथ भिन्न भिन्न होता है। यह भी हो सकता है कि मेरी लड़की का साधन-मार्ग एक प्रकार का हो, मेरे लड़के का दूसरे प्रकार का, और मेरा इन दोनों से बिल्कुल भिन्न प्रकार का। अतः प्रत्येक व्यक्ति का इष्ट या निर्वाचित पथ भिन्न भिन्न हो सकता है,—और सब लोग अपने अपने साधन-मार्ग की बातें गुप्त रखते हैं। अपने साधन-पथ के विषय में केवल

में जानता हूँ और मेरे गुरु—किसी तीसरे व्यक्ति को यह नहीं बताया जाता क्योंकि हम दूसरों से गुप्ता विचार करना नहीं चाहते। फिर, इस पुस्तकों के पाठ प्रकट करने से उनका कोई काम नहीं होता क्योंकि प्रत्येक को ही अपना अपना मार्ग चुन लेना पड़ता है। इसीलिए सर्वसाधारण को केवल सर्वसाधारणोपयोगी बर्तन और साधना प्रणाली का ही उपवेश दिया जा सकता है। एक दृष्टान्त कीजिए—अबस्य उसे सुनकर आप हँसिये। मान लीजिए, एक पैर पर चढ़े रहने से शायद मेरी उन्नति में कुछ सहायता होती हो परन्तु इसी कारण यदि मैं सभी को एक पैर पर चढ़े होने का उपवेश देने लूँ तो क्या यह हँसी की बाध न होगी ? हो सकता है कि मैं झूठबारी होऊँ और मेरी स्त्री झूठबारी। मेरा कोई बच्चा इच्छा करे तो इसा बुद्ध या मुहम्मद का उपासक बन सकता है वे उसके इष्ट हैं। हाँ यह अबस्य है कि उस अपने जातिगत सामाजिक नियमों का पालन करना पड़ेगा।

प्रश्न—क्या सब हिन्दुओं का जाति-विनाश में विश्वास है ?

उत्तर—उन्हें बाध्य होकर जातिगत निमग्न मानने पड़ते हैं। उनका सबे ही उनमें विश्वास न हो पर तो भी वे सामाजिक नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकते।

प्रश्न—इस प्राणायाम की एकप्रता का अन्वेष क्या सब लोग करते हैं ?

उत्तर—हाँ पर कोई-कोई लोग बहुत पढ़ा करते हैं—वर्मशास्त्र के आदेश का उल्लंघन न करने के लिए जितना करना पड़ता है, उस उतना ही करते हैं। भारत के मन्दिर यहाँ के गिरजाघरों के समान नहीं हैं। जाहे तो कल ही सारे मन्दिर धास हो जायें तो भी लोगों की उनका अभाव महसूस नहीं होया। स्वर्ग की इच्छा से पुन की इच्छा से अबका इसी प्रकार की और किसी कामना से कोप मन्दिर बनवाते हैं। हो सकता है किसीने एक बड़े भारी मन्दिर की प्रतिष्ठा कर उसमें पूजा के लिए बी-बार पुरोहितों को भी नियुक्त कर दिया पर मुझे नहीं जाने की कुछ भी आनन्दप्रकटा नहीं है क्योंकि मेरा जो कुछ पूजा-पाठ है वह मेरे घर में ही होता है। प्रत्येक घर में एक बरुग कमरा होता है, जिसे 'ठाकुर-घर' या 'पूजा-गृह' कहते हैं। बीसा-बहग के बाब प्रत्येक बाळक या बालिका का यह कर्तव्य ही आता है कि वह पहले स्नान करे, फिर पूजा सम्पन्ना बन्दनाधि। उसकी इस पूजा या उपासना का अर्थ है—प्राणायाम ध्यान तथा किसी मन्त्र विधिप का अर्थ। और एक बात की और विधिप ध्यान बिना पड़ता है वह है—साधना के समक शरीर को हमेशा सीसा रचना। हमारा विश्वास है कि मन के बल से शरीर को स्वस्थ और उन्नत रना जा सकता है। एक ध्यनित इस प्रकार पूजा

आदि करके चला जाता है, फिर दूसरा जाकर वहाँ बैठकर अपना पूजा-पाठ आदि करने लगता है। सभी निस्तब्ध भाव से अपनी अपनी पूजा करके चले जाते हैं। कभी कभी एक ही कमरे में तीन-चार व्यक्ति बैठकर उपासना करते हैं, परन्तु उनमें से हर एक की उपासना-प्रणाली भिन्न भिन्न हो सकती है। इस प्रकार की पूजा प्रतिदिन कम से कम दो बार करनी पड़ती है।

प्रश्न—आपने जिस अद्वैत-अवस्था के बारे में कहा है, वह क्या केवल एक आदर्श है, अथवा उसे लोग प्राप्त भी करते हैं ?

उत्तर—हम कहते हैं कि वह यथार्थ है—हम कहते हैं कि वह अवस्था उपलब्ध होती है। यदि वह केवल यथार्थ बात हो, तब तो उसका कुछ भी मूल्य नहीं। उस तत्त्व की उपलब्धि करने के लिए वेदों में तीन उपाय बतलाये गये हैं—श्रवण, मनन और निदिध्यासन। इस आत्म-तत्त्व के विषय में पहले श्रवण करना होगा। श्रवण करने के बाद इस विषय पर विचार करना होगा—आँखें मूंदकर विश्वास न कर, अच्छी तरह विचार करके समझ-बूझकर उस पर विश्वास करना होगा। इस प्रकार अपने सत्यस्वरूप पर विचार करके उसके निरन्तर ध्यान में नियुक्त होना होगा, तब उसका साक्षात्कार होगा। यह प्रत्यक्षानुभूति ही यथार्थ धर्म है। केवल किसी मतवाद को स्वीकार कर लेना धर्म का अंग नहीं है। हम तो कहते हैं कि यह समाधि या ज्ञानातीत अवस्था ही धर्म है।

प्रश्न—यदि आप कभी इस समाधि अवस्था को प्राप्त कर लें, तो क्या आप उसका वर्णन भी कर सकेंगे ?

उत्तर—नहीं, परन्तु समाधि अवस्था या पूर्ण ज्ञान की अवस्था प्राप्त हुई है या नहीं, इस बात को हम जीवन के ऊपर उसके फलाफल को देखकर जान सकते हैं। एक मूर्ख व्यक्ति जब सोकर उठता है, तो वह पहले जैसा मूर्ख था, अब भी वैसा ही मूर्ख रहता है, शायद पहले से और भी खराब हो सकता है। परन्तु जब कोई व्यक्ति समाधि में स्थित होता है, तो वहाँ से व्युत्थान के बाद वह एक तत्त्वज्ञ, साधु, महापुरुष हो जाता है। इसीसे स्पष्ट है कि ये दोनों अवस्थाएँ कितनी भिन्न भिन्न हैं।

प्रश्न—मैं प्राध्यापक—के प्रश्न का सूत्र पकड़ते हुए यह पूछना चाहता हूँ कि क्या आप ऐसे लोगों के विषय में जानते हैं, जिन्होंने आत्म-सम्मोहन विद्या (self-hypnotism) का कुछ अध्ययन किया है? अवश्य ही प्राचीन भारत में इस विद्या की बहुत चर्चा होती थी—पर अब उत्तनी दिखायी नहीं देती। मैं जानना चाहता हूँ कि जो लोग आजकल उसकी चर्चा और साधना करते हैं, उनका इस विद्या के विषय में क्या कहना है, और वे इसका अभ्यास या साधना किस तरह करते हैं।

उत्तर—आप पाश्चात्य देश में जिसे सम्मोहन-विद्या कहते हैं, वह तो असली स्यापार का एक सामान्य भंग मात्र है। हिन्दू लोग उसे आत्मापसम्मोहन (self de-hypnotisation) कहते हैं। वे कहते हैं आप तो पहले से ही सम्मोहित (hypnotised) हैं—इस सम्मोहित-भाव को दूर करना हीगा अपसम्मोहित (de-hypnotised) होना होगा—

न तत्र सुप्तो जाति न बध्नतारकम्  
 निमा विद्युनो जाति कुतीप्यमणिः।  
 तमेव ज्ञानमनुभाति सर्वम्  
 तस्य जासा सर्वमिदं विभाति ॥

—'वहाँ सूर्य प्रकाशित नहीं होता बल्कि तारक विद्युत् भी नहीं—तो फिर इस सामान्य अग्नि की बात ही क्या। उन्हींके प्रकाश से समस्त प्रकाशित ही रहा है।'

यह तो सम्मोहन (hypnotism) नहीं है—यह तो अपसम्मोहन (de-hypnotisation) है। हम कहते हैं कि वह प्रत्येक बर्ष जो इस प्रश्न की उत्पत्ता की शिक्षा देता है एक प्रकार से सम्मोहन का प्रयोग कर रहा है। केवल अद्वैतवादी ही ऐसे हैं जो सम्मोहित होना नहीं चाहते। एकमात्र अद्वैतवादी ही समझते हैं कि सभी प्रकार के द्वैतवाद से सम्मोहन या मोह उत्पन्न होता है। इमीलिए अद्वैतवादी कहते हैं बरों की भी अपरा विद्या समझकर उनके अतीव ही जाजो समुज ईश्वर क भी परे बने जाओ सारे विश्वब्रह्माण्ड को भी दूर फेंक बा इतना ही नहीं अपने शरीर-अन भावि को भी पार कर जाओ—कुछ भी रोप म रहन पाय सभी पुम सम्पूर्ण रूप से मोह से मुक्त होओगे।

यनी बाओ निर्वर्तनी अप्राप्य मनसा सह।  
 मानसं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति क्वाचन ॥

—'मन क महित्त बानी जिन न पाकर जहाँ से लौट जाती है उस ब्रह्म के आत्म को जानने पर फिर किसी प्रकार का भय नहीं रह जाता।' यही आगम्मीह्न है।

१ बटोरतिपद् ॥२१२॥१५॥

२ सैतरीवीपतिपद् ॥२१४॥१॥



न पुण्य न पाप न सौख्य न दुःखम्  
 न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञा ।  
 अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता  
 चिदानन्दरूपं शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥

—‘मेरे न कोई पुण्य है, न पाप, न सुख है, न दुःख, मेरे लिए मन्त्र, तीर्थ वेद या यज्ञ कुछ भी नहीं है। मैं भोजन, भोज्य या भोक्ता कुछ भी नहीं हूँ—मैं तो चिदानन्दरूप शिव हूँ, मैं ही शिव (मगलस्वरूप) हूँ।’

हम लोग सम्मोहन-विद्या के सारे तत्त्व जानते हैं। हमारी जो मनस्तत्त्व-विद्या है, उसके विषय में पाश्चात्य देशवालों ने हाल ही में थोड़ा थोड़ा जानना प्रारम्भ किया है, परन्तु दुःख की बात है कि अभी तक वे उसे पूर्ण रूप से नहीं जान सके हैं।

प्रश्न—आप लोग ‘ऐस्ट्रल बाँडी’ (astral body) किसे कहते हैं ?

उत्तर—हम उसे लिंग-शरीर कहते हैं। जब इस देह का नाश होता है, तब दूसरे शरीर का ग्रहण किस प्रकार होता है ? जड़-भूत को छोड़कर शक्ति नहीं रह सकती। इसलिए सिद्धान्त यह है कि देहत्याग होने के पश्चात् भी सूक्ष्म-भूत का कुछ अंश हमारे साथ रह जाता है। भीतर की इन्द्रियाँ इस सूक्ष्म-भूत की सहायता से और एक नूतन देह तैयार कर लेती हैं, क्योंकि प्रत्येक ही अपनी अपनी देह बना रहा है—मन ही शरीर को तैयार करता है। यदि मैं साधु बनूँ, तो मेरा मस्तिष्क साधु के मस्तिष्क में परिणत हो जायगा। योगी कहते हैं कि वे इसी जीवन में अपने शरीर को देव-शरीर में परिणत कर सकते हैं।

योगी अनेक चमत्कार दिखाते हैं। कोरे मतवादों की राशि की अपेक्षा अल्प अभ्यास का मूल्य अधिक है। अतएव मुझे यह कहने का अधिकार नहीं है कि अमुक अमुक बातें घटती हैं नही देखी, इसलिए वे मिथ्या हैं। योगियों के ग्रन्थों में लिखा है कि अभ्यास के द्वारा सब प्रकार के अति अद्भुत फलों की प्राप्ति हो सकती है। नियमित रूप से अभ्यास करने पर अल्प काल में ही थोड़े-बहुत फल की प्राप्ति हो जाती है, जिससे यह जाना जा सकता है कि इसमें कुछ कपट या धोखेबाजी नहीं है। और इन सब शास्त्रों में जिन अलौकिक बातों का उल्लेख है, योगी वैज्ञानिक रीति से उनकी व्याख्या करते हैं। अब प्रश्न यह है कि ससार की सभी जातियों में इस प्रकार के अलौकिक कार्यों का विवरण कैसे लिपिबद्ध किया गया ? जो व्यक्ति कहता है कि ये सब मिथ्या हैं, अतः इनकी व्याख्या करने

की कोई आवश्यकता नहीं उसे युक्तिवासी विचारक नहीं कहा जा सकता। जब तक आप उन बातों को अमान्यक प्रमाणित नहीं कर सकते तब तक उन्हें अस्वीकार करने का अधिकार आपको नहीं है। आपको यह प्रमाणित करना होगा कि इन सबका कोई आधार नहीं है, तभी उनको अस्वीकार करने का अधिकार आपको होगा। परन्तु आप सौधों ने तो ऐसा किया नहीं। दूसरी ओर, योगी कहते हैं कि वे सब व्यापार वास्तव में अव्युत्पन्न नहीं हैं और वे इस बात का ध्यान करते हैं कि ऐसी क्रियाएँ वे अभी भी कर सकते हैं। भारत में आज भी अनेक अव्युत्पन्न वटमारें होती रहती हैं परन्तु उनमें से कोई भी किसी बमत्कार द्वारा नहीं बटती। इस विषय पर अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं। जो हो यदि वैज्ञानिक रूप से मनस्तम्भ की माकोचना करने के प्रयत्न को छोड़कर इस विद्या में अधिक और कुछ न हुआ हो तो भी इसका साथ श्रेय योगियों को ही देना चाहिए।

प्रश्न—योगी क्या क्या बमत्कार दिखा सकते हैं इसके उदाहरण क्या आप दे सकते हैं ?

उत्तर—योगियों का कथन है कि अन्य किसी विज्ञान की बर्षा करने के लिए जितने विश्वास की आवश्यकता होती है, योग विद्या के निमित्त उससे अधिक विश्वास की जरूरत नहीं। किसी विषय को स्वीकार करने के बाद एक मह व्यक्ति उसकी सत्यता की परीक्षा के लिए जितना विश्वास करता है उससे अधिक विश्वास करने को योगी लोग नहीं कहते। योगी का आदर्श अतिशय उच्च है। मन की शक्ति से जो सब कार्य हो सकते हैं उनमें से निम्नतर कुछ कार्यों को मने प्रत्यक्ष देखा है। वह भी इस पर अविश्वास नहीं कर सकता कि उच्चतर कार्य भी मन की शक्ति द्वारा ही सकते हैं। योगी का आदर्श है—सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता की प्राप्ति कर उनकी सहायता से घातक शक्ति और प्रेम का अधिकारी हो जाना। मैं एक योगी को जानता हूँ जिन्हें एक बड़े विरसे सर्प ने काट लिया था। सर्वबंध हुंते ही वे बेहोश हो जमीन पर गिर पड़े। सम्प्रा के समय वे हीस में जाये। उनसे जब पूछा गया कि क्या हुआ था तो वे बोले 'मिरे प्रियतम के पाप से एक बूट आया था। इन महारमा की सारी शक्ति कोप और हिंसा का भाव पूर्ण रूप से पण ही बुरा है। कोई भी शक्ति उन्हें बहला देने के लिए प्रयुक्त नहीं कर सकती। वे सर्वथा अनन्त प्रेमम्बन्ध हैं और प्रेम की शक्ति से सर्वशक्तिमान ही गये हैं। वह ऐसा व्यक्ति ही यथार्थ योगी है, और यह सब शक्तियों का विकास—अनेक प्रकार के बमत्कार दिखाना—गीत मान है। यह सब प्राप्त कर केना योगी का लक्ष्य नहीं है। योगी कहते हैं कि योगी के अतिरिक्त अन्य सब मानो मुक्त हैं—जाने-बाने के मुक्त ज्ञानी स्त्री के मुक्त अपने लड़के-बच्चों के मुक्त पण-पिसे क

गुलाम, स्वदेशवासियो के गुलाम, नाम-यश के गुलाम, जलवायु के गुलाम, इस ससार के हज़ारो विषयो के गुलाम । जो मनुष्य इन बन्वनों मे से किसीमे भी नही फँसें, वे ही यथार्थ मनुष्य हैं—यथार्थ योगी है।

इहैव तैजित सर्गो येषा साम्ये स्थित मनः ।

निर्दोष हि सम ब्रह्म तस्माद्ब्रह्माणि ते स्थिताः ॥'

—'जिनका मन साम्यभाव मे अवस्थित है, उन्होने यही ससार पर जय प्राप्त कर ली है। ब्रह्म निर्दोष और समभावापन्न है, इसलिए वे ब्रह्म मे अवस्थित हैं।'

प्रश्न—क्या योगी जाति-भेद को विशेष आवश्यक समझते हैं ?

उत्तर—नही, जाति-विभाग तो उन लोगो को, जिनका मन अभी अपरिपक्व है, शिक्षा प्रदान करने का एक विद्यालय मात्र है।

प्रश्न—इस समाधि-तत्त्व के साथ भारत की गर्म जलवायु का तो कुछ सम्बन्ध नही है ?

उत्तर—मैं तो ऐसा नही समझता। कारण, समुद्र-धरातल से पन्द्रह हज़ार फीट की ऊँचाई पर, सुमेरु के समान जलवायुवाले हिमालय मे ही तो योगविद्या का उद्भव हुआ था।

प्रश्न—ठण्डी जलवायु मे क्या योग मे सिद्धि प्राप्त हो सकती है ?

उत्तर—हाँ, अवश्य ही सकती है। और ससार मे इसकी प्राप्ति जितनी सम्भव है, उतनी सम्भव और कुछ भी नही है। हम कहते है, आप लोग—आपमें से प्रत्येक, जन्म से ही वेदान्ती है। आप अपने जीवन के प्रत्येक मुहूर्त मे ससार की प्रत्येक वस्तु के साथ अपने एकत्व की घोषणा कर रहे हैं। जब कभी आपका हृदय ससार के कल्याण के लिए उन्मुख होता है, तभी आप अनजान मे सच्चे वेदान्तवादी हो जाते हैं। आप नीतिपरायण हैं, पर यह नही जानते कि आप क्यो नीतिपरायण हो रहे हैं। एकमात्र वेदान्त दर्शन ही नीति-तत्त्व का विश्लेषण कर मनुष्य को ज्ञानपूर्वक नीतिपरायण होने की शिक्षा देता है। वह सब धर्मों का सारस्वरूप है।

प्रश्न—आपके मत मे क्या हम पाश्चात्यो मे ऐसा कुछ असामाजिक भाव है, जिसके कारण हम इस तरह बहुवादी और भेदपरायण बन रहे हैं, और जिसके अभाव के कारण प्राच्य देश के लोग हमसे अधिक सहानुभूतिसम्पन्न हैं ?

उत्तर—मेरे मत में पाश्चात्य चाति अधिक निर्वय स्वभाव की है और प्राच्य देश के लोग सब भूतों के प्रति अधिक दयासम्पन्न हैं। परन्तु इसका कारण यही है कि आपकी सम्पत्ता बहुत ही आधुनिक है। किसीके स्वभाव को क्या सुनाने के लिए समय की आवश्यकता होती है। आपमें शक्ति काशी है परन्तु जिस मात्रा में शक्ति का संभव हो रहा है, उस मात्रा में हृदय का विकास नहीं हो पा रहा है। विशेषकर मन संयम का अभाव बहुत ही अस्य परिमाण में हुआ है। आपको साधु और सान्त प्रकृति बनने में बहुत समय लगेगा। पर भारतवासियों के प्रत्येक एक-बिन्दु में यह भाव प्रवाहित हो रहा है। यदि मैं भारत के किसी गाँव में जाकर वहाँ के लोगों को राजनीति की शिक्षा देनी चाहूँ तो वे उसे नहीं समझेंगे। परन्तु यदि मैं उन्हें वेदान्त का उपदेश दूँ तो वे कहेंगे 'हाँ स्वामी जी अब हम आपकी बात समझ रहे हैं—आप ठीक ही कह रहे हैं। अब भी भारत में सर्वत्र यह वैराग्य या अनासक्ति का भाव देखने में आता है। आज हमारा बहुत पतन हो गया है परन्तु जमी नी वैराग्य का प्रमाण इतना अधिक है कि राजा भी अपने राज्य को त्यागकर, साधु में कुछ भी न केता हुआ देश में सर्वत्र पर्यटन करेगा।

कहीं कहीं पर गाँव की एक साधारण लड़की भी अपने घरके से सूत काठे समय कहती है—मुझे ईश्वर का उपदेश मत सुनाओ मेरा बरता ठक 'सोझू' 'सोझू' कह रहा है। इन लोगों के पास जाकर उनसे बातचीत कीजिए और उनसे पूछिए कि जब तुम इस प्रकार 'सोझू' कहते हो तो फिर उस पत्थर को प्रणाम क्यों करते हो? इसके उत्तर में वे कहेंगे आपकी दृष्टि में तो धर्म एक मतवाच मान है पर हम तो धर्म का अर्थ प्रत्यक्षानुभूति ही समझते हैं। उनमें से कोई शायद कहेगा 'मैं तो तभी पञ्चार्य वेदान्तवादी होऊँगा जब सारा संसार मेरे सामने से अन्तर्हित हो जायगा जब मैं सत्य के दर्शन कर सँगा। जब तक मैं उस स्थिति में नहीं पहुँचता तब तक मुझमें और एक साधारण अज्ञ व्यक्ति में कोई अन्तर नहीं है। यही कारण है कि मैं प्रस्तर-मूर्ति की उपासना कर रहा हूँ मन्थिर में जाता हूँ जिससे मुझे प्रत्यक्षानुभूति ही प्राप्त। मैंने वेदान्त का अध्ययन किया तो है, पर मैं अब उस वेदान्त प्रतिपाद्य आत्म-तत्त्व को देखना चाहता हूँ—उसका प्रत्यक्ष अनुभव कर सना चाहता हूँ।

वाम्बेवरी शम्भेवरी धास्त्रव्याख्यातकीसल्लम्।

वैशुव्यं विदुषां तद्विमुक्तये न तु नृत्तये ॥'

—‘धाराप्रवाह रूप से मनोरम सद्वाक्यों की योजना, शास्त्रों की व्याख्या करने के नाना प्रकार के कौशल—ये केवल पण्डितों के आमोद के लिए ही हैं, इनके द्वारा मुक्ति-आभ की कोई सम्भावना नहीं है।’ ब्रह्म के साक्षात्कार से ही हमें उस मुक्ति की प्राप्ति होती है।

प्रश्न—आध्यात्मिक विषय में जब सर्वमाधारण के लिए इस प्रकार की स्वाधीनता है, तो क्या इस स्वाधीनता के साथ जाति-भेद का मानना मेल खाता है ?

उत्तर—कदापि नहीं। लोग कहते हैं कि जाति-भेद नहीं रहना चाहिए, इतना ही नहीं, बल्कि जो लोग भिन्न भिन्न जातियों के अन्तर्गत हैं, वे भी कहते हैं कि जाति-विभाग कोई बहुत उच्च स्तर की चीज नहीं है। पर साथ ही वे यह भी कहते हैं कि यदि तुम इससे अच्छी कोई अन्य वस्तु हमें दो, तो हम इसे छोड़ देंगे। वे पूछते हैं कि तुम इसके बदले हमें क्या दोगे ? जाति-भेद कहाँ नहीं है, बोलो ? आप भी तो अपने देश में इसी प्रकार के एक जाति-विभाग की सृष्टि करने का प्रयत्न सर्वदा कर रहे हैं। जब कोई व्यक्ति कुछ अर्थ संग्रह कर लेता है, तो वह कहने लगता है कि ‘मैं भी तुम्हारे चार सौ घनिकों में से एक हूँ।’ केवल हमी लोग एक स्थायी जाति-विभाग का निर्माण करने में सफल हुए हैं। अन्य देशवाले इस प्रकार के स्थायी जाति-विभाग की स्थापना के लिए प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु वे सफल नहीं हो पा रहे हैं। यह सच है कि हमारे समाज में काफी कुसस्कार और बुरी बातें हैं, पर क्या आपके देश के कुसस्कारों तथा बुरी बातों को हमारे देश में प्रचलित कर देने से ही सब ठीक हो जायगा ? जाति-भेद के कारण ही तो आज भी हमारे देश के तीस करोड़ लोगों को खाने के लिए रोटी का एक टुकड़ा मिल रहा है। हाँ, यह सच है कि रीति-नीति की दृष्टि से इसमें अपूर्णता है। पर यदि यह जाति-विभाग न होता, तो आज आपको एक भी सस्कृत ग्रन्थ पढ़ने के लिए न मिलता। इसी जाति-विभाग के द्वारा ऐसी मजबूत दीवारों की सृष्टि हुई थी, जो शत शत बाहरी चढाइयों के बावजूद भी नहीं गिरी। आज भी वह प्रयोजन मिटा नहीं है, इसीलिए अभी तक जाति-विभाग बना हुआ है। सात सौ वर्ष पहले जाति-विभाग जैसा था, आज वह वैसा नहीं है। उस पर जितने ही आघात होते गये, वह उतना ही दृढ़ होता गया। क्या आप यह नहीं जानते कि केवल भारत ही एक ऐसा राष्ट्र है, जो दूसरे राष्ट्रों पर विजय प्राप्त करने अपनी सीमा से बाहर कभी नहीं गया ? महान् सम्राट् अशोक यह विशेष रूप से कह गये थे कि उनके कोई भी उत्तराधिकारी परराष्ट्र विजय के लिए प्रयत्न न करें। यदि कोई अन्य जाति हमारे यहाँ प्रचारक भेजना चाहती है, तो भेजे, पर वह हमारी वास्तविक सहायता ही करे, जातीय सम्पत्ति-

स्वरूप हमारु जो धर्म-भाव है उसे शक्ति न पहुँचाये। ये सब विभिन्न जातियों हिन्दू जाति पर विजय प्राप्त करने के लिए क्यों आयीं? क्या हिन्दुओं के अन्य जातियों का कुछ अनिष्ट किया था? बरिष्ठ जहाँ तक गम्भिर था उन्होंने संसार का उपकार ही किया था। उन्होंने संसार को विज्ञान दर्शन और धर्म की शिक्षा दी तथा संसार को अनेक असम्य जातियों को सम्य बनाया। परन्तु उसके बदले में उनको क्या मिला?—रक्तपात! अत्याचार!! और दुष्ट 'काकिर' यह घृण्य नाम!!! वर्तमान काल में भी पाश्चात्य व्यक्तियों द्वारा लिखित भारत सम्बन्धी ग्रन्थों को पढ़कर देखिए तथा वहाँ (भारत में) भ्रमण करके कर्मों को सोच गये थे उनके द्वारा लिखित आख्यायिकाओं को पढ़िए। आप देखेंगे उन्होंने भी हिन्दुओं को 'हिन्दु' कहकर गाँधियाँ दी हैं। मैं पूछता हूँ, भारतवासियों ने ऐसा कौन सा अनिष्ट किया है जिसके प्रतिशोध में उनके प्रति इस प्रकार की सांछनपूर्ण बातें कही जाती हैं?

प्रश्न—सम्पत्ता के विषय में वेदास्त की क्या धारणा है?

उत्तर—आप दार्शनिक सोच हैं—आप यह नहीं मानते कि रुपये की बीड़ी पास रहने से ही मनुष्य मनुष्य में कुछ भेद उत्पन्न ही जाता है। इन सब कल-कारखानों और पढ़-बिद्वानों का मूल्य क्या है? उनका तो बस एक ही फल देखने में आता है—वे सर्वत्र ज्ञान का विस्तार करते हैं। आप अभाव अथवा दारिद्र्य की समस्या को हल नहीं कर सके बरिष्ठ आपने तो अभाव की मात्रा और भी बढ़ा दी है। अन्तों की सहायता से 'दारिद्र्य-समस्या' का कभी समाधान नहीं हो सकता। उनके द्वारा जीवन-संभ्रम और भी तीव्र हो जाता है प्रतिपो-यिता और भी बढ़ जाती है। पढ़-प्रकृति का क्या कोई स्वतन्त्र मूल्य है? कोई व्यक्ति यदि तार के माध्यम से बिजली का प्रवाह भेज सकता है तो आप उसी समय उसका स्मारक बनाने के लिए उद्यत हो जाते हैं। क्यों! क्या प्रकृति स्वयं यह कार्य काजों बार नित्य नहीं करती? प्रकृति में सब कुछ क्या पहले से ही विद्यमान नहीं है? आपको उसकी प्राप्ति हुई भी तो उससे क्या काम? वह तो पहले से ही वहाँ वर्तमान है। उसका एकमात्र मूल्य यही है कि वह हमें भीतर से उत्पन्न बनाता है। यह अवशु मागो एक व्यायामशाला के सदृश है—इसमें जीवात्माएँ अपने अपने कर्मों के द्वारा अपनी अपनी उत्पत्ति कर रही हैं और इसी उत्पत्ति के फलस्वरूप हम देवस्वरूप या इन्द्रास्वरूप हो जाते हैं। अतः किंचिद्विषय में ईश्वर की कितनी अभिव्यक्ति है यह जानकर ही उस विषय का मूल्य या सार निर्धारित करना चाहिए। सम्पत्ता का अर्थ है, मनुष्य में इसी ईश्वरत्व की अभिव्यक्ति।

प्रश्न—क्या बौद्धों में भी किसी प्रकार का जाति-विभाग है ?

उत्तर—बौद्धों में कभी कोई विशेष जाति-विभाग नहीं था, और भारत में बौद्धों की संख्या भी बहुत थोड़ी है। बुद्ध एक समाज-सुधारक थे। फिर भी मैंने बौद्ध देशों में देखा है, वहाँ जाति-विभाग की सृष्टि करने के बहुत प्रयत्न होते रहे हैं, पर उसमें सफलता नहीं मिली। बौद्धों का जाति-विभाग वास्तव में नहीं जैसा ही है, परन्तु मन ही मन वे स्वयं को उच्च जाति मानकर गर्व करते हैं।

बुद्ध एक वेदान्तवादी सन्यासी थे। उन्होंने एक नये सम्प्रदाय की स्थापना की थी, जैसे कि आजकल नये नये सम्प्रदाय स्थापित होते हैं। जो सब भाव आजकल बौद्ध धर्म के नाम से प्रचलित हैं, वे वास्तव में बुद्ध के अपने नहीं थे। वे तो उनसे भी बहुत प्राचीन थे। बुद्ध एक महापुरुष थे—उन्होंने इन भावों में शक्ति का संचार कर दिया था। बौद्ध धर्म का सामाजिक भाव ही उसकी नवीनता है। ब्राह्मण और क्षत्रिय ही सदा से हमारे आचार्य रहे हैं। उपनिषदों में से अधिकांश तो क्षत्रियों द्वारा रचे गये हैं, और वेदों का कर्मकाण्ड भाग ब्राह्मणों द्वारा। समग्र भारत में हमारे जो बड़े बड़े आचार्य हो गये हैं, उनमें से अधिकांश क्षत्रिय थे, और उनके उपदेश भी बड़े उदार और सार्वजनीन हैं, परन्तु केवल दो ब्राह्मण आचार्यों को छोड़कर शेष सब ब्राह्मण आचार्य अनुदार भावसम्पन्न थे। भगवान् के अवतार के रूप में पूजे जानेवाले राम, कृष्ण, बुद्ध—ये सभी क्षत्रिय थे।

प्रश्न—सम्प्रदाय, अनुष्ठान, शास्त्र—ये सब क्या तत्त्व की उपलब्धि में सहायक हैं ?

उत्तर—तत्त्व-साक्षात्कार हो जाने पर मनुष्य सब कुछ छोड़ देता है। विभिन्न सम्प्रदाय, अनुष्ठान, शास्त्र आदि की वही तक उपयोगिता है, जहाँ तक वे उस पूर्णत्व की अवस्था में पहुँचने के लिए सहायक हैं। परन्तु जब उनसे कोई सहायता नहीं मिल पाती, तब अवश्य उनमें परिवर्तन करना चाहिए।

सक्ता. कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।

कुर्याद्विद्विवास्तयासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसप्रहम् ॥

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञाना कर्मसगिनाम् ।

जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान् युक्त समाचरन् ॥<sup>१</sup>

—अर्थात् 'ज्ञानी व्यक्ति को कभी भी अज्ञानी की अवस्था के प्रति घृणा प्रदर्शित नहीं करनी चाहिए और न उनकी अपनी अपनी साधन-प्रणाली में उनके विश्वास

को नष्ट ही करना चाहिए बल्कि ज्ञानी व्यक्ति को चाहिए कि वह उनको ठीक ठीक मार्ग प्रदर्शित करे, जिससे वे उस अवस्था में पहुँच जायें जहाँ वह स्वयं पहुँचा हुआ है।

प्रश्न—वेदान्त व्यक्तित्व (individuality) और नीतिशास्त्र की व्याख्या किस प्रकार करता है ?

उत्तर—वह पूर्ण ब्रह्म यथार्थ अविनाश्य व्यक्तित्व ही है—आया जाय उसने पृथक् पृथक् व्यक्ति के आकार धारण किये हैं। कर्मसंसार से ही इस प्रकार का बोध हो रहा है पर वास्तव में वह सर्वत्र वही पूर्ण ब्रह्मस्वरूप है। वास्तव में सत्ता एक है पर माया के कारण वह विभिन्न रूपों में प्रतीत हो रही है। यह समस्त भेद-बोध माया में है। पर इस माया के भीतर भी सर्वत्र उची एक ही और लीट जान की प्रवृत्ति लची हुई है। प्रत्येक राष्ट्र के समस्त नीतिशास्त्र और समस्त आचरणशास्त्र में यही प्रवृत्ति अभिव्यक्त हुई है क्योंकि यह ही बीजात्मा का स्वभावगत प्रयोजन है। यह उची एकत्व की प्राप्ति के लिए प्रयत्न कर रही है—और एकत्व प्राप्त के इस संघर्ष को हम नीतिशास्त्र और आचरण-शास्त्र कहते हैं। इसीलिए हमें सर्वत्र उन्हें सम्पास करना चाहिए।

प्रश्न—नीतिशास्त्र का अधिकार माग क्या विभिन्न व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध को ही लेकर नहीं है ?

उत्तर—नीतिशास्त्र एकदम यही है। पूर्ण ब्रह्म कभी माया की सीमा के भीतर नहीं आ सकता।

प्रश्न—भाषने कहा कि 'मैं' ही वह पूर्ण ब्रह्म है—मैं आपसे पूछनीवासा या कि इस 'मैं' या 'जहाँ' का कोई ज्ञान रहता है या नहीं ?

उत्तर—यह 'जहाँ' या 'मैं' उची पूर्ण ब्रह्म की अभिव्यक्ति है, और इस अभिव्यक्त रूपा में उसमें जो प्रकाश-सक्ति कार्य कर रही है उसीको हम 'ज्ञान' कहते हैं। इसीलिए उस पूर्ण ब्रह्म के ज्ञानस्वरूप में 'ज्ञान' शब्द का प्रयोग ठीक नहीं है क्योंकि वह सापेक्ष ज्ञान तो इस सापेक्ष ज्ञान के परे है।

प्रश्न—वह सापेक्ष ज्ञान क्या पूर्ण ज्ञान के अन्तर्गत है ?

१ अंग्रेजी के individual शब्द में 'अ-विभाज्य' और 'व्यक्ति' दोनों भाव निहित हैं। स्वामी भी जब उत्तर में कहते हैं कि 'ब्रह्म ही यथार्थ individual है' तब प्रथमोक्त भाव को अर्थात् अपरिव्य-अपरिव्य-हीन अविभाज्यता को वे व्यक्त करते हैं। फिर वे कहते हैं कि उस सत्ता ने माया के कारण पृथक् पृथक् व्यक्ति के आकार धारण किये हैं। स



उत्तर—सुकृत द्वारा। सुकृत दो प्रकार के हैं सकारात्मक और नकारात्मक। 'चोरो मत करो'—यह नकारात्मक निर्देश है, 'परोपकार करो'—यह सकारात्मक है।

प्रश्न—परोपकार उच्च अवस्था में क्यों न किया जाय, क्योंकि निम्न अवस्था में वैसा करने से साधक भवबन्धन में पड़ सकता है ?

उत्तर—प्रथम अवस्था में ही इसे करना चाहिए। आरम्भ में जिसे कोई कामना रहती है, वह भ्रान्त होता है और बन्धन में पड़ता है, अन्य लोग नहीं। धीरे धीरे यह विलकुल स्वाभाविक बन जायगा।

प्रश्न—स्वामी जी ! कल रात आपने कहा था, 'तुममें सब कुछ है।' तब यदि मैं विष्णु जैसा बनना चाहूँ, तो क्या मुझे केवल इस मनोरथ का ही चिन्तन करना चाहिए अथवा विष्णु रूप का ध्यान करना चाहिए ?

उत्तर—सामर्थ्य के अनुसार इनमें से किसी मार्ग का अनुसरण किया जा सकता है।

प्रश्न—आत्मानुभूति का साधन क्या है ?

उत्तर—गुरु ही आत्मानुभूति का साधन है। 'गुरु विन्दु होइ कि ज्ञान।'।

प्रश्न—कुछ लोगों का कहना है कि ध्यान लगाने के लिए किसी पूजा-गृह में बैठने की आवश्यकता नहीं है। यह कहाँ तक ठीक है ?

उत्तर—जिन्होंने प्रभु की विद्यमानता का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उनके लिए इसकी आवश्यकता नहीं है, लेकिन औरो के लिए है। किन्तु साधक को सगुण ब्रह्म की उपासना से ऊपर उठकर निर्गुण ब्रह्म की उपासना की ओर अग्रसर होना चाहिए, क्योंकि सगुण या साकार उपासना से मोक्ष नहीं मिल सकता। साकार के दर्शन से आपको सासारिक समृद्धि प्राप्त हो सकती है। जो माता की भक्ति करता है, वह इस दुनिया में सफल होता है, जो पिता की पूजा करता है, वह स्वर्ग जाता है, किन्तु जो साधु की पूजा करता है, वह ज्ञान तथा भक्ति लाभ करता है।

प्रश्न—इसका क्या अर्थ है क्षणमिह सज्जन सगतिरेका आदि—'सत्सग का एक क्षण भी मनुष्य को इस भवलोक के परे ले जाता है' ?

उत्तर—सच्चे साधु के सम्पर्क में आने पर सत्पात्र मुक्तावस्था प्राप्त कर लेता है। सच्चे साधु विरले होते हैं, किन्तु उनका प्रभाव इतना होता है कि एक महान् लेखक ने लिखा है, 'पाखंड वह कर है, जो दुष्टता सज्जनता को देती है।' दुष्ट जन सज्जन होने का ढोंग करते हैं। किन्तु अवतार कपाल-मोचन होते हैं, अर्थात् वे लोगों का दुर्भाग्य पलट सकते हैं। वे मारे विश्व को हिला सकते

प्रश्न—क्या गीता में श्री कृष्ण के विश्व रूप में जिस दिव्य ऐश्वर्य का दर्शन कराया गया है वह श्री कृष्ण के रूप में निहित अल्प सद्गुण उपाधियों के बिना गोपियों से उनके सम्बन्ध में व्यक्त प्रेम भाव के प्रकाश से अपेक्षित है ?

उत्तर—दिव्य ऐश्वर्य के प्रकाश की अपेक्षा निश्चय ही वह प्रेम हीनतर है या प्रिय के प्रति भगवत्भावना से रहित ही। यदि ऐसा न होता तो हाइ-मांस के शरीर से प्रेम करनेवाले सभी लोग मोक्ष प्राप्त कर लेते।

८

(पुरु, अवतार, योग, अथ सेवा)

प्रश्न—वेदान्त के अन्त तक कैसे पहुँचा जा सकता है ?

उत्तर—अथवा मनन और निर्विघ्नासन द्वारा। किसी सद्गुरु से ही भजन करना चाहिए। चाहे कोई नियमित रूप से शिष्य न हुआ हो पर अमर विज्ञान सुपात्र है और वह सद्गुरु के शिष्यों का भजन करता है तो उसकी मुक्ति हो जाती है।

प्रश्न—सद्गुरु कौन है ?

उत्तर—सद्गुरु वह है, जिसे गुरु-परम्परा से आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त हुई है। अध्यात्म गुरु का कार्य बड़ा कठिन है। दुष्टों के पापों को स्वयं अपने ऊपर लेना पड़ता है। कम समुन्नत व्यक्तियों के फलन की पूरी आसंका रहती है। यदि धार्मिक पीड़ा मात्र हो तो उसे अपने को साम्प्रदान समझना चाहिए।

प्रश्न—क्या अध्यात्म गुरु विज्ञान को सुपात्र नहीं बना सकता ?

उत्तर—कोई अवतार बना सकता है। साधारण गुरु नहीं।

प्रश्न—क्या मोक्ष का कोई सरल मार्ग नहीं है ?

उत्तर—'प्रेम को सब दुःसाध की बाध'—केवल उन लोगों के लिए आसान है, जिन्हें किसी अवतार के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो। परमहंस सब कहा करते थे जिसका यह आशिर्वाद अमूल्य है वह किसी न किसी प्रकार से मर दर्शन कर लेता।

प्रश्न—क्या उसके लिए योग सुमम मार्ग नहीं है ?

उत्तर—(मन्त्रादि में) आपने सब कहा समझा!—योग सुमम मार्ग! यदि आपका मन निर्मल न होया और आप योगमार्ग पर आसक्त होंगे तो आपको कुछ अजीब-कठिनाईयें मिल जायेंगी परन्तु वे हराबटे होंगी। इसलिये मन की निर्मलता प्रथम आवश्यकता है।

प्रश्न—इसका उपाय क्या है ?

प्रश्न—क्या जीव-सेवा मात्र से मुक्ति मिल सकती है ?

उत्तर—जीव-सेवा प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं, परोक्ष रूप से आत्मशुद्धि द्वारा मुक्ति प्रदान कर सकती है। किन्तु यदि आप समुचित रूप से किसी कार्य के करने की इच्छा रखते हैं, तो सम्प्रति उसे ही पूर्ण पर्याप्त समझिए। किसी भी पथ में खतरा है मुमुक्षा के अभाव का। निष्ठा का होना आवश्यक है, अन्यथा विकास न होगा। इस समय कर्म पर जोर देना आवश्यक हो गया है।

प्रश्न—कर्म में हमारी भावना क्या होनी चाहिए—परोपकारमूलक कर्णा या अन्य कोई भावना ?

उत्तर—कर्णाजन्य परोपकार उत्तम है, परन्तु शिव ज्ञान से सर्व जीव की सेवा उससे श्रेष्ठ है।

प्रश्न—प्रार्थना की उपादेयता क्या है ?

उत्तर—सोयी हुई शक्ति प्रार्थना से आसानी से जाग उठती है और यदि सच्चे दिल से की जाय, तो सभी इच्छाएँ पूरी हो सकती हैं, किन्तु अगर सच्चे दिल से न की जाय, तो दस में से एक की पूर्ति होती है। परन्तु इस तरह की प्रार्थना स्वार्थपूर्ण होती है, अतः वह त्याज्य है।

प्रश्न—नर-रूपधारी अवतार की पहचान क्या है ?

उत्तर—जो मनुष्यों के विनाश के दुर्भाग्य को बदल सके, वह भगवान् है। कोई भी साधु, चाहे वह कितना भी पहुँचा हुआ क्यों न हो, इस अनुपम पद के लिए दावा नहीं कर सकता। मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखायी पड़ता, जो रामकृष्ण को भगवान् समझता हो। हमें कभी कभी इसकी धुँवली प्रतीति मात्र हो जाती है, वस। उन्हें भगवान् के रूप में जान लेने और साथ ही ससार से आसक्ति रखने में सगति नहीं है।

९

(भगिनी निवेदिता के कुछ प्रश्नों के उत्तर<sup>१</sup>)

प्रश्न—पृथ्वीराज एव चंद्र जिस समय कन्नौज में स्वयंवर के लिए जाने को प्रस्तुत हुए, उस समय उन्होंने किनका छद्मवेश धारण किया था—मुझे याद नहीं आ रहा है ?

उत्तर—दोनों ही भाट का वेष धारण कर गये थे।

१ ये उत्तर स्वामी जी ने सैन फ्रांसिस्को से मई २४, १९०० ई० को एक पत्र में लिखे थे। स०

हैं। सबसे कम खतरनाक और पूजा का सर्वोत्तम तरीका किसी मनुष्य को पूजा करना है जिसने मानव में ब्रह्म के होने का विचार प्रतिष्ठित कर लिया उसने विश्व स्थायी ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया। विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार संन्यस्त जीवन तथा गृहस्व जीवन दोनों ही संयुक्त हैं। केवल ज्ञान आवश्यक वस्तु है।

प्रश्न—ध्यान कहीं लगाना चाहिए—शरीर के भीतर या बाहर? मन को भीतर समेटना चाहिए जबका बाह्य प्रदेश में स्थापित करना चाहिए?

उत्तर—हमें भीतर ध्यान लगाने का यत्न करना चाहिए। वहाँ तक मन के इपर-उपर भावने का संचाल है मनोमय कोष में पहुँचने में लग्ना समय समेया। मनी तो हमार संवर्ष शरीर सं है। जब आसन सिद्ध हो जाता है तभी मन से संवर्ष मारम्भ होता है। आसन सिद्ध हो जाने पर अंश-प्रत्यंश निश्चय हो जाता है—और सावक चाहे जितने समय तक बैठा रह सकता है।

प्रश्न—कमी कमी अप सं पकान माळ्म होने कमती है। तब क्या उसकी अगह स्वाध्याय करना चाहिए, या उसी पर आरुद्ध रहना चाहिए?

उत्तर—यो कारणों सं अप में पकान माळ्म होती है। कमी कमी मस्तिष्क पक जाता है और कमी कमी आरुद्ध के परिणामस्वरूप ऐसा होता है। यदि प्रथम कारण है तो उस समय कुछ वान तक अप छोड़ देना चाहिए, क्योंकि हृत्पूरक अप से अने रहने से विभ्रम या विक्रिप्तावस्था आवि मा जाती है। परन्तु यदि द्वितीय कारण है तो मन को बलात् अप में कमाना चाहिए।

प्रश्न—कमी कमी अप करते समय पङ्के आनन्द की अनुभूति होती है लेकिन तब आनन्द के कारण अप में मन नहीं लगता। ऐसी स्थिति में क्या अप जारी रखना चाहिए?

उत्तर—हाँ वह आनन्द आध्यात्मिक साधना मे बावक है। उसे रसास्वादन कहते हैं। उससे ऊपर उठना चाहिए।

प्रश्न—यदि मन इपर-उपर भावता रहे तब भी क्या देर तक अप करते रहना ठीक है?

उत्तर—हाँ उसी प्रकार जैसे अयर किसी जबमास बोड़े की पीठ पर कोई अपना आसन जमाये रहे तो वह उस बक में कर लेता है।

प्रश्न—आपने अपने 'मन्त्रिपीठ' में लिखा है कि यदि कोई कमखोर आरुमी योगाभ्यास का यत्न करता है तो और प्रतिक्रिया होती है। तब क्या क्रिया आय?

उत्तर—यदि आरुमान के प्रमास में मर जाना पड़े तो भय किस बात का। आनन्द तथा अग्य बहुत ही वस्तुओं के लिए मरने में मनुष्य को भय नहीं होता और बर्म के लिए मरने में आप मयमीत क्यों हों?

प्रश्न—क्या जीव-सेवा मात्र से मुक्ति मिल सकती है ?

उत्तर—जीव-सेवा प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं, परोक्ष रूप से आत्मशुद्धि द्वारा मुक्ति प्रदान कर सकती है। किन्तु यदि आप समुचित रूप से किसी कार्य के करने की इच्छा रखते हैं, तो सम्प्रति उसे ही पूर्ण पर्याप्त समझिए। किसी भी पथ में खतरा है मुमुक्षा के अभाव का। निष्ठा का होना आवश्यक है, अन्यथा विकास न होगा। इस समय कर्म पर जोर देना आवश्यक हो गया है।

प्रश्न—कर्म में हमारी भावना क्या होनी चाहिए—परोपकारमूलक करुणा या अन्य कोई भावना ?

उत्तर—करुणाजन्य परोपकार उत्तम है, परन्तु शिव ज्ञान से सर्व जीव की सेवा उससे श्रेष्ठ है।

प्रश्न—प्रार्थना की उपादेयता क्या है ?

उत्तर—सोयी हुई शक्ति प्रार्थना से आसानी से जाग उठती है और यदि सच्चे दिल से की जाय, तो सभी इच्छाएँ पूरी हो सकती हैं, किन्तु अगर सच्चे दिल से न की जाय, तो दस में से एक की पूर्ति होती है। परन्तु इस तरह की प्रार्थना स्वार्थपूर्ण होती है, अतः वह त्याज्य है।

प्रश्न—नर-रूपवारी अवतार की पहचान क्या है ?

उत्तर—जो मनुष्यो के विनाश के दुर्भाग्य को बदल सके, वह भगवान् है। कोई भी साधु, चाहे वह कितना भी पहुँचा हुआ क्यों न हो, इस अनुपम पद के लिए दावा नहीं कर सकता। मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखायी पड़ता, जो रामकृष्ण को भगवान् समझता हो। हमें कभी कभी इसकी घुँवली प्रतीति मात्र हो जाती है, बस। उन्हें भगवान् के रूप में जान लेने और साथ ही ससार से आसक्ति रखने में सगति नहीं है।

९

(भगिनी निवेदिता के कुछ प्रश्नों के उत्तर<sup>१</sup>)

प्रश्न—मृध्वीराज एव चंद्र जिस समय कन्नौज में स्वयंवर के लिए जाने को प्रस्तुत हुए, उस समय उन्होंने किनका छद्मवेश धारण किया था—मुझे याद नहीं था रहा है ?

उत्तर—दोनों ही भाट का वेष धारण कर गये थे।

१ ये उत्तर स्वामी जी ने सैन फ्रांसिस्को से मई २४, १९०० ई० को एक पत्र में लिखे थे। स०

प्रश्न—क्या पृथ्वीराज ने संयुक्ता के साथ इसलिए विवाह करना चाहा था कि वह बौद्धिक रूपवती थी तथा उसके प्रतिद्वन्द्वी भी पुत्री थी? संयुक्ता की परिचारिका होने के लिए क्या उन्होंने अपनी एक बाली को सिखा-पढ़ाकर वहाँ भेजा था? और क्या इसी बूढ़ा बाबी ने राजकुमारी के हृदय में पृथ्वीराज के प्रति प्रेम का बीज अंकुरित किया था?

उत्तर—दोनों ही परस्पर के रूप-गुणों का वर्णन सुनकर तथा बिना बल-बौद्धि कर एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हुए थे। बिना-वर्धन के द्वारा मायक-मायिका के हृदय में प्रेम का संसार भारत की एक प्राचीन रीति है।

प्रश्न—गोप बालकों के बीच में कृष्ण का प्रतिपादन कैसे हुआ?

उत्तर—ऐसी भविष्यवाणी हुई थी कि कृष्ण कंस को सिंहासन से निष्पुट करेंगे। इस भय से कि ब्रह्म सेने क बाब कृष्ण कहीं गुप्त रूप से प्रतिपादित हों दुराचारी कंस ने कृष्ण के माता-पिता को (यद्यपि वे कंस की बहुत बौर बहनोंई के) डेर में डाक रखा था तथा इस प्रकार का आवेश दिया कि उक्त बर्ष से राज्य में बितने बालक पैदा होंगे उन सबकी हत्या की जायगी। अत्याचारी कंस के हाथ से रखा करने के लिए ही कृष्ण के पिता ने उन्हें गुप्त रूप से यमुना पार पठुँवाया था।

प्रश्न—उनके जीवन के इस अध्याय की परिसमाप्ति किस प्रकार हुई थी?

उत्तर—अत्याचारी कंस के द्वारा बामन्वित होकर वे अपने भाई बलदेव तथा अपने पाकक पिता नन्द के साथ राजसूमा में पधारे। (अत्याचारी ने उनकी हत्या करने का वकल्प रखा था।) उन्होंने अत्याचारी का बध किया। किन्तु स्वयं राजा न बनकर कंस के निकटवर्त उत्तराधिकारी को समूहने राजसिंहासन पर बैठाया। उन्होंने कभी कर्म के फल को स्वयं नहीं सोचा।

प्रश्न—इस समय की किसी नाटकीय घटना का उल्लेख क्या आप कर सकते हैं?

उत्तर—इस समय का जीवन बौद्धिक घटनाओं से परिपूर्ण था। वास्तवा बस्त्या में वे अत्यन्त ही संवक्त थे। संवक्तता के कारण उनकी गोपिका माता ने एक दिन उन्हें बधिमन्थन की रस्मी से बाँधना चाहा था। किन्तु अनेक रसिधियों को जोड़कर भी वे उन्हें बाँधने में समर्थ न हुईं। तब उनकी दृष्टि तुली और उन्होंने देखा कि जिनको वे बाँधने जा रही हैं उनके मरीर में समग्र ब्रह्माण्ड अविच्छिन्न है। बरकर कापटी हुई वे उनकी स्तुति करने लगीं। तब भयवान् ने उन्हें पुनः माया से आबुद्ध किया और एकमात्र बही बालक उन्हें दृष्टिपोषक हुआ।

देवश्रेष्ठ ब्रह्मा को यह विश्वास न हुआ कि परब्रह्म ने ही गोप बालक का रूप धारण किया है। इसलिए परीक्षा के निमित्त एक दिन उन्होंने समस्त गायों को तथा गोप बालको को चुराकर एक गुफा में निद्रित कर रखा। किन्तु वहाँ से लौटकर उन्होंने देखा कि वे ही गायें तथा गोप बालक कृष्ण के चारों ओर विद्यमान हैं। वे फिर उनको भी चुरा कर ले गये एवं उन्हें भी छिपाकर रखा। किन्तु लौटने पर फिर उन्हें वे ही ज्यो के त्यो दिखायी देने लगे। तब उनके ज्ञान-नेत्र खुले, उन्होंने देखा कि अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड तथा सहस्र सहस्र ब्रह्मा कृष्ण की देह में विराजमान हैं।

कालिय नाग ने यमुना के जल को विषाक्त कर डाला था, इसलिए उन्होंने उसके फन पर नृत्य किया था। उनके द्वारा इन्द्र की पूजा वन्द किये जाने के फल-स्वरूप कुपित होकर इन्द्र ने जब इस प्रकार प्रवल वेग से जल बरसाना प्रारम्भ किया कि समस्त ब्रजवासी मानो उसमें डूबकर मर जायेंगे, तब कृष्ण ने गोवर्धन-धारण किया। कृष्ण ने एक अगुली से छत्र की तरह गोवर्धन पर्वत को ऊपर उठाकर धारण किया, और उसके नीचे सभी ने आश्रय लिया।

बाल्यकाल से ही वे नाग-पूजा तथा इन्द्र-पूजा के विरोधी थे। इन्द्र-पूजा एक वैदिक अनुष्ठान है। गीता में सर्वत्र यह स्पष्ट है कि वे वैदिक अनुष्ठानों के पक्षपाती नहीं थे।

अपने जीवन में इसी समय उन्होंने गोपियों के साथ लीला की थी। उस समय उनकी आयु ग्यारह वर्ष की थी।

## अनुक्रमणिका

- अंकन-मदति २८४  
 अंग्रेज १५-५ उनका भोजन ८३  
 उनका सुदृढ़ सिंहासन ५९ उनकी मूल विशेषता ५९ उनकी व्यवसाय बुद्धि ५९ और अमेरिका ८८ ९ ९६ और फ्रांसीसी ९ प्राति ७९, १५५ तथा मुसलमान २८९ पुरुष ६७ सज्जन १९ स्त्रियाँ १९  
 अंग्रेजी अनुवाद ३६६ बीजार ११४  
 दैनिक ३६४ पढ़नेवाले १५५  
 बोल्नेवाली प्राति २७६ भाषा ९ (पा टि) १४९, २९१  
 मित्र १९ सम्पर्क १२४  
 वाक्य २७४ शासन १२५ धिक्का ३२१ सम्पत्ता का निर्माण २८९  
 सरकारी कर्मचारी ४८  
 अर्थ आरम्भ-विनाश २८६  
 अर्थव्यवस्था ५, २४२, २५४ २८७  
 २९५ और बड़ विधि-विधान २४२ बीदिक २९३ विस्मयासी  
 देश २५६ (बेसिए कुसंस्कार)  
 अक्षर ९३  
 'अक्षर एसाकोप' ३२३  
 अक्षर ब्रह्म २१५  
 अक्षि ४ २१३ ३५१ कुच्छ ३  
 नारकीय २६ परीक्षा २५७  
 पुराण ५१  
 अक्षर स्मृति ७२  
 'अक्षर' ५३ (बेसिए घूम)  
 अज्ञान ४१ ३७४ उसका कारण ४१ उसका विरोध २१८  
 अज्ञानी ३४३  
 अज्ञेयवाद ३७ २७४  
 अटलाण्टिक २७ महासागर २८५  
 अतिशयतन ज्ञान २१५  
 अतीत और भविष्य २९५  
 अतीन्द्रिय अवस्था ४३ शक्ति १६९  
 अत्यन्तविह सहिता १६२  
 अष्टवाद ३३६  
 अहित ३८१ आत्मम ९ (पा टि), उसकी उपकृति २१८  
 और हित ३४ और विधिप्यारैठ ३५९ ज्ञान ३३६, ३३८, ३७३  
 उत्प ३३७ ३७४ मत् ३३७  
 ३५९ भूत सारक्य में ३४  
 उत्प ३३४ ३५  
 अहितवाद ३७४-७५, १५ हितवाद का विरोधी नहीं ३८३  
 अहितवादी १ २५३ २८१ ३८३, ३८६ और उनका कथन २८२  
 कष्ट १ ८  
 अहितानन्द स्वामी ३५५  
 अम्पारम और अभिमूठ अमृत १  
 भूत ३९८ उत्पविद् १५१ बर्तन १२ वादी ३१ २५९ विद्या १३५, १४२ विद्या १६५  
 अम्पापन-कार्य १२६, ३४७  
 अमल ३२४ स्वप्न १६२  
 अनाचार ३२९  
 अनात्मा ३७४  
 अनासक्ति ३९२  
 'अनुमानगम्य' ३५९  
 अनेक १८४  
 अन्वमान १५९  
 अन्व भाषणा २२ -विषयात् ३६, १२ १५१ १८६, २१७



- अन्नदान ६१  
 अपरा १५९, एव परा विद्या मे भेद  
 १५९, विद्या ३८८  
 अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य २८३  
 अपसम्मोहन ३८८  
 'अपील एवलाश' २७, ३५, २४८  
 अपोलो क्लव २३६  
 अफगानिस्तान ६३, १२३  
 अफ्रीका ४९, ६७, ९१, १११  
 अफ्रीदी ६५  
 'अभाव' से 'भाव' की उत्पत्ति ३८०  
 अभिव्यक्ति ३९६  
 अभीष्ट लक्ष्य, मानवीय वधुता ३८  
 अमगल ३७५-७६  
 अमरावती ९३  
 अमरीकी जनता २२७, प्रेस २४१  
 (पा० टि०)  
 अमृत का सेतु ३५०  
 अमृत पुत्र ३५१  
 अमृतवाञ्छार ३३९  
 अमेरिकन २७, ७५, ८१, ८९, २७८,  
 और पैसा २७०, कन्याएँ ९०,  
 जाति २४६, ढग २२९, परिवार  
 ९०, पुरुष २६५, भक्त २२०,  
 मित्र १९३ (पा० टि०), लडकी  
 २६३, शिष्य २०३ (पा० टि०),  
 सवाददाता २२९ (पा० टि०),  
 समाचारपत्र २७ (पा० टि०),  
 स्वातन्त्र्य घोषणा-दिवस २०३  
 (पा० टि०)  
 अमेरिका ६, १४, ४९, ६३, ६९,  
 ७८-९, ८१, ८५-६, ९१, २२२,  
 २३८, २४८, २६०, २६५, २७०,  
 २८०, २८५, २८९, ३२५, ३४१-  
 ४२, ३५४, ३६६, ३७५, ३७८-  
 ८०, उसका अहकार २१७, उसके  
 आदिवासी २४१, और भारत  
 २१७, महाद्वीप १०१, वहाँ  
 स्त्री-पूजा का दावा २६५, वाले  
 ९५, २३८, वासी २४९, ३४०,  
 विरोधी २७५, सयुक्त राज्य २२७  
 (पा० टि०)  
 अमेरिकी, उनकी नारी के प्रति सम्मान-  
 भावना २७७, जाति २७७,  
 वैज्ञानिकी २८३, व्याख्यान-मंच  
 २७६, स्त्रियाँ १९  
 अम्बापाली १५४  
 अरब ९२, १०७, १३४, २८५,  
 जाति ९१, निवासी २७, मरु-  
 भूमि १०५-६, वाले २८५  
 अरबी १०७, खलीफा १०७  
 अर्जुन ५०, ५४, १४३, ३३०-३२,  
 ३४९, ३५७-५८  
 अलीपुर ३५४  
 अलौकिक ज्ञान-प्राप्ति १३९, तथा  
 लौकिक १६०, सिद्धियाँ ३९८  
 अल्मोडा १८९ (पा० टि०), १९३  
 (पा० टि०), ३६५  
 अवतार ३४८, उसकी पहचान ४०१,  
 पुरुष ३४८  
 अवतारत्व १६०  
 अवस्था-भेद ३१७  
 अवस्था, सात्त्विक ५४  
 'अविद्या' १३५, अज्ञान १००  
 अशुभ, अहिर्मेन २८१, उसका इलाज  
 २९२, उसका कारण २९२-९३,  
 उसका फल १७३ (देखिए असत्)  
 अशोक, धर्मसम्राट् ८६, महान् सम्राट्  
 ३९३, महाराज ६४, सम्राट्  
 ७४, २८४  
 अश्वमेघ १३५  
 अष्टाग योग १५८  
 असत् १९६-९७, २४२, ३७४, उससे  
 सत् का आविर्भाव नहीं ११६,  
 प्रवृत्ति ३७४ (देखिए अशुभ)  
 असीरियन जाति ३००  
 असुर कन्या १०७, जाति १०६, वश  
 १०७, विजयी १०४, सेना १०६  
 'अह' २५८-५९, ३७४, ३९६, क्षुद्र  
 २६०

अहंकार ३४ २२ ३२८  
 अहिंसा ५१  
 अहिंसा परमो धर्म २८२  
 आकाश और प्राण-तत्त्व ३८२  
 आगरा २२४  
 आचरणशास्त्र ११७ ३९६  
 आचार ५८ और पाश्चात्य शासन  
 शक्ति १३७ और रीति १४९  
 नैतिक २७५ विचार ६ व्यव  
 हार ३२९ शास्त्र २८३-८४  
 संहिता २७४ स्त्री सम्बन्धी और  
 विभिन्न देश ९६  
 आचार ही पहला धर्म ७२  
 आत्म उसका अर्थ ३७१ -वर्षा ३५  
 -चिन्तन २८ -जमी १७३ ज्ञान  
 ११९ ४ -सत्त्व २१५ ३५४  
 ३८७ ३९२ त्याग २३४ निर्भर  
 ३७१ रक्षा और धर्म रक्षा १ ९  
 रक्षा और राज्य की सृष्टि १ ३  
 विद् १ ९ -सृष्टि ४ १ -संयम  
 २३३ -सम्मान की भावना २२३  
 -सम्मोहन विधा ३८७ -साक्षात्कार  
 ११९ स्वल्प २१३  
 आत्मा १६ २५ ६ ३२, ३६ ४  
 ६३ ६८, १२६ १२८ २९ १४४  
 १७३ १७९ १९९ २ २ २ ५  
 २२ २४ २४७ २५३ २५८,  
 २६६, २६९ २७८ २९२, ३५  
 ३५८ अनन्त ३१ अपरिवर्तित  
 ३१ अमृत का सेतु ३५ अवि  
 नश्वर १२ अविभाग्य २५८  
 इन्द्रियातीत ४ ईश्वर का शरीर  
 २२ उसका अन्तर्निहित विभ्यत्त्व  
 २४२ उसका एक से दूसरे शरीर  
 में प्रवेश २७ उसका बेहान्तर  
 मनन २७२ उसका प्रकाश ४  
 २२२ उसका प्रभाव २५८  
 उसकी उपजन्मि ३ उसकी बधा  
 ३७ उसकी रोग ३७९ उसकी

बेहान्तर प्राप्ति २६८ उसकी  
 प्राप्ति १५७ उसकी मुक्ति २६८  
 उसकी व्यक्तियुक्त सत्ता २६८  
 उसके अस्तित्व २९६ उसके आवा-  
 मदन का सिद्धांत २८ ३७९-८  
 उसके अन्तर्गत में विश्वास २९  
 एक मुक्त सत्ता २५७ एकात्मक  
 तत्त्व २४ और अर्थ में अन्तर ३१  
 और मन ४ कार्य-कारण से परे  
 ३६ क्रियाशील ३१ चिरन्तन  
 नित्य ३७१ द्वारा प्रकृति-परि-  
 षासन ३१ द्वारा मन का प्रयोग  
 २६७ धर्म का मूलमूल आचार  
 २६७ न मन है, न शरीर २३  
 नित्यमुक्त १७४ ३४४ निर्द्विषय  
 २५७ परम अस्तित्व ३१ पूर्व  
 २४२ प्रतिबिम्ब की भाँति अक्षय  
 २५७ मन तथा अहं से परे २६७  
 मनुष्य का वास्तविक स्वरूप २६७  
 महिमायुगी १९१ मानवीय २३  
 क्षिप्तमुक्त १४४ गुण ३१ समरस  
 ३१ सर्वगत १७४ स्वतन्त्र तत्त्व  
 २९९

आत्माओं की आत्मा २ ७  
 आत्मा के पुनर्जन्म २७ २४९  
 आत्मानुभूति उसका साधन ३९९  
 आत्मनसम्मोहन ३८८  
 आश्रम १५७  
 आदर्श उसकी अभिव्यक्ति ४६  
 राष्ट्रीय ६ बाद १८ बानी  
 २४५ व्यक्तित्वगत ३७२  
 आदिम अवस्था में स्त्रियों की स्थिति  
 १ २ निवासी ६३ मनुष्य  
 उनका रहन-सहन १ १  
 आदिवासी ३६ और परमेश्वर की  
 कल्पना ३५  
 आधुनिक पश्चित ६३ ४ २४  
 बगाड़ी १३३ विज्ञान ३५  
 आध्यात्मिक अद्यतनता १२५ उन्नति  
 २४३ ३५६ उपदेशक १२

खोज २५३, चक्र १३६, जीवन २१, ज्ञान १६०, तरंग १३४, दिग्गज ६, ११, ३५५, पहलू २९४, प्रतिभा २३०, प्रभाव ४१, प्रभुता १२०, प्रयोजन १५७, बाढ ३७२, भूमिका १७, मार्ग ३७९, मृत्यु २९०, यथार्थ ४३, लहर ४०, विषय ३९३, व्यक्ति ३०, शक्ति २१९, ३९८, समता ११९, समानता १२३, सहायता १६, ३६३, साक्षात्कार १२३, साधना १२४, ४००, सौन्दर्य ३७७, स्वाधीनता ५९

आनुवंशिक पुरोहित वर्ग १२१  
 'आप भले तो जग भला' ३२०  
 आपद्घाता—क्षत्रिय ११०  
 'आपेरा हाउस' २४१  
 आप्त वेद ग्रन्थ ११८  
 आभ्यान्तरिक शुद्धि ६८  
 आयरिश ११४  
 आरती ३६७  
 आर० बी० स्नोडेन, कर्नल २४५  
 आर्ट पैलेस २३२  
 आर्थर स्मिथ, श्रीमती २७८  
 आर्य १०९-१०, ११८, २५०,  
 उनका उद्देश्य ११२, उनका गठन  
 और वर्ण ६४, उनका पारिवारिक  
 जीवन ११७, उनका योगदान  
 ११६, उनकी काव्य-कल्पना  
 ११७, उनकी दयालुता १११,  
 उनकी विद्या का बीज १६४,  
 उनकी विशेषता २६४, उनके  
 वस्त्र ८६, उनके सवध मे भ्रमपूर्ण  
 इतिहास ११०, ऋषि ११६,  
 एव म्लेच्छ १४०, और अमेरिका  
 २४२, और जगली जाति १११,  
 और यूनानी १३४, और-वर्णाश्रम  
 की सृष्टि ११२, चारित्रिक विशेष-  
 षता ११७, जाति ६३-४, ११६,  
 १३९, ३००, ३०२, जर्मि का

इतिहास ३६, ज्योति २६४, द्वारा  
 आविष्कृत वेद १४०, घर्म १२२,  
 नाटक और ग्रीक नाटक १६५,  
 परिवार का सगठन १२२, प्रवास  
 ३६४, महान् जाति २४६, लोग  
 ८२, वर्ग ११८, वेदिका १९५,  
 शान्तिप्रिय १०९, शिल्पकला  
 १६५, सन्तान १४०, सम्पत्ता  
 १११-१२, १२२, समाज १४१,  
 १४९ (पा० टि०)

आर्यसमाजी और खाद्य सबधी वाद-  
 विवाद ७५  
 आर्येतर जाति १२२  
 आलमबाजार मठ ३३९, ३५२  
 आलासिगा ३४१, पेरुमल ३५२  
 आलोचना, उसके अभाव से हानि १५९  
 आल्प्स २५८, २६०  
 आवागमन १७३, उसका सिद्धान्त  
 ३७९  
 आश्रम २३३, -विभाग १५३  
 आश्रय-दोष ७३  
 आसन ३६१  
 आसुरी शक्ति ३६  
 आस्ट्रिया ९९, वहाँ का बादशाह ९८  
 आस्ट्रेलिया ४९, ६७, १११, ११३,  
 निवासी १५९  
 आहार ३१४, उसकी शुद्धता से मन  
 शुद्ध ७२, उसके अभाव से शक्ति-  
 ह्रास ७२, और आत्मा का सबध  
 ७२, और उसकी तुलना ७६,  
 और जाति ८४, और जातिगत  
 स्वभाव ३२७, और मुसलमान  
 ८३, और यहूदी ८३, जन्म-कर्म  
 के भेद से भिन्नता ७५, प्राच्य मे  
 ८२, रामानुजाचार्य के अनुसार  
 ७२, शंकराचार्य के अनुसार ७२,  
 शब्द का अर्थ ७२, सम्बन्धी  
 विधि-निषेध ८३, सम्बन्धी विचार  
 ७८  
 आह्लिक कृत्य ३१२

हार्लैण्ड ६ १४ १५ ८५ ८९, ९४  
 १ ८, १२४ १३३ १४९-५०  
 १५३ २३५, २५१ ३६६ और  
 अमेरिका ८९  
 इच्छा-संपालन १९९  
 इटली ६९, ८१ ९३ १ ६ १ ८  
 २२४ मिनासी ९३ वहाँ के पोप  
 १ ६  
 इट्सकन १ ६  
 'इम्बियन मिरर' ३३९ ३६४  
 'इम्बिया हाउस' १४९  
 इतिहास उसका बर्ष १३२  
 'इती मय्स्ततो भ्रष्ट' १३७  
 इन्द्र ४ ३ देवराज ३६ पुरी  
 ९२ पूजा ४ ३ प्रदर्शन ३३  
 इन्द्रमनुष्य ३३४  
 'इन्द्रियबन्धु ज्ञान' ७२  
 इन्द्रिय २ ७ पाँच २९८ भीम  
 अमित मुखा ३३ स्वयं की २१८  
 इमामबाड़ा १४५  
 इकाहाबाद ८४  
 इर्निग ल्यूब २५४  
 इष्टदेव ५५, ३६१  
 इसलाम उसकी समीक्षा २८१ बर्ष  
 ३७७ मठ २१८  
 इस्लीमो जाति ६२, ८२  
 इस्लाम बर्ष १ ७ ११३-१४ १२३  
 इस्लामी सम्मता १४५  
 'इहलोक' और 'परलोक' २१७  
 ई टी स्टर्डी ३५५  
 ईरान ८७ १५९  
 ईरानी १३४ ३ उनके कपड़े  
 ८७  
 ईस-केन-कठ (उपनिषद्) ३४९  
 ईस-निम्बा २२ प्रेम २६१ ६२  
 ईस्वर २२ २८, ३३ ३८, ४१ २, १२७  
 १५८, १७५, २१४ १५, २३  
 २३५, २४४ २५१ २५८, २६१,  
 २६४ २७९-८ ३७४-७५, ३७९

अनादि अनिबन्धनीय अमल्य धाम  
 ३३८ आत्मा की आत्मा २२  
 जानन्व २२ उनका धार्मिक  
 पिता-भाव ३८ उनके केन्द्रीय भुज  
 २४७ उपासना के लिए उपासना  
 २९९ उसका अस्तित्व (सत्) २२  
 उसका ज्ञाता बाह्य ३ ४ उसका  
 ज्ञान (चित्) २२ उसका प्रेम ४८,  
 २६२ उसका वास्तविक मंदिर  
 २९७ उसका सम्बन्ध प्रेमी २६२  
 उसकी कल्पना २१ उसकी प्रथम  
 अभिव्यक्ति ३ २ उसकी सत्ता  
 २८२ उसके कर्म के लिए कर्म २९९  
 उसके तीन रूप २६१ उसके प्रतीक  
 २४८ उसके प्रेम के लिए प्रेम २९९  
 उससे मित्र सम्बन्धित नहीं ४२  
 और निष्कृष्ट कीट १९३ और परलोक  
 ३८ और मनुष्य का उपादान ४  
 और मुनि २४ और विष्णु-योगना  
 ३३ और सृष्टि ३८ ऊपा १३  
 अमत् का रचयिता २७३ उत्प  
 २२ तथा काक २७१ निरुपा  
 धिक २२ निर्गुण ३ २ परम  
 २२ परिभाषा २१३ पवित्र  
 २५३ पाकक और संहारक २७२  
 पाषण्डता और उपासना २६९  
 पूजा २१ पूर्व २४३ प्रत्येक  
 वस्तु का सर्वनिष्ठ कारण २४  
 प्रेम २३४ प्रेम प्रेम के लिए २६५,  
 २९७ विस्वासी का ज्ञाता २४७  
 वैयक्तिक ४ २९९ अनुभव २१  
 २६८, २९९, ३ २, ३ ५, ३८४  
 ३८८ अनुभव और निर्गुण २९७  
 अनुभव रूप में नाटी ३ २ सर्व-  
 सम्बन्धितमान २४३ -साधारणकार २८२  
 अष्टा २६९  
 'ईस्वर का सित्तुत्व और मनुष्य का  
 भावुत्व' २७८  
 ईस्वरत्व उसका ज्ञान २१९ उसकी  
 अभिव्यक्ति ३९४

- ईश्वरीय शक्ति १५२  
 ईर्ष्या-द्वेष, जातिसुलभ १४२, प्रति-  
 द्वन्दिता १६८  
 ईसप की कहानियाँ २८५  
 'ईसा-अनुसरण' ३४४-४५  
 ईसाई, अमेरिका के २४८, आदर्श ३०२,  
 उनका अत्याचार २८०, उनका ईश्वर  
 २५८, उनकी आलोचना २७४,  
 उनकी क्रियाशीलता ९, उनके अव-  
 गुण २७३, उनके नैतिक स्वलन  
 २७५, और उनका धर्म २७३,  
 और मुसलमान की लडाई १०७,  
 और मुसलमान धर्म ११२, और  
 हिन्दू २९८, कॅथोलिक २७१, जगत्  
 १६१, डाइन २६५, देश २३५,  
 २५२, २५४, देहात्मवादी १५०, धर्म  
 ९२, १०६, ११२-१४, १६१, २३५-  
 ३६, २४२, २४९, २५२, २५९,  
 २६१, २७४, २७७, २८३-८४,  
 २८६, ३०९-१०, ३८५, धर्म और  
 इस्लाम ११३, धर्म और भारतवासी  
 की धारणा २८५, धर्म और  
 वर्तमान यूरोप ११३, धर्म की  
 त्रुटि ११३, धर्म की नीव २८४,  
 धर्मग्रन्थ ११३, धर्म-प्रचारक २७२,  
 धर्म, बुद्ध धर्म से प्रभावित २८४,  
 पादरी ३७, ८८, १५१, ३०२,  
 पुरातनवादी २४९, प्रेम में स्वार्थी  
 २६२, बनने के लिए धर्मों का  
 अगीकार २४३, मत २१८,  
 २५९, २७३, २८४, मिशनरी  
 ३०९, ३१३, ३३१, मिशनरी,  
 उनके अतिरजित विवरण २५६,  
 राष्ट्र २७३, शिक्षक २४८, शिक्षा  
 २९५, सध २७, २६५, सच्चा, एक  
 सच्चा हिन्दू २१९  
 ईसा मसीह ४९, २८१, ३७६,  
 ३७८-७९  
 ईस्ट इण्डिया १४८  
 'ईस्ट चर्च' २३०
- उक्ति-संग्रह १५५  
 उडवर्ड एवेन्यू २६१  
 उडिया ८२  
 उडीसा ८०  
 उत्तराखण्ड ८६  
 उत्तरी ध्रुव १३२  
 उत्तरोत्तर सत्य से सत्य पर २९७  
 उद्जन ३३६, और ओषजन ३३६  
 'उद्धार' २५७  
 उद्धारवाद २७२  
 'उद्बोधन' (पत्र) १३२, १३७, १६१  
 (पा० टि०), १६७ (पा० टि०), ३३९,  
 ३५६, उसका उद्देश्य १३६  
 उन्नति, मानसिक १०९  
 उपनिषद् १२०, १२३, १५७, ३८३,  
 ३९५, कठ २४९, ३५० (पा० टि०),  
 ३८८ (पा० टि०), कौषीतकी ३६०,  
 तैत्तिरीय ३८८ (पा० टि०), प्रसंग  
 ३५०, प्राचीनतम ३८५, बृहदारण्यक  
 ३५४, मुण्डक २२२, ३५०, वाणी  
 ३५०, श्वेताश्वतर ३५१ (पा० टि०),  
 ३८२ (पा० टि०)  
 उपयोगितावादी ३१५  
 उपासक, उनका वर्गीकरण २१५  
 उपासना, उसका अर्थ ३८६, प्रणाली  
 ३८७, साकार ३९९
- ऊर्जा या जड़-सधारण का सिद्धान्त  
 ३७९
- ऋग्वेद १९६ (पा० टि०), -प्रकाशन  
 १४८, -संहिता १४८  
 ऋतुपर्ण, राजा ८६  
 ऋषि ६, १२०, १५०, १८६, १९७,  
 २२२, २८२, उनकी परिभाषा  
 १३९, ज्ञानदीप्त १९९, प्राचीन  
 ३८०, मुनि १०९, १२६, मुनि,  
 पूर्वकालीन ३३५, वामदेव ३६०;  
 -हृदय १४१  
 ऋषित्व १६०, और वेद-द्रष्टि १३९

एकत्रय उसका ज्ञान ३९७ उसकी  
 और ३३३-३४ उसकी प्राप्ति  
 ३९६

एकाग्रता उसका महत्त्व ३८३ और योग  
 ३८३

'एडम्स पीक टु एलिफेन्टा' ३४६ ४७

एडवर्ड कार्लेण्टर ३४६ ४७

एडा रेकार्ड २६७

एकेस्वरवाय ३६

एधिकरुण एसोसियेशन ३ ३ ३

एनिस्वाम २३१

एनी बिस्वत कुमारी २७९

एनेसबेक २४५

एपिस्कोपल वर्क २३१

एशियाटिक क्वार्टर्ली रिव्यू १४९

एशिया १७ ९१ ३ १०८, ११२ २६

मध्य १४ १२१ माइनर १ ५

१ ७८ ३०२ बाले २३५

एसोटोरिक बीज मय १५१

'एसोसियेशन हाऊ' २७९ २८१

ऐन्को इण्डियन कर्मचारी १४९ समाज  
 १४९

ऐन्को सैक्सम वास्ति ३ ९

ऐतिहासिक पत्रिका ३५७ धर्यानुराजान  
 ३५७

'ऐल्ड्रिक बरैरी' ३८९

बोकरेड २३

'बोकरेड ट्रिब्यून' (पत्रिका) २३

बोपर्ट (जर्मन पत्रिका) १६९

बोकार, उसका महत्त्व ५२

बो व् ब् ११६, २ ७

बोम् वत्सु बोम् १७३-७५

बोपनन ३३६

बोक्विपो वरु २३५

बौद्धिक कार्य २३ बन्धा २२९

धिका २२८, २३०-३१

बौद्धिक सांसाध्य-स्थापना ९४

बौरंगजेव ५९

बंस बात्याचारी ४ २

बस्टर बर्रिचवारी १ ८

बठानियद् ३४९-५ (पा० टि०)

३८८ (पा टि०)

बन्धा करवन्धा की १४५ बालक

बोपाक की १२६ बेंक और घेर

की २५७ राजा और मनुष्य-स्वभाव

की ३२७-२८ धर्म और संन्यासी

की ३२४

बन्धा ६३

बन्धीव ४ १

बन्धुघर ८८, ३७९

बन्धाकुमारी १२

बन्धाई महाराज ३६४

बपिक वापि ३८२

बन्धीर १२३

बन्धोरी और धर्मि २९

बन्धा और प्रेम १९१

बन्ध ५

बन्ध आत्मा का नहीं २६९ उसका

बन्ध ३७५ उसका फल बन्धसंन्यासी

३३६ उसके नियम १७ उसमें

भाषना ४ १ उसे करने का बन्धि-

कर १३८ काष्ठ १२३ ३९५

काष्ठ प्राचीन १२ काष्ठ विपदा

११८ कति १७४ निष्काम ३३

३५८ प्रकृति में ३१ फल ५३

मार्ग ५६ मीरा ३५६ वेद का

मत्त १४ सक्ति १७५

कन्नकता १३ १९, ७८-८ ८३ ८९

११४ १४९, १६८ १८५, २२४

२६९-७ २९५, ३२९, ३३९, ३३९

३६५ ३६ बाधी ३३६

कला और प्रकृति ४३ और वस्तु ४३

गाटक कठिनगत ४३ नाथीय

मूलानी में अन्तर ४३ धर्मि और

बन्धार्थ साम्यात्मिक ४३ धर्मि की

बन्धिभक्ति ४३

- कलियुग ९१  
 कल्पना, अन्धविश्वासभरी ३६, एव  
 परिकल्पना २८, मुक्ति की २५,  
 स्वतंत्रता की २५  
 कवि ककण ४२  
 कांग्रेस ऑफ ओरियण्टलिस्ट १६१  
 कास्टाटिनोपुल १०७, शहर १०६  
 कास्टेटाइन ११२  
 'कांग्रे दे लिस्तोयार दि रिलिजियो' १६१  
 'कांग्रेगेशनल चर्च' २३९, २४१  
 कॉक (Cock) ११३  
 कादम्बरी ४२  
 कानन्द २७, २४३, २४८-४९, २५४,  
 २६२-६७, २७०, २७४-७५ (देखिए  
 विवेकानन्द, स्वामी)  
 'काफिर' ३९४  
 काबुल १०७  
 काम, उसका मापदण्ड २१३, और मोक्ष  
 २०८, -काचन ३७१, -क्रोध १३२,  
 -दमन ३४६, -प्रवृत्ति ३४७, -यश-  
 लिप्सा १७३  
 कामिनी-काचन २१७  
 कारण, उसका अस्तित्व २८, -धारा  
 २०८, -कार्य-विधान १७३  
 कारपेन्टर, एडवर्ड ३४६-४७, साहब  
 ३४७  
 कार्लाइल ३२०  
 कार्ल वॉन बरगेन, डॉ० २३९  
 कार्य, अभीष्ट ३२१, व्यापार १९१,  
 व्यावहारिक २९०  
 कार्य-कारण २६, १८०, २१३, ३८४,  
 उसका नियम २५, परम्परा २३-४,  
 सिद्धान्त २८, वाद ११६  
 काल और देश १९६  
 कालिदास १६४-६५  
 कालिय नाग ४०३  
 कालीघाट ९१  
 कालीमाई ४९  
 काव्य, उसकी भाषा २२२, सिन्धु १३२  
 काव्यात्मक भाव ११७  
 काशी ९१, ९७, १६३  
 काशीपुर ३४२  
 काश्मीर ६३, ८४  
 काश्य १२०  
 किडी ३५२  
 कीर्तन ३९  
 कीर्ति २१७  
 कुण्डलिनी ३७३, शक्ति ३६२  
 कुतुबुद्दीन १०७  
 कुमार्क ८४  
 कुमारिल ५६, १२२  
 कुमारी एनी विल्सन २७९, एम० वी०  
 एच० १८१, नौबल ३६६, सारा  
 हम्बर्ट २७९  
 कुम्भकर्ण २१८  
 कुरान २१, २०४, २०७, २८१, ३३१,  
 शरीफ ११३  
 कुक्षेत्र ३३१, ३५७, रोग-शोक का ४७  
 कुलगुरु ३६२  
 कुसस्कार १८, ४७, ७३, ३९३ (देखिए  
 अन्धविश्वास)  
 'कूरियर हेरल्ड' २७५  
 कृति और सघर्ष १८९  
 कृषिजीवी देवता तथा मृगयाजीवी असुर  
 १०३  
 कृष्ण ३९, ११९, १२३, १२६-२७, १६३,  
 १६५, २६८, ३३१-३२, ३४२,  
 ३५७-५८, ३६०-६१, ३९५, ३९८,  
 ४०२-३, उनकी शिक्षा २४८, और  
 बुद्ध २४८  
 कृष्णव्याल भट्टाचार्य १४६-४७  
 केन्द्रगामी (centripetal) ३१३  
 केन्द्रापसारी (centrifugal) ३१३  
 केशवचन्द्र सेन, आचार्य १४९, १५३  
 कैट, डॉ० २९४  
 कैथोलिक चर्च, उसकी सेवा-पद्धति २८४,  
 जगत् १६१  
 'कैम्पस एलिसिस' ९७  
 कैलास ४९  
 क्रोध और हिंसा ३९०

पत्रिका उसका ज्ञान ३९७ उसकी  
और ३३३ ३४ उसकी प्राप्ति  
३९६

एकाग्रता उसका महत्त्व ३८३ और योग  
३८३

'एडम्स पीक टु एडिफ्रैन्टा' ३४६ ४७

एडवर्ड कारपेस्टर ३४६ ४७

एडा रेकार्ड २६७

एकेस्टरबाइ ३६

एथिकल एसोसियेशन ३ ३ ३

एनिस्वाम २३१

एनी बिस्वम कुमायी २७९

एनेसबेल २४५

एपिस्कोपल चर्च २३१

एथियाटिक क्वार्टर्ली रिप्यू १४९

एथिया ६७ ९१ १ १०८, १३२ २६

मम्म ६४ १२१ माइलर १ ५

१ ७८ ३०२ बाके २३५

एसोसिएटिव बीय मठ १५१

'एसोसियेशन हाल' २७९, २८१

ऐम्सो इण्डियन कर्मचायी १४९ समाज  
१४९

ऐम्सो सैनिकन जाति ३ २

ऐतिहासिक यज्ञेयना ३५७ सरयानुसंभान  
३५७

'ऐस्ट्रुठ बॉडी' ३८९

ओकमेड २३

'ओकमेड टिम्बुन' (पत्रिका) २३

ओपर्ट (जर्मन पत्रिका) १६९

ऑफर, उसका महत्त्व ५२

ऑ सत् ११९, २ ७

ओम् वत्सत् ओम् १७१-७५

ओपमन ३३६

ओक्सियो तड़ २३५

ओद्योगिक कार्य २३ वया २२९

पिसा २२८, २३०-३१

ओपिनियोनिक आभार्य-स्वायना ९४

ओरनवेद ५९

ऑस अत्याघाटी ४ २

ऑटर अर्द्धतवायी १ ८

ऑपनिपद् ३४९-५ (पा टि )

३८८ (पा टि )

क्या करबता की १४५ बाबक

ओपाल की १२६ मेंड और घेर

की २५७ राजा और मनुष्य-स्वभाव

की ३२७-२८ छर्ष और सम्पायी

की ३२४

कनाडा ६३

कनौज ४ १

कम्प्यूटस ८८, ३७९

कम्पाकुमायी १२

कम्हार महापण ३६४

कपिक भावि ३८२

कवीर १२३

कमबोटी और धर्मि २९

कल्या और प्रेम १९१

कर्म ५

कर्म आत्मा का नहीं २६९ उसका

अर्थ ३७५ उसका एक अनर्त्मनायी

३३६ उसके नियम १७ उसमें

साधना ४ १ उसे करने का अवि-

कार १३८ काण्ड १२३ ३९५

काण्ड प्राचीन १२ काण्ड विचार

११८ गति १७४ निष्काम ३३

३५८ प्रकृति में ३१ एक ५३

मार्ग ५६ नील ३५६ वेद का

धाम १४ अस्ति १७५

कलकत्ता १३ १९, ७८-८ ८३ ८९,

११४ १४९, १६८, १८५, २२४

२६९-७ २९५, ३२९, ३३६, ३३९,

३३५ ३६ बायी ३३६

कला और प्रकृति ४३ और वस्तु ४३

नाटक कठिनतम ४३ राष्ट्रीय

यूनानी में अन्तर ४३ अज्ञि और

बपार्थ आध्यात्मिक ४३ सौन्दर्य की

अभिप्रेक्ति ४३



- घृणा ४०, ३९०, दृष्टि ३५८
- छठी इन्द्रिय २५३
- छाया-शरीर ३७९
- छुआछूत ७३, ८३, १३५
- चडीचरण ३४६, वाबू ३४६, ३४८,  
उनका चरित्र ३४७
- चद ४०१
- चक्रवर्ती, शरच्चन्द्र ३४८, ३६३
- चट्टोपाध्याय, रामलाल ३४५
- चन्द्र २०९, ३८८
- चन्द्रमा ३२१, ३५१
- चरित्र, उसका सर्वोच्च आदर्श ३७३,  
उसके विकास का उपाय ३७१
- चाडाल ३०५
- चाँपातला (महल्ला) ३४१
- चारण १०७
- चारुचन्द्र मित्र ३४०
- चार्वाक, उनका मत ३३७
- चाल-चलन ६०, प्राच्य, पाश्चात्य मे  
अन्तर ८८
- चिकित्सा विज्ञान, आधुनिक २८४
- चिटगाँव १६८
- चित्तौड़-विजय ३०१
- चित्रकार ११५
- चित्र-दर्शन ४०२
- चिरन्तन सत्य १५९
- चिर ब्रह्मचारिणी १५४
- चीन ४९, ६३, ८८, १५९, २७३,  
३२७, जाति ६३, जापान ४९,  
निवासी ६३, ६९, ८८, साम्राज्य  
१०७
- चीनी, उनका भोजन ८२, भाषा  
८८, भोग-विलास के आदिगुरु  
७७
- चेतन-अचेतन ३३३-३४, ३३७, ३९७,  
उसकी परिभाषा २९८
- चेतना, उसके लिए आधार की कल्पना  
२७९
- 'चेन्ट' (chant) २८४
- चैतन्य १२३, १६७, बुद्धि ७५
- चैतन्यदेव ७३
- 'चैरिटी फंड' ३२१
- जगली जाति १११, वर्वर १०६
- जगत् एक व्यायामशाला ३९४, कल्पना  
१६५, दृश्य ३७, वाह्य ३७६,  
बौद्धिक ३०४, भाव ४८, भौतिक  
और सीमित चेतना का परिणाम  
३३, मानसिक २१४, मायाधिकृत  
१४०
- जगदम्बा ५४, १५६
- जगदीशचन्द्र वसु, ३३४ (पा० टि०)
- जगन्नाक २५६ (देखिए जगन्नाथ)
- जगन्नाथ ११५, २५६, २८६, २८८,  
उसकी किवदन्ती २५६, -रथ २२८,  
२३०
- जड तत्त्व २६९, द्रव्य ३१, ३३, पदार्थ  
२४०, २७१, ३०३ ३१३, ३७५,  
बुद्धि ७५, वस्तु और विचार २१३,  
वादी ४८, ३०३, विज्ञान और  
कारखाना ३९४
- जनक १४८, राजा १०९
- जनता और धर्म २२८, और सन्यासी  
२६६
- जन-धर्म १२१, -समाज, उसका विश्वास  
२६८
- जन्म, पूर्व के प्रभाव का सिद्धान्त ३०२,  
-मरण १७५, १७७, -मृत्यु १७३
- जप, उसमे थकान का कारण ४००, और  
ध्यान ३६२, -तप ३४४, हरिनाम  
का ५२
- जफर्सन एवेन्यू २६१
- जम्बूद्वीप १०५-६, १६२
- जयपुर ११५
- जयस्तभ, विजय-तोरण ९८
- जरथुष्ट्र ३७९
- जर्मन और अंग्रेज ९४, और रूसी ९०,  
दार्शनिक २८४-८५, पण्डित १६२,  
लोग ८८-९, वहाँ के महानतम

विश्वकाम्य साहित्य

कमविकास ३८२ और वैतम्य ३७६  
 क्रिटिक २३७  
 क्रिया-कर्म ८६  
 क्रिचिजन ममिनी १९२ (पा टि )  
 फिल्लटन एबेस्यू २८७  
 फिल्लटन स्ट्रीट २८३  
 क्षमिय ६३ ६५ ३ ४ आपन्नाठा  
 ११ और वीस ३७२ जाति २५१  
 रसक ३ ४ धक्ति ३७२  
 मूत्र अर्ह २६

अमेन ३४१ ३४८ (बेसिए विमलानन्द  
 स्वामी)  
 खेतकी १८८ ३२३  
 खेती-बाड़ी सम्भता की जाधि मिति १ ५  
 खण ६३ जाति ६४

गंगा ७८, १ ५, २ ५, २ ९, ३५२,  
 ३६७ अक्ष ७९ -सट १८२  
 'गत्मात्मक कर्म' २९०-९१ २९३  
 गमाधीर्य पर्वत ५१ (पा टि )  
 गमासुर ५१ और बुद्धदेव ५१ (पा टि )  
 गवडात्म १ ३  
 'गर्म बर्छ' २२१  
 गात्रीपुर ३१७  
 गान्वादी १ ७  
 गार्पी १४८  
 गार्डनट एक ए डॉ २२८ २९  
 गौता ५३ ५७ ५७ ९७ (पा टि )  
 ११९, १२३ १२७ (पा टि )  
 १२८ (पा टि ) ११५ ३६, २२३  
 २३७ ३२ ३३०-३२, ३४९  
 ३५९ ३९५ (पा टि ) ३९८  
 ४ ३ उसका उपदेश ५५ ३३२  
 उमका पहला संवाद २२ एवं महा  
 भाष्य की भाषा १६५ और महा  
 भाष्य १६६ पर्वतमन्त्र्य प्रत्य १६५  
 'जीना-उत्सव' ३५६  
 गुजरात ८२  
 गुजराती पवित्र ३५१

गुडविन ३४१ जो जी १९५ (पा टि )  
 गुण वम १३६, १२९ रत्न ५४ १३५  
 ३६, २१८ १९ सत्त्व ५४ १३५  
 ३६ सत्त्व का अस्तित्व १३६  
 गुरु, उसका उपदेश ३३ उसका महत्त्व  
 १९ उसका विशेष प्रयोजन १५९  
 उसकी कृपा २१८ उसकी पीलापा  
 ३७१ और विषय-संबंध ८ गुरुत्व  
 ३१९ वसिष्ठा ३६३ परम्परा  
 ३९८ परम्परागत ज्ञान १५९  
 भाई ३६८ बाप, दामिक २२१  
 सन्ना ३६३  
 गुरु गोविन्दसिंह पैगम्बर १२४  
 गुरुदेव १३ २ ४२, २३४ ३९७  
 (बेसिए रामहृण)  
 'गुरु विन ज्ञान नहीं' १५७  
 'गुरु विन होइ कि ज्ञान' ३९९  
 'गुरुत्व गुणगुण' ३७५  
 गुरु राज्य १११  
 गुरुत्व गुरु ३१९  
 गुरुस्वामिम ३६२  
 गुरुदेव टामल एड २७५  
 गीत १२८ बालक ४ २-३  
 गीता १३१ उसका मम १२९ उसकी  
 समस्या १३ और कृष्ण से मेट  
 १२९ ३ बाल्याम बालक १२८  
 २९ हृदयाराध्य १२७-२८  
 गीताकलाक पीठ (स्व ) ३४२  
 गीमेन १३५  
 गीर्वाणी ६५  
 गीर्वाण-वारण ४ ३  
 गीतम बुद्ध ७  
 गीत (Gautob) जाति ९२  
 गीक ८५, १ ५, १३३ उनका जाने का  
 तपीका ८२ कोरस १६५ ज्योतिष  
 १६४ नाटक १६५ प्राचीन ८६  
 भाषा १६५ ६६ यदुनिका १६५  
 गीत १५९, ३८१ और रोम ५६  
 प्राचीन १६४  
 'द्वेमुण्य दार्शनिक एका' ३८

जीवात्मा २१८-१९, २६९, २९६-९८,  
३०३-४, ३३२, ३७१, ३७४, ३७७,  
३९४, ३९६, अनन्त काल के  
लिए सत्य नहीं ३७८, उसका  
स्वभावगत प्रयोजन ३९३, मनुष्य-  
वृत्ति की समष्टिस्वरूप ३७७,  
विचार और स्मृति की समष्टि ३७८  
'जुपिटर' २५०  
जुलू १५९  
जैद-अवेस्ता २८१  
जे० एच० राइट, प्रो० २०४ (पा० टि०)  
जे० जे० गुडविन १९५ (पा० टि०)  
जे० पी० न्यूमैन विशप २३५  
जेम्स, डॉ० ३००, ३०३, श्रीमती २८६  
जेरुसलम १०७-८, २४७, और रोमन  
२५४  
जेसुइट २३८, तत्त्व २३८  
जैकब ग्रीन २३२  
'जैण्टिलमैन' ८५  
जैन ५१, ५४, ५९, ७४, ११९, २५३,  
धर्मावलम्बी और नैतिक विधान  
२८२, नास्तिक ३०३  
जैमिनी सूत्र ५२  
जोसेफिन, रानी ९९  
ज्ञान ३५, ४०, अतिचेतन २१५,  
अधिभौतिक १५९, अलौकिक  
१३४, आत्म ४००, आत्मा की  
प्रकृति १५७, आध्यात्मिक १५९,  
आवश्यक वस्तु ४००, उपासना  
२५१, उसका अर्थ १००,  
उसका आदि स्रोत १५७, उसका  
दावा १५९, उसका लोप १५९,  
उसकी उत्पत्ति ३९७, उसकी स्फूर्ति,  
देश-काल पात्रानुसार १५८, उसके  
लाभ का उपाय १५९, उससे  
प्रेम २९६, एकत्व का ३९७, और  
अज्ञान ३३५, और धर्म ३१८, और  
भक्ति ३७४, और भाव २२२, और  
सुधार १८, काण्ड १४०, गुरु-परंपरा-  
गत १५९, चर्चा १५८, तथा भक्ति-

लाभ ३९९, द्वैत ३३५-३६, निरपेक्ष  
३३५, -नेत्र ४०३, पुस्तकीय १८,  
२१८, -प्राप्ति १३९, -भक्ति १५५,  
३५१, भक्ति, योग और कर्म २१८,  
मनुष्य की स्वभावसिद्ध सम्पत्ति  
१५७, -मार्ग और भक्तिमार्ग  
३७२, -मार्गी और भक्तिमार्गी का  
लक्ष्य २६१, मिथ्या ३३५, योग  
३५५, -लाभ ३८३, विहीन वर्ग  
और ईश्वर २३९, सबधी सिद्धान्त  
१५९, -सस्था २२१, सत्य ३३५,  
सम्यक् ३९७, सापेक्ष ३९७, स्वत-  
सिद्ध १५८

ज्ञानातीत अवस्था ३८४, ३८७  
ज्ञानी, उसकी निरकुशता ६  
ज्यामिति २१४, २८४, शास्त्र का  
विकास ११६  
ज्यूलिस वर्ने ३२०  
ज्योतिष २८४, आर्य १६४, उसकी  
उत्पत्ति ११६, ग्रीक १६४, शास्त्र  
३२३, ३७२

झंगलूराम ५७

'टाइम्स' (समाचारपत्र) ३१३  
टाइलर स्ट्रीट डे नर्सरी २७९  
टॉनी महोदय १४९  
टामस एफ० गेलर २४५  
टिटस २४७  
टिन्डल ३०९  
टेनेसी क्लब २४५  
ट्रिब्यून २५९, २६३, उसके सवाददाता  
२५२

'ठाकुर-घर' ३८६  
ठाकुर जी १४३-४५, ३५९, ३६७  
ठाकुर साहब १४५-४६

डॉ० एफ० ए० गार्डनर २२८-२९, कार्ल  
वाँन वरगेन २३९, कैट २९४, जाज

कवि २८५ सागर २९ स्त्री  
 ६७  
 जर्मनी ८५ ९८ ९ बाले ६९, ८१ ८९  
 पहाड़ी ५९, ९३  
 पाठ ६५  
 पाठि अंग्रेज ७९ अमेरियन २४६  
 मरव १ जमीनियन १ भूमुर  
 १ ६ जर्म ३६ ६३ ४ ११६  
 २४६ ३ मायतर १२२, ३७२  
 हस्कीमो ६३ ८२ उसका एक  
 अपना उद्देश्य ५८ उसका रहस्य  
 (भारतीय) ३ ३ उसकी अपूर्णता  
 ३९३ उसकी उत्पत्ति ३७७ उसकी  
 उत्पत्ति का मूल्य और उपाय १६८  
 उसकी बौद्धिक सामाजिक परिस्थिति  
 का पता २२२ उसकी विधेयता  
 २८ उसके चार प्रकार २५१  
 उसके विभिन्न उद्देश्य ४८ एक  
 सामाजिक प्रथा २३३ ३७७ एक  
 स्थिति ३ ४ ऐम्को सैन्य  
 ३ २ और बंध ५७ और व्यक्ति  
 ५१ और शास्त्र ५७ और स्वधर्म  
 ५६ सभिय २५१ अस ६४  
 गुण और धर्म के आचार पर २८  
 बुद्धमत ५७ गौक ९२ चीन ६३  
 जगदी १११ जर्ममत ५७ तुर्क  
 १ ७ दयालुतर २८५ दरद ६३  
 द्योय ७३ धर्म ५७ माटी २७९  
 निरामिषमोषी ७५ -पाति १२३  
 पारसी ९२ प्रत्येक का एक पीव  
 मोक्षस्य ६ प्रथा १२ २४१  
 फ्रांक ९२ ३ फ्रांसीसी ९९ बंगाली  
 १५३ बर्बर ९२ १ ६ १५८  
 २५१ मेव ११९ ३७७ ३९१  
 मेव उसका कारण २८९ ३९३  
 मेव उसकी उपभोगिता ३९३ मेव  
 और स्वाधीनता ३९३ मेव  
 गुणानुसार १३५ मेव का कारण  
 २८९, ३९३ मांसमोषी ७५  
 मुगल ६४ मुसलमान १ ८

यहूदी १ ६ मृतानी ६४ रोमन  
 ९२ लेजिम २०१ बतमानुष ७९  
 वर्षसंकरा की मुष्टि १ ७  
 विभाग ३८९ व्यक्ति की समष्टि  
 ४९ व्यवस्था २२७ व्यवस्था और  
 पुराहित वर्ष ३ ५ व्यवस्था के  
 दोष २८८, ३ ४ व्यवस्था सच्ची  
 ३ ४ सबसे छोटी सबसे जमीर  
 २८ समस्या का मूलपाठ ११९  
 हिन्दू ११७-१८ २४६ ३९४ रूप  
 ६३  
 जातिगत विधि-नियम ३८१  
 जातिव्य और व्यक्तिव ?  
 'जाति-धर्म और 'स्वधर्म' ५७ मुक्ति  
 का सोपान ५७ सामाजिक उत्पत्ति  
 का कारण ५७  
 जातीय चरित्र ६२ चरित्र का मेरुदंड  
 ५८ चरित्र हिन्दू का ६ जीवन  
 और भावा १६९ जीवन की मूल  
 मिति ५८ भाव आनन्दमयता  
 ४८९ मृत्यु ५८ चिन्म संपीठ  
 १६९  
 जॉन स्टुअर्ट मिल ३ २  
 जामान ४९, ९३ २७३  
 जापानी जनका खान-माल ७५ खाने  
 का तरीका ८२ पश्चि १६२  
 जार्ज पैन्सन डॉ २४५  
 जिहोवा ४९, ९ देव १५७  
 जीनो धार्मिक ३८१  
 जीव १४२ २१३ ३६ शक्ति  
 प्रकाश का क्षेत्र ५३ -सेवा द्वारा  
 मुक्ति ४ १ -रूपा ७४  
 जीवन आत्मा का २२ इन्द्रिय का  
 २२ उसमें मोक्ष २२४ और  
 मृत्यु का सम्बन्ध २५ और मृत्यु क  
 निदान २३ गृहस्थ ४ चरम  
 लक्ष्य २ २ -वृष्णा १७३-७४  
 -बन्धन १७३ -मरण २३ व्याप  
 द्वारिक ९ -संप्राम ३९४ सम्बन्ध  
 ४ सामर १८७

- दादू १२३  
 दान-प्रणाली ११३  
 दानशीलता १७  
 दामोदर (नदी) ८०  
 दाराशिकोह ५९  
 'दारिद्र्य-समस्या' ३९४  
 दार्जिलिंग ३५२, ३५५  
 दार्शनिक चिन्तन, उसका सूत्रपात ११८,  
 तत्त्व ३८०  
 दाह-सस्कार २५१  
 दि प्रीस्ट ऐण्ड दि प्रॉफेटर' ३६६  
 दिल्ली ९८, साम्राज्य १२४  
 दीक्षा-ग्रहण ३८६, -दान ३६३  
 दुःख और सुख ५३, २२२  
 दुःख भी शुभ १८७  
 दुर्गा ११५, पूजा ७८, १४७  
 दुर्भिक्ष-पीडित ६०-१  
 दुर्योधन ५०  
 'द्वरात्परिहर्तव्य' ३५९  
 देव और असुर ६८, १०७, -कन्या १०७,  
 गृहद्वार १७४, दर्शन १४३, मंडल  
 ११८, -शरीर ३८९, श्रेष्ठ ब्रह्मा  
 ४०३, स्वरूप ३९४  
 देवता ३६०, आस्तिक ६८  
 देवराज ३६०  
 देवालय ८५, ३६४  
 देवेन्द्रनाथ ठाकुर १४९, १५३  
 देश, उसकी अवनति और भाषा १६८-  
 ६९, और काल १९६, ३३४, ३३७,  
 और धर्म के प्रतिनिधि २४३  
 देश-काल २५, और नीति, सौन्दर्य-ज्ञान  
 ३२६, और पात्र तथा मानसिक भाव  
 ३२६, -पात्र-भेद १४०, व्यक्ति  
 के भीतर ३७७  
 देश-भेद, उसके कारण अनिवार्य कार्य  
 ७०, उससे समाज-सृष्टि १०३,  
 भक्ष्याभक्ष्य-विचार १३५  
 'देशीय परिवार-रहस्य' १४९  
 देह-मन ३७४  
 देहात्मवादी ४८, ईसाई १५०
- दैहिक क्रिया ३६२  
 दोष, आश्रय, जाति, निमित्त ७३  
 द्रविड ११८  
 द्रव्य ३३४  
 द्वि-आवर्तन ३३५  
 द्वेषभाव ६२  
 द्वैत ५९, ज्ञान ३३५, प्रकृति में ३४,  
 प्रत्यक्ष में ३७१, -बोध ३७१, वाद  
 २१, ३८३, ३९२, वादी ३४, ३८१,  
 ३८६, वादी के अनुसार जीव तथा  
 ब्रह्म २८२  
 धन और ईसाई २८०, विश्वयुद्ध का  
 कारण २८०  
 धनुषीय यत्र ११७  
 धर्म ४, ६-७, १६, ६१, ११०, १२४,  
 २०८, २४९, २५३-५४, ३१०,  
 अनुभव का विषय ३३६, -अनुभूति  
 १३९, आधुनिक फैशन रूप में २६२,  
 इतिहास १६१, इसलाम ३७७,  
 ईश्वर की प्राप्ति २२१, ईसाई १६१,  
 २३५-३६, २४२, २५२, २५९,  
 २६१, २७१-७२, २७४, २७७,  
 २८३, २८६, ३०९, ३८५, उच्चतर  
 वस्तु की वृद्धि और विकास २९८,  
 उपदेश २८३, ३३१, उपदेशक  
 २४९, २७४-७५, २८४, उसका  
 अर्थ ३९२, उसका गभीर सत्य  
 और शक्ति ३३२, उसका मूल  
 उद्देश्य ३२९, उसका मूलमूल आधार  
 २६७, उसका मूल विश्वास ३१४,  
 उसका लोप और भारत-अवनति  
 ५०, उसका समन्वय २७२, २७५,  
 उसकी महिमा २१३, उसके प्रति  
 सहिष्णु-भाव २९७, एक की दूसरे धर्म  
 में सम्पूर्ति २४३, और अनुयायियों  
 में दोष २७५, और आतक ३७८,  
 और ऐतिहासिक गवेषणा ३५७, और  
 घड़े का प्रतीक २७७, और देश ३०२,  
 और धर्मान्व २६०, और योग ३२९,  
 और विज्ञान में द्वन्द्व ३३१, और

वेस्टम २४५ वेम्स ३ ३ ३  
 सी टी म्यूकर्स २७१  
 बारबिन ११३  
 डाबिन ३ ९  
 'बाकर-उपासक बाति' २७७  
 बाकर-मुजा और पुरोहित २७२  
 डिप्लोएट २६२ ३३ २७ २७४  
 डिप्लोएट इवनिंग म्यूज २६३  
 डिप्लोएट जर्नेल २६२  
 डिप्लोएट ट्रिम्पून २५ २५२-५३  
 २५९, २६१  
 डिप्लोएट फ्री प्रेस २५५, २६१ (पा  
 टि) २६३  
 डिबेटिंग क्लब ३५४  
 डमस्कोनी २६५  
 डेवी ईगल २८३ बबट २३१ सैर-  
 टॉजियस २३२  
 'डेस्टर्ट' म्याम ३५३  
 डेविड हेमर २८९  
 डेस मोरिस म्यूज २६३  
 डपूकड जलिया ६४  
 डमूनक भाइवा टाइम्स २३४

डाका ८

दक्षिणबाह ३३४ (पा टि)  
 दत्तज्ञान १४ ३५१ दर्शन २३७  
 शास्त्राकार ३९५  
 'दत्तमति' १७४-७५  
 दत्तमा विविध ३९७  
 दमोगुण ५४ ५७ १३६ १५९ २१९  
 और रज तथा दत्त ५४  
 दर्कसास्त्र २८  
 दाज २२४  
 दावार ११८ उनका प्रमुत्त्व १ ७  
 मांशु १ ७  
 दावारी १ ७ रत्न १ ७  
 दागिबक ९  
 दामदिक कोम ५४  
 दास १२६

दिव्यत ४९ ६४ ६९ और दावार  
 ३ ५ बहू की स्त्रिया ३२६  
 दिव्यती ६३-४ परिवार ३२६  
 टीर्य २ ८ स्वान ९१ १६३ ३२४  
 तुकाराम १२३  
 तुटीयानन्द स्वामी ३६१  
 तुर्क १ ७ बाति १ ७  
 तुलसी ६२ बल ३२८ महाराज ३६३  
 (बेसिए निर्मलकामन्द स्वामी)  
 तुलसी ८२  
 त्याग १३४ उसका महत्त्व १३५  
 उसकी धर्म २३ और बेतम्य  
 ३४ -साब ३४२  
 त्रिगुणास्तीवानन्द स्वामी ३४१  
 त्रिदेव और ईस्वर २८४  
 त्रिमुखात्मक संभाम ११९  
 पंडे स्ट्रीट २७  
 बॉमस-ए-कैम्पिस ३४४  
 पाउडर वाइलडपार्क १७३ (पा टि)  
 बिजोसॉप्रिस्ट २३४  
 बिजोसॉफी सम्प्रदाय १४९

'दक्षिणा' १४७

दक्षिणी शास्त्र ८३  
 दक्षिणेश्वर ३४५  
 दम्ब ईस्वरदास २७१ प्रतिक्रिया मान  
 २७१ माहृदिक २७९  
 दत्त माहृकेल मधुसूदन ४२  
 दया और म्याम ३१३ और प्रेम ३ ३  
 दयानन्द सास्वती १४९ १५३  
 दरब ६३  
 दर्शन और दत्तज्ञान २५३ तथा बहूबाह  
 ११९ शास्त्र ३६, १ ८ १३२  
 ३८३ शास्त्र और भारत का धर्म  
 १५ शास्त्र और विधि २५१  
 दसक संमत्ता की आचारधिया २८४  
 दस्तु और बेरमा की उत्पत्ति १ ४-५  
 दहरेज २६४  
 दाक्षिणात्य भाई ७

विचारक २४५, विचारधारा २८१,  
 विश्वास २६९, २८२, विषय २७५,  
 व्यक्ति २५८, व्यक्ति का लक्षण  
 ५२, व्यक्ति की प्रार्थना-मुद्रा २६०,  
 शिक्षा २२८-२९, सस्था २८८,  
 सच्चा २८२, समन्वय २७२,  
 सिद्धान्त २९०, सिद्धान्त, प्राचीन-  
 तम २७  
 'धुनो' का युग २४९  
 ध्यान ३१७, उसकी आवश्यक बातें  
 ४००  
 ध्रुपद और ख्याल ३९  
 ध्रुवप्रदेश, उत्तरी ६३  
 नचिकेता ३५०  
 नन्द ४०२  
 नन्दन वन ४७  
 नरक १०, १२, २९, ५२, १८०, २६६,  
 ३०१, ३०३, ३७८, कुण्ड ७०  
 नरभक्षी २६४, -रगक्षेत्र १३७  
 नरेन्द्र ३५५ (देखिए विवेकानन्द)  
 नरेन्द्रनाथ सेन ३४०, ३६४  
 नर्मदा १६३  
 नर्मदेश्वर १६३  
 नव व्यवस्थान ३६, ११३, २८१  
 'नाइण्टीन्थ सेन्चुरी' १४९, १५१-५२  
 'नाइण्टीन्थ सेन्चुरी क्लब' २४६  
 नागपुर १५५ (पा० टि०)  
 नागादल १०८  
 नाटक, आर्य १६५, कठिनतम कला ४३,  
 ग्रीक १६५, -रचना-प्रणाली १६५  
 नानक १२३  
 नाम-कीर्तन १३६, -जप १२६, -यश  
 ३१६, ३९१, -रूप १७४, १७७  
 नायक १४३  
 नारकीय अग्नि २६०  
 नारद १४३  
 नारायण १२६  
 नारी, उस पर दोषारोपण ३०१, उसकी  
 कल्पना का उदय ३०२, उसके प्रति

हिन्दू भावना २७७, उसके प्रति  
 अनौचित्य २०, ऋषि ३०२, और  
 पुरुष १९, २०४, नारीत्व, उसका  
 आदर्श ३००  
 नार्थम्प्टन डेली हेरल्ड २७६  
 नार्थ स्ट्रीट २२८  
 नार्वे ८१  
 नासदीय सूक्त १९६  
 नित्यानन्द, स्वामी ३५२  
 निमित्त दोष ७३  
 नियम, उसकी परिभाषा ३१, और कीर्ति  
 ६२, और जगत् के विषय ३२६,  
 और प्रकृति ३१, और रूपया ६२,  
 जातिगत ३८६, तथा मनुष्य ६२,  
 सामाजिक ३८६  
 निरपेक्ष ज्ञान ३३५, सत्ता ३८४,  
 सत्य ३३५  
 निरामिषभोजी ६५, जाति ७५  
 निरीश्वरवादी, पश्चिम २८९  
 निर्गुण ब्रह्म १४६, सत्ता ३८४  
 निर्मयानन्द, स्वामी ३६४  
 निर्मलानन्द, स्वामी ३५२, ३६२-६३  
 (देखिए तुलसी महाराज)  
 निर्वाण, उसका अधिकारी ३०१  
 निर्वाणषट्कम् २०७, ३८९ (पा० टि०)  
 निवृत्ति मार्ग ३८४  
 निवेदिता, भगिनी १९५ (पा० टि०),  
 ३६६, ४०१  
 निष्काम कर्म १४०, १५८, ३३०, ३५८,  
 ज्ञान १४०, भक्ति १४०, योग १४०  
 नीग्रो लोग २७५  
 नीति-तत्त्व ३९१, -शास्त्र २४८, ३९६,  
 -शास्त्र और व्यक्ति का पारस्परिक  
 सम्बन्ध ३९६, -सहिता २८१  
 नीति, दढ, दाम, साम ५२  
 नीलकठ १६२  
 'नह' (Noah) १५७  
 'नेटिव' ४८  
 'नेटिव स्लेव' ४८  
 'नेति' ३८४

विज्ञान में समानता ३२३ कर्म  
 ३१२ कल्पना की शक्ति नहीं २१८  
 कार्य २८ क्रियात्मक २७७ कुशा  
 १५२ ग्रन्थ १२७ १३२, १३९  
 ४ २१५, २२३ २८१ २९६,  
 २९८ ३३ ग्रन्थ शीघ्र २७४  
 जीवन ३६५ बीबित के लिए विभिन्न  
 बर्म की मानस्यकता २७३ तथा  
 मन्वन्विज्ञान २७४ तरंग १५  
 तीन मिथ्यागरी २७३ शीघ्र २५२  
 धार्मिक और सामाजिक सुधार प्रयत्न  
 की सम्पुष्टि ३ ४ नकारात्मक नहीं  
 २९८ मन्वुग १४२ पक्ष ३३२  
 पक्ष तथा पुण्य और पाप २९३  
 परायण २८२ परिवर्तन २६  
 २७३-७५, २९५ परोपकार ही  
 २२२ पवित्रता की अन्तःप्रेरणा  
 के प्रतीक २४७ पाश्चात्य २६८  
 पिपासा १५२ पैतृक २४५ प्रकृत  
 २४१ प्रकृति ३२९ प्रचार २३७  
 २४१ ३७३ प्रचार-कार्य ३७५  
 प्रचारक १६१ २४३ २६४ ६५,  
 २७५, ३९७ प्रचारक-सम्बन्धी  
 १६१ प्रत्यक्ष अनुभव का विषय  
 ३२४ २१८ प्रत्येक की निजी विषय  
 पदा २९४ प्रथम मिथ्यागरी शीघ्र  
 २७३ प्रवर्तक १५४ ३ ५ बुद्ध  
 २९३ शीघ्र १६२ ६३ २५२, २७२  
 ३ १ ३७८ ३९५ ब्राह्म १४९  
 १५३ ब्राह्मण २४२ भारतीय  
 २३१ भारतीय मता २६७ भाष  
 ३७१ ३९४ भाषना ३६६ मठ  
 ३२९ ३ ३८१ ३८५ महासभा  
 २३९, ३१९, ३३९ मिथ्यागरी २५२  
 २९४ रसक २२२ राज्य १३९  
 १५ ३ ९ काम ३२४ ३६५  
 वाच-विचार में नहीं ३२४ वास्तविक  
 और मनुष्य ३२३ विभिन्न उसकी  
 उत्पत्ति बर्म १६३ विद्वान् २४७  
 ३१३ और ६१ वैशान्ठिक ३४७

वैशान्ठिक ३७५ वैदिक १६२  
 -व्यवस्था २७४-शास्त्र २२४  
 शास्त्र २३६ २७३ ३३१ ३२,  
 ३८३ शिखा १४१ ३८५-संस्था  
 २८३ ससार का प्राचीनतम १५२  
 सकारात्मक २९८ सन्धे २१८  
 समा १६१ सम्बन्ध में दो अतिपार  
 २६ सम्बन्धी कथा-वार्ता ३२९  
 -सम्मोहन २४३ ४४ २७८ साधन  
 ३४७ सामन और सत्-शिखा ३४७  
 साधना ३४६ सिद्धान्त २३६, २३९  
 हिन्दू १४१ ४३ २४५, २५४  
 २६९, २७७ ३३३ ३३९ ३७६,  
 ३८ हिन्दू, उसका सर्वम्यापी  
 विचार तथा प्रमुख सिद्धान्त २४२  
 हिन्दू उसकी शिखा २६८  
 'बर्म और पक्ष' २४४  
 बर्मपाठ २३५  
 'बर्म-सम्मोहन' २३२  
 बर्मसम्पाद बर्षीक ८६  
 बर्मन्व और नास्तिक २६  
 बर्मन्वता उसकी अभिव्यक्ति २६  
 बर्मन्व विक्रियकाम्य ११३  
 बाहुवर्ग १६३ (के लिए शीघ्र स्तूप)  
 बारना और जम्पास १४२ और म्यान  
 ३४४  
 धार्मिक ५६ अभिव्यक्ति २५८ आर्यो-  
 क्त १२४ २१८ आमम २६६  
 उक्त-पुस्तक २१४-एकता-सम्मोहन  
 ३८ और पैसेवालों की पूजा २१८  
 और मन्वान ३२४ कल्प ७ १३  
 खेम १२५ ज्ञान-पीना हिन्दू का ४  
 ग्रन्थ ११३ बाल-काल हिन्दू की ४  
 जीवन ७६ २३३ २७३ बर्मन  
 १५ बोध २९२ बुद्धिकोण १२४  
 प्रचार २६९ प्रतिनिधित्व २८९  
 मग २७४ मनुष्य २२१ मनोभाव  
 २७८ महत्वाकांक्षा १२४ मामला  
 २८१ रीति २७६ वाचबुद्ध २७४  
 विद्वान्-बर्म २८१ विचार २९२



- पाण्डित्य, उसका प्रदर्शन १६७  
 'पातिव्रत्य, उसका सम्मान २६३  
 'पाप ४१, ५१-२, २०८, २१३, २१७-  
 १८, २६९, ३१३, और अन्धविश्वास  
 १५१, और पुण्य ४०, कमजोरी,  
 और कायरता २२२, धृणा २२२,  
 परपीडन २२२, पराधीनता २२२,  
 -पुण्य २२३, ३१७, सदेह २२२  
 'पापी और महात्मा १९३  
 'पारमार्थिक सत्ता २७३  
 पारसी १०७, २५४, उनका विश्वास  
 २८१, जाति ९२, सम्यता ९२  
 'पार्थिव जड वस्तु और मन ३७६  
 पाली और अरबी १६१, भाषा ४२  
 पाश्चात्य अर्थ २१५, असुर ४८, आहार  
 ८९, उनका स्वास्थ्य ६५, उनकी  
 दृष्टि में प्राच्य ४७, उनमें धर्म की  
 प्रधानता ५०, उनसे सीखने का  
 उपाय ६२, उसमें असामाजिक भाव  
 ३९१, जगत् १४९, जगत् और  
 भारत १३६, जाति ३९२, जाति  
 द्वारा कृष्ण-उपदेश-अनुसरण ५५,  
 देश ५०, ६८, ८०, ८७-८,  
 ९६, ३२२, ३८५, ३८८, देश और  
 उनके वस्त्र ८५, देश और खाद्य  
 सबंधी वाद-विवाद ७५, देश का  
 आहार ८०-१, देश में राजनीति  
 ६१, देश में सत्त्वगुण का अभाव  
 १३६, देशवाले ३८९, देशवासी  
 ६५, ८०, ३८०, देशवासी असुर  
 की सतान ६८, देशीय पोशाक  
 ६६, धर्म ९०, २६८, प्रभाव  
 ३८५, मत से समाज का विकास  
 १०१, विज्ञान ३३६, ३८२,  
 विज्ञान, आधुनिक ३२३, विद्या  
 ३०९-१०, ३३६-३७, शासन-  
 शक्ति १३७, शिष्य ३६२, शिष्या  
 १९ (पा० टि०), सस्कृतज्ञ विद्वान्  
 १४८, सम्यता ९१, सम्यता का  
 आदि केन् ९२
- पास्टचूर ११३  
 'पिक्विक पेपर्स' ३१६  
 'पिता' ८  
 पियरेपोट २८३  
 पुण्य २०८, और पाप २५३, प्रेम करना  
 २२२, शक्ति और पौरुष २२२,  
 स्वतन्त्रता २२२  
 पुनर्जन्म ७९, २३९, उसका सिद्धान्त  
 २४, २८, २३९, २४७, २९५, कर्म  
 पर निर्भर ३७२, वाद १५,  
 २९४, वादी २७९, सिद्धान्त और  
 नैतिक प्रेरणा २९, सिद्धान्त  
 के बीजाणु २४०  
 पुराण, अग्नि ५१, एव तन्त्र १४६,  
 और वेदान्त १४०, और शास्त्र  
 ५७, कथा २४७, विष्णु १६३  
 पुरी जी १४४ (देखिए भोलापुरी)  
 पुरुष, ब्रह्मज्ञ ३६, शक्तिमान ६२,  
 शक्तिमान ही समाज का परिचालक  
 ६१, सिद्ध ३६०  
 पुरोहित ३७, ३०४, ३७८, और ऋषि  
 ३६६, और सन्यासी २५३, पन्थ  
 १२०, प्रपच १८, ११९, वर्ग  
 ३००, वर्ग, आनुवंशिक १२१  
 पुरोहिती, पैतृक व्यवसाय ७  
 पुर्तगाल ८१  
 पुस्तक, अनश्वर ३७, और सत्य ३७,  
 मानचित्र मात्र २९९  
 पुस्तकीय ज्ञान २१८  
 पूजन एव अर्घ्य दान ११६  
 पूजा-अर्चना ३४३, -आरती ३६७,  
 गृह ३६१, ३६३, ३८६, -गृह और  
 ध्यान ३९९, पद्धति और मनुष्य  
 २२१, -पाठ ११४, ३१७, ३८६-  
 ८७  
 पूर्णता और जन्म २१५  
 पूर्णगि ११७  
 पूना १२४  
 पूर्वज, उनका ऐश्वर्य-स्मरण १६०,  
 और पूर्वज की गौरव-गाथा १६०,

निति-नेति २२, २ ८  
 नेपाल ८४ १३५ और तिब्बत १६३  
 नही बौद्ध प्रभाव १६३  
 नेपोलिमन तृतीय ६८, ९७ ९९ बाद  
 १८९९ बोनापार्ट ९९ महावीर  
 ९८ ९  
 नैतिकता और आध्यात्मिकता २१६  
 २३६  
 नैतिक शासन २५३  
 नोबल कुमारी ३६६  
 'न्याय-विषय' २७९  
 न्यूकॉर्क सी टी डॉ २६९  
 ९७१  
 'न्यूज' २५४  
 न्यूबीरीय १११  
 न्यूयार्क ८९, ९५ १७३ (पा टि )  
 १७६ (पा टि ) १९७ (पा टि )  
 २ १ २१६ २२१ २५६, २७  
 नही का स्त्री-समाज २१६  
 'न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून' २७८  
 'न्यूयार्क वर्ल्ड' २३७  
 पंचकोश २ ७  
 पंचसामु २ ७  
 पंचेन्द्रिय २५५  
 पंचाब ८ ८२ १३५  
 पञ्चन ५९  
 पर्वतशि जलका महामाय ४२, १६८  
 महर्षि ३५८  
 पर-निन्दा ३३३  
 परब्रह्म ४ ३  
 परम अस्तित्व ३५, २१३ आनन्दस्व-  
 रूप २ ७८ चित् २ ७८ ज्ञानी  
 २ २ -सत्य का ज्ञान २१५ धर्म  
 ३८ ध्यानावस्था ५४ प्रभु १९४  
 संगत ३७६ मानवतावादी और  
 पनम २२२ भेद बौद्धिकता नहीं  
 २१६ जन् १७ २ ७-८  
 परमेश्वर १३६ ३२६ देव ३९८  
 रामदण्ड २३४ (देविण रामदण्ड)

परमात्मा ७ १३, १७ ५५ २१९  
 २१७-१९ २२२ २३३ २७४  
 परमपिता २७८ सगुण ३८ इमाय  
 व्यक्तित्व ४२ हर एक में २२  
 परमानन्द १९६ २ ५  
 'परमानन्द के द्वीप' २४०  
 परमेश्वर ३३-४ ३६-७ २ २, २२  
 वनन्त १२७ और नाबिबासी ३५  
 निर्गुण १२७ वेदवर्षित १२७  
 परलोक-विद्या २२१  
 परहित १३  
 परा विद्या १३६, १५९  
 परिकल्पना ३३  
 परिणामवाद ३३ १ ३८२  
 परिणामवादी १ १  
 परिपचन (assimilation) ३१६  
 परिव्राजक २८३  
 परोपकार ३९९ कर्मानामस्य ४ १  
 मूलक कर्मा ४ १  
 परे की कठोर प्रथा २६५  
 पत्नी-पुरोहित २३१  
 पब्लिक भाषा १५३ ३१७  
 पवित्र आत्मा २२ चरित्र २१६, ३६९  
 पशुपति शत्रु ३४१ शोष ३४१  
 पशु-बलि १२०-२१  
 पश्चिम और भारत में स्त्री संबंधी  
 भावना ३ २ वेस २१७  
 पश्चिमी वेस २४५ सिप्टाचार और  
 रीति-रिवाज २४५  
 पैंसाडेना ३  
 पहलक ६३  
 पहलकी भाषा ६४  
 पहाड़ी ८३  
 पौष इन्द्रिय २४  
 पांचाल १२  
 पाइपागोस २८२  
 पाउच पीसरी २८७ २९६  
 पार्कड और नास्तिकता २८  
 पाटलिपुत्र १२ साम्राज्य १२१  
 पाणिग्रहण (संस्कार) १५४

गण्डित्य, उसका प्रदर्शन १६७  
 गतिव्रत्य, उसका सम्मान २६३  
 गण ४१, ५१-२, २०८, २१३, २१७-  
 १८, २६९, ३१३, और अन्धविश्वास  
 १५१, और पुण्य ४०, कमजोरी,  
 और कायरता २२२, घृणा २२२,  
 परपीडन २२२, पराधीनता २२२,  
 -पुण्य २२३, ३१७, सदेह २२२  
 पापी और महात्मा १९३  
 पारमार्थिक सत्ता २७३  
 पारसी १०७, २५४, उनका विश्वास  
 २८१, जाति ९२, सम्यता ९२  
 पार्थिव जड वस्तु और मन ३७६  
 पाली और अरबी १६१, भाषा ४२  
 पार्श्वार्थ अर्थ २१५, असुर ४८, आहार  
 ८९, उनका स्वास्थ्य ६५, उनकी  
 दृष्टि में प्राच्य ४७, उनमें धर्म की  
 प्रधानता ५०, उनसे सीखने का  
 उपाय ६२, उसमें असामाजिक भाव  
 ३९१, जगत् १४९, जगत् और  
 भारत १३६, जाति ३९२, जाति  
 द्वारा कृष्ण-उपदेश-अनुसरण ५५,  
 देश ५०, ६८, ८०, ८७-८,  
 ९६, ३२२, ३८५, ३८८, देश और  
 उनके वस्त्र ८५, देश और खाद्य  
 सबधी वाद-विवाद ७५, देश का  
 आहार ८०-१, देश में राजनीति  
 ६१, देश में सत्त्वगुण का अभाव  
 १३६, देशवाले ३८९, देशवासी  
 ६५, ८०, ३८०, देशवासी असुर  
 की सतान ६८, देशीय पोशाक  
 ६६, धर्म ९०, २६८, प्रभाव  
 ३८५, मत से समाज का विकास  
 १०१, विज्ञान ३३६, ३८२,  
 विज्ञान, आवुनिक ३२३, विद्या  
 ३०९-१०, ३३६-३७, शासन-  
 शक्ति १३७, शिष्य ३६२, शिष्या  
 १९ (पा० टि०), मन्कृतज्ञ विद्वान्  
 १८८, मन्मता ९१, मन्मता का  
 आदि केन्द्र ९२

पास्टचूर ११३  
 'पिक्विकु पेपर्स' ३१६  
 'पिता' ८  
 पियरेपोट २८३  
 पुण्य २०८, और पाप २५३, प्रेम करना  
 २२२, शक्ति और पौरुष २२२,  
 स्वतन्त्रता २२२  
 पुनर्जन्म ७९, २३९, उसका सिद्धान्त  
 २४, २८, २३९, २४७, २९५, कर्म  
 पर निर्भर ३७२, वाद १५,  
 २९४, वादी २७९, सिद्धान्त और  
 नैतिक प्रेरणा २९, सिद्धान्त  
 के बीजाणु २४०  
 पुराण, अग्नि ५१, एव तन्त्र १४६,  
 और वेदान्त १४०, और शास्त्र  
 ५७, कथा २४७, विष्णु १६३  
 पुरी जी १४४ (देखिए भोलापुरी)  
 पुरुष, ब्रह्मज्ञ ३६, शक्तिमान ६२,  
 शक्तिमान ही समाज का परिचालक  
 ६१, सिद्ध ३६०  
 पुरोहित ३७, ३०४, ३७८, और ऋषि  
 ३६६, और सन्यासी २५३, पन्थ  
 १२०, प्रपच १८, ११९, वर्ग  
 ३००, वर्ग, आनुवशिक १२१  
 पुरोहिती, पैतृक व्यवसाय ७  
 पुर्तगाल ८१  
 पुस्तक, अनश्वर ३७, और सत्य ३७,  
 मानचित्र मात्र २९९  
 पुस्तकीय ज्ञान २१८  
 पूजन एव अर्घ्य दान ११६  
 पूजा-अर्चना ३४३, -आरती ३६७,  
 गृह ३६१, ३६३, ३८६, -गृह और  
 ध्यान ३९९, पद्धति और मनुष्य  
 २२१, -पाठ ११४, ३१७, ३८६-  
 ८७  
 पूर्णता और जन्म २१५  
 पूर्णांग ११७  
 पूना १२४  
 पूर्वज, उनका ऐश्वर्य-स्मरण १६०,  
 और पूर्वज की गौरव-गाथा १६०,

और भक्तिपूर्ण हृदय १६ तथा  
 भक्तिहीन भक्ति हृदय १६  
 पूर्वजन्म ३७६  
 पूर्वीय विचार २९५  
 'पुनर-जाउस' ३२१  
 'पेरिस-मैड' २४२  
 पेरिस ६६, ७७ ८५, ९१ ९६ ९८  
 ११ ११२ (पा टि) उसकी  
 विकासप्रियता ९५ उसकी श्रेष्ठता  
 ९१ और सम्यक्त ८६ बर्तन  
 विज्ञान और विज्ञान की ज्ञान ९४  
 धर्मतिहास-समा १६२ नगरी  
 ९१२ ९४-५ पृथ्वी का केन्द्र  
 ९४ प्रवर्धनी १६१ प्राचीन  
 ९७ यूरोपीय सम्मता की  
 पंगोशी ९१ बाही की लठकी ६६  
 विद्या विज्ञान का केन्द्र ६९ विश्व  
 विद्यालय ९४  
 'पेरिस-मैड' ८५  
 पेक १ १  
 पैरियार्क १ ६  
 पैतृक धर्म २४५  
 पौष १ ७  
 पीशाक उनमें अन्तर ६६-८ उसका  
 प्रमाण ६७ उसकी सृष्टि एक  
 बका ६६ तथा व्यवसाय ६७  
 पाठशासन वैश्वीय ६६ सामाजिक  
 ६६  
 'पोस्ट' २९४  
 पीषा तथा बन्ना २१४  
 पीताम्बिक अन्नगार १५७ पुन ३७२  
 पीरस और निस्कार्य २२३  
 प्यार मूला २ १२  
 प्युलम बर्ष २ ४  
 प्रमाण १८८, १ २ १९८ ईश्वर  
 १८६ उगता पुन १८७ उसकी  
 आत्मा १ ३ विज्ञान १८६ १९७  
 प्रमाणता उगता अर्ध २५३ लगी  
 गत्य २५३  
 प्रमाणानन्द स्वामी २५४

प्रकृत उत्पत्ति १५१ ब्रह्मविद्  
 १५१ भक्त १५१ योयी १५१  
 'प्रकृत महात्मा' १५१ १५१  
 प्रकृति २५, २७ ३ ४२ ३ १८  
 २२३ २५८-५९ ३५९, ३८४  
 अस्त बाह्य २१३ उसका अस्तित्व  
 २८ उसका नियम २७४ उसकी  
 अभिव्यक्ति २६९ उसके मध्य  
 सत्य आत्मा ३१ उसमें प्रत्येक वस्तु  
 की प्रकृति २९१ और बीबात्मा  
 २१ और परमेश्वर ३३ और  
 मुक्ति ३१ बेनी ३७८ नियम  
 संबंधी ३१ नैतिक २५९ पर  
 संभता और स्वतन्त्रता का नियम  
 २९८ परमेश्वर की सक्ति  
 ३३ संभनमुक्त २६ नैतिक  
 २९३ यथार्थ और आदर्श का  
 नियम २९८  
 प्रजातन्त्र ९९१ बाही ३४६ ४७  
 प्रजासत्तकी ६४  
 प्रतापबन्ध मजूमदार १४९ १५३  
 प्रतिभा-मूला १२  
 प्रत्यक्ष बौध २८ बाही १५८  
 प्रत्यक्षानुमति ३९२  
 प्रत्यक्षार्थी उनका बाधा २९८  
 प्रथा १ ४  
 'प्रकृत भारत १९ १४९, १८९  
 प्रभु ११ ११ १७ ४ ५२ १२७-  
 २९ १३८ १४२ १४४ २ ४  
 २ ७ ३७८ ३९७ ३९९ अस्त  
 यामी १४१ उनका भय धर्म का  
 प्रारम्भ २४८ ठेकस्वरूप १३८  
 परम १ ४ अस्तस्वरूप १३८  
 मुक्त १२८  
 प्रमाणानन्द मित्र ३५९  
 प्रकृति मार्ग ३८४  
 प्रमाण महासागर १११ २७ २८५  
 प्रमाणानन्द विद्यालय २०८ २९  
 प्रमाणानन्द ३४९  
 प्रमाण २ ७

प्राचीन, कर्मकाण्ड १२०, मिस्र १०५,  
 रोमन के खाने का तरीका ८२  
 प्राचीन व्यवस्थान ३६, २८१  
 प्राच्य, उसका उद्देश्य और पाश्चात्य  
 धर्म ५०, और पाश्चात्य ४७-८,  
 ५५, ११४, ३५२, और पाश्चात्य  
 आचार की तुलना ७१, और  
 पाश्चात्य का अर्थ ६८, और पाश्चात्य  
 का धर्म ५०, और पाश्चात्य सम्यता  
 की भित्तियाँ १०५, जाति और  
 ईसा-उपदेश ५५, -पाश्चात्य की  
 साधारण भिन्नता ६५, -पाश्चात्य  
 में अन्तर ६६, ७०, -पाश्चात्य में  
 स्वभावगत भेद ३९२  
 'प्राण' ३६०  
 प्राणायाम ३६१-६२, और एकाग्रता  
 ३८६  
 प्रायोपवेशन ३४८  
 प्रार्थना, उसकी उपादेयता ४०१, उसके  
 विभिन्न प्रकार २९१  
 प्रेम ३५, ४०, १५४, ईश्वर का २६२,  
 उसका बन्धन १९, उसकी परिभाषा  
 २६२, उसकी महिमा १२८,  
 उसकी व्याख्या २६१, और अगाध  
 विश्वास ३६८, और आशा ३८०,  
 और निष्काम कर्म १८३, और  
 भाव २६१, और विज्ञान ३७,  
 और श्रद्धा २६२, -पात्र २६२, -  
 भाव ३९८, शाश्वत १८३, १९२,  
 सच्चा २२०  
 'प्रेम को पथ कृपाण की धारा' ३९८  
 प्रेमानन्द स्वामी ३५२, ३५५, ३५९-६०  
 प्रेरणा, उच्च १४  
 प्रेसविटेरियन २८, २२२, चर्च का  
 धर्मोत्साह और असहिष्णुता २७२  
 प्रो० राइट २३१  
 प्लाकी ९२  
 प्लास द लॉ कॉन्काई ९७  
 फर्स्ट यूनिटेरियन चर्च २४२-४३

फादर पोप १८१, रिबिंगटन ३१०  
 फारस १०७  
 फिलिन्ना ९२  
 फैमिन इन्ड्योरेन्स फन्ड ३२३  
 फैरिसी (यहूदी कर्मकाण्डी) २७  
 फ्राक, जाति ९२-३  
 फ्रास ६७, ६९, ८५, ८९, ९१, ९३,  
 ९८, १०८, उसका इतिहास  
 ९९, उसका राष्ट्रीय गीत ९९,  
 उसकी क्रांति ९८, उसकी विजय  
 ९९, औपनिवेशिक साम्राज्य-  
 स्थापना की शिक्षा ९४, कैथोलिक  
 प्रधान देश १६१, जातियों की  
 सघर्ष-भूमि ९२, देश ६८, ३१३,  
 निवासी ९४, पाश्चात्य महानता  
 तथा गौरव का केन्द्र ९१, यूरोप  
 का कर्मक्षेत्र ९२, स्वाधीनता का  
 उद्गम-स्थान ९४  
 फ्रासीसी, अग्नेज और हिन्दू ५८,  
 उनका रीति-रिवाज ८१, उनकी  
 विशेषता ९५, और अग्नेज ६०,  
 १२४, कन्या ९०, क्रांतिकारी  
 दार्शनिक ३०२, चरित्र ५८,  
 ९४, जल सबधी विचार ८९,  
 जाति ९९, दार्शनिक और उपन्यास-  
 कार २५८ (देखिए बालजक),  
 पद्धति ८१, परिवार ९५, पोशाक  
 ८५, प्रजा ५८, ९९, रसोइया  
 ८१, विप्लव ९४, सब विषय में  
 आगे ८५, सम्य ९५  
 फिरगी ९२  
 'फ्री प्रेस' २५२  
 फ्रेंच भाषा १६६  
 फ्रेजर हाउस २७०  
 फलामारीयन ११३  
 फलोरेन्स नगरी ९३  
 वग देश १३५, १६८, ३५६  
 वगला देश ३४२, पाक्षिक पत्र १३२,  
 भाषा ४२, १६७-६९, ३५४,

मासिक पत्र ३३९ (पा टि )  
 समालोचना १४८  
 बंगवासी (मुद्रण) ३३९  
 बंगाल ५३ (पा टि ) ८ ८६,  
 ११४ ११८ ३३२, ३५६, ३६६  
 और पंजाब ८३ और यूरोप  
 १२ विमोर्षाधिकृत घोसायटी  
 ३४२ देव ७६ ७९ पश्चिम  
 ७९ पूर्व का भोजन ७९  
 बंगाली साधुनिक १३३ कवि प्राचीन  
 ७७ बाति १५३ टोला ९७  
 भोजन का तरीका ८२ मुद्रक  
 ३६७  
 बंधोपाय्याम साक्षिपद ३६४  
 बंधीचारी ४९ (वेबिए कृष्ण)  
 'बकृष्ण' ८२  
 ब्रह्मिकामम ७८  
 बनारस १२  
 बन्धन ६, ८, १९, ३१ १७४ २८८  
 ३२ ३२२, ३७४ ३९९ और  
 मोह १ भौतिक १८५ मुक्त  
 १७५  
 बरमी उनके जाने का तरीका ८२  
 बरहमगार मठ ३४४  
 बर्बर जाति ९२, १५८  
 बलिम ९५  
 बसरेव ४ २  
 'बलवान की जय' ७६  
 बल्लभाचार्य ३४२  
 बसु, जगदीशचन्द्र ३३४ (पा टि )  
 पशुपति ३४१ विश्वमहत्त्व ३५४  
 बहुजन हिताय बहुजन मुक्ताय १३७  
 १५५  
 बहुपति की प्रथा ३२६  
 बहुवादी और मिदपरायण ३९१  
 बाइबिल २ ४ २ ७ २५३ २९२  
 २६८, २८९, २९६, २९८ ३१  
 ३३१ ३८५  
 बाबबाबाट ३४१  
 बाबरूणा १२७

बाबरूणा २५८  
 बाबी राजा १११  
 बाब्टीमोर १९१ अमेरिकन २९०  
 २९३  
 बास्तिक क्रिष्ण ९८  
 बाब्राचार और अत्याचार ७ और  
 अनाचार ७  
 'दिनेटासिस्म' २३२  
 बिस्व जे पी म्यूनि २३५  
 'बी ओ' (Three BS) २८९  
 बीजगणित २८४  
 बीन स्टार्व २८५  
 बुकर ११३  
 'बुतपरस्य के धर्म-परिवर्तन' १६  
 बुध २१ ३६, ३९, ५१ ५५ ६, ११७  
 १५७ १६२ ६३ १६५, १६७  
 २३३ २३८ ३९ २४८, २५२  
 २७८-७९ २९२, ३८३ अन्तार  
 जय में स्वीकार ३ ३ उनका  
 आदिमान २९३ उनका धर्म २८३  
 २९१ २९३-९४ ३ ४ उनका  
 मन्दिर ३७३ उनका सिद्धांत  
 ३ ४ उनकी महामता ३ ५ उनकी  
 विद्या २९४ ३ ५ उनकी विद्या  
 और महत्त्व २९४ ३ ४ उनकी  
 सीख २७५ उनके आगमन से पूर्व  
 ३ ४ उनके युद्ध ३ ५ उनके  
 सहाचार का नियम २७४ उसके  
 प्रति हिन्दू ३ ३ एक महापुरुष  
 ३९५ एक समाज-मुधारक ३९५  
 और ईसा ४१ २८३ और बीड  
 धर्म ३९५ और सच्ची जाति  
 व्यवस्था ३ ८ राष्ट्रीय दृष्टि  
 से २१ द्वारा आन्तरिक प्रकाश  
 की विद्या ३७९ द्वारा भारत  
 के धर्म की स्थापना २९२ पहला  
 मिशनरी धर्म २९४ मत २ ९,  
 ३ ३ ५ महान् बुध ३ ३  
 बाट २५३ बैराग्यवादी गण्यानी  
 ३९५

बुद्धदेव ५०, १६३, ३८०, भगवान्  
१ १५४ (देखिए बुद्ध)

बुद्धि, जड चैतन्य ७५, सत्य की ज्ञाता  
२२२

बृहदारण्यक उपनिषद् ३५४

'बेनीडिक्शन' २८४

बेबिलोन १०१, १५९

बेबिलोनिया ३००, निवासी ६४

बेलगाँव ३११, ३२५

बेलुड मठ १९२ (पा० टि०)

बे सिटी टाइम्स प्रेस २६९

बे सिटी डेली ट्रिब्यून २७०

'बोओगे पाओगे' १७३

बोर्नियो ४९, ६३

बोस्टन इवनिंग ट्रास्क्रिप्ट २३२

बोस्टन २७०, वहाँ की स्त्रियाँ २१७,

हेरल्ड २७९, २८१

बौद्ध ३७, ५४, ५९, ७४, ११९, २३७,

२६८, २७५, २७९, आधुनिक

२९८, उनका विश्वास १५७,

उनकी जीवदया ९, उनके दुर्गुण

५६, उनमें जाति-विभाग ३९५,

और ईश्वर ३६, और वैष्णव

११९, और वैदिक धर्म का उद्देश्य

५६, काल १३५, कालीन

मूर्तियाँ ८६, ग्रन्थ २७४, चैतन्य

३७३, तत्र १६३, दर्शन २३५,

देश ३९५, धर्म ३६, ५६,

१०७, १२०-२२, १६१-६३, २५२,

२५४, २७२-७३, ३७८, ३९५,

धर्म का कथन ३०१, धर्म का

सामाजिक भाव ३९५, धर्म की

जनप्रियता १२०, धर्म के

सुधार १२०, धर्मावलम्बी ३४१,

प्रचारक १२१, प्रथम मिशनरी

धर्म २५२, भारत में उनकी

संख्या २३९, भिक्षु १६३, भिक्षु

धर्मपाल २३६, मत १५१, २७५,

मतावलम्बी ८८, मित्र ५६, राज्य

५१, विद्वान् २३५, सगठन १२१,

सम्प्रदाय १६३, साम्राज्य, पतनो-

न्मुख १२१, स्तूप १६३

बौद्धिक पाण्डित्य ८, विकास १०९,

२४१, शिक्षा १४

ब्रजवासी ४०३

ब्रह्म १००, २२३, ३५८, ३६०, ३८८,

४००, अखण्ड १८३, अविनश्वर

१८३, ईश्वर तथा मनुष्य का उपा-

दान ४०, उसका धर्म २४२, २४७,

उसका साक्षात्कार ३७३, ३९३,

ज्ञान ३६०, ज्ञानरूपी मुद्रिका

३१९, तथा जगत् २८२, तथा

जीव २८२, दृष्टि ३५८, निर्गुण

१४६, ३९९, निर्दोष और समभावा-

पन्न ३९१, पूर्ण, यथार्थ ३९६,

-वध ५२, वाद १२०, शाश्वत

१८३, सगुण २८२, ३८४, ३९९,

सत्ता, निर्गुण ३८४, सत्य १८३-

८४, सूत्र ३५, ३५९ (पा० टि०),

स्वरूप ३९४

ब्रह्मचर्य ९७, ३३२, ३४६, ३६५;

-भाव ३४७

ब्रह्मचारी १५४, ३५३, और सन्यासी

३५८, नवीन ३६५, मित्र ३६४,

विद्यार्थी ९७

ब्रह्मज्ञ पुरुष ३६०

ब्रह्मत्व, उसकी महिमा १६२, -ज्ञान

१४४

ब्रह्मपुत्र १२

ब्रह्मराक्षसी १६९

'ब्रह्मवादिन्' पत्र ३६६

ब्रह्मा १४६, १५७, देवश्रेष्ठ ४०३;

सृष्टिकर्ता २४८

ब्रह्माण्ड १३, १५९, २८२, ३०२,

३०४, ३३७, ३८३, ४०२-३,

अनन्त कोटि ४०३

ब्रह्मानन्द, स्वामी ३५२

ब्रह्मास्त्र १०३

ब्राह्मण ६३, ६५, १४७, २५१, २६१,

३७२, ईश्वर का ज्ञाता ३०४,

मासिक पत्र ३३९ (पा० टि०)  
 समामोचना १४८  
 गंगावासी (मुक्तपत्र) ३३९  
 गंगा ५३ (पा० टि०) ८ ८३  
 ११४ ११८ ३३२, ३५६, ३६६  
 और पंजाब ८३ और यूरोप  
 १ २ विपरीतार्थिकता सोसायटी  
 ३४२ हेतु ७६ ७९ पदियम  
 ७९ पूर्व का भोजन ७९  
 गंगाकी आधुनिक १३३ कवि प्राचीन  
 ७७ वाणि १५३ टीना ९७  
 भोजन का तरीका ८२ मुक्त  
 ३६७  
 बंधोपाध्याय समापन ३१४  
 बंसीवादी ४९ (वेदिय कृष्ण)  
 'बहुपत्र' ८२  
 ब्रह्मकाव्य ७८  
 बनारस १२  
 बन्धन ९ ८ १९ ३१ १७४ २८८,  
 ३२ ३२२, ३७४ ३९९ और  
 मोह १ मौलिक १८५ मुक्त  
 १७५  
 बरनी उनके ज्ञान का तरीका ८२  
 बराहमन्तर मठ ३४४  
 बर्बर जाति ९२, १५८  
 बस्ति ९५  
 बहुरोध ४ २  
 'बहुमान की धर्म' ७६  
 बस्त्रमाध्याय ३४२  
 बहु, समदीशक १३४ (पा० टि०)  
 पसुपति ३४१ विजयकृष्ण ३५४  
 बहुजन शिवाय बहुजन मुखाय १३७  
 १५५  
 बहुपति की मया ३२६  
 बहुवादी और मेघपरायण ३९१  
 बाह्यिक २ ४ २ ७ २५३ २६२,  
 २६८ २८९, २९६, २९८ ३१  
 ३३१ ३८५  
 बानवाजार ३४१  
 बालकृष्ण १२७

बालकृष्ण २५८  
 बाली राजा १११  
 बास्टीमोर १९१ अमेरिकन २९  
 २९३  
 बास्तिक किला ९८  
 बाह्याचार और अत्याचार ७ और  
 अनाचार ७०  
 'बिनेटाकियम २३२  
 बिषय के पी स्पूमन २३५  
 'बी बी' (Three B'S) २८९  
 बीजगणित २८४  
 बीन स्टाकस २८५  
 बुद्धर ११३  
 'बुधपरस्त के धर्म-परिवर्तन' १९  
 बुध २१ ३६ ३९ ५१ ५५ ७, ११७  
 १५७, १६२-६३ १६५, १६७  
 २३२ २३८ ३९ २४८ २५७  
 २७८-७९, २९२ ३८६ अन्तार  
 रूप में स्वीकार ३ ३ उनका  
 आविर्भाव २९३ उनका धर्म २८३  
 २९१ २९३-९४ ३ ४ उनका  
 मन्दिर ३७३ उनका सिद्धान्त  
 ३ ४ उनकी महानता ३ ५ उनकी  
 शिक्षा २९४ ३ ५ उनकी शिक्षा  
 और महत्त्व २९४ ३ ४ उनकी  
 सीमा २७५ उनके आगमन से पूर्व  
 ३ ४ उनके मूल ३ ५ उनके  
 अनाचार का निमित्त २७४ उसके  
 प्रति हिन्दू ३ ३ एक महापुरुष  
 ३९५ एक समाज-सुधारक ३९५  
 और ईसा ४१ २८३ और ईसा  
 धर्म ३९५ और सच्ची जाति-  
 व्यवस्था ३ ४ धार्मिक दृष्टि  
 से २१ हाथ आन्तरिक प्रकाश  
 की शिक्षा ३७९ हाथ मारण  
 के धर्म की स्थापना २९२ पहला  
 मिशनरी धर्म २९४ मठ २९२  
 ३ ३ ५ महान् गुरु ३ ३  
 नाथ २५३ वैदिकवादी संवादी  
 ३९५



२२७, २७०, उसकी जलवायु १३४, उसकी जातीय सम्पत्ति ३९३, उसकी दक्षिणी भाषा १०५, उसकी भावी सन्तान १९५, उसकी मुक्ति २१९, उसकी राष्ट्रीय आत्मा १८, उसकी लघु रूपरेखा ३, उसकी वर्तमान आवश्यकता ३७२, उसकी विशेषता १११, उसकी सजीवता ५, उसके अन्य धार्मिक सम्प्रदाय २९७, उसके उपकारकर्ता २८९, उसके जातीय जीवन ६०-१, उसके भगवान् १४१, उसके राष्ट्र का सगीत ५, उसके रीति-रिवाज २९, २४८, २८१, उसके सम्प्रदाय और मत-मतान्तर २८२, उसमें कर्मकाण्ड ११९, उसमें दार्शनिक चिन्तन ३८०, उसमें नियमित धर्म-संघ नहीं ३८१, उसमें बल एव सार ४९, उसमें बौद्ध धर्म का पतन ३७८, उसमें मुसलमान-जन-संख्या २८१, उसमें मोक्ष-मार्ग ५०, उसमें रजोगुण का अभाव १३६, उसमें 'व्यावहारिकता' २२७, उस पर मुसलमान-विजय १०६, उससे सीखने का पाठ २७२, और अंधविश्वास ५, और अन्य जाति २८५, और अफगानिस्तान ६३, और अमेरिका २१७, और आत्मा सबधी देहान्तर-प्राप्ति २७१, और आहारसम्बन्धी पवित्रता ७३, और ईश्वर ४, और कला २८३, और धर्म ७, १४२, और पाश्चात्य देश ३८१, और प्राचीन ग्रीक १०६, और यवन १३५, और राजनीति ३९२, और सामाजिक नियम ११२, और सामाजिक भेद ११९, २९३, और सिद्धान्त की वोरियाँ २९१, किसान १४, तत्कालीन ३०३, तथा आर्य जाति २७२, तथा विदेश ५, तीर्थ भूमि १३२, दक्षिण

६४, दासता में बँधी जाति ३, द्वारा खेल का आविष्कार २८५, नव जाग्रत १२२, पवित्र १३२, प्राचीन ७, १२०, ३८७, भूमि १४१, मूर्तिपूजक २४८, ललित कला में प्रधान गुरु २२४, वर्तमान ४७, वहाँ का भोजन ८०, वहाँ की जाति-प्रथा २७२, वहाँ की नारी २२८, २३०, २६३, ३८०, वहाँ की विधवा २५९, वहाँ की स्थिति २२७, वहाँ के आदिवासी २६४, वहाँ के चिन्तन-शील मनीषी १००, वहाँ के गरीब १५, २३८, वहाँ के पुजारी २९३, वहाँ के विभिन्न धर्म २७१, वहाँ के शिक्षित २८०, वहाँ जाति-व्यवस्था २६९, वहाँ धर्म सबधी स्वतंत्रता २७१, वहाँ बौद्ध धर्म २९३, वहाँ सन्यासी का महत्त्व १८, वहाँ सम्प्रदाय की मूल भित्ति १००, विषयक योजना १४, सीमा १३२ (देखिए भारतवर्ष)

'भारत और हिन्दुत्व' २७८

भारतवर्ष ९३, १०७, १४७, २४३  
'भारतवर्ष में ४१ वर्ष' (पुस्तक) ५९  
भारतवासी ४९, ६६, १५१, ३७३, ३८५, ३९२, आधुनिक १३४, उसकी औसत आय ४, उसकी दृष्टि ४८, प्राचीन और प्रकृति १३२, वर्तमान १३३

'भारताधिवास' (पुस्तक) १४९

भारतीय अध्यात्म विद्या और यूनानी १३४, अनुक्रम १२३, आचार-विचार २७९, इतिहास १२४, १६६, उत्पादन २८५, उद्देश्य, मोक्ष ९७, और अग्रज २९५, और यूनानी कला ४३, कहावत २८९, चिन्तन १३३, जनता १२४-२५, जलवायु ११८, जाति, आदिम ११०, १३३, ज्योतिष शास्त्र

उसका अर्थ ईस्वरोपासना हेतु  
 २८ और अग्रिम ३९५ - कुमार  
 १५५ वसिष्ठी ८३ बेवता ७१  
 धर्म १२१ २४२ बाबाक गोपाक  
 १२९ बकीक ३१२ बाब २३४  
 २७८ संन्यासी २५३ २७९  
 २८१ २९१ सन्ना १२६ ३ ४  
 सामु २४२  
 बाह्यत्व १४२  
 बाह्य धर्म १४९, १५३ मन्विर ३१  
 समाज १४९, १५३ २५  
 बिकले हु क ३५, २४५  
 बुकसिन २८६, ३७५  
 बुकसिन एपिकस एसोसियेशन ३८३  
 ३८९ ३९६ एपिकस सीसायटी  
 २८७ टाहमस २९६ बेनी डीक  
 २९७ नैतिक समा ३७५ स्टैडर्ड  
 मूनियन २८३ २८७ ३ ३ ३  
 भक्त उसका अर्थ २६१ मिछनटी  
 ३१  
 भक्ति १२७-२८, १४४ ३ ९, ३११  
 ३१८, ३४४ आन्तरिक ३२५  
 आत्मायपी २७७ उसके संबंध में  
 मुख्य कारण ३८५ और आन  
 १४ ३५१ और पाश्चात्य  
 ३८५ आन और कर्मयोग ३५६  
 निष्ठा एवं प्रेम १२७ मनुष्य के  
 भीतर ही ३७१ मार्ग ३७२ मार्गी  
 २६१ - काम ३७१ बाब ३८५  
 बौद्ध ३५१  
 'अक्रिययोग' ४  
 अनन्तरीस्वरूपा ३६५  
 भयवत्तपा ३७४  
 भयवत्-सेवा १५४ ३७४  
 भयवद्गीता ३१९ ३३१  
 भगवान् ७ ५३-५, १ १ ४  
 १३६ १४३ १४९, १६६  
 २६८, २७३ ३२२, ३३ ३३५,  
 ३४६, ३५२ ३६३ ३७५, ३७७

३९५ उनके प्रति प्रेम ३८५ कृष्ण  
 ३३१ ३२ निरपेक्ष ३३५ बुद्धदेव  
 १५४ रामकृष्ण ४३ १४१ (वे  
 रामकृष्ण देव) सत्सङ्ग ३५८  
 स्वर्गस्थ २८  
 धर्मिणी विविध १९२ (पा टि )  
 निवेदिता १९५ (पा टि )  
 ३६६ ४ १  
 मट्टाचार्य कृष्ण श्याम १४६ ४७  
 मय ४  
 मरुत १४३  
 मन्वन्त १७४-७५  
 मन्वानी संकर ३४३  
 भास्ववाही २५९  
 भारत ३ ९, ९ १४ ११-७ १९,  
 २३ २८ ३९, ४८ ९, ५६, ६०-१  
 ६३ ७३ ७५, ८४-५, ८९, ९२ ३  
 १ ७ ११ १२ १२३ १३३,  
 १३५ ३६ १४७-४८, १५  
 १५४-५५, १५७ १६२ ३४ २१६  
 १७ २३१ ३२ २४१ २४९-५१,  
 २५६-५७ २६ ३१ २३६ ३७  
 २७ २७४ २८ २८४ २८९  
 ८८ २९ २९३ २९५, ३३७  
 ३४६, ३७२, ३७७ ३८६, ३९०-  
 ९१ ४ २ आधुनिक १४९  
 उच्चतम आदर्श ३ ९ उत्पीड़ित  
 का धरमराता २४७ उत्तर १२१  
 १२३-२४ २७३ उत्तरी २५  
 उसका अतीत और ३३२ उसका  
 अवतार ११९ उसका आविष्कार  
 और वैम २८४-८५, २९४ उसका  
 इतिहास १३२, २२४ उसका ऐति  
 हासिक क्रम-विक्रम ११६ उसका  
 धर्म १५, २२७ २९९, २९४  
 उसका ध्येय ४ उसका प्राय ६  
 उसका चक्र-सहन २७९ उसका  
 राष्ट्रीय धर्म १२९ उसका श्रेष्ठत्व  
 ४ उसका संदेश २८५) उनकी  
 नवा १६३ १६६ उसकी जनकत्वा

२२७, २७०, उसकी जलवायु १३४, उसकी जातीय सम्पत्ति ३९३, उसकी दक्षिणी भाषा १०५, उसकी भावी सन्तान १९५, उसकी मुक्ति २१९, उसकी राष्ट्रीय आत्मा १८, उसकी लघु रूपरेखा ३, उसकी वर्तमान आवश्यकता ३७२, उसकी विशेषता १११, उसकी सजीवता ५, उसके अन्य धार्मिक सम्प्रदाय २९७, उसके उपकारकर्ता २८९, उसके जातीय जीवन ६०-१, उसके भगवान् १४१, उसके राष्ट्र का संगीत ५, उसके रीति-रिवाज २९, २४८, २८१, उसके सम्प्रदाय और मत-मतान्तर २८२, उसमें कर्मकाण्ड ११९, उसमें दार्शनिक चिन्तन ३८०, उसमें नियमित धर्म-संघ नहीं ३८१, उसमें बल एव सार ४९, उसमें बौद्ध धर्म का पतन ३७८, उसमें मुसलमान-जन-सख्या २८१, उसमें मोक्ष-मार्ग ५०, उसमें रजोगुण का अभाव १३६, उसमें 'व्यावहारिकता' २२७, उस पर मुसलमान-विजय १०६, उससे सीखने का पाठ २७२, और अधविश्वास ५, और अन्य जाति २८५, और अफगानिस्तान ६३, और अमेरिका २१७, और आत्मा सबंधी देहान्तर-प्राप्ति २७१, और आहार सम्बन्धी पवित्रता ७३, और ईश्वर ४, और कला २८३, और धर्म ७, १४२, और पाश्चात्य देश ३८१, और प्राचीन ग्रीक १०६, और यवन १३५, और राजनीति ३९२, और सामाजिक नियम ११२, और सामाजिक भेद ११९, २९३, और सिद्धान्त की वोरियाँ २९१, किसान १४, तत्कालीन ३०३, तथा आर्य जाति २७२, तथा विदेश ५, तीर्थ भूमि १३२, दक्षिण १०-२८

६४, दासता में बँधी जाति ३, द्वारा खेल का आविष्कार २८५, नव जाग्रत १२२, पवित्र १३२, प्राचीन ७, १२०, ३८७, भूमि १४१, मूर्तिपूजक २४८, ललित कला में प्रधान गुरु २२४, वर्तमान ४७, वहाँ का भोजन ८०, वहाँ की जाति-प्रथा २७२, वहाँ की नारी २२८, २३०, २६३, ३८०, वहाँ की विधवा २५९, वहाँ की स्थिति २२७, वहाँ के आदिवासी २६४, वहाँ के चिन्तन-शील मनीषी १००, वहाँ के गरीब १५, २३८, वहाँ के पुजारी २९३, वहाँ के विभिन्न धर्म २७१, वहाँ के शिक्षित २८०, वहाँ जाति-व्यवस्था २६९, वहाँ धर्म सबंधी स्वतंत्रता २७१, वहाँ बौद्ध धर्म २९३, वहाँ सन्यासी का महत्त्व १८, वहाँ सम्प्रदाय की मूल भित्ति १००, विषयक योजना १४, सीमा १३२ (देखिए भारतवर्ष)

'भारत और हिन्दुत्व' २७८

भारतवर्ष ९३, १०७, १४७, २४३  
'भारतवर्ष में ४१ वर्ष' (पुस्तक) ५९  
भारतवासी ४९, ६६, १५१, ३७३, ३८५, ३९२, आधुनिक १३४, उसकी औसत आय ४, उसकी दृष्टि ४८, प्राचीन और प्रकृति १३२, वर्तमान १३३

'भारताधिवाम' (पुस्तक) १४९

भारतीय अध्यात्म विद्या और यूनानी १३४, अनुक्रम १२३, आचार-विचार २७९, इतिहास १२४, १६६, उत्पादन २८५, उद्देश्य, मोक्ष ९७, और अग्नेज २९५, और यूनानी कला ४३, कहावत २८९, चिन्तन १३३, जनता १२४-२५, जलवायु ११८, जाति, आदिम ११०, १३३, ज्योतिष शास्त्र

१६४ बिपोसोंकी १५१ वक्षिण  
 २७३ धर्म १२३ १६३ २३१  
 २४२ २४६ ४७ २६१ २६९  
 धर्म दर्शन साहित्य १५१ नारी  
 २६२ ६३ प्रवेश ४९ प्रकृति  
 ४३ बच्चा २२८ २३१ बौद्ध  
 धर्म उसका कौप १२१ भक्ति  
 ३८५ भक्ति और पाश्चात्य देस  
 २८५ भाष्य स्त्री पर निर्भर  
 २६७ महिला ३८ भूखण्डमान  
 ३७७ राष्ट्र ५ रीति-नीति  
 १४८ रीति-रिवाज २५ २८६  
 लक्ष्मी २६ विद्या १६४ विद्यार्थी  
 १५८ विद्वान् ११ घरीर ४८  
 समाज ११८ २८ समाद्व असोक  
 २८४ साहित्य १६५ स्त्री १९,  
 ८६ २६३

भाव और मापा १६८ दो प्रकार के  
 ३३५

भाषा ४२ अश्वेजी १४९ २९१ भाष्य  
 ४२ भाष्यकारिक २४५ उसका  
 रहस्य ४२ और भारतीय जीवन  
 १६९ और शैल-अवमति १६९  
 और प्रकृति १६८ और भाव  
 १६८ और मनोभाव १६७ और  
 लेखनी १६७ और समाज ३६२  
 कलकत्ते की १६८ काश्मिरी की  
 ४२ ग्रीक ११५ ६६ चीनी  
 ८८ पहलवी ६४ पाकी ४२  
 फ्रेंच १६६ बंगला १६७ ३५४  
 बोलचाल की १६७ मृत उसके  
 लक्षण १६८ म्येन्ड ३१२  
 यूरोपीय १३३ २८४ विचारों  
 की भाष्य १६८ विज्ञान २८४  
 संस्कृत १३३ १६४ २५३ २८४  
 ३५१ ३५८ हितोपदेश की  
 ४२

निष्ठावृत्ति और प्रवचनपीठका २४१

मीमा ५

भूमिशास्त्र ३ ९ ३२३

भूमिशास्त्र १३३  
 भूमिपति और शक्ति २५१  
 भोग १३४ उसके द्वारा भोग २२३  
 और पीड़ा २१ तथा त्याग ५१  
 -विकास ८

भोजन असाध्य और साध्य ७७ बर्त  
 तथाकी ७९ और भाव विकास ७६  
 और सर्वसम्मत सिद्धान्त ७९  
 नियमित ७६ निरामिय-सामिय  
 ७३ पूर्व-व्यास का ७९ मांस ७४  
 भोग्य प्रवृत्ति ७२

भोलाभाष १४३ उनका परिचय १४४

भोज्यापुरी उनका परिचय १४४

भौतिकशास्त्र उच्चतर २१४

भौतिकशास्त्र २८ शास्त्र ३०९ ३२३

३३६

भय सांभ्राज्य १२१

भूमिशास्त्र २३४ प्रतापबन्ध १४९ १५३

मठ-सम्बन्धिता उसके विकास का धर्म  
 ३ २

मयुरा ७७

मन्त्राक्ष ८ १३५ १८९ २३२ ३२५  
 ३६६ ६७ ३३९

महाती सिष्य ३५२

मध्य एशिया १४

मन अपने धर्म की प्रकृति ३२ अक्षय  
 दर्शन ४ उसकी एकाग्रता और  
 जीत ३८३ ३९७ उसकी क्रिया  
 का धर्म ३२ उसकी निर्मलता  
 ३९८ ९९ उसके अनुपम अर्थ  
 ३२ उसके बंध की जेष्ठा  
 ३३८ और आत्मा २४ ७२  
 और आसन ४ और कर्म-नियम  
 २५ और बहिर्निदान ३८३ और  
 बाह्य प्रकृति २५ और घरीर १२७  
 ३८६ जन्म और मृत्यु का भाव  
 ४ तथा जड़ २६७ प्रकृति और  
 नियम ३१ मरणशील २६७  
 मन संयम ३९२

मनस्तत्त्व विद्या ३८९

मनु ८४, उनका शासन १३५, और  
वेद ५४, स्मृति ५२

मनु० ५२ (पा० टि०), ७२

मनुष्य ५४, अजन्मा २१५, अमरण-  
शील २१५, आदिम ३६, १०१,  
आरम्भ मे शिकारी १०१,  
उसका कर्तव्य ३२९, उसका  
क्रमविकास १०१, उसका गुरु  
२१४, उसका यथार्थ सुख ३३०,  
उसका विकास २४७, ३७८,  
उसका सगठन ६३, उसका  
स्वभाव ३२८, उसकी आत्मा  
और ज्ञान २९६, उसकी  
आध्यात्मिक समता ११९, उसकी  
ईश्वर-प्राप्ति २४७, उसकी उन्नति  
के अवसर ३७६, उसकी पूर्णावस्था  
२६९, उसकी प्रकृति २६७, उसकी  
मुक्ति, अद्वैत ज्ञान से ३७६, उसकी  
स्वतंत्र सत्ता का भ्रम २९८, उसके  
पास तीन चीजें ४०, उसके मार्ग मे  
सहायक ३३०, उसके लिए उपयुक्त  
धर्म ३३०, एक आत्मा २४, २९७,  
एक पूर्ण सत्ता २९८, और असत्य,  
सत्य की परीक्षा ३३६, और आत्मा  
तथा भलाई २९२, और ईश्वर  
२१४, और ईश्वरत्व का अभि-  
व्यक्तीकरण ३८२, और ईसा मे  
अन्तर ४०, और उसकी सहायता  
२९२, और कीर्ति ६२, और गुण  
५४, और जड पदार्थ २३५, और  
धर्म २४२, और परीक्षा ३३६, और  
पागल मे भेद ३२८, और प्रकृति  
५०, १०२, २१३, और बन्धन  
३९१, और भौतिक वस्तु २१४,  
और शक्तिमान व्यक्ति ३६, कर्मठ,  
उसकी सेवा २२१, चेतन भाग का  
श्रेष्ठ प्राणी ३३७, जगली और सम्य  
१०८, द्वारा प्रथा-सृष्टि १०४,  
धार्मिक और नास्तिक २२१, निम्न-

तम भी ईश्वर २१३, पशुता, मनु-  
ष्यता और देवत्व का मिश्रण २२१,  
पुच्छरहित वानरविशेष ३३७,  
पूजा का सर्वोत्तम तरीका ४००,  
प्राणीविशेष ३३७, बुद्धिवादी  
और दार्शनिक पूजा २२१, भावुक  
२२१, मस्तिष्क मे जल का अंश  
३३७, यथार्थ ३९१, समाज की  
सृष्टि १०५, साधारणतया चार  
प्रकार २२१, स्वार्थ का पुज २६  
'मनुष्य का दिव्यत्व' २५५ (पा० टि०),  
२६७

'मनुष्य' बनो ६२

मनोमय कोष ४००

मन्त्र-जप ३६१

मन्त्र-तन्त्र १५१, -दाक्षा ३१८, ३६२

'ममी' २४

मरण और जीवन १९६

मरसिया १४५

मराठा १२४

मलाबार ८०, ८७

मलेरिया ४७, ७२

महाकाव्य तथा कविता २८५

'महात्मा' १५३

महादेव १६२

महापुरुष, प्राचीन, उनके ज्ञान का उद्धार  
१६०

महाभारत १६५-६६, ३३६, आदि  
पर्व ७४ (पा० टि०), महाकाव्य  
१२०

महामना स्थितामा १५७

महामाया १०६, उसका अप्रतिहत  
नियम १५६

महामारी ४७, ७२

महारजोगुणात्मक क्रिया ३४१

महारजोगुणी ५५

महाराष्ट्र ८२

महालामा १०७

महावीर प्रथम नेपोलियन ९८

मासभोजी ६५, जाति ७५

मांसाहारी ७५  
 'मौ' १०-१ १७७ बयामयी १७८  
 माइकेस मधुसूदन बस ४२  
 माफाक १४६  
 माता वप्टी ८५  
 मातृत्व उसका आर्वा २७७-७८  
 उसका सिद्धान्त और हित् २६९  
 मातृ धर्म ३ ३ भूमि २९  
 माइक वेम १५  
 मानव उसका परम सख्य ३४४  
 प्रकृति की दो ज्योति ४१ -शरीर  
 १२८ (वेसिए मनुष्य)  
 मानसिक बन्धु २१४  
 'मामुली मूच्छता' ११२  
 माया २६ १ ०-१ १७४ १७८  
 २२१ ३१६ ३३४ ३४४ ३८३  
 ३९७ ४ २ उसका डार १७५  
 उसकी सता ३७३ उसके अस्तित्व  
 का कारण ३८३-८४ और जीव  
 तत्व ३८१ पाश १७५ -ममता  
 ३१६ -राम्य ३८४ बाब ३७४  
 ७५ समस्त भेद-बोध ३९६  
 समष्टि और व्यष्टि रूप ३७३  
 मामाधिकृत धर्म १४  
 मायिक जगत प्रपञ्च ३७८  
 मारमायीका ३२५  
 मार्म भिन्नता ३८४ प्रकृति ३८४  
 मानव होरक २९१  
 माइक-बरवार १२२ साम्राज्य १२३  
 मासवा १२४  
 'मास (masses) २८४  
 मास्टर महाशय ३४४  
 मित्र आवचन ३४ प्रमावाच  
 (स्व) ३५६ हरिपद ३ ९  
 मिथिला १२२  
 मिनिवापोलिश नगर २८ स्टार २४२  
 मित्र ३, ९, पौन स्टुअर्ट ३, २,  
 स्टुअर्ट ३३५  
 मिशनरी उनका कर्तव्य २३१ उनकी  
 हकबल १५३ उसका भारतीय धर्म

के प्रति स्व २६९ धर्म २५२  
 प्रभु ३१ सोय और हिन्दू देवी-  
 देवता १५२ स्कूल ३ ९  
 मिश्रयजित २८४ ३२३  
 मिथिसिपी २६  
 मित्र २४ ९१ १५९ निवासी ६४  
 १ १ प्राचीन १ ५  
 मीमांसक ५ उनका मत ५२  
 मीमांसा-धर्म १२३ भाष्य १६८  
 मुक्ति ८ २१ २४ ३ ५ ५९,  
 १९४ १९९ २ ३ ३५१ ४ १  
 उसका अर्थ ३७४ उसकी बेष्टा  
 ५ उसकी प्राप्ति २५७  
 उसकी सखी कल्पना २५ उसक  
 चार मार्म २१८ उसके साथ ईश्वर  
 का संबंध नहीं ३७४ और धर्म ५  
 और व्यक्ति २५८ ज्योति २ ३  
 -बुध मृत्यु १२६ साम ६ ३४४  
 ३४८ ३७४ ३८३ ३९३  
 मुख्य जाति १४ बरवार १२४  
 बाबबाह १ ७ राम्य ५९ सभ्राट्  
 ९३ २६१ साम्राज्य १२४  
 मुनि १ ९ १२६ पूर्वकासीन ३३५  
 मुमुक्षु और धर्मोन्मु ५३  
 मुसकमान ३६-७ ५१ ८३ १ ८ ९,  
 ११२, १४५, १६१ २६७ २९७  
 उनका शक्ति-प्रयोग २७३ उनकी  
 भारत पर विजय १ ६ उनके सामे  
 का तरीका ८२ और ईसाई २६४  
 कन्टर ३७७ जाति १ ८ धर्म  
 ९२ नारी ३ २ भारतीय ३७७  
 विवेता १ ७  
 मुसकमानी अन्वय १ ७ काल मे  
 आन्दोलन की प्रकृति १२३ धर्म  
 १ ६ प्रभाव २६४  
 मुस्लिम उसका बन्धुत्व ९ सरकार  
 १५,  
 मुहम्मद १७ २१ ३६ ४१ १५७  
 ३६८ ३८६  
 मुहम्मद १४५

- 'मूर' ९१, जाति २४२  
 मूर्तिपूजक देश २४९, देश और ईसाई  
 धर्म २५२, भारत २४८  
 मूर्तिपूजा २२८, २३०, २३८, २४३,  
 उसकी उत्पत्ति ३७३, मुक्ति-प्राप्ति  
 में सहायक ३७३  
 मूर्तिविग्रह १२७  
 मूसा ३०  
 मृत्यु ६२, ३७६-७७  
 मेक्सिको १०१, २३६  
 मेथाडिस्ट २२२  
 मेमफिस २४५, २४९  
 मेम्फिस २७, ३५  
 मेरी ४९, ९१, १८४, हेल १८३  
 'में' ३७४, ३८४  
 मैक्स मूलर, प्रोफेसर ९, १६४, आदर-  
 णीय गृहस्थ १५०, उनका ज्ञान  
 १४९, उनका भारत-प्रेम १५०,  
 उनकी सचेतनता १४८, प्रोफेसर  
 महोदय १५३-५४, भारत-हितैषी  
 १५०  
 मैजिक लैन्टर्न ३३६  
 मैत्रेयी १४८  
 मैथिल एव मागधी १२०  
 मैनिकीयन अपघर्म २८४  
 मैसूर ८२  
 मोक्ष १२, ५२, २३९, ३९८, उसका  
 अभिलाषी १३४, धर्म ५१, परा-  
 यण योगी ४७, प्राप्ति ५०, मार्ग  
 ५०, ५५-६  
 'मोहमुद्गार' ५५  
 मोत और जिन्दगी २०४  
 मोर्य राजा १२०, वशी नरेश  
 १२०, सम्राट् और बौद्ध धर्म  
 १२१  
 'मौलिक पाप' २४७  
 मौलिकता, उसके अभाव में अवनति  
 ६८  
 म्लेच्छ ४८, अपशब्द, उच्चारणकर्ता  
 ३५८, भाषा ३१२
- यग मैनस हिब्रू एसोसिएशन ३५  
 यक्ष्मा ६६  
 यज्ञ, उसका धुआँ १०९, उसकी अग्नि  
 १६२, -काष्ठ १६२, -वेदी ११६  
 यथार्थ और आदर्श २९८  
 यम ४७, ५५, ३५०, उसका घर ७६,  
 -सदन ३५०, स्वरूप ४७  
 यमराज ८५  
 यमुना ४०२-३  
 यवन ६३, १०५, १३३, उस पर वाद-  
 विवाद ६४, गुरु १३३  
 'यवनिका' १६४  
 यहूदी १८, ३६, उनका विश्वास ३७८,  
 और अरब २७३, और ईसाई  
 धर्म-संघ २७, और पैगम्बर १८,  
 कट्टर और आहार ८३, जाति  
 १०६, पंडित २५५, संघ ३५  
 यागटिसीक्याग १०५  
 याज्ञवल्क्य १४८, -मैत्रेयी सवाद ३५४  
 यादृशी भावना यस्य १५४  
 युग-कल्प-मन्वन्तर १९५  
 युगधर्म और भारत १४२  
 युजेनी (Eugenie) सम्राज्ञी ६८  
 युधिष्ठिर ५०  
 युफेटेज १०५,  
 यूनान १३३, ३००, उसकी प्रेरणा  
 ४, देश १६४, पाश्चात्य सभ्यता  
 का आदि केन्द्र ९२, वाले १३३  
 यूनानी १०१, २८५, आधिपत्य १६४,  
 कला का रहस्य ४३, चित्रकार  
 ४३, जाति ६४, नरेश २८४,  
 प्राचीन ९३, विद्याकाक्षी २६७,  
 व्युत्पत्ति १६४ (देखिए ग्रीक)  
 यूनिटो क्लव २५०  
 यूनिटेरियन २२२, २६२-६३, चर्च  
 २५३, २५५, २५९, फस्ट २६१  
 'यूपस्तम्भ' १६२  
 यूरोप ६८, ७१, ८५, ९२-४, ९८-९,  
 १०२, १०५, ११३, १३३, १५१-

५२ १६२ २३५ २७ २८०  
 २८४-८५, ३४१ ३७७ उत्तर  
 १३२ उसकी महान् सेना-क्रम  
 में परिवर्ति १ ८ उसकी सम्पत्ता  
 की मिति १ ५ उसमें सम्पत्ता का  
 आगमन १ ८ लम्ब १ ५६  
 तथा अमेरिका १३४ मिनासी  
 ४८ वर्तमान और इसाई धर्म  
 ११३ बासी ४९ ५५ ६८  
 यूरोपियन ४८-५ ५५ ६२ उनके  
 उपनिवेश ६७ जोम ७  
 यूरोपीय ६४-५ अति बर्बर जाति की  
 उत्पत्ति १ ६ अलगुप १११  
 इसाई ११३ उत्तराधिकारी २५८  
 उनके उपनिवेश ६७ जाति १ ६  
 तथा हिन्दू जाति २४६ वेष्ट ६१  
 २५६ पश्चिम ११ ११३  
 पर्यटक ४७ पुस्तक ९६ बहि  
 विज्ञान १ माया १३३ २८४  
 मनीषी १५१ राजा १ ८  
 विद्युत्वाचार (वाइनेमो) १९५  
 विद्वान् ६४ वैज्ञानिक २८३  
 सम्पत्ता ९१ १ ९ ११७ १३४  
 सम्पत्ता का साधन ११२ सम्पत्ता  
 की समीची ९३ सम्पत्ताकपी बस्त  
 के उपादान १ ९ साहित्य १३३  
 येशुस उसकी मूर्त्त १४५ बाबा  
 १४६  
 येशुवा २१  
 योन १५३ और शरीर की स्वस्थता  
 ३१७ और साक्ष्य दर्शन ३८२  
 कर्म ३५६ किम्बा ३६२ किम्बा  
 उससे छात्र ३६२ ज्ञान ३५५ मार्ग  
 ३६२ ३९८ राज ३५६ -विद्या  
 ३९०-९१ सक्ति १५  
 योनातन्त्र, स्वामी ३४१ ३५२  
 योनास्यास ३७३ ४  
 योपी ९ ३७३ उनका धन्य और  
 धर्म्यास ३८९ उनका बाबा ३९  
 उसका कार्य ३९ उसका सर्वो-

सम आहार ३९७ और सिद्ध  
 २९५ मोसपरायण ४७ यथार्थ  
 ३९०-९१  
 'योनिवा' (Ionia) ६४  
 एताथार्थ ३६६  
 एथोनुज ५४ १३५ ३६ २१८ १९  
 उसका धर्म २१९ उसका भारत  
 में वामाव ३३६ उसकी अस्थिरता  
 १३६ उसकी जाति बीर्बेबीकी  
 नहीं १३६ उसकी प्राप्ति कम्मानप्रद  
 १३६ और उत्पन्न १३६ प्रवाल  
 ५७  
 उत्तिवेक ३३५  
 एवि १७८-७९  
 एविनर्मा ११५  
 रक्षायनघास्त ११७ ३ ९ ३२३  
 ३३४ ३३६  
 राइट जे एच प्रो २ ४  
 (वा टि) २३१  
 'राई' ८१  
 राम-द्वेष ३२४  
 राजतर्पिणी ६३  
 राजनीतिक स्वाधीनता ५८, ६  
 राजस्यधर्म और पुरोहित ११९  
 राजपूत ८४ मद्र १४५ और १२२  
 राजपूताना ८ ८२, १ ७-८ और  
 हिमालय ८७  
 राजसीम ३५६ ३६२  
 राज-सामंत ८६  
 राजसी प्रेम और पीड़ा २२४  
 राजा और प्रजा ३२३ शत्रुपक्ष ८६  
 रिचर्ड १ ८  
 राजेन्द्र शीप ३४९  
 राजेन्द्रलाल बंकिटर ५१ (वा टि)  
 राजी बीसेडिल ९९ ।  
 राजाध्यामी सम्प्रदाय १५३  
 राजकीलक विशिष्ट २४६  
 रामकृष्ण १४९, १५२-५३ १६७  
 २१८, ४ १ उनका धर्म १५२



- उनका शक्ति-सम्प्रसारण १५२,  
उनकी उक्तियाँ १४८, उनकी  
जीवनी १५०, उनके धर्म की विशेषता  
१५२, एकता के अवतार २१८,  
और युगधर्म १४२, चरित १५१,  
-जीवनी १५३, -धर्मावलम्बी १५२,  
नरदेव १५१, परमहंस २३४,  
भगवान् १४१, १५१, ३६० (देखिए  
रामकृष्ण देव)
- रामकृष्णचरित' १४९, ३६१  
रामकृष्ण देव ४३, १४९, १५१, १५५,  
३२२, ३३२, ३४०, ३४५, ३५१,  
३५९ (पा० टि०), ३६१-६२,  
३७३-७४, उनमें कला-शक्ति का  
विकास ४३, यथार्थ आध्यात्मिक ४३  
रामकृष्ण मठ १६७ (पा० टि०),  
मिशन १३२ (पा० टि०), मिशन  
का कार्य ३७२  
रामकृष्ण वचनामृत ३४४  
'रामकृष्ण हिज़ लाइफ एण्ड सेंडिंग्स'  
९, १४८ (पा० टि०), १५१  
(पा० टि०)  
'रामकेष्ट' ३२२  
रामचरण, उनका चरित्र १४४-४५  
रामदास १२३  
रामनाथ २१८  
राम २९, ७६, ३६०-६१, ३९५, और  
कृष्ण ७४, सुसम्य आर्य १११  
रामप्रसाद ५३  
रामलाल चट्टोपाध्याय ३४५, दादा  
३४५  
रामानन्द १२३  
रामानुज ५६, १०२, उनका व्यावहा-  
रिक दर्शन १०३  
रामानुजाचार्य ७२, और साधु मन्त्रधी  
चिन्ता ७३  
रामानुज नरैण २८६  
रामायण ११, १८३, ३३६, जयोध्या  
८८ (पा० टि०), जाय जाति  
ज्ञान अनार्य-विजय उपाख्यान नहीं
- ११०, उत्तर ७४ (पा० टि०),  
और महाभारत ७४  
रामेश्वर ३२५  
राबर्ट्स, लार्ड ५९  
राय शालिग्राम साहब बहादुर १५३  
रायल सोसायटी ९४  
रावण ४९, २१८  
राष्ट्र, उसका धर्म २५८, उसका मूल्या-  
कन ३००, उसकी मुक्ति का मार्ग  
२८९,  
राष्ट्रीय आदर्श ६०, उसके दो-तिहाई  
लोग २७५, चरित्र ११७, जीवन  
१२०, दुर्गुण २७७, सम्म्यता १६  
रिचर्ड, राजा १०८  
रिजले मॅनर १९७ (पा० टि०)  
रिपन कॉलेज ३४०  
रीति-नीति ४९, ५७, ९६, १४९,  
३९३, -रिवाज १६, ११८, १३७,  
२३१  
'रेड इन्डियन्स' २५६  
रेनेसाँ (नवजन्म) ९३  
रेल तथा यातायात १६८  
रेवरेण्ड २४५, एच० ओ० ब्रीड  
२४३, एम० एफ० नॉट्स २२८-  
२९, जोसेफ कुक २३५, लेट्वार्ड  
३१०  
रेव० वाल्टर ब्रूमन २९१  
रेव० हिरम ब्रूमन २९१  
रुढि और नियम २१९  
रूम ८१, ९९, २८९, वाले ६९  
रुमी और तिब्बती ८८, और फ़ामीमी  
पर्यटक का मत ६४  
रोग-शोक का कुरुक्षेत्र ४७  
रोम ४, ९२-३, १०६, १५९, २७१,  
उसका ध्येय ४, प्राचीन ३००  
रोमन १०६, १३४, कैथोलिक १६१,  
२७२, कैथोलिक चर्च २७४,  
जाति ९२, प्राचीन ८२, वाले  
२८५, मामाज्य १०६  
रोशेण्ड नोत्रोर २७२, २८५

संका २१८ २३६ २७३ डीप २१८  
 घरीरुप्पी २१९  
 कदमी और सरस्वती ११४  
 कदय उसकी प्राप्ति १५९  
 कसमक १४६ सहूर १४५ घिया  
 लोमों की राजधानी १४५  
 सम्बन्ध ९ (पा टि) ६६-७ ८५ ६  
 ९१ ९५ ३४७ नयरी ११२  
 'सन्धम-मेड' ८५  
 सन्धि कला और भारत २२४  
 लान माइसेप्स हिस्टोरिक सोसायटी  
 २८३  
 लॉ मर्साई ९९  
 सामा २९६  
 लार्ड राबर्ट्स ५९  
 ला सलेट एकेडमी २४८  
 'लॉ सैकेट अकादमी' २७ २९  
 लाहीर १२४  
 लिबियन विमर २९ ९१ २९१  
 'लुक्ते पत्थर पर काई कहाँ?' ९  
 लुसी मोलरो २१७ २१९  
 'लेटर द क्वासे' ९८  
 लेनिन आवि २९१  
 लोकसेवा ३९७  
 लोकाचार ७३ १४६  
 लोम और वासता २१९  
 लौकिक विद्या १६  
 ल्योन १८२  
  
 लसानुष्ठान भुज और अतिकार १५८  
 लनमानुष जाति ७६  
 लनस्पतिशास्त्र ३ ९  
 लराहूनगर ३६४  
 'लर्क-हाउस' ३२१ ३६७  
 'लर्च' (virtue) ९६  
 लर्न धर्म ३८ मेह का कारण ६३  
 विभाग और आर्म ११२ -म्यबस्वा  
 उससे काम २८ संकप्ता ६३  
 संकरी जाति १ ७

बर्नामम और आर्म ११२  
 बर्नाममाचार १११  
 बसिष्ट १४८  
 बस्तु, अस्तित्वहीन २९८ उनमें परि  
 बर्तन २२१ केवल एक ३७४  
 बातावरन और सिता २६  
 बाव अमेय २७४ अकृष्ट ३३६  
 बडौत १५ बारस १८ एकेरनर  
 ३६ बड़ ११९ ईत २१ पुनर्ब  
 ग्य १५ बहुदेवता ३६ भौतिक  
 २८ भौतिकता २१४ बित्तडा ७४  
 नामदेव श्रुति ३६  
 बामाचार धर्मि-पूजा ९  
 बामाचारी ९  
 बायसेट १९४  
 वाराणसी ५१ (पा टि) २८  
 'बार्ड सिक्सटीन डे नर्सरी २८१  
 बाल्फोर्ड २७८  
 बाल्सेयर ११३  
 बासिगटन पोस्ट २९४  
 बिकास और धारमा २६८ सर्वन  
 क्रमिक २१९  
 बिस्टर झुगो ११३  
 बिकम्पनुर ८  
 बिचार और आवर्स १२ और जगह  
 ३२१ और शब्द ३२ मन की  
 मति ३७ धर्मि १५९, १६८  
 'बिचार और कर्म-समा २२७ २२९  
 बिजयकृष्ण बसु ३५४ बाबू ३५४  
 बिजयनगर १२४  
 बिसान १ १३९ बाबुनिक ३५  
 उसका अटक निबन्ध २५८ और  
 बर्म ३ २ ३३३ और साहित्य  
 २८३ सामाजिक २३२  
 बित्तथावाद ७४  
 बिबेसी बिसान २३७ बिसनरी २९५  
 बिबेड-मुक्त ३४८  
 बिबा अपरा ३८८ उसकी संज्ञा  
 १६४ और बर्म १ ८ -बर्बा  
 १९ -बुद्धि ३१६ ३३८, ३६१

भारतीय १६४, मनस्तत्त्व ३८९,  
 यूनानी १६४, लौकिक १६०,  
 सम्मोहन ३८९  
 विद्यार्थी और कामजित् ९७  
 विद्वत्ता और बुद्धि २२२  
 विधवा आश्रम ३६४  
 विधि-विधान ११८  
 विभीषण २१८  
 विमलानन्द, स्वामी ३४१, ३४८  
 वियना ९५  
 'विरक्त' ७ (देखिए सन्यासी)  
 विलायत ६९, ८७, ११४, ३५५,  
 ३६५-६७  
 विलायती पत्र ३६६, भोजन-पद्धति  
 ७१, रसोह्या ७१  
 विव कानन्द स्वामी २७, २९, २०३  
 (पा० टि०), २१६, २२७, २३२,  
 २४२, २४४-४६, २४८-५०,  
 २५२, २५४, २५६-५७, २५९,  
 २६१, २६३, २६९-७१, २७६,  
 २७८, उनका अविश्वास २७१,  
 उनका काब्यालकार प्रयोग २५६,  
 उनका रोचक व्याख्यान २६९,  
 उनका सृष्टि के बारे में सिद्धान्त  
 २७१, उनके तार्किक निष्कर्ष  
 २५६, द्वारा अपने धर्म का  
 समर्थन २७२, पूर्वोक्त बन्धु २५५,  
 ब्राह्मण सन्यासी २५३, महान् पूर्वोक्त  
 २५३, मृदुभाषी हिन्दू सन्यासी  
 २७६, रहस्यमय सज्जन २५६,  
 सज्जन भारतीय २६९, हिन्दू दार्श-  
 निक २५५, हिन्दू सत २५८,  
 हिन्दू सन्यासी २४८, २५२,  
 २६७, २७०, २७२, २७८  
 (देखिए विवेकानन्द)  
 विव कानोन्द २२८ (देखिए विवेकानन्द)  
 विव क्योनन्द २२७ (देखिए विवेकानन्द)  
 विवा कानन्द २३०-३१ (देखिए विवे-  
 कानन्द)  
 विवाह, उसका आदि तत्त्व १०३,

तथा खान-पान २८८, निम्न  
 सस्कारहीन अवस्था २८०, -पद्धति  
 का सूत्रपात १०२, प्रणाली में  
 परिवर्तन और कारण ३०१, वाल्य  
 २५१, ३२२, सस्कार २५१  
 विवि रानान्ड, २२९ (देखिए विवेकानन्द)  
 विवी रानान्ड, स्वामी २३१ (देखिए  
 विवेकानन्द)  
 विवेकचूडामणि ३९२ (पा० टि०)  
 विवेकानन्द, स्वामी २३, २७ (पा०-  
 टि०), ३५-६, ३८, १५३, १६२,  
 १८१, १८३, २३३-३५, २७०,  
 २७८, २८८, २९३-९४, २९६,  
 ३००, ३०३, ३०५, ३०९,  
 अग्नेजी व्यवहारपूर्ण २४६, अत्य-  
 धिक आनन्ददायक २४५, अन्यतम  
 विद्यार्थी २४५, अप्रतिम वक्ता  
 २४४, आकर्षक व्यक्तित्व २३८,  
 आहार सबधी विचार ७८-९०,  
 उच्चतर ब्राह्मणवाद की देन २३४,  
 उच्च शिक्षा-प्राप्त २७०, उनका  
 आश्चर्यजनक भाषण २४५, उनका  
 उच्चारण २४६, उनका धर्म विश्व  
 की तरह व्यापक २४२, उनका बाह्य  
 व्यक्तित्व २४६, २७४, २९१,  
 उनका भाषण २९१, २९६, उनका  
 शब्दचयन २९१, उनका सामान्य  
 व्यवहार १४५, उनका व्यक्तित्व  
 २३२-३३, २३८, उनका स्वदेश  
 के प्रति अनुराग ३२२, ३२८,  
 उनकी अग्नेजी और भाषण-शैली  
 २९०, ३३३, उनकी निरपेक्ष दृष्टि  
 ३५, उनकी वाग्मिता २३८,  
 उनकी विशेषता ३१८, उनकी  
 सगीतमयी वाणी २७७, उनकी  
 सस्कृति २३८, उनकी सत्यवादिता  
 ३२५, उनके ईसाई सबधी विचार  
 २६६, उनके जल सबधी विचार  
 ७९, कुशल वक्तृता २३९,  
 गभीर, अन्तर्दृष्टि २४४, गभीर,

सन्धे श्रीर सुसंस्कृत व्यवहार  
 २७९ चरित्र-गुण ३४५  
 चम्पकीय व्यक्तित्व २३९ चर्क-  
 कुसुमता २४४ ईवी अधिकार  
 द्वारा सिद्ध कृता २३७ निस्पृह  
 संन्यासी ३११ पूज्य ब्राह्मण  
 संन्यासी २९१ पूतात्मा २३४  
 प्रतिभाशाली विद्वान् २४३ प्रसिद्ध  
 संन्यासी २५ बंगाली संन्यासी  
 ३११ ब्राह्मण संन्यासी २३२  
 २७९ ब्राह्मणों में ब्राह्मण २३८  
 भद्र पुरुष २३३ भारतीय संन्यासी  
 २९ भाव और आकृति २३४  
 २४५ मन्त्र पर नाटककार २४५  
 महान् मिष्टा २४४ मोहिनी  
 शक्ति ३५२ मुवा संन्यासी  
 ३११ बिहार में कलाकार २४५  
 विश्वास में आदर्शवादी २४५  
 संगीतमय स्वर २३८ संन्यासी  
 २८९ सर्वश्रेष्ठ कृता २४४  
 सुंदर कृता २३१ ३२ मुक्तिप्राप्त  
 हिन्दू २४१ सुसंस्कृत सज्जन २७  
 'विश्वकामन्द जी के संघ भ' (पुस्तक)  
 ३४८ (पा टि) ३५१  
 'विश्वकामन्द साहित्य' २५१ (पा  
 टि) २६१ (पा टि) ३७८  
 विभिन्नार्थ ३५९ और अर्थ ५९  
 वाद ३८३ वादी २८१  
 विशेष उत्तराधिकार ३ ४  
 विद्येपाधिकार ११९, २२३  
 विश्व-धर्म ११६-श्रेय २२३ ३८४  
 -ब्राह्मण १४६ ३८८ भ्रम १८४  
 -मेला २४४ -मेला सम्मेलन २४५  
 -नौजना और ईश्वर ३३-स्वप्न  
 १८३-८४  
 विश्वबन्धुता सन्धी २१४  
 विश्वामित्र १४८  
 विपरी और विषय ३८४  
 विपुल शैली ६३  
 विष्णु १४६ ३९९ पातनकनी २४८

पुराण १६३  
 विस्कोन्सिन स्टेट बर्नेस २४१  
 श्रीधरपाणि १६९  
 'वीरत्व' ९६  
 श्रीरमोय्या बसुम्भरा ५२  
 श्रीर संन्यासी १७३ १७५  
 मुद्स श्रीमती २२८  
 मुन्दावन-कुंज १२८  
 वेद ७ ५२, १२३ १२७ १३९ १४६,  
 १५२ २ ४ २ ७ २२२, २२७  
 ३ ४-४ ३१२ ३७१-७२, ३८७  
 ३८९ जजबा सुस्त ११ ज्ञान  
 वाक्य २९७ जनका कर्मकाण्ड  
 ३९५ उसका व्यापक प्रभाव  
 १३९ उसका साधन १३९ उसकी  
 कोषणा २१५ उसके विमान  
 १४ उसमें आर्यविद्या के बीज  
 १६४ उसमें विभिन्न धर्म का बीज  
 १६३ शुक १९६ शत्रु के दो  
 शत्रु ३ ३-४ -नामधारी १३९  
 परम तत्व का ज्ञान २१५ परिभाषा  
 १३९ प्रकृत धर्म ११४ प्रचारक  
 १६६ मंत्र १ ९ ३८५ -मूर्ति  
 'मयवान्' १४१ बापी १३७  
 विश्वासी ३८१ सर्वश्री मनु का  
 बिचार २१५ सार्वजनीन धर्म  
 की व्याख्या करनेवाला १३९  
 हिन्दू का प्रामाणिक धर्मग्रन्थ २८१  
 वैदव्यास भववान् ३५९  
 वेदान्त १४६ ३ ५, ३४८ ४९ ३५५,  
 ३६ ३६४ ३६६ ६७ ३९२  
 उसका प्रभाव ३७७ उसकी चारणा  
 सम्मता के विषय में ३९४ उसके  
 कदम तक पहुँचने का उपाय ३९८  
 पाठि मेघ का विरोधी ३७७ दर्शन  
 ३ ३८ ३९१ द्वारा व्यक्तित्व  
 ३९६ -गाठ ३६७ नाम १४  
 समिति ३५४ (पा टि)  
 वेदान्तवादी पक्षार्थ ३९१ ९२  
 वेदान्तवादी धर्म ३४७

वेमली चर्च २२९, प्रायनागृह २२७  
 वैदिक अनुष्ठान ४०३, आचार ५७,  
 उपाय उचित ५६, और बौद्ध धर्म  
 का एक उद्देश्य ५६, देव १२०,  
 धर्म ५६, धर्म का पुनरुद्भूय १२१,  
 धर्म की उत्पत्ति १६२, धर्म तथा  
 बौद्ध धर्म १२०-२२, धर्म  
 तथा समाज की भित्ति ५६, पक्ष  
 १२१, यज्ञधूम १३५, स्तर २२२,  
 हठकारिता १६६  
 वैदान्तिक धर्म ३७५  
 वैद्यनाथ १६८  
 वैयक्तिक अनुभव ३३२, ईश्वर २९९,  
 पवित्रता ३०१, सम्पत्ति ३०२  
 वैराग्य, उसका प्रथम सोपान ३९७,  
 उसका भाव ३९२, और आनन्द-  
 लाभ ३९७, और त्याग १३६,  
 यथार्थ ३३८  
 वैवाहिक जीवन, उसमें नारी का  
 समानाधिकार ३००, और तलाक  
 २५०  
 वैश्य ६३, ६५, १०३, और वाणिज्य  
 ३०४  
 वैष्णव ७४, आधुनिक ७४  
 वैष्णवास्त्र १०३  
 व्यजनाशक्ति ११७  
 व्यक्ति अज्ञ ३९२, अपना निर्माता  
 २९९, उसका अनुसोचन ३२६,  
 उसका निर्माण २२४, उसकी  
 शक्ति २१९, उसके उत्थान से  
 देश का उत्थान २१९, उसके  
 सन्यासी बनने की प्रतिज्ञा २८३,  
 और ईश्वरत्व का ज्ञान २१९,  
 और क्रियाशील विशेषता २२४,  
 और गुरु की जानकारी ३०, और  
 नियम ३१, और मुक्ति की साधना  
 २१९, और विचार का दमन  
 ३१, और व्यक्तित्व २७४, कम  
 शिक्षित २८१, चरित्रवान ३७२,  
 ज्ञानी ३९५, देश-काल के भीतर

नहीं ३७७, धर्म के लिए २१५,  
 धार्मिक का लक्षण ५२, पूजा ३६,  
 वास्तविक ४२, शिक्षित आचार्य  
 २८०

व्यक्तिगत विशेषता २३७  
 व्यक्तित्व और उच्चतर भूमि ३७६,  
 प्रकृत ३७६

'व्यष्टि' ३९६ (पा० टि०)

व्यापारी और कारीगर २५१

व्यायामशाला २१४

व्यावहारिक कार्य २९०, जीवन ९,  
 दर्शन और रामानुज १२३

व्यास ५०, २३७, ३५७, ३५९

ब्रूमन बन्धु २९०-९१, २९३, रेव०  
 वाल्टर २९१, रेव० हिरम २९१

शकर ५६, १२२, १६२, अद्वैतवादी  
 ३५९, उनका आन्दोलन १२३,  
 उनका महाभाष्य १६८ (देखिए  
 शकराचार्य)

शकराचार्य ५५ (पा० टि०), १२२,  
 १६२, २०७ (पा० टि०), और  
 आहार ७२

शक्ति १४६, आसुरी ३६, उद्भावना  
 १५९, उसकी अभिव्यक्ति २१४,  
 उसकी पूजा २६१, उसके अवस्था-  
 न्तर ३३४, और अभीष्ट कार्य  
 ३३२, पूजा, उसका आविर्भाव  
 ९१, -पूजा और यूरोप ९१, -पूजा,  
 कामवासनामय नहीं ९१, -पूजा,  
 कुमारी सघवा ९१, विचार १५९,  
 शारीरिक एव मानसिक ३३२

शक्ति 'शिव-त्ता' २१५

शबरस्वामी १६८

शब्द और भाव ३७२, और रूप ३२  
 शरच्चन्द्र चक्रवर्ती ३४८, ३६३, बाबू  
 ३४८, ३५१, ३६३

शरीर ८, १३, ४०, ५५, ६६, ७०,  
 १०३, १३६, १३८, १४१, १४३,  
 १६९, २०७, २१३, २१५, २१७-

१८, २२३ २५७ २८२-८३ ३६१  
 ३९८ आत्मा का बाह्यकरण २२  
 उसकी गति २९८ उसकी सिखा  
 ३७२ और मन २९९ ३८८  
 भौतिक ३७ मन और आत्मा  
 ६३ मन द्वारा निमित्त ३८९  
 मन द्वारा प्राप्त २९८ मरणाधीन  
 २१५ योग द्वारा स्वस्व ३९७  
 रसा ३३७ विज्ञान ३८२ -सुखि  
 तथा पाश्चात्य और प्राग्भ्य ६८ ९  
 -सम्बन्ध १५४  
 शास्त्रमूर्ति ११९  
 सापेक्षहीन बर्मेन शार्पनिक २८४  
 साक्षराम १६२ सिखा १६२ ६३  
 साक्षराम साहब बहादुर, राय १५३  
 साहित्य १८३ १८८ और प्रेम ३९  
 शास्त्र और धर्म १४२ ज्योतिष  
 ३२३ सूर्य ३ ९, ३२३ भौतिक  
 ३ ९ ३२३ ३३९ सत्य से  
 सात्यर्ष १३९ मत् ५२ रसामन  
 ११७ ३ ९ ३२३ ३३४ ३३६  
 ब्रह्मसृष्टि ३ ९  
 साहज्यही ५९, ९३  
 सिद्धामी २३१ ३२ २३५, २३७-३९,  
 २५ २७ २७९, ३१९ बर्मे  
 महासभा १६१ ३३९ महासभा  
 १६१ वही का विद्व-मेका २४३  
 'विद्वानो सडे हेराण्ड' ३८  
 विद्या औद्योगिक २२८ और अधि  
 कार ११२ बान ३५२ बौद्धिक  
 १४ व्यवहार ५१  
 विद्या मुमुक्षुमाल १४५  
 विद्वत्कला १६९  
 विद्वत्कार ११५  
 विद्य ४९-५ १२६ १४९ २ ७-८  
 विज्ञानस्वरूप ३८९ ज्ञान ४ १  
 विज्ञानकर्ता २४८ धर्मोत्त २ ९  
 विद्वत्कि १६३ पुत्रा १६२  
 विज्ञानन्द स्वामी ३४१ ४२  
 विद्वत् २ ७-८

सूक्त ५  
 सुक्रीति ५२ (पा टि )  
 'सूक्त' ७८  
 सुज्ञानन्द स्वामी ३३९ (पा टि )  
 सुम १९४ बहुरूप २८१ और सपुम  
 २५ १८५, २ २ ३७४ धर्म  
 २८१ प्रत्येक धर्म की नीब से  
 २९४ बचन २८१ संकल्प  
 २८१ सर्वोत्तम ३१  
 सुभाषुम १७३ २  
 सुम्यवाही ३ ५ उनका उदय ३ ४  
 सुकसपियर १६५ कसब ३  
 सेपार्ड एस वार श्रीमती २४५  
 सीतान १२ ३७६  
 सीकबाबा उमा १९  
 'सीलोपरोध' ३७९  
 सेवात्म १ ३  
 समदान-वैराग्य ३३६  
 सदा ३८५ जमीष्ट की ज्ञानस्वकता  
 २५ एवं भक्ति १४३ ३१९  
 और बलिदान २ ३  
 अधिक और सेवक २५१  
 भवन मनन और निर्विष्यासन ३८७  
 ३९८  
 श्री हृदय ४९, ५५  
 श्रीभाष्य ३६६  
 श्री राम २१८ १९  
 श्री रामहृदय बचनानुत् १५५ (पा  
 टि )  
 सुति १३९ -जागम १४४  
 योन एवं नृस सुम १४८  
 खेतारवतरागिनियर ३५१ (पा टि )  
 ३८२ (पा टि )  
 पदचक्र ३६३  
 पठ्यी (बेबी) १४६  
 समीन १९ कला १४३ भाद्रपत्तामा  
 २६७ २६, २७१ निपाति  
 ३ मन्था ३९

‘संगीत मे औरगजेब’ ३२३

समग्रहणी ८०

सथाल १५९, उनके वशज १५८

सन्यास ५५, १२०, १३५, २१७,  
२४१, आश्रम २६६ ३२२, ३५४,  
ग्रहण १५४, धर्म, जीवन के लिए  
आवश्यक नहीं ३६५, व्रत १५४,  
३५२

सन्यासिनी २४९

सन्यासी ७, ११, १४, १७, १५३,  
१७३-७४, २३०, २४९, २६३,  
३१४, ३१६, ३१८-१९, ३५३,  
३६१-६२, ३६४, उनका मूल उद्दे-  
श्य ३५३, उसका अर्थ ७, और  
गृहस्थ १८, और ब्रह्मचारी ३५५,  
३६७, और शिक्षा-रीति १९,  
गैरिक वस्त्रधारी १८, जातिगत  
बधन मुक्त २६६, ढोगी ३२४,  
३२६, तथा धर्म और नियम  
३२२, धर्म २८३, नवदीक्षित ब्रह्म-  
चारी ३६४, निम्नजातीय २६६,  
बगाली ३११, ब्राह्मण २३४,  
भाई १८५, यथार्थ ३२६, विद्वान्  
२३०, विवाह का अनधिकारी  
२८३, शिष्य ३९७, सपत्तिवि-  
हीन ८, सम्प्रदाय १८, सुधार और  
ज्ञान के केन्द्र १८

सयुक्त राज्य २६७, राष्ट्र २३५

सयुक्ता ४०२

सवेग, पशु कोटि की चीज २२०

सस्कृत कुल २९४, पुरातत्त्व १६६,  
पुस्तक २८५, भाषा १३३, २८४,  
३५८, मत्र ३१२, ३४९, शब्द  
४२, साहित्य १४८

सस्था, उसकी अपूर्णता तथा कल्याण  
२१९

सहिता, अथर्ववेद १६२, उनमे भक्ति  
का बीज ३८५, ऋग्वेद १४८,  
-नीति २८१

सतीत्व ९७, ३०३

सत् १९६-९७, २४२, वास्तविक ३६  
सत्य ८, अद्वैत ३३५, उच्चतर ३७,

उसका अन्वेषण २१४, उसका  
प्रकाश २३६, उसकी खोज २३६,  
२५५, उसके कहने का ढग २१४,  
उसके दो भेद १३९, उससे सत्य  
की ओर २५४, और त्याग २१४,  
और मिथ्या २२१, और राष्ट्र  
३७, चिरन्तन १५९, ज्ञान  
३३५-३६, निरपेक्ष ३३१, ३३५,  
परम १७, रूपी जल २४७, वादी  
५०, वास्तविक ३१५, सापेक्ष  
३१३, सारभूत २७३

सत्त्वगुण ५४, १३५-३६, उसका  
अस्तित्व १३६, उसकी जाति  
चिरजीवी १३६, उसकी विद्या  
१३५, और तमोगुण १३६, प्रधान  
ब्राह्मण ५४

सत्सग, उसकी महिमा ३९९, एव  
वार्तालाप ३०९

सद्गुरु ३९८

सनक ५०

सनातन धर्म ३५९, उसका महत्त्व  
१४१, शास्त्र और धर्म १४२  
सन्त कवि ५३ (पा० टि०)

सन्मार्ग और भाषा ३६२

सप्तघातु २०७

सम्यता, अग्नेजी का निर्माण २८९,  
आधुनिक यूरोपीय १३४, आध्या-  
त्मिक या सासारिक ११३,  
इस्लामी १४५, उसका अर्थ  
३९४, उसकी आदि मिति १०५,  
उसके भय से अनाचार ७०,  
एव सस्कृति १५९, पारसी ९२,  
राष्ट्रीय १६

समभाव ३३४

समाज, उसके अनुसार विभिन्न मत  
३२७, और गुरु का उदय १६०,  
और सिद्धान्त ३१, देश और  
काल ३२७, वादी ३४७

समाधि २१५, ३८४ अबस्था ३८७  
 -तत्त्व ३९१  
 समानता और भाव्यभाव २८८  
 सम्पत्ति और वैभव १८७  
 सम्प्रदाय आपुनिक संस्कृत १६६  
 बियोनोकी १४९ इतिहासी ३८१  
 बीड १६३ रोमन कैथोलिक  
 २७२ मीप्यव १६३  
 सम्मोहन-बिबा ३८८-८९  
 घर बिस्मियम हंटर २८४  
 घरस्वामी ११४  
 सर्वनामक सिद्धान्त १८  
 सर्प भ्रम ३३५  
 सर्वधर्मसमन्वय ३५८  
 'सर्वेश्वरबाब का युग' ३६  
 सहस्ररजनी चरित्र' २८५  
 सहिष्णुता २३७ उसके लिए युक्ति  
 २४६ और प्रेम २४६  
 शास्त्र दर्शन ३८२ मत ३८२  
 साइबेरिया ४९  
 सांख्यिक अबस्था ५४  
 साधन-यन ३८५ प्रजाती ३९५  
 मजल ३४८ ३५२, ३६१  
 -मार्ग ३८५ -सोपान ३४५  
 साधना प्रणाली ३६१ ३८१ अनुष्ठान  
 ३६१ राज्य ३४५  
 साधु-दर्शन ३३ -संय ३३८ -सम्यासी  
 १५ ३१५ ३२३ ३२६ ३८१  
 घानेट १८१  
 धार्मिक ज्ञान ३९६ ९७  
 सामाजिक नारी और बिसा १५४  
 'सामाजिक प्रगति' २२१  
 'सामाजिक विज्ञान संघ' २३१  
 सामाजिक विभाजन २२७ स्वाधीनता  
 ५८  
 सामिप और निरासिप भोजन ७३  
 साम्यवाद ३९१  
 साम्राज्यवादी ४  
 सारा ह्यूमट २७९  
 'सर्वोत्तर विचारस' ३२

सामेस इवनिम म्यूज २२७ २३  
 'सामोमन के गीत २६२  
 'साहित्य-कल्पद्रुम' ३४५  
 सिद्धम ३३९, ३४१  
 सिंहनी गीत २३५  
 सिक्न्दर ८७ सम्राट् ३३  
 सिक्न्दरशाह १३४  
 सिक्न्दरियानिवासी ३८२  
 सिक्का साम्राज्य १२४  
 सिडियन (scythian) १२१  
 सिद्ध ३७५ 'जिनों १५७  
 सिद्धि-नाम १५२  
 सिद्धुका २८५  
 सिद्धु १२, १ ५ देव १ ७  
 सियामसह ३३९  
 सीता २१८ १९ देवी ७४ राम १८३  
 सुख अनन्त ३७६ और भेषसू २८  
 -सुख ३१ १७७ २७२ २ ९  
 -मोम ५  
 सुधार-आन्दोलन २९२ और सुधि  
 का आचार २४७ बाबी १२४  
 सुबोधानन्द स्वामी ३५२  
 सुभाषा ४९  
 सूर्य १४१ १४६ १८ २ ३४  
 २ ९, २५७ २६५ ३३७ ३५१  
 ३८४ ३८८  
 सृष्टि २ ८ ३८ अभावि और  
 अनन्त २९७ उसका अर्थ २९८  
 उसका आवि नहीं ३८ और  
 मनुष्य ३३ -मान १९६ मनुष्य  
 समाज की १ ५ रचना २७१  
 रचनावाद का सिद्धान्त ३३-४  
 रहस्य ३३७ व्यक्त ३९७ समाज  
 की देव-देव से १ ३  
 संन केरावपम् १४९, १५३ मरेकनाथ  
 ३४ ३६४  
 सेनेटर पामर २७  
 सेन्ट हेडेना ९९  
 सेन्ट्रल चर्च २४३ वैठिस्ट चर्च  
 २२८ २९



सेमेटिक ३००  
 'सेल मूल तातार' १०६  
 सेलिबिस ४९  
 सेलेबीज ६३  
 सेवर हाल २८२  
 सेवा, निष्काम १९२  
 सेवियर ३४२, श्रीमती ३४०, ३४२  
 सैगिना २७०-७१, इवनिंग न्यूज  
 २७२, करियर हेरल्ड २७४  
 सैन फ्रांसिस्को ३५४ (पा० टि०),  
 ४०१ (पा० टि०)  
 सैरागोटा २३१  
 सोमलता १६२  
 'सोऽह' २९२  
 सौरजगत् ३३७  
 स्कम्भ १६२-६३  
 स्कॉटलैण्ड ९४  
 स्टर्डी, ई० टी० ३५५  
 स्टार-रगमच ३६६  
 स्टुअर्ट खानदान ९४, मिल ३३५  
 स्टर्डर्ड यूनियन २८६  
 स्टैसबर्ग जिला ९७  
 स्टोइक दर्शन ३८१  
 'स्ट्रियेटर डेली प्री प्रेस' २४०  
 स्त्री और पुरुष २५७, और बौद्धिकता  
 २१६, -पूजा ९०, सबधी आचार  
 और विभिन्न देश ९६,  
 स्थिरा माता २०३ (पा० टि०)  
 स्नान और दाक्षिणात्य ७०, और  
 पार्श्वत्य, प्राच्य मे अतर ६९-७०  
 स्नोडेन, आर० वी० कर्नेल २४५  
 स्पेन ४, ६९, ८१, ९१, २३५, उसकी  
 समृद्धि २३६, देश १०८, ११३,  
 वाले १०१, २७३  
 स्पेनी लोग २७३  
 स्पेन्सर ३०९  
 स्मिथ कॉलेज २७८, पत्रिका २७८  
 'स्रष्टा एव सर्वाधिनायक' १२०  
 'स्टेटन लिमेयम व्यूरो' २५०  
 स्वतंत्रता, उच्चतम ३१, सच्चि ०२२

स्वधर्म, उसका अनुसरण ५२, उसकी  
 रक्षा ५६  
 स्वयंवर ४०१, उसकी प्रथा १०२,  
 स्वर्ग १२, २३, ६९, १३४, १७४,  
 १८०, २१४, २५८, २६५, २८५,  
 ३७८, ३८६, उसकी कल्पना २५,  
 और देवदूत २५, और सुख की  
 कल्पना २५  
 स्वर्णिम नियम २५८-५९  
 स्वाधीनता ९९, आध्यात्मिक ५९,  
 राजनीतिक ५८, ६०, समानता  
 और बहुत्व ९४, सामाजिक ५८-९  
 स्वेडन ८१, २३९  
 स्वेडनबर्ग २५८  
 हटर, सर विलियम २८४, २८६  
 हक और अधिकार २२४  
 हक्सले ३०९, ३१२  
 हज़रत ईसा १५४, मूसा १५७  
 हटेन्टॉट १५९  
 हठधर्मी और जडता २९४  
 हदीस ११३  
 हनुमान १४३, २१९  
 हब्बी १५९  
 हरमोहन बाबू ३४८-४९  
 हरिद्वार ७८  
 हरिनाम ५४, उसका जप ५२,  
 -सकीर्तन-दल ३४०  
 हरिपद मित्र ३०९ (पा० टि०)  
 हसन-हुसैन १४५  
 हार्टफोर्ड २३२  
 हार्डफोर्ड ३७८  
 हार्वर्ड किमसन २८२, विश्वविद्यालय  
 ३८०  
 'हार्वर्ड रिलिजस यूनियन' २८२  
 'हॉल ऑफ कोलम्बस' २३२  
 हॉलैण्ड ८५  
 'हिदन' ३९४  
 हिन्दुस्तान २३२, और देशवामी  
 ब्राह्मण २५०

विद्वामिष २ ४ २९१  
 विश्वेश्वर १५१  
 विषय और विषयी २३ ओष १३४  
 विष्णुस्वामी ३६६ (पा टि)  
 वीणापाणि ३२७  
 वृन्दावन ३६३  
 वडूट हाल १५  
 वेद्य राजा २१७  
 वेद्य २५, ४१ ६३४ ११३ ११७  
 १३२ २ १ (पा टि) २२५,  
 २४१ २८४ २८९ ३६ ३६४  
 ३६९ ३७२ ३७९ अम्बुर्मु ३७  
 अनादि अनन्त १५१ ३६९  
 वर्षर्ष ३६१ (पा टि) आम्पा  
 रिमक जीवत के नियम ३६९  
 ईश्वर का प्रामाणिक बचन १६  
 उसका अर्थ ८९ उसका प्रताप  
 १६ उसकी माय्यता ४३ ऋक  
 ११४ २२१ ३६१ (पा टि) और  
 आत्मा संबंधी विचार १४९ और  
 कट्टर वैदिक मार्गी १६ और  
 कर्मकाण्ड का आधार २८९ और  
 बंदबासी ३६५ और मारुत ९२  
 और मन्त्र २८९ और हिन्दू धर्म  
 १४९ दो संश में विभक्त  
 ६३ -याठी ९ प्राचीनतम ग्रन्थ  
 १६ मंत्र ३६१ महान् ग्रन्थ ९  
 माध्यम से सत्य का उद्घोष १५१  
 मनु ६३ ३६१ (पा टि) ३६९  
 वेदान्त ३६३ (पा टि) साक्षात्  
 १६ हिन्दू का आदि धर्मग्रन्थ ६३  
 वेद का अर्थ ६३  
 वेदान्त ६४ ७२ ८१ ८९, ९१ २  
 १ ४-५, ११७ १५९, २५४  
 अभिमत ८ आद्यावादी ७३  
 उद्यम का इतिहास १५-५१  
 उद्योग १७ उसका अस्वामित्व  
 ८ उसका ईश्वर ८७ १८८  
 उसका पुत्र ७६ उसका दादा  
 ११९ उसका ध्येय ८ उसका

निर्मीक सिद्धान्त ९६ उसका  
 प्रतिपादन ११८ उसका प्रतिपाद  
 ८३ उसका रूप ७८-८० उसका  
 विचार ८१ उसका समाधान  
 १९८ उसकी अपेक्षा १५ उसकी  
 ईश्वर-कल्पना ६७ (पा टि)  
 उसकी प्रत्य पर अनास्था ७९  
 ऐतिहासिक व्यावहारिक परिणाम  
 ११७-२१ और आस्तिक दर्शन  
 ६४-५ और उसका प्रचार ७३  
 ४ और ग्रंथ ७९ और ग्रंथ संबंधी  
 विचार ७९ और बन्धन ९७  
 और भारत ८ और मुक्ति-सौपना  
 ११६ और व्यक्ति-विशेष की  
 धारणा ७९ और समस्त धर्म २५  
 और सांख्य ६७ (पा टि)  
 और सामाजिक आकांक्षा ३ १  
 कठिनाई ८ कथन १९८ केशरी  
 ३८ जाति-भेद-हीन ८९ दर्शन  
 ६३ ७१ ७७ ११४ ११७-१८  
 १५ १७ ३६४ (पा टि)  
 ३६७ ३७२ दर्शन और निराशा  
 बाद ७२ दर्शन और यमार्थ आसा  
 बाद ७२ दादा आपुनिक संसार  
 पर १५ दृष्टि १ द्वारा  
 उठाया प्रश्न ८५ द्वारा अनन्त  
 शीघ्र ईश्वर का उपदेश ७९ द्वारा  
 पाप पापी की स्थापना ८१  
 धर्म ३६५ धारणा ८ निराशा  
 वादी ७३ प्रतिपादित ईश्वर ८९  
 प्राचीनतम दर्शन ९३ १२ मत्  
 ६५ ७१ १ ३ महता ११८  
 राष्ट्र का धर्म ८ सद्य ८४  
 विख्यात सूत्र ११९ विधिष्  
 सिद्धान्त ११९ विशेषता ८९,  
 ११७ १५२ व्यावहारिक पक्ष  
 १ २ व्याख्याकार का उद्यम  
 १५१ वाक्यिक अर्थ ६३ सिद्धा  
 ७४ ८२ ९३ संघर्ष के लिए  
 स्थान १६५ सम्प्रदाय-रहित ८९

- सागर ७६, सिद्धान्त ९७, २९६, ३६७, सिद्धि ९२, सूत्र का भाष्य ३७० (पा० टि०), हिन्दू का धर्म-ग्रथ ६४
- वेदान्त एण्ड दि वेस्ट १३७ (पा० टि०)
- वेदान्ती, अद्वैत ६७, आधुनिक १७१, उत्साही २५४, उनका उपदेश ९७, उनका कथन १०८, उनका मत ६७, ७१, उनकी सहिष्णुता २९५, और आध्यात्मिक विशेषाधिकार १००, और उनकी नीति १२७, और सन्यासी २८७, और साख्य मत ६६-७, नैतिकता १०१-२, मस्तिष्क १०९, विचार ६८, सच्चा ७५, सत् ६८
- वेनिस, अर्वाचीन २०८
- वैज्ञानिक शिक्षा ३५८
- वैतरणी २४१ (पा० टि०) (देखिए लेयी नदी)
- वैदिक ऋषि ३७१, कर्मकाण्ड ६३ (पा० टि०), ३६४, काल २०५-६, क्रियाकाण्ड ३६२ (पा० टि०), ज्यामिति का उद्भव १३०, धर्म १६०, २७२, ३७२, नाम २८६, पशुवलि ३५४, पुरोहित २०१, भाषा १६०, मन्त्र २०१ (पा० टि०), मार्गी १६०, यज्ञ १८९, यज्ञ-वेदी १३०, विचार ६४, विद्या ३६०, सत्य ८९, साहित्य ६३ (पा० टि०), ३५५, साहित्यरूपी अरण्य २५६
- वैधी भक्ति ३६
- वैभव-विलास २९८
- वैरागी २६३, ३६७ (पा० टि०)
- वैशेषिक ३६२ (पा० टि०), दर्शन ६५
- वैश्य २०२, २०९-१०, ३६४, उनका उत्थान २१८, उनका प्रभुत्व-काल २१८, उसका सूदरूपी कोडा २१८, उसकी विशेषता २१८, और
- इग्लैण्ड २०९, और प्रजा २२२, और ब्राह्मण शक्ति २०९; और राजशक्ति २१८, कुल २२१, शक्ति २०९, २१७
- वैष्णव साधक ३६७ (पा० टि०)
- व्यक्ति, अज्ञ ३७०, -उपासना ४६, उसका मूल्यांकन १८५, उसका सत्य और उद्देश्य ३५१, उसकी असफलता १९५, उसकी असहायता १२३, उसकी प्रतीक्षा ३००, और अनासक्ति १९३, और आप्त विषय ३६९, और उच्च सदेश ३००, और जीवन सबधी दृष्टि १८४, और प्रतिक्रिया १६८, और भाव १८५, कल्पना और शून्य ३११, विकास-प्रक्रिया १६१, व्यवहारकुशल १८४
- व्यक्तित्व, अपरिणामी, अपरिवर्तनीय ७६, (देखिए परमात्मा), उसका अर्थ ७५, १४१, उसका पुनर्विकास १९३, -चारी १४१, भाव ८३, यथार्थ ७६, -वाद ८४, सुरक्षा के लिए सघर्ष १४१
- व्याकुलता और प्रेम २१
- व्याख्या, उसके चार प्रकार ६४ (पा० टि०)
- व्यापारी, जीवन, धर्म, प्यार, शील के १७८
- व्यायामशाला, ससाररूपी १८७
- व्यावहारिक जीवन, उसका महत्त्व २६२, उसकी विशेषता २६१, उसमें आदर्श का अस्तित्व २६१, और आदर्श का फल २६१, और आदर्श की शक्ति २६१, और मतवाद २६२
- व्यावहारिक ज्ञान क्षेत्र ३७९, योग २६५
- व्यास ६४-५, वीवर २२१, सूत्र ६४, ३६२-६३, ३७० (देखिए व्यास देव)
- व्यास देव ३६४ (पा० टि०)

फिर भी मैं जाने की मरसक बेप्टा कर रहा हूँ हास्यकि तुम तो जानती हो कि एक महीना जाने में और एक महीना वापस जाने में ही कम बाते हैं और वह भी केवल चंद दिनों के आवास के लिए। और विन्ता न करो मैं पूरी कोशिश कर रहा हूँ। मेरे अत्यधिक गिरे हुए स्वास्थ्य और कुछ कानूनी मामलों आदि के कारण थोड़ी देर अवस्य हो सकती है।

बिरस्तेहाबद  
दिवेकानन्द

(कुमारी जोसेफिन मैक्सवॉड को लिखित)

मठ, बम्बई हाबड़ा  
बंगाल भारत

प्रिय 'जो'

तुम्हारे जिस महान् आन से मैं आनी हूँ उसे चुकाने की कल्पना तक मैं नहीं कर सकता। तुम कहीं भी क्यों न रहो मेरी मंगसकामना करना तुम कभी भी नहीं भूलती हो। और तुम्ही एकमात्र ऐसी ही जो इन तमाम दुमेच्छाओं से ऊँची उठकर मेरा समस्त बोझ अपने ऊपर लेती हो तथा मेरे सब प्रकार के अनुचित आचरणों को सहन करती हो।

तुम्हारे आपानी मित्र ने बहुत ही ब्याभूतापूर्ण व्यवहार किया है किन्तु मेरा स्वास्थ्य इतना खराब है कि मुझे यह बर है कि आपान जाने का समय मैं नहीं निकाल सकूँगा। कम से कम केवल अपने गुनग्राही मित्रों के समाचार जानने के लिए मुझे एक बार बम्बई प्रेसीडेन्सी हीकर मुजरना पड़ेगा।

इसके अलावा आपान यातायात में भी दो महीने बीच कार्यके केवल एक महीना बहाँ पर रह सकूँगा कार्य करने के लिए इतना सीमित समय पर्याप्त नहीं है— तुम्हारा क्या मत है? अतः तुम्हारे आपानी मित्र ने मेरे आर्यव्यय के लिए जो बत भेजा है उसे तुम वापस कर देना सन्म्वर में जब तुम भारत आँटोपी उस समय मैं उसे चुका दूँगा।

आसाम में मुझ पर पुनः मेरे रोग का मयातिक आक्रमण हुआ था जसमें मैं स्वस्थ हो रहा हूँ। बम्बई के लोग मेरी प्रतीक्षा कर हुएन हो चुके हैं अब की बार समस्त दिक्कत जाना है।

इन सब कारणों के होते हुए भी यदि तुम्हारा यह अभिप्राय हो कि मेरे लिए जाना उचित है, तो तुम्हारा पत्र मिलते ही मैं जाना हो जाऊँगा।

लन्दन से श्रीमती लेगेट ने एक पत्र लिखकर यह जानना चाहा है कि उनके भेजे हुए ३०० पौण्ड मुझे प्राप्त हुए हैं अथवा नहीं। उनका भेजा हुआ धन यथा-समय मुझे प्राप्त हुआ है तथा पूर्व निर्देश के अनुसार एक सप्ताह अथवा उससे भी पहले 'मोनरो एण्ड कम्पनी, पेरिस'— इस पते पर मैंने उनको सूचित कर दिया है।

उनका जो अन्तिम पत्र मुझे प्राप्त हुआ है, उस लिफाफे को न जाने किसने अत्यन्त भद्दे तरीके से फाड़ दिया है। भारतीय डाक विभाग मेरे पत्रों को थोड़ी शिष्टता के साथ खोलने का प्रयास भी नहीं करता।

तुम्हारा चिरस्नेहशील,  
विवेकानन्द

(कुमारी मेरी हेल को लिखित)

मठ,

५ जुलाई, १९०१

प्रिय मेरी,

मैं तुम्हारे लम्बे प्यारे पत्र के लिए अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, क्योंकि इस समय मुझे किसी ऐसे ही पत्र की जरूरत थी, जो मेरे मन को थोड़ा प्रोत्साहन दे सके। मेरा स्वास्थ्य बहुत खराब रहा है और अभी है भी। मैं केवल कुछ दिनों के लिए सँभल जाता हूँ, इसके बाद फिर ढह पडना जैसे अनिवार्य हो जाता है। खैर, इस रोग की प्रकृति ही ऐसी है।

काफी पहले मैं पूर्वी बंगाल और आसाम में भ्रमण करता रहा हूँ। आसाम काश्मीर के बाद भारत का सबसे सुन्दर प्रदेश है, लेकिन साथ ही बहुत अस्वास्थ्यकर भी है। पर्वतों और गिरि शृंखलाओं में चक्कर काटती हुई विशाल ब्रह्मपुत्र— जिसके बीच बीच में अनेक द्वीप हैं, बस देखने ही लायक है।

तुम तो जानती ही हो कि मेरा देश नद-नदियों का देश है। किन्तु इसके पूर्व इसका वास्तविक अर्थ मैं नहीं जानता था। पूर्वी बंगाल की नदियाँ नदियाँ नहीं, मीठे पानी के घुमडते हुए सागर हैं, और वे इतनी लम्बी हैं कि स्टीमर उनमें हफ्तों तक लगातार चलते रहते हैं। कुमारी मैक्लिऑड जापान में हैं। वे उस देश पर मुग्ध हैं और मुझसे वहाँ आने को कहा है, लेकिन मेरा स्वास्थ्य इतनी लम्बी समुद्र-यात्रा गवारा नहीं कर सकता, अतः मैंने इकार कर दिया है। इसके पहले मैं जापान देख भी चुका हूँ।

तो तुम बेनिस का आनन्द से रही हो! यह बूढ़ पुत्र्य (नगर) अबस्य ही मजेदार होमा—क्योंकि साइलोक केवल बेनिस में ही हो सकता था है न?

मुझ अत्यंत खुशी है कि वीम इस वर्ष तुम्हारे साथ ही है। उत्तर के अपने नीरस अनुभव के बाद यूरोप में उसे आनन्द आ रहा होया। इधर मैंने कोई रोषक मित्र नहीं बनाया और बिन पुराने मित्रों को तुम जानती हो वे प्रायः सबके सब मर चुके हैं—सेठड़ी के राजा भी। उनकी मृत्यु सिक्न्दरा में सम्राट् अकबर की समाधि के एक ठंढे मीनार से गिर पड़ने से हुई। वे अपने लर्चों से आगरे में इस महान् प्राचीन वास्तु-सिख्य के समूने की मरम्मत करवा रहे थे कि एक दिन उसका निरीक्षण करते समय उनका पैर फिसला और वे सैकड़ों फुट नीचे गिर गये। इस प्रकार तुम देखती हो न कि प्राचीन के प्रति हमारा उत्साह ही कमी कमी हमारे दुःख का कारण बनता है। इसलिए मेरी ध्यान रहे कहीं तुम अपनी भारतीय प्राचीन वस्तुओं के प्रति अत्यधिक उत्साहशील न हो जाना।

मिसन के प्रतीक-चिह्न में सर्प रहस्यवाह (योग) का प्रतीक है सूर्य ज्ञान का उद्देलित सागर कर्म का कमल भक्ति का और हंस परमात्मा का जो इन सबके मध्य में स्थित है।

वीम और मैं को प्यार कहना।

सन्नेह,  
विवेकानन्द

पुनरुप—हर समय शरीर से अबस्य रहने के कारण ही यह छोटा पत्र सिखाना पड़ रहा है।

(भगिनी क्रिश्चन को लिखित)

प्रिय क्रिश्चन

बेल्गुड मठ,

९ जुलाई, १९११

कमी कमी किसी कार्य के आदेश से मैं विवश ही उठता हूँ। आज मैं बिन्दने के लसे से मस्त हूँ। इसलिए मैं सबसे पहले तुमको कुछ पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। मेरे स्नायु बुर्बल हैं—ऐसी मेरी बदनामी है। अत्यन्त सामान्य कारण से ही मैं व्याकुल हो उठता हूँ। किन्तु प्रिय क्रिश्चन मुझे ऐसा मठीव होता है कि इस विषय मे तुम भी मुझसे कम नहीं हो। हमारे यहाँ के एक कवि ने लिखा है जो सकता है कि पर्वत भी जड़ने लगे जिन मे भी धीतकटा उत्पन्न हो जाय किन्तु महान् व्यक्ति के हृदय में स्थित महान् भाव कभी हर नहीं होगा। मैं सामान्य

व्यक्ति हूँ, अत्यन्त ही नामान्य, किन्तु मैं यह जानता हूँ कि तुम महान् हो, तुम्हारी महत्ता पर मदा मेरा विश्वास है। अन्यान्य विषयों में भले ही मुझे चिन्तित होना पड़े, किन्तु तुम्हारे बारे में मुझे तनिक भी दुश्चिन्ता नहीं है।

जगज्जननी के चरणों में मैं तुम्हें माँप चुका हूँ। वे ही तुम्हारी मदा रक्षा करेगी एवं माग दिगाती रहेगी। मैं यह निश्चित रूप में जानता हूँ कि कोई भी अनिष्ट तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकता—किन्ती प्रकार की विघ्न-त्रावाएँ क्षण भर के लिए भी तुम्हें दवा नहीं सकती। इति।

भगवदाश्रित,  
विवेकानन्द

(कुमारी जोसेफिन मैविलऑड को लिखित)

१४ जुलाई, १९०१

प्रिय 'जो',

यह जानकर कि बोया कलकत्ता आ रहे हैं, मैं सतत प्रमत्न हूँ। उन्हें शीघ्र मठ भेज दो। मैं यहाँ रहूँगा। यदि सम्भव हुआ, तो मैं उन्हें यहाँ कुछ दिन रखूँगा और तब उन्हें फिर नेपाल जाने दूँगा।

आपका,  
विवेकानन्द

(कुमारी मेरी हेल को लिखित)

बेलूड मठ,  
हावडा, बगाल,  
२७ अगस्त, १९०१

प्रिय मेरी,

मैं मनाता हूँ कि मेरा स्वास्थ्य तुम्हारी आशा के अनुरूप हो जाय, कम से कम इतना अच्छा कि तुम्हें एक लम्बा पत्र ही लिख सकूँ। पर यथार्थ यह है कि वह दिन-प्रतिदिन गिरता ही जा रहा है, इसके अतिरिक्त भी अनेक परेशानियाँ और उलझनें साथ लगी हैं। मैंने तो अब उन पर ध्यान देना ही छोड़ दिया है।

स्विट्ज़रलैण्ड के अपने सुन्दर काष्ठगृह में सुख-स्वास्थ्य से परिपूर्ण रहो, यही मेरी कामना है। यदाकदा स्विट्ज़रलैण्ड अथवा अन्य स्थानों की प्राचीन वस्तुओं का हल्का अध्ययन—निरीक्षण करते रहने से चीजों का आनन्द थोड़ा और भी बढ़ जायगा। मैं बहुत प्रसन्न हूँ कि तुम पहाड़ों की मुक्त-वायु में साँस

स रही हो। लेकिन बुद्ध है कि तैम पूर्णतः स्वयम् नहीं है। और, इसमें कोई चिन्ता की बात नहीं उसकी काठी जैसे ही बड़ी अच्छी है।

स्त्रियों का चरित्र और पुरुषों का भाव्य इन्हें स्वयं ईश्वर भी नहीं जानता मनुष्य की ती बात ही क्या! चाहे यह मेरा स्त्रियोचित स्वभाव ही मान लिया जाय पर इस क्षण तो मेरे मन में यही आता है कि काय तुम्हारे मीतर पुरुषत्व का बोझ अंधा होता। ओह मेरी! तुम्हारी बुद्धि स्वास्व्य सुन्दरता सब उस एक आबक्ष्यक तरल के बिना व्यर्थ जा रहे हैं और वह है—स्वमित्तत्व की प्रतिष्ठा! तुम्हारा धर्म तुम्हारी ठेकी सब बचवास है केवल मजाक। अधिक से अधिक तुम एक बोडिम-स्कूल की छोटी हो—रीढ़हीन! बिस्तुल ही रीढ़हीन!

आह! यह जीवनपर्यन्त बुराई को रास्ता सुझाते रहने का व्यापार! यह मरपत कठोर है मत्पत क्रूर! पर मैं असह्यम हूँ इसके भाव। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ मेरी ईमानदारी से सच्चाई से मैं तुम्हें प्रिय समनेवासी बातों से छस नहीं सकता। न ही यह मेरे बच का रोग है।

फिर मैं एक मरणोन्मुख व्यक्ति हूँ मेरे पास छस करने के लिए समय नहीं। अब ऐ छसकी जाग! अब मैं तुमसे ऐसे पत्रों की आशा करता हूँ जिनमें बड़ी भार जैसी ठेकी हो उसकी ठेकी बनाये रखो मुझे पर्याप्त रूप से आपत्ति की आबक्ष्यकता है।

मुझे मैकबीग परिवार के विषय में अब ब महीं ये कोई समाचार नहीं मिला। श्रीमती बुद्ध या निवेदिता से कोई सीबा पत्र-व्यवहार न होने पर भी श्रीमती सेविमर से मुझ बराबर उनके विषय में सूचना मिलती रही है और अब सुनता हूँ कि वे सब नाबों में श्रीमती बुद्ध के बतियि हैं।

मुझे नहीं माकूम कि निवेदिता भारत कब वापस जायेगी या कभी जायेगी भी या नहीं।

एक तरह से मैं एक अबकामप्राप्त व्यक्ति हूँ आन्धालन कैसा बल रहा है इमर्क कोई बहुत जानकारी मैं नहीं रखता। बुराई आन्धोलन का स्वयम् भी बडा होता जा रहा है और एक आबपी के लिए उसके विषय में सूक्ष्मतम जानकारी रखना बर्लमब है।

जाने-जाने सोने और रोप समय में शरीर की शुभूपा करने के सिबा मैं और कुछ नहीं करता। बिबा मेरी। आशा है इस जीवन में कही न कही हम तुम अबक्ष्य मिलेंगे। और न भी मिलें तो भी तुम्हारे इस माई का प्यार तो सरा तुम पर रहेगा ही।



(श्री एम० एन० वनर्जी को लिखित)

मठ, वेल्लूड, हावडा,  
२९ अगस्त, १९०१

स्नेहाशी,

मेरा शरीर क्रमशः स्वस्थ होता जा रहा है, यद्यपि अभी तक मैं अत्यन्त ही दुर्बल हूँ। 'शुगर' अथवा 'अलबुमिन' की कोई शिकायत नहीं है, यह देखकर सब कोई चकित हैं। वर्तमान गडवडी का एकमात्र कारण स्नायु सन्वन्धी दुर्बलता है। अस्तु, धीरे धीरे मैं ठीक होता जा रहा हूँ।

पूजनीया माता जी ने कृपापूर्वक जो प्रस्ताव किया है, उससे मैं विशेष कृतार्थ हूँ। किन्तु मठ के लोगो का कहना है कि नीलाम्बर बाबू के मकान, यहाँ तक कि समूचे वेल्लूड गाँव में भी अभी तथा आगामी महीने में 'मलेरिया' छा जाता है। इसके अलावा किराया भी अत्यधिक है। अतः पूजनीया माता जी यदि आना चाहे, तो मेरी राय यही है कि कलकत्ते में एक छोटे से मकान की व्यवस्था की जाय। यदि हो सका, तो मैं भी कलकत्ते में जाकर ही रहूँगा, क्योंकि वर्तमान शारीरिक दुर्बलता में पुनः मलेरिया का आक्रमण होना कतई वाञ्छनीय नहीं है। मैंने अभी इस बारे में सारदानन्द या ब्रह्मानन्द की राय नहीं ली है। वे दोनों ही कलकत्ते में हैं। ये दो मास कलकत्ता अपेक्षाकृत स्वास्थ्यप्रद है और कम खर्चीला भी है।

मूल बात यह है कि प्रभु उन्हें जैसे चलाये, वैसे ही चलना उचित है। हमलोग केवल सलाह दे सकते हैं और वह सलाह भी एकदम निरर्थक ही है। यदि रहने के लिए उन्हें नीलाम्बर बाबू का मकान ही पसन्द हो, तो किराया आदि पहले से ही ठीक कर रखना। माता जी की इच्छा पूर्ण हो—मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ।

मेरा हार्दिक स्नेह तथा शुभकामना जानना।

सदा प्रभुचरणाश्रित,  
विवेकानन्द

(श्री एम० एन० वनर्जी को लिखित)

मठ, वेल्लूड, हावडा,  
७ सितम्बर, १९०१

स्नेहाशी,

ब्रह्मानन्द तथा अन्यान्य सभी की राय जानना आवश्यक प्रतीक होने के कारण एव उन लोगो के कलकत्ते में रहने के कारण तुम्हारे अन्तिम पत्र के जवाब देने में

पूरे एक वर्ष के लिए मकान लेने का विषय सोच-समझकर निश्चित करना होगा। हमर जैसे इस महीने बेसूझ में 'मलेरिया' होने का डर है उसी प्रकार कलकत्ते में भी 'प्लेग' का भय है। फिर भी यदि कोई गाँव के भीतरी भाग में न जाने के प्रति सचेत रहे तो वह 'मलेरिया' से बच सकता है क्योंकि नदी के किनारे पर 'मलेरिया' बिल्कुल नहीं है। अभी तक नदी के किनारे पर 'प्लेग' नहीं फैला है और 'प्लेग' के आक्रमण के समय इस गाँव में उपस्थित सभी स्वतन्त्र मारवाड़ियों से डर जाते हैं।

इसके अतिरिक्त अधिक से अधिक तुम कितना किराया दे सकते हो उसका उत्सेस करना आवश्यक है। तब कहीं हम तबनुसार मकान की तलाश कर सकते हैं। और दूसरा उपाय यह है कि कलकत्ते का मकान से लिया जाय।

मैं स्वयं ही मानो कलकत्ते में बिदेही बन चुका हूँ। किन्तु और लोग तुम्हारी पसन्द के अनुसार मकान की तलाश कर देंगे। जितना धीम हो सके निम्नलिखित दोनों विषयों में तुम्हारा विचार बात होते ही हम लोग तुम्हारे लिए मकान तलाश कर देंगे। (१) पूरनीया माता भी बेसूझ रहना चाहती है बचना कलकत्ते में? (२) यदि कलकत्ता रहना पसन्द हो तो कहीं तक किराया देना अभीष्ट है एवं किस मुहत्ते में रहना जाके लिए उपयुक्त होगा? तुम्हारा जवाब मिलते ही धीम यह कार्य सम्पन्न हो जायगा।

मेरा हार्दिक स्नेह तथा शुभकामना जानना।

भवदीय  
बिबेकानन्द

पुनश्च—हम लोग यहाँ पर कुछसपूर्वक हैं। मोठी एक सप्ताह तक कलकत्ते में रहकर वापस आ चुका है। बत तीन दिनों से यहाँ पर दिन रात बर्षा हो रही है। हमारी दो गावों के बच्चे हुए हैं।

वि

(भगिनी निवेदिता को लिखित)

मठ, बेसूझ  
७ सितम्बर, १९११

प्रिय निवेदिता

हम सभी तात्कालिक आशय में मग्न रहते हैं—शासक इस कार्य में हब उठी रूप से संलग्न है। मैं कार्य क आशय की दृष्टि से गाना चारुता हूँ किन्तु कोई ऐसी चटना बट जाती है जिसके फलस्वरूप वह स्वयं ही उठन उठता है और

इसीलिए तुम यह देख रही हो कि चिन्तन, स्मरण, लेखन—और भी न जाने कितना सब किया जा रहा है।

वर्षा के वारे मे कहना पड़ेगा कि अब पूरे खोर से आक्रमण शुरू हो गया है, दिन-रात प्रवल वेग से जल बरस रहा है, जहाँ देखो वहाँ वर्षा ही वर्षा है। नदियाँ बढ़कर अपने दोनो तटो को प्लावित कर रही हैं, तालाब, सरोवर सभी जल से परिपूर्ण हो उठे हैं।

वर्षा होने पर मठ के अन्दर जो जल रुक जाता है, उसे निकालने के लिए एक गहरी नाली खोदी जा रही है। इस कार्य मे कुछ हाथ बँटाकर अभी अभी मैं लौट रहा हूँ। किसी किसी स्थल पर कई फुट तक जल भर जाता है। मेरा विशालकाय सारस तथा हस-हसिनी सभी पूर्ण आनन्द मे विभोर हैं। मेरा पाला हुआ 'कृष्ण-सार' मृग मठ से भाग गया था और उसे ढूँढ निकालने मे कई दिन तक हम लोगो को बहुत ही परेशानी उठानी पडी थी। एक हसी दुर्भाग्यवश कल मर गयी। प्राय एक सप्ताह से उसे श्वास लेने मे कष्ट का अनुभव हो रहा था। इन स्थितियो को देखकर हमारे एक वृद्ध रसिक साधु कह रहे थे, महाशय जी, इस कलिकाल मे जब सर्दी तथा वर्षा से हस को जुकाम हो जाता है, और मेढक को भी छीक आने लगती है, तो फिर इस युग मे जीवित रहना निरर्थक ही है।

एक राजहसी के पख झड रहे थे। उसका कोई प्रतिकार मालूम न होने के कारण एक पात्र मे कुछ जल के साथ थोडा सा 'कार्बोलिक एसिड' मिलाकर उसमे कुछ मिनट के लिए उसे इसलिए छोड दिया गया था कि या तो वह पूर्णरूप से स्वस्थ हो उठेगी अथवा समाप्त हो जायगी, परन्तु वह अब ठीक है।

त्वदीय,  
विवेकानन्द

बेलूड,  
८ अक्तूबर, १९०१

प्रिय—

जीवन-प्रवाह मे उत्थान-गतन के अन्दर होकर मैं अग्रसर हो रहा हूँ। आज मानो मैं कुछ नीचे की ओर हूँ।

भवदीय,  
विवेकानन्द

(कुमारी जोसेफिन मैकिडमोंड को लिखित)

मठ, पोस्ट-बेल्गु हावड़ा

८ नवम्बर, १९११

प्रिय 'जो'

Abatement (कमी) शब्द की व्याख्या के साथ जो पत्र भेजा जा चुका है वह निश्चय ही अब तक तुम्हें भिन्न सप्ता होगा। मैंने न तो स्वयं वह पत्र ही लिखा है और न 'सार' ही भेजा है। मैं उस समय इतना जबिक अस्वस्थ था कि उन पत्रों में से किसी भी कार्य को करना मेरे लिए सम्भव नहीं था। पूर्वी बंगाल का भ्रमण करके लौटने के बाद से ही मैं निरन्तर बीमार भैसा हूँ। इसके अलावा दृष्टि बट जाने के कारण मेरी हास्त पहले से भी खराब है। इन बातों को मैं लिखना नहीं चाहता किन्तु मैं यह बख रहा हूँ कि कुछ सोप पूरा निबरण जानना चाहते हैं।

अस्तु, तुम अपने जापानी मित्रों को केकर आ रही हो—इस समाचार से मुझे खुशी हुई। मैं अपने सामर्थ्यानुसार उन लोगों का आदर-जातिष्म करूँगा। उस समय मद्रास में रहने की मेरी विशेष सम्भावना है। आगामी सप्ताह में कलकत्ता छोड़ देने का मेरा विचार है एवं कम्परा बकिन की ओर अग्रसर होना चाहता हूँ।

तुम्हारे जापानी मित्रों के साथ उड़ीसा के मंदिरों को बेचना मेरे लिए सम्भव होना या नहीं यह मैं नहीं जानता हूँ। मैंने म्केण्डों का भोजन किया है अतः वे सोम मुझे मन्दिर से जाने देंगे अथवा नहीं—यह मैं नहीं जानता। लॉर्ड कर्जन की मन्दिर से प्रवेश नहीं करने दिया गया था।

अस्तु, फिर भी तुम्हारे मित्रों के लिए जहाँ तक मुझसे सहायता हो सकती है मैं करने को सर्वैव प्रस्तुत हूँ। कुमारी मूलर कलकत्ते में हैं यद्यपि वे हम लोगों से नहीं मिली हैं।

सतत स्नेहशील त्वरीय

त्रिभेकानम्ब

(स्वामी स्वरूपानन्द को लिखित)

गोपाल लाल बिला,  
वाराणसी छावनी,  
९ फरवरी, १९०२

प्रिय स्वरूप,

चारु के पत्र के उत्तर में उससे कहना कि ब्रह्मसूत्र का वह स्वयं अध्ययन करे। उसका यह कहने से क्या अभिप्राय है कि ब्रह्मसूत्रों में बौद्ध मत का संकेत है? निश्चय ही उसका मतलब भाष्य से होगा—होना चाहिए, और शंकराचार्य केवल अन्तिम भाष्यकार थे, हाँ, बौद्ध साहित्य में भी वेदान्त का कहीं कहीं उल्लेख है और बौद्धों का महायान मत अद्वैतवादी भी है। अमरसिंह नाम के एक बौद्ध ने बुद्ध के नामों में अद्वयवादी का नाम क्यों दिया था? चारु लिखता है कि ब्रह्म शब्द उपनिषद् में नहीं आता है। वाह !

बौद्ध धर्म के दोनों मतों में मैं महायान को अधिक प्राचीन मानता हूँ। माया का सिद्धान्त ऋक् संहिता के समान प्राचीन है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में 'माया' शब्द का प्रयोग है, जो प्रकृति से विकसित हुआ है। इस उपनिषद् को कम से कम मैं बौद्ध धर्म से प्राचीन मानता हूँ।

बौद्ध धर्म के विषय में मुझे कुछ दिनों से बहुत सा ज्ञान हुआ है। मैं इसका प्रमाण देने को तैयार हूँ कि—

(१) शिव-उपासना अनेक रूपों में बौद्धमत से पहले स्थापित थी, और बौद्धों ने शैवों के तीर्थस्थानों को लेने का प्रयत्न किया, परन्तु असफल होने पर उन्होंने उन्हींके निकट नये स्थान बनाये, जैसे कि वोवगया और सारनाथ में पाये जाते हैं।

(२) अग्निपुराण में गयासुर की कथा का बुद्ध से सम्बन्ध नहीं है—जैसा कि टा० राजेन्द्रलाल मानते हैं—परन्तु उमका सम्बन्ध केवल पहले से ही वर्तमान एक कथा से है।

(३) बुद्ध देव गयाशीर्ष पर्वत पर रहने गये, इससे यह प्रमाण मिलता है कि वह स्थान पहले से ही था।

(४) गया पहले से ही पूर्वजों की उपासना का स्थान बन चुका था, और बौद्धों ने अपनी चरण-चिह्न उपासना में हिन्दुओं का अनुकरण किया है।

(५) प्राचीन से प्राचीन पुस्तकें भी यह प्रमाणित करती हैं कि वाराणसी शिव-पूजा का बड़ा स्थान था, आदि आदि।

वोवगया से और बौद्ध साहित्य में मैंने बहुत सी नयी बातें जानी हैं। चारु ने कहना कि वह स्वयं पढ़ें तथा मूर्खतापूर्ण मतों से प्रभावित न हों।

मैं यहाँ बापबत्ती में अच्छा हूँ और यदि मेरा इसी प्रकार स्वास्थ्य सुधरता बापगा तो मुझे बड़ा काम होगा।

बौद्ध धर्म और नव-हिन्दू धर्म के सम्बन्ध के विषय में मेरे विचारों में अन्तिम काफी परिवर्तन हुआ है। उन विचारों को निश्चित रूप देने के लिए कदाचित् मैं जीवित न रहूँ परन्तु उसकी कार्यप्रणाली का संकेत मैं छोड़ पाऊँगा और तुम्हें तथा तुम्हारे भ्रातृमनों को उस पर काम करना होगा।

भावीर्षा और प्रेमपूर्वक तुम्हारा  
बिबेकानन्द

(भीमती जोति बुस को मिलित)

नौपास लाल निला  
बापबत्ती काबली  
१ फरवरी १९२

प्रिय भीमती बुस

आपका और पुत्री का एक बार पुनः भारतमूमि पर स्वागत है। मद्रास धर्मिक की एक प्रति जो मुझे 'जो' की कृपा से प्राप्त हुई, उससे मैं अत्यंत हर्षित हूँ। जो स्वागत निवेदिता का मद्रास में हुआ वह निवेदिता और मद्रास दोनों ही के लिए स्थित था। उसका भावना निश्चय ही बड़ा सुन्दर रहा।

मैं आशा करता हूँ कि आप और निवेदिता भी इसी जन्मी भाषा के पश्चात् पूरी तरह विग्राम कर रही होगी। मेरी बड़ी इच्छा है कि आप कुछ बंटों के लिए परिष्करी कक्षता के कुछ पाठों में कार्य और वहाँ लकड़ी बाँस बैठ आनक तथा बास-पूत बादि से निर्मित पुराने क्रिस्म के बगाली मकानों को देखें। वास्तव में वे ही 'बंगला' कहलाये जाने के अधिकारी हैं जो अत्यंत कठोरपूर्ण होते हैं। किन्तु आह! आजकल तो वह नाम 'बंगला' हुए किसी बड़े-सबे भूमित मकान को लेकर उस नाम का मजाक बना दिया गया है। पुराने जमाने में जो कोई भी महक बनवाता तो प्रतिनि-सत्कार के लिए इस प्रकार का एक 'बंगला' अवश्य बनवाता था। इसकी निर्माण-कला अब विनष्ट हीरी था रही है। काश मैं निवेदिता की सारी पाठशाळा ही इस शैली में बनवा सकता। फिर भी इस तरह के जो दो-एक ममूने खेप बने हैं उन्हें बेचकर पुक होता है।

बिबेकानन्द सब प्रबन्ध कर देगा आपको केवल कुछ बंटों की भाषा भर करनी रहेगी।

श्री ओकाकुरा अपने अल्पकालीन दीरे पर निकल पड़े हैं। वे आगरा, ग्वालियर, अजन्ता, एलोरा, चित्तौड़, उदयपुर, जयपुर और दिल्ली आदि जगहे जाना चाहते हैं।

बनारस का एक अत्यंत सुशिक्षित घनाढ्य युवक, जिसके पिता से हमारी पुरानी मित्रता थी, कल इस नगर में वापस आ गये हैं। उनकी कला में विशेष रुचि है और नष्टप्राय भारतीय कला के पुनरुत्थान के सदुद्देश्य से बहुत सा धन व्यय कर रहे हैं। वे श्री ओकाकुरा के जाने के पश्चात् ही मुझसे मिलने आये। भारत की कला जो कुछ भी शेष रह गयी है, उसका श्री ओकाकुरा को दर्शन कराने के लिए ये ही उपयुक्त व्यक्ति हैं, और मुझे विश्वास है, इनके सुझावों से श्री ओकाकुरा लाभान्वित होंगे। अभी ही श्री ओकाकुरा ने टेराकोटा की एक सुराही यहाँ से प्राप्त की है, जिसे नौकर इस्तेमाल कर रहे थे। उसकी गठन और उसकी मुद्राकित डिजाइन पर वे मुग्ध रह गये। किन्तु चूँकि वह सुराही मिट्टी की थी और यात्रा में उसके टूट जाने का भय था, अतः उन्होंने मुझसे उसे पीतल में ढलवा लेने को कहा। मैं तो किकर्तव्यविमूढ सा था कि क्या करूँ। कुछ घंटे बाद तभी यह युवक आये और न केवल उन्होंने इस कार्य के करने का जिम्मा ले लिया, वरन् मुझे ऐसे सैकड़ों मुद्राकित टेराकोटा भी दिखाये, जो श्री ओकाकुरावाले से असख्यगुना श्रेष्ठ हैं।

उन्होंने उस अद्भुत प्राचीन शैली के पुराने चित्रों को सिखाने का भी प्रस्ताव रखा। वाराणसी में केवल एक परिवार ऐसा बचा है, जो अब भी उम प्राचीन शैली में चित्र बना सकता है। उनमें से एक ने तो मटर के एक दाने पर आखेट का सपूर्ण दृश्य ही चित्रित कर डाला है, जो बारीकी और क्रियाकान में पूर्णतः निर्दोष है। मुझे आशा है कि लौटते समय ओकाकुरा इस नगर में आयेंगे और इन भद्रपुरुष के अतिथि बनकर भारत के कलावशेषों का दर्शन करेंगे।

निरञ्जन भी श्री ओकाकुरा के साथ गया है और एक जापानी होने से किसी मंदिर में आने-जाने से उसे कोई मना नहीं करता। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे तिव्वली और दूसरे उत्तर प्रान्तीय बौद्ध शिव की उपासना के लिए यहाँ बराबर आते रहे हैं। यहाँ वालों ने उसे शिर्वांग का स्पर्श करने तथा पूजा आदि करने की अनुमति दे दी थी। श्रीमती एनी बेसेंट ने भी ऐसी ही चेष्टा एक बार की थी, पर बेचारी! उन्हें मंदिर के प्रागण तक में प्रवेश नहीं करने दिया गया, यद्यपि उन्होंने जूते उतार दिये थे और साड़ी पहनकर पुरोहितों के चरणों की धूल भी माये लगा चुकी थी। बौद्ध हमारे यहाँ के किसी भी बड़े मंदिर में अहिन्दू नहीं ममसे जाते।

मेरा कार्यभार कोई निरिबल नहीं है मैं बहुत लौघ ही यह स्वान बरस सकता हूँ।

मिवाकान्त और लड़के भाव सबको अपना स्नेह-आदर प्रेषित करत हूँ।

चिरस्नहाबद्ध

विश्वेकान्त

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

गोपाल लाल बिस्म

बादायतनी छावनी

१२ फरवरी १९०२

कम्पानीय

तुम्हारे पत्र से सन्निधेय समाचार जानकर खुशी हुई। निवेदिता क स्वप्न के बारे में मुझे जो कुछ कहना था मैंने उनको लिख दिया है। इतना ही कहना है कि उनकी दृष्टि में जो अच्छा प्रतीत हो तदनुसार के कार्य करें।

और किसी विषय में मेरी राय न पूछना। उससे मेरा विमोघ खराब हो जाता है। तुम मेरे लिए कबल यह कार्य कर देना—बस इतना ही। अपने भेज देना क्योंकि इस समय मेरे समीप जो-कार अपने ही धेप हैं।

कन्हाई ममुकरी के सहारे जीवित है बाट पर जप-सप करता रहता है तथा रात में यहाँ आकर सोता है नैदा गरीब आबमियों का कार्य करता है रात में आकर सोता है। बाबा (Okakura) तथा निरंजन आ मये हैं आज उनका पत्र मिलने की सम्भावना है।

प्रभु के निर्देशानुसार कार्य करते रहना। दूसरों के अभिमत जानने के लिए भटकने की क्या आवश्यकता है? सबसे मेरा स्नेह कहना तथा बच्चों से भी। इति।

सस्नेह स्वामी

विश्वेकान्त

(समिती निवेदिता को लिखित)

बादायतनी

१२ फरवरी १९०२

प्रिय निवेदिता

सब प्रकार की शक्तियाँ तुममें उद्बुद्ध हों महामाया स्वयं तुम्हारे रूप तथा

१ ओकाकुरा (Okakura) को प्रेमपूर्वक ऐसा सम्बोधित किया गया है। 'कुरा' शब्द का उच्चारण बंगला 'कुड़ा' (अर्थात् बाबा) के निकट है इसीलिए स्वामी जी मन्दाळ में उनको बाबा कहते थे। स



भुजाओं में अचिष्टित हों। अप्रतिहत महाशक्ति तुम्हारे अन्दर जाग्रत हों तथा यदि सम्भव हो, तो उनके माय ही माय तुम शान्ति भी प्राप्त करेंगे—यही मेरी प्रार्थना है।

यदि श्री रामकृष्ण देव मृत्यु हो, तो उन्होंने जिस प्रकार मेरे जीवन में मार्ग प्रदर्शन किया है, ठीक उसी प्रकार अथवा उममें भी हजार गुना स्पष्ट रूप से तुम्हें भी वे मार्ग दिखाकर अग्रसर करते रहे।

विवेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

गोपाल लाल विला,  
वाराणसी छावनी,  
१८ फरवरी, १९०२

अभिन्नहृदय,

रुपये प्राप्त के समाचार के साथ कल मैंने जो तुमको पत्र लिखा है, अब तक वह निश्चय ही तुमको मिल गया होगा। आज यह पत्र लिखने का मुख्य कारण है कि इस पत्र के देखते ही तुम उनसे मिल आना। तदनन्तर क्या बीमारी है, कफ आदि किस प्रकार का है, यह देखना है, किसी अत्यन्त सुयोग्य चिकित्सक के द्वारा रोग का अच्छी तरह से निदान करा लेना। राम बाबू की बड़ी लड़की विष्णु-मोहिनी कहाँ है?—वह हाल ही में विषवा हुई है।

रोग से चिन्ता कही अधिक है। दस-बीस रुपये जो कुछ आवश्यक हो दे देना। यदि इस ससाररूपी नरककुण्ड में एक दिन के लिए भी किसी व्यक्ति के चित्त में थोड़ा सा आनन्द एव शान्ति प्रदान की जा सके, तो उतना ही सत्य है, आजन्म मैं तो यही देख रहा हूँ—बाकी सब कुछ व्यर्थ की कल्पनाएँ हैं।

अत्यन्त शीघ्र इस पत्र का जवाब देना। चाचा (Okakura या अकूर चाचा) तथा निरजन ने ग्वालियर से पत्र लिखा है। अब यहाँ पर दिनों दिन गर्मी बढ़ रही है। बोधगया से यहाँ पर ठण्ड अधिक थी। निवेदिता के श्री सरस्वती पूजन सम्बन्धी घूम घाम के समाचार से बहुत ही खुशी हुई। शीघ्र ही वह स्कूल खोलने की व्यवस्था करे। जिससे सब कोई पाठ, पूजन तथा अध्ययन कर सकें, इसका प्रयास करना। तुम लोग मेरा स्नेह ग्रहण करना।

सस्नेह,  
विवेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

गोपाळ काळ विद्या

बारापसी छावणी

२१ फरवरी १९२

प्रिय राजाराम

अभी अभी मुझे तुम्हारा एक पत्र मिला। अगर मैं और शारी यहाँ जाने को इच्छुक हूँ, तो उन्हें भेज दो। जब कलकत्ते में ताज्ज फैला हुआ है तो वहाँ से दूर रहना ही अच्छा है। इसाहाबाद में भी व्यापक रूप से ताज्ज का प्रकोप है नहीं जानता कि इस बार बारापसी में भी फैलगा या नहीं।

मेरी ओर से श्रीमती बुरु से कहो कि एलोरा तथा अन्य स्थानों का भ्रमण करने के लिए एक वठिन यात्रा करनी होती है जब कि इस समय मौसम बहुत गर्म हो गया है। उनका शरीर इतना कमजोर है कि इस समय यात्रा करना उनके लिए उचित नहीं। कई दिन हुए मुझे 'बाबा' का एक पत्र मिला था। उनकी अंतिम सूचना के अनुसार वे अर्जन्ता गये हुए थे। महन्त ने भी उत्तर नहीं दिया साथ ही वे राजा प्यारीमोहन को पत्रोत्तर देते समय मुझे लिखेंगे।

नेपाल के मंत्री के मामले के बारे में मुझे विस्तार से लिखो। श्रीमती बुरु कुमारी मैथिलीजी तथा अन्य लोगों से मेरा विशेष प्यार तथा आशीर्वाद कहता। तुम्हें बाबू राम और अन्य लोगों को मेरा प्यार तथा आशीर्वाद। क्या गोपाळ बाबा को पत्र मिला गया? कृपया उनकी बकरी को थोड़ी देखभाल करते रहना।

सस्नेह,

त्रिविक्रानन्द

पुनश्च—यहाँ के सब ठाँके तुम्हें अभिवादन करते हैं।

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

गोपाळ काळ विद्या

बारापसी छावणी

२४ फरवरी १९२

प्रिय राजाराम

आज प्रातःकाल तुम्हारा भेजा अमेरिका से आया हुआ एक छोटा सा पार्सल मिला। पर मुझे न कोई पत्र मिला न तो वह एलिस्ट्री ही जिसकी तुमने चर्चा की है और न ही कोई दूसरी। मैं नेपाली संजन माने वे बचवा नहीं या क्या कुछ चिट्ठे

हुआ, यह मैं बिल्कुल भी नहीं जान सका हूँ। एक मामूली सी चिट्ठी लिखने में इतना कष्ट और विलम्ब ! अब मुझे यदि हिसाब-किताब भी मिल जाय, तो मैं चैन की सांस लूंगा। पर कौन जानता है, उसके मिलने में भी कितने महीने लगते हैं।

सस्नेह,  
विवेकानन्द

(कुमारी जोसेफिन मैक्लिअॉड को लिखित)

मठ,  
२१ अप्रैल, १९०२

प्रिय 'जो',

ऐसा लगता है जैसे मेरे जापान जाने की योजना निष्फल हो गयी है। श्रीमती बुल जा चुकी हैं, और तुम जा रही हो। मैं जापानी सज्जन से पर्याप्त रूप से परिचित नहीं हूँ।

सारदानद जापानी सज्जन और कन्हाई के साथ नेपाल गया है। क्रिश्चन शीघ्र नहीं जा सकी, क्योंकि मार्गट इस महीने के अन्त से पूर्व नहीं जा सकती थी।

मैं भली भाँति हूँ—ऐसा ही लोग कहते हैं, पर अभी बहुत दुर्बल हूँ और पानी पीने की मनाही है। खैर रासायनिक विश्लेषण के अनुसार तो काफी सुधार परिलक्षित हुआ है। पैरों की सूजन और अन्य शिकायतें सन दूर हो गयी हैं।

श्रीमती वेटी तथा श्री लेगेट, अल्बर्टा और हॉली को मेरा अनन्त प्यार कहना—शिशु हॉली को तो जन्म-पूर्व से ही मेरा आशीर्वाद प्राप्त है और वह सदा मिलता भी रहेगा।

तुम्हें मायावती कैसा लगी ? उसके बारे में मुझे लिखना।

चिर स्नेहावद्ध,  
विवेकानन्द

(सुमारी वागीश्वर दीक्षितराव का निमित्त)

३२

द्वारा प्रकाशित

१९ मार्च १९०२

प्रिय सा

आपके नाम के नाम निमित्त पत्र से मुझे भय रहा है।

मेरे बहुत कुछ स्वयं हैं। विष्णु जिन्हीं मूर्तों का नाम भी उस दुष्टि में पढ़ नहीं कर सकता है। एतद्वाच्य मेरे मन की मेरी प्रकृत भावना उत्पन्न है। यही है—मेरे मन के लिए विधायक बना जा रहा है। मेरे लिए और बाकी बाकी काय बनेगा। दरिद्रता में पढ़ा तो मैं जानती पुगनी भिन्नार्थित को पुनः प्राप्त कर दूंगा।

'सा सुमाराय वागीश्वर मंगल हो—जुम देवदूत की तरह मेरी देवता बन गई हो।

विश्वनाथर

विश्वनाथर

(सुमारी आदि बुक को निमित्त)

बम्बई मठ,

१४ जून १९०२

प्रिय श्री सा

मेरे विचार से पूर्व ब्रह्मचर्य के आदर्श को प्राप्त करने के लिए किसी भी जाति को मानव के प्रति परम आदर की भावना बुझ करनी चाहिए और वह विवाह को अछेय एवं पवित्र धर्म-संस्कार मानने में ही सफल है। रोमन कैथोलिक ईसाई और हिन्दू विवाह को अछेय और पवित्र धर्मसंस्कार मानते हैं, इसलिए दोनों जातियों ने परमात्मिकता महान् ब्रह्मचारी पुरुषों और स्त्रियों को उत्तम किया है। अरबों के लिए विवाह एक दण्डालाभा है या बल से प्रहय की हुई सम्पत्ति जिसका अपनी इच्छा से अन्त किया जा सकता है इसलिए उनमें ब्रह्मचर्य भाव का विकास नहीं हुआ है। जिन जातियों में अभी तक विवाह का विकास नहीं हुआ या उनमें आधुनिक बौद्ध धर्म का प्रचार होने के कारण उन्हीं संस्थाओं को एक उपहास बना डाला है। इसलिए आपण से जब तक विवाह के पवित्र और महान् आदर्श का निर्माण न होया (परस्पर प्रेम और आकर्षण को छोड़कर) तब तक

मेरी समझ मे नहीं आता कि वहाँ बड़े बड़े सन्यासी और सन्यासिनियाँ कैसे हो सकते हैं। जैसा कि आप अब समझने लगी हैं कि जीवन का गौरव ब्रह्मचर्य है, उसी तरह जनता के लिए इस बड़े धर्म-संस्कार की आवश्यकता—जिससे कुछ शक्तिसम्पन्न आजीवन ब्रह्मचारियों की उत्पत्ति हो—मेरी भी समझ मे आने लगी है।

मैं बहुत कुछ लिखना चाहता हूँ, परन्तु शरीर दुर्बल है 'जो मेरी जिम मनोकामना से पूजा करता है, मैं उसको उसी रूप मे मिलता हूँ।'

विवेकानन्द

---

१ ये यया मा प्रपद्यन्ते तास्तर्येव भजाम्यहम् ।

मम धर्मानुयतन्ते मनुष्या पार्य सर्घश ॥ गीता ॥४११॥

## अनुक्रमणिका

- अग्नेज २५, १३२, १३९, १५४, १६४, १६८, १७६, १७८-८० १८९-९२, १९४, २०५, २०७-८, २२८, २३०, २४४, २८६, २८८, और भारतीय २५४, पुरातत्त्वविद् १९३, मित्र १६६, यात्री १६४, राज १६२, राजा १६२, सरकार १६१-६२, २६९, २८९
- अग्नेजी अनुवाद १९३, ३६० (पा० टि०), कम्पनी १६८, ढग १६४, भाषा २०४, २३१, राज्य १६७
- अघविश्वास १४, ६३, २५३, ३४३, और जनता १३२, और सत्य १०३
- अकबर, सम्राट् ३८०
- अक्रूर चाचा ३९१ (देखिए ओकाकुरा)
- अग्नि २०-३, उपासना ३५६, और सत्यकाम २१, पुराण ३८७, वैदिक १३९, होम २०
- 'अग्नि देवता' ३५६
- 'अग्नि-यज्ञ' ३५६
- अघोर चक्रवर्ती २४८
- 'अचू' ३२०
- अजता ३८९, ३९२
- अज्ञेयवाद (दार्शनिक) २९४, वादी (आधुनिक) ४०, ५८-९, २९२
- अटलांतिक १६३, १८९
- अतुल बाबू २५७-५८
- अद्वैत ५०, १७०, उसका सार घर्म ११४, और आत्मा सबधी विचार १४१, और ईश्वर ६८, और ज्ञान २७२, और वेदान्त ५२, ६०, नीतिशास्त्र का आधार ८२, भाव २७३, मत ४४, मार्गी-२७३
- अद्वैतवाद ४०, ४६-७, ५०-३, ५५, ७५, ८१, १७५, २०३, ३४०, ३८७, उसकी प्रार्थना ६३, उसके विचार ५२, १४१, और उसका कथन ४२
- अद्वैतवादी ४१, ५१ ६३, ३४३, ३५५, ३८७, उनका चरम सिद्धान्त ७५, और आत्मा ७०
- अद्वैताश्रम ३४७
- अध्यात्मवाद १२२
- अनादि पुरुष ८८
- 'अनुभूति' २९२
- अनुराधा १७३
- अनुराधापुरम् १७४
- अन्तर्जातीय विवाह २७१
- अन्तर्विवाह २७५
- अन्दमान १९४
- अन्दमानी भील १९४
- अन्वकूप (Black Hole) १५४
- अपनेल, श्रीमती ३२२
- अपरिणामी सत्ता ५०
- अपेरा गायिका २०१
- अफगान २१६
- अफगानी १८९
- अफ्रीकी १०४, १५८, १८०, १८२, १८९, १९१, १९४, २१०, उत्तर १८०, दक्षिणी-पश्चिमी १३४ (पा० टि०)
- अबीसीनियावासी २८९
- अभेद बुद्धि ५८
- अभेदानन्द ३२७-२८, ३४६ (देखिए काली)
- अमरनाथ ३७३

अमरसिंह ३८७  
 अमरावती १५  
 अमर मुसलमान सेनापति १९  
 अमेरिकन १७७ २ १ २ ५ २ ७  
 २२१ और उतका डाक्टर २९१  
 काठेन २१९ मियोसाफ्रिस्ट  
 सीसाभटी २९२ प्रमु १६२ मित्र  
 ३२६  
 अमेरिका ५७ (पा टि) १ ५  
 १५९ १६२ १६३ २ १ २ ५  
 २ ७ २४७ २५ २५२-५४  
 २८१ २०८ ३५५ २६१ ६२  
 ३७१ ३९२ महाद्वीप १८९  
 यात्रा २३७ बाले २४२ संयुक्त  
 राज्य १५९  
 अरब ५८ १५७ १७९ १८१-८२  
 १९४ १५ बाति १८२ माजिक  
 १७९ मिया १८५ बासी २५  
 अरब की महनुमि ८२ १८ और  
 १८१ २१७  
 अराकान १९८  
 अरुणाचलम् १७६  
 अर्धन ४ ८ २३८  
 अर्धन-कुम्भ सबाब २३७  
 अरुणामियन २२  
 अरुणोदा ३३०-३३१ ३३४  
 अस्वर्ती ३५७ ३५९ ३६५ ३९३  
 (वेनिए स्टारगीब अस्वर्ती)  
 अस्वर्ती स्टारगीब कुमारो ३५७ ३५९  
 अस्मोका १२८ ३९५  
 अस्मात् १९७  
 'अस्माह' २ ९ ३ १९७  
 अस्माहो अकबर बीन बीन' १७  
 अस्तारबाब ९२  
 अस्तोकिटोस्वर १७६  
 अशुभ ६२ उसका कारण ६१  
 अशोक महाराज १७४ १९६ सभाद्  
 १८१  
 अष्ट सिद्धि ११४  
 'असिरिम १९६

'असीम' ११४  
 असीरिया प्राचीन १९४  
 असीरी १९५  
 असुर गुण १ ५  
 अस्तित्व' ८१  
 अस्तिसिनी १८१  
 अह' ११३ ११६, २४१  
 अह' ब्रह्मास्मि ८३  
 अह' सारण्य' ४९-५ उसका अर्थ  
 ४८  
 अहि' (घड़प का कारण) १९७  
 अहिंसा परमो धर्म' १७४  
 अहिर्मन (अधिष) १ ४  
 अहर्मन्व (धिष) १ ४  
 आंट मेरी ३३६  
 आइलेक-मीनार २९१  
 'आइवरी पेस्ट' १६४  
 आइसिस १८१  
 आकाश प्राणरूप ३८  
 आन्ध्रपोलिस् होटल २२१  
 आयरा ८९, ३६८ ३८  
 आरम त्याम और सयम २४४ वर्षम  
 ११३ अजिवाल १२९ रमा  
 १२९ विकास ५३ विस्वास का  
 आइर्न १२ संगीत ३४ सिद्धि  
 और साकारकार २४१ स्वल्प  
 ५१ ६२  
 आत्मा ६-७ १०-१ १३-५, २२, ३१  
 ३४ ४ ४७ ४९-५ ५३ ५८  
 ९, ७९ ८१ २ ८५ ६, ८९ ९२  
 ९५ ७ १ ६, १२३ १२७  
 १३३ १९८ २३४ २३९, २९९  
 २८३ २८६, २९३ २९५ अष्ट  
 १ ५ अनन्त ७ अनन्त अनादि  
 ८९ अनन्त ब्रह्मस्वरूप ६८  
 अनुसृष्टि ५१ अपरिपामी ५  
 अमिन्न पदार्थ ६७ अविनाशी ६७  
 उसका महत्त्व १६-८ उसका मुक्त  
 स्वभाव ६७ उसका अर्थ ९७

उसका विकास ५९, उसका श्रेष्ठत्व ३१७, उसका समाधान १००, उसका स्वरूप ९६, १००, उसकी अभिव्यक्ति का सिद्धान्त ९८, उसकी असीमता का प्रश्न ९९, उसकी परिभाषा ११८, उसकी पूर्णता की स्थिति ९८, उसकी प्राचीनतम कल्पना १०६, उसकी यथार्थ स्वाधीनता ७५, उसकी सर्वज्ञता २७, उसकी सर्वोपरिता ७२, और अद्वैतवादी ७०, और ईश्वर ७९, ११६, और जीवन १२४, और प्रकृति ९७, और भारतीय धारणा १०७, और मन ९८, और विश्व ८०, और साख्य मत ६७, देश से परे ११६, नाम-रूपात्मक १०७, निराकार, अत अनाम १०८, निराकार चेतन वस्तु ९६, बघनरहित ११३, मंगलमय ९९, मन का साक्षी (साख्य मतानुसार) ९५, मनुष्य-मन का आधार ९१, विषयक आदर्श १०६, विषयक धारणा ९३, शरीर के माध्यम से स्थित ९०, शाश्वत ८८, सबधी विचार ९५, सबधी विभिन्न मत ९६, सगुणीकृत निर्गुण ११८, सर्वव्यापी ६७, ससीम और पूर्ण ५४, स्वय सत्य १०१, स्वय स्वरूप १००, स्वरूप ६३

आत्मिक देह ९४

आदम ७३ (पा० टि०)

आदर्श अवस्था १०, प्रत्यात्मक १२८,

व्यावहारिक ९

'आदान-प्रदान' की नीति २५०

आदि मानव और ईश्वर १०२

'आदुनिम' १९७ (देखिए आदुनोई)

'आदुनोई' १८९, १९७

आधुनिक अज्ञेयवादी ४०, प्रत्यक्षवादी

४९, बौद्ध धर्म ३९४, विज्ञान

८७, वैज्ञानिक उनका कथन ६२

आध्यात्मिक जीवन २९१, दशा २९०, पक्ष २९०, प्रगति २४९, भाव ७९, विकास १११, व्यक्तिवाद १३४, साधना २७४

आपेनी राज्य २२२

आफ्रीदी १६०

आरती-स्तुति १०५

आरियन् १९५

'आरिया' १६६

आरुणि ३७

आर्क-डचेस २०८, ड्यूक २०८

'आर्कडक' ग्रीक कला २२२

आर्टिक २२३, सप्रदाय और उसकी

दो भावधारा २२३

आर्टिका २२२, विजयकाल २२३

आर्य १३५, १६१-६२, १६७, १७०,

२१३, २१६, २३६, उनकी प्रकृति

१०५, कुल १०४, जाति ९४,

१९६, विचारधारा ९३

आलासिगा ३६५

आलेकजेन्द्रिया नगर १८१

आशावाद ३१६, ३४१, वादी ९४

आसक्ति और अनासक्ति ३१५

आसाम ३७४-७६, ३७८-७९

आसीर १९१

आस्ट्रियन जाति २०९, राजकुमारी

२१०, राजवंश २०९

आस्ट्रिया २०८, २१०-१२, सम्राट्

२१३, साम्राज्य २१५, २१८,

लायड १६१

आस्ट्रेलिया १६३, १८४, १९४

इंग्लैण्ड १३२, १६४, २०१, २०५,

२०९-१०, २१४, २३४, २६९,

२८२, ३०३, ३०६, ३१४-१५,

३२१, ३३४, ३४७-४८, ३५५,

३५८, ३६५-६७, ३७०, ३७२

इंग्लैण्ड का इतिहास (Green's

History of England) २६६-

६७



इच्छा उत्पत्ति का कारण १२१ सक्ति  
 ७८ १३१  
 इटली ११९ १७९-८ २१ ३७४  
 इटीसियन बेसिस १८९  
 इण्डो-यूरोपियन २१५  
 'इन्फस' १८९  
 'इन्सु' १८९  
 इन्द्र ३३  
 इन्द्रदेव १४८  
 इन्द्रिय-निग्रह १३३ मन-वेह ७६  
 इफेम १९८  
 'इबाहीम' १९८  
 इक्विट १५ (पा टि )  
 इसलाम ४३ १९२  
 'इसिस' (सोमना के रूप में) १९६  
 इस्तम्बोल २ ५  
 'इस्तोआर आसिएन ओरी जावाक' १९३  
 इस्राइल १९८  
 ई टी स्टडी ३६७  
 ईजिप्ट २  
 ईज्ज ७३ (पा टि )  
 ईज ७३ (पा टि )  
 ईरान १ ३ १८२, १८९९ तुरान  
 १९५  
 ईरानी १ ४ १५१ १९१ १९८  
 बेघा १८९ पोशाक १८२ बाद  
 साही १८१ माया १ ४ विचार  
 मारा १ ५  
 ईश २९७  
 ईस्वर ८१ १६-७ ३०-१ ३४-५,  
 ४१-२, ४५ ६, ५५, ५७ ६३  
 ६९-७ ७३ ७७ ८१ ८३  
 ८९-८, ९०-१ १ १ १ ३-५,  
 ११ ११७, १२७ १३३ १३६,  
 १८ २४०-४१, २७४ २८  
 २८२, २८७-८८, २९३ १४ बन्  
 भूति १३३ उपादान कारण ६८  
 उपासना २३ इसका गुणवान २८१  
 उसका नाम-महत्त्व १३५ उसकी

अनुकम्पा का आकार १ ९  
 उसकी कल्पना १०३ एक ब्रह्म  
 ११८ और आत्मा ७९ और आदि  
 मानव १ २ और जीव ११  
 और ब्रह्म ८३ और मित्र मित्र  
 अनुभव-परिणाम ११९ और  
 वेदान्त का सिद्धान्त ६८ और धर्म  
 ११९ कृपा १३ चिन्तन २४९  
 धर्मन २९ देहधारी २८ धारणा  
 २८, ७६ निर्गुण जीवन्त २८  
 निर्गुण-समुप ३१ ११८ प्रकृति  
 का कारण-स्वरूप ६८ प्राप्ति  
 २४२ प्रेम २७२ मन की उपब  
 ११५ वाव २८ वाणी (सपन)  
 धर्म ३९ विश्व सृष्टि स्थिति  
 प्रकृत्य का कारण ८९ व्यष्टि की  
 समाप्ति ८३ शुद्ध-ब्रह्म में भी  
 २७१ सर्वोप उपसम्बि १ ४  
 सर्वोपी धारणा ४४ ११६ सगुण  
 ३८, ४१ ४५ ६ ५७ सगुण सभी  
 आत्माओं का योग १३२ सर्वधुम  
 ८३ साम्राज्यकार १३३ स्वय की  
 परछाई ११३  
 ईश्वरचक्र विद्यासागर २३३  
 ईश्वरत्व की धारणा ९२  
 ईसा ४३ १ ४ १२८, १९८ ९९  
 'ईसा अनुसरण' १७  
 ईसाई २५, ४२, ५९, २५२ विक्रिसक  
 ३२३ धर्म ५८, १३७ १८१ २५३  
 २८७ २८९ ९ मठ ८८, २९४  
 'ईसाई बीमारी' ३  
 'ईसाई-विज्ञान' २९४  
 ईसावेक ३७४  
 ईसा मसीह ५८, ६९, १९८, २८२  
 'ईस्ताख' १९७  
 उज्जमिनी १८२  
 उड़ीसा १५९-६६, २८ ३८६  
 उत्तरकापी १४९  
 उत्तराज्य २४

उदयपुर ३८९  
 'उद्बोधन' (पत्रिका) १४७ (पा० टि०), १५३, १७७, २८५  
 उपकोशल २१-२  
 उपनिषद् ४, १६, २७, ३७, २३३, उसका उपदेश २२, उसकी शिक्षा १३२, कठ ११२ (पा० टि०), काल २३, केन ७६ (पा० टि०); छान्दोग्य १९, ३७, ७२ (पा० टि०), बृहदारण्यक ६९, ७२ (पा० टि०), मुण्डक ६८ (पा० टि०), ११२-१३, श्वेताश्वतर ३४२ (पा० टि०), ३८७  
 उपयोगितावाद और कला २३५  
 उपह्लाद (Lagoons) १९०  
 उपासना विधि २९२  
 ऋषि १३५, २५५, २८८-८९, प्राचीन २६, प्राचीन भारतीय २८२  
 'एग्लिसाइज्ड' ३४०  
 एकत्व का आदर्श १७  
 एकमेवाद्वितीयम् ३१७  
 एकेश्वरवाद ४०, वादी ३९  
 एगल (गरुड शावक) २११  
 एजेलाँदस २२१  
 एडम्स, श्रीमती ३११, ३३७, ३४१  
 एडविन अर्नाल्ड २९४  
 एडेन १४९, १७८-७९  
 एथेस २०५, २२१-२२, छोटा ३६४  
 एन० एन० घाप २५३  
 एनिसक्वाम २८६  
 एनी वेमेण्ट, श्रीमती २९२, ३८९  
 एफ० एच० लेगेट ३११-१२, ३३१  
 एम० एन० वनर्जी ३८३  
 एम० सी० एडम्स, श्रीमती ३३८  
 एमा एमन, मादाम २०२  
 एलनक्विनन ३७६  
 एलोरा ३८९, ३९२  
 एल्युमिन-यात्रा २२१

एशिया १३६, १७९, १९१, २०५, २१४-१५, २२१-२२, २२७, २३५, खण्ड १९५, मध्य २०९, २१५-१६, माइनर १९१, १९७, २१३, २१७  
 एशियायी कला २२२  
 एस० पानेल, श्रीमती ३४८  
 एस्तर स्ट्रीट ३३१  
 ऐम्पीनल, श्रीमती ३५५  
 ओआइस ३५९  
 ओकलैंड ३०३, ३०५, ३१२, ३२१  
 ओकाकुरा, श्री ३७७, ३८९, ३९० (पा० टि०) (देखिए अकूर चाचा)  
 ॐ तत् सत् ११४, ३३३  
 ॐ नमो नारायणाय १४७  
 'ॐ ह्री क्ली' १७६  
 ओरियेण्ट एक्सप्रेस ट्रेन २१३  
 'ओरी आँताल एक्सप्रेस ट्रेन' २०५  
 ओलम्पियन खेल २२१, जूषिटर २२१  
 ओलि बुल, श्रीमती ३०३, ३०५, ३१०, ३२२, ३२७, ३५५, ३६३, ३६७-६८, ३७० ७१, ३८८, ३९४  
 ओलिया ३२४  
 ओसमान (मुसलमान नेता) १९२  
 कञ्जाक २२०  
 'कट्टुमारण' १५६  
 कठोपनिषद ११२ (पा० टि०)  
 कथा, नाई की १३८, प्राचीन फारसी ३५, मिश्र देवता १९७, मुसलमान और लोमडी ७७, मेढक २९६, गिवू देवता, नुई देवी १९६, श्वेत-केतु २२-३, सत्यकाम १९, २३१, सेव, माँप और नारी ७३  
 कनिष्क (तुरम्बक मन्नाट) २१६  
 कम्फर्सी मत २०५  
 कन्हाई ३६५, ३९३  
 कवीर १६९  
 कगल की उपानना १३२

कर्मन साईं २२९ ३  
 कर्मक व्योमकट २९२  
 कर्म मसन् ५४ और प्रकृति २७४  
 और समाधि २५ काष्ठ २३,  
 ३५ बाळ ६१ जीवन ७९  
 निष्काम योग २३९ फल २४  
 ५४ ७८, ३ ४ योग २३९  
 योगी ३१ २३९ विद्या ५४  
 धुमाधुम २४ सकाम २५  
 साधना ११ ११४  
 कर्मयोग ३१९  
 कलकता १४ (पा टि) १४८  
 ४९, १५४-५५, १६३, १६६, १६८,  
 १७३-७४ २३२, २३७ २४७  
 २५०-५१ २६ २७१ २८२,  
 ३२४ ३२७-२८, ३४७ ३५४  
 ३७०-७१ ३७४ ३८१ ३८३-८४  
 ३८६ ३९२  
 कसा और उपयोगिता २२७ सास्त्र  
 २२२  
 कम्पाकी २६  
 काशी ३२  
 कति उसका विचार ४९ और हर्बर्ट  
 स्पेन्सर ४९  
 काकेसस पर्वत २१७  
 कामस्टाम्पिनोष्क १९२, २ २ ३  
 २ ५, २ ८, २१३ २१५ १७  
 २१९ २२१ ३५८ ३६ ३६४  
 कामस्टाम्पिनोष्क (रोमन बाबसाह)  
 १७९  
 कान्ची (पार्वत्य शहर) १७५ उसका  
 इत मंदिर १७६  
 'कान्चिप्रश्न' (अनिवार्य मण्डी)  
 २१८ २२  
 काट मसूर १९६  
 काठरी १८२  
 काफिला २११  
 काफ़ी १९४  
 काबा १८२  
 काबुल २१६

कामवेदी १९७  
 कामिनी काचन २७९  
 कायस्थ-कुल १६१  
 कार्तिक (शुक्र का मखतार) १७७  
 कार्नेलिया सीराव जी कुमारी ३७१  
 कार्य-कारण नियम ८१ भाग ४५  
 विद्या ११ वृत्त ८१ सम्बन्ध  
 ५१ १११ १२२ सम्बन्ध और  
 उसका अर्थ ५१  
 कार्य-कारणभाव २६  
 कार्निवाल महाकवि १५२ (पा टि)  
 २३३  
 काममे मायामोहावेक २ १ २  
 काकी ३८७-४८ ३५ ३५४ ३५८  
 (बेसिए अमेरान्थ)  
 काकी माँ १३ १३२ १३९ ३६७  
 पुत्रा ३३९ ४ माता ३७  
 कासी १४८ उत्तर १४९  
 काशीपुर २५ ७५७  
 काश्मीर १४८, १५१ १५२ (पा  
 टि) २१६ १७ ३७९ बन्ध  
 १५२ बेस १५२ प्रमथ १५२  
 काहिरा ३६४  
 किरासिम स्वमई २९७-९९  
 किरासिम १९५  
 किशनपड़ ३५८  
 कीडी १७१  
 कीर्तन उसका अर्थ २८१ और मुप  
 २४६  
 कुमारस्वामी १७६-७७  
 कुमारी जस्टी स्टारलीज ३५७ ३५९  
 कार्नेलिया सीराव जी ३७१ केट  
 ३११ बसेवी ३ ३ ३२१ गोबल  
 ३१३ ३३७ बुक ३४५, ३५५  
 मूलर ३३ ३४४ ३८६ मेरी  
 हेल ३ ८, ३१३ ३१६ ३३६  
 ३७ ३३९, ३४२ ३४४ ३७३  
 ३७९, ३८१ मैनिफेस्ट ३१३  
 ३२३ ३९८ ३६ (बेसिए  
 बीसेफिन मैनिफेस्ट) बारडो

३१८-१९, ३४५, ३५४, वेक्हम  
 ३५५, वेल ३५५, सूटर ३१०,  
 ३१५, स्पेन्सर ३११, ३३७  
 कुरान ४३, ५८  
 कुक्षेत्र ८, २३७  
 कुर्द पाशा और आरमेनियन हत्या २२०  
 कुलगुरु की दशा २४९  
 कूना १९४  
 कृष्ण १३३, २३८, २६२, और  
 बुद्ध १३६, गीता के मूर्त स्वरूप  
 २३८, गीतागायक २३७, २३९  
 'कृष्णसार मृग' ३८५  
 केट, कुमारी ३११, ३३७  
 केनोपनिषद् ७६ (पा० टि०)  
 केम्ब्रिज ३०५, ३१०  
 कैथोलिक २०४, क्रिश्चियन १६५,  
 ग्रीक पादरी २०३, बादशाह २१०,  
 मत २९४, रोमन ४३, सघ २१०,  
 सन्त १२७, समाज २०३, सम्प्र-  
 दाय २०३, २०९  
 'कैलिओपी' (ब्रिटिश जहाज) ५७  
 (पा० टि०)  
 कैलिफोर्निया २९२, ३०६, ३२०, ३३०-  
 ३१, ३३४, ३३६, ३४८, ३६४  
 कैस्पियन ह्रद २१३, २१७  
 कोकण ब्राह्मण १६९  
 कोन्नगर १५७  
 कोरियन १७६  
 कोल ब्रुक, कस्तान १५४  
 कोलम्बस (क्रिस्टोफोर कोलम्बस)  
 १८९  
 कोलम्बो १५६, १६५, १७३, १७५,  
 १७८, ३७१  
 कोण्टी ऑफ स्टारलिंग, जहाज १५५  
 कौन्टेस १७६  
 'क्रम-विकास' ४६  
 क्रिमिया की लडाई ३२९  
 क्रिश्चन १७५, ३९३, भगिनी ३६०,  
 ३८०  
 क्रिस्तान धर्म १९२-९४, धर्मग्रथ

१९२, पादरी २०५, २२०, राजा  
 २०८, रियाया १८२  
 क्रीट द्वीप २८३  
 कलावे, मादाम ३६०  
 'क्लासिक' ग्रीक कला २२२-२३, उसके  
 सप्रदाय २२३  
 क्लेरोइ ३५९  
 'क्वोरनटीन' २२१  
 क्षत्रिय २४८, सधिर ३३९  
 क्षात्रभाव २४४, २४९  
 खगेन ३४७  
 खगोल विद्या ८७  
 खिलजी २१६  
 खुरासान १४८  
 खेतडी ३७४, ३८०, महाराज ३६८  
 खेदिब इस्माइल १९०  
 ख्याल (गाना) २६०  
 गगा १०४, १५२-५५, १६८, १८७,  
 २५०-५१, २९८, और गीता  
 १४९, का किनारा १५१, जल  
 ७९, १४९, २३३, ३०६, ३४८,  
 तीर ७९, पार १६९, महिमा  
 १४९, सागर १५७, १६८, १७१,  
 सागरी डोगी १५७, सुरतरगिनी  
 १५०, स्नान २७१  
 गगाघर ३५०  
 गगोत्री १४९  
 गणेश जी १४९  
 गया ३८७  
 गयाशीर्ष पर्वत ३८७  
 गयासुर ३८७  
 'गाघाडा' १८४  
 गावार २१६  
 गावारी २१६  
 गिरीशचन्द्र धोष २४५ (देखिए गिरीश  
 वावू)  
 गिरीश वावू २४५, २५७  
 गीता ४, १०६ (पा० टि०), १०९,

१२९, १५२ ३ ८ (पा० टि )  
 ३५३ ३९५ (पा० टि ) जसका  
 मुक्त तस्य २३९ और भगा जस  
 १४९ और विमान्त २४ कर्म का  
 कर्म २३७-३८ तथा विमान्त १४४  
 गुजराल १४८ १६४ ३७५  
 गुजराली शाह्या १६९, २२  
 गुण तम २४८ २५५ रज १५  
 २४८, २५६ सत्य २४८  
 गुप्त महोदय २७१ सुरेन्द्रनाथ २८३  
 गुमीची १४९  
 गुणदेव ७९, २६२, ३ ६ ३१३  
 ३५ महाराज ३५ (बेदिए  
 रामकृष्ण)  
 गुह गृह-वास २२९  
 गुह नागक और रामकृष्ण १२९  
 गुसाईं जी १४८ (बेदिए तुलसीदास)  
 गेज धी ३६२  
 गे २ २  
 गेडिस अध्यापक ३१५  
 'गे' ४४  
 'गोशास्त्र' १६८  
 गोपाल दास ३९२  
 गोपाल साक विद्या ३८७-८८ ३९०-९२  
 गोकुण्डा गहाज १६३-६४  
 गोविन्ददास १४९  
 'गोसाईं' १७३  
 गोस्वामी तुलसीदास १४८ (पा टि )  
 गौतम २२ बुद्ध ५७  
 ग्रीक कला २२३ और जसका इति  
 हास २२२-२३ और जसकी तीन  
 अवस्थाएँ २२२ और विकास  
 २२३ कलासिक २२२ २३ जाति  
 १९१ कर्म २२१ पासा २२  
 पेद्रायक २२ प्राचीन १९२  
 भाषा १९२, १९६ मापी २१२  
 विद्या २१२ सभ्राट् २१९  
 श्रीमेकर १४३ ९४  
 श्रीस १८९९ ९ १ ५ विजय  
 २२३

स्वास्तिमर ३८९ ९१  
 शीप एन एन २५३  
 शक्रवर्ती अमीर २४८  
 शटपामी मौसी १५७  
 शट्टेनाथ्याय हरिदास २९ २६२  
 ३३ २६७  
 शम्भन नगर १५४  
 शम्भ २०-२, ३४ ३७ ७ मण्डल  
 १४१ लोक २४  
 शम्भुगिरि १६८  
 शम्भुगुप्त १९२, १९५  
 शम्भुदेव १९७ ३५६-५७  
 शम्भुनाथ ३७२  
 शम्भुमा २३ १ ४ ११२, १४१ ९ ७  
 शम्भु-सूर्य २६  
 शम्भुदास २७९  
 शम्भुदास २१५ तुर्क २१७  
 शम्भु ३८७  
 शम्भुका का शेष ३५४  
 शम्भु सुदि २४१  
 शम्भुदास ३८९  
 शम्भु-कला १४ २४३ कार २ ६  
 गृह २१२ मिनि १९६ शाखा  
 १६७  
 शम्भुकास (विशुद्ध बुद्धि) २१  
 शम्भुगुप्तम् १६८  
 शम्भुगुप्ता शास्त्र सैयब पाहर १५  
 (पा टि )  
 शम्भु १६३ १७४ १७७ २ ८९  
 मन्त्र २ ६  
 शम्भु १६३ १७६ १ ४-९५, २ ९,  
 २८७-८८ जेवी गहाज १८३  
 शम्भुकीय रोग-निवारक (magnetic  
 healer) ३ ६, ३२१  
 शम्भुदा १५४  
 'शम्भु' १७२  
 शम्भुदेव १३३ १७५  
 शम्भुदेव महाभूम २७९, २८१

चैतन्यवान् पुरुष ६८  
 चैतन्य सम्प्रदाय १६९, २७९  
 चौरवागान २६६-६७  
 'छठवी इन्द्रिय' २९२  
 छान्दोग्य उपनिषद् १९, ३७, ७२  
 (पा० टि०)  
 छुआछत १७१, १८३, १८५  
 जगज्जननी ३८१  
 जगदम्बा १९९, ३०८  
 जगदीशचन्द्र बसु (डॉ०) २०५ (देखिए  
 जगदीश बसु)  
 जगदीश बसु २०६  
 जगन्नाथ का मंदिर ३००, घाट १६८  
 जगन्नाथपुरी १५५  
 जगन्माता ३१२, ३२६, ३३५, ३४३,  
 ३४५, ३६१, ३७०, आदि शक्ति  
 २४२  
 जह पदार्थ और मन १२१, और  
 मन का प्रश्न १२२  
 जह विज्ञान २५७  
 जनक १४३  
 जनरल असेम्बली २६३, कॉलेज २५८  
 जनरल स्ट्राग (अग्रज मित्र) १६६  
 जप-ध्यान २५८  
 जवाला १९  
 जयपुर ३८९  
 जरुसलेम १९८, २००, २०५  
 जर्मन, आस्टेन्ड कम्पनी १५४, कम्पनी  
 १६३, डॉक्टर ३२३, पंडित बर्गस  
 १९४, भाषी २१२, मनुष्या २०८-  
 ९, लॉयड १६१, सम्यत २०७,  
 सेनापति २०८  
 जर्मनी १६३-६४, २०७-८, २१०  
 जलनोया, मोशियो ३६०  
 जलागी नदी १५४  
 जहाज १६०-६१  
 जहाजी गोले १६०  
 जाजीवार १४९

जाति, आसुरी और दैवी सपदावाली  
 १०६, आस्ट्रिय २०९, और देश  
 १९५, तमिल १७५, तुरस्क २१६,  
 तुर्क २१६, दोरियन २२२, वालिव  
 १९७, यहूदी १९७, विद्या १९४,  
 हिन्दू २१७  
 जॉन फाक्स ३४८  
 जान्स्टन, श्री ३६६, श्रीमती ३३५,  
 ३६८  
 जापान १७४, २२७, २३४, २३६,  
 २४७, ३७२-७३, ३७५-७६, ३७९,  
 ३९३, ९४  
 जापानी १७६, १९४, चित्रकला २३४,  
 मित्र ३७८, ३८६, ललित कला  
 ३७५, सज्जन ३९३  
 जाफना १७५  
 जार्ज, श्री ३५५  
 जावा १४९, १६८  
 जिनेवा १८९-९०  
 जिहोवा की उत्पत्ति ३४९  
 जीव और ईश्वर ८३, ११०  
 जीवन और मन का नियमन १२१  
 जीवन्मुक्त और उसका अर्थ ७१  
 जीवाणु-कोष ४७  
 जीवाणु विज्ञान शास्त्री २९६  
 जीवात्मा ५२, ५४-५, ९१, १००,  
 १०६, ११०, ११३, और शरीर  
 का सबध ११०, कोष ४७, निर्गुण,  
 समुण ४१  
 'जीवित ईश्वर' २९  
 जीविसार (protoplasm) ८०  
 जीसस ३१७  
 जुल बोआ २०१-२, २१९, ३६६, ३७६  
 (देखिए बोआ)  
 जूडास इस्केरियट ३१७  
 जे० एच० राइट २८६  
 जेम्स और मेरी (चोर बालू) १४९,  
 १५५  
 जेम्स, डॉ० ३५५-५६  
 जेहावा १०३

जीन धर्म १३३

जो ३ ५, ३१२ ३१५, ३१८ ३२०-  
२३ ३२८ २९ ३३२ ३४ ३४५,  
३५५-५७ ३६२ ३६५ ६६ ३६८  
३७ ७२, ३७५-७८, ३८१ ३८६  
३९३ ९४ (बेसिए जोसेफिन मैरिल-  
मॉड)

जोसफ स्ट्रीट ३ ३ ३ ५

जोसिफुस १९८ ९९

जोसेफिन मैरिलमॉड ३ ५, ३१८  
३२८, ३३१ ३३४ ३४५ ४६  
३५५, ३६२ ६३ ३६५, ३७०-  
७१ ३७५, ३७७-७८ ३८१  
३८६ ३९३-९४

जोसफिन रानी २१

ज्ञान ७१ ७५ ९५, १३५, ३४३  
इन्द्रिय जनिता ३३३ उमकी  
निष्पत्ति ८४ उसके मूल सूत्र  
३८ और मक्ति २७२ और  
सत्य दर्शन २७४ कण्ड २३  
पुस्तकीय २३२ प्राप्ति २७४  
मनुष्य के भस्तर ४७ योग ११४  
२७२ योगी ७८ गुप्त ७३

जाता ८५

जासी की रानी २७७

जप्पा २४६ ४७ २६

जर्क स्ट्रीट ३ ८ ३१ ३११ १५,  
३१८ ३२ ३२९, ३२५, ३२७-  
२८

जकेमी बाबसाह १८१

जाटा श्री ३७१

जॉमस-आ केमिस १७

जोरपिडी १५९ ६

जोसिफ नामा १५३

जुल १७८

जैरा कोटा ३८९

जेहरी १४९

ज्युटानिक जहाज ३१५

जार्ज श्री ३१

ज्यामबाल ३२

जिम ३३७

जानुर २५५, २५८ (बेसिए राम  
जुल) देवता १७०

जब १७५, १९४ निमकार २१२  
सम्प्रदाय २१२

जॉ. जेम्स ३५५-५६ जोस ३६७

जोसन ३५५ हीमर ३११ १२,  
३२२ २३

जयमण्ड हारवर १४९, १५१

जयानिसिमस २२१

जोरबिन २९०

जिट्टापट ३२७ ३४४

जिट्टापट ट्रिप्यून २९७

जिट्टापट, फ्री प्रेस २९३

'जेलवर' ३२८

जेविल (बीजान) १ ४

'जोस' १६९

जप २६

जोका २७१-७२

जोय और जात्य प्रबंधना २४१

'जोय' २५९ ६

जलमान १ ५ वर्षी १ ९ बार  
१ ९

'जलमसि' १ ४६ ७८, १ १

जमिक १६९ जालबाइ १७ जुल  
१७५ जाति १७५ रोस १३९

जापा १७५

जमोमुन २४८ २५५-५६

जर्कशास्त्र ७३ ४

जात्रिक पत्रिका २४१ जूजामनाडी २४१

बाइ २३७ जाजना २४२

जाजमहाज २९

जास्तार-जुल २१३ नदी २१२

जातापी १९५

तारादेवी १७६  
 तिव्वती १७६, २१३  
 तीर्थयात्रा ३६९  
 तु-भाई साहब १४८, १५०, १५३,  
 १७२, १७७ (देखिए तुरीयानन्द  
 स्वामी)  
 'तुम' ६८-९  
 तुरस्क २०८, मन्नाट् २१६  
 तुरीयानन्द, स्वामी २७१, ३०४, ३१२,  
 ३१८-१९, ३२५, ३४४, ३४६,  
 ३४८-४९, ३५३, ३५८  
 तुर्क १८९, १९५, २१३, २१९, २२१,  
 और मुगल २१६, जाति २१५-  
 १६, वंश २१५  
 तुर्किस्तान २१५, २८३  
 तुर्किस्तानी १५१  
 तुर्की १७९, २००, २०८-९, २१२-  
 १४, जाति २१६, सुल्तान १९०  
 तूरान १९५  
 तूरानी १९५  
 तेलुगु (बोली) १६९  
 तोडादार 'जजल' १६०  
 त्रिगुणातीत, स्वामी १४७ (पा० टि०)  
 त्रिवेणी १५३, घाट १५३  
 'त्रेजासिएन, त्रेसविलिजे' २०१  
 'त्व' ११३  
 थर्सबी, कुमारी ३०३, ३२१  
 थियोसॉफी ३२३  
 थेरापिउट १८१  
 थेरापुत्तस २८२  
 दक्षिण देश १७०, मुल्क १६९  
 दक्षिणी ब्राह्मण १६९  
 दक्षिणेश्वर २३२, २६२, ३३०  
 दहम ९४  
 'दम्जी' १९७  
 दरियाई जग १६०  
 दर्शनशास्त्र २०२, २७५, २८३  
 दार्त (बुद्ध भगवान का) १७६

दादू १६९  
 दामोदर नद १५५  
 दामोदर-रूपनारायण (नद) १५५  
 दार्जिलिंग ३२०, ३७२, ३७५  
 दार्शनिक सिद्धान्त ४४  
 दाशरथि, सान्याल २६०-६१, ३६७  
 दाह पद्धति, उसके कारण ९४  
 दिनेमार १८९-९०  
 दिल्ली २१५, ३८९  
 'दी अपील-अभालास' २८९  
 दीनू ३४७  
 दुर्गा प्रसन्न ३०९  
 'देव' १०४  
 देव-दूत ३९४, पूजा १३९  
 देवयान ४, २४  
 देव वर्ग १३०  
 देश, काल ९६, ११९, और निमित्त  
 ६९, ७४-६, २७५  
 देशी सिपाही १६६  
 'देवी सारा' २०१  
 द्वैत ९०, १७०, २७३, और ईश्वर  
 ६८, की भावना २४१, की भाषा  
 ११३, माव ५१, ५८, २४१,  
 २७२, ३१७, भावात्मक धारणा  
 ५२, मत ५३, वाद ३१, ५३-  
 ४, ५८, ६०, ८९-९०, वादी ४८,  
 ५२-५५, वादी और उनके विभिन्न  
 मत ५६  
 धर्म ३, १४, २१, ४०, ४२-३, ८९-  
 ९०, १०८, १६१-६२, १७६, १८०,  
 १९१, १९६, १९९, २०५, २१३,  
 २३०, २५२, २९०, २९४-९५,  
 ३३९, आधुनिक बौद्ध ३९४,  
 ईसाई ५८, १३७, १८१, २५३,  
 २८७, २८९-९०, उसका अंग २९३,  
 उसका निम्नतम रूप १०३, उसका  
 प्रयोग २९१, उसका लक्ष्य २९१,  
 उसका व्यावहारिक रूप २३,  
 उसकी हानिकारक प्रवृत्ति ५३,



और आवर्ध १ और उपयोमिता  
 का प्रश्न १२ और वैज्ञानिक  
 पद्धति ३८ और संप्रदाय २९३  
 और सान्त्वना ४५ कथाएँ १७  
 किस्तान १९२ १४ १९८ गुह  
 २४९ २५१ २७७ प्रथ १०७  
 २४१ ३४ प्रीक २२१ जीवन  
 २५५ जैन १३३ बीया ३  
 नम हिन्दू ३८८ पिपासा २५४  
 पुस्तक १०३ पौराणिक २५३  
 प्रकार १७४-७५, १८१ २९४  
 प्रकारक २९४ ३ प्रोटेस्टन्ट  
 १७८ बीय ४ १३ २१६,  
 २४१ ३८७-८८ बीय और हिन्दू  
 में भेद १३८ भारतीय १३३  
 मार्ग १३ मुसलमान १७९,  
 २१६ मुसलमानी १८९ २१८  
 पहूरी १९८ विधि १३९ विभक्त  
 सम्मल (व्यावहारिक) १ ५  
 विद्यालय ५८ वैष्णव १३ १७  
 व्यावहारिक विज्ञान २६ वास्तु  
 २२१ शिला २९१ संबंधी  
 विचार ४३ संस्कार ३९४ ९५  
 धनुष ईस्वरवादी ३९ सनातन  
 २५४ सनातनी हिन्दू १२७  
 भाषण २४९ साधना २४९  
 हिन्दू १३३ १६९, २९१ ९५  
 २९४ हिन्दू बीय संबंधी विचार  
 १३  
 बर्मापेठ्या २५५  
 व्यापयोग २४२  
 धुप २९  
 धुपपत्र २४७  
 मजतदाब डॉ १०१  
 मङ्गल १ ४  
 मबी (Prophet) १ ८ सम्प्रदाय  
 १९८  
 'ममी नारायणाय १५  
 'ममी ब्रह्मणे' १५

मरक २६-८ ५९ १११ १७४ ३४३  
 कुम्ह ३३  
 मरसिहाचार्य १७१  
 मरेन २६ २६७ (वेसिए मरेन)  
 मरेन २५८ ६२ ३६३-६८ ३५  
 (वेसिए मरेननाम)  
 मरेननाम २५८ २६५, २६७ (वेसिए  
 विश्वकानन्द, स्वामी)  
 नवद्वीप १५४ (पा टि )  
 नवनिधि ११४  
 नव व्यवस्थान (New Testament)  
 १ ६ १९३ १९८ ९९  
 नाथ-यूजा २१८  
 'नाथ-व्यवस्था' ३५८  
 नाथक १३९  
 नाथ-कीर्तन २७९ रूप २५ १२३  
 रूप माया १४२  
 नाथ वेदवि ३७  
 'नाथीय सूक्त' ३६७  
 नाथयज्ञ उसका स्तोत्रार्थ १५५  
 नाथी शिक्षा का रूप २७७-७८  
 नाथ ३७६  
 'नियम' ३८  
 नियार्कस (सेनापति) १८९  
 निरंजन ३८९ ३९१  
 निराशावादी ९४  
 निर्गुण पुस्तक ४२ भाग २८ मठ ३१  
 भाग २९ ४५  
 निर्वाण २९६  
 निर्वाणपदक ७२ (पा टि )  
 निर्विकल्प समाधि २११  
 निवेदिता ३ ३४ ३१ ३१४ ३१९,  
 ३२४ ३३ ३३८ ३९ ३४२  
 ४४ ३५ ३५२, ३५५, ३५८  
 ३६४ ३८४ ३८८ ३९ ९१  
 निष्काम कर्मयोग २३२  
 नीची १९४  
 नीतिकार २ ६  
 नीतिशास्त्र १२ १९, १८ ४३ ६  
 ८२

'नील' नद १९६  
 नीलाम्बर वावू २४५, ३८३  
 नुई देवी १९६  
 नृत्य-कीर्तन १७५  
 नेग्रिटो (छोटा नीग्रो) १९४  
 'नेटिव' १६१-६२, १८९  
 नेटिवी पैरपोशी १६६  
 नेपल्स १८३, १९९  
 नेपाल ३७०, ३७६, ३८१, ३९२  
 नेपाली १७६, १९४, सज्जन ३९२  
 नेपोलियन २१०-१२  
 नेप्चून का मंदिर २२१  
 नैदा ३९०  
 नैनीताल ३७३  
 नोबल, कुमारी ३१३, ३३७  
 न्यायशास्त्र ७४  
 न्यास-सलेख ३४९, ३५४  
 न्यूयार्क १५०, ३०५-७, ३१८-१९,  
 ३२१, ३२७-२९, ३३४-३६, ३३८,  
 ३४२-४३, ३४५-४८, ३५४, ३६६  
 पचवटी ३३२  
 पजाव १९५ (पा० टि०)  
 पजाबी जाट १७५  
 पद्म-पत्र ७१  
 पद्मा १५३  
 'पन्ट' १९६  
 परम तत्त्व ११३  
 परम सिद्धावस्था २७३  
 परमात्मा १०६, ११०, ११३, १५१,  
 २४१, शाश्वत १०८  
 परमानंद १४२  
 परमेश्वर ११२, २४१, २७२-७३,  
 'प्रेममय' २७२  
 परशुराम २४९  
 परामक्ति २७३  
 परिणामशील ४९  
 परिणामी जगत् ५०  
 'पवित्र गऊ' ३४५  
 पाचाल ३

पाचाल राज २२  
 पाइरिउसटि बन्दर २२१  
 पाइलट फिश १८५-८६  
 पार्डन स्ट्रीट ३१२  
 पाचियाप्पा कॉलेज २२१  
 पाटलिपुत्र १८२  
 पाप १८, ३१, ६१, १०४, १०९,  
 १७३, २३२, २६९, २७३-७४,  
 ३०४, और उसका रूप या अर्थ  
 ११, और पुण्य १०, और भ्रम  
 ७, और वेदान्त ११  
 पारथेनन २२१  
 पारमार्थिक सत्ता ४१, ४६, ५०  
 पारसी ९४, दूकानदार १७९, मत  
 १९७, बादशाह १९७  
 पार्वती १७५  
 पाल-जहाज १५८  
 पॉलीक्लेट २२३  
 पॉलीक्लेटस २२१  
 पाश्चात्य आदर्श ७९, २३६, और  
 प्राच्य सगीत २४५, और भारतीय  
 कला (स्थिति और अंतर) २३५,  
 केन्द्र १८९, जनघोत १५०, जाति  
 २३७-३८, ज्ञान २५४, दर्शन  
 २७५, देश ७९, १४७, (पा०  
 टि०) २०१, २२८, २३५-३६,  
 २३८, २४९, २५२, २५८, पद्धि  
 २७५, प्रणाली २३९, बुध मण्डली  
 १९९, लोग ११०, विजेता २३९,  
 विज्ञान २२७, २३०, वेदान्तयुक्त  
 विज्ञान २२९, शिक्षा २३५,  
 सगीत २४६-४७, सम्यता २२९,  
 ३५४  
 पितृगान ४  
 पिरामिड ९३-४, १८१  
 पिलोपनेश २२२  
 पिलोपेनेसियन २२३  
 पी० एण्ड ओ० कम्पनी १६१, १६५  
 पुराण-संग्रह १७०  
 पुरी १७३

पुरोहित-सम्प्रदाय ४३  
 पुस्तक बेस १८  
 पूजा-सूत्र ११९  
 पूजा-पाठ १ २  
 पूजा ३७१ ३७५  
 पंजर हियासान्धे २ ३४ २१९ २  
 पिरा २१९  
 पेरिस १५ २ २ ३-५ २ ७  
 २१३ ३ ५ ३१६ ३२१ ३२३  
 २५ ३३४ ३४८-५ ३५२-५५  
 ३५९ ६२ ३६४ ३६६ ६८ ३७९  
 नगरी २११ प्रदर्शनी २ ६ २१७  
 काष्ठे २ ६  
 पेरिस गहरी ३५९  
 'पोस्ट' २१९  
 पोप २१  
 पोर्ट टिब्रिक २६२  
 पोर्ट सर्विस बन्दरगाह ३६२  
 पोर्तुगाल १८९ ९  
 पोर्तुगीज १५४ १७५ डाकू १६८  
 सेनापति १७९  
 पोस्ट ऑफिस के क्लरेस्ट ३५३  
 पीराणिक कथा २३८  
 प्यारी मोहन ३९२  
 प्रकृति ३४ ८ ९ ९२ ११३  
 १२ १४४ अनाथि अनन्त ८९  
 आत्मा के लिए १२७ आन्तरिक  
 और बाह्य १२०-२१ उसका  
 आत्म १२१ उसका उपयोगी अर्थ  
 १ ७ उसका विकास का सिद्धान्त  
 ९८ और व्यक्ति का सम्बन्ध १२३  
 बटनार्थों की समष्टि १२१ बाती  
 १२४ पुस्तक ९८ विशेषयुक्त  
 १२  
 प्रतिक्रम बेहू १३४  
 'प्रतीक' रामकृष्ण मिशन का ३४६  
 प्रतीकवाद १३५  
 प्रत्यक्ष अनुभूति ७१ १३५ बोध  
 १३५ बाती २९ ४१ ४९  
 'प्रत्यक्षता' ८६

प्रत्ययात्मक भावार्थ १२८  
 प्रपञ्चगोता १११ (पा टि )  
 प्रभुसु मारत ३१८ १९, ३२४  
 प्रभु १२८, २३९ २४५ अन्तर्गामी  
 २४ आत्मत्वमय ३४ ७ सर्व  
 इतर १६  
 प्रमदानास मित्र ३५ (पा टि )  
 प्रथम १५२  
 प्रवाहन जीवन राजा ३  
 प्रशान्त महासागर ५७ ३१  
 प्रधिया २ ९  
 प्लेटो उनका सिद्धान्त १२८  
 प्लेस ड एलाद् मुनि ३४७-५ ३५३,  
 ३५५, ३५७ ३५८ ६  
 प्रायैतिहासिक युग १ २  
 प्राचीन अधि २६ वेगम्बर ५७ ऊपरही  
 ३५, ११६ बौद्ध उनका मठ ५  
 प्राचीन व्यवस्थान (Old Testament)  
 २ ७६ (पा टि ) १ ६  
 'प्राण' ८५  
 प्राण जीवन का मूल तत्व ३७  
 प्राणायाम २५७-५८  
 प्रिंस ऑफ वेल्स २ १  
 प्रियनाथ मुखोपाध्याय २५७ सिन्हा  
 २२७  
 प्रेम १७ ६ १११ २७९-८ २८८  
 अनुभूत १२९ अपाधिक स्वर्गीय  
 २३८ अर्धम और सहीम ६  
 आत्म की अभिव्यक्ति १४  
 उसकी महत्ता व्यापकता १५ परि  
 पारक सक्ति ६ पशु प्राणी से  
 १३ प्रतिपोषिता का मूक ६ मार्ग  
 २८ मूक ६ सूक्ष्म रूप ७७४  
 स्वर्गीय २३८  
 प्रेमानन्द स्वामी २७१ ३५१  
 'प्रिय पैप' १५९  
 प्रिन्सिपल २२३  
 प्रो विजियम वेम्स ३५५ (रेबियर् ऑ  
 वेम्स)  
 प्रोटेस्टेंट बर्म १७८

'प्रोटेस्टेन्ट-प्रबल' २१०

फक, श्रीमती ३६१

फरात १०४

फान माल्त्के २०९

फारस १९४, २१३, २१५, २१६-१७,  
जाति २१६

फारसी २१७, प्राचीन ३५, ११६

फार्डिनेण्डलेसेप्स १८८

फिडियस (कलाकार) २२१, २२३

फिनीशियन १९१

फिलिस्तीन १९१

'फिलो' १९८

फेटिश, उसका अर्थ १३४ (पा० टि०),  
पूजा १३४-३५

फेरिस-चक्र २९१

फेरो (मिस्र का बादशाह) १८०, १९०

फेरो-वश १८१

फास १६४, १८०, २०१, २०७, २१०-  
११, २२०, २४७, ३०३, ३२०,  
३२६, ३४४, ३४९, ३५७, ३५९,  
और जर्मनी में अंतर २०७

फासिस लेगेट ३५५

फासीसी १५४, १७९, १९०-९१, २००-  
१, २०४-५, २०९, २१४, पुरुष  
२०१, भाषा १९४, विद्वान् २२२-  
२३

फिस्को ३०८, ३१३, ३२१

फेच चाल २०९, जहाज ३४६, जाति  
२१२, डिक्शनरी ३१६, भाषा  
२००, २०३, २१९, ३२५, ३५३-  
५५, लेखक ३६०, सम्यता २०७,  
स्त्री-पुरुष २११

फ्लोरेंस ३७४

वग देश १५३, १६५, १६८, १७१,  
१७५, पूर्व १६५, भाषा २०२,  
भूमि २०५, २७०-७१, भूमि  
और उसका रूप १५१, सागर  
१५७

वगला १६६, १७६, १७८, भाषा  
१९७, १९९

वगाल १६८, १७६, २०१, २४३,  
२७५-७६, २८०, २९०, ३६३,  
३६८-७०, ३७२, ३७८, ३८१,  
आधुनिक १३६, देश १७६, पूर्व  
१५६, पूर्वी ३७३-७५, ३७९, प्रदेश  
१८२, में कुल गुरु प्रथा २४७

वगाली १४८, १६८, नौकर १६५,  
भाषा १७६ (पा० टि०), मकान  
३८८, राजा विजय सिंह १७६,  
लडकी २०२, साहित्य २८०

बगोपसागर १६८

बकासुर १५७

बगदाद १९०

बडौदा ३७१, ३७३

'बदफरिगम' ३००

बनर्जी, एम० एन० ३८३, श्रीमती  
३१८, ३७२

बनारस ३८९

बन्धन ३०, ४७, ७८, ११०, १२४,  
१४०, ३३२, ३४२-४३

बम्बई १६३, १६५, ३७१, ३७५-७६,  
प्रेसीडेन्सी ३७८

बरखजार्ड १६०, २१६

बरमी १७६, १९४

बर्गस (जर्मन पंडित) १९४

बर्गेन शहर १६३

बर्दमान नगर १४९

बर्लिन १५०

'बल का आदर्श' १३२

बलगेरिया २१३-१४, २१८

बलगम बसु २४७

बलराम बाबू २३७, २६९, २७१  
(देखिए वसु, बलराम)

बलिराज १४८

बसु, जगदीश चन्द्र (डॉ०) २०५, बल-  
गम २४७, रामतनु २५८

'बहुजनहिताय बहुजनमुखाय' ५८  
बहु विवाह १६१

बाँकीपुर १५४  
 बाह्विष्ठ २ २९ ३४ ४२, ७३  
 (पा टि) १७ १९१ १९३  
 १९७-९८  
 बासबाजार २३७ २४८, २५७  
 बान्ताम राहुर (बाभिम्य केन्द्र) १६८  
 बाबुलिन १९३  
 बाबिक १९ १९३ २२२ पाति  
 १९७ प्राचीन १९५ साहसी १९१  
 बाबिकी १९७  
 बाबिकोमिया १९५  
 बाबोली प्राचीन १९४  
 बाबुराम ३५ ३९२ (देखिए स्वामी  
 प्रेमालम्ब)  
 बार्नहार्ड २ २ २११ १२  
 'बास' १९७  
 बाळ गंयावर तिलक १९६  
 बाळ ब्रह्मचारी १५ विवाह २७५-७६  
 बास्य विवाह १६१  
 बिछीमिरी १७१  
 बिस्मार्क २ ९  
 बी आई एच एन कम्पनी १६१  
 बुक कुमारी ३४४ ३५५ श्रीमती ३४७  
 बुकछाप १७  
 बुडापेस्त २१४  
 बुट १८, १२७ १४३ २९४ और  
 महिसा १३२ और उनका देवत्व  
 १४२ और उनका महाप्रयाण  
 २९६ और कृष्ण १३६ और चर  
 बाहा १३७ मगधान् १७६ (देखिए  
 बुद्धदेव)  
 बुद्धदेव ३१  
 बुद्धि ४३ ८४ उसका अनुसरण ४४  
 और मानना १७ और हृदय १८  
 बुर्गे बंस २११  
 बुकगेरिया २१४  
 बुक श्रीमती ३ ५ ३१५ ३१८ ३२८  
 ३३१ ३५ ३५ ३५६ ३५८  
 ३६६ ३७६ ३८२ ३८८ ३९२ ९३  
 बुद्धेवर हिंस बुद्धम ३४८

बुस्मार २१५  
 बृहदारण्यकोपनिषद् ६९ ७२ (पा  
 टि)  
 बेंजमिन मिस्स ३ ३  
 बेदूस श्रीमती ३३४  
 बटी श्रीमती ३९३  
 बेडास्ति सरब १८२  
 बबीसोन १८९  
 बेबीकोनिजन उनकी मारणा ९३  
 बेसूङ माँ ३८३ मठ २२७ २३७  
 २४५ २६३ २६५ २६८-७१  
 २७३-७५ ३७७-७८ ३८०-८१  
 ३८३-८४ ३९४  
 बेसगाई मायाम ३५९  
 बोया मस्य २ ६ (देखिए बुक बोया)  
 बोमरा १७७-७८, १८  
 बोभगया ३८७  
 बोनापार्ट २१ बंस २११ छत्राणी  
 २११  
 बोया श्री ३५९, ३६३, ३७ ३८१  
 (देखिए बुक बोया)  
 बोस डॉ ३६७  
 बोस परिवार ३४  
 बोस्टन ३५६  
 बोड्ड ४ ९२ अनुधासन १३८  
 उत्तर प्राचीन ३८९ उनका मठ  
 ५ और हिन्दू १७५ और  
 हिन्दू बर्म में भेद १३८ कट्टर  
 १७४ त्यागी २१७ बर्म ४  
 २४१ प्रचारक १७४ प्राचीन  
 ४८ मिश्र १७४ मठ ५ ५३,  
 १३८ ३८७ युग २३८ सङ्की  
 १७६ साहित्य ३८७ पीछोती  
 १७३  
 ब्रह्म ६ २ २२, २७ ४५ ६, ७७  
 ८३, १ ५, ११३ १३ २९२,  
 ३८७ अनुभव २५ अनुमति २४  
 चिन्तन २३९ ज्ञान २१ २३१  
 तत्त्व ८३ देव १७६ निर्गुण २९  
 ११८ पुरुष ४६ पूर्ण २६६ फल

१४८, लोक २४, १४१, विद्या ४,  
सर्वव्यापी २३, साक्षात्कार २१,  
सूत्र ३८७  
ब्रह्मचर्य ३६६, अखण्ड २५०, २५५,  
और उसकी महत्ता २५६, जीवन  
का गौरव ३९५, पालन २३२,  
भाव ३९४, व्रत २४२  
ब्रह्मचारिणी और उसकी आवश्यकता  
२७८  
ब्रह्मचारी २०, २७२, २९०, ३४७,  
३६५, और उसकी आवश्यकता  
२७८, पुरुष ३९४, शिष्य १९  
ब्रह्मपुत्र ३७९, नदी ३७२  
ब्रह्मभावापन्न २२  
'ब्रह्मवादिन्' १७२  
ब्रह्मा ७६, ३४२  
ब्रह्माण्ड ६, २३, २६, ३०-१, ३३, ६८,  
७०-१, ७६, ७९, २८४, ३१८,  
जगत् ६९, ७३, स्वरूप ७३  
ब्रह्मानन्द, स्वामी २५७, ३०३, ३०६,  
३०९, ३५१, ३६४, ३८३, ३८८,  
३९२  
ब्राजनिंग १३७  
ब्राह्मण १९, उडिया १६९, कुल २४८,  
कोकण १६९, गुजराती १६९,  
२२०, २४८, दक्षिणी १६९  
ब्रिटिश कौन्सिल ऑफिस ३५०  
ब्रिटिश जहाज ५७, म्यूजियम १९३  
ब्रीटानी ३५९  
ब्रेस कम्पेन ३५९  
ब्लाइेट, श्रीमती ३१२, ३३७  
ब्लावट्स्की, मैडम २९२  
भक्ति, और त्याग १४२, और द्वैत  
२७२, और श्रद्धा २३२, के पाँच  
प्रकार २७२, ज्ञान मिश्रित २८१,  
परा २७३, मार्गी २७३, योग  
२७१-७२  
भगवत्प्राप्ति २८०  
भगवद्गीता ४ (देविए गीता)

भगवान् २२, ५९, ७१, २३०, २४१,  
२४४, २४९, २७३, ३३६, और  
उच्चतर भाव ३५, हृदय-स्थित ६२  
भगिनी क्रिश्चन ३६०, ३८०, निवे-  
दिता ३०४, ३१४, ३२४, ३८-३९,  
३४२-४४, ३५०, ३५५, ३६४,  
३८४, ३९०  
भागीरथ १८७  
भागीरथी १५४  
भारत २९, ४०, ४९, ९७, १०४-५,  
११६, १४०, १४४, १६४, १६७-  
६८, १७३, १७५, १७७, १७९,  
१८२-८३, १८८-८९, १९१-९६,  
२०१, २१५-१६, २२९-३०, २३२,  
२३४, २४२, २४६, २४८, २५४,  
२५७, २७५, २८५-८७, २९२,  
२९५, २९७, २९९, ३०५, ३२०,  
३२४, ३३१, ३३३, ३३९, ३४१-  
४२, ३४४, ३४७, ३५०-५१,  
३५५, ३६१, ३६३, ३६६, ३७३-  
७४, ३७८-७९, आधुनिक १५३,  
उत्तरी १६९, उसका उच्च भाव  
२५४, उसका सदेश १२७, उसका  
हित २३३, उसके निवासी १०६,  
उसके श्रमजीवी १९०, और  
आत्मा विषयक धारणा ९५, और  
उच्च वर्णवाले १६७, और उसकी  
सहिष्णुता १६७, और कृष्ण १३३,  
और जन समाज २५४, और  
जीवन शक्ति १६७, और दुर्भिक्षो  
की समस्या २५०, और पश्चिमी  
देश में अन्तर १२७-२८, और  
प्राचीनतम दर्शन-पद्धति १२१,  
और 'महान् त्याग' १३७, और  
वैष्णव धर्म १३०, और सामाजिक  
नाम्यवाद १३४, की लक्ष्मी १८९,  
धारणा ९५, पश्चिमी २४३,  
प्राचीन १९, १०८, भक्त २०५,  
भूमि ३८८, भ्रमण २०२, महा-  
सागर १७२, १७९, माता ३४५,

में स्त्री-शिक्षा १३९ साहित्यप्रिय  
 २९६ धर्या मन्त्रिका ह्यास २६९  
 भारतीय उसकी आत्मा विषयक भार्या  
 १७ उसकी विशेषता १२१  
 कसा ३८९ जाति ३४ बाक-  
 विभाग ३७९ तत्त्वचिंतक (प्राचीन)  
 और शरीर संबंधी भार्या १६  
 धर्म और उसका बोध १३३ नारी  
 २७७-७८ प्रयोग १३४ मन  
 १२१ महिला २७८ वाणिज्य  
 १८९ विचारबारा १२१ बिहोड़  
 २९८ बेस-भूषा २३६ समाज  
 २९८ सामु ३५६ स्त्री २९८  
 भावना उसकी महत्ता और व्यापकता  
 १८  
 भावनादी ४९  
 भाषा ज्ञेयी २ १ २ ४ २१३  
 ईरानी १ ४ श्रीक १९२ १९६  
 तमिल १७५ फ्रांसीसी १९४  
 फ्रेञ्च २ २१९ २५३-५५,  
 ३२५ बग २ २ बंगला १९७  
 १९९ गुरुजी १९८ संस्कृत १ ४  
 १ ९, १९३  
 भाष्यकार २२  
 मिथु-संन्यासी ३६१  
 भुवन मोहन सरकार  
 भूटानी १७६  
 मूटिया १९४  
 भूमध्य सागर १८३ १८८, १९१  
 १९६ २ ३ २ ५, २८२  
 'मेका' १५६  
 भैरव-सौपताक २६६  
 भैरवी-एकताका २६१ सौपताक २६७  
 भौतिक तत्व ८९ बाब १२२ २९२  
 बाबी २९ विज्ञान १४ वास्तव  
 २३  
 बंगोल १९५ जाति १९५  
 बंगोमार्कि (डोने बंगोल) १९५  
 बंग-दीवा २४९

बबो-बबो १ ४  
 बर्सीमियन २२२ कका २२२  
 मठ, बेकूक ३६३ ३६५, ३६९-७१  
 ३७१-७५, ३७७-७८ ३८०-८१  
 ३८३-८६ ३९४  
 मठबाब १३८  
 'मबर' ६ ८ ३१७  
 मद्रास १५ १६८ १७१ १७७ २२१  
 ३६५ ३६९ ३७५ और तमिल  
 जाति १७ जर्नल ३८८  
 मद्रासपट्टम् १३८  
 मद्रासी १९९, १७०-७१ जमावार  
 १७ तिसक १६९ मित्र १७१  
 मधुर भाब २७९-८१  
 मध्य वेदा १५६  
 मध्य मुनि १६९ सम्प्रदाय १६९  
 मर्म १८ (पा टि)  
 मनुष्य ४४ २७ उसका प्रकृत  
 स्वरूप ६२  
 मनोमय कोम १४१  
 मनोविज्ञान १४ २५४ २५७  
 मलाबार १७ १९६  
 मलायलम (मलाबार) १५१  
 मलापी १९४  
 मसीहा ३४  
 महाकाली पाठशाळा १४  
 महा निर्वाण मूर्ति १७४  
 महा प्रयाग और बुद्ध २९६  
 महाभारत २३३  
 महामाया २४२, ३६६  
 महाभारत १७६ २१६ मठ ३८७  
 महापादु १६४  
 महाविषयक रेखा १५७  
 महावीर १४७-४८, १७५  
 महिम ३४८  
 महि-जोदारी १९५ (पा टि)  
 महेश्वरनाथ गुप्त २७१  
 मा १३ १५ ३ ७ १ ९, ३९६  
 ३२ ३ ३३२ ३३ ३५९  
 मा बुलबुलकिली २६१

- मागची भाषा १७६  
 माता जी (महाकाली पाठशाला की  
 सस्थापिका) १४०  
 मातृभूमि २७८  
 मादमोज़ेल २०१, ३६३, उसका  
 अर्थ २०१  
 मवुकरी ३९०  
 मानचू १९५  
 मानव-आत्मा २९  
 मानवतावादी १४०  
 मानसिक विद्या २९२  
 मानिकी १८१  
 माया ३१, ७५, ७६, ९२, १०९, ११३,  
 १३६, १३८, १६७, २७१, २७३-  
 ७४, ३८७, अमरावती २०६,  
 उसका अर्थ १२३, उसकी परि-  
 भाषा १४२, उसकी व्यापकता  
 २७५, जाल ७५, नामरूप १४२,  
 पाश २७३, मोह ७०-१  
 मायातीत अवस्था ७५  
 मायामय ६८  
 मायावती ३४७, ३६६-६८, ३९३  
 मायावरण २७  
 मारभोरा २२१  
 मारवाड १८२  
 मारवाडी २३०  
 मार्गट ३१४, ३२४, ३३५-३७, ३४३,  
 ३४५, ३५५-५६, ३६९-७०, ३७२,  
 ३९३ (देखिए निवेदिता, भगिनी)  
 मार्गरेट ३०५  
 माटिन लूथर २०३  
 मासॉइ १८३, १९९  
 मालद्वीप १५७, १८४  
 मालाबार १८०  
 'मालिम' १६५  
 माल्टा १४९  
 मासपेरो १९३-९४  
 मास्टर महाशय २७१-७२ (देखिए  
 महेन्द्रनाथ गुप्त)  
 माहिन्दो १७४  
 मि० श्यामीएर १७१  
 मित्र, प्रमदादास ३५०  
 मिल २७५, २९०  
 मिल्टन १३७, श्रीमती ३२२, ३२७,  
 ३३५  
 मिल्वार्ड एडम्स, श्रीमती ३३७  
 मिस्र १८०-८१, १९१, १९८, २०२,  
 २०५, २२१, ३६०, जाति २२२,  
 देश १०६ १९३, देशवामी १०३,  
 पुरातत्त्व १९३, प्राचीन १९०,  
 १९५-९६  
 मिस्त्री ९३-४, आदमी १८३, उसका  
 प्राचीन मत १८१, सभ्यता १७०  
 मुकुन्दमाला १११ (पा० टि०)  
 मुक्ति ३४, ५५, ६७, ७५-६, ९७,  
 १२३-२४, २७२, ३१७, ३४१-४२,  
 अमरता से अविच्छिन्न सबध ११७,  
 उसका अर्थ ११६, उसका सरलार्थ  
 ११०, उसका सिद्धान्त ११०, मे  
 अनुकम्पा की आवश्यकता ११२,  
 सन्यास १३३  
 मुखोपाध्याय, प्रियनाथ २५७  
 मुगल १६८, प्रतिनिधि १६८,  
 बादशाह २१६  
 मुण्डकोपनिषद् ६८ (पा० टि०), ११२-१३  
 मुराद, सुल्तान २२०  
 मुर्शिदाबाद १५४  
 'मुल्लक' १९७  
 मुसलमान २५, २९, ४३, ५९, ७७,  
 १६५, २००, २०३, २०८, २१३,  
 २४७, २५२, धर्म २१६, नेता  
 ओसमान १९२, नौकर १६५,  
 हिन्दी भाषी २२०  
 मुसलमानी धर्म १८९, २१८, बगदाद  
 १८९  
 मुहम्मद १४३, १८२  
 'मुमिया' १८१  
 मूर्ति-पूजन १६१  
 मूर्ति-पूजा १९८, २९२, उसका उद्गम  
 २३७



मुकुन्द, कुमारी ३२ ३४४ ३८६  
 मूसा यहुदी नेता १८  
 मृत्यु का निरन्तर चिन्तन २८४  
 मैक्सवॉड मिस २ १ २१९ (देसिए  
 वासेफ़िन मैक्सवॉड)  
 मेघदूत २३३  
 मेटारनिक २११ १२  
 मेबाबिस्ट ३४३  
 'मिनुस' १९६  
 मेनेसिक (हल्की बाबदाह) १८  
 मिमफ़िस प्रवास २८९  
 मेरीन २२१  
 मेरी ३ ८ ३१६ ३२५ ३३६ ३७  
 ३३९, ३४२, ३७३-७४ ३७९,  
 ३८१-८२ (देसिए मेरी हेक  
 कुमारी)  
 मेरी लई (आस्ट्रियन राजकुमारी)  
 २१ ११  
 मेरी हेक कुमारी ३ ८ ३१६-१४  
 ३३६ ३७ ३३९ ३४२ ३४४  
 ३७३ ३७९ ३८१  
 मेल्काबि मादमोजाबेल २२१  
 मेल्का मादाम २ २  
 मेन्टन श्रीमती ३११ १२ ३१९, ३२५,  
 ३५५-५६  
 मेसाजरी मापीलीम (फ्रासीसी) १६१  
 'मी' ३७-१ ४९ ५८ ९, ६२, ८४-५,  
 १२३ जसकी पहचान ६२  
 मीककिडमी परिवार ३१६ बहनों ३३७  
 मैक्सवॉड कुमारी ३१३, ३२३ ३२८,  
 ३७३ ३७९ (देसिए मैक्सवॉड  
 जोसेफ़िन)  
 मैक्सवॉड जोसेफ़िन ३ ५, ३१८,  
 ३२८ ३३१ ३३४ ३४५ ४६,  
 ३५५ ३६२ ६३ ३६५, ३७  
 ७१ ३७५ ३७७-७८, ३८१  
 ३८६ ३९३ ९४  
 मीकबीस परिवार ३८२  
 मीहम मेजिक ३१५  
 मैक्सिम २ ४-५ तीप २ ५

'मैक्सिम मन' २०४  
 मैक्सिम श्रीमती ३७६  
 मीडामास्कर १४९  
 मैसूर १७२, १७८, ३७५  
 मैसूरी रामानुजी 'रसम' १७२  
 मोस १११ ११४ १४ और  
 व्यक्तिगत मुक्ति १२८ निर्वाण  
 १२४ सिद्धि ११  
 मोती ३८४  
 मोनरो एण्ड कम्पनी ३७४  
 'मोल्का' १९७-९८  
 म्सेण्ड १३५  
 ममराज १५९  
 मदन १९२ १९६ आशीन १९१  
 मोग १८१  
 मस श्रीमती ३३७  
 महूषी १ ४ १ ६ १९१ १९३ ९७  
 २९९ जसकी घेतान की कम्पनी  
 १ ४ प्राप्ति १९७ बेवता १ ३  
 बर्मे १९८ माया १९८  
 पारकम्पी १५१  
 'पावे' बेवता १८ १९८  
 मुक्रेटिस १७ १९७ मरी १९३  
 मुस्क (तुरस्क-सम्राट्) २१६  
 मूबीय या कबीली बेवता १ ३  
 मूतान १८२, २३८, ३६  
 मूतानी बेवता १३५ हकीमी १८१  
 मूरोप ४३ ४८, १३३ ३४ १४७ १६३  
 १६५, १७८-७९, १८३, १८८, १९३  
 १९५, २ ७-१ २ ३ २ ७ २ ९  
 १ २१३ १४ २१८, २२१ २२,  
 २२७ २४७ २७४ २७६, २८७  
 ३८ एण्ड २१२ पूर्वी १९२  
 मम्मकालीन ४ यात्रा १४५  
 भासी २१४ १५, २३४ २३६  
 मूरोपियन १६५, १७५ पोसाक १६२  
 राजमन्थन २११ पैमा १८२  
 राहीव ३६७ सम्पत्ता १९२, १९६,  
 १९९

यूरोपीय कमीज २३६, कोट-कमीज  
२३६, विद्या ३५४, वेशभूषा  
२२८, सम्यता १७७

यूसफजाई २१६

यूसुफ १९८

योग, उसका अर्थ २४२, ज्ञान २७१-  
७२, ध्यान २४२, भक्ति २७१-  
७२, माया १०९

योगानन्द, स्वामी २५७

योगीन माँ ३६९

योगिक सिद्धि और सीमा के प्रश्न १४१

रगून १४९

रघुवश १४७ (पा० टि०), १५२  
(पा० टि०)

रजोगुण १५०, २४८, २५६

रजोगुणी २५३

रञ्जी (उपदेशक) १९९

रमते योगी १४३

राइट, श्रीमती २८६

राक्सी चाची ३३७ (देखिए ब्लाजेट,  
श्रीमती)

राखाल ३५०, ३९२ (देखिए ब्रह्मानन्द,  
स्वामी)

राजकुमार (एक वृद्ध क्लर्क) २६३-६६

राजकुमारी डेमी डॉफ ३५७

राजदरवार, उसका महत्त्व २४३,  
सम्यता और सस्कृति का केन्द्र  
२४३

राजपूताना १७८, १८२

'राजयोग' (पुस्तक) २५७-५८

राजस्थान २३८, २४३

राजेन्द्रलाल, डॉ० ३८७

राधाकान्त देव, राजा २५०

रावा प्रेम २८०

राम १४७

रामकृष्ण देव २६०, २६२, २७१-७२,  
३०५, ३१५-१६, ३२६, ३५१,  
३९१ (देखिए रामकृष्ण परमहंस)  
रामकृष्ण परमहंस १२७, १२९-३०,

१३२, १३६, २२७, २३२, २३४,  
२४१, २४४-४५, २५१, २५४,  
२६०-६२, २७३, ३०७, ३३२,  
उनका श्रेष्ठत्व २५२, और  
विवेकानन्द १४१, जन्मोत्सव ३०९,  
भगवान् रूप २४२

रामकृष्ण मठ ३४६, मठ एव मिशन  
२८५ (पा० टि०), मिशन ३४६,  
३५१

रामकृष्णानन्द, स्वामी ३६५, ३६९,  
३७४ (देखिए शशि)

रामगढ ३२०

रामतनु बसु २५८

राम बाबू ३९१

रामलाल २६०

रामसनेही १६९

रामानन्दी तिलक १६९

रामानुज १६९

रामानुजी तिलक १६९

रामायण २३३

रामेश्वर १४९

रामेश्वरम् ३६९

रावण-कुम्भकर्ण १७३

रावण, राजा १७३

राष्ट्र, उसके इतिहास का महत्त्व २२८

रुडयर्ड किर्पलिंग २९७-९८

रुवाटिनो कम्पनी (इटैलियन) १६१

रूपनारायण (नद) १५५

रूमानिया २१८

'रूल ब्रिटानिया, रूल दी वेल्स' १५३

रूस १६४, १८०, २०८, ३६५, युद्ध  
२१४

रूसी भावना ३६५

रुस्क्राइव ३७४

रेड-बुड वृक्ष ३३६

रेजाँ २११

'रोजेट्टा स्टोन' १९६

रोम १५०, १८९-९०, १९२, १९९,  
२०९, उसके बादशाह १९३, राज  
२१२, राज्य २१०, २१७,

- साम्राज्य १८९  
 रोमन १३७ १८१-८२, १९६, १९९  
 सैमोसिक ४३ २१८, ३९४ वर्ष  
 २ ३ निवासी जनकी बर्बरता  
 १३७ बावघाह (कामस्टान्सिउस)  
 १७९ बाळे २ ३  
 सँका १४७ १७३-७५  
 'कविन्दर के बाप' (बंगाली कहानी में  
 एक पात्र) १५९  
 कब्र ६, १९, ३७ ४८, १५ १९९  
 ३ ५, ३ ७ ३१ ३३१ ३२,  
 ३३४ ३७ ३७९  
 'काइंट ऑफ एशिया' २९८  
 काइंट थियेट का आक्रमण ३२९  
 काइपजिक २११  
 कागत डॉ ३५५  
 कायबल मस्य २ ३  
 काँई बर्बन ३८६  
 का मार्टिन २ २  
 कामवेम १५  
 कालमायर १७९-८१, १८३ १८९  
 कामुन २९७ २९९  
 काँम एजिसिस ३ ५ ६, ३१२, ३२०-  
 २३ ३३४ ३३७ ३३९, ३४८, ३५५  
 'काँ सीपन' ३४६  
 काहीर ३७६  
 किल्बडी ३७१  
 किलिब २९७  
 किलिप्प २२३  
 किल्लिबप ३७६  
 कीलासात्र ७८  
 क्लमट परिषद ३२१ ३४५ मिस्टर  
 २ ६  
 क्लेड, वी ३१२, ३२४ ३२६, ३३१  
 ३७ ३३४ ३५, ३४७ ३६२,  
 ३९३ भीमती ३१ ३१५, ३१९,  
 ३२१ ३२३ ३२५, ३२७-२८,  
 ३३१ ३३४ ३५, ३७९  
 क्लरे प्रॉजेक्टर २२१  
 सेन्वा १९४  
 कोहित सागर १८८  
 कट-बूझ ४७ ३३  
 कनिमबाड़ी ३६५  
 कराह १९७  
 करण ३३ १५३  
 'कर्तमान मारण' १५३  
 कसीयतनामा ३ ७ ३९४ ३३५  
 कस्तु १३५ उपादान नाम-रूप का  
 योग १२३  
 काईकाऊ, भीमती ३४७  
 काटरलू २११  
 कामु-पोत १६३  
 कार्लेना १५४  
 काराजसी ३८९ कालनी ३८०-८८,  
 ३९०-९२ वाली १५ (वा  
 टि )  
 कास्बन भीमती ३५४  
 कारडी कुमारी ३१८ १९, ३४५ ४६,  
 ३५४  
 कास्मीक १४८  
 काप्प पोत १६३ ६४ १९६  
 कास्तु टिल्य ३८  
 कास्त्रोर २१९ २  
 'किकास' ८७  
 किनासबाव ३९, ५२३ वाली ८१,  
 २९६  
 किनटर ह्यगी २ २ महाकवि २ ३  
 किजय सिई १७३  
 किजया का मंदिर २२१  
 किमान धामुनिक ३९ वाली (Idea-  
 list) ४१ ४८  
 किधानगर १७  
 किधारण्य मुनि १७  
 किधानापर ईदनाथ २३३  
 किबबा-किबाह २७१  
 किपना २ ५, २१६ ३६२ नकदी  
 २ ८ गहर २ ५, २१२  
 किलेट्मन राजा २

विलायत १५८, १६३, १६५-६६,  
१७१, २५२, २५४-५५  
विवाह २७५, अन्तर्जातीय २७१, और  
भावात्मक शिक्षा २७७, विधवा  
२७१  
विवेकचूडामणि ७३ (पा० टि०)  
विवेकानन्द, स्वामी ८३, १२७, २५०,  
२५५, २५८, २८६, २९०, २९२-  
९३, २९८-९९, ३००, ३०४-५,  
३०८-१२, ३१४-२०, ३२४-२५,  
३२८-३१, ३३३-३९, ३४१-४९,  
३५२-५३, ३५७-६०, ३६२-६५,  
३६७-७४, ३७७, ३७९-८२, ३८४-  
८६, ३९०-९३, ३९५, उनकी  
निश्चिन्तता २६६-६८, उनके  
विवाह सबधी विचार २७६, और  
अद्वैत १४१, और उनकी सहृदयता  
२६२-६६, और चित्रकला २३८,  
और चैतन्य २७९, और धर्म तथा  
सम्प्रदाय २९३, और निर्वाण  
३३२, और बुद्ध १४२, और  
योगिक सिद्धियाँ १४१, और राम-  
कृष्ण परमहंस १४१, और व्यक्तित्व  
का प्रश्न १४३, और शंकराचार्य  
१४३, और संगीत कला २४६,  
और सत्य दर्शन २७४, और हिन्दू  
धर्म २९४  
विशिष्टाद्वैत और ईश्वर ६८  
'विशिष्टाद्वैतवाद' ९०  
विश्व-ब्रह्मांड १४  
विश्वामित्र २४९  
विष्णु, उनकी उपासना १३३, प्रतिमा  
२३२  
विष्णु मोहिनी ३९१  
वीर रस २४७, २८०  
वीर-वैष्णव सम्प्रदाय १७०  
वीर-शैव १७०, शैववाद १७५  
वील माट, श्रीमती ३५८  
वुड्न पागा २१९-२०  
वृष और मत्स्यकाम २०

वेकूम, कुमारी ३५५  
वेद २८, ३०, ४४, ४८, ८८, १०५  
११२, १३२, १३५, १३९, १८९,  
१९६, २४२, उसका सहिता भाग  
२५, उसकी आवश्यकता २४२,  
उसके भाग २३, पाठ ३६५, भाष्य-  
कार सायण १७० (पा० टि०),  
वाक्य २७४  
वेदान्त ७, १६, २९, ३२, ५३-४, ५६,  
६०, १३२, १४४, १७०, २२७  
२४१, ३३४, उसका आदर्श ३४,  
उसका उपदेश ३३, उसका मत  
३३, उसका मूलतत्त्व २५, उसका  
मूल सिद्धान्त (एकत्व भाव) ८,  
उसका वैशिष्ट्य २२, उसका व्या-  
वहारिक पक्ष २१, उसका श्रेष्ठत्व  
११२, उसका सरलीकरण १२,  
उसका सिद्धान्त २२९, उसकी  
साधना ३५, और अद्वैत ५२, और  
अद्वैतवाद ४०, और ईश्वर ६८,  
और उसका कथन ६१, और उसकी  
उपयोगिता ३, और गीता २४०,  
और धर्म ३, और प्रणेता ३, और  
संभव आदर्श ६, और सिद्धान्त ३,  
दर्शन ४, ८४, दर्शन में ईश्वर का  
स्थान ८३, धर्म ५८, भाव २०२,  
मत २७, ३१७, युक्त पाश्चात्य  
विज्ञान २२९, वादी ६७, समिति  
३२४, सोसायटी ३१२, ३२९,  
३३५, ३४२  
वेदान्ती, प्राचीन ४८  
वेनिस १९०, ३६०, ३८०  
वेल, कुमारी ३५५  
वैदिक २१०  
वैदिक अग्नि १३९, धर्म त्यागी २१७,  
यज्ञ २३९, यजानुष्ठान २४१, वेदी  
१३९  
वैष्णव १७०, २४१, २८१, धर्म १३०,  
१३३ १७०, सम्प्रदाय ३००  
वैद्य २४८-४९

४ १ ४ ३ ४ ५ ६, ४ ८  
 ४१ ४१३ १५  
 विश्वकाम्यमणि ११ ३४१ (पा० टि )  
 विशिष्ट' उसका अर्थ ६७  
 विशिष्टाद्वैतमान ३६  
 विशिष्टाद्वैतकार ४६-७ ६७ भाषी  
 ६२  
 विश्वविद्यालय १ २  
 विश्व ३४ ३७-८ ४७ ५७ १७५,  
 १७६, ३५७ उपासना और नाम  
 १७४ प्रभु १७३ रूप १७५  
 विश्वपुराण १७६ (पा टि ) ३१५  
 बीजा १२७  
 'बीर' ९२  
 बुद्ध साङ्ख्य ३७१  
 बुद्धावन १९६  
 ब्रह्म ११ ४३४ ४६-७ ५१ ५७  
 ६२, ६४ ७१ ८३ २ ४-५,  
 २ ८ २६४ २६६ २८३-८५,  
 २८९, २९२ ९३ ३१५ और  
 विद्या २९८ जगत् २८३  
 वेदव्यास ३१४  
 वेदान्त ४७ ५२ ६१ २ ७४ ८८,  
 १११ १४ २८६, ३१४ अद्वैत  
 ६८ और मात्रा ११७ अर्थगत  
 ९५, ४७ १८७ २८ अर्थ ५५  
 सूत्र ५६-७ ३१५  
 वेदान्त-केसरी' ४६  
 वेदाध्ययन ४७  
 वेदोक्त तत्त्व ६२  
 वेत्स ३७३  
 वैकुण्ठ १४४  
 वैदिक भाषा २८४ युग ३ साहित्य  
 २८४  
 वैदेही १४२ (वेदिय सीता)  
 वैद्यका ३५७ ३६१ ३६५  
 वैराग्य ७८  
 वैश्य ४७  
 वैष्णव सम्प्रदाय ३७  
 व्यक्तित्व ३५७

व्यास ४२, ४६-७ ११५, ११८,  
 ३१४ सूत्र ४६, ५६  
 व्यूह-रचना १६२  
 शंकर ४२, ४९, ५०-१ ५९, ६२, ६४  
 ८ ७१ ११२ (वेदिय शंकराचार्य)  
 शंकराचार्य ६८, ३१४ १५, ३४२,  
 ४४  
 शंख १७३ १७५  
 शकुनि १५३  
 शकुन्तला १४८  
 शक्ति' ३६  
 शतपथ ब्राह्मण ३१६  
 शनिग्रह ७७  
 'शब्द' ७ २९ और ब्रह्म ७  
 शरत् ३७५, ३९१  
 शरीर ९ १२, २६, २८ ३२,  
 ३६ ६ ६४ ६६, ७४ ७७  
 ८७ ८९ ९७ १ ५, १ ७  
 १ ९१ ११४ १२१ २२, १४७  
 १५८ १७१ २ ६ २२९ २३४  
 २३८ २५१ २५६ २६५ ६६,  
 २९३ ३ ५, ३ ७ ३ ९१  
 ३२२, ३२९  
 शांकर-भाष्य ४२, ५६  
 शास्त्र ३५  
 शापिनहाकर ६२  
 शाक्तिधाम-सिखा ३४  
 शास्ता २१२ २९३  
 शास्त्र २८ १ ५ उसका कार्य ६५  
 शिकागो ८६ ३६६ ३७७ ३८३  
 ३९३ ४ २-३ ४१३ ४१५  
 शिवा और सहानुभूति ११६ शान  
 २४३ लौकिक २४४  
 शिव ३२ ३४ ३७ ४७ ५ ५७  
 १२९ प्रभु १३६  
 शिवजी का भूत ३३६ ३७  
 शिवमहिम्ना स्तोत्रम् २६३ (पा टि )  
 शिवम्बल्य ४२  
 शुद्ध चमत्कार २ ५ (पा टि)

'शुभ' ८

शुभ-अशुभ १३०

शून्यवाद ५३, वादी ५४, ३७१

शूर्पणखा १३७

'शैक्सपियर क्लब' १३२, १७७

'शैक्सपियर सभा' १४८

शैव ३७

श्याम २००

श्यामा माँ ११२

श्रवण १२६

श्राद्ध-सस्कार २४३

श्री ऊली ३६७, बूली ३७६, लेगेट  
३९३, ३९६, ४००

श्री कृष्ण २१, २७, ३१, १५२-५३,  
१६८, १८६-९०, २२९, २३५,  
२४०, ३०१, ३०६, ३१९

श्री चैतन्यचरितामृत ३९

श्री चैतन्यदेव ३९ (पा० टि०)

श्रीनगर ३५३-५४

श्री भाष्य ३१५

श्रीमद्भागवत् १३ (पा० टि०)

श्री रामकृष्ण २४, २९, ३२-४, ३६,  
७०, १००, २४१, २५६, और  
उनके विचार २६९-७०, परमहंस  
२६७, २६९, २७१, राष्ट्र के आदर्श  
२७१

श्री रामकृष्ण देव ३१, ४०५ (देखिए  
श्रीरामकृष्ण)

श्रुतिशास्त्र २०८

श्वेतकेतु ७८

श्वेताश्वतर उप० २१ (पा० टि०)

सजय ३१८, ३१९

सगीत ४१

सदेहवादी २५९

सन्यास-मार्ग २५३

सन्यासिनी ३२

'सन्यासी' ३९०, घर्म ३९०

संस्कृत, प्राचीन २८३, भाषा १३२, २८४

सत् ८, ७०

सत्यकाम ९३

सत्यवान १५५-५८

सत्त्व (गुण) १९-२०, २२

सत्त्वगुण ५७, ६८, ९६, ३१९

सनक २५ (पा० टि०)

सनत्कुमार २५ (पा० टि०)

सनन्दन २५ (पा० टि०)

सनातन २५ (पा० टि०)

सनातन तत्त्व ७४

सनातनी दर्शन ४६

सन्त पॉल ३३, ७८, जॉन ७

सन्त-समागम १५५

सन्देहवादी २१८ (पा० टि०)

समत्वभाव ४१, १०१

समाजवाद ३५७

समाधि ५२, अवस्था ७०, ७२,  
और अर्थ ४१, घर्ममेघ ७९,

निर्विकल्प १०३, सविकल्प १०३

'समारिया' वासियो २२८

सर एडविन आर्नल्ड २०५ (पा० टि०)

सरयू १४४

सरला घोषाल, श्रीमती ३६८

सविकल्प (समाधि) १०३,

सहदेव १५९, १६१, १६६

सहस्रद्वीपोद्यान, १२२

साख्य १६५, दर्शन ६८, ३०१

साख्यवादी ६८

साउटर, कुमारी ३७३

साकार उपासना १८२

साधन पथ १४६, भजन ७५

साम्यवाद ३४

साम्यावस्था ३२६

मादृश्यमूलक ज्ञान ४०

सारदा ३७४

मारदानन्द ३५४-५५, ३७१, ३८०,

३९७, ४००, ४०३-५, ४०७

सावित्री १५४-५८

'साहित्यकल्पद्रुम' ३३८

मिकन्दर २००

मिण्डरेला नृत्य ३७७

हम सोच इस सार्वभौमिक के साधारण मनुष्य की स्थिति में रखें तब तक हमें मनुष्यों में ही समानता को देखना पड़ेगा। इसीलिए हमारी मजबूत विषयक चारवा एवं जपासना स्वभावतः मासुपी है। सचमुच ही 'यह धरती भगवान् का सर्वप्रेम स्थिर है। इसीसे हम देखते हैं कि युवों से मनुष्य मनुष्य की ही जपासना करता या रहा है। लोगों का इस मनुष्योपासना के विषय में जब कभी स्वाभाविक रूप से विकसित अभिवाचार देखने में जाता है तो उनकी शिक्षा या आलोचना भी होती है। फिर भी हमें यह विज्ञापनी देना है कि इसकी पीढ़ काफ़ी मजबूत है। ऊपर की पासा-प्रजाकार्य भले ही ज़री आलोचना के योग्य हों पर उनकी यह बहुत ही गहराई तक पहुँची हुई और सुदृढ़ है। ऊपरी आडम्बरों के होने पर भी उसमें एक सार-सत्य है। मैं तुमसे यह कहना नहीं चाहता कि तुम बिना समझे-बूझे किसी पुरानी कथाओं अथवा अवैज्ञानिक अमूर्तक धियानों को बबरखस्तो गले के गोले उधार आओ। बुद्धिमत्ता कई पुराणों में बामाचारी व्याख्याएँ ब्रह्म पा मयी हैं। मैं यह नहीं चाहता कि तुम उन सब पर विश्वास करो। मैं ऐसा करने को नहीं कह सकता बल्कि मेरा मतलब यह है कि इन पुराणों के अस्तित्व की रक्षा का कारण एक सार-सत्य है जिसे कल्प नहीं होने देना चाहिए। और यह सार-सत्य है उनमें मिश्रित शक्ति सम्पन्नो ब्रह्मेश्वर को मनुष्य के दैहिक जीवन में परिचय करना वर्तमानों के उज्ज्वलाकाश में विकरल करनेवाले बने का साधारण मनुष्यों के लिए दैहिक जीवनोपयोगी एवं व्यावहारिक बनाना।

### द्विभूत' में प्रकाशित रिपोर्ट

इस मास्य की दो रिपोर्ट 'द्विभूत' में प्रकाशित हुईं उच्चका विकरल निम्न लिखित हैं

ब्रह्मा महोदय ने प्रकृत की सापना में प्रतीक-प्रतिमाओं की उपयोगिता का समर्थन किया और उन्होंने कहा कि मनुष्य इस समय कुछ ब्रह्मसा में है, ईश्वरदेवता से यदि ऐसी ब्रह्मसा न होती तो बड़ा अन्धका होता। परन्तु विद्यमान सत्य का प्रतिपाद स्वर्ण है। मनुष्य वैतन्य और आध्यात्मिकता का विषयों पर जाड़े जिनकी जाड़े बनी न बनाने पर वास्तव में यह बनी जड़माहात्म्य ही है। ऐसी जड़ मनुष्य को हाव दफ़्दकर पीरे पीरे उठाना हीपा—तब तक उठाना हीपा जब तक वह वैतन्यमय मनुष्य आध्यात्मिक साधकत्व में हो पाव। आत्मिक के उपायों में १२ श्री श्री के बादगी है, जिनके लिए आध्यात्मिकता की समझना बर्तन है। जो प्रकृत लिखनी हम बनेकर माग बड़ा रदी है, तथा इन जो बने प्राप्त करना चाहते हैं, वे मयी जड़ हैं। लर्दे स्वीकार के ज्यों में मेरा बड़ना है कि हम

केवल उसी रास्ते से आगे बढ़ सकते हैं, जो अल्पतम प्रतिरोध का हो। और पुराण-प्रणेतारों को यह बात भली भाँति मालूम थी, तभी वे हमारे लिए ऐसी पद्धति बता गये हैं। इस प्रकार के कार्य में पुराणों को विस्मयजनक और वेजोड सफलता मिली है। भक्ति का आदर्श अवश्य ही आध्यात्मिक है, पर उमका रास्ता जड़ वस्तु के भीतर से होकर है और इस रास्ते के सिवा दूसरा रास्ता भी नहीं है। अतः, जड़ जगत् में जो कुछ ऐसा है, जो आध्यात्मिकता प्राप्त करने में हमारी सहायता कर सकता है, उसे ग्रहण करना होगा, और उसे इस तरह काम में लाना होगा कि मानव क्रमशः आगे बढ़ता हुआ पूर्ण आध्यात्मिक स्थिति में विकसित हो सके। शास्त्र आरम्भ से ही लिंग, जाति या धर्म का भेदभाव छोड़कर सबको वेद-पाठ करने का अधिकार प्रदान करते हैं। हमें भी इसी तरह उदार होना चाहिए। यदि मनुष्य जड़ मन्दिर बनाकर भगवान् में प्रीति कर सके तो अच्छा ही है। यदि भगवान् की मूर्ति बनाकर इस प्रेम के आदर्श पर पहुँचने में मनुष्य को कुछ भी सहायता मिलती है तो उसे एक की जगह बीस मूर्तियाँ पूजने दो। चाहे कोई भी काम क्यों न हो, यदि उसके द्वारा धर्म के उस उच्चतम आदर्श पर पहुँचने में सहायता मिलती हो तो उसे वह अबाध गति से करने दो, पर हाँ, वह काम नैतिकता के विरुद्ध न हो। 'नैतिकता के विरुद्ध न हो', ऐसा इसलिए कहा गया कि नैतिकता विरोधी काम हमारे धर्म-मार्ग के महायक नहीं होते, बल्कि विघ्न ही उपस्थित किया करते हैं।

स्वामी जी ने मूर्ति-पूजा के विरोध की समीक्षा करते हुए कहा कि भारतवर्ष में सर्वप्रथम कवीर ने ही ईश्वरोपासना के लिए मूर्ति का व्यवहार करने के विरुद्ध आवाज उठायी थी। परन्तु भारत में ऐसे कितने ही बड़े बड़े दार्शनिक और धर्म-संस्थापक हुए हैं, जिन्होंने भगवान् का सगुण रूप अस्वीकार कर निर्भीकता के साथ अपने निर्गुण मत का प्रचार करने पर भी मूर्ति-पूजा की निन्दा नहीं की। हाँ, उन्होंने मूर्ति-पूजा को उच्च कोटि की उपासना नहीं माना है, और न किसी पुराण में ही मूर्ति-पूजन को ऊँचे दर्जे की उपासना ठहराया गया है।

यहूदियों के मूर्ति-पूजन के इतिहास का जिक्र करते हुए स्वामी जी ने कहा कि जिहोवा एक सन्दूक के भीतर रहते हैं, ऐसा विश्वास करनेवाले यहूदी लोग भी मूर्तिपूजक ही थे। इस ऐतिहासिक दृष्टान्त के उपस्थित रहते हमें मूर्ति-पूजा की इसलिए निन्दा नहीं करनी चाहिए कि और लोग उसे दोषपूर्ण बताते हैं। मूर्ति या किसी और भी जड़ वस्तु के प्रतीक को, जो मनुष्य को धर्म की प्राप्ति में सहायता करे, बिना सकोच ग्रहण करना चाहिए। पर हमारा कोई भी धर्मग्रन्थ ऐसा नहीं है, जो स्पष्ट शब्दों में यह नहीं कहता कि जड़ वस्तु की सहायता से अनुष्ठित होने-वाली उपासना निकृष्ट श्रेणी की है। सारे भारतवर्ष के सब लोगों को बलपूर्वक



मूर्तिपूजक बनाने की चेष्टा की गयी थी और इसकी अितनी निम्न की जाय वह कम है। प्रत्येक व्यक्ति को कौड़ी उपासना करनी चाहिए, जबकि किस चीज की सहायता से उपासना करनी चाहिए—यह बात ओर से या हुक्म से करने की क्या आवश्यकता पड़ी थी? यह बात अन्य कोई कैसे जान सकता है कि कौन आवसी किस वस्तु के सहारे उभरति कर सकता है? कोई प्रतिमा-पूजा द्वारा कोई अग्नि-पूजा द्वारा यहाँ तक कि कोई केवल एक ब्रह्मे के सहारे उपासना की सिद्धि प्राप्त कर सकता है, यह किसी और को कैसे मान्य हो सकता है? इन बातों का निर्णय अपने अपने गुरुओं के द्वारा ही होना चाहिए। भक्ति विषयक ग्रन्थों में इष्टदेव सम्बन्धी जो नियम हैं उन्हींमें इस बात की व्याख्या देखने में आती है—जबकि व्यक्तिविशेष को अपनी विशिष्ट उपासना पद्धति से अपने इष्ट देव के पास पहुँचने के लिए आये बढ़ना पड़ेगा और वह जिस निर्बाधित रास्ते से आये बढ़ेगा वही उसका इष्ट है। मनुष्य को जन्मा ही चाहिए अपनी ही उपासना पद्धति के मार्ग से पर साध ही अन्य मार्गों की ओर भी सहानुमति की दृष्टि से देखना चाहिए। और इस मार्ग का अवलम्बन उसको तब तक करना पड़ेगा जब तक वह अपने निश्चित स्वान पर नहीं पहुँच जाता—जब तक वह उस केन्द्रस्थल पर नहीं पहुँच जाता वह वस्तु की सहायता की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

इसी प्रसंग में भारतवर्ष के बहुतेरे स्थानों में प्रचलित कुङ्कुम-प्रथा के विषय में जो एक प्रकार से बंधमल मुस्माई की तरह हो गयी है, सावधान कर देना आवश्यक है। हम पाश्चिमीयों में पढ़ते हैं—'जो बेशों का धार-उत्पन्न समझते हैं जो निष्पाप हैं जो धन के लोभ से और किसी प्रकार के स्वार्थ से लोपों की शिक्षा नहीं देते जिनकी इया हेतुविशेष से नहीं प्राप्त होती बसन्त तदु विरुद्ध प्रकार वेद-मीनों और कथा-मुस्मो से बचने में कुछ न चाहते हुए सभी वेद-मीनों में नवा जीवन आकर उन्हें इष्ट-मत्त कर देती है, उनमें नयी नयी कोषके निकल आती है, उही प्रकार जिनका स्वभाव ही लोभों का कल्याण करनेवाला है जिनका धारा जीवन ही दूसरों के हित के लिए है जो इसके बचके लोपों से कुछ भी नहीं चाहते ऐसे महान् व्यक्ति ही गुरु कहलाने योग्य हैं दूसरे नहीं। असङ्गुष के पास ही ज्ञान-ज्ञान की भासा ही नहीं है, उस्ते जगकी शिक्षा से विपत्ति की ही सम्भावना रहती है क्योंकि गुरु केवल शिक्षक या उपदेशक ही नहीं है, शिक्षा देना तो उनके कर्तव्य का एक बहुत ही मामूली अंश है। हिन्दुओं का विश्वास है कि गुरु ही सिष्य में सन्त का संचार करते हैं। इस बात को समझने के लिए अङ्गुष का ही एक दृष्टान्त ले लो। मानो किसी ने रोग-निवारक टीका नहीं किया ऐसी अवस्था में उसके शरीर के अन्दर रोग के दूषित कोटाबुजों के प्रवेश कर जाने की बहुत आशंका है।

उसी प्रकार असद्गुरु से शिक्षा लेने में भी बुराइयो के सीख लेने की बहुत कुछ आशंका है। इसलिए भारत से इस कुलगुरु-प्रथा को एकदम उठा देना अत्यन्त आवश्यक हो रहा है। गुरु का काम व्यवसाय न हो जाय, इसे रोकने की चेष्टा करनी होगी, क्योंकि यह एकदम शास्त्र-विरुद्ध है। किसी भी आदमी को अपने को गुरु नहीं बतलाना चाहिए और कुलगुरु-प्रथा के कारण जो वर्तमान परिस्थिति है, उसका समर्थन भी नहीं करना चाहिए।

खाद्याखाद्य-विचार के सम्बन्ध में स्वामी जी ने कहा कि आजकल खान-पान के विषय में जिन कठोर नियमों पर जोर दिया जाता है, वे अधिकांश छिछले हैं। जिस उद्देश्य से इन नियमों को आरम्भ में चलाया गया था, उस उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो पाती। खाद्य वस्तुओं को स्पर्श करने का अधिकार किसे है?—यह प्रश्न विशेष ध्यान देने योग्य है, क्योंकि इसमें एक बड़ा भारी मनोवैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है। पर साधारण मनुष्यों के दैनिक जीवन में उतनी सावधानी रखना अत्यन्त कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। जिन लोगों ने केवल धर्म के लिए ही अपने जीवन को उत्सर्ग कर दिया है, ये नियम केवल उन्हींके लिए पालनीय हैं, पर इसकी जगह हर एक आदमी के लिए इन नियमों का पालन करना आवश्यक बतलाकर बड़ी भारी गलती की गयी है। क्योंकि सर्वसाधारण में अधिकतर ऐसे ही लोग हैं जो जड़ जगत् के सुखों से तृप्त नहीं हुए हैं, और ऐसे अतृप्त लोगों पर जबरदस्ती आध्यात्मिकता ला देने की चेष्टा व्यर्थ है।

भक्तों के लिए जो उपासना पद्धतियाँ हैं, उनमें मनुष्य रूप की उपासना ही सबसे उत्तम है। वास्तव में यदि किसी रूप की पूजा करनी है, तो अपनी हैसियत के अनुसार प्रतिदिन छ या बारह दरिद्रों को अपने घर लाकर, उन्हें नारायण समझकर उनकी सेवा करना अच्छा है। मैंने कितनी जगहों में प्रचलित दान की प्रथाएँ देखी हैं, पर उनसे वैसा कोई सुफल होते नहीं देखा है। इसका कारण यही है कि वह दान की क्रिया यथोचित भाव से अनुष्ठित नहीं है। 'अरे! यह ले जा'—इस प्रकार के दान को दान या दया-धर्म का अनुष्ठान नहीं कह सकते। यह तो हृदय के अहंकार का परिचायक है। इस प्रकार दान देनेवाले का उद्देश्य यही रहता है कि लोग जानें या समझें कि वह दया-धर्म का अनुष्ठान कर रहा है। हिन्दुओं को यह जानना चाहिए कि स्मृतियों के मत में दान ग्रहण करनेवालों की अपेक्षा दान देनेवाला छोटा समझा जाता है। ग्रहण करनेवाला ग्रहण करते समय साक्षात् नारायण समझा जाता है। अतः मेरे मत में यदि इस प्रकार की नयी पूजा-पद्धति प्रचलित की जाय, तो बड़ा अच्छा हो—कुछ दरिद्रनारायण, अवनारायण या क्षुवात्तनारायण को प्रतिदिन प्रतिगृह में लाना एवं प्रतिमा की

बिना प्रकार पूजा की जाती है, उसी प्रकार समकी भी भोजन-वस्त्रादि क द्वारा पूजा करना। मैं किसी प्रकार की उपासना या पूजा-प्रवृत्ति की न तो किया करता हूँ और न किसी को बुरा बताता हूँ बल्कि मेरे कहने का सारांस यही है कि इस प्रकार की साधयण-पूजा सबविधा श्रेष्ठ पूजा है, और भाव के लिए इसी पूजा की सबसे अधिक आवश्यकता है।

अन्त में स्वामी जी ने भक्ति की तुलना एक त्रिकोण के साथ की। उन्होंने कहा कि इस त्रिकोण का पहला कोण यह है कि भक्ति या प्रेम कोई प्रतिदान नहीं चाहता। प्रेम में भय नहीं है, यह उसका दूसरा कोण है। पुरस्कार या प्रतिदान पाने के उद्देश्य से प्रेम करना मित्रादि का धर्म है। व्यवसायी का धर्म है, सन्त धर्म के साथ उसका बहुत ही कम सम्बन्ध है। कोई मित्रुक न बने क्योंकि वैसा होता नास्तिकता का चिह्न है। 'ओ आरामी' रहता तो है गंगा के तीर पर किन्तु पानी पीने के लिए कुत्ता बोलता है वह मूर्ख नहीं तो और क्या है? — बड़ वस्तु की प्राप्ति के लिए भगवान् से प्रार्थना करना भी ठीक वैसा ही है। भक्त को भगवान् से सवा इस प्रकार कहने के लिए तैयार रहना चाहिए—'प्रभो मैं तुमसे कुछ भी नहीं चाहता मैं तुम्हारे लिए अपना सब कुछ अर्पित करने को तैयार हूँ। प्रेम में भय नहीं रहता। क्या तुमने नहीं देखा है कि यह बछ्ठी हुई कमजोर हृदय वाली स्त्री एक छोटे से कुत्ते के पीछे से माग बड़ी होती है। घर में बूझ जाती है? बूझते बिन नहीं उसी रास्ते से जा रही है। जान उसकी गोद में एक छोटा सा बच्चा भी है। एकाएक किसी घर में निकलकर उस पर चोट करना चाहा। ऐसी अवस्था में भी तुम उसे अपनी जान बचाने के लिए मागते या घर के अन्दर बूझते देखोगे? नहीं बल्कि नहीं। बाव अपने नन्हें बच्चे की रक्षा के लिए, यदि आवश्यकता पड़े तो वह घोर के मुँह में बूझने से भी बाध न डालेगी। जब इस त्रिकोण का तीसरा कोण यह है कि प्रेम ही प्रेम का उद्देश्य है। अन्त में भक्त इसी भाव पर आ पहुँचता है कि स्वयं प्रेम ही भगवान् है। और बाकी सब कुछ बसत है। भगवान् का अस्तित्व प्रमाणित करने के लिए मनुष्य को जब और कहाँ जाना होगा? इस प्रत्यक्ष संसार में जो कुछ भी पदार्थ है उसके अन्दर सबविधा स्पष्ट विज्ञानी देने-वाला तो भगवान् ही है। वही वह शक्ति है जो सूर्य चन्द्र और तारों को जगती एव चलाती है तथा स्त्री-पुरुषों में सभी जीवों में सभी वस्तुओं में प्रकाशित हो रही है। बड़ शक्ति के राज्य में मध्याकर्षण शक्ति के रूप में वही विद्यमान है प्रत्येक स्थान में प्रत्येक परमाणु में वही वर्तमान है—सर्वत्र उसकी ज्योति छिटी हुई है। वही अनन्त प्रेमस्वरूप है संसार की एकमात्र संचालिनी शक्ति है और वही सर्वत्र प्रत्यक्ष विज्ञानी वे रहा है।

## वेदान्त

(१२ नवम्बर, १८९७ को लाहौर में दिया गया व्याख्यान)

जगत् दो हैं जिनमे हम वसते हैं—एक बहिर्जगत् और दूसरा अन्तर्जगत्। अति प्राचीन काल से ही मनुष्य इन दोनों भूमियों में समानान्तर रेखाओं की तरह बराबर उन्नति करते आये हैं। खोज पहले बहिर्जगत् में ही शुरू हुई। मनुष्यो ने पहले पहल दुर्बल समस्याओं के उत्तर बाह्य प्रकृति से पाने की चेष्टा की। प्रथमतः मनुष्यो ने अपने चारों ओर की वस्तुओं से सुन्दर और उदात्त की तृष्णा निवृत्त करनी चाही। वे अपने को और अपने सभी भीतरी भावों को स्थूल भाषा में प्रकाशित करने के लिए प्रवृत्त हुए, तथा उन्हें जो सब उत्तर मिले, ईश्वर-तत्त्व और उपासना-तत्त्व के जो सब अति अद्भुत सिद्धान्त उन्हें प्राप्त हुए, और उस शिव-सुन्दर का उन्होंने जो उच्छ्वासमय वर्णन किया, ये सभी वास्तव में अति अपूर्व हैं। बहिर्जगत् से निस्सन्देह महान् भावों का आविर्भाव हुआ। परन्तु बाद में मनुष्य जाति के लिए जो अन्य जगत् उन्मुक्त हुआ, वह और भी महान्, और भी सुन्दर तथा अनन्त गुणा विस्तृत था। वेदों के कर्मकांड-भाग में हम धर्म के बड़े ही आश्चर्यमय तत्त्वों का वर्णन पाते हैं। हम ससार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेवाले विधाता के सम्बन्ध के वहाँ अत्यन्त अद्भुत तत्त्व-समूह देखते हैं, ये सब हमारे सामने मर्मस्पर्शी भाषा में रखे गये हैं। तुममें से अनेक को ऋग्वेद संहिता का वह श्लोक, जो प्रलय के वर्णन में आया है, याद होगा। भावों को उद्दीप्त करनेवाला ऐसा उदात्त वर्णन शायद कभी किसीने नहीं किया। इन सबके होते हुए भी हम देखते हैं कि इनमें केवल बहिर्जगत् की ही महत्ता का चित्रण किया गया है, वह वर्णन स्थूल का है, इसमें कुछ जडत्व फिर भी लगा हुआ है। तथापि हम देखते हैं, जड और ससीम भाषा में यह अससीम का ही वर्णन है। यह जड शरीर के अनन्त विस्तार का वर्णन है, किन्तु मन का नहीं, यह देश के अनन्तत्व का वर्णन है, किन्तु विचार का नहीं। इसलिए वेदों के दूसरे भाग में, अर्थात् ज्ञानकाण्ड में, हम देखते हैं, एक बिल्कुल ही भिन्न प्रणाली का अनुसरण किया गया है। पहली प्रणाली थी बाह्य प्रकृति में विश्व-ब्रह्माण्ड के प्रकृत सत्य का अनुसन्धान, यह जड ससार से जीवन

ही सभी गम्भीर समस्याओं की मीमांसा करने की चेष्टा की। यस्मैते द्विजवल्तो महित्वा—‘यह हिमात्म्य पर्वत जिनकी महत्ता बतला रहा है। यह बड़ा ऊँचा विचार ब्रह्म किन्तु फिर भी भारत के लिए यह पर्याप्त नहीं था। भारतीय मन को इस पथ का परिश्रम करना पड़ा था। भारतीय गवेषणा पूर्वतया बहिर्जन्तु को छोड़कर दूसरी ओर मुड़ी—‘सोम अन्तर्जगत् में घूँस हुई, क्रमशः वे बड़ से बेटत में आये। चारों ओर से यह प्रश्न उठन समा ‘मृत्यु के पश्चात् मनुष्य का क्या हाल होता है? अस्तीत्यैके नायमस्तीति चैके (कठोपनिषद् १।१।२) —‘किसी किसी का कथन है कि मनुष्य की मृत्यु के बाद भी आत्मा का अस्तित्व रहता है और कोई कोई कहते हैं कि नहीं रहता है ममराज इनमे कौन सा सत्य है? यहाँ हम देखते हैं एक दूसरी ही प्रणाली का अनुसरण किया गया है। भारतीय मन को बहिर्जन्तु से जो कुछ मिलना था मिल चुका था परन्तु उधरे इसे वृष्टि नहीं की। अनुसंधान के लिए वह और आगे बढ़ा। समस्या के समाधान के लिए उसने अपने में ही खोजा किया। तब यथार्थ उत्तर मिला।

देवों के इस भाग का नाम है उपनिषद् या वेदान्त या आरभ्यक या रहस्य। यहाँ हम देखते हैं, धर्म बाहरी बिलकाले से बिल्कुल अलग है। यहाँ हम देखते हैं आध्यात्मिक विषयों का वर्णन बड़ की भाषा से नहीं हुआ। आत्मा की भाषा से हुआ है। सूक्तातिमुषम तत्त्वों के लिए तदनुक्य भाषा का व्यवहार किया गया है। यहाँ और कोई स्थूल भाष नहीं है। यहाँ अक्सर के विषयों से कोई समाप्ती नहीं है। हमारी आज की चारणा के परे, उपनिषदों के और तथा साहसी महामना श्रुति निर्मम भाष से बिना समझीता किये ही मनुष्य जाति के लिए ऊँचे से ऊँचे तत्त्वों की बोधना कर गये हैं जो कभी भी प्रचारित नहीं हुए। ये हमारे देशवासियों में उन्हीको गुम्हारे आने रहना चाहता हूँ। देवों का ज्ञानकाण्ड एक विद्या महासागर है। इसका बोझ ही अंध समझने के लिए अनेक धर्मों की आवश्यकता है। रामानुज ने उपनिषदों के सम्बन्ध में यथार्थ ही कहा है कि वेदान्त देवों का मुकुट है और अक्षयुध ही यह वर्तमान भारत की बाइबिल है। देवों के कर्मकाण्ड पर हिन्दुओं की बड़ी श्रद्धा है परन्तु हम जानते हैं। युगों तक मृति के नाम से केवल उपनिषदों का ही अर्थ किया जाता था। हम जानते हैं, हमारे बड़े बड़े तब वर्धनकारों ने—स्वात ही, चाहे वर्तमान या पौनम यहाँ तक कि सभी वर्धनशास्त्रों के जमकस्वरूप महापुरुष कपिल ने भी—जब अपने मन के समर्पन में प्रमाणों का लंपह करना चाहा तब उनमें से हर एक को उपनिषदों ही में प्रकाश मिले हैं और नहीं नहीं क्योंकि धारण सत्य केवल उपनिषदों ही में है।

कुछ सत्य ऐसे हैं जो किसी विशेष पथ से विशेष विधेय अवस्थाओं और समयों

श्लोको का अर्थ लगाने में हमें अपने ऐसे भाव रखने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए जो उनमें अभिप्रेत न थे। जब तुम अधिकार-भेद का अपूर्व रहस्य समझोगे, तब श्लोको का यथार्थ अर्थ सहज ही तुम्हारी समझ में आ जायगा।

यह सच है कि सम्पूर्ण उपनिषदों का लक्ष्य एक है, कस्मिन्न भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति (मुडकोपनिषद् १।३)—‘वह कौन सी वस्तु है जिसे जान लेने पर सम्पूर्ण ज्ञान करतलगत हो जाता है?’ आजकल की भाषा में अगर कहा जाय तो यही कहना चाहिए कि उपनिषदों का उद्देश्य चरम एकत्व के आविष्कार की चेष्टा है, और भिन्नत्व में एकत्व की खोज ही ज्ञान है। हर एक विज्ञान इसी नींव पर प्रतिष्ठित है। मनुष्यों का सम्पूर्ण ज्ञान भिन्नत्व में एकत्व की खोज पर ही प्रतिष्ठित है। और, यदि दृश्य जगत् की थोड़ी सी घटनाओं में ही एकत्व के अनुसन्धान की चेष्टा क्षुद्र मानवीय विज्ञान का कार्य हो तो इस अपूर्व विचित्रता-सकुल विश्व के भीतर, हम जिसके नाम और रूपों में सहस्रधा वैभिन्न्य देख रहे हैं, जहाँ जड़ और चेतन में भेद वर्तमान है, जहाँ सभी चित्तवृत्तियाँ एक दूसरी से भिन्न हैं, जहाँ कोई रूप किसी दूसरे से नहीं मिलता, जहाँ प्रत्येक वस्तु अपर वस्तु से पृथक् है, एकत्व का आविष्कार करने का हमारा उद्देश्य कितना कठिन है। परन्तु इन विभिन्न स्तरों और अनन्त लोको के भीतर एकत्व का आविष्कार करना ही उपनिषदों का लक्ष्य है। दूसरी ओर हमें अरुन्वती न्याय का भी सहारा लेना चाहिए। यदि किसी को अरुन्वती नक्षत्र दिखलाना है तो पहले पासवाला उससे कोई बड़ा और उज्ज्वलतर नक्षत्र दिखलाकर उस पर देखनेवाले की दृष्टि स्थिर करनी चाहिए, इसके बाद छोटे नक्षत्र अरुन्वती का दिखलाना आसान होगा। इसी तरह सूक्ष्मतर ब्रह्मतत्त्व समझाने के लिए, दूसरे कितने ही स्थूल भावों के उपदेश देकर ऋषियों ने उच्च तत्त्व को समझाया है। इस कथन को प्रमाणित करने के लिए मुझे ज्यादा कुछ नहीं करना, केवल उपनिषदों को तुम्हारे सामने रख देना है, फिर तुम स्वयं समझ जाओगे। प्रायः प्रत्येक अध्याय द्वैतवाद या उपासना के उपदेश से आरम्भ होता है। पहले शिक्षा दी गयी है कि ईश्वरसंसार का सृष्टि-कर्ता है, संरक्षक है और अन्त में प्रत्येक वस्तु उसीमें विलीन हो जाती है, वही हमारा उपास्य है, वही शासक है, वही वहिर्प्रकृति और अन्तर्प्रकृति का प्रेरक है, फिर भी वह मानो प्रकृति के बाहर है। एक कदम और बढ़कर हम देखते हैं, वे ही आचार्य वतलाते हैं कि ईश्वर प्रकृति के बाहर नहीं, वल्कि प्रकृति में अन्तर्व्याप्त है। अन्त में ये दोनों भाव छोड़ दिये गये हैं, और जो कुछ है सब वही है—कोई भेद नहीं। तत्त्वमसि श्वेतकेतो—‘हे श्वेतकेतु, तुम वही (ब्रह्म) हो।’ अन्त में यही घोषणा की गयी कि जो समग्र जगत् के भीतर विद्यमान है वही मनुष्यों की

सम्प्रदाय की नींव डाली है, उसे इन तीनों प्रस्वालों को ग्रहण करना ही पड़ा और उन पर एक नये भाष्य की रचना करनी पड़ी। अतः वेदान्त को उपनिषदों के किसी एक ही भाग में द्वैतवाद विशिष्टाद्वैतवाद या अद्वैतवाद के रूप में आवृत्त कर देना ठीक नहीं। जब कि वेदान्त से ये सभी मत निकले हैं तो उसे इन मतों की समष्टि ही कहना चाहिए। एक अद्वैतवादी अपने को वेदान्ती कहकर परिचय देने का जितना अधिकारी है उतना ही रामानुज सम्प्रदाय के विशिष्टाद्वैतवादी को भी है। परन्तु मैं कुछ और बढ़कर कहना चाहता हूँ कि हिन्दू धर्म कहने से हम लोगों का नहीं अभिप्राय है जो वास्तव में वेदान्ती का है। मैं तुमसे कहता हूँ कि ये तीनों भारत में स्मरणीयता के प्रचलित हैं। तुम कदापि यह विश्वास न करो कि अद्वैतवाद के आविष्कारक शंकर थे। उनके जन्म के बहुत पहले ही से यह मत यहाँ था। वे केवल इसके अन्तिम प्रतिनिधियों में से एक थे। रामानुज के मत के लिए भी यही बात कहनी चाहिए। उनके भाष्य ही से यह सूचित हो जाता है कि उनके आधिपत्य के बहुत पहले से यह मत विद्यमान था। जो द्वैतवादी सम्प्रदाय अन्य सम्प्रदायों के साथ साथ भारत में वर्तमान है उन पर भी यही बात लागू होती है। और अपने थोड़े से ज्ञान के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ये सब मत एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं।

जिस तरह हमारे पदार्थन महान् तत्त्व के क्रमिक उच्चाटन मात्र है जो संकीर्ण की तरह पिछले बीम स्वभावों परसे से उठते हैं और अन्त में समाप्त होते हैं अद्वैत की ब्रह्मस्मीर स्थिति में उसी तरह हम देखते हैं कि पूर्वोक्त तीनों मतों में भी मनुष्य मन उच्च से उच्चतर आदर्श की ओर अपसर हुआ है और अन्त में सभी मत अद्वैतवाद के उच्चतम सोपान पर पहुँचकर एक बहुमुत एकत्व में परिणाम प्राप्त हुए हैं। अतः ये तीनों परस्पर विरोधी नहीं हैं। दूसरी ओर, मुझे यह कहना पड़ता है कि बहुत लोग इस भ्रम में पड़े हैं कि ये तीनों मत परस्पर विरोधी हैं। हम देखते हैं अद्वैतवादी आचार्य जिन स्मोक्तों में अद्वैतवाद की ही धिन्ता ही गनी है, उन्हें तो ज्यों का त्यों रज्य देते हैं, परन्तु जिनमें द्वैत या विशिष्टाद्वैतवाद के उपदेश हैं उन्हें उबारवस्ती अद्वैतवाद की ओर बसाइँ साते हैं, उनका भी अद्वैत धर्म बत डालते हैं। जब द्वैतवादी आचार्य अद्वैतारम्भक स्मोक्तों का द्वैतवाद का अर्थ ग्रहण करने की चेष्टा करते हैं। वे हमारे पूज्य आचार्य हैं यह मैं मानता हूँ परन्तु बीबा बाभ्यागुदोरपि भी एक प्रसिद्ध वाक्य है। मेरा मत है कि केवल इसी एक विषय में उन्हें भ्रम हुआ है। हमें शास्त्रों की विद्वत् व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। आत्मिक विषयों में हमें किसी प्रकार की बेईमानी का सहाय लेकर धर्म की व्याख्या करने की जरूरत नहीं है। व्याकरण के शीघ्र-शीघ्र विधान से क्या फायदा !

है—प्रक्षेपण। प्रलय होने पर जगत्-प्रपञ्च सूक्ष्मातिसूक्ष्म होकर अपनी प्राथमिक अवस्था को प्राप्त होता है, कुछ काल उसी शान्त अवस्था में रहकर फिर विकसित होता है। यही सृष्टि है। अच्छा, तो फिर इन प्राणरूपिणी शक्तियों का क्या होता है? वे आदि-प्राण से मिल जाती हैं। यह प्राण उस समय बहुत कुछ गतिहीन हो जाता है, परन्तु इसकी गति बिल्कुल ही बन्द नहीं हो जाती। वैदिक सूक्तों के आनीदवातम्—‘वह गतिहीन भाव से स्पन्दित हुआ था’—इस वाक्य से इसी तत्त्व का वर्णन किया गया है। वेदों के कितने ही पारिभाषिक शब्दों का अर्थ-निर्णय करना अत्यन्त कठिन काम है। उदाहरण के रूप में हम यहाँ ‘वात’ शब्द को ही लेते हैं। कभी कभी तो इससे वायु का अर्थ निकलता है और कभी कभी गति सूचित होती है। इन दोनों अर्थों में बहुधा लोगों को भ्रम हो जाता है। अतएव इस पर ध्यान रखना चाहिए। अच्छा, तो उस समय भूतों की क्या अवस्था होती है? शक्तियाँ सर्वभूतों में ओतप्रोत हैं। वे उस समय आकाश में लीन हो जाती हैं, इस आकाश में फिर भूतसमूहों की सृष्टि होती है। यह आकाश ही आदि-भूत है। यही आकाश प्राण की शक्ति से स्पन्दित होता रहता है, और प्रत्येक नयी सृष्टि के साथ ज्यों ज्यों प्राण का स्पन्दन द्रुत होता जाता है, त्यों त्यों आकाश की तरफें क्षुब्ध होती हुई चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि के आकार धारण करती जाती हैं। हम पढ़ते हैं, यदि किञ्च जगत् सर्वं प्राण एजति निःसृतम्। (ऋग्वेद, १०।१२९।२)—‘इस ससार में जो कुछ है, प्राण के कम्पित होने से निःसृत होता है।’ यहाँ ‘एजति’ शब्द पर ध्यान दो, क्योंकि ‘एज्’ घातु का अर्थ है काँपना, ‘निःसृतम्’ का अर्थ है प्रक्षिप्त और ‘यदिदम् किञ्च’ का अर्थ है इस ससार में जो भी कुछ।

जगत्-प्रपञ्च की सृष्टि का यह थोड़ा सा आभास दिया गया। इसके विषय में बहुत सी छोटी छोटी बातें कही जा सकती हैं। उदाहरणस्वरूप किस तरह सृष्टि होती है, किस तरह पहले आकाश की ओर आकाश से दूसरी वस्तुओं की सृष्टि होती है, आकाश में कम्पन होने पर वायु की उत्पत्ति कैसे होती है, आदि कितनी ही बातें कहनी पड़ेंगी। परन्तु यहाँ एक बात पर ध्यान रखना चाहिए, वह यह कि सूक्ष्मतर तत्त्व से स्थूलतर तत्त्व की उत्पत्ति होती है, सबसे पीछे स्थूल भूत की सृष्टि होती है। यही बाह्यतम वस्तु है, और इसके पीछे सूक्ष्मतर भूत विद्यमान हैं। यहाँ तक विश्लेषण करने पर भी, हमने देखा कि सम्पूर्ण ससार केवल दो तत्त्वों में पर्यवसित किया गया है, अभी तक चरम एकत्व पर हम नहीं पहुँचे। शक्ति-तत्त्व के एकत्व को प्राण, और जड-तत्त्व के एकत्व को आकाश कहा गया है। क्या इन दोनों में भी कोई एकत्व पाया जा सकता है? ये भी क्या एक तत्त्व में पर्यवसित किये जा सकते



आत्मा में भी विराजमान है। यहाँ किसी तरह की रियायत नहीं यहाँ बुरों के मतामत की परवाह नहीं की गयी। यहाँ सत्य विरावरण सत्य निर्मीक भाषा में प्रचारित किया गया है। आबकक उस महान् सत्य का उसी निर्मीक भाषा से प्रचार करने में हमें हरबिब न करना चाहिए, और ईस्वर की कृपा से मैं स्वयं तो कम से कम उसी प्रकार का एक निर्मीक प्रचारक होने की आशा रखता हूँ।

अब मैं पूर्व प्रसंग का अनुसरण करते हुए दो बातों को समझाता हूँ। एक है मगस्तारिचक पक्ष जो सभी वैद्वान्तियों का सामान्य विषय है, और दूसरा है पदम् सृष्टि पक्ष। पहले मैं पदम्-सृष्टि पक्ष पर विचार करूँगा। हम देखते हैं आबकक आधुनिक विज्ञान के विभिन्न विभिन्न आविष्कार हमें आकस्मिक रूप से चमत्कृत कर रहे हैं, और स्वप्न में भी अकल्पनीय अद्भुत चमत्कारों को हमारे सामने रखकर हमारी आँखों को चकाचीप कर देते हैं। परन्तु वास्तव में इन आविष्कारों का अविनाश बहुत पहले के आविष्कृत सत्वों का पुनराविष्कार मात्र है। अभी हाल की बात है, आधुनिक विज्ञान ने विभिन्न शक्तियों में एकत्र का आविष्कार किया है। उसने अभी अभी यह आविष्कृत किया कि ताप विद्युत् चुम्बक आदि विभिन्न विभिन्न नामों से परिचित जितनी शक्तियाँ हैं, वे एक ही शक्ति में परिवर्तित की जा सकती हैं। अब दूसरे उन्हें चाहे जिन नामों से पुकारते रहें विज्ञान उनके लिए एक ही नाम व्यवहार में लाता है। यही बात संहिता में भी पायी जाती है। अर्थात् यह एक प्राचीन घन्य है, तथापि उसमें भी शक्ति विषयक ऐसा ही सिद्धान्त दिखता है जिसका मैंने उल्लेख किया है। जितनी शक्तियाँ हैं, चाहे तुम उन्हें पुस्तकार्थक नहीं चाहे आकर्षक या विकर्षक कहो अथवा ताप कहो, या विद्युत् के सब उसी शक्ति-सत्त्व के विभिन्न रूप हैं। चाहे मनुष्यों के बाह्य इन्द्रियों का व्यापार कहो या उनके अन्तःकरण की चिन्तन-शक्ति ही कहो है सब एक ही शक्ति से उद्भूत विषे प्राण-शक्ति कहते हैं। अब यह प्रश्न पठ सकता है कि प्राण क्या है? प्राण स्पन्दन या कम्पन है। जब सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का विकल्प इसके चिरन्तन स्वरूप में हो जाता है, तब वे अनन्त शक्तियाँ नहीं बनी जाती हैं? क्या तुम सोचते हो कि इनका भी स्रोत ही जाना है? नहीं कदापि नहीं। यदि चिरन्तन विन्तुम गप्ट हो जाय तो फिर अविष्य में अमतरण का उत्पान कैसे और किस आकार पर हो सकता है? क्योंकि यदि तो तरंगाकार संचरण है जो उठती है विरती है फिर उठती है फिर फिरती है। इसी अणु-अणु के विनाश को हमारे छात्रों से 'सृष्टि' कहा गया है। परन्तु, प्यास रहे 'सृष्टि' अडेरी का (creation) नहीं। अडेरी में तरंगण घटकों का पदार्थ अनुवाद नहीं होता। अभी सृष्टिजने में सगुण के भाव अडेरी में व्यक्त करता हूँ। 'सृष्टि' शब्द का आरम्भिक अर्थ

है—प्रक्षेपण। प्रलय होने पर जगत्-प्रपञ्च सूक्ष्मातिसूक्ष्म होकर अपनी प्राथमिक अवस्था को प्राप्त होता है, कुछ काल उसी शान्त अवस्था में रहकर फिर विकसित होता है। यही सृष्टि है। अच्छा, तो फिर इन प्राणरूपिणी शक्तियों का क्या होता है? वे आदि-प्राण से मिल जाती हैं। यह प्राण उस समय बहुत कुछ गतिहीन हो जाता है, परन्तु इसकी गति बिल्कुल ही बन्द नहीं हो जाती। वैदिक सूक्तों के आनीदवात्म—‘वह गतिहीन भाव से स्पन्दित हुआ था’—इस वाक्य से इसी तत्त्व का वर्णन किया गया है। वेदों के कितने ही पारिभाषिक शब्दों का अर्थ-निर्णय करना अत्यन्त कठिन काम है। उदाहरण के रूप में हम यहाँ ‘वात’ शब्द को ही लेते हैं। कभी कभी तो इससे वायु का अर्थ निकलता है और कभी कभी गति सूचित होती है। इन दोनों अर्थों में बहुधा लोगों को भ्रम हो जाता है। अतएव इस पर ध्यान रखना चाहिए। अच्छा, तो उस समय भूतों की क्या अवस्था होती है? शक्तियाँ सर्वभूतों में ओतप्रोत हैं। वे उस समय आकाश में लीन हो जाती हैं, इस आकाश से फिर भूतसमूहों की सृष्टि होती है। यह आकाश ही आदि-भूत है। यही आकाश प्राण की शक्ति से स्पन्दित होता रहता है, और प्रत्येक नयी सृष्टि के साथ ज्यों ज्यों प्राण का स्पन्दन द्रुत होता जाता है, त्यों त्यों आकाश की तरंगें क्षुब्ध होती हुई चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि के आकार धारण करती जाती हैं। हम पढ़ते हैं, यदिदं किञ्च जगत् सर्वं प्राण एजति निःसृतम्। (ऋग्वेद, १०।१२९।२)—‘इस ससार में जो कुछ है, प्राण के कम्पित होने से निःसृत होता है।’ यहाँ ‘एजति’ शब्द पर ध्यान दो, क्योंकि ‘एज्’ धातु का अर्थ है काँपना, ‘निःसृतम्’ का अर्थ है प्रक्षिप्त और ‘यदिदम् किञ्च’ का अर्थ है इस ससार में जो भी कुछ।

जगत्-प्रपञ्च की सृष्टि का यह थोड़ा सा आभास दिया गया। इसके विषय में बहुत सी छोटी छोटी बातें कही जा सकती हैं। उदाहरणस्वरूप किस तरह सृष्टि होती है, किस तरह पहले आकाश की ओर आकाश से दूसरी वस्तुओं की सृष्टि होती है, आकाश में कम्पन होने पर वायु की उत्पत्ति कैसे होती है, आदि कितनी ही बातें कहनी पड़ेंगी। परन्तु यहाँ एक बात पर ध्यान रखना चाहिए, वह यह कि सूक्ष्मतर तत्त्व से स्थूलतर तत्त्व की उत्पत्ति होती है, सबसे पीछे स्थूल भूत की सृष्टि होती है। यही बाह्यतम वस्तु है, और इसके पीछे सूक्ष्मतर भूत विद्यमान हैं। यहाँ तक विश्लेषण करने पर भी, हमने देखा कि सम्पूर्ण ससार केवल दो तत्त्वों में पर्यवसित किया गया है, अभी तक चरम एकत्व पर हम नहीं पहुँचे। शक्ति-तत्त्व के एकत्व को प्राण, और जड़-तत्त्व के एकत्व को आकाश कहा गया है। क्या इन दोनों में भी कोई एकत्व पाया जा सकता है? ये भी क्या एक तत्त्व में पर्यवसित किये जा सकते

है? हमारा आधुनिक विज्ञान यहाँ मूक है, वह किसी तरह की मीमांसा नहीं कर सका। और यदि उसे इसकी मीमांसा करनी ही पड़े तो जैसे उसने प्राचीन पुस्तों की तरह आकाश और प्राणों का आविष्कार किया है, उसी तरह उनके माँ पर उसे आगे भी करना होगा।

जिस एक तरह से आकाश और प्राण की सृष्टि हुई है वह सर्वव्यापी निर्गुण तत्त्व है जो पुराणों में ब्रह्मा चतुरानन ब्रह्मा के नाम से परिचित है और मनस्तत्त्व के अनुसार जिसको 'महत्' भी कहा जाता है। यहाँ उन दोनों तत्त्वों का मेल होता है। जिसे मन कहते हैं वह मस्तिष्क बाल में फँसा हुआ उसी महत् का एक छोटा सा भंस है और मस्तिष्क बाल में फँसे हुए संसार के सामूहिक मनों का नाम समष्टि महत् है। परन्तु विस्मेषन को आगे भी अग्रसर होना है यह अब भी पूर्ण नहीं है। हममें से हर एक मनुष्य मानो एक बुर ब्रह्माण्ड है और सम्पूर्ण जगत् विश्व ब्रह्माण्ड है। जो कुछ व्यष्टि में हो रहा है वही समष्टि में भी होता है—यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे। यह बात सहज ही हमारी समझ में आ सकती है। यदि हम अपने मन का विस्मेषन कर सकते तो समष्टि मन में क्या होता है इसका भी बहुत कुछ निश्चित अनुमान कर सकते। अब प्रश्न यह है कि वह मन है क्या चीज? इस समय पारश्चात्य वैश्यों में भौतिक विज्ञान की जैसी कुछ समझि हो रही है और शरीरविज्ञान जिस तरह पीरे पीरे प्राचीन जर्मों के एक के बाद दूसरे दुर्न पर अपना आविष्कार बना रहा है उसे देखते हुए पारश्चात्यवासियों को कोई टिकाऊ आभार नहीं मिल रहा है क्योंकि आधुनिक शरीरविज्ञान में पत्र पत्र पर मन की मस्तिष्क के साथ अभिमतता देखकर वे बड़ी उलझन में पड़ गये हैं परन्तु सार्वभर्य में हम ज्ञेय यह तत्त्व पहले ही से जानते हैं। हिन्दू आत्मक को पहले ही यह तत्त्व चीजना पकता है कि मन अज्ञेयार्थ है परन्तु सूक्ष्मतर अज्ञेय है। हमारा यह जो स्मृक शरीर है, इसके परचात् सूक्ष्म शरीर अज्ञेय मन है। यह भी अज्ञेय है केवल सूक्ष्मतर अज्ञेय है परन्तु यह आत्मा नहीं।

मैं इस 'आत्मा' शब्द का अंग्रेजी में अनुबाह नहीं कर सकता कारण यूरोप में 'आत्मा' शब्द का घोटक कोई भाव ही नहीं अतएव इस शब्द का अनुबाह नहीं किया जा सकता। जर्मन शार्बनिक इस 'आत्मा' शब्द का सेल्फ (self) शब्द से अनुबाह करते हैं, परन्तु जब तक इस शब्द को शार्बनीय भाव्यता प्राप्त न हो जाय तब तक इसे व्यवहार में लाना असम्भव है। अतएव उसे सेल्फ (self) कहो चाहे कुछ और कहो हमारी आत्मा के सिवा यह और कुछ नहीं है। यही आत्मा मनुष्य के भीतर यथार्थ मनुष्य है। यही आत्मा अज्ञेय को अपने यज्ञ के रूप में अज्ञेय मनोविज्ञान की भाषा में कहो तो अपने अन्त करण के रूप में अज्ञेयता फिरती है और मन अन्तरिक्षिणी की सहायता से शरीर की वृष्यमाण बाह्य इन्द्रियों पर काम करता

है। अस्तु, यह मन है क्या ? अभी हाल में ही पश्चात्त्य दार्शनिक यह जान सके हैं कि नेत्र वास्तव में दर्शनेन्द्रिय नहीं है, किन्तु यथार्थ इन्द्रिय इनके पीछे वर्तमान है, और यदि यह नष्ट हो जाय तो सहस्रलोचन इन्द्र की तरह चाहे मनुष्य की हजार आंखें हो, पर वह कुछ देख नहीं सकता। तुम्हारा दर्शन यह स्वतः सिद्ध सिद्धान्त लेकर आगे बढ़ता है कि दृष्टि का तात्पर्य वास्तव में बाह्य दृष्टि से नहीं, यथार्थ दृष्टि अन्तरिन्द्रिय की, भीतर रहनेवाले मस्तिष्क के केन्द्रसमूहों की है। तुम चाहे जिस नाम से पुकारो, परन्तु इन्द्रिय शब्द से हमारी नाक, कान आंखें नहीं सिद्ध होती। और इन इन्द्रियसमूहों की ही समष्टि, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के साथ मिलकर अंग्रेजी में माइण्ड (mind) नाम से पुकारी जाती है। और यदि आधुनिक शरीर-वैज्ञानिक तुमसे आकर कहें कि मस्तिष्क ही माइण्ड (mind) है, और वह मस्तिष्क ही विभिन्न सूक्ष्म अवयवों से गठित है तो तुम्हारे लिए डरने का कोई कारण नहीं। उनसे तुम तत्काल कह सकते हो कि हमारे दार्शनिक बराबर यह बात जानते हैं, यह हमारे धर्म के प्रथम मुख्य सिद्धान्तों में से एक है।

खैर, इस समय तुम्हें समझना होगा कि मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि शब्दों के क्या अर्थ हैं। सबसे पहले हम चित्त की मीमांसा करें। चित्त वास्तव में अन्तःकरण का मूल उपादान है, यह महत् का ही अंश है। विभिन्न अवस्थाओं के साथ मन का ही एक साधारण नाम चित्त है। उदाहरणार्थ ग्रीष्मकाल की उस स्थिर और शान्त झील को लो जिस पर एक भी तरंग नहीं है। सोचो, किसीने उस पर एक पत्थर फेंका। तो उससे क्या होगा ? पहले, पानी पर जो आघात किया गया उससे एक क्रिया हुई, इसके पश्चात् पानी उठकर पत्थर की ओर प्रतिक्रिया करने लगा और उसी प्रतिक्रिया ने तरंग का आकार धारण किया। पहले पहल पानी जरा काँप उठता है, उसके बाद ही तरंग के आकार में प्रतिक्रिया होती है। इस चित्त को झील की तरह समझो, और बाहरी वस्तुएँ उस पर फेंके गये प्रस्तर खड हैं। जब कभी वह इन्द्रियों की सहायता से किसी बहिर्वस्तु के सस्पर्श में आता है, बहिर्वस्तुओं को भीतर ले जाने के लिए इन इन्द्रियों की ज़रूरत होती है, तभी एक कम्पन उत्पन्न होता है। वह मन है—सकल्प-विकल्पात्मक। इसके बाद ही एक प्रतिक्रिया होती है, वह निश्चयात्मिका बुद्धि है, और इस बुद्धि के साथ साथ अहंज्ञान और बाहरी वस्तु का बोध पैदा होता है। जैसे हमारे हाथ पर मच्छर ने बैठकर डक मारा, संवेदना हमारे चित्त तक पहुँची, चित्त जरा काँप उठा—हमारे मनोविज्ञान के मत से वही मन है। इसके बाद एक प्रतिक्रिया उठी और साथ ही साथ हमारे भीतर यह भाव पैदा हुआ कि हमारे हाथ में मच्छर काट रहा है, इसे भगाना चाहिए। इसी प्रकार झील में पत्थर फेंके जाते हैं। परन्तु इतना ज़रूर समझना होगा कि झील पर जितने

आघात होते हैं सब बाहर से आते हैं परन्तु मन की सीस में बाहर से भी आघात आ सकते हैं और भीतर से भी । भिन्न और उसकी इन भिन्न भिन्न अवस्थाओं का नाम ही अन्तःकरण है ।

पहले जो कुछ कहा गया उसके साथ एक और भी बात समझनी होगी । उससे अर्थात्वाच समझने में हम लोगों को विशेष धुबिजा होगी । तुममें से हर एक ने मुक्ता अवस्था ही देखी होगी और तुममें से अनेक को भासूम भी होया कि मुक्ता किस तरह बनती है । शुक्ति (शीप) के भीतर मूक्ति अथवा बासूम की कविका पड़कर उसे उत्तेजित करती रहती है और शुक्ति की देह इस उत्तेजना की प्रतिक्रिया करते हुए उस छोटी सी बासु की रज को अपने शरीर से निकले हुए रस से ढकती रहती है । यही कविका एक निश्चित आकार को प्राप्त कर मुक्ता के रूप में परिवर्त होती है । यह मुक्ता जिस तरह निर्मित होती है, हम सम्पूर्ण संसार को उसी तरह स्थापित करते हैं । बाहरी संसार से हम आघात मर पाते हैं । यहाँ तक कि उस आघात के प्रति संतुष्य होने में भी हमें अपने भीतर से ही प्रतिक्रिया करनी पड़ती है और जब हम प्रतिक्रियाशील होते हैं तब वास्तव में हम अपने मन के अंतर्निवेश को ही उस आघात के प्रति प्रवेष्टित करते हैं और जब हमें उसकी जानकारी होती है, तब वह और कुछ नहीं उस आघात से आकार प्राप्त हमारा अपना मन ही है । जो जाग बहिर्जगत् की बचार्थता पर विस्वास करना चाहती है, उन्हें यह बात माननी पड़ेगी और जाबजब इस शरीरविज्ञान की उन्नति के बिलों में इस बात को बिना माने हुएरा उपाय ही नहीं है । यदि बहिर्जगत् को हम 'क' मान लें तो वास्तव में हम 'क + मन' को ही जानते हैं और इस जानकारी के भीतर मन का भाग इतना अधिक है कि उसने 'क' को सर्वोपर्य ढक लिया है और उस 'क' का यथार्थ रूप वास्तव में सर्वत्र अज्ञात और अज्ञेय है । अतएव यदि बहिर्जगत् के नाम से कोई वस्तु ही भी तो वह सर्वत्र अज्ञात और अज्ञेय है । हमारे मन के द्वारा वह जिस चीजे में शक्त ही जाती है, वही स्थापित होती है, इस उसकी उसी रूप में जानते हैं । अन्तर्जगत् के सम्बन्ध में भी यही बात है । हमारी आत्मा के सम्बन्ध में भी यह बात बिल्कुल सच लगती है । हम आत्मा की जानना चाहें तो उसे भी अपने मन के भीतर से समझेंगे अतः हम आत्मा के सम्बन्ध में जो कुछ जानते हैं वह 'आत्मा + मन' के सिवा और कुछ नहीं । अर्थात् मन ही के द्वारा जानत मन ही के द्वारा स्थापित आत्मा को हम जानते हैं । इस तरह के सम्बन्ध में हम आगे चलकर कुछ और विवेचना करेंगे यहाँ हमें इतना ही स्मरण रखना होगा ।

इसके पश्चात् हमें जो विषय समझना है, वह यह है कि यह देह एक निरवच्छिन्न जड़ प्रवाह का नाम है । प्रथमच इस इसमें नये नये पदार्थ जोड़ रहे हैं, फिर प्रति-

क्षण इससे कितने ही पदार्थ निकलते जा रहे हैं। जैसे एक निरन्तर बहती हुई नदी है, उसकी सलिलराशि सदा ही एक स्थान से दूसरे स्थान को जा रही है, फिर भी हम अपनी कल्पना के बल से उसके समस्त अंशों को एक ही वस्तु मानकर उसे एक ही नदी कहते हैं। परन्तु वास्तव में नदी है क्या? प्रतिक्षण नया पानी आ रहा है, प्रतिक्षण उसकी तटभूमि परिवर्तित हो रही है, प्रतिक्षण सारा वातावरण परिवर्तित होता जा रहा है। तब नदी है क्या? वह इसी परिवर्तन-समष्टि का नाम है। मन के सम्बन्ध में भी यही बात है। वीद्वो ने इस सदा ही होनेवाले परिवर्तन को लक्ष्य करके महान् क्षणिक विज्ञानवाद की सृष्टि की थी। उसे ठीक ठीक समझना बड़ा कठिन काम है। परन्तु वीद्व दर्शनो में यह मत सुदृढ युक्तियों द्वारा समर्थित और प्रमाणित हुआ है। भारत में यह वेदान्त के किसी किसी अंश के विरोध में उठ खड़ा हुआ था। इस मत को निरस्त करने की ज़रूरत आ पड़ी थी, और हम आगे देखेंगे, इस मत का खंडन करने में केवल अद्वैतवाद ही समर्थ हुआ था और कोई मत नहीं। आगे चलकर हम यह भी देखेंगे कि अद्वैतवाद के सम्बन्ध में लोगों की अनेक विचित्र धारणाएँ होने पर भी और अद्वैतवाद से लोगों के भयभीत होने पर भी, वास्तव में ससार का कल्याण इसीसे होता है, कारण इस अद्वैतवाद से ही सब प्रकार की समस्याओं का उत्तर मिलता है। द्वैतवाद और दूसरे जितने 'वाद' हैं उपासना आदि के लिए बहुत अच्छे हैं, उनसे मन को बड़ी तृप्ति होती है और हो सकता है कि उनसे मन के उच्च पथ पर बढ़ने में सहायता मिलती हो, परन्तु यदि कोई तर्कसंगत एवं धर्मपरायण होना चाहे तो उसके लिए एकमात्र गति द्वैतवाद ही है। अस्तु, मन को भी देह की तरह किसी नदी के सदृश समझना चाहिए। वह भी सदा एक ओर खाली और दूसरी ओर पूर्ण हो रहा है। परन्तु वह एकत्व कहाँ है, जिसे हम आत्मा कहते हैं? हम देखते हैं कि हमारी देह और मन में इस तरह सदा ही परिवर्तन होने पर भी हमारे भीतर कोई ऐसी वस्तु है, जो अपरिवर्तनीय है, जिसके कारण हमारी वस्तु विषयक धारणाएँ अपरिवर्तनीय हैं। जब विभिन्न दिशाओं से आलोक-रश्मियाँ किसी यवनिका या दीवार अथवा किसी दूसरी अचल वस्तु पर पड़ती हैं, केवल तभी उनके लिए एकता-स्थापन सम्भव होता है, केवल तभी वे एक अखंड भाव की सृष्टि कर सकती हैं। मनुष्य के विभिन्न शारीरिक अवयवों में वह एकत्व कहाँ है, जिस पर पहुँचकर विभिन्न भावराशियाँ एकत्व और पूर्ण अखंडत्व को प्राप्त हो सकें? इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह वस्तु कभी मन नहीं हो सकती, क्योंकि वह परिवर्तनशील है। इसलिए अवश्य वह ऐसी वस्तु है जो न देह है, न मन है, जिसमें कभी परिवर्तन नहीं होता, जिसमें आकर हमारे समस्त भाव, बाहर के समस्त विषय एक अखंड भाव में परिणत हो जाते हैं—यही वास्तव में हमारी आत्मा है।

और जब कि हम देख रहे हैं कि सम्पूर्ण जड़ पदार्थ जिसे तुम सूक्ष्म जड़ अथवा मग चाहे जिस नाम से पुकारो परिवर्तनशील है और जब कि सम्पूर्ण सूक्ष्म जड़ या बाह्य अणु भी परिवर्तनशील है तो यह अपरिवर्तनीय वस्तु (आत्मा) कदापि जड़ पदार्थ नहीं हो सकती अतएव वह चेतन-स्वभाव अविनाशी और अपरिचामी है।

इसके बाद एक वृत्त प्रस्तुत उठता है। यह प्रस्तुत बहिर्भोग्य सम्बन्धी वृत्तों में सृष्टि रचनावादों (Design Theories) से भिन्न है। इस संसार को देख कर किसने इसकी सृष्टि की किसने जड़ पदार्थ बनाया आदि प्रश्नों से जिस सृष्टि-रचना-वाद की उत्पत्ति होती है मैं उसकी बात नहीं कहता। मनुष्य की भीतरी प्रकृति से संसार को जानना मेरी मुख्य बात है। आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में जिस तरह प्रश्न उठा जा सकता है वही भी ठीक उसी तरह प्रश्न उठ रहा है। यदि यह प्रश्न सत्य माना जाय कि हर एक मनुष्य में शरीर और मन से पृथक् एक अपरिवर्तनीय आत्मा विद्यमान है तो यह भी मानना पड़ता है कि इन आत्माओं के भीतर आत्मा भाव और सहानुभूति की एकता विद्यमान है। अन्ततः हमारी आत्मा तुम्हारी आत्मा पर कैसे प्रभाव डाल सकती है? परन्तु आत्माओं के बीच में रहनेवाली वह कौन सी वस्तु है जिसके भीतर से एक आत्मा दूसरी आत्मा पर कार्य कर सकती है? वह माध्यम कहाँ है जिसके द्वारा वह क्रियाशील होती है। मैं तुम्हारी आत्मा के बारे में किस प्रकार कुछ भी अनुभव कर सकता हूँ? वह कौन सी वस्तु है, जो हमारी और तुम्हारी आत्मा में सम्बन्ध है? अतः यहाँ एक दूसरी आत्मा के मानने की शारीरिक आवश्यकता प्रतीत होती है क्योंकि वह आत्मा सम्पूर्ण भिन्न भिन्न आत्माओं और जड़ वस्तुओं के भीतर से अपना कार्य करती है, वह संसार की असंख्य आत्माओं में अंतर्प्रवेश भाव से विद्यमान रहती है उसीकी सहायता से दूसरी आत्माओं में जीवनी शक्ति का संचार होता है एक आत्मा दूसरी आत्मा को प्रेरित करती है एक दूसरे से सहानुभूति रखती है या एक दूसरे के लिए कार्य करती है। इसी सर्वव्यापी आत्मा को परमात्मा कहते हैं। यह सम्पूर्ण संसार का प्रभु है ईश्वर है। और जब कि आत्मा जड़ पदार्थ से नहीं बनी जब कि वह चेतन स्वरूप है तो वह जड़ के नियमों का अनुसरण नहीं कर सकती—उसका विचार जड़ के नियमानुसार नहीं किया जा सकता। अतएव वह अजेय अमृता अविनाशी तथा अपरिचामी है।

मैत्रं विप्रसक्तिं शतशान्तिं मैत्रं शक्तिं वाचस्पतिः ॥

न चार्थं वक्ष्येऽयमप्यर्थो न शोषयति मांस्तः ॥

निर्वाणं सर्वगतं रचयानुरचयन्नोऽयं जगज्जनाः ॥

(गीता १।२३ २४)

—'इस आत्मा को न आग जला सकती है, न कोई शस्त्र इसे छेद सकता है, न वायु इसे सुखा सकती है, न पानी गीला कर सकता है, यह आत्मा नित्य, सर्वगत, कूटस्थ और सनातन है।' गीता और वेदान्त के अनुसार जीवात्मा विभु है, कपिल के मत में यह सर्वव्यापी है। यह सच है कि भारत में ऐसे अनेक सम्प्रदाय हैं जिनके मतानुसार यह जीवात्मा अणु है, किन्तु उनका यह भी मत है कि आत्मा का प्रकृत स्वरूप विभु है, केवल व्यक्त अवस्था में ही वह अणु है।

इसके बाद एक दूसरे विषय की ओर ध्यान देना चाहिए। बहुत सम्भव है, यह तुम्हें आश्चर्यजनक प्रतीत हो, परन्तु यह तत्त्व भी विशेष रूप से भारतीय है और हमारे सभी सम्प्रदायों में वह सामान्य रूप में विद्यमान है। इसीलिए मैं तुमसे इस तत्त्व की ओर ध्यान देने और उसे याद रखने का अनुरोध करता हूँ, कारण, यह सभी भारतीय विषयों की बुनियाद है। पाश्चात्य देशों में जर्मन और अंग्रेज पण्डितों द्वारा प्रचारित भौतिक विकासवाद तुम लोगों ने सुना होगा। उस मत के अनुसार वास्तव में सभी प्राणियों के शरीर अभिन्न हैं, जो भेद हम देखते हैं वे एक ही शृंखला की भिन्न भिन्न अभिव्यक्ति मात्र है और क्षुद्रतम कीट से लेकर श्रेष्ठतम साधु तक सभी वास्तव में एक हैं, एक ही दूसरे में परिणत हो रहा है तथा इसी तरह चलते हुए क्रमशः उन्नत होकर जीव पूर्णत्व प्राप्त कर रहे हैं। यह सिद्धान्त परिणामवाद के नाम से हमारे शास्त्रों में भी है। योगी पतजलि कहते हैं, **जात्यन्तरपरिणाम प्रकृत्यापूरात्**। (पातजल योगसूत्र, ४।२)—'एक जाति, एक श्रेणी दूसरी जाति, दूसरी श्रेणी में परिणत होती है।' 'परिणाम' का अर्थ है एक वस्तु का दूसरी वस्तु में परिवर्तित होना। परन्तु यहाँ यूरोपवालों से हमारा मतभेद कहाँ पर होता है? पतजलि कहते हैं, **प्रकृत्यापूरात्**—प्रकृति के आपूरण से। यूरोपीय कहते हैं कि प्रतिद्वन्द्विता, प्राकृतिक और यौन-निर्वाचन आदि ही एक प्राणी को दूसरे प्राणी का शरीर ग्रहण करने के लिए बाध्य करते हैं, परन्तु हमारे शास्त्रों में इस **जात्यन्तर-परिणाम** का जो कारण बतलाया गया है, उसे देखते हुए यही कहना पड़ता है कि यहाँवालों ने यूरोपीयों से और भी अच्छा विश्लेषण किया है—इन्होंने यहाँवालों से और भी गहरे पहुँचने की कोशिश की है। ये कहते हैं, **प्रकृत्यापूरात्**—'प्रकृति के आपूरण से।' इसका क्या अर्थ है? हम यह मानते हैं कि जीवाणु क्रमशः उन्नत होते हुए बुद्ध बन जाता है, किन्तु साथ ही हमारी यह भी दृढ़ वारणा है कि किसी यन्त्र में यदि किसी न किसी तरह की शक्ति यथोचित मात्रा में न भर दी जाय तो उस यन्त्र से तदनु रूप कार्य सम्भव नहीं हो सकता। उस शक्ति का विकास चाहे जिस किसी रूप में हो, पर शक्तिसमष्टि की मात्रा सदा एक ही रहती है। यदि तुम्हें एक प्रान्त में शक्ति का विकास देखना है तो दूसरे प्रान्त में उसका प्रयोग करना होगा—वह



शक्ति किसी दूसरे आकार में प्रकाशित भले ही हो परन्तु उसका परिमाण एक हीना ही चाहिए। अतएव बुद्ध यदि परिणाम का एक प्राप्त हो तो दूसरे प्राप्त का भीवानु अवश्य ही बुद्ध के समुच्च होगा। यदि बुद्ध कमविकसित परिणत भीवानु हो तो वह भीवानु भी कमसंकुचित (अभ्यक्त) बुद्ध ही है। यदि यह ब्रह्माण्ड अनन्त शक्ति का व्यक्त रूप हो तो जब इस ब्रह्माण्ड में प्रत्येक की अवस्था होती है, तब भी दूसरे किसी आकार में उसी अनन्त शक्ति की विद्यमानता स्वीकार करनी पड़ेगी। इससे अभ्यन्ता कुछ भी नहीं हो सकता। अतएव यह निश्चित है कि प्रत्येक आत्मा अनन्त है। हमारे पीरों तले रंगते रहनेवाले सुत्र कौट से लेकर महत्तम और उच्चतम सामु एक सब में वह अनन्त शक्ति अनन्त पवित्रता और समी गुण अनन्त परिमाण में मौजूद है। मेर केवल अभिव्यक्ति की म्यूलाधिक मात्रा में है। कौट में उस महाशक्ति का बोझा ही विकास पाया जाता है तुममें उससे भी अधिक और किसी दूसरे वैशेष्य पुरुष में तुमसे भी कुछ अधिक शक्ति का विकास हुआ है। मेर वह प्रकृति ही है, परन्तु है समी में वही एक शक्ति। पतञ्जलि कहते हैं, तत शक्तिरूपम् (पातञ्जल योगसूत्र ४।१)।—किसान जिस तरह अपने खेत में पानी भरता है। किसी बकासय से वह अपने खेत का एक कोना काटकर पानी भर रहा है, और बस के वेग से खेत के वह जाने के मय से उसने गाड़ी का मुँह बन्द कर रखा है। जब पानी की चरुत्त पड़ती है, तब वह द्वार खोल देता है, पानी अपनी ही शक्ति से उसमें भर जाता है। पानी जाने के वेग की बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि वह बकासय के बस में पहुँचे ही से विकसित है। इसी तरह हममें से हर एक के पीछे अनन्त शक्ति अनन्त पवित्रता अनन्त सत्ता अनन्त शीर्ष अनन्त आनन्द का सम्भार परिपूर्ण है, केवल यह द्वार—वही देहकमी द्वार हमारे वास्तविक रूप के पूर्ण विकास में बाधा पहुँचाता है।

और इस देह का संयोजन बिलगा ही उभरता जाता है। बिलगा ही तमोगुण रजोगुण में और रजोगुण सत्त्वगुण में परिवर्तित होता है, यह शक्ति और सुखता सत्ता ही प्रकाशित होती रहती है, और इसीलिए भोजन-पान के सम्बन्ध में हम इतना सावधान रहते हैं। वह सम्भव है कि हम लोग मूक सत्त्व भूल मये हों जैसे हम अपनी विवाह-भवा के सम्बन्ध में कह सकते हैं। यह विषय यद्यपि यहाँ अप्रासंगिक है, फिर भी हम बुद्ध्यात्म के तीर पर वहाँ इसका ध्यान कर सकते हैं। यदि कोई दूसरा अवसर मिलेगा तो मैं इन विषयों पर विशेष रूप से कहूँगा परन्तु इस समय मैं तुमसे इतना ही कहता हूँ कि बिना मूक भावों से हमारी विवाह-भवा का प्रचलन हुआ है, उनके प्रह्वन करने से ही बचाने सम्भवा का संचार ही सकता है, किसी दूसरे उपाय से कदापि नहीं। यदि हर एक स्त्री-पुरुष की जिस किसी पुरुष या स्त्री

को पति अथवा पत्नी के रूप से ग्रहण करने की स्वाधीनता दी जाय, यदि व्यक्तिगत सुख, पाशव प्रकृति की परितृप्ति, समाज में बिना किसी बाधा के संचरित होती रहे, तो उसका फल अवश्य ही अशुभ होगा। उससे दुष्ट प्रकृति और आसुर स्वभाव की सन्तान उत्पन्न होगी। प्रत्येक देश में एक ओर मनुष्य इस तरह की पशु प्रकृति की सन्तान उत्पन्न कर रहे हैं, दूसरी ओर इनके दमन के लिए पुलिस की सख्या बढा रहे हैं। इस तरह की सामाजिक व्याधि के प्रतिकार की चेष्टा में कोई फल नहीं होता, बल्कि समाज में इन दोषों की उत्पत्ति को कैसे रोका जाय, सन्तानों की सृष्टि किस उपाय से रोकी जाय, यह समस्या उठ खड़ी होती है। और जब तक तुम समाज में हो, तब तक तुम्हारे विवाह का प्रभाव समाज के प्रत्येक मनुष्य पर अवश्य ही पड़ेगा, अतएव तुम्हें किस तरह विवाह करना चाहिए, किस तरह का नहीं, इस पर तुम्हें आदेश देने का अधिकार समाज को है। भारतीय विवाह-प्रथा के पीछे इसी तरह के ऊँचे भाव हैं। जन्मपत्रों में वर-कन्या की जैसी जाति, गण आदि लिखे रहते हैं, अब भी उन्हींके अनुसार हिन्दू समाज में विवाह होते हैं और प्रसंग के अनुसार मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि मनु के मत से कामोद्भूत पुत्र आर्य नहीं है। गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त जिस सन्तान के सस्कार वैदिक विधि के अनुसार हो, वही वास्तव में आर्य है। आजकल सभी देशों में ऐसी आर्य सन्तान बहुत कम पैदा होती है, और इसीका फल है कि कलियुग नाम की दोषराशि की उत्पत्ति हो रही है। हम प्राचीन महान् आदर्शों को भूल गये हैं। यह सच है कि हम लोग इस समय इन भावों को पूर्ण रूप से कार्य में परिणत नहीं कर सकते, यह भी सम्पूर्ण सत्य है कि हम लोगों ने इन सब महान् भावों में से कुछ को हास्यास्पद बना दिया है। यह विल्कुल सच है और शोक का विषय है कि आजकल प्राचीन काल के से पिता-माता नहीं हैं, समाज भी अब पहले सा शिक्षित नहीं है, और प्राचीन समाज में जिस तरह समाज के सभी लोगों पर प्रीति रहती थी, अब वैसी नहीं रहती, किन्तु व्यावहारिक रूप में दोषों के आ जाने पर भी वह मूल तत्त्व बड़े ही महत्त्व का है, और यदि उसका कार्यान्वित होना सदोष है, यदि इसके लिए कोई खास तरीका नाकामयाव हुआ है, तो उसी मूल तत्त्व को लेकर ऐसी चेष्टा करनी चाहिए, जिससे वह अच्छी तरह काम में आ सके। मूल तत्त्व के नष्ट करने की चेष्टा क्यों? भोजन सम्बन्धी समस्या के लिए भी यही बात है। वह तत्त्व भी जिस तरह काम में लाया जा रहा है, वह निस्सन्देह बहुत ही खराब है, किन्तु इसमें उस तत्त्व का कोई दोष नहीं। वह सनातन है, वह सदा ही रहेगा, ऐसा पुनः प्रयत्न करो जिससे वह तत्त्व ठीक ठीक भाव से काम में लाया जा सके।

भारत में हमारे सभी सम्प्रदायों को आत्मा सम्बन्धी इस तत्त्व पर विश्वास

करना पड़ता है। केवल ईतबादी कहते हैं वीसा हम आगे विचार करते बल्कि कर्मों से वह संकुचित हो जाती है, उसको सम्पूर्ण शक्ति और स्वभाव सफाई को प्राप्त हो पाते हैं फिर उत्कर्म करने से उस स्वभाव का विकास होता है। और ईतबादी कहते हैं आत्मा का न कमी संशोध हाता है, न विकास इस तरह होने की प्रतीति मात्र होती है। ईतबादी और ईतबादियों में बस इतना ही भेद है परन्तु यह बात सभी मानते हैं कि हमारी आत्मा में पहले हा से सम्पूर्ण शक्ति विद्यमान है, एसा नहीं कि कुछ बाहर से आत्मा में आये या कोई चीज इसमें आसमान से टपक पड़े। प्यान देने योग्य बात है कि तुम्हारे बेद प्रेरित (inspired) नहीं है ऐसे नहीं कि वे बाहर से भीतर आ रहे हैं किन्तु अन्तस्फुरित (expured) है अर्थात् भीतर से बाहर आ रहे हैं—वे सभावन नियम हैं जिनकी अवस्थिति प्रत्येक आत्मा में है। बीटी से लेकर वेनता तक तककी आत्मा में वेद अवस्थित है। बीटी को कर्मक विकसित होकर श्रुति-स्मृति प्राप्त करना है सभी उसका भीतर बेद अवधि सनाउन तक प्रकाशित होया। इस महान् भाव को समझने की आवश्यकता है कि हमारी शक्ति पहले ही से हमारे भीतर मौजूब है—शक्ति पहले ही से हम में है। उसके लिए इतना कह सकते हो कि वह संकुचित हो गयी है, अथवा भासा के आवरण से आवृत हो गयी है, परन्तु इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता। पहले ही से वह वहीं मौजूब है, यह तुम्हीं समझ लेना होगा। इस पर तुम्हीं विश्वास करना होया—विश्वास करना होया कि कुछ के भीतर जो शक्ति है, वह एक छोटे से छोटे मनुष्य में भी है। यही हिल्मुओं का आत्म-तत्त्व है।

परन्तु यही बीडों के साथ महा विरोध बढ़ा हो जाता है। वे बेह का विस्तेपन करके उसे एक बड़ शीत मात्र कहते हैं और सभी तरह मन का विस्तेपन करके उसे भी एक बूझा बड़ प्रवाह बतलाते हैं। आत्मा के सम्बन्ध में वे कहते हैं, यह अनावश्यक है और उसके अस्तित्व की कल्पना करने की कोई आवश्यकता नहीं। किसी ब्रह्म और उसमें संकल्प गुणशक्ति की कल्पना का क्या काम? हम लोग कुछ गुण ही मानते हैं। जहाँ सिर्फ एक कारण मान लेने पर सब विषयों की व्याख्या हो जाती है, वहाँ जो कारण मानना युक्तिघमत् नहीं है। इसी तरह बीडों के साथ विचार किया और जो मत् ब्रह्म विवेक का अस्तित्व मानते वे उनका संबन्ध नरके बीडों ने उनको बूझ में मिला दिया। जो ब्रह्म और गुण दोनों का अस्तित्व मानते हैं जो कहते हैं—तुममें एक अलग आत्मा है, हममें एक अलग हर एक के शरीर और मन से अलग एक एक आत्मा है, हर एक का एक स्वतन्त्र अस्तित्व है—उनकी चर्क-पड़ति में पहले ही से कुछ भुटि थी।

यही तक तो ईतबाद का मत ठीक है, हम पहले ही देख चुके हैं कि यह शरीर

है, यह सूक्ष्म मन है, यह आत्मा है और सब आत्माओ में है वह परमात्मा। यहाँ मुश्किल इतनी ही है कि आत्मा और परमात्मा दोनों ही द्रव्य बतलाये जा रहे हैं और देह-मन आदि तथाकथित द्रव्य उनसे गुणवत् सलग्न है, ऐसा स्वीकार किया जा रहा है। अब बात यह है कि किसीने कभी जिस द्रव्य को नहीं देखा, उसके सम्बन्ध में वह कभी विचार नहीं कर सकता। अतः वे कहते हैं, ऐसी दशा में इस तरह के द्रव्य के मानने की ज़रूरत क्या है? तो फिर क्षणिकविज्ञानवादी क्यों नहीं हो जाते और क्यों नहीं कहते कि मानसिक तरंगों के सिवा और किसी भी वस्तु का अस्तित्व नहीं है?—उनमें से कोई एक दूसरी से मिली हुई नहीं, वे आपस में मिलकर एक वस्तु नहीं हुईं, समुद्र की तरंगों की तरह एक दूसरी के पीछे पीछे चली आ रही हैं, वे कभी भी सम्पूर्ण नहीं, वे कभी एक अखण्ड इकाई नहीं बनाती। मनुष्य बस इसी तरह की तरंग-परम्परा है—जब एक तरंग चली जाती है, तब दूसरी तरंग पैदा कर जाती है, ऐसा ही चलता रहता है और इन्हीं तरंगों की निवृत्ति को निर्वाण कहते हैं। तुम देखते हो, इसके सामने द्वैतवाद मूक है, यह असम्भव है कि वह इसके विरुद्ध कोई युक्ति दे सके, और द्वैतवाद का ईश्वर भी यहाँ नहीं टिक सकता। जो सर्वव्यापी है तथा व्यक्तिविशेष है, बिना हाथों के ससार की सृष्टि कर रहा है, बिना पैरों के जो चल सकता है—इसी प्रकार और भी, कुम्भकार जिस तरह घट का निर्माण करता है, उसी तरह जो विश्व की सृष्टि करता है—उसके लिए बौद्ध कहते हैं, इस तरह की कल्पना बच्चों की जैसी है और यदि ईश्वर इस तरह का है तो वे उस ईश्वर के साथ विरोध करने को तैयार हैं, उसकी उपासना करने के अभिलाषी नहीं। यह ससार दुःख से परिपूर्ण है, यदि यह ईश्वर का काम हो तो बौद्ध कहते हैं, हम इस तरह के ईश्वर के साथ लड़ने को तैयार हैं। और दूसरे, इस तरह के ईश्वर का अस्तित्व अयौक्तिक और असम्भव है। सृष्टि-रचनावाद (Design Theory) की श्रुतियों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि क्षणिकविज्ञानवादियों ने उनके सम्पूर्ण युक्तिजाल का खडन कर डाला है। अतएव वैयक्तिक ईश्वर नहीं टिक सकता।

सत्य, एकमात्र सत्य अद्वैतवादियों का लक्ष्य है। सत्यमेव जयते नानुत्तम । सत्येन पन्था विततो देवयानः —‘सत्य ही की विजय होती है, मिथ्या को कभी विजय नहीं मिलती, सत्य से ही देवयान मार्ग की प्राप्ति होती है।’ (मुण्डकोपनिषद्, ३।१।६) सत्य की पताका सभी उड़ाया करते हैं, किन्तु यह केवल दुर्बलों को पद-दलित करने के लिए। तुम अपने ईश्वर विषयक द्वैतवादात्मक विचार लेकर किसी वेचारे प्रतिमापूजक के साथ विवाद करने जा रहे हो, सोच रहे हो, तुम बड़े युक्तिवादी हो, उसे अनायास ही परास्त कर सकते हो, यदि वह उल्टे तुम्हारे ही वैयक्तिक

ईश्वर को चढ़ा दे—उसे कास्मिक कहे तो फिर तुम्हारी क्या बचा हो? तब तुम धर्म की दुहाई देने लगते हो अपने प्रतिद्वन्द्वी को नास्तिक नाम से पुकार कर चिस्ल-मों मचाने लगते हो और यह तो दुर्बल मनुष्यों का सदा ही मारा रहा है—जो मुझे परास्त करेगा वह बोर नास्तिक है! यदि मुक्तिवादी होना चाहते हो तो धर्म से अलग तक मुक्तिवादी ही बने रहो और अगर न रह सको तो तुम अपने सिद्ध बितनी स्वाधीनता चाहते हो चरनी ही दूधरे को भी क्यों नहीं बेते? तुम इस तरह के ईश्वर का अस्तित्व कैसे प्रमाणित करोगे? दूसरी ओर, वह प्रायः अप्रमाणित किया जा सकता है। ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में ऐतना प्रमाण नहीं बल्कि नास्तिक के सम्बन्ध में कुछ अति प्रबल प्रमाण है भी। तुम्हारा ईश्वर, उसके गुण इत्यस्वरूप असंख्य जीवात्मा प्रत्येक जीवात्मा का एक व्यक्ति मात्र इन सबको लेकर तुम उसका अस्तित्व कैसे प्रमाणित कर सकते हो? तुम व्यक्ति हो किस नियम में? देह के सम्बन्ध में तुम व्यक्ति हो ही नहीं क्योंकि इस समय प्राचीन बीजों की अपेक्षा तुम्हें और अच्छी तरह मालूम है कि जो अङ्गुलि कभी सूर्य में रखी होमी वही तुममें आ गयी है, और वही तुम्हारे भीतर से निकलकर वनस्पतियों में चली जा सकती है। इस तरह तुम्हारा व्यक्तित्व कहाँ रह जाता है? तुम्हारे भीतर आज रात एक तरह का विचार है जो कल सुबह दूसरी तरह का। तुम उसी रीति से अब विचार नहीं करते जिस रीति से बचपन में करते थे कोई व्यक्ति अपनी युवावस्था में जिस ढंग से विचार करता था वैसे बुढ़ावस्था में नहीं करता। तो फिर तुम्हारा व्यक्तित्व कहाँ रह जाता है? यह सब कहो कि ज्ञान से ही तुम्हारा व्यक्तित्व है—ज्ञान अहंकार मात्र है और यह तुम्हारे प्रकृत अस्तित्व के एक बहुत छोटे अंश में व्याप्त है। जब मैं तुमसे बातचीत करता हूँ तब मेरी सभी इन्द्रियाँ काम करती रहती हैं, परन्तु उनके सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं जान सकता। यदि वस्तु की सत्ता का प्रमाण ज्ञान ही हो तो कहना पड़ेगा कि उनका (इन्द्रियों का) अस्तित्व नहीं है, क्योंकि मुझे उनके अस्तित्व का ज्ञान नहीं रहता। तो अब तुम अपने वैयक्तिक ईश्वर सम्बन्धी सिद्धान्तों को लेकर कहाँ रह जाते हो? इस तरह का ईश्वर तुम कैसे प्रमाणित कर सकते हो?

फिर और, और सबे हीकर वह बोधना करेगे कि यह केवल अयोग्य ही नहीं बल्कि अनैतिक भी है क्योंकि वह मनुष्य को कापुल्य बन जाना और बाहर से सहायता लेने की प्रार्थना करना सिखाता है— इस तरह कोई भी तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता। वह जो अज्ञान है इतका निदान मनुष्य ने ही किया है। जो फिर बाहर क्यों एक कास्मिक व्यक्ति विशेष पर विश्वास करते ही जिसे न कभी देना न जिसका कभी अनुभव किया अबना जिससे न कभी किसीको कोई सहायता

मिली ? क्यों फिर अपने को कापुरुष बना रहे हो और अपनी सन्तानों को सिखलाते हो कि कुत्ते की तरह हो जाना मनुष्य की सर्वोच्च अवस्था है, और चूँकि हम कमजोर, अपवित्र और ससार में अत्यन्त हेय और अवम हैं, इसलिए इस काल्पनिक सत्ता के सामने घुटने टेककर बैठ जाना चाहिए ? दूसरी ओर, बौद्ध, तुमसे कहेंगे, तुम अपने को इस तरह कहकर केवल झूठ ही नहीं कहते, किन्तु तुम अपनी सन्तानों के लिए घोर पाप का सचय कर रहे हो, क्योंकि, स्मरण रहे, यह ससार एक प्रकार का सम्मोहन है, मनुष्य जैसा सोचते हैं, वैसे ही हो जाते हैं। अपने सम्बन्ध में तुम जैसा कहोगे, वही बन जाओगे। भगवान् बुद्ध की पहली बात यह है — 'तुमने अपने सम्बन्ध में जो कुछ सोचा है, तुम वही हुए हो, भविष्य में जो कुछ सोचोगे वैसे ही होगे।' यदि यह सत्य है तो कभी यह मत सोचना कि तुम कुछ नहीं हो, या जब तक तुम किसी दूसरे की, जो यहाँ नहीं रहता, स्वर्ग में रहता है, सहायता नहीं पाते, तब तक कुछ नहीं कर सकते। इस तरह सोचने से उसका फल यह होगा कि तुम प्रतिदिन अधिकाधिक कमजोर होते जाओगे। 'हम महा अपवित्र हैं, हे प्रभो, हमें पवित्र करो'—इसका परिणाम होगा कि तुम अपने को हर प्रकार के पापों के लिए विवश कर दोगे। बौद्ध कहते हैं, प्रत्येक समाज में जिन पापों को देखते हो, उसमें नब्बे फी सदी बुराइयाँ इसी वैयक्तिक ईश्वर की धारणा के कारण उत्पन्न हुई हैं, मनुष्य-जीवन का, अद्भुत मनुष्य-जीवन का, एकमात्र उद्देश्य एव लक्ष्य अपने को कुत्ते की तरह बना डालना—यह मनुष्य की एक भयानक धारणा है। बौद्ध वैष्णवों से कहते हैं, यदि तुम्हारा आदर्श, तुम्हारे जीवन का लक्ष्य और उद्देश्य भगवान् के वैकुण्ठ नामक स्थान में जाकर अनन्त काल तक हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा रहना ही है तो इससे आत्महत्या कर डालना अधिक अच्छा है। बौद्ध यहाँ तक कह सकते हैं, इस भाव से वचने के लिए निर्वाण या विनाश की चेष्टा वे कर रहे हैं। मैं तुम लोगों के सामने ठीक बौद्धों की ही तरह ये बातें कह रहा हूँ, क्योंकि आजकल लोग कहा करते हैं कि अद्वैतवाद से लोगों में अनैतिकता घुस जाती है। इसलिए दूसरे पक्ष के लोगों का जो कुछ कहना है, वही मैं तुमसे कहने की चेष्टा कर रहा हूँ। हमें दोनों पक्षों पर निर्भीक भाव से विचार करना है।

एक वैयक्तिक ईश्वर ने ससार की सृष्टि की—इसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता। यह हमने सर्वप्रथम समझ लिया। क्या एक बालक भी आजकल इस बात पर विश्वास कर सकता है ? चूँकि एक कुम्भकार ने घट का निर्माण किया, अतएव एक ईश्वर ने इस जगत् की सृष्टि की। यदि ऐसा ही हो तो ईश्वर भी तुम्हारा एक कुम्भकार ही हुआ। और यदि कोई तुमसे कहे कि सिर और हाथों के न रहने पर भी वह काम करता है, तो तुम उसे पागलखाने में रखने की ठानोगे। तुम्हारे

ईश्वर ने—इस संसार के सृष्टिकर्ता वैयक्तिक ईश्वर ने जिसके पास तुम जीवन भर से चिन्ता रहे हो क्या कभी तुम्हें कोई सहायता थी? आधुनिक विज्ञान तुम लोगों के सामने यह एक और प्रश्न पेश करके उसके उत्तर के लिए चुनौती दे रहा है। वे प्रामाणिक कर देंगे कि इस तरह की जो सहायता तुम्हें मिली है, उस तुम अपनी ही चेष्टा से प्राप्त कर सकते थे। इस तरह के रोदन से बुरा संकितबन्धन करने की तुम्हारे लिए कोई आवश्यकता न थी इस तरह न रोकर तुम अपना उद्देश्य अनायास ही प्राप्त कर सकते थे। और भी हम सोच पाहेंगे देख चुके हैं कि इस तरह के वैयक्तिक ईश्वर की बारम्बा से ही अत्याचार और पुरोहित-प्रपंच का आविर्भाव हुआ। जहाँ यह बारम्बा विद्यमान थी वहाँ अत्याचार और पुरोहित प्रपंच प्रचलित थे और बीड़ों का कथन है कि जब तक वह मिथ्या मान जाड़ समेत नष्ट नहीं होता तब तक यह अत्याचार बन्द नहीं हो सकता। जब तक मनुष्य सोचता है कि किसी दूसरे अधौकिक पुरुष के सामने उसे विनीत मान से रहना होगा तब तक पुरोहित का अस्तित्व अनस्य रहेगा। वे विशेष अधिकार या दावे पेश करेंगे ऐसी चेष्टा करेंगे जिससे मनुष्य उनके सामने सिर झुकाये और बेचारे बसहाय व्यक्ति मध्यस्थता करने के लिए पुरोहितों के प्रार्थी बने रहेंगे। तुम लोग बाह्यजनों को निर्मूलक कर सकते हो परन्तु इस बात पर ध्यान रखो कि जो लोग ऐसा करेंगे वे ही उनके स्थान पर अपना अधिकार जमायेंगे और वे फिर बाह्यजनों की अपेक्षा अधिक अत्याचारी बन जायेंगे। क्योंकि बाह्यजनों में फिर भी कुछ उदारता है, परन्तु वे स्वयमिद बाह्यज सदा से ही बड़े दुःखचारी हुआ करते हैं। मियुक्त का यदि कुछ मन मिल जाय तो वह मनुष्य संसार को एक तिनके के बराबर समझता है। अतएव जब तक इस वैयक्तिक ईश्वर की धारणा बनी रहेगी तब तक वे सब पुरोहित भी रहेंगे। और समाज में किसी तरह की उच्च नैतिकता की भाषा भी ही नहीं या सकेगी। पुरोहित-प्रपंच और अत्याचार तथा एक साथ रहेंगे। क्यों लोगों ने इन वैयक्तिक ईश्वर की कल्पना की? कारण इसका यह है कि प्राचीन समय में कुछ बलवान मनुष्यों ने मापारण मनुष्यों को अपने हाथ में लाने तथा वे तुम्हें हमारा आदेश मानकर चलना होगा नहीं तो हम तुम्हारा नाम कर दामेंगे। यही दगका भय और दहि है। इसका कोई सुमत् कारण नहीं—महदुर्ग्य बयमुद्धतम्—एक लगा पुरुष है जो हाथ में सदा ही बय सिध र्हाता है, और जो उमारी भाजा वा उम्पयन करता है, उगका वह लज्जाम विनाश कर दामता है।

इसके बाद बीड़ कहते हैं तुम्हारा यह कथन पूर्ववत्वा सुनिश्चित है कि तब कुछ कर्मकाण्ड का फल है। तुम लोग अनेक्य जीवात्माओं के सम्बन्ध में विचारण करते हो और तुम्हारे मन में इन जीवात्मा का न जग्न है, न मृत्यु। यहाँ तक तो तुम्हारी

के नाम से कुछ भी नहीं रह जाता, कारण व्यक्तित्व के नाम से ऐसा कुछ सूचित होता है, जो अपरिणामी है। परिवर्तनशील व्यक्तित्व हो ही नहीं सकता, यह स्वविरोधी वाक्य है। इसलिए हमारे इस क्षुद्र जगत् में व्यक्तित्व के नाम से कुछ भी नहीं रह जाता। विचार, भाव, मन, शरीर, जीव-जन्तु और वनस्पति— इनका सदा ही परिवर्तन होता रहता है। अस्तु। अब सम्पूर्ण विश्व को एक समष्टि की इकाई के रूप में ग्रहण करो। क्या यह परिवर्तित या गतिशील हो सकती है? कदापि नहीं। किसी अल्प गतिशील या सम्पूर्ण गतिहीन वस्तु से तुलना करने पर ही गति का निश्चय होता है। अतः समष्टि के रूप में विश्व गति और परिणाम से रहित है। यहाँ मालूम हो जाता है कि जब तुम अपने को सम्पूर्ण विश्व से अभिन्न समझोगे, जब 'मैं ही विश्वब्रह्माण्ड हूँ' यह अनुभव होगा, तभी—केवल तभी, तुम्हारे यथार्थ व्यक्तित्व का विकास होगा। यही कारण है कि अद्वैतवादी कहते हैं, जब तक द्वैत है, तब तक भय से छूटने का कोई उपाय नहीं है। जब कोई दूसरी वस्तु दिखलायी नहीं पड़ती, किसी भिन्न भाव का अनुभव नहीं होता, जब केवल एक ही सत्ता रह जाती है, तभी भय दूर होता है, तभी मनुष्य मृत्यु के पार जा सकता है। और तभी ससार-बोध लोप हो जाता है। अद्वैतवाद हमें यह शिक्षा देता है कि मनुष्य का यथार्थ व्यक्तित्व है समष्टि-ज्ञान में, व्यष्टि-ज्ञान में नहीं। जब तुम अपने को सम्पूर्ण समझोगे, तभी तुम अमर होगे। तभी तुम निर्भय और अमृतस्वरूप हो सकोगे, जब विश्व, ब्रह्माण्ड और तुम एक हो जाओगे, और तभी जिसे तुम परमात्मा कहते हो, जिसे सत्ता कहते हो और जिसे पूर्ण कहते हो, वह विश्व से एक हो जायगा। और हमारी तरह की मनोवृत्तिवाले लोग एक ही अखंड सत्ता को विविधतापूर्ण विश्व के रूप में देखते हैं। जो लोग कुछ और अच्छे कर्म करते हैं तथा उन्हीं सत्कर्मों के बल से जिनकी मनोवृत्ति कुछ और उत्तम हो जाती है, वे मृत्यु के पश्चात् इसी ब्रह्माण्ड में इन्द्रादि देवों का स्वर्गलोक देखते हैं। उनसे भी ऊँचे लोग इसमें ही ब्रह्मलोक देखते हैं। और जो लोग पूर्ण सिद्ध हो गये हैं, वे पृथ्वी, स्वर्ग या कोई दूसरा लोक नहीं देखते, उनके लिए यह ब्रह्माण्ड अन्तर्हित हो जाता है, उसकी जगह एकमात्र ब्रह्म ही विराजमान रहता है।

क्या हम इस ब्रह्म को जान सकते हैं? मैंने तुमसे पहले ही संहिता में अनन्त के वर्णन की कथा कही है। यहाँ हमको उसका ठीक विपरीत पक्ष मिलता है—यहाँ आन्तरिक अनन्त है। संहिता में वहिर्जगत् के अनन्त का वर्णन है। यहाँ चिन्तन-जगत्, भाव-जगत् के अनन्त का वर्णन है। संहिता में अस्तिभाव का बोध करानेवाली भाषा में अनन्त के वर्णन की चेष्टा हुई थी, यहाँ उम भाषा से काम नहीं निकला, नास्तिभावात्मक या



दार्शनिकों के अस्तित्व में एक दार्शनिक व्यापार मात्र है क्योंकि इन्द्र और गुण के नामों से वास्तव में किसी पदार्थ का अस्तित्व नहीं है। यदि तुम एक साधारण मनुष्य हो तो तुम केवल मूणराशि देखोगे और यदि तुम कोई बड़े योगी हो तो तुम इन्द्र का ही अस्तित्व देखोगे परन्तु दोनों को एक ही समय में तुम करायें नहीं देख सकते। अतएव है बौद्ध इन्द्र और मूण की लेकर तुम जो विवाद कर रहे हो, सब तो यह है कि वह बेबुनियाद है। परन्तु, यदि इन्द्र मूणरहित है तो केवल एक ही इन्द्र का अस्तित्व सिद्ध होता है। यदि तुम आत्मा से मूणराशि उठा लो और यह सिद्ध करो कि मूणराशि का अस्तित्व मन में ही है आत्मा पर उतका आरोप मात्र किया गया है तो दो आत्मा भी नहीं रह जाती क्योंकि एक आत्मा से दूसरी आत्मा की विशेषता गुणों ही की बरौफ्त सिद्ध होती है। तुम्हें कैसे मान्य होगा है कि एक आत्मा दूसरी आत्मा से पृथक् है?—कुछ भेदात्मक किन्हीं कुछ गुणों के कारण। और जहाँ गुणों की उता नहीं है, वहाँ कैसे भेद रह सकता है? जहाँ आत्मा दो नहीं आत्मा 'एक' ही है, और तुम्हारा परमात्मा अनात्मक है, वह आत्मा ही है। इसी एक आत्मा को परमात्मा कहते हैं इसे पौंचात्मा और दूसरे नामों से भी पुकारते हैं। और हे सांख्य तथा अजर अमरवादिमी तुम लोग कहते रहते हो—आत्मा सर्वव्यापी विभु है इस पर तुम लोग किस तरह अनेक आत्माओं का अस्तित्व स्वीकार करते हो? अतीत क्या कमी हो सकते हैं? एक होना ही सम्भव है। एक ही अतीत आत्मा है और सब उसी की अभिव्यक्तियाँ हैं। इसके उत्तर में बौद्ध मौन है परन्तु अद्वैतवादी चुप नहीं रह पाते।

दुर्बल मर्तों की तरह केवल दूसरे मर्तों की समालोचना करके ही अद्वैत पक्ष निरस्त नहीं होता। अद्वैतवादी सभी उन सभी मर्तों की समालोचना करते हैं जब वे उसके बहुत निकट जा पाते हैं और उसके लक्षण को देखते हैं। वह मिथै इतना ही करता है कि दूसरे मर्तों का निराकरण कर अपने सिद्धांत को स्थापित करता है। एकमात्र अद्वैतवादी ही ऐसा है जो दूसरे मर्तों का संज्ञन तो करता है परन्तु दूसरों की तरह उसके संज्ञन का आकार शास्त्रों की दुहाई देना नहीं है। अद्वैतवादिनी की मुक्ति हम प्रकार है, वे कहते हैं तुम संसार को एक अविद्यमान प्रति प्रयाह मान बट्टे ही ठीक है, स्पष्टि में सब गतिहीन है भी तुममें भी गति है और वेद में भी गति है पति सर्वत्र है। "मलिन इक्ष्मा नाम संसार है, इमलिन इक्ष्मा नाम जगत् है—अविद्यमान मनि।" यदि सही है तो हमारे संसार में अविद्यमान

१. नृ धातु का अर्थ 'गलना' या 'गति' होता है और जगत् में नम् धातु चिन्त् प्रत्यय के साथ है।

यही वैराग्य का मूल मन्त्र है, यही सब तरह की नैतिकताओं और निश्चयस् का मूल मन्त्र है, क्योंकि तुम्हें स्मरण रखना चाहिए कि त्याग-तपस्या से ही ससार की सृष्टि हुई है। और जितना ही पीछे की ओर तुम जाओगे उसी क्रम से तुम्हारे सामने भिन्न भिन्न रूप, भिन्न भिन्न देह अभिव्यक्त होते रहेंगे और एक एक करके उनका त्याग होगा, अन्त में तुम वास्तव में जो कुछ हो, वही रह जाओगे, यही मोक्ष या मुक्ति है।

यह तत्त्व हमें समझ लेना चाहिए, विज्ञातारमरे केन विजानीयात्— 'विज्ञाता को कैसे जानोगे?' ज्ञाता को कोई जान नहीं सकता, क्योंकि यदि वह समझ में आने योग्य होता, तो वह कभी ज्ञाता न रह जाता। और यदि तुम आइने में अपनी आंखों का बिम्ब देखो, तो तुम उन्हें अपनी आंखें नहीं कह सकते, वे कुछ और ही हैं, वे बिम्बमात्र हैं। अब बात यह है कि यदि यह आत्मा—यह अनन्त सर्वव्यापी पुरुष साक्षी मात्र हो, तो इससे क्या हुआ? यह हमारी तरह न चल फिर सकता है, न जीता है, न ससार का सम्भोग ही कर सकता है। यह बात लोगों की समझ में नहीं आती कि जो साक्षी स्वरूप है, वह किस तरह आनन्द का उपभोग कर सकता है। "हे हिन्दुओं, तुम सब साक्षी स्वरूप हो, इस मत से तुम लोग निष्क्रिय और अकर्मण्य हो गये हो"—यह बात लोग कहा करते हैं। उनकी इस बात का उत्तर यह है, 'जो साक्षीस्वरूप है, वही वास्तव में आनन्दोपभोग कर सकता है।' अगर कहीं कुश्ती लड़ी जाती है तो अधिक आनन्द किन्हे मिलता है?—जो लोग कुश्ती लड़ रहे हैं उन्हें या जो दर्शक हैं उन्हें? इस जीवन में जितना ही तुम किसी विषय में साक्षी स्वरूप हो सकोगे उतना ही तुम्हें उससे अधिक आनन्द मिलता रहेगा। यथार्थ आनन्द यही है और इस युक्ति से तुम्हारे लिए अनन्त आनन्द की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब तुम इस विश्व ब्रह्मांड के साक्षी स्वरूप हो सको। तभी मुक्त पुरुष हो सकोगे। जो साक्षी स्वरूप है, वही निष्काम भाव से स्वर्ग जाने की इच्छा न रख, निन्दा-स्तुति को समदृष्टि से देखता हुआ कार्य कर सकता है। जो साक्षी स्वरूप है, आनन्द वही पा सकता है, दूसरा नहीं। अद्वैतवाद के नैतिक भाग की विवेचना करते समय उसके दार्शनिक तथा नैतिक भाग के अन्तर्गत एक और विषय आ जाता है, वह मायावाद है। अद्वैतवाद के अन्तर्गत एक एक विषय के समझने में ही वर्षों लग जाते हैं और व्याख्या करने में महीनों लग जाते हैं, इसलिए इसका मैं उल्लेख मात्र ही करूँगा। इस मायावाद को समझना सभी युगों में बड़ा कठिन रहा है। मैं तुमसे सक्षेप में कहता हूँ, मायावाद वास्तव में कोई वाद या मत विशेष नहीं है, वह देश, काल और निमित्त की समष्टि मात्र है—

'मिस्ति-नेति' की भाषा में अनन्त के वर्णन का प्रयत्न किया गया। यह विश्व ब्रह्मांड है माना कि यह ब्रह्म है। क्या हम इसे जान सकते हैं? नहीं— नहीं जान सकते। तुम्हें इस विषय को स्पष्ट रीति से फिर समझना होगा। तुम्हारे मन में बार बार इस सन्देश का आविर्भाव होगा कि यदि यह ब्रह्म है तो किस तरह हम इसे जान सकते हैं। विज्ञातारमरे केन विज्ञानीयात्। (गृह्यारण्यकोपनिषद् २।४।१४)—विज्ञाता को किस तरह जाना जाता है? विज्ञाता को कैसे जान सकते हैं? मैंने सब वस्तुओं को देखा ही है पर क्या वे अपने को भी देख सकती हैं? नहीं देख सकतीं। ज्ञान की क्रिया ही एक नीची अवस्था है। ऐ मार्ग सन्तानो तुम्हें यह विषय अच्छी तरह भाव रखना चाहिए, क्योंकि इस तत्त्व में महान् तथ्य निहित है। तुम्हारे निकट परिचय के जो सार प्रलोभन आया करते हैं, उनकी दार्शनिक बुनियाद एक यही है कि इन्द्रिय-ज्ञान से बढ़कर दूसरा ज्ञान नहीं है। पूर्व में हमारे बेबो में कहा गया है कि यह वस्तु-ज्ञान वस्तु की अपेक्षा नीचे बनें का है, क्योंकि ज्ञान के अर्थ से सदा ससीम भाव ही समझ में आता है। जब कभी तुम किसी वस्तु को जानना चाहते हो तभी वह तुम्हारे मन से सीमाबद्ध हो जाती है। पूर्व कथित दृष्टान्त में जिस तरह शक्ति से मुक्ता बनती है उस पर विचार करो तभी समझो कि ज्ञान का अर्थ सीमाबद्ध करना कैसे हुआ। किसी वस्तु को चुनकर तुम उसे चेतना के घेरे में ले आते हो और उसको सम्पूर्ण भाव से जान नहीं पाते हो। यही बात समस्त ज्ञान के सम्बन्ध में ठीक है। यदि ज्ञान का अर्थ सीमाबद्ध करना ही हो तो क्या उस अनन्त के सम्बन्ध में भी तुम ऐसा कर सकते हो? जो सब ज्ञानों का उपादान (आधार) है जिसे छोड़कर तुम किसी तरह का ज्ञान अर्जित नहीं कर सकते जिसके कोई गुण नहीं है जो सम्पूर्ण सत्ता और हम लोगों की आत्मा का सारी स्वरूप है उसके सम्बन्ध में तुम क्या कैसे कर सकते हो—उस तुम कैसे सीमा में ला सकते हो? उसे तुम कैसे जान सकते हो? किस उपाय से उसे बांधो? हर एक वस्तु यह सम्पूर्ण सत्ता प्रपञ्च उस अनन्त के जानने की बुद्धि से बंधा हुआ है। मानो यह अनन्त आत्मा अपने मुलावलीयन की चेष्टा कर रही है और सर्वोच्च देवता से लेकर निम्नतम प्राणी तक सभी मानो उसके मुख का प्रतिबिम्ब बहूँ करने के वर्णन हैं। एक एक करके एक एक वर्णन में अपने मुख का प्रतिबिम्ब देखने की चेष्टा करके उसे उपयुक्त न रोग अन्त में मनुष्य देह में आत्मा समझ पाती है कि यह सब सीमा है, और अनन्त कभी शान्त के भीतर अपने को प्रकटित नहीं कर सकता। उसी समय पीछे की ओर की भावा शुरु होती है और जमीनी स्थाय या वैतन्य करने है। इन्द्रियों से पीछे हट जाओ इन्द्रियों की ओर मन आओ

गयी है। परन्तु इस पर ध्यान रहे कि यह ईश्वर केवल सम्पूर्ण कल्याणकारी गुणों का ही आवार नहीं है। ईश्वर और शैतान—दो देवता नहीं रह सकते, एक ही ईश्वर का अस्तित्व मानना पडेगा और हिम्मत वाँचकर भला और बुरा उसी ईश्वर को मानना पडेगा, और यह युक्तिसम्मत सिद्धान्त मान लेने पर जो कुछ ठहरता है, उसे भी लेना होगा। हम 'चडी' में पढते हैं, 'जो देवी सभी प्राणियों में शान्ति के रूप में अवस्थित है, उसे हम नमस्कार करते हैं। जो देवी सभी प्राणियों में शुद्धिरूपा होकर स्थित है, उसे हम नमस्कार करते हैं।' उन्हें सर्वस्वरूप कहने से उसका फल चाहे जैसा हो, साथ ही उसे भी लेना होगा। 'हे गार्गि, सब कुछ आनन्द है, इस ससार में जो कुछ आनन्द देख रही हो, सब उसी आध्यात्मिक तत्त्व का अंश है।' इसकी सहायता से तुम हर एक काम कर सकते हो। मेरे मामने के इस प्रकाश में चाहे तुम किसी गरीब को हजार रुपये गिन दो और चाहे कोई दूसरा इसी प्रकाश में तुम्हारा जाली हस्ताक्षर करे, प्रकाश दोनों ही के लिए बराबर है। यह हुआ ईश्वर-ज्ञान का दूसरा सोपान। तीसरा सोपान यह है कि ईश्वर न तो प्रकृति के बाहर ही है और न भीतर ही, वल्कि ईश्वर प्रकृति, आत्मा, विश्व—ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। दो वस्तुएँ वास्तव में हैं ही नहीं, कुछ दार्शनिक शब्दों ने ही तुम्हें धोखा दिया है। तुम सोच रहे हो, तुम शरीर भी हो और आत्मा भी हो, और एक साथ ही तुम शरीर और आत्मा बन गये हो। यह कैसे हो सकता है? मन ही मन इसकी जाँच करो। यदि तुम लोगो में कोई योगी होगा तो वह अपने को चैतन्य स्वरूप जानता होगा, उसके लिए शरीर है ही नहीं। यदि तुम साधारण मनुष्य होगे तो तुम अपने को देह सोचोगे, उस समय चैतन्य के सम्पूर्ण ज्ञान का लोप हो जायगा। मनुष्य के देह है, आत्मा है, और भी बहुत सी चीजें हैं—इन सब दार्शनिक धाराओं के रहने के कारण तुम लोग सोचते होगे कि ये सब एक ही समय में मौजूद हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। एक समय में एक वस्तु का अस्तित्व है। जब तुम जड़ वस्तु देख रहे हो, तब ईश्वर की चर्चा मत करो, क्योंकि तुम केवल कार्य ही देख रहे हो, उसका कारण तुम्हें नहीं दिखायी पडता। और जिस समय तुम कारण

१ या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण सस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

या देवी सर्वभूतेषु शुद्धिरूपेण सस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

और इस देश काळ निमित्त को जाये नाम-रूप में परिवर्त किया गया है। नाम जो समुद्र में एक तरंग है। समुद्र से समुद्र की तरंगों का भेद सिर्फ नाम और रूप में है, और इस नाम और रूप की तरंग से पुनक कोई सत्ता भी नहीं है, नाम और रूप दोनों तरंग के साथ ही है, ठरमें बिलीन ही या सफ़ी है और तरंग में जो नाम और रूप है, वे भी चाहे फिर काळ के लिए बिलीन हो जायें पर पानी पहले की तरह सम मात्रा में ही बना रहेगा। इस प्रकार यह माया ही तुममें और हममें पशुओं में और मनुष्यों में देवताओं में और मनुष्यों में भेद माय पैदा करती है। सब तो यह है कि यह माया ही है जिसने आत्मा को मानो लाखों प्राणियों में बाँध रखा है और उनकी परस्पर भिन्नता का बोध नाम और रूप से ही होता है। यदि उनका त्याग कर दिया जाय नाम और रूप दूर कर दिये जायें तो वह सब के लिए अन्तर्हित हो जायगी तब तुम वास्तव में जो कुछ ही बही रह जाओगे। यही माया है। और फिर यह कोई सिद्धांत भी नहीं है केवल तथ्यों का कथन मात्र है।

जब कोई यथार्थवादी कहता है कि हम भेद का अस्तित्व है तब उसके कहने का अभिप्राय होता है कि उस भेद की अपनी एक खास निरपेक्ष सत्ता है, उसका अस्तित्व संसार की किसी भी दूसरी वस्तु पर अवलम्बित नहीं और यदि यह सम्पूर्ण ब्रह्म नष्ट हो जाय तो भी वह पूर्ण की पूर्ण ही बनी रहेगी। कुछ लोग ता विचार करने पर ही तुम्हारी समझ में आ जायगा कि ऐसा कभी ही नहीं बनता। इस इन्द्रियब्राह्म संसार की सभी चीजें एक दूसरी पर अवलम्बित हैं वे एक दूसरी की अपेक्षा रखती हैं; वे सपेक्ष और परस्पर सम्बन्धित हैं—एक का अस्तित्व दूसरे पर निर्भर है। हमारे वस्तु-ज्ञान के तीन सोपान हैं। पहला यह है कि प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र है और एक दूसरी से अलग है दूसरा यह कि सभी वस्तुओं में पारस्परिक सम्बन्ध है और अन्तिम सोपान यह है कि वस्तु एक ही है जिसे हम लोग अनेक रूपों में देखा रहे हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में अत्र मनुष्य की पत्नी पारवा यह होती है कि वह इन ब्रह्मांड के बाहर नहीं रहता है जिसका मतलब है कि उन समय का ईश्वर विषयक मान पूर्वज मानवीय होता है अर्थात् जो कुछ मनुष्य करते हैं ईश्वर भी बही करता है, भेद वैफल मही है कि ईश्वर के कार्य अपेक्ष बड़े पैमाने पर तथा अधिक उच्च प्रकार के होते हैं। हम लोग पारव गमता बुझे हैं कि ईश्वर सम्बन्धी ऐसी पारवा जाड़े ही शक्तों में जैसे अर्थात्पर और आर्थात्न प्रमाणित की जा सकती है। ईश्वर के गायक्य में दूसरी पारवा यह है कि वह एक शक्ति है और उसीकी गर्भज अस्मिताशक्ति है। इसे वास्तव में हम मनुष्य ईश्वर वर समझें हैं 'बही' में ही ईश्वर की बात बही

गयी है। परन्तु इस पर ध्यान रहे कि यह ईश्वर केवल सम्पूर्ण कल्याणकारी गुणों का ही आधार नहीं है। ईश्वर और शैतान—दो देवता नहीं रह सकते, एक ही ईश्वर का अस्तित्व मानना पड़ेगा और हिम्मत वाँचकर भला और बुरा उसी ईश्वर को मानना पड़ेगा, और यह युक्तिसम्मत सिद्धान्त मान लेने पर जो कुछ ठहरता है, उसे भी लेना होगा। हम 'चडी' में पढते हैं, 'जो देवी सभी प्राणियों में शान्ति के रूप में अवस्थित है, उसे हम नमस्कार करते हैं। जो देवी सभी प्राणियों में शुद्धिरूपा होकर स्थित है, उसे हम नमस्कार करते हैं।' उन्हें सर्वस्वरूप कहने से उसका फल चाहे जैसा हो, साथ ही उसे भी लेना होगा। 'हे गार्गि, सब कुछ आनन्द है, इस ससार में जो कुछ आनन्द देख रही हो, सब उसी आध्यात्मिक तत्त्व का अंश है।' इसकी सहायता से तुम हर एक काम कर सकते हो। मेरे सामने के इस प्रकाश में चाहे तुम किसी गरीब को हजार रुपये गिन दो और चाहे कोई दूसरा इसी प्रकाश में तुम्हारा जाली हस्ताक्षर करे, प्रकाश दोनों ही के लिए बराबर है। यह हुआ ईश्वर-ज्ञान का दूसरा सोपान। तीसरा सोपान यह है कि ईश्वर न तो प्रकृति के बाहर ही है और न भीतर ही, बल्कि ईश्वर प्रकृति, आत्मा, विश्व—ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। दो वस्तुएँ वास्तव में हैं ही नहीं, कुछ दार्शनिक शब्दों ने ही तुम्हें धोखा दिया है। तुम सोच रहे हो, तुम शरीर भी हो और आत्मा भी हो, और एक साथ ही तुम शरीर और आत्मा बन गये हो। यह कैसे हो सकता है? मन ही मन इसकी जाँच करो। यदि तुम लोगो में कोई योगी होगा तो वह अपने को चैतन्य स्वरूप जानता होगा, उसके लिए शरीर है ही नहीं। यदि तुम साधारण मनुष्य होगे तो तुम अपने को देह सोचोगे, उस समय चैतन्य के सम्पूर्ण ज्ञान का लोप हो जायगा। मनुष्य के देह है, आत्मा है, और भी बहुत सी चीजें हैं—इन सब दार्शनिक धाराओं के रहने के कारण तुम लोग सोचते होगे कि ये सब एक ही समय में मौजूद हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। एक समय में एक वस्तु का अस्तित्व है। जब तुम जड़ वस्तु देख रहे हो, तब ईश्वर की चर्चा मत करो, क्योंकि तुम केवल कार्य ही देख रहे हो, उसका कारण तुम्हें नहीं दिखायी पड़ता। और जिस समय तुम कारण

१ या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण सस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

या देवी सर्वभूतेषु शुद्धिरूपेण सस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

वैश्वोमे उस समय कार्य का सोच हो जायगा। तब यह संसार न जाने कहाँ बसा जाता है, न जाने कौन इसका प्रास कर केता है।

हे महात्मन् हे तत्त्वविव् समाधि अवस्था में ज्ञानी के हृदय में अनिर्बचनीय केवल ज्ञानस्वरूप उपमा रहित अपार, निरत्यमुक्त निष्कम्य असीम आकाशतुल्य बंधहीन भेदरहित पूर्णस्वरूप ऐसा ही ब्रह्म प्रकाशमान होता है।

हे महात्मन् हे तत्त्वविव् समाधि अवस्था में ज्ञानी के हृदय में ऐसा पूर्ण ब्रह्म प्रकाशमान होता है जो प्रकृति की विकृति से रहित है वचिस्व स्वरूप है, समभाव होने पर भी जिसकी समता करनेवाला कोई नहीं है, जिसमें किसी तरह के परिचाम का सम्बन्ध नहीं है (जो अपरिमेय है) जो वेद-वाक्यों द्वारा सिद्ध है और जिसे हम अपनी सत्ता कहते हैं तथा जो उसका सार है।

हे महात्मन् हे तत्त्वविव् समाधि अवस्था में ज्ञानी के हृदय में ऐसा ब्रह्म प्रकाशमान होता है, जो परा और मृत्यु से रहित है, जो पूर्ण अज्ञम और अनुष्नीय है और जो महाप्रकम्पकाशीन अल्पकावत में तिष्ठत उस समस्त विश्व क संदूष है जिसके ऊपर, नीचे चारों तरफ़ जस ही बरक है और जस की सतह पर तरंग की कौन कहे एक छोटी सी लहर भी नहीं है—निस्तम्बता और शांति है समस्त बर्षात आदि का अन्त हो गया है मूर्तों तथा सन्तों के सभी लज़ार सदर्शों और पुत्रों का सब के लिए अन्त हो गया है।

मनुष्य की ऐसी अवस्था भी होती है, और जब यह अवस्था आती है तब संसार बिसीन हो जाता है।

अब हमने देखा कि सत्यस्वरूप ब्रह्म अज्ञात और अज्ञम है, परन्तु अज्ञेयवादियों की दृष्टि से नहीं। हम 'जसे' जान गये यह कहना ही पावम्पूर्ण बात है क्योंकि पहले ही से तुम बही (ब्रह्म) हो। हमने यह भी देखा है कि एक तटीक से ब्रह्म यह मेव नहीं है फिर दूसरे तटीके से यह मेव है भी। नाम और रूप उद्य को फिर जो सत्य वस्तु बची रहती है वह बही है। वह हर एक वस्तु के भीतर सत्यस्वरूप है।

तुम्ही स्त्री ही पुरुष भी तुम्ही हो तुम कुमार, तुम्ही कुमायी भी ही और तुम्ही सब का सहाय लिए हुए बूय हो, विश्व में सर्वत्र तुम ही ही।

१ इ विश्वकामन्दगी ॥४ ८-४१ ॥

२ त्वं स्त्री त्वं कुमारसि त्वं कुमार उत वा कुमायी।

त्वं जीर्णो वंटेन वंजति त्वं ज्योती अवति विश्वतोपुनः ॥

अद्वैतवाद का यही विषय है। इस सम्बन्ध में कुछ बातें और हैं। इस अद्वैतवाद से सभी वस्तुओं के मूल तत्त्व की व्याख्या मिल जाती है। हमने देखा है, तर्कशास्त्र और विज्ञान के आक्रमणों के विरोध में हम केवल इसी अद्वैतवाद को लेकर खड़े हो सकते हैं। अन्त में सारे तर्कों को यही ठहरने की एक दृढ़ भूमि मिलती है। भारतीय वेदान्ती अपने सिद्धान्त के पूर्ववर्ती सोपानों पर कभी दोषारोपण नहीं करते, बल्कि वे अपने सिद्धान्त पर ठहर कर, उन पर नज़र डालते हुए, उनका समर्थन करते हैं, वे जानते हैं, वे सत्य हैं, सिर्फ वे गलत ढंग से उपलब्ध हुए हैं— भ्रम के आधार पर उनका वर्णन किया गया है। वे भी वही सत्य हैं, अन्तर इतना ही है कि वे माया के माध्यम से देखे गये हैं, कुछ विकृत होने पर भी वे सत्य—केवल सत्य ही है। एक ही ब्रह्म है, जिसे अज्ञ प्रकृति के बाहर किसी स्थान में अवस्थित देखता है, जिसे अल्पज्ञ ससार का अन्तर्यामी देखता है, जिसका अनुभव ज्ञानी आत्म-स्वरूप या सम्पूर्ण ससार के स्वरूप में करता है। यह सब एक ही वस्तु है, एक ही वस्तु भिन्न भिन्न भावों से दृष्टिगोचर हो रही है, माया के विभिन्न शीशों के भीतर से दिखायी दे रही है, विभिन्न मन से दिखायी दे रही है, और पृथक् पृथक् मन से दिखायी देने के कारण ही यह सब विभिन्नता है। केवल इतना ही नहीं, उनमें से एक भाव दूसरे में ले जाता है। विज्ञान और सामान्य ज्ञान में क्या भेद है? रास्ते पर जब कभी कोई असाधारण घटना घट जाती है तो पथिकों में से किसी से उसका कारण पूछो। दस आदमियों में से कम से कम नौ आदमी कहेंगे, यह घटना भूतों की करामात है। वे बाहर सदा भूत-प्रेतों के पीछे दौड़ते हैं, क्योंकि अज्ञान का स्वभाव ही है कार्य के बाहर कारण की खोज करना। एक पत्थर गिरने पर अज्ञ कहता है, भूत या शैतान का फेंका हुआ पत्थर है। परन्तु वैज्ञानिक कहता है वह प्रकृति का नियम या गुर्त्वाकर्षण है।

विज्ञान और धर्म में सर्वत्र कौन सा विरोध है? प्रचलित धर्म जितने हैं, सभी बहिरागत व्याख्या द्वारा आच्छन्न हैं। सूर्य के अधिष्ठाता देवता, चन्द्र के अधिष्ठाता देवता—इस तरह के अनन्त देवता हैं, और जितनी घटनाएँ हो रही हैं, सब कोई न कोई देवता या भूत ही कर रहा है, इसका साराश यही है कि किसी विषय के कारण की खोज उसके बाहर की जाती है, और विज्ञान का अर्थ यह है कि किसी वस्तु के कारण की व्याख्या उसी प्रकृति से की जाती है। धीरे धीरे विज्ञान ज्यो ज्यो प्रगति कर रहा है, त्यो त्यो वह प्राकृतिक घटनाओं की व्याख्या भूत-प्रेतों और देवदूतों के हाथ से छीनता जा रहा है। और चूँकि आध्यात्मिक क्षेत्र में अद्वैतवाद इसकी सावना कर चुका है, इसलिए यही सबसे अधिक विज्ञान-सम्मत धर्म है। इस जगत् को विश्व के बाहर के किसी ईश्वर ने नहीं बनाया,



संसार के बाहर की किसी प्रतिमा ने इसकी सृष्टि नहीं की। वह आप ही आप सृष्ट हो रहा है, आप ही आप उसकी अभिव्यक्ति हो रही है। आप ही आप उसका प्रसन्न हो रहा है—एक ही अनन्त सत्ता ब्रह्म है। तत्त्वमसि इत्येतन्नैतो हे इत्येतन्नैतो तुम नहीं हो।

इस तरह तुम देख रहे हो यही एकमात्र यही वैज्ञानिक वर्ण बन सकता है, कोई दूसरा नहीं। और इस अर्धसिद्धित वर्तमान भारत में आधुनिक प्रतिदिन विज्ञान की जो बकबात चल रही है प्रतिदिन मैं जिस युक्तिवाद और विचार धीमत्ता की पुष्टाई सुन रहा हूँ उससे मुझे बाधा है तुम्हारे समस्त सम्प्रदाय अद्वैतवादी होने और बुद्ध के शब्दों में बहुचलनहितान्य बहुचलनदुःखाय संसार मे इस अद्वैतवाद का प्रचार करने का साहस करेये। यदि तुम ऐसा न कर सको तो मैं तुम्हें इत्योक समझूँगा। यदि तुमने अपनी कायरता दूर नहीं की यदि अपने भय को तुमने बहाना बना लिया तो बुद्धरे को भी बीसी ही स्वाधीनता हो। बेचारे मूर्खपूजक को बिस्तुक उड़ा देने की चेष्टा न करो उसे घैतल मत कहो। जो तुम्हारे साथ पूर्वतया सहमत न हो उसीके पास अपना मर्द प्रचार करने के लिए न जाओ। पहले यह समझो कि तुम ब्रह्म कायर हो और यदि तुम्हें समाज का भय है यदि तुम्हें अपने ही प्राचीन कुसंस्कारों का इतना भय है तो यह भी घोष को कि जो लोग अज्ञ हैं उन्हें अपने कुसंस्कारों का और क्रिया अधिक भय और बन्धन होना। अद्वैतवादियों की यही बात है। बुद्धों पर श्वा करो। परमात्मा करे एक ही सम्पूर्ण संसार केवल मय में ही यही अनुसृष्टि के सम्बन्ध में भी अद्वैतवादी हो पाय। परन्तु यदि बीसा नहीं हो सकता तो हुनको जो बन्धन करते बने वही करता चाहिए। अज्ञ का हाथ पकड़कर उसकी सृष्टि के अनुधार उन्हें पीरे पीरे भागे से चलो, जितना मे जाने बड़ सकते है। और हमसो कि भारत में सभी बसों का विकास क्रमोन्नति के नियमानुसार पीरे पीरे हुआ है। बात ऐसी नहीं कि बुरे से मसा हो रहा है, बल्कि भले से और भी बढ़ा हो रहा है।

अद्वैतवाद के नैतिक सम्बन्धों के विषय में कुछ और कहना आवश्यक है। हमारे लड़के आधुनिक प्रसुद्धि भाव से बातर्भित करते हैं—किसीसे सत जोमों ने सुना होगा परमात्मा जाने किससे सुना—कि अद्वैतवाद से लोग बुराचाली हो जाते हैं क्योंकि अद्वैतवाद सिखाता है कि हम सब एक हैं, सभी ईश्वर हैं अतएव हमें अब सवाचार अपनाने की कोई आवश्यकता नहीं। इस बात का उत्तर में पहले तो यहाँ कहना है कि यह युक्ति पसुप्रकृति मनुष्य के मुख में घोसा देती है, कदावात के बिना जिसके समन करने का कोई दूसरा उपाय नहीं है। यदि तुम ऐसे ही हो तो इस तरह कथाबात द्वारा दासित करने योग्य मनुष्य बहकाने की अपेक्षा आत्म

हत्या कर लेना कदाचित् तुम्हारे लिए श्रेयस्कर होगा। कशाघात बन्द होते ही तुम लोग अमुर हो जाओगे। यदि ऐसा ही हो तो इसी समय तुम्हारा, अन्त कर देना उचित होगा। तुम्हारे लिए दूसरा उपाय और कोई नहीं। इस तरह तो सदा ही तुम्हें कोड़े और डंडे के भय से चलना होगा और तुम्हारे उद्धार तथा निस्तार का रास्ता अब नहीं रह गया।

दूसरे अद्वैतवाद, केवल अद्वैतवाद से ही नैतिकता की व्याख्या हो सकती है। हर एक धर्म यही प्रचार कर रहा है कि सब नैतिक तत्त्वों का सार दूसरों की हित-साधना ही है। क्यों हम दूसरों का हित करें? नि स्वार्थ होना चाहिए। क्यों हमें नि स्वार्थ होना चाहिए? कोई देवता ऐसा कह गये है? वे देवता मेरे लिए मान्य नहीं हैं। शास्त्रों ने ऐसा कहा है—शास्त्र कहते रहे, क्यों हम उसे मानें? शास्त्र यदि ऐसा कहते हैं तो मेरे लिए उनका क्या महत्त्व है? ससार के अविकाश आदमियों की यही नीति है कि वे अपना ही भला ताकते हैं। हर एक व्यक्ति अपना अपना हित साधन करे, कोई न कोई सबसे पीछे रहेगा। किस कारण मैं नैतिक बनूँ? जब तक गीता में वर्णित इस सत्य को न जानोगे, तब तक तुम इसकी व्याख्या नहीं कर सकते। 'जो महात्मा अपनी आत्मा को सब भूतों में स्थित देखता है और आत्मा में सब भूतों को देखता है, वह इस तरह ईश्वर को सर्वत्र सम भाव से अवस्थित देखता हुआ आत्मा द्वारा आत्मा की हिंसा नहीं करता।'

अद्वैतवाद की शिक्षा से तुम्हें यह ज्ञान होता है कि दूसरों की हिंसा करते हुए तुम अपनी ही हिंसा करने हो, क्योंकि वे सब तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हें मालूम हो या न हो, सब हाथों से तुम्हीं कार्य कर रहे हो, सब पैरों से तुम्हीं चल रहे हो, राजा के रूप में तुम्हीं प्रासाद में सुखों का भोग कर रहे हो, फिर तुम्हीं रास्ते के भिखारी के रूप में अपना दुःखमय जीवन बिता रहे हो। अज्ञ में भी तुम हो, विद्वान् में भी तुम हो, दुर्बल में भी तुम हो, सबल में भी तुम हो। इस तत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर तुम्हें सबके प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए। चूँकि दूसरों को कष्ट पहुँचाना अपने ही को कष्ट पहुँचाना है, इसलिए हमें कदापि दूसरों को कष्ट नहीं देना चाहिए। इसीलिए यदि मैं बिना भोजन के मर भी जाऊँ तो भी मुझे इसकी चिन्ता नहीं, क्योंकि जिस समय मैं भूखा मर रहा हूँ उस समय मैं लाखों मुँह से भोजन भी कर रहा हूँ। अतएव यह 'मैं', 'मेरा'—इन सब विषयों पर

१. सर्वभूतस्थमात्मान सर्वभूतानि चात्मनि ॥ गीता ६।२९॥

सम पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।

न हिनस्त्यात्मनात्मान ततो याति परा गतिम् ॥ गीता १३।२८॥

हमें क्या ही नहीं बेमा चाहिए, यह सम्पूर्ण संसार मेरा ही है, मैं ही एक इच्छी रीति से संसार में सम्पूर्ण आनन्द का भोग कर रहा हूँ। और, मेरा या इस संसार का बिनाश भी कौन कर सकता है? इस तरह बेकते हो अद्वैतवाद ही नैतिक तर्कों की एकमात्र व्याख्या है। अन्याय्य बाह्य तुम्हें नैतिकता की शिक्षा दे सकते हैं परन्तु हम क्यों नीतिपरायण हों इसका हेतुनिर्देश नहीं कर सकते। यह सब तो हुई व्याख्या की बात।

अद्वैतवाद की साधना में साम क्या है? उससे शक्ति प्राप्त होती है। तुमने जगत् पर सम्मोहन का जो पर्दा डाल रखा है उसे हटा दो। मनुष्य को दुर्बल न सोचो उसे दुर्बल न कहो। समझ लो कि एक दुर्बलता राज्य से ही सब पापों और सम्पूर्ण अशुभ कर्मों का निर्देश हो जाता है। सारे दोषपूर्ण कार्यों की मूल प्रेरक दुर्बलता ही है। दुर्बलता के कारण ही मनुष्य सभी स्थाव्यों में प्रवृत्त होता है। दुर्बलता के कारण ही मनुष्य दूसरों को कष्ट पहुँचाता है। दुर्बलता के कारण ही मनुष्य अपना सच्चा स्वरूप प्रकाशित नहीं कर सकता। सब लोग जाने कि वे क्या हैं? दिन-रात वे अपने स्वरूप—सोभम् का जप करें। माता के स्तन-धाम के साथ 'सोभम्' (मैं नहीं हूँ)—इस ओजमयी वाणी का पाठ करे। भोक्तव्यो भक्तव्यो निविष्यात्तित्तम्याः मादि का पहले भजन करें। तत्पश्चात् वे उसका चिन्तन करें, और उसी चिन्तन उसी मनन से ऐसे कार्य होंगे जिन्हें संसार में कभी देना ही नहीं था। किस तरह यह काम में लाया जाय? कोई कोई कहते हैं—यह अद्वैतवाद कार्य में परिणत नहीं किया जा सकता जबकि भौतिक अराधना पर उसकी शक्ति का प्रकाश नहीं हुआ। इस कथन में आधिक्य तथ्य अवश्य है। वेद की उस वाणी का स्मरण करो

भौमित्येकाकारं ब्रह्म भौमित्येकाकारं परम्।  
भौमित्येकाकारं ज्ञान्वा यो परिच्छति तस्य तत् ॥

—'ॐ यही ब्रह्म है। ॐ यह परम तत्ता है। जो इस बीजार का रहस्य जानते हैं, वे जो कुछ चाहते हैं वही उन्हें मिलता है।

अतएव पढ़के तुम इस बीजार का रहस्य समझो। यह बीजार तुम्हीं ही हमारा ज्ञान प्राप्त करा। दश तत्त्ववृत्ति महापाषण्ड का रहस्य समझो तभी वेदल तभी तुम जो कुछ चाहेंगे वह पामाँक। यदि भौतिक दृष्टि से बड़े होना चाहो तो विरवाग करा तुम बड़ हो। मैं एक छोटा सा बुनबुना ही सरता हूँ तुम परतारार ऊँची तरफ ही सरने हो परन्तु मद् गमन रणो कि हम दोनों के लिए पुण्डरीक अमल समुद्र ही है। अमल ब्रह्म हमारी सब शक्ति

और वीर्य का भंडार है, और हम दोनो ही क्षुद्र हो या महान् उससे अपनी इच्छा भर शक्ति-संग्रह कर सकते हैं। अतएव अपने पर विश्वास करो। अद्वैतवाद का यह रहस्य है कि पहले अपने पर विश्वास करो, फिर अन्य सब पर। ससार के इतिहास में देखोगे कि केवल वे ही राष्ट्र महान् एव प्रबल हो सके हैं, जो आत्म-विश्वास रखते हैं। हर एक राष्ट्र के इतिहास में तुम देखोगे, जिन व्यक्तियों ने अपने पर विश्वास किया वे ही महान् तथा सबल हो सके। यहाँ, इस भारत में एक अग्नेज आया था, वह एक साधारण क्लर्क था, रुपये-पैसे के अभाव से और दूसरे कारणों से भी उसने अपने सिर में गोली मारकर दो बार आत्महत्या करने की चेष्टा की, और जब वह उसमें असफल हुआ तब उसे विश्वास हो गया कि बड़े बड़े काम करने के लिए वह पैदा हुआ है—वही लॉर्ड क्लाइव इस साम्राज्य का प्रतिष्ठाता बन गया। यदि वह पादरियों पर विश्वास करके घुटने टेककर 'हे प्रभु, मैं दुर्बल हूँ, दीन हूँ,' ऐसा किया करता तो जानते हो उसे कहीं जगह मिलती? निस्सन्देह उसे पागलखाने में रहना पड़ता। इस प्रकार की कुशिक्षाओं ने तुम्हें पागल बना डाला है। मैंने सारे ससार में देखा है, दीनता के उस उपदेश से, जो दौर्बल्य का पोषक है, बड़े अशुभ परिणाम हुए हैं—मनुष्य जाति को उसने नष्ट कर डाला है। हमारी सन्तानों को जब ऐसी ही शिक्षा दी जाती है, तब इसमें क्या आश्चर्य यदि वे अन्त में अर्धविक्षिप्त हो जाते हैं!

यह अद्वैतवाद के व्यावहारिक पक्ष की शिक्षा है। अतएव अपने पर विश्वास रखो, और यदि तुम्हें भौतिक ऐश्वर्य की आकांक्षा हो तो इसको कार्यान्वित करो, धन तुम्हारे पास आयेगा। यदि विद्वान् और बुद्धिमान होने की इच्छा है तो उसी ओर अद्वैतवाद का प्रयोग करो, तुम महामनीषी हो जाओगे। और यदि तुम मुक्ति लाभ करना चाहते हो तो तुम्हें आध्यात्मिक भूमि में इस अद्वैतवाद का प्रयोग करना होगा, तभी तुम परमानन्द स्वरूप निर्वाण लाभ करोगे। इतनी ही भूल हुई थी कि आज तक उसका प्रयोग आध्यात्मिकता की ओर ही हुआ था—वस। अब व्यावहारिक जीवन में उसके प्रयोग का समय आया है। अब उसे रहस्य मात्र या गोपनीय रखने से काम नहीं चलेगा, अब वह हिमालय की गुफाओं और जंगलों में साधु-सन्यासियों ही के पास बँधा नहीं रहेगा—अब लोगों के दैनिक जीवन के कार्यों में उसका प्रयोग अवश्य होना चाहिए। राजप्रासाद में, साधु-सन्यासियों की गुहा में, गरीबों की कुटियों में सर्वत्र, यहाँ तक कि रास्ते के भिखारी द्वारा भी वह कार्यान्वित होगा, कारण क्या गीता में नहीं बतलाया गया?—स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। (गीता, २।४०)—'इस धर्म का अल्प मात्र उपयोग भी बड़े बड़े भय से हमारा उद्धार कर सकता है।'

मतएव पाहे तुम स्त्री हो पाहे गूढ अथवा बाहे और ही कुछ हो तुम्हारे लिए भय का अल्प मात्र भी कारण नहीं कारण की कृप्य कहते हैं यह बर्ष इतना महान् है कि इसका अल्प मात्र अनुष्ठान करने से भी महाकल्याण की प्राप्ति होती है।

मतएव हे आर्यसन्तान आरुसी होकर बैठे मत रहो—जागो उठो और जब तक इस चरम लक्ष्य तक न पहुँच जाओ जब तक मत रहो। अब अद्वैतवाद को व्यावहारिक क्षेत्र में प्रयोग करने का समय आया है। उसे अब स्वर्ग से मर्त्य में ले जाना होगा। इस समय विघाटा का विमान यही है। हमारे प्राचीन काल के पूर्वज की बानी से हमें निर्देश मिल रहा है कि इस अद्वैतवाद की स्वर्ग से पृथ्वी पर ले आओ। तुम्हारे उच्च प्राचीन शास्त्र का उपरोक्त सम्पूर्ण संचार में इस प्रकार व्याप्त हो जाय कि समाज के प्रत्येक मनुष्य की यह साधारण सम्पत्ति हो जाय हमारी नस नस में बहिर के प्रत्येक कर्म में उसका प्रवाह हो जाय।

तुम्हें मुतकर आश्चर्य होमा कि हम लोगों से कहीं बढ़कर अमेरिकियों ने बेबाल्ट को अपने व्यावहारिक जीवन में परिवर्तन कर लिया है। मैं स्पूमार्क के समुद्र तट पर खड़ा खड़ा बैसा करता था—भिन्न भिन्न देशों से लोग बसने के लिए अमेरिका आ रहे हैं। उन्हें देखकर मुझे यह मालूम होता था मानो उनका हृदय मुच्छ यमा है वे पीरों तक कुचले पड़े हैं उनकी आशा मुरझा गयी है किसीसे निमाह मिलाने की उनमें हिम्मत नहीं है कपड़ों की एक पोटकी मात्र उनका सर्वस्व है और वे कपड़े भी फटे हुए हैं पुब्लिस का आदमी देखते ही भय से दूसरी ओर के झूटपात्र पर चलने का इत्दा करते हैं। और फिर वह ही महीने में उन्हें देखो वे साक कपड़े पहने हुए फिर उठाकर सीबे पास रहे हैं और उठकर लोगों की नजर से मजूर मिजाते हैं। ऐसा विचित्र परिवर्तन किसने किया? सोचो वह आदमी आरमेनिया या किसी दूसरी जगह से आ रहा है, वहाँ कोई उसे कुछ समझते नहीं वे सभी पीस डालने की चेष्टा करते थे। वहाँ सभी उससे कहते थे—“तू गुलाम होकर पैदा हुआ है गुलाम ही रहेगा।” वहाँ उसके चरा भी हिम्मे डलने की चेष्टा करने पर वह कुचल डाला जाता था। चारों ओर की सभी बस्तुएँ मानो उससे कहती थीं—“गुलाम तू गुलाम है—जो कुछ है तू वहीं बना रह निरप्या के जिस अँबिरे में पैदा हुआ था उसीमें जीवन भर पडा रह। हुआ भी मानो गुँडकर उससे कहती थी—“तेरे लिए कोई आशा नहीं—कुलाम होकर फिरकाल तू नैराश्य के अन्धकार में पडा रह। वहाँ बलमाना ने पीमकर उसकी जान निकाल ली थी। और ज्यों ही वह जहाज से उतरकर स्पूमार्क के तटों पर चलने लगा उसने देखा कि अच्छे कपड़े पहने हुए किसी भले आदमी ने उसमें हाथ मिलाया। एक तो फटे कपड़े पहने हुए था और दूसरा अच्छे कपड़े

कपडों से सुसज्ज था। इससे कोई अन्तर नहीं पडा। और कुछ आगे बढ़कर भोजनालय में जाकर उसने देखा—भद्रमडली मेज़ के चारों ओर बैठे भोजन कर रही थी, उसी मेज़ के एक ओर उससे भी बैठने के लिए कहा गया। वह चारों ओर घूमने लगा—देखा, यह एक नया जीवन है। उसने देखा, ऐसी जगह भी है, जहाँ और पाँच आदमियों में वह भी एक आदमी गिना जा रहा है। कभी मौका मिला तो वार्शिंगटन जाकर संयुक्तराज्य के राष्ट्रपति से हाथ मिला आया, वहाँ उसने देखा, दूर के गाँवों से मँले कपडे पहने हुए किसान आकर राष्ट्रपति से हाथ मिला रहे हैं। तब उससे माया का पर्दा दूर हो गया। वह ब्रह्म ही है—मायावश इस तरह दुर्बलता तथा दासता के सम्मोह में पडा हुआ था। अब उसने फिर से जागकर देखा—मनुष्यों के ससार में वह भी एक मनुष्य है। हमारे इस देश में, इस वेदान्त की जन्मभूमि में हमारा जन साधारण शत शत वर्षों से सम्मोहित बना कर इस तरह की हीन अवस्था में डाल दिया गया है। उनके स्पर्श में अपवित्रता समायी है, उनके साथ बैठने से छूत समा जाती है। उनसे कहा जा रहा है, निराशा के अन्वकार में तुम्हारा जन्म हुआ है, सदा तुम इसी अँधेरे में पडे रहो। और उसका परिणाम यह हुआ कि वे लगातार डूबते चले जा रहे हैं, गहरे अँधेरे से और गहरे अँधेरे में डूबते चले जा रहे हैं। अन्त में मनुष्य जितनी निकृष्ट अवस्था तक पहुँच सकता है, वहाँ तक वे पहुँच चुके हैं। क्योंकि, ऐसा देश कहाँ है जहाँ मनुष्य को जानवरों के साथ एक ही जगह पर सोना पडता हो? इसके लिए किसी दूसरे पर दोषारोपण न करो—अज्ञ मनुष्य जो भूल किया करते हैं, वही भूल तुम मत करो। कार्य-कारण दोनों यही विद्यमान है। दोष वास्तव में हमारा ही है। हिम्मत बाँधकर खडे हो जाओ—अपने ही सिर सब दोष ले लो। दूसरे पर दोष न मढो। तुम जो कष्ट भोग रहे हो उसके एकमात्र कारण तुम्ही हो।

अतः लाहौर के युवकों, निश्चयपूर्वक समझो इस आनुवंशिक तथा राष्ट्रीय महापाप के लिए हमी लोग उत्तरदायी हैं। बिना इसे दूर किये हमारे लिए कोई दूसरा उपाय नहीं है। तुम चाहे हज़ारों समितियाँ गढ लो, चाहे बीस हज़ार राजनीतिक सम्मेलन करो, चाहे पचास हज़ार संस्थाएँ स्थापित करो, इसका कोई फल न होगा, जब तक तुम्हारे भीतर वह सहानुभूति, वह प्रेम न आयेगा, जब तक तुम्हारे भीतर वह हृदय न आयेगा, जो सबके लिए सोचता है। जब तक फिर से भारत को बुद्ध का हृदय प्राप्त नहीं होता और भगवान् कृष्ण की वाणी ध्यावहारिक जीवन में परिणत नहीं की जाती, तब तक हमारे लिए कोई आशा नहीं। तुम लोग यूरोपियनों और उनकी सभा-समितियों का अनुकरण कर रहे हो, परन्तु उनके हृदय के भावों का तुमने क्या अनुकरण किया है?

मैं तुमसे एक आँसू रोना हिस्सा करूँगा। यहाँ के यूरोपियों का एक बल कुछ बर्मी लोगों को लेकर लम्बन गया बाब में पता चला कि वे यूरेशियन थे। यहाँ उन्होंने उन लोगों की एक प्रदर्शनी खोलकर नुब बनोपार्जन किया। अन्त में सब बल आपस में बाँटकर उन्होंने उन लोगों को यूरोप के किसी दूसरे देश में ले जाकर छोड़ दिया। ये छपीब बेचारे यूरोप की किसी भाषा का एक शब्द भी नहीं जानते थे। लेकिन आस्ट्रिया के अग्रज वैदेशिक प्रतिनिधि ने इन्हें अन्त भेज दिया। वे लोम लम्बन में भी किसीको नहीं जानते थे अतएव यहाँ जाकर भी निरपेक्ष अवस्था में पड़ गये। परन्तु एक अग्रज महिला को इनकी सुबना मिठी। वे इन बर्मी विदेशियों को अपने घर ले गयीं और अपने कपड़े अपने बिछौने तथा जो कुछ आवश्यक हुआ सब बेकर उनकी सेवा करने लगीं और समाचार पत्रों में उन्होंने इनका हाल प्रकाशित कर दिया। बेहो उसका फस कैसा हुआ। उसके दूसरे ही दिन मागो साय राष्द्र सन्नेत हो गया। चारों ओर से उनकी सहायता के लिए स्पेस आने लगे। अन्त में वे बर्मी आपस भेज दिये गये। उनकी राज नीतिक और बुरी बितनी समा-समितिवाँ हैं वे ऐसी ही सहायसुक्ति पर प्रसिद्ध हैं, कम से कम अपने लिए उनकी बुर नीब प्रेम पर आधारित है। वे सम्पूर्ण संसार को चाहे प्यार न कर सकें बर्मी चाहे उनके अनु भले ही हों परन्तु इतना तो निरपेक्ष ही है कि अपनी जाति के लिए उनका प्रेम अपाव है और अपने द्वार पर आये हुए विदेशियों के साथ भी वे सत्य न्याय और बया का व्यवहार करते हैं। पश्चिमी देशों के सभी स्मार्तों में उन्होंने किंचित् तर्ह मेरा जातिव्य-सत्कार और जातिरक्षारी की भी इसका परि मैं तुमसे उम्मेद न करूँ तो वह मेरी बकुरता होनी। यहाँ वह हृष्य नहीं है जिसकी बुनियाद पर इस जाति की हीबार उठनी पायनी? हम पाँच भारतीय मिसकर एक छोटी सी सम्मिक्त पूँजी की कम्पनी खोलते हैं। कुछ दिनों के अन्तर ही हम लोग आपस में एक दूसरे को पट्टी पढ़ाना शुरू कर बैठे हैं अन्त में सब कायेबार नष्ट भष्ट ही जाता है। तुम लोग अग्रजों के अनुकरण की बात कहते हो और उनकी तर्ह विद्यालय पाठ्य का संकलन करना चाहते हो परन्तु तुम्हारी वह नीब नहीं है? हमारी नीब बामू की है, हमीलिए उस पर जो पर उठवाया जाता है वह बोड़े ही बिना में टूटकर ब्यस्त हो जाता है।

अतः हे साहीर के मुबकी फिर अर्द्ध की बही प्रबल पनाका फहराओ क्योंकि और किसी आबार पर तुम्हारे भीतर वैसा अपूर्व प्रेम नहीं पैदा हो सकता। अब तक तुम लोग उसी एक भयनात् की सर्वत्र एक ही भाव में अवस्थित नहीं बनते अब वह तुम्हारे भीतर वह प्रेम पैदा नहीं हो सकता—उगी प्रेम की पत्रिका फहराओ।

उठो, जागो, जब तक लक्ष्य पर नहीं पहुँचते तब तक मत रुको। उठो, एक वार और उठो, क्योंकि त्याग के बिना कुछ हो नहीं सकता। दूसरे की यदि सहायता करना चाहते हो, तो तुम्हें अपने अहंभाव को छोड़ना होगा। ईसाइयों की भाषा में कहता हूँ—तुम ईश्वर और शैतान की सेवा एक साथ ही नहीं कर सकते। चाहिए वैराग्य। तुम्हारे पूर्व पुरुषों ने बड़े बड़े कार्य करने के लिए ससार का त्याग किया था। वर्तमान समय में ऐसे अनेक मनुष्य हैं, जिन्होंने अपनी ही मुक्ति के लिए ससार का त्याग किया है। तुम सब कुछ दूर फेंको—यहाँ तक कि अपनी मुक्ति का विचार भी दूर रखो—जाओ, दूसरों की सहायता करो। तुम सदा बड़ी बड़ी साहसिक बातें करते हो, परन्तु अब तुम्हारे सामने यह व्यावहारिक वेदान्त रखा गया है। तुम अपने इस तुच्छ जीवन की बलि देने के लिए तैयार हो जाओ। यदि यह जाति बची रहे तो तुम्हारे और हमारे जैसे हजारों आदमियों के भूखो मरने से भी क्या हानि होगी? यह जाति डूब रही है। लाखों प्राणियों का शाप हमारे मिर पर है, सदा ही अजस्र जलघारवाली नदी के समीप रहने पर भी तृष्णा के समय पीने के लिए हमने जिन्हे नावदान का पानी दिया, उन अगणित लाखों मनुष्यों का, जिनके सामने भोजन के भाण्डार रहते हुए भी जिन्हे हमने भूखो मार डाला, जिन्हे हमने अद्वैतवाद का तत्त्व सुनाया और जिनसे हमने तीव्र घृणा की, जिनके विरोध में हमने लोकाचार का आविष्कार किया, जिनसे ज्वानी तो यह कहा कि सब बराबर हैं, सब वही एक ब्रह्म हैं, परन्तु इस उक्ति को काम में लाने का तिल मात्र भी प्रयत्न नहीं किया। 'मन में रखने ही से काम हो जायगा, परन्तु व्यावहारिक ससार में अद्वैतवाद को घसीटना?—हरे! हरे!।' अपने चरित्र का यह दाग मिटा दो। उठो, जागो। यदि यह क्षुद्र जीवन चला भी जाय तो क्या हानि है? सभी मरेंगे—साधु या असाधु, धनी या दरिद्र—सभी मरेंगे। चिर काल तक किसी का शरीर नहीं रहेगा। अतएव उठो, जागो और सम्पूर्ण रूप से निष्कपट हो जाओ। भारत में घोर कपट समा गया है। चाहिए चरित्र, चाहिए इस तरह की दृढता और चरित्र का बल जिससे मनुष्य आजीवन दृढव्रत बन सके। 'नीतिनिपुण मनुष्य चाहे निन्दा करे चाहे स्तुति, लक्ष्मी आये या चली जाय, मृत्यु आज ही हो चाहे शताब्दी के पश्चात्, जो धीर हैं वे न्यायमार्ग से एक पग भी नहीं हिलते।' उठो, जागो, समय बीता जा रहा है और व्यर्थ के वितडावाद में हमारी सम्पूर्ण शक्ति का क्षय होता जा रहा है। उठो, जागो, छोटे छोटे विषयों

१ निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुयन्तु लक्ष्मी समाविशतु गच्छन्तु वा यथेष्टम् ।  
अद्वैत वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात्पथ प्रविचलन्ति पद न धीरा ॥



और मतमतान्तरों को लेकर व्यर्थ का विवाद मत करो। तुम्हारे सामने सबसे महान् कार्य पड़ा हुआ है—साबों आदमी डूब रहे हैं उनका उधार करो। इस बात पर अच्छी तरह ध्यान दो कि मुसलमान जब भारत में पहले पहुँच आये थे तब भारत में कितने अधिक हिन्दू रहते थे। आज उनकी संख्या कितनी बट गयी है। इसका कोई प्रतिभार हुए बिना यह दिन और बटती ही जायगी अन्तः के पूर्वतः विमुक्त हो जायेंगे। हिन्दू जाति सप्ट हो जाय तो हाने दो सिक्किन साब ही—उनके सीकड़ों बोप रहने पर भी संसार के सम्मूल उनके सीकड़ों विमुक्त विव उपस्थित करने पर भी—जब तक वे जिन जिन महान् भावों के प्रतिनिधि स्वरूप हैं, वे भी सप्ट हो जायेंगे। और उनके लोप के साथ साथ सारे आध्यात्म ज्ञान का विरोधोपन अपूर्व अद्वैत तत्त्व भी सप्ट हो जायगा। अतएव उठो जागो संसार की आध्यात्मिकता की रक्षा के लिए हाथ बड़ाओ। और पहले अपने देश के कल्याण के लिए इस तत्त्व को काम में लाओ। हमें आध्यात्मिकता की उतनी आवश्यकता नहीं कितनी इस भौतिक संसार में अद्वैतवाद को बोझा कार्य में परिवर्त करने की। पहले रोटी और तब बर्न चाहिए। घरीब देशारे मूलों मर रहे हैं और हम उन्हें आवश्यकता से अधिक धर्मोपदेश दे रहे हैं। मतमतान्तरों से घेट नहीं मरता। हमारे दो बोप बड़े ही प्रबल हैं पहला बोप हमारी पूर्वछटा है दूसरा है बुना करना ह्रदमहीनता। साबों मत-मतान्तरों की बात कह सकते हो करोड़ों सम्प्रदाय संयुक्त कर सकते हो परन्तु जब तक उनके बुद्ध का अपने ह्रदय में अनुभव नहीं करते वैदिक उपदेशों के अनुसार जब तक स्वयं नहीं समझते कि वे तुम्हारे ही घरीब के बंध है जब तक तुम और वे—बनी और बरिज साबु और असाबु सभी उषी एक अनन्त पूर्ण के बिसे तुम ब्रह्म कहते हो बंध नहीं हो जाते तब तक कुछ न होया।

सज्जनों मैंने तुम्हारे सामने अद्वैतवाद के कुछ प्रधान भावों को प्रकाशित करने की चेष्टा की और जब इसे काम में लाने का समय आ गया है। केवल इसी देश में नहीं सब जगह। आधुनिक विज्ञान के लोहे के मुद्गरों की पीट खाकर अद्वैतवादात्मक बर्णों की मजबूत बीमार चूर चूर हो रही है। ऐसा नहीं कि अद्वैतवादी सम्प्रदाय केवल यहीं शास्त्रों का बर्ण लीन-लीन कर कुछ का कुछ कर रहे हैं। लीलातानी की ह्रद हो बनी है—कहाँ तक लीलातानी हो—स्कोक रखर नहीं है। ऐसा नहीं कि केवल यहीं अद्वैतवादी आत्मपत्ता के लिए बौद्धों के किसी कोने में छिपने की चेष्टा कर रहे हैं यही यूरोप और अमेरिका में तो यह प्रवृत्त और भी रसाधा है। और यहाँ भी माप्ट के इस अद्वैतवाद का कुछ बंध आना चाहिए। यह यहाँ पहुँच भी गया है। यहाँ दिन दिन उसका प्रसार बढ़ाना चाहिए। परिवर्तनी

सम्यता की भी इससे रक्षा होगी। कारण, पश्चिमी देशों में पहले का भाव उठ गया है और एक नया ढग—काचन की पूजा के रूप में शैतान की पूजा प्रवर्तित हुई है। इस आधुनिक धर्म अर्थात् पारस्परिक प्रतियोगिता और काचन की पूजा की अपेक्षा तो पहले के अपरिमाजित धर्म की राह अच्छी थी। कोई भी राष्ट्र हो, चाहे वह कितना ही प्रबल क्यों न हो, ऐसी बुनियाद पर कभी नहीं टिक सकता। और मसार का इतिहास हममें कह रहा है, जिन किन्हीं लोगों ने ऐसी बुनियाद पर अपने समाज की प्रतिष्ठा की, वे विनष्ट हो गये। भारत में काचन-पूजा की यह तरंग न आ सके, उसकी ओर पहले ही से नज़र रखनी होगी। अतएव सबसे पहले अद्वैतवाद प्रचारित करो, जिसमें धर्म आधुनिक विज्ञान के प्रबल आघातों से भी अक्षत बना रहे। केवल इतना ही नहीं, तुम्हें दूसरों की भी सहायता करनी होगी—तुम्हारे विचार यूरोप और अमेरिका के सहायक होंगे, परन्तु सबसे पहले तुम्हें याद दिलाता हूँ कि व्यावहारिक कार्य की आवश्यकता है, और उसका प्रथमांश यह है कि घोर से घोरतम दारिद्र्य और अज्ञान-तिमिर में डूबे हुए साधारण लाखों भारतीयों की उन्नति-साधना के लिए उनके समीप जाओ। और उनको अपने हाथ का सहारा दो और भगवान् कृष्ण की यह वाणी याद रखो

इहैव तैर्जितं सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।

निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिता ॥

(गीता ५।१९)

—‘जिनका मन इस साम्य भाव में अवस्थित है, उन्होंने इस जीवन में ही ससार पर विजय प्राप्त कर ली है। चूँकि ब्रह्म निर्दोष और सबके लिए सम है, इसलिए वे ब्रह्म में अवस्थित हैं।’

और मतमतान्तरों को केकर स्पष्ट का विचार मठ करो। तुम्हारे सामने सबसे महान् कार्य पड़ा हुआ है—आखों आदमी बंद रहे हैं उनका उद्धार करो। इत बात पर अच्छी तरह ध्यान दो कि मुसलमान जब भारत में पहले पहल जाने के तब भारत में कितने अधिक हिन्दू रहते थे। आज उनकी संख्या कितनी घट गयी है। इसका कोई प्रतिकार हुए बिना मह दिन दिन और घटती ही जायगी अन्ततः वे पूर्वतः विसुप्त हो जायेंगे। हिन्दू जाति लुप्त हो जाय तो होने दो लेकिन साब ही—उनके सिकड़ों खोप रहने पर भी संसार के सम्मुख उनके सिकड़ों विह्वल बिच उपस्थित करने पर भी—अब तक वे बिन बिना महान् भावों के प्रतिनिधि स्वल्प हैं, वे भी लुप्त हो जायेंगे। और उनके खोप के साथ साथ सारे आध्यात्म ज्ञान का सिरोभूषण अपूर्व अद्वैत तत्त्व भी सुप्त हो जायगा। अतएव उठो जाओ संसार की आध्यात्मिकता की रक्षा के लिए हाथ बड़ाओ। और पहले अपने देश के कल्याण के लिए इस तत्त्व को काम में लाओ। हमें आध्यात्मिकता की उतनी आवश्यकता नहीं बितनी इस मौरिक संसार में अद्वैतवाद को बड़ा कार्य में परिणत करने की। पहले रोटी और तब धर्म चाहिए। गरीब बेचारे भूखा मर रहे हैं और हम उन्हें आध्यात्मिकता से अधिक धर्मोपदेश दे रहे हैं। मतमतान्तरों से घेद नहीं भरना। हमारे दो खोप बड़े ही प्रबल हैं पहला खोप हमारी दुर्बलता है, दूसरा है नृणा करना हृदयहीनता। आखों मत-मतान्तरों की बात कह सकते ही करोड़ों सम्प्रदाय संमिश्र कर सकते हो परन्तु जब तक उनके दुःख का अपने हृदय में अनुभव नहीं करते वैदिक उपदेशों के अनुसार जब तक स्वयं नहीं समझते कि वे तुम्हारे ही सरीर के अंग हैं जब तक तुम और वे—बनी और बरिख साधु और असाधु सभी उसी एक अमल पूर्व के जिसे तुम ब्रह्म कहते हो अंत नहीं हो जाते तब तक कुछ न होगा।

संश्रमो मैंने तुम्हारे सामने अद्वैतवाद के कुछ प्रधान भावों को प्रकाशित करने की चेष्टा की और अब इसे काम में लाने का समय आ गया है। केवल इसी देश में नहीं सब जगह। आधुनिक विज्ञान के लोहे के मूर्खों की खोल ताकर अद्वैतवादालोक धर्मों की मजबूत दीवार बुर बुर हो रही है। ऐसा नहीं कि अद्वैतवादी सम्प्रदाय केवल बही धारणों का अर्थ खीच-खीच कर कुछना कुछ कर रहे हैं। खीचाखानी की हद हो गयी है—कहाँ तक खीचाखानी हो—उन्नीच खबर नहीं है। ऐसा नहीं कि केवल बही वैदिकवादी आत्मरक्षा के लिए अंधेरे क बिनी कीने में छिपने की चेष्टा कर रहे हैं नहीं यूरोप और अमेरिका में तो यह अत्यन्त और भी ज्यादा है। और वहाँ भी भारत के इन अद्वैतवाद का कुछ अंत जाना चाहिए। यह वहाँ पहुँच भी गया है। वहाँ दिन दिन उसका जनार बढ़ना चाहिए। परिषदी

इसके पश्चात् स्वामी जी ने यूरोप पर भारतीय विचारों के प्रभाव की विस्तृत समीक्षा करके दिखाया कि विभिन्न युगों में स्पेन, जर्मनी एवं अन्यान्य यूरोपीय देशों के ऊपर इन विचारों की कैसी छाप पड़ी थी। भारतीय राजकुमार द्वारा-शिकोह ने उपनिषद् का अनुवाद फारसी में किया। शॉपेनहॉवर नामक जर्मन दार्शनिक उसका लेटिन अनुवाद देखकर उमकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। उसके दर्शन में उपनिषदों का यथेष्ट प्रभाव देखा जाता है। इसके बाद ही काण्ट के दर्शन-ग्रन्थों में भी उपनिषदों के भावों के चिह्न देखे जाते हैं। यूरोप में साधारणतया तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की अभिरुचि के कारण ही विद्वान् लोग सस्कृत के अध्ययन की ओर आकृष्ट होते हैं। परन्तु अध्यापक डॉयसन जैसे व्यक्ति भी हैं जो केवल दार्शनिक ज्ञान के लिए ही दर्शनों का अध्ययन करते हैं। स्वामी जी ने आगा प्रकट की कि भविष्य में यूरोप में सस्कृत के पठन-पाठन में और अधिक दिलचस्पी ली जायगी। इसके बाद स्वामी जी ने दिखलाया कि पूर्वकाल में 'हिन्दू' शब्द सार्थक था और वह सिन्धु नदी के इस पार बसनेवालों के लिए प्रयुक्त होता था, किन्तु इस समय वह सर्वथा निरर्थक है, क्योंकि इस समय सिन्धु नदी के इस पार नाना धर्मविलम्बी बहुत सी जातियाँ बसती हैं।

इसके बाद स्वामी जी ने वेदों के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला। उन्होंने कहा, "वेद किसी व्यक्ति विशेष के वाक्य नहीं हैं। पहले कतिपय विचारों का शनैः शनैः विकास हुआ, अतत उन्हें ग्रन्थ का रूप दिया गया, और वह ग्रन्थ प्रमाण बन गया।" स्वामी जी ने कहा, "अनेक धर्म इसी भाँति ग्रन्थबद्ध हुए हैं। ग्रन्थों का प्रभाव भी असौम्य प्रतीत होता है। हिन्दुओं के ग्रन्थ वेद हैं जिन पर अभी हजारों वर्षों तक हिन्दुओं को निर्भर रहना होगा। लेकिन उन्हें वेदों के सम्बन्ध में अपने विचार बदलने होंगे और उन्हें नये मिररे से दृढ़ चट्टान की नीव पर स्थापित करना होगा। वेदों का वाङ्मय विशाल है, किन्तु वेदों का नब्बे प्रतिशत अंश इस समय उपलब्ध नहीं है। विशेष विशेष परिवार में एक एक वेदांश थे। उन परिवारों के लोप ही जाने से वे वेदांश भी लुप्त हो गये, किन्तु जो इस समय भी मिलते हैं, वे भी इस जैसे कमरे में समा नहीं सकते। ये वेद अत्यन्त प्राचीन तथा अति सरल भाषा में लिखे गये हैं। वेदों का व्याकरण भी इतना अस्पष्ट है कि बहुतों के विचार में वेदों के कई अंशों का कोई अर्थ ही नहीं निकलता।"

इसके बाद स्वामी जी ने वेद के दो भागों—कर्मकांड और ज्ञानकांड की विस्तृत समीक्षा की। कर्मकांड कहने से सहिता और ब्राह्मण का बोध होता है। ब्राह्मणों में यज्ञ आदि का वर्णन है। सहिता अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती प्रभृति छंदों में रचित गेय पद हैं। साधारणतः उनमें इन्द्र, वरुण अथवा अन्य किसी देवता की

## वेदान्त

### (सेतड़ी में दिया हुआ भाषण)

२ दिसम्बर, १८९७ को स्वामी जी अपने शिष्यों के साथ महालय के बंगले में बहरे हुए थे वहाँ उन्होंने बेदास्त से सम्बन्ध में इतरीक डेढ़ घंटे तक व्याख्यान दिया। स्वामीय बहुत से सज्जन एवं कई यूरोपीय महिलाएँ उपस्थित थीं। सेतड़ी के राजा साहब समापति के उन्हाने ही उपस्थित खोटाशों से स्वामी का परिचय कराया। स्वामी जी ने बड़ा सुन्दर व्याख्यान दिया परन्तु वर का विषय है कि उस समय कोई भी श्रद्धादि का लेखक उपस्थित नहीं था। अतः समस्त व्याख्यान उपलब्ध नहीं है। स्वामी जी के दो शिष्यों ने जो नोट लिखे वे उसीका अनुबाध नीचे दिया जाता है।

### स्वामी जी का भाषण

यूनानी और आर्य प्राचीन काल की वे दो जातियाँ भिन्न भिन्न जातारणों और परिस्थितियों में पड़ीं। प्रकृति में जो कुछ सुन्दर था जो कुछ मधुर था जो कुछ लोभनीय था उसीके मध्य स्थापित होकर स्फूर्तिप्रद बलवामु में विचारण कर यूनानी जाति ने एक आरों ओर सब प्रकार महिमामय प्राकृतिक दृश्यों के मध्य अवस्थित होकर तथा जबिक सापीरिक परिचय के अनुकूल बलवामु न पाकर हिल्लू जाति ने दो प्रकार की विभिन्न तथा विशिष्ट सम्प्रदायों के आधारों का विकास किया। यूनानी लोग बाह्य प्रकृति की अन्त एवं आर्य लोग आन्तरिक प्रकृति की अन्त सम्बन्धी खोज में रतचित हुए। यूनानी लोग बहुत बड़ाज की खोज में व्यस्त हुए और आर्य लोग सुत्र बड़ाज या सूक्ष्म बमत् के उत्थानुत्थान में मग्न हुए। संसार की सम्प्रता में दोनों को ही अपना अपना विशिष्ट अंश विशेष सम्पन्न करना पड़ा था। आश्चर्य नहीं है कि इनमें से एक को दूसरे से कुछ उधार लेना है। लेकिन परस्पर तुलनात्मक अध्ययन से दोनों कामान्वित होंगे। आर्यों की प्रकृति विश्लेषण-प्रिय थी। पणित और व्याकरण में आर्यों की बहुसूत उपलब्धियाँ प्राप्त हुईं और मन के विश्लेषण में वे चरम सीमा को पहुँच गये थे। हमें पाश्चानोरस सुपेरेस ज्येटी एवं मिन के लम्बे पठोबाधियों के विचारों में भारतीय विचार की सख्त सीख पड़ती है।

है कि ईश्वर के साक्षात्कार के पश्चात् ही मनुष्य का यथार्थ जीवन आरम्भ होता है।

अब यह प्रश्न उठा, ये देवता कौन थे ? इन्द्र समय समय पर मनुष्यों की सहायता करते हैं। कभी कभी वे अत्यधिक सोम का पान भी करते हैं, स्थान स्थान पर उनके लिए सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी प्रभृति विशेषणों का भी प्रयोग हुआ है। वरुण के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की नाना धारणाएँ हैं। देवों के चरित्र सम्बन्धी ये सब वर्णनात्मक मत्र कहीं कहीं बहुत ही अपूर्व हैं और भाषा भी अत्यन्त उदात्त है। इसके पश्चात् स्वामी जी ने प्रलय वर्णनात्मक विख्यात नासदीय सूक्त—जिसमें अन्वकार का अन्वकार से आवृत होना वर्णित है—सुनाया और कहा, जिन लोगों ने इन सब महान् भावों का इस प्रकार की कविता में वर्णन किया है, यदि वे ही असम्य और असंस्कृत थे तो फिर हमें अपने को क्या कहना चाहिए ? इन ऋषियों की अथवा उनके देवता इन्द्र, वरुण आदि की किसी प्रकार की समालोचना करने या उनके बारे में कोई निर्णय देने में मैं अक्षम हूँ। मानो क्रमागत दृश्य पर दृश्य बदलता चला आ रहा है और सबके पीछे एक सद्धिप्रा बहुधा वदन्ति की यवनिका है। इन देवताओं का वर्णन बड़ा ही रहस्यमय, अपूर्व और अति सुन्दर है। वह बिल्कुल अगम्य प्रतीत होता है—पर्दा इतना सूक्ष्म है कि मानो स्पर्श मात्र से ही फट जायगा और मृगमरीचिका की भाँति लुप्त हो जायगा।

आगे चलकर स्वामी जी ने कहा, “मुझे एक बात बहुत सम्भव और स्पष्ट मालूम होती है और वह यह है कि यूनानियों की भाँति आर्य लोग भी ससार की समस्या हल करने के लिए पहले बाह्य प्रकृति की ओर उन्मुख हुए—सुन्दर रमणीय बाह्य प्रकृति भी उन्हें प्रलोभित करके धीरे धीरे बाह्य जगत् में ले गयी। किन्तु भारत की यही विशेषता है कि जिस वस्तु में कुछ उदात्तता नहीं होती उसका यहाँ कुछ मूल्य ही नहीं होता। मृत्यु के पश्चात् क्या होता है, इसकी यथार्थ तात्त्विक विवेचना साधारणतः यूनानियों के मन में उठी ही नहीं। किन्तु भारत में आरम्भ से ही यह प्रश्न बार बार पूछा जा रहा है—‘मैं कौन हूँ ? मृत्यु के पश्चात् मेरी क्या अवस्था होगी ?’ यूनानियों के मत में मनुष्य मर कर स्वर्ग जाता है। स्वर्ग जाने का क्या अर्थ है ? सब कुछ के बाहर जाना, भीतर कुछ नहीं है। सब कुछ केवल बाहर है। उनका लक्ष्य केवल बाहर की ओर था, केवल इतना ही नहीं, मानो वे स्वयं भी अपने आप से बाहर थे। और उन्होंने सोचा, जिस समय वे एक ऐसे स्थान में जा पहुँचेंगे जो बहुत कुछ इसी ससार की भाँति है, किन्तु वहाँ इस ससार के दुःख-क्लेश का सर्वथा अभाव है, तभी उन्हें ईप्सित सभी वस्तुएँ प्राप्त हो जायँगी और वे तृप्त हो जायँगे। उनकी धर्म सम्बन्धी भावना इसके और ऊपर नहीं उठ सकी।

स्तुति है। इस पर प्रश्न यह उठा ये देवता कौन थे? इनके सम्बन्ध में अनेक मत निर्धारित हुए, किन्तु अग्याम्य मतों द्वारा वे मत संक्षिप्त कर दिये गये। ऐसा बहुत दिनों तक चरता रहा।

इसके बाद स्वामी जी ने उपासना प्रथाकी सम्बन्धी विभिन्न धारणाओं की चर्चा की। बेजिओन के प्राचीन निवासियों की आत्मा के सम्बन्ध में यह धारणा थी कि वह केवल एक प्रतिरूप देह (double) मात्र है उसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं होता और वह देह मूल देह से अपना सम्बन्ध कदापि विच्छिन्न नहीं कर सकती। इस 'प्रतिरूप' देह को भी मूल शरीर की भाँति सूबा तूबा मनोवृत्ति आदि के विकार होते हैं ऐसा उनका विश्वास था साथ ही यह भी विश्वास था कि मूल मूल शरीर पर किसी प्रकार का आघात करने से 'प्रतिरूप' देह भी बाह्य होनी। मूल शरीर के लुप्त होने पर 'प्रतिरूप' देह भी लुप्त हो जायगी। इसलिए मूल शरीर की रक्षा करने की प्रथा आरम्भ हुई। इसीसे मनी समाधि मन्दिर, छत्र आदि की उत्पत्ति हुई। मिस्र और बेजिओन के निवासी एवं यहूदियों की विचार-धारा इससे अधिक अग्रसर न हो सकी वे आरम्भ-तत्त्व तक नहीं पहुँच सके।

प्रो मैक्समूलर का कहना है कि ऋग्वेद में पितर-पूजा का सामान्य विज्ञान भी नहीं दिखायी पड़ता। ममी जीब फाड़े हुए हम लोगों की ओर देख रहे हैं। ऐसा भीमत्स और अपानह दुश्म भी वेदों में नहीं मिलता। देवता मनुष्यों के प्रति मित्रभाव रखते हैं। उपास्य और उपासक का सम्बन्ध सहज और सीम्य है। उसमें किसी प्रकार की म्कानता का भाव नहीं है उनमें सहज आत्मत्व और सरल हास्य का अभाव नहीं है। स्वामी जी ने कहा वेदों की चर्चा करते समय मानो मैं देवताओं की हास्य-व्यभि स्पष्ट सुनता हूँ। वैदिक ऋषिगण अपने सम्पूर्ण भाव भाषा में भके ही न प्रकट कर सके हों किन्तु वे संस्कृति और सहृदयता के आभार से। हम लोग उनकी तुलना में बंगछी हैं।

इसके बाद स्वामी जी ने अपने कथन की पुष्टि में अनेक वैदिक मंत्रों का उच्चारण किया। जिस स्थान पर पितृगण निवास करते हैं उनको उही स्थान पर कै जाओ—यहाँ कोई बुल शोक नहीं है। इत्यादि। इसी भाँति इस वेद में इस धारणा का आधिनिर्णय हुआ कि अठनी पत्नी शव जला दिया जायगा उठना ही अच्छा है। उनको जमरा ज्ञात हो गया कि स्तूल देह के अतिरिक्त एक मूल देह है वह मूल देह स्तूल देह के त्याग के पश्चात् एक ऐसे स्थान में पहुँच जाती है जिस स्थान में केवल आत्मत्व है बुल का तो नाशोनिष्ठान भी नहीं है। धर्मोत्थक धर्म में मय और लुप्त के भाव प्रचुर हैं। उनकी यह धारणा थी कि यदि मनुष्य ने ईश्वर का दर्शन कर लिया तो वह मर जायगा। किन्तु ऋग्वेद का भाव यह

ये, उन्होंने अपने मत की पुष्टि के लिए खींचतान कर उनका विकृत अर्थ किया। रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य ने भी शुद्ध अद्वैतभाव प्रतिपादक वेदाशो की द्वैत व्याख्या करके वैसी ही भूल की है। यह सर्वथा सत्य है कि उपनिषद् एक तत्त्व की शिक्षा देते हैं, किन्तु इस तत्त्व में सोपानारोहण की भाँति शिक्षा दी गयी है। इसके बाद स्वामी जी ने कहा कि खेद की बात है कि वर्तमान भारत में धर्म का मूल तत्त्व नहीं रह गया है, सिर्फ थोड़े वाह्य अनुष्ठान मात्र शेष बचे हैं। भारतवासी इस समय न तो हिन्दू ही हैं और न वेदान्ती ही। वे केवल छुआछूत मत के पोषक हैं। रसोई-घर ही उनके मन्दिर हैं और रसोई की हँडिया और वर्तन ही उनके देवता हैं। इस स्थिति का अन्त होना ही चाहिए, और जितना शीघ्र इसका अन्त हो, उतना ही हमारे धर्म के लिए अच्छा है। उपनिषद् अपनी महिमा में उद्भासित हो और साथ ही विभिन्न सम्प्रदायों में विवाद की इति भी हो जाय।

शरीर स्वस्थ न होने से इतना ही बोल कर स्वामी जी थक गये। अतः उन्होंने आघ घटे विश्राम किया। उनके व्याख्यान का शेषांश सुनने के लिए श्रोतागण इस बीच धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करते रहे। स्वामी जी बाहर आये और उन्होंने फिर आघ घटे भाषण किया। उन्होंने समझाया कि बहुत्व में एकत्व की खोज को ही ज्ञान कहते हैं और किसी विज्ञान का चरम उत्कर्ष तब माना जाता है, जब सारे अनेकत्व में एक एकत्व का अनुसन्धान पूरा हो जाता है। यह नियम भौतिक विज्ञान तथा आध्यात्मिक विज्ञान दोनों पर समान रूप से लागू होता है।



किन्तु हिन्दुओं का मन इतने से सृष्ट नहीं हुआ। उनके विचार में स्वर्ग भी स्वर्ण जम्बू के अन्तर्गत है। हिन्दुओं का मत है कि जो कुछ संयोगोत्पन्न है उसका विनाश अवश्यम्भावी है। उन्होंने बाह्य प्रकृति से पूछा 'आत्मा क्या है, इसे क्या गुम जा सकती हो?' उत्तर मिला 'नहीं। प्रकृत हुआ 'क्या कोई ईश्वर है?' प्रकृति ने उत्तर दिया "मैं नहीं जानती। तब वे प्रकृति से विमुख हो गये और वे समझने लगे कि बाह्य प्रकृति किन्तु ही महान् और मध्य क्यों न हो वह वेस-कास की सीमा से बाहर है। तब एक बन्धु बानी सुनायी देती है 'गये उदात्त भावों की धारणा उनके मन में उदित होती है। यह बानी थी 'निति नेति'—'यह नहीं यह नहीं'—उस समय विभिन्न बंधुबंध एक ही गये सूर्य चन्द्र तारा इतना ही क्यों समस्त ब्रह्मांड एक हो गया—उस समय इस नूतन आवर्ण पर उनके धर्म का भाष्यारिभक्त आचार प्रतिष्ठित हुआ।

न तत्र सूर्यो जालि न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो जालि कुतोऽप्यमग्निः।

तमेव जालतमनुजालि सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभासि ॥

(कठोपनिषद् ३।१)

—'यहाँ सूर्य भी प्रकाशित नहीं होता न चन्द्र न तारा न विद्युत्, फिर इस मौलिक अग्नि का तो कहना ही क्या! उसीके प्रकाशमान होने से ही सब कुछ प्रकाशित होता है, उसीके प्रकाश से ही सब चीजें प्रकाशित हैं। उस सीमाबद्ध अपरिपक्व व्यक्तिविशेष सबके पाप-पुण्यों का विचार करनेवाले गुरु ईश्वर की धारणा सेप नहीं रही अब बाहर का अन्वेष्य समाप्त हुआ अपने भीतर अन्वेष्य आरम्भ हुआ। इस भाँति उपनिषद् भारत के आश्रितिक हो गये। इन उपनिषदों का यह विद्यालय साहित्य है। और माध्य में जो विभिन्न मतवाद प्रचलित हैं, सभी उपनिषदों की मिति पर प्रतिष्ठित हुए।

इसके बाद स्वामी जी ने ईत विधिप्यारित अर्द्ध मतों का वर्णन करके उनके सिद्धान्तों का निम्नलिखित कथन से समाप्त किया। उन्होंने कहा "इनमें प्रत्येक मानो एक एक सोपान है—एक सोपान पर चढ़ने के बाद परबर्ती सोपान पर चढ़ना होता है, सबके अन्त में अर्द्धवाद की स्वाभाविक परिपत्ति है और अन्तिम सोपान है तत्त्ववर्ति। उन्होंने बताया कि प्राचीन आप्यकार शंकराचार्य रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य आदि भी उपनिषद् को ही एकमात्र प्रस्ताव मानते थे तथापि सभी इस भ्रम में पड़े कि उपनिषद् एक ही मन की धारणा देते हैं। तबने प्रकृतियाँ की हैं। शंकराचार्य इस भ्रम में पड़े थे कि सब उपनिषदों में बस अर्द्धवाद की धारणा है इनका कुछ है ही नहीं। इनसिद्धान्त स्थान पर स्पष्ट ईत भावात्मक रचीक मिलने

ऍंग्लो-सैक्सन जाति ने मानवता तथा सामाजिक उन्नति की दिशा मे कार्य करने की, सम्यता और प्रगति की महती क्षमता का विकास किया है। इतना ही नहीं, कुछ और आगे बढ़कर मैं यह भी कह सकता हूँ कि यदि उस ऍंग्लो-सैक्सन जाति की शक्ति का प्रभाव इतना विस्तारित नहीं हुआ होता तो हम शायद इस तरह इकट्ठे भी नहीं होते और आज यहाँ पर 'भारतीय आध्यात्मिक विचारों का प्रभाव' विषय पर चर्चा भी न कर पाते। फिर पाश्चात्य से प्राच्य को, अपने स्वदेश को, लौटकर देखता हूँ कि वही ऍंग्लो-सैक्सन शक्ति अपने समस्त दोषों के साथ भी अपने गुणों की निश्चित विशिष्टताओं की रक्षा करते हुए अपना कार्य यहाँ कर रही है और मेरा विश्वास है कि अन्ततः महान् परिणाम सिद्ध होगा। ब्रिटिश जाति का विस्तार और उन्नति का भाव हमें बलपूर्वक उन्नति की ओर अग्रसर कर रहा है। साथ ही हमें यह भी याद रखना चाहिए कि पाश्चात्य सम्यता का मूल स्रोत यूनानी सम्यता है और यूनानी सम्यता का प्रधान भाव है—अभिव्यक्ति। हम भारतवासी मननशील तो हैं, परन्तु कभी कभी दुर्भाग्यवश हम इतने मननशील हो जाते हैं कि हममें भाव व्यक्त करने की शक्ति बिल्कुल नहीं रह जाती। मतलब यह कि धीरे धीरे ससार के समक्ष भारतवासियों की भाव प्रकाशित करने की शक्ति अव्यक्त ही रह गयी और उसका फल क्या हुआ? फल यही हुआ कि हमारे पास जो कुछ था, सबको हम गुप्त रखने की चेष्टा करने लगे। भाव गुप्त रखने का यह सिलसिला आरम्भ तो हुआ व्यक्ति विशेष की ओर से, पर क्रमशः बढ़ता हुआ यह अन्त में जातीय स्वभाव बन गया। और आज भाव को अभिव्यक्त करने की शक्ति का हममें इतना अभाव हो गया है कि हमारी जाति एक मरी हुई जाति समझी जाने लगी है। ऐसी अवस्था में अभिव्यक्त किये बिना हमारी जाति के जीवित रहने की सम्भावना कहाँ है? पाश्चात्य सम्यता का मेरुदण्ड है विस्तार और अभिव्यक्ति। भारतवर्ष में ऍंग्लो-सैक्सन जाति के कामों में से जिस कार्य की ओर मैंने तुम लोगों का ध्यान आकृष्ट करना चाहा है, वही हमारी जाति को जगाकर एक बार फिर हमें अपने को अभिव्यक्त करने के लिए तैयार करेगा। और आज भी यही शक्तिशाली ऍंग्लो-सैक्सन जाति अपने भाव-विनिमय के साधनों की सहायता से हमें ससार के आगे अपने गुप्त रत्नों को प्रकट करने के लिए उत्साहित कर रही है। ऍंग्लो-सैक्सन जाति ने भारतवर्ष की भावी उन्नति का रास्ता खोल दिया है और हमारे पूर्वपुरुषों के भाव जिस तरह धीरे धीरे बहुतेरे स्थानों में फैलते जा रहे हैं, यह वास्तव में विलक्षण है। लेकिन जब हमारे पूर्वपुरुषों ने अपना सत्य और मुक्ति का संदेश प्रचारित किया, तब उन्हें कितना सुभीता था! भगवान् बुद्ध ने किस तरह मार्जनीन भ्रातृभाव के महान् तत्त्व का प्रचार किया था। उस समय भी

## अंग्लैंड में भारतीय आध्यात्मिक विचारों का प्रभाव

११वीं मार्च सन् १८९८ ई को स्वामी जी की शिष्या सिस्टर विवेकिता (कुमारी एम ई नोबल) ने कम्ब्रिज के स्टार थियेटर में 'इंग्लैंड में भारतीय आध्यात्मिक विचारों का प्रभाव' नामक विषय पर एक व्याख्यान दिया। समापति का वाक्य स्वयं स्वामी विवेकानन्द ने ही प्रहण किया था। स्वामी जी ने उठकर पहले मोस्ताजों को उन्नत महिमा का परिचय देते हुए नीचे किन्हीं बातों कहीं

### स्वामी जी का भाषण

#### बेचियो और सन्तानो

मैं जिस समय एशिया के पूर्वी हिस्से में भ्रमण कर रहा था उस समय एक विषय की ओर मेरी दृष्टि विशेष रूप से आकृष्ट हुई थी। मैंने देखा कि उन स्वानों में भारतीय आध्यात्मिक विचार व्याप्त हैं। चीन और जापान के कितने ही मन्त्रियों की बीमारियों के ऊपर कई सुपरिचित चिकित्सकों को लिखा हुआ देखकर मैं कितना विस्मित हुआ था यह तुम सोच आसानी से समझ सकते हो। और यह सुनकर शायद तुम्हें और भी आश्चर्य होगा और कुछ लोगों को सम्भवतः प्रसन्नता भी हागी कि वे सब मंत्र पुठनी बँगला सिपि में लिखे हुए हैं। हमारे बंगाल के पूर्वपुरुषों का धर्म प्रचार में कितना उत्साह और स्फूर्ति थी मानो यही बताते के लिए आज भी वे मंत्र उम पर स्मारक के रूप में मौजूद हैं।

भारतीय आध्यात्मिक विचारों की पहुँच एशिया महाद्वीप के इन देशों तक ही हुई है ऐसा नहीं बरन् वे बहुत दूर तक फैले हुए हैं और उनके बिना सुस्पष्ट हैं। यहाँ तक कि पाश्चात्य देशों में भी कितने ही स्वानों के आचार-व्यवहार के धर्म में पैठकर मैंने उसके प्रभाव-बिह्व देखे। प्राचीन काल में भारत के आध्यात्मिक विचार भारत के पूर्व और पश्चिम दोनों ही ओर फैले। वह बात अब ऐतिहासिक सत्य के रूप में प्रमाणित हो चुकी है। सारा संसार भारत के आध्यात्म-उत्पन्न के लिये वहाँ तक पहुँची है तथा वहाँ की आध्यात्मिक शक्ति ने मानव जाति को जीवन सुख के कार्य में प्राचीन अथवा अर्वाचीन समय में कितनी बड़ी सहायता पहुँचायी है, यह बात अब सब लोग जान गये हैं। ये सब तो पुठनी बातें हैं। मैं संसार में एक और सर्वाधिक उन्मत्तनीय बात देखता हूँ। वह यही है कि उस अद्भुतकर्म

मैं अब केवल दो चार बातें और कहना चाहता हूँ। हमारी धारणा है कि हम भारतवासी भी कुछ काम कर सकते हैं। भारतवासियों मे हम वगाली लोग भले ही इस बात की हँसी उडा सकें, पर मैं वैसा नहीं करता। तुम लोगो के अन्दर एक अदम्य उत्साह, एक अदम्य चेष्टा जाग्रत कर देना ही मेरा जीवन-व्रत है। चाहे तुम अद्वैतवादी हो, चाहे विशिष्टाद्वैतवादी हो अथवा तुम द्वैतवादी ही क्यों न हो, इससे कुछ अतर नहीं पडता। परन्तु एक बात की ओर जिसे दुर्भाग्यवश हम लोग हमेशा भूल जाया करते हैं, इस समय मैं तुम्हारा ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। वह यह कि 'ऐ मानव, तू अपने आप पर विश्वास कर।' केवल इसी एक उपाय से हम ईश्वर के विश्वास-परायण बन सकते हैं। तुम चाहे अद्वैतवादी हो या द्वैतवादी, तुम्हारा विश्वास चाहे योगशास्त्र पर हो या शंकराचार्य पर, चाहे तुम व्यास के अनुयायी हो या विश्वामित्र के, इससे कोई फर्क नहीं पडता। बात यह है कि पूर्वोक्त आत्मा सम्बन्धी विश्वास के विषय मे भारतवासियों के विचार ससार की अन्य सभी जातियों के विचारो से निराले हैं। एक पल के लिए इसे ध्यान मे रखो कि जब अन्यान्य सभी धर्मों और देशो मे आत्मा की शक्ति को लोग बिल्कुल स्वीकार नहीं करते—वे आत्मा को प्रायः शक्तिहीन, दुर्बल और जड वस्तु की तरह समझते हैं, हम लोग भारतवर्ष मे आत्मा को अनन्त शक्ति-सम्पन्न समझते हैं और हमारी धारणा है कि आत्मा शाश्वत पूर्ण ही रहेगी। हमे सदा उपनिषदो मे दिये गये उपदेशो को स्मरण रखना चाहिए।

अपने जीवन के महान् व्रत को याद रखो। हम भारतवासी और विशेषतः हम वगाली बहुत परिमाण मे विदेशी भावो से आक्रान्त हो गये हैं, जो हमारे जातीय धर्म की सम्पूर्ण जीवनी शक्ति को चूसे डालते हैं। हम आज इतने पिछडे हुए क्यों हैं? क्यों हममे से नित्यानव वे फी सदी आदमी सम्पूर्णतः पाश्चात्य भावो और उपादानो से विनिर्मित हो रहे हैं? अगर हम लोग राष्ट्रीय गौरव के उच्च शिखर पर आरोहण करना चाहते हैं तो हमे इस विदेशी भाव को दूर फेंक देना होगा, साथ ही यदि हम ऊपर चढना चाहते हैं तो हमे यह भी याद रखना होगा कि हमे पाश्चात्य देशो से बहुत कुछ सीखना वाकी है। पाश्चात्य देशो से हमे उनका शिल्प और विज्ञान सीखना होगा, उनके यहाँ के भौतिक विज्ञानो को सीखना होगा और उवर पाश्चात्य देशवासियों को हमारे पास आकर धर्म और अध्यात्म-विद्या की शिक्षा ग्रहण करनी होगी। हम हिन्दुओं को विश्वास करना होगा कि हम ससार के गुरु हैं। हम यहाँ पर राजनीतिक अधिकार तथा इसी प्रकार की अन्यान्य बातो के लिए चिल्ला रहे हैं। अच्छी बात है, परन्तु अधिकार और सुमीते केवल मित्रता के द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं और मित्रता की आशा वही की जाती है, जहाँ दोनो पक्ष समान होते हैं। यदि एक पक्ष-

यहाँ हमारे प्रिय भारतवर्ष में वास्तविक आनन्द प्राप्त करने के यत्न सुधीत थे और हम बहुत ही सुगमता के साथ पृथ्वी की एक छोर से दूसरे छोर तक अपने भावों और विचारों को प्रचारित कर सकते थे परन्तु अब हम उससे और भी आगे बढ़कर ऐंम्बो-सैक्सन जाति तक अपने भावों का प्रचार करने में इतकर्म्य हो रहे हैं।

इसी तरह क्रिया प्रतिक्रिया इस समय चल रही है और हम देख रहे हैं कि हमारे देश का संवेदन बर्हीबाके सुनते हैं और वेबल सुनते ही नहीं हैं, बल्कि उन पर अनुकूल प्रभाव भी पड़ रहा है। इसी बीच इंग्लैंड ने अपने कई महान् मखिमल व्यक्तियों को हमारे काम में सहायता पहुँचाने के लिए भेज दिया है। तुम लोगों ने सायब मेरी मित्र मिस मूरर की बात सुनी है और सम्मन है तुम लोगों में से बहूतों का उनके साथ परिचय भी हो—ये इस समय इसी मंच पर उपस्थित हैं। उच्च कुष्ठ में उत्पन्न इस सुशिक्षित महिला ने भारत के प्रति अपना प्रेम होने के कारण अपना समस्त जीवन भारत के कल्याण के लिए स्वीकार कर दिया है। उन्होंने भारत को अपना घर तथा भारतवासियों को ही अपना परिवार बना लिया है। तुम सभी उन सुप्रसिद्ध उदारहृदय ब्रमेज महिला के नाम से भी परिचित हो—उन्होंने भी अपना सारा जीवन भारत के कल्याण तथा पुनरुत्थान के लिए अर्पण कर दिया है। मेरा अभिप्राय श्रीमती बेसेट से है। प्यारे माइयो आज इस मंच पर दो अमेरिकन महिलाएँ उपस्थित हैं—ये भी अपने हृदय में बैसा ही उद्देश्य धारण किये हुए हैं और मैं आप लोगों से निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि ये भी हमारे इस गरीब देश के कल्याण के लिए अपने जीवन को उत्सर्ग करने को तैयार हैं। इस अवसर पर मैं तुम लोगों को एक स्वदेशवासी का नाम याद दिकाना चाहता हूँ। इन्होंने इंग्लैंड और अमेरिका जाति देशों को देखा है, उनके ऊपर मेरा बड़ा विश्वास और श्रद्धा है, इन्हें मैं विशेष सम्मान और प्रेम की दृष्टि से देखता हूँ जाम्पारिक राज्य में ये बहुत आगे बढ़े हुए हैं, ये बड़ी बड़ता के साथ और नुपचाप हमारे देश के कल्याण के लिए कार्य कर रहे हैं आज यदि उन्हें किसी और जगह कोई विशेष काम न होता तो वे अबतक ही इस समा में उपस्थित होते—यहाँ पर मेरा मतलब श्री योहिनीमोहन चट्टोपाध्याय से है। इन लोगों के अतिरिक्त अब इंग्लैंड ने कुमारी मारमरेट मोबच को उपहारस्वरूप भेजा है—इससे हम बहुत कुछ आशा रखते हैं। अब और अधिक बातें न कर मैं तुम लोगों से कुमारी मारमरेट मोबच का परिचय कराता हूँ जो तुम्हारे समक्ष भाषण करेगी।

जब सिस्टर निवर्तिता ने अपना दिक्कतस्य ध्यास्यान समाप्त कर दिया तब स्वामी श्री फिर उठे हुए और उन्होंने कहा

जल्दी या देरी से माया के बन्धन से मुक्त होंगे। यही हमारा सबसे पहला कर्तव्य है। अनन्त आशा से ही अनन्त आकाशा और चैष्टा की उत्पत्ति होती है। यदि यह विश्वास हमारे अन्दर बैठ जाय तो वह हमारे जातीय जीवन मे व्यास और अर्जुन का समय—वह समय, जब कि हमारे यहाँ से समग्र मानव जाति के लिए कल्याणकर उदात्त मतवाद प्रचारित हुआ था—ले आयेगा। आज हम लोग आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि और आध्यात्मिक विचारो मे बहुत ही पिछड गये हैं—भारत मे यथेष्ट परिमाण मे आध्यात्मिकता विद्यमान थी, इतने अधिक परिमाण मे थी कि उसकी आध्यात्मिक महानता ने ही भारतीयो को सारे ससार की जातियो का सिरमौर बना दिया था। और यदि परम्परा तथा लोगो की आशा पर विश्वास किया जाय तो हमारा वह दिन फिर लौट आयेगा, और वह तुम लोगो के ऊपर ही निर्भर करता है। ऐ बगाली नवयुवको, तुम लोग धनी-मानियो और बडे आदमियो का मुँह ताकना छोड दो। याद रखो, ससार मे जितने भी बडे बडे और महान् कार्य हुए है, उन्हे गरीबो ने ही किया है। इसलिए ऐ गरीब बगालियो, उठो और काम मे लग जाओ, तुम लोग सब काम कर सकते हो और तुम्हे सब काम करने पडेगे। यद्यपि तुम गरीब हो, फिर भी बहुत लोग तुम्हारा अनुसरण करेंगे। दृढचित्त बनो और इससे भी बढकर पूर्ण पवित्र और धर्म के मूल तत्त्व के प्रति निष्ठावान बनो। विश्वास रखो कि तुम्हारा भविष्य अत्यन्त गौरवपूर्ण है। ऐ बगाली नवयुवको, तुम लोगो के द्वारा ही भारत का उद्धार होनेवाला है। तुम इस पर विश्वास करो या न करो, पर तुम इस बात पर विशेष रूप से ध्यान रखो और ऐसा मत समझो कि यह काम आज या कल ही पूरा हो जायगा। मुझे अपनी देह और अपनी आत्मा के अस्तित्व पर जैसा दृढ विश्वास है, इस पर भी मेरा वैसा ही अटल विश्वास है। इसीलिए ऐ बगौय नवयुवको, तुम्हारे प्रति मेरा हृदय इतना आकृष्ट है। जिनके पास धन-दौलत नही है, जो गरीब है, केवल उन्ही लोगो का भरोसा है, और चूँकि तुम गरीब हो, इसलिए तुम्हारे द्वारा यह कार्य होगा। चूँकि तुम्हारे पास कुछ नही है, इसीलिए तुम सच्चे हो सकते हो, और सच्चे होने के कारण ही तुम सब कुछ त्याग करने के लिए तैयार हो सकते हो। बस, केवल यही बात मैं तुमसे अभी अभी कह रहा था। और पुन तुम्हारे समक्ष मैं इसे दुहराता हूँ—यही तुम लोगो का जीवन-व्रत है और यही मेरा भी जीवन-व्रत है। तुम चाहे किसी भी दार्शनिक मत का अवलम्बन क्यो न करो, मैं यहाँ पर केवल यही प्रमाणित करना चाहता हूँ कि सारे भारत मे मानव जाति की पूर्णता मे अनन्त विश्वासरूप प्रेम-सूत्र ओतप्रोत भाव से विद्यमान है। मैं चाहता हूँ कि इस विश्वास का सारे भारत मे प्रचार हो।

वाला जीवन मर भीक माँगता रहे ता क्या यहाँ पर मित्रता स्थापित हो सकती है? ये सब बातें कह देना बहुत आसान है पर मेरा तात्पर्य यह है कि पारस्परिक सहयोग के बिना हम लोग कभी शक्तिसम्पन्न नहीं हो सकते। इसीलिए मैं तुम लोगों को भिन्नमार्गों की तरह यहाँ परमाचार्य के रूप में ईश्वर और अमेरिका जाति दोनों में जाने के लिए कह रहा हूँ। हमें अपने सामर्थ्य के अनुसार विनिमय के निमम का प्रयोग करना होगा। यदि हमें इस लोक में सुखी रहने के उपाय सीखते हैं तो हम भी उसके बचसे में क्यों न उन्हें समस्त काम तक सुखी रहने के उपाय बतायें?

सर्वोपरि, समग्र मानव जाति के कल्याण के लिए कार्य करते रहो। तुम एक संकीर्ण मेरे के अन्दर बँधे रहकर अपने को 'बुद्ध' हिन्दू समझने का जो गर्व करते हो उसे छोड़ दो। मृत्यु सबके लिए राह बेस रही है और इसे कभी मठ भूको जो सर्वाधिक अद्भुत ऐतिहासिक सत्य है कि संसार की सब जातियों को भारतीय साहित्य में निबद्ध सनातन सत्यसमूह को सीखने के लिए बँधे जाय्य कर भारत के चरणों के समीप बँटना पड़ेगा। भारत का विनाश नहीं है चीन का भी नहीं है और जापान का भी नहीं। अतएव हमें अपने बर्मस्वी मेस्वब की बात को सर्वथा स्मरण रखना होगा और ऐसा करने के लिए हमें रास्ता बताने के लिए एक पत्रप्रदर्शक की आवश्यकता है—यह रास्ता जिसके विषय में मैं अभी तुम लोगों से कह रहा हूँ। यदि तुम लोगों में कोई ऐसा व्यक्ति हो जो यह विश्वास न करता हो यदि हमारे यहाँ कोई ऐसा हिन्दू बासक हो जो यह विश्वास करने के लिए उद्यत न हो कि हमारा बर्म पूर्णतः आध्यात्मिक है तो मैं उसे हिन्दू मानने को तैयार नहीं हूँ। मुझे याद है, एक बार काश्मीर राज्य के किसी गाँव में मैंने एक बूढ़ी औरत से बातचीत करते समय पूछा था 'तुम किस बर्म की मानती हो?' इस पर बूढ़ा ने उपाक से जबाब दिया था "ईश्वर की बर्मबाव उसकी कृपा से मैं मुसलमान हूँ। इसके बाद किसी हिन्दू से भी यही प्रश्न पूछा तो उसने साधारण ढंग से कह दिया "मैं हिन्दू हूँ। कठोपनिषद् का यह महावाक्य स्मरण आता है—'अज्ञा' या अद्भुत विश्वास। तबिलेता के जीवन में अज्ञा का एक सुन्दर दृष्टान्त दिखायी देता है। इस अज्ञा का प्रचार करना ही मेरा जीवनोद्देश्य है। मैं तुम लोगों से फिर एक बार कहना चाहता हूँ कि यह अज्ञा ही मानव जाति के जीवन का और संसार के सब बर्मों का महत्त्वपूर्ण अंग है। सबसे पहले अपने आप पर विश्वास करने का बन्धास करो। यह जान लो कि कोई आदर्श छोटे से बाल-बुद्ध के बराबर ही सकता है और इससे व्यक्ति पर्वताकार तरंग के समान बढ़ा। पर उस छोटे बाल-बुद्ध और पर्वताकार तरंग दोनों के ही पीछे अमल समुद्र है। अतएव सबका जीवन जासाय्य है सबके लिए मुक्ति का रास्ता खुला हुआ है और सभी

अत्यन्त अंकिचन अश हो, इसीलिए केवल इस तुच्छ स्वय के अम्युदयार्थ यत्न करने की अपेक्षा यह श्रेष्ठ है कि तुम अपने करोडो भाइयो की सेवा करते रहो।

सर्वत पाणिपाद तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।  
सर्वत श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥  
(गीता १३।१३)

—‘सर्वत्र उसके हाथ और पैर हैं, सर्वत्र उसके नेत्र, शिर और मुख हैं तथा लोक में सर्वत्र उसके कान हैं। वह ईश्वर सर्वव्यापी होकर सर्वत्र विद्यमान है।’

इस प्रकार धीरे धीरे भृत्यु को प्राप्त हो जाओ। ऐसी ही मृत्यु में स्वर्ग है, उसीमें सारी भलाई है। और इसके विपरीत समस्त अमगल तथा नरक है।

अब हमें यह विचार करना चाहिए कि किन उपायो अथवा साधनो द्वारा हम इन आदर्शों को कार्यरूप में परिणत कर सकते हैं। सबसे पहले हमें यह समझ लेना चाहिए कि हमारा आदर्श ऐसा न हो जो असम्भव हो। अत्यन्त उच्च आदर्श रखने में एक बुराई यह है कि उससे राष्ट्र कमजोर हो जाता है तथा धीरे धीरे गिरने लगता है। यही हाल बौद्ध तथा जैन सुधारो के बाद हुआ। परन्तु साथ ही हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि अत्यधिक व्यावहारिकता भी ठीक नहीं है, क्योंकि यदि तुममें थोड़ी भी कल्पना-शक्ति नहीं है, यदि तुम्हारे पथ-प्रदर्शन के लिए तुम्हारे सामने कोई भी आदर्श नहीं है, तो तुम निरे जगली ही हो। अतएव हमें अपने आदर्श को कभी नीचा नहीं करना चाहिए और साथ ही यह भी न होना चाहिए कि हम व्यावहारिकता को बिल्कुल भूल बैठें। इन दो ‘अतियों’ से हमें बचना चाहिए। हमारे देश में तो प्राचीन पद्धति यह है कि हम एक गुफा में बैठ जायें, वही ध्यान करें और बस वही मर जायें, परन्तु मुक्ति-लाभ के लिए यह गलत सिद्धान्त है कि हम दूसरो से आगे ही बढ़ते चले जायें। आगे या पीछे साधक को यह समझ लेना चाहिए कि यदि वह अपने अन्य भाइयो की मुक्ति के लिए भी यत्न नहीं करता है तो उसे मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती। अतएव तुम्हें इस बात का यत्न करना चाहिए कि तुम्हारे जीवन में उच्च आदर्श तथा उत्कृष्ट व्यावहारिकता का सुन्दर सामजस्य हो। तुम्हें इस बात के लिए तैयार होना चाहिए कि एक क्षण तो तुम पूर्ण रूप से ध्यान में मग्न हो सको, पर दूसरे ही क्षण (मठ के चरागाह की भूमि की ओर इशारा करके स्वामी जी ने कहा) इन खेतों को जोतने के लिए उद्यत हो जाओ। अभी तुम इस बात के योग्य बनो कि शास्त्रो की कठिन गुत्थियों को स्पष्ट रूप से समझा सको, पर दूसरे ही क्षण उमी उत्साह से इन खेतों की फसल को ले जाकर बाजार में भी बेच सको। छोटे से छोटे सेवा-टहल के कार्य



## सन्यास उसका आदर्श तथा साधन

१९ जून सन् १८९९ को जब स्वामी जी बृषटी बार पारब्राह्म्य देवों को जाने लगे उस अवसर पर विशारि के उपरुक्ष्य में बेल्गु मठ के युवा संन्यासियों ने उन्हें एक मानपत्र दिया। उसके उत्तर में स्वामी जी ने जो कहा था उसका सारांश निम्नलिखित है

### स्वामी जी का भाषण

महं समय लम्बा मानपत्र देने का नहीं है, परन्तु संक्षेप में मैं कुछ उन बातों की बर्णना करूँगा जिनका तुम्हें आचरण करना चाहिए। पहले हमें अपने आदर्श की सही भाँति समझ लेना चाहिए और फिर उन साधनों को भी जानना चाहिए, जिनके द्वारा हम उसको अर्पित कर सकते हैं। तुम लोगों में से जो संन्यासी हैं उन्हें सर्वत्र दूसरों के प्रति मलाई करते रहने का मूल्य करना चाहिए, क्योंकि संन्यास का मही अर्थ है। इस समय 'स्वाम' पर भी एक लम्बा मानपत्र देने का अवसर नहीं है, परन्तु संक्षेप में मैं इसकी परिभाषा इस प्रकार करूँगा कि 'स्वाम' का अर्थ है 'मृत्यु के प्रति प्रेम'। सांसारिक जीवन जीना से प्रेम करते हैं, परन्तु संन्यासी के लिए प्रेम करने की मृत्यु है। तो प्रकृत यह उठता है कि क्या फिर हम आत्महत्या कर लें ? नहीं नहीं इससे बहुत दूर। आत्महत्या करनेवालों को मृत्यु तो कभी प्यारी नहीं होती क्योंकि यह बहुत बुरा देखा गया है कि कोई मनुष्य आत्महत्या करने जाता है और यदि वह अपने मूल में असफल रहता है तो बुद्धि फिर वह उसका कभी नाम भी नहीं लेता। तो फिर प्रकृत यह है कि मृत्यु के लिए प्रेम कैसा होता है ?

हम यह निश्चित जानते हैं कि हम एक न एक दिन अवश्य मरेंगे और जब ऐसा है तो फिर किसी उत्कार्य के लिए ही हम क्यों न मरें ! हमें चाहिए कि हम अपने सारे कार्यों को बैठे खाना-पीना पीना चठना बैठना आदि सभी—आत्म त्याग की ओर लगा दें। भोजन द्वारा तुम अपने शरीर को पुष्ट करते हो परन्तु उससे क्या काम हुआ यदि तुमने उस शरीर को दूसरों की मलाई के लिए अर्पण न किया ? इसी प्रकार तुम पुस्तकें पढ़कर अपने मस्तिष्क को पुष्ट करते हो परन्तु उससे भी कोई काम नहीं यदि समस्त संसार के हित के लिए तुमने उस मस्तिष्क को सेवा कर आत्म-त्याग न किया। चूँकि सारा संसार एक है और तुम इसके एक

## मैंने क्या सीखा ?

(ढाका में मार्च, सन् १९०१ में दिया गया व्याख्यान)

ढाका में स्वामी जी ने दो भाषण अंग्रेजी में दिये। प्रथम भाषण का विषय था, 'मैंने क्या सीखा ?' और द्वितीय का विषय था, 'वह धर्म जिसमें हम पैदा हुए।' बंगला भाषा में एक शिष्य ने प्रथम भाषण की जो रिपोर्ट ली, उसमें व्याख्यान का सारांश आ गया है और उसीका हिन्दी रूपान्तर निम्नलिखित है

### स्वामी जी का भाषण

सर्वप्रथम मैं इस बात पर हर्ष प्रकट करता हूँ कि मुझे पूर्वी बंगाल में आने और देश के इस भाग की सविशेष जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिला। यद्यपि मैं पश्चिम के बहुत से सम्य देशों में घूम चुका हूँ, पर अपने देश के इस भाग के दर्शन का सौभाग्य मुझे नहीं मिला था। अपनी ही जन्मभूमि बंगाल के इस अचल की विशाल नदियों, विस्तृत उपजाऊ मैदानों और रमणीक ग्रामों का दर्शन पाने पर मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। मैं नहीं जानता था कि इस देश के जल और स्थल सभी में इतना सौन्दर्य तथा आकर्षण भरा पड़ा है। किन्तु नाना देशों के भ्रमण से मुझे यह लाभ हुआ है कि मैं विशेष रूप से अपने देश के सौन्दर्य का मूल्यांकन कर सकता हूँ।

इसी भाँति मैं पहले धर्म-जिज्ञासा से नाना सम्प्रदायों में—अनेक ऐसे सम्प्रदायों में जिन्होंने दूसरे राष्ट्रों के भावों को अपना लिया है—भ्रमण करता था, दूसरों के द्वार पर भिक्षा माँगता था। तब मैं जानता न था कि मेरे देश का धर्म, मेरी जाति का धर्म इतना सुन्दर और महान् है। कई वर्ष हुए मुझे पता लगा कि हिन्दू धर्म ससार का सर्वाधिक पूर्ण सन्तोषजनक धर्म है। अतः मुझे यह देखकर हार्दिक चलेस होता है कि यद्यपि हमारे देशवासी अप्रतिम धर्मनिष्ठ होने का दावा करते हैं, पर हमारे इस महान् देश में यूरोपीय ढंग के विचार फैलने के कारण उनमें धर्म के प्रति व्यापक उदासीनता आ गयी है। हाँ, यह बात जरूर है और उससे मैं भली भाँति अवगत हूँ कि उन्हें जिन भौतिक परिस्थितियों में जीवन-यापन करना पड़ता है, वे प्रतिकूल हैं।

के लिए भी तुम्हें उद्यत रहना चाहिए और वह भी केवल यही नहीं बरए सर्वत्र।

अब दूसरी बात जो ध्यान में रखने योग्य है वह यह है कि इस मनु का उद्देश्य है 'मनुष्य' का निर्माण करना। तुम्हें केवल यही नहीं सीखना चाहिए, जो हमें ऋषियों ने सिखाया है। वे ऋषि अपने मने और उनकी सम्मतियाँ भी ऊर्ध्वकि साधन बनी गयीं। अब तुम्हें स्वयं ऋषि बनना होगा। तुम भी जैसे ही मनुष्य हो जैसे कि बड़े से बड़े व्यक्ति जो कभी पैदा हुए, यहाँ तक कि तुम अबतारों के सङ्घ हो। केवल प्रार्थनों के पढ़ने से ही क्या होगा? केवल ध्यान-धारणा से भी क्या होगा तथा केवल मंत्र-तंत्र भी क्या कर सकते हैं? तुम्हें तो अपने ही पैरों पर खड़े होना चाहिए और इस मने ङंग से कार्य करना चाहिए—वह ङंग जिससे मनुष्य 'मनुष्य' बन पाता है। सच्चा 'मन' यही है जो इतना क्षणिकाली हो अतनी क्षणिक स्वयं है, परन्तु फिर भी जिसका हृदय एक मारी के सङ्घ कोमल हो। तुम्हारे चारों ओर जो करोड़ों व्यक्ति हैं उनके लिए तुम्हारे हृदय में प्रेम जाग होना चाहिए, परन्तु साध ही तुम जोड़े के समान बड़ और कठोर बने रहो पर ध्यान रहे कि साध ही तुममें आशा-वासना की ममता भी हो। मैं जानता हूँ कि ये मुझ एक दूसरे के विरोधी प्रतीत होते हैं, परन्तु हाँ ऐसे ही परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवासे पुण तुममें होने चाहिए। यदि तुम्हारे परिच्छ तुम्हें इस बात की आज्ञा है कि तुम नहीं में खूब पढ़ो और एक मन्त्र को पकड़ लो तो तुम्हारा कर्तव्य यह होना चाहिए कि पहले तुम आशा-वासना करो और फिर कारण पूछो। भले ही तुम्हें भी हुई आज्ञा ठीक न हो परन्तु फिर भी तुम पहले उसका पालन करो और फिर उसका प्रतिपाद करो। हमारे सम्प्रदायों में विशेषकर बंगीय सम्प्रदायों में एक विशेष बोध यह है कि यदि किसीके मत में कुछ अन्तर होता है तो बिना कुछ सोचे-विचारे वह सट से एक नया सम्प्रदाय शुरू कर देता है। चौड़ा सा भी स्कन्दे का सतमें बीरज नहीं होता। अतएव अपने संघ के प्रति तुममें अदृष्ट मन्त्र तथा विश्वास होना चाहिए। यहाँ अज्ञान को तनिक भी स्थान नहीं मिल सकता और यदि कहीं वह दिखायी दे तो निर्यतापूर्वक उसे कुचलकर नष्ट कर लो। हमारे इस संघ में एक ही अज्ञानकारी सदस्य नहीं रहे सकता और यदि कोई हो तो उसे निकाल बाहर करो। हमारे इस सिबिर में शशास्त्री नहीं बल सकती यहाँ एक ही बीजेबाज नहीं रहे सकता। इतने स्वतंत्र रहो अतनी कामु, पर हाँ साध ही ऐसे अज्ञानपालक तथा नम्र वीसा कि यह पीना या कुता।

और मिश्या है। लाख यत्न करो, पर इसे बिना छोड़े कदापि ईश्वर को नहीं पा सकते। यदि यह न कर सको तो मान लो कि तुम दुर्बल हो, किन्तु स्मरण रहे कि अपने आदर्श को कदापि नीचा न करो। सड़ते हुए मुर्दे को सोने के पत्ते से ढकने का यत्न न करो।' अस्तु। उनके मतानुसार यदि धर्म की उपलब्धि करनी है, यदि ईश्वर की प्राप्ति करनी है तो तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है कि तुम लुकाछिपी का खेल खेलना छोड़ दो। मैंने क्या सीखा ? मैंने इस प्राचीन सम्प्रदाय से क्या सीखा ? यही सीखा

दुर्लभ त्रयमेवैतत् देवानुग्रहेतुकम् ।  
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसश्रयः ॥  
(विवेकचूडामणि ३)

—'मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व और महापुरुष का ससर्ग इन तीनों का मिलना बहुत दुर्लभ है। ये तीनों बिना ईश्वर की कृपा के नहीं मिल सकते।' मुक्ति के लिए सबसे आवश्यक वस्तु है—मनुष्यत्व या मनुष्य के रूप में जन्म, क्योंकि मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य-शरीर ही उपयुक्त है। इसके बाद चाहिए मुमुक्षुत्व। सम्प्रदाय और व्यक्ति-भेद से हमारी साधन प्रणालियाँ भिन्न भिन्न हैं। विभिन्न व्यक्ति यह भी दावा कर सकते हैं कि ज्ञानोपार्जन के उनके विशेष अधिकार एव साधन हैं और जीवन में श्रेणी-भेद के कारण उनमें भी विभेद है, किन्तु यह निःसर्कोच कहा जा सकता है कि मुमुक्षुत्व के बिना ईश्वरोपलब्धि असम्भव है। मुमुक्षुत्व क्या है ? इस ससार के सुख-दुःख से छुटकारा पाने की तीव्र इच्छा, इस ससार से प्रबल निर्वेद। जिस समय भगवान् के दर्शन के लिए यह तीव्र व्याकुलता होगी उसी समय समझना कि तुम ईश्वर-प्राप्ति के अधिकारी हुए हो।

इसके बाद चाहिए ब्रह्मदर्शी महापुरुष का सग अर्थात् गुरु-लाभ। गुरु-परम्परा से बिना क्रमभंग के जो शक्ति प्राप्त होती है, उसीके साथ अपना सयोग स्थापित करना होगा, क्योंकि वैराग्य और तीव्र मुमुक्षुत्व रहने पर भी उसके बिना कुछ न हो सकेगा। शिष्य को चाहिए कि वह अपने गुरु को परामर्शदाता, दार्शनिक, सुहृद् और पथप्रदर्शक के रूप में अंगीकार करे। गुरु करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मविस्तम । (विवेकचूडामणि ३३)

—'जिसे वेदों का रहस्य-ज्ञान है, जो निष्पाप है, जिसे कोई इच्छा न हो, जो ब्रह्म-ज्ञानियो में श्रेष्ठ हो अर्थात् श्रोत्रिय हो, जो केवल शास्त्रों का पठित ही न हो, वरन् उनके सूक्ष्म रहस्यों का भी ज्ञाता हो और जिसे शास्त्रों के वास्तविक तात्पर्य का बोध हो'—वही गुरु होने योग्य है। 'विविध शास्त्रों को पढ़ने मात्र से तो

वर्तमान काल में हम लोगों के बीच ऐसे कुछ सुधारक हैं जो हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के लिए हमारे धर्म में सुधार या यों कहिए कि उलट-पलट करना चाहते हैं। निस्सन्देह उन लोगों में कुछ विचारशील व्यक्ति हैं लेकिन साथ ही ऐसे बहुत से लोग भी हैं जो अपने उद्देश्य को बिना जाने दूसरों का अन्याय करने करते हैं और अत्यन्त भ्रूषणपूर्ण कार्य करते हैं। इस वर्ग के सुधारक हमारे धर्म में विवादास्पद विचारों का प्रवेश करने में बड़ा उत्साह दिखाते हैं। यह सुधारक धर्म भूति-भूषा का विरोधी है। इस वर्ग के सुधारक कहते हैं कि हिन्दू धर्म सच्चा धर्म नहीं है क्योंकि इसमें भूति-भूषा का विधान है। भूति-भूषा क्या है? यह अच्छी है या बुरी—इसका अनुसन्धान कोई नहीं करता केवल दूसरों के इच्छारे पर वे हिन्दू धर्म को बर्णना करने का साहस करते हैं। एक दूसरा धर्म और भी है जो हिन्दुओं के प्रत्येक रीति-रिवाजों में वैज्ञानिकता ईश्वर-निकात्मन का लक्षण प्रयत्न करता है। वे सदा विद्युत्-शक्ति बुम्बकीय शक्ति वायु-कम्पन तथा उसी तरह की अन्य बस्तु किये करते हैं। कौन कह सकता है कि वे छोय एक दिन ईश्वर की परिभाषा करने में उसे विद्युत्-कम्पन का समूह न कह सकें। जो कुछ भी ही मैं इनका भी भ्रम करे! जगदम्बा ही निम्न निम्न प्रकृतियों और प्रकृतियों के द्वारा अपना कार्य साधन करती हैं।

उक्त विचारवालों के विपरीत एक और वर्ग है, यह प्राचीन धर्म कहता है कि हम लोग तुम्हारी बात की बाक निकालनेवाला उर्ध्ववाद नहीं जानते और न हमें जानने की इच्छा ही है। हम लोग तो ईश्वर और आत्मा का साक्षात्कार करना चाहते हैं। हम सुप्त-सुषुप्त अवस्था में संसार को छोड़कर इसके अतीत प्रदेश में जहाँ परम आनन्द है, जाना चाहते हैं। यह धर्म कहता है कि 'सर्वस्वप्राप्त पंथा-त्याग करने से मुक्ति होती है। शिव राम विष्णु आदि किसी एक में ईश्वर-बुद्धि रखकर यज्ञ-यज्ञपूर्वक उपासना करने से मुक्ति होती है। मुझे धर्म है कि मैं इन कुछ आस्थावालों के प्राचीन धर्म का हूँ।

इसके अतिरिक्त एक और वर्ग है जो ईश्वर और संसार दोनों की एक साथ ही उपासना करने के लिए कहता है। यह सच्चा नहीं है। वे जो कहते हैं वह उनके हृदय का भाव नहीं होता। प्रकृत महात्माओं का उद्देश्य है

जहाँ राम तहाँ काम नहीं जहाँ काम तहाँ राम।

शुभ्रती कबहूँ होत नहि रवि रजनी इक ठाम ॥

महापुरुषों की वाणी हमसे इस बात की बोधना करती है कि 'यदि ईश्वर को जानना चाहते हैं, तो काम-निराजन का त्याग करना हीना। यह संसार असार, मायावय

और मिथ्या है। लाख यत्न करो, पर इसे बिना छोड़े कदापि ईश्वर को नहीं पा सकते। यदि यह न कर सको तो मान लो कि तुम दुर्बल हो, किन्तु स्मरण रहे कि अपने आदर्श को कदापि नीचा न करो। सड़ते हुए मुर्दे को सोने के पत्ते से ढकने का यत्न न करो।' अस्तु। उनके मतानुसार यदि धर्म की उपलब्धि करनी है, यदि ईश्वर की प्राप्ति करनी है तो तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है कि तुम लुकाछिपी का खेल खेलना छोड़ दो। मैंने क्या सीखा ? मैंने इस प्राचीन सम्प्रदाय से क्या सीखा ? यही सीखा

दुर्लभं त्रयमेवैतत् देवानुग्रहेतुकम् ।  
मनुष्यत्व मुमुक्षुत्व महापुरुषसश्रय' ॥  
(विवेकचूडामणि ३)

—'मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व और महापुरुष का ससर्ग इन तीनों का मिलना बहुत दुर्लभ है। ये तीनों बिना ईश्वर की कृपा के नहीं मिल सकते।' मुक्ति के लिए सबसे आवश्यक वस्तु है—मनुष्यत्व या मनुष्य के रूप में जन्म, क्योंकि मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य-शरीर ही उपयुक्त है। इसके बाद चाहिए मुमुक्षुत्व। सम्प्रदाय और व्यक्ति-भेद से हमारी साधन प्रणालियाँ भिन्न भिन्न हैं। विभिन्न व्यक्ति यह भी दावा कर सकते हैं कि ज्ञानोपार्जन के उनके विशेष अधिकार एव साधन हैं और जीवन में श्रेणी-भेद के कारण उनमें भी विभेद है, किन्तु यह निःसर्ग कहा जा सकता है कि मुमुक्षुत्व के बिना ईश्वरोपलब्धि असम्भव है। मुमुक्षुत्व क्या है ? इस ससार के सुख-दुःख से छुटकारा पाने की तीव्र इच्छा, इस ससार से प्रबल निर्वेद। जिस समय भगवान् के दर्शन के लिए यह तीव्र व्याकुलता होगी उसी समय समझना कि तुम ईश्वर-प्राप्ति के अधिकारी हुए हो।

इसके बाद चाहिए ब्रह्मदर्शी महापुरुष का सग अर्थात् गुरु-लाभ। गुरु-परम्परा से बिना क्रमभंग के जो शक्ति प्राप्त होती है, उसीके साथ अपना सयोग स्थापित करना होगा, क्योंकि वैराग्य और तीव्र मुमुक्षुत्व रहने पर भी उसके बिना कुछ न हो सकेगा। शिष्य को चाहिए कि वह अपने गुरु को परामर्शदाता, दार्शनिक, सुहृद् और पथप्रदर्शक के रूप में अंगीकार करे। गुरु करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मवित्तम । (विवेकचूडामणि ३३)

—'जिसे वेदों का रहस्य-ज्ञान है, जो निष्पाप है, जिसे कोई इच्छा न हो, जो ब्रह्म-ज्ञानियों में श्रेष्ठ हो अर्थात् श्रोत्रिय हो, जो केवल शास्त्रों का पंडित ही न हो, वरन् उनके सूक्ष्म रहस्यों का भी ज्ञाता हो और जिसे शास्त्रों के वास्तविक तात्पर्य का बोध हो'—वही गुरु होने योग्य है। 'विविध शास्त्रों को पढ़ने मात्र से तो

वे बस पीते बन गये हैं। उस व्यक्ति को वास्तविक पब्लि समझना चाहिए जिसने सास्त्रों का केवल एक अक्षर पढ़कर (बिना) प्रेम का काम कर लिया।<sup>१</sup> केवल पीपी ज्ञान से पब्लि हुए लोगों से काम न चलेगा। आवश्यक प्रत्येक व्यक्ति मुक्त बनना चाहता है। अंगारक मिथुन काय स्वयं का काम करना चाहता है। तो मुक्त बनना ही ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसे पाप छू टक न गया हो जो अज्ञानमय हो अर्थात् जो कामनाओं से सन्तप्त न हो विसुद्ध परोपकार के सिवा जिसका दूसरा कोई इरादा न हो जो अहंशुक्त इयाचित्त्व हो और जो नाम-व्यय के लिए अथवा किसी स्वार्थ-सिद्धि के लिए अर्थात्प्रेषण न करता हो। जो ब्रह्म की सही भाँति जान चुका है अर्थात् जिसने ब्रह्म-साक्षात्कार कर लिया है, जिसके लिए ईश्वर 'कच्छता-मच्छकब्ध' है—भूति का कहना है कि यही मुक्त होने योग्य है। जब यह आध्यात्मिक संयोग स्थापित हो जाता है तब ईश्वर का साक्षात्कार होता है—तब ईश्वर-दृष्टि सुलभ होती है।

मुक्त से बीसा सेने के पश्चात् सर्वान्वेषी साधक के लिए आवश्यकता पड़ती है अभ्यास की। मुक्तपब्लिष्ट साधनों के सहारे इष्ट के निरन्तर ध्यान द्वारा सत्य का कार्यरूप में परिणत करने के सच्चे और बारंबार प्रयास को अभ्यास कहते हैं। मनुष्य ईश्वर प्राप्ति के लिए चाहे कितना ही व्याकुल क्यों न हो चाहे कितना ही अज्ञान मुक्त क्यों न मिले साधना—अभ्यास बिना किमं उक्त कभी ईश्वरोपभक्ति न होगी। जिस समय अभ्यास शुरू हो जायगा उसी समय ईश्वर प्रत्यक्ष हीपा।

इसीलिए कहता हूँ कि हे हिन्दुओं हे आर्य सन्तानों तुम लोग हमारे धर्म के हिन्दुओं के इस महान् आदर्श को कभी न भूलो। हिन्दुओं का प्रयास स्वयं इन भक्तसागर के पार जाना है—कमल इसी संसार को छोड़ना होगा ऐसा नहीं है अपितु स्वयं को भी छोड़ना पड़ेगा—अनुभ के ही छोड़ने से काम नहीं चलना धूम का भी त्याग आवश्यक है और इसी प्रकार सृष्टि-संसार बुरा-बला इन सबके अतीत होना होगा और अन्ततोगत्वा सच्चिदानन्द ब्रह्म का साक्षात्कार करना होगा।

१ पीपी बड़ तुनी बयो, बँटिन भया न बयो।  
अक्षर एक जो प्रेम से बड़े तो पब्लि होय ॥

## वह धर्म जिसमें हम पैदा हुए

३१ मार्च, १९०१ को ढाका में एक सभा का आयोजन खुले मैदान में किया गया था। स्वामी जी ने इस सभा में उपर्युक्त विषय पर अंग्रेजी में दो घण्टे व्याख्यान दिया। श्रोताओं की बहुत बड़ी भीड़ एकत्र थी। एक शिष्य ने उक्त भाषण की रिपोर्ट बंगला में तैयार की, जिसका हिन्दी रूपान्तर निम्नलिखित है

प्राचीन काल में हमारे देश में आध्यात्मिक भाव की अतिशय उन्नति हुई थी। हमें आज वही प्राचीन गाथा स्मरण करनी होगी। किन्तु प्राचीन गौरव के अनुचिन्तन में सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि हम कोई नवीन काम करना पसन्द नहीं करते और केवल अपने प्राचीन गौरव के स्मरण और कीर्तन से ही सन्तुष्ट होकर अपने को सर्वश्रेष्ठ समझने लग जाते हैं। हमें इस सम्बन्ध में सावधान रहना चाहिए। यह सही है कि प्राचीन काल में ऐसे अनेक ऋषि-महर्षि थे जिन्हें सत्य का साक्षात्कार हुआ था। किन्तु प्राचीन गौरव के स्मरण से वास्तविक उपकार तभी होगा, जब हम भी उनके सदृश ऋषि हो सकें। केवल इतना ही नहीं, मेरा तो दृढ विश्वास है कि हम और भी श्रेष्ठ ऋषि हो सकेंगे। भूतकाल में हमारी खूब उन्नति हुई थी—मुझे उसे स्मरण करते हुए बड़े गौरव का अनुभव होता है। वर्तमान अवनत अवस्था को देखकर भी मैं दुःखी नहीं होता और भविष्य में जो होगा, उसकी कल्पना कर मैं आशान्वित होता हूँ। ऐसा क्यों? क्योंकि मैं जानता हूँ कि बीज का सम्पूर्ण रूपान्तरण होना होता है, हाँ, जब बीज का बीजत्व भाव नष्ट होगा, तभी वह वृक्ष हो सकेगा। इसी प्रकार हमारी वर्तमान अवनत अवस्था के भीतर ही, चाहे थोड़े समय के लिए ही, भविष्य की हमारी धार्मिक महानता की सम्भावनाएँ प्रसुप्त हैं जो अधिक शक्तिशाली एवं गौरवशाली रूपों में उठ खड़ी होने के लिए तत्पर हैं। अब हमें विचार करना चाहिए कि जिस धर्म में हमने जन्म लिया है, उसमें सहमत होने के लिए समान भूमियाँ क्या हैं? ऊपर से विचार करने पर हमें पता चलता है कि हमारे धर्म में नाना प्रकार के विरोध हैं। कुछ लोग अद्वैतवादी, कुछ विशिष्टा-द्वैतवादी और कुछ द्वैतवादी हैं। कोई अवतार मानते हैं, कोई मूर्ति-पूजा में विश्वास रखते हैं तो कोई निराकारवादी हैं। आचार के सम्बन्ध में भी नाना प्रकार की विभिन्नता दिखायी पड़ती है। जाट लोग मुसलमान या ईसाई की कन्या से विवाह करने पर भी जातिच्युत नहीं होते। वे बिना किसी विरोध के सब हिन्दू मन्दिरों



में प्रवेश कर सकते हैं। पंजाब के अनेक गाँवों में जो व्यक्ति सूबर का मांस नहीं खाता उसे लोग हिन्दू समझते ही नहीं। नेपाल में ब्राह्मण जातों वनों में विवाह कर सकता है, जब कि बंगाल में ब्राह्मण अपनी जाति की अन्य शाखाओं में भी विवाह नहीं कर सकता। इसी प्रकार की और भी विभिन्नताएँ देखने में आती हैं। किन्तु इन सभी विभिन्नताओं के बावजूद एकता का एक समान बिन्दु है कि हमारे धर्म के अन्तर्निर्माणों में भी एकता की एक समान भूमि है जैसे कोई भी हिन्दू गोमांस भक्षण नहीं करता। इसी प्रकार हमारे धर्म के सभी अन्तर्भागों में एक महान् सामंजस्य है।

पहले तो शास्त्रों की व्याख्यानना करते समय एक महत्त्वपूर्ण तथ्य हमारे सामने आता है कि केवल उन्हीं धर्मों ने उत्तरोत्तर उत्पत्ति की जिनके पास अपने एक या अनेक शास्त्र थे फिर चाहे उन पर कितने ही अत्याचार किये गये हों। मुताबिक धर्म अपनी विशिष्ट सुन्दरताओं के होते हुए भी शास्त्र के अभाव में लुप्त हो गया जब कि पृथ्वी धर्म यदि धर्म-ग्रन्थ (Old Testament) के अभाव में आज भी अस्तित्व से प्रतापवादी है। संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद पर आधारित होने के कारण यही हाल हिन्दू धर्म का भी है। वेद के दो भाग हैं—कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। भारतवर्ष के अध्यात्म अथवा धुर्मिष्ठ से कर्मकाण्ड का भाष्यकाल कोप हो गया है, हालाँकि अस्मिन् में अब भी कुछ ब्राह्मण कमी कमी अज्ञान-बलि देकर यज्ञ करते हैं, और हमारे विवाह-आहुतियों के अन्तर्ग में भी वैदिक क्रियाकाण्ड का आनास विद्यमान पद आता है। इस समय उसे पूर्व की भाँति पुनः प्रतिष्ठित करने का उपाय नहीं है। कुमारिल भट्ट ने एक बार चेष्टा की थी किन्तु वे अपने प्रमत्त में अक्षरक ही रहे। इसके बाद ज्ञानकाण्ड है, जिसे उपनिषद्, वेदान्त या मुक्ति भी कहते हैं। आचार्य कोमल जब कभी मुक्ति का कोई वाक्य उद्धृत करते हैं तो वह उपनिषद् का ही होता है। यही वेदान्त धर्म इस समय हिन्दुओं का धर्म है। यदि कोई सम्प्रदाय सिद्धान्तों की दृष्टि प्रकट करना चाहता है तो उसे वेदान्त का ही आचार लेना होगा। ईश्वरीय अथवा अद्वैतवादी सभी को उसी आचार की धारणा लेनी हीनी। यहाँ तक कि वैष्णवों को भी अपने सिद्धान्तों की सत्ता सिद्ध करने के लिए पोषास्थापनी उपनिषद् की धारणा लेनी पड़ती है। यदि किसी नये सम्प्रदाय को अपने सिद्धान्तों के पुष्टिकारक अथवा उपनिषद् में नहीं मिलते तो वे एक नये उपनिषद् की रचना करके उसे व्यवहृत करने का यत्न करते हैं। अतः मेरे इससे कठिनपण उदाहरण मिलते हैं।

वेदों के सम्बन्ध में हिन्दुओं की यह धारणा है कि वे प्राचीन काल में किसी व्यक्ति विशेष की रचना अथवा ग्रन्थ मान नहीं हैं। वे उसे ईश्वर की अमल

ज्ञानराशि मानते हैं जो किसी समय व्यक्त और किसी समय अव्यक्त रहती है। टीकाकार सायणाचार्य ने एक स्थान पर लिखा है, यो वेदेभ्योऽखिल जगत् निर्ममे— जिसने वेदज्ञान के प्रभाव से सारे जगत् की सृष्टि की है। वेद के रचयिता को कभी किसीने नहीं देखा। इसलिए इसकी कल्पना करना भी असम्भव है। ऋषि लोग उन मन्त्रो अथवा शाश्वत नियमो के मात्र अन्वेषक थे। उन्होंने आदि काल से स्थित ज्ञानराशि वेदो का साक्षात्कार किया था।

ये ऋषिगण कौन थे ? वात्स्यायन कहते हैं, जिसने यथाविहित धर्म की प्रत्यक्ष अनुभूति की है, केवल वही ऋषि हो सकता है, चाहे वह जन्म से म्लेच्छ ही क्यों न हो। इसी लिए प्राचीन काल में जारज-पुत्र वशिष्ठ, धीवर-तनय व्यास, दासी-पुत्र नारद प्रभृति ऋषि कहलाते थे। सच्ची बात यह है कि सत्य का साक्षात्कार हो जाने पर किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रह जाता। उपर्युक्त व्यक्ति यदि ऋषि हो सकते हैं तो हे आधुनिक कुलीन ब्राह्मण, तुम सभी और भी उच्च ऋषि हो सकते हो। इसी ऋषित्व के लाभ करने की चेष्टा करो, अपना लक्ष्य प्राप्त करने तक रुको नहीं, समस्त ससार तुम्हारे चरणो के सामने स्वयं ही नत हो जायगा।

ये वेद ही हमारे एकमात्र प्रमाण हैं और इन पर सबका अधिकार है।

यथेमा वाच कल्याणीमावादानि जनेभ्यः।

बहुराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥<sup>१</sup>

क्या तुम हमें वेद में ऐसा कोई प्रमाण दिखला सकते हो, जिससे यह सिद्ध हो जाय कि वेद में सबका अधिकार नहीं है ? पुराणों में अवश्य लिखा है कि वेद की अमुक शाखा में अमुक जाति का अधिकार है या अमुक अश सत्ययुग के लिए और अमुक अश कलियुग के लिए है। किन्तु, ध्यान रखो, वेद में इस प्रकार का कोई जिक्र नहीं है, ऐसा केवल पुराणों में ही है। क्या नौकर कभी अपने मालिक को आज्ञा दे सकता है ? स्मृति, पुराण, तन्त्र—ये सब वही तक ग्राह्य हैं, जहाँ तक वे वेद का अनुमोदन करते हैं। ऐसा न होने पर उन्हें अविश्वसनीय मान कर त्याग देना चाहिए। किन्तु आजकल हम लोगो ने पुराणों को वेद की अपेक्षा श्रेष्ठ समझ रखा है। वेदों की चर्चा तो बगाल प्रान्त में लोप ही हो गयी है। मैं वह दिन शीघ्र देखना चाहता हूँ, जिस दिन प्रत्येक घर में गृहदेवता शालग्राम की मूर्ति के साथ साथ वेद की पूजा भी होने लगेगी, जब बच्चे, बूढ़े और स्त्रियाँ वेद-अर्चना का शुभारम्भ करेंगे।

वेदों के सम्बन्ध में पारंपार्य विद्वानों के सिद्धान्तों में मेरा विश्वास नहीं है। आज वेदों का समय वे कुछ निश्चित करते हैं और कस उसे बदलकर फिर एक हजार वर्ष पीछे बसीट से जाते हैं। पुराणों के विषय में हम अगर कह जायें कि वे वहीं तक प्रायः हैं, वहाँ तक वेदों का समर्पण करते हैं। पुराणों में ऐसी अनेक बातें हैं जिनका वेदों के साथ मेल नहीं खाता। उदाहरण के लिए पुराण में लिखा है कि कोई व्यक्ति उस हजार वर्ष तक और कोई दूसरे बीस हजार वर्ष तक जीवित रहे किन्तु वेदों में लिखा है—अथामूर्धं पुरुषः। इनमें से हमारे लिए कौन सा मत स्वीकार्य है? निश्चय ही वेद। इस प्रकार के कथनों के बावजूद भी पुराणों की निन्दा नहीं करता। उनमें योग, भक्ति, ज्ञान और कर्म की अनेक सुन्दर सुन्दर बातें बहने में आती हैं और हमें उन सभी को ग्रहण करना ही चाहिए। इसके बाद है तन्त्र। तन्त्र का वास्तविक अर्थ है सास्त्र जैसे कापिस तन्त्र। किन्तु तन्त्र सब प्रायः सीमित अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। बौद्ध धर्मविद्वान्नी एवं अहिंसा के प्रचारक-प्रसारक गुप्तियों के घासन-काल में वैदिक धर्म-मन्त्रों का कोप हो गया। तब राजवंश के समय से कोई जीव हिंसा नहीं कर सकता था। किन्तु कालान्तर में बौद्ध धर्म में ही इन धर्म-मन्त्रों के श्रेष्ठ अर्थ गुप्त रूप से सम्मिश्रित हो गये। इसीसे तन्त्रों की उत्पत्ति हुई। तन्त्रों में सामाजिक प्रभुत्व बहुत से अर्थ द्वारा होने पर भी तन्त्रों को सोय जितना खराब समझते हैं, वे उतने खराब नहीं हैं। उनमें वेदान्त सम्प्रदायी कुछ उन्नत एवं सूक्ष्म विचार निहित हैं। वास्तविक बात तो यह है कि वेदों के ब्राह्मण भाग को ही कुछ परिवर्तित कर तन्त्रों में समाहित कर दिया गया था। वर्तमान काल की पूजा विधियाँ और उपासना पद्धति तन्त्रों के अनुसार होती हैं।

अब हमें अपने धर्म के सिद्धान्तों पर भी जोड़ा विचार करना चाहिए। हमारे धर्म के सम्प्रदायों में अनेक विभिन्नताएँ एवं अन्तर्विरोध होते हुए भी एकता के अनेक बीज हैं। प्रथम सभी सम्प्रदाय तीन चीजों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं—ईश्वर, आत्मा और जगत्। ईश्वर वह है, जो अनन्त काल से सम्पूर्ण ब्रह्म का सर्वत्र पालन और संहार करता आ रहा है। सांख्य दर्शन के अतिरिक्त सभी इस सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं। इसके बाद आत्मा का सिद्धान्त और पुनर्जन्म की बात आती है। इसके अनुसार असंख्य जीवात्माएँ बार-बार अपने कर्मों के अनुसार घटित धारण कर जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमती रहती हैं। इसीको संहारबाध या प्रकल्पित रूप से पुनर्जन्मवाद कहते हैं। इसके बाद यह अनादि अनन्त ब्रह्म है। यद्यपि कुछ लोग इन तीनों को विभ्र भिन्न मानते हैं तथा कुछ इन्हें एक ही के भिन्न भिन्न तीन रूप और कुछ अन्य प्रकार से इनका अस्तित्व स्वीकार करते हैं। पर इन तीनों का अस्तित्व वे सभी मानते हैं।

यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि चिर काल से हिन्दू आत्मा को मन से पृथक् मानते आ रहे हैं। पाश्चात्य विद्वान् मन के परे किसी चीज की कल्पना नहीं कर सके। वे लोग जगत् को आनन्दपूर्ण मानते हैं और इसीलिए उसे मौज मारने की जगह समझते हैं। जब कि प्राच्य लोगो की जन्म से ही यह धारणा होती है कि यह ससार नित्य परिवर्तनशील तथा दुःखपूर्ण है। और इसीलिए यह मिथ्या के सिवा कुछ नहीं है और न ही इसके क्षणिक सुखो के लिए आत्मा का घन गँवाया जा सकता है। इसी कारण पाश्चात्य लोग सघबद्ध कर्म मे विशेष पटु है और प्राच्य लोग अन्तर्जगत् के अन्वेषण मे ही विशेष साहस दिखाते हैं।

जो कुछ भी हो, यहाँ अब हमे हिन्दू धर्म की दो एक और बातों पर विचार करना आवश्यक है। हिन्दुओं मे अवतारवाद प्रचलित है। वेदो मे हमे केवल मत्स्यावतार का ही उल्लेख मिलता है। सभी लोग इस पर विश्वास करते हैं या नहीं, यह कोई विचारणीय विषय नहीं है। पर इस अवतारवाद का वास्तविक अर्थ है मनुष्य-पूजा—मनुष्य के भीतर ईश्वर को साक्षात् करना ही ईश्वर का वास्तविक साक्षात्कार करना है। हिन्दू प्रकृति के द्वारा प्रकृति के ईश्वर तक नहीं पहुँचते—मनुष्य के द्वारा मनुष्य के ईश्वर के निकट जाते हैं।

इसके बाद है मूर्ति-पूजा। शास्त्रो मे विहित हर एक शुभ कर्म मे उपास्य पंच देवताओं के अतिरिक्त अन्य देवता केवल उनके द्वारा अधिष्ठित पदों के भिन्न भिन्न नाम मात्र हैं। किन्तु ये पाँचो उपास्य देवता भी उसी एक भगवान् के भिन्न भिन्न नाम मात्र हैं। यह वाह्य मूर्ति-पूजा हमारे सब शास्त्रो मे अवमतम कोटि की पूजा मानी गयी है, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि मूर्ति-पूजा करना गलत है। वर्तमान समय मे प्रचलित इस मूर्ति-पूजा के भीतर नाना प्रकार के कुत्सित भावों के प्रवेश कर लेने पर भी, मैं उसकी निन्दा नहीं कर सकता। यदि उसी कट्टर मूर्ति-पूजक ब्राह्मण (श्री रामकृष्ण) की पद-बूल से मैं पुनीत न बनता तो आज मैं कहाँ होता ?

वे सुचारक जो मूर्ति-पूजा के विरुद्ध प्रचार करते हैं अथवा उसकी निन्दा करते हैं, उनमे मैं कहूँगा कि भाइयो, यदि तुम बिना किसी सहायता के निराकार ईश्वर की उपासना कर सकते हो तो तुम भले ही बैसा करो, किन्तु जो लोग ऐसा नहीं कर सकते हैं, उनकी निन्दा क्यों करते हो ? प्राचीनतम समय का गौरवान्वित स्मृति-चिह्नरूप एक सुन्दर एवं भव्य मकान उपेक्षा या अव्यवहार के कारण जर्जर हो गया है। यह हो सकता है कि उसमे हर कही घूल जमी हुई है, यह भी हो सकता है कि उनके कुछ हिस्से जमीन पर नहंग पड़े हो। पर तुम उसे क्या करोगे ? क्या तुम उसके नफाई-मरम्मत काते उनकी पुगनी धज ठोटा दोगे या उसे, उस उमागत को गिरा कर उसके स्थान पर एक नदिय न्यायित्व वाटे युक्तिम आधुनिक योजना के

अनुसार कोई दूसरी इमारत नहीं कराये ? हमें उनका गुपार करना होता उनके अर्थ हैं उसकी उचित गार्न-अरम्भ करना न कि उसे ध्वस्त कर देना। यही पर सुपार का काम समाप्त हो जाता है। यदि ऐसा कर सकन हो तो करो अम्मा हूर र्छो। पीसोंडार हो जान पर उसकी और क्या आवश्यकता ? किन्तु हमारे देश कि सुपारक एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय का संगठन करना चाहते हैं। तो भी उन्होंने बड़ा कार्य किया है। ईस्वर के आशीर्वाचों की उनके तार पर बर्षा हो। किन्तु तुम लोग अपने की बर्षों महान् समुदाय से पुषद् करना चाहते हो ? किन्तु माय लेने ही से बर्षों अगिजत होते हा ?—जो कि तुम लोगों की महान् और पौरवपुर्ण सम्पत्ति है। जो अमर पुषो मरे देशवासियो यह हमारा जातीय अहाज सुयों तक मुसाफिरी को के आता के आता र्छा है और इसने अपनी अनुकनीय सम्पदा से संसार को समृद्ध बनाया है। अनेक पौरवपुर्ण गताम्बियों तक हमारा यह अहाज जीवन-सागर में बरकता र्छा है और करोड़ों आत्माओं को उत्तमे दुःख से हूर संसार के उन पार पहुँचाया है। आज सायद उसमें एक छेद हो गया हो और इससे वह अत हो गया हो यह चाहे तुम्हारी अपनी प्रसृती से या चाहे किसी और कारण से। तुम जो इस अहाज पर बने हुए हो जब क्या करोये ? क्या तुम दुर्बलन कहते हुए आपस में अगाङ्गो ? क्या तुम सब मिलकर उस छेद को अन्द करने की पूर्ण चेष्टा करोये ? हम सब लोगों की अपनी पूरी जान सदाकर लुपी लुपी उसे अन्द कर देना चाहिए। अयद न कर सकें तो हम लोगों की एक सय बूझ भरना होया।

और बाह्यनों से भी मैं कहना चाहता हूँ कि तुम्हारा अम्भगत तथा बंधगत अभिमान मिथ्या है, उसे छोड़ दो। सास्त्रों के अनुसार तुम में भी जब बाह्यजल सेप नहीं र्छ गया क्योंकि तुम भी इसने किनों से म्लेच्छ राज्य में र्छ र्छे हो। यदि तुम लोगों को अपने पूर्वजों की कर्माओं में विश्वास है तो जिस प्रकार प्राचीन कुमारिक म्भू ने बीड़ों के संहार करने के अभिप्राय से पहले बीड़ों का सिध्दात्त ग्रहण किया पर अन्त में उनकी हत्या के प्रायश्चित्त के लिए उन्होंने तुषाग्नि में प्रवेश किया उसी प्रकार तुम भी तुषाग्नि में प्रवेश करो। यदि ऐसा न कर सको तो अपनी दुर्बलता स्वीकार कर लो। और सभी के लिए ज्ञान का द्वार खोल दो और परबलित अन्तता को उनका उचित एवं प्रदुष्ट अधिकार दे दो।

पत्रावली—५

## पत्रावली

(स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखित)

हाई व्यू, कैवरशाम्, रीडिंग,  
३ जुलाई, १८९६

प्रिय शशि,

इस पत्र को देखते ही काली (स्वामी अभेदानन्द) को इंग्लैण्ड रवाना कर देना। पहले पत्र मे ही तुम्हे सब कुछ लिख चुका हूँ। कलकत्ते के मेसर्स ग्रिण्डले कम्पनी के पास उसका द्वितीय श्रेणी का मार्ग-व्यय तथा वस्त्रादि खरीदने के लिए आवश्यक धन भी भेजा जा चुका है। अधिक वस्त्रादि की आवश्यकता नहीं है।

काली को अपने साथ कुछ पुस्तकें लानी होगी। मेरे पास केवल ऋग्वेद-सहिता है। यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्वन् सहिताएँ एव शतपथादि जितने भी 'ब्राह्मण' प्राप्त हो सके तथा कुछ सूत्र एव यास्क के निरुक्त यदि उपलब्ध हो तो इन ग्रन्थो को वह अपने ही साथ लेता आये। अर्थात् इन पुस्तको की मुझे आवश्यकता है। उनको काठ के बक्स मे भरकर लाने की व्यवस्था करे।

शरत् के आने मे जैसा विलम्ब हुआ था, वैसा नहीं होना चाहिए, काली फौरन आये। शरत् अमेरिका रवाना हो चुका है, क्योंकि यहाँ पर उसकी कोई आवश्यकता नहीं रह गयी। कहने का मतलब यह कि वह छ महीने की देर करके आया और फिर जब वह आया, उस समय मैं खुद ही यहाँ पहुँच चुका था। काली के बारे मे यह बात नहीं होनी चाहिए। शरत् के आने के समय जैसे चिट्ठी खो जाने से गहबड़ी हुई थी, अब की बार वैसे ही कही चिट्ठी न खो जाय। शीघ्रता से उसे भेज देना।

सस्नेह,  
विवेकानन्द

धीरे उस अवस्था की ओर बढ़ रहा हूँ, जहाँ खुद 'शैतान' को भी, अगर वह हो तो मैं प्यार कर सकूँगा।

बीस वर्ष की अवस्था में मैं अत्यन्त असहिष्णु और कट्टर था। कलकत्ते में सड़को के जिस किनारे पर थियेटर हैं, मैं उस ओर के पैदल-मार्ग से ही नहीं चलता था। अब तैतीस वर्ष की उम्र में मैं वेश्याओं के साथ एक ही मकान में ठहर सकता हूँ और उनसे तिरस्कार का एक शब्द कहने का विचार भी मेरे मन में नहीं आयेगा। क्या यह अघोगति है? अथवा मेरा हृदय विस्तृत होता हुआ मुझे उस विश्वव्यापी प्रेम की ओर ले जा रहा है, जो साक्षात् भगवान् है? लोग कहते हैं कि वह मनुष्य, जो अपने चारों ओर होनेवाली बुराइयों को नहीं देख पाता, अच्छा काम नहीं कर सकता, उसकी परिणति एक तरह के भाग्यवाद में होती है। मैं तो ऐसा नहीं देखता। वरन् मेरी कार्य करने की शक्ति अत्यधिक बढ़ रही है और अत्यधिक प्रभावशील भी होती जा रही है। कभी कभी मुझे एक प्रकार का दिव्य भावावेश होता है। ऐसा अनुभव करता हूँ कि मैं प्रत्येक प्राणी और वस्तु को आशीर्वाद दूँ—प्रत्येक से प्रेम करूँ और गले लगा लूँ और मैं यह भी देखता हूँ कि बुराई एक भ्रान्ति मात्र है। प्रिय फ्रैंसिस, इस समय मैं ऐसी ही अवस्था में हूँ और अपने प्रति तुम्हारे तथा श्रीमती लेगेट के प्रेम और सहानुभूति का स्मरण कर मैं सचमुच आनन्द के आंसू बहा रहा हूँ। मैं जिस दिन पैदा हुआ था, उस दिन को धन्यवाद देता हूँ। यहाँ पर मुझे कितनी सहानुभूति, कितना प्रेम मिला है! और जिस अनन्त प्रेमस्वरूप भगवान् ने मुझे जन्म दिया है, उसने मेरे हर एक भले और बुरे (बुरे शब्द से डरो मत) काम पर दृष्टि रखी है—क्योंकि मैं उसीके हाथ के एक औजार के सिवा और हूँ ही क्या, और रहा ही क्या? उसीकी सेवा के लिए मैंने अपना सब कुछ—अपने प्रियजनो को, अपना सुख, अपना जीवन—त्याग दिया है। वह मेरा लीलामय प्रियतम है और मैं उसकी लीला का साथी हूँ। इस विद्व मे कोई युक्ति-परिपाटी नहीं है। ईश्वर पर भला किस युक्ति का वश चलेगा? वह लीलामय इस नाटक की समस्त भूमिकाओं पर हास्य और रुदन का अभिनय कर रहा है। जैसा 'जो' कहती हैं—अजब तमाशा है! अजब तमाशा है!

यह दुनिया बड़े मजे की जगह है, और सबसे मजेदार है—वह असीम प्रियतम! क्या यह तमाशा नहीं है? सब एक दूसरे के भाई हो या खेल के साथी, पर वास्तव में हैं ये मानो पाठशाला के हल्ला मचानेवाले बच्चे, जो कि इम ससाररूपी मैदान में खेल-कूद करने के लिए छोड़ दिये गये हैं। यही है न? किसकी तारीफ करूँ और किसे बुरा कहूँ—सब तो उसीका खेल है। लोग इसकी व्याख्या चाहते हैं। पर ईश्वर की व्याख्या तुम कैसे करोगे? वह मस्तिष्कहीन है, उसके पास युक्ति भी



(फ्रैंसिस सेनेट को लिखित)

६३ सेण्ट जार्जस रोड लन्दन

६ जुलाई, १८९६

प्रिय फ्रैंसिस

अदृश्यात्मिक महासागर के इस पार मेरा कार्य बहुत अच्छी रीति से चल रहा है।

मेरी परिवार की बस्तुएँ बहुत सफल हुईं और जसी तरह कजाएँ भी। काम का मौसम बहुत ही चुका है और मैं भी बेहद थक चुका हूँ। जब मैं कुमाठी मूलर के साथ स्विटजरलैंड के भ्रमण के लिए जा रहा हूँ। गास्बर्ग परिवार ने मेरे साथ बड़ा सुख व्यवहार किया है। जो' ने बड़ी खुशखबरी से उन्हें मेरी तरह आह्वान किया। उनकी खुशखबरी और पारिवारिक कार्य-शीली की मैं मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता हूँ। वे एक राजनीतिक कुशल महिला कही जा सकती हैं। वे एक राज बन सकती हैं। मनुष्य में ऐसी प्रखर, साथ ही अच्छी सहज-बुद्धि मैंने किरसे ही देखी है। अमली घर खतु में मैं अमेरिका लौटूँगा और वहाँ का कार्य फिर आरम्भ करूँगा।

परसों रात को मैं श्रीमती मार्टिन के माँ एक पार्टी में गया था जिनके सम्बन्ध में तुमने अवश्य ही 'जो' से बहुत कुछ सुना होगा।

इंग्लैंड में यह कार्य चुपचाप पर निरिच्छत रूप से बढ़ रहा है। यहाँ प्रायः हर दूसरे पुरुष अबका स्त्री ने मेरे पास आकर मेरे कार्य के सम्बन्ध में बातचीत की। विटिथ साम्राज्य के कितने ही लोग क्यों न हों पर भाव-मन्थार का ऐसा उत्कृष्ट यत्न अब तक कहीं नहीं रहा है। मैं इस यत्न के केन्द्रस्वरूप में अपने विचार रख देना चाहता हूँ और वे सारी बुनियाद में फँस जायेंगे। यह सच है कि सभी बड़े काम बहुत धीरे धीरे होते हैं, और उनकी राह में असंख्य विघ्न उपस्थित होते हैं, विशेषकर इसलिये कि हम हिन्दू पराधीन जाति हैं। परन्तु इसी कारण हमें सफलता अवश्य मिलेगी क्योंकि आध्यात्मिक आदर्श सदा परबलियत जातिपों में से ही पैदा हुए हैं। मनुषी अपने आध्यात्मिक आदर्शों से रोम साम्राज्य पर का गये थे। तुम्हें यह सुनकर प्रशंसा होगी कि मैं भी विनीतियन धर्म और विशेषकर सहानुभूति के सबक सीख रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि सन्तिकासी ऐंकोइगिडियोनों तक के भीतर मैं परमात्मा की प्रत्यक्ष कर रहा हूँ। मेरा विचार है कि मैं धीरे

(श्रीमती ओलि वुल को लिखित)

६३, सेण्ट जार्ज रोड, लन्दन,

८ जुलाई, १८९६

प्रिय श्रीमती वुल,

अग्रेज जाति अत्यन्त उदार है। उस दिन करीब तीन मिनट के अन्दर ही आगामी शरद् मे कार्य सचालनार्थ नवीन मकान के लिए मेरी कक्षा से १५० पौण्ड का चन्दा मिला। यदि मांगा जाता तो तत्काल ही वे ५०० पौण्ड प्रदान करने मे किञ्चिन्मात्र भी नहीं हिचकते। किन्तु हम लोग धीरे धीरे कार्य करना चाहते हैं, एक साथ जल्दी अधिक खर्च करने का कोई अभिप्राय हमारा नहीं है। यहाँ पर इस कार्य का सचालन करने के लिए हमे अनेक व्यक्ति प्राप्त होंगे एव वे लोग त्याग की भावना से भी कुछ कुछ परिचित हैं—अग्रेजो के चरित्र की गहराई का पता यही मिलता है।

शुभाकाक्षी,

विवेकानन्द

(डॉ० नजुन्दा राव को लिखित)

इंग्लैण्ड,

१४ जुलाई, १८९६

प्रिय नजुन्दा राव,

‘प्रबुद्ध भारत’ की प्रतियाँ मिली तथा उनका कक्षा मे वितरण भी कर दिया गया है। यह अत्यन्त सन्तोषजनक है, इसमे कोई सन्देह नहीं कि भारत मे इसकी बहुत विक्री होगी। कुछ ग्राहक तो अमेरिका मे ही बन जाने की आशा है। अमेरिका मे इसका विज्ञापन देने की व्यवस्था मैंने पहले ही कर दी है एव ‘गुड इयर’ ने उसे कार्य मे भी परिणत कर दिया है। किन्तु यहाँ इंग्लैण्ड मे कार्य अपेक्षाकृत कुछ धीरे धीरे अग्रसर होगा। यहाँ पर बड़ी मुश्किल यह है कि सब कोई अपना अपना पत्र निकालना चाहते हैं। ऐसा ठीक भी है, क्योंकि कोई भी विदेशी व्यक्ति असली अग्रेजो की तरह अच्छी अग्रेजी कभी नहीं लिख सकता तथा अच्छी अग्रेजी मे लिखने से विचारो का सुदूर तक जितना विस्तार हो सकेगा उतना हिन्दू-अग्रेजी के द्वारा नहीं। साथ ही विदेशी भाषा मे लेख लिखने की अपेक्षा कहानी लिखना और भी कठिन है।

मैं आपके लिए यहाँ ग्राहक बनाने की पूरी चेष्टा कर रहा हूँ, किन्तु आप विदेशी सहायता पर कतई निर्भर न रहे। व्यक्ति की तरह जाति को भी अपनी सहायता

मही है। वह छोटे मस्तिष्क तथा सीमित शक्त-शक्तिवाले हम लोगों को मूर्ख बना रहा है, पर इस बार वह मुझे ऊँचता नहीं पा सकेगा।

मैंने दो-एक बातें सीधी हैं प्रेम और प्रियतम—एक पाश्चिम्य और बापाइम्बर के बहुत परे। ऐ साझी प्याला भर दे और हम पीकर मस्त हो जायें।

तुम्हारा ही प्रेमोगमत  
विवेकानन्द

(इस बहनों को लिखित)

कन्दन

७ जुलाई, १८९९

प्रिय बच्चियो,

यहाँ कार्य में आश्चर्यजनक प्रगति हुई। भारत का एक संस्थापी यहाँ मेरे साथ था जिसे मैंने अमेरिका भेज दिया है। भारत से एक और संस्थापी कुछ भेजा है। कार्य का समय समाप्त हो गया है, इसलिए कलाओं के लगने तथा एडिवांसरीय व्याख्यानो का कार्य भी आगामी १९ तारीख से बन्द हो जायगा। १९ तारीख को मैं क़रीब एक महीने के लिए छात्रिपुर्म बाबास तथा विद्याम के निमित्त स्विट्ज़रलैंड के पहाड़ों पर चला जाऊँगा और आगामी सरदू ऋतु में कन्दन वापस जाकर फिर कार्य आरम्भ करूँगा। यहाँ का कार्य बड़ा सन्तोषजनक रहा है। यहाँ लोगों में शिक्षणसी पैदा कर मैं भारत के लिए बसकी जपेता सचमूच क़री अधिक कार्य कर रहा हूँ जो भारत में रहकर करता। मैं मे मुझको किता है कि यदि तुम लोग अपना मकाम किराये पर चढा दो तो तुम लोगों को साथ लेकर मिस भ्रमण करने में उन्हें प्रसन्नता होगी। मैं तीन अंग्रेज मित्रों के साथ स्विट्ज़रलैंड के पहाड़ों पर था रहा हूँ। बार में सीत ऋतु के अन्त के क़रीब कुछ अंग्रेज मित्रों के साथ भारत जाने की मुझे आशा है। ये लोग यहाँ मेरे सठ में रहनेवाले हैं, जिसके निर्माण की अभी तो केबल कल्पना भर है। हिमाचल पर्वत के अंतर्गत में किसी जगह उसके निर्माण का उद्योग किया जा रहा है।

तुम लोग यहाँ पर हो ? श्रीमन् ऋतु का पूरा खोर है, यहाँ तक कि कन्दन में भी बड़ी गरमी पड़ रही है। कल्पना श्रीमती ऐडम्स श्रीमती कॉपोर और पिक्वोगो के साथ सभी मित्रों के प्रति मेरा हार्दिक प्रेम साफित करता।

तुम्हारा उत्सह भाई,  
विवेकानन्द

(श्री ई० टी० स्टर्डी को लिखित)

ग्रैंड होटल, वेल्,  
स्विट्ज़रलैंड

प्रिय स्टर्डी,

मैं थोड़ा बहुत अध्ययन कर रहा हूँ—उपवास बहुत कर रहा हूँ तथा साधना उससे भी अधिक कर रहा हूँ। वनों में भ्रमण करना अत्यन्त आनन्ददायक है। हमारे रहने का स्थान तीन विशाल हिमनदों के नीचे है तथा प्राकृतिक दृश्य भी अत्यन्त मनोरम है।

एक बात है कि स्विट्ज़रलैंड की झील में आर्यों के आदि निवास-स्थान सम्बन्धी मेरे मन में जो कुछ भी थोड़ा सा सन्देह था, वह एकदम निर्मूल हो चुका है, 'तातार' जाति के माथे से लम्बी चोटी हटा देने पर जो दशा होती है, स्विट्ज़रलैंड के निवासी ठीक उसी प्रकार के हैं।

शुभाकाक्षी,  
विवेकानन्द

(श्री लाला बन्नी शाह को लिखित)

द्वारा ई० टी० स्टर्डी  
हार्ड व्यू, कैवरशम्, रीडिंग, लंदन  
५ अगस्त, १८९६

प्रिय शाह जी,

आपके सहृदय अभिनन्दन के लिए धन्यवाद। आपसे एक बात मैं जानना चाहता हूँ। यदि लिखने का कष्ट करें तो इस कृपा के लिए मैं विशेष अनुग्रहीत होऊँगा। मैं एक मठ स्थापित करना चाहता हूँ—मेरी इच्छा है कि वह अल्मोडा में या अच्छा हो उसके समीप किसी स्थान में हो। मैंने सुना है कि श्री रैमसे नामक कोई सज्जन अल्मोडा के समीप एक बँगले में रहते थे, उस बँगले के चारों ओर एक बगीचा था। क्या वह बँगला खरीदा जा सकता है? उसका मूल्य क्या होगा? यदि खरीदना सम्भव न हो तो किराये पर मिल सकता है या नहीं?

क्या आप अल्मोडा के समीप किसी ऐसे उपयुक्त स्थान को जानते हैं, जहाँ बगीचे आदि के साथ मैं अपना मठ बना सकूँ? बगीचे का होना नितान्त आवश्यक है। मैं चाहता हूँ कि अलग एक छोटी सी पहाड़ी मिल जाय तो अच्छा हो।

आशा है कि पत्र का उत्तर शीघ्र प्राप्त होगा। आप एवं अल्मोडा के अन्य मित्रों को मेरा आशीर्वाद तथा प्रेम।

भवदीय,  
विवेकानन्द

बाप ही करनी चाहिए। यही यथार्थ स्वदेव-मेम है। यदि कोई जाति ऐसा करने में असमर्थ हो तो यह कहना पड़ेगा कि उसका अभी समय नहीं आया उसे प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। महास से ही यह नवीन जालोक भारत के चारों ओर फैलना चाहिए—इसी उद्देश्य को लेकर आपको कार्य-क्षेत्र में अग्रसर होना पड़ेगा। एक बात पर मुझे अपना मत व्यक्त करना है वह यह कि पत्र का मुखपृष्ठ एकत्र गैबार्क बेलते में निरालत रही तथा महा है। यदि सम्भव हो तो इसे बरस दें। इसे भावव्यंजक तथा साब ही सरल बनायें—इसमें मानव-पित्र विस्तृत नहीं होना चाहिए। 'बटबुस' ऊपर प्रबुद्ध होने का चिह्न नहीं है और मपहाड़ नसन्त ही यूरोपीय दम्पति भी नहीं। 'कमल' ही पुनरुत्थान का प्रतीक है। 'अस्मि कसा' में हम काम बहुत ही पिछड़े हुए हैं खासकर 'बिजकसा' में। तथाहरबस्वरूप मन में बसन्त के पुनरागमन का एक छोटा सा वृक्ष बनाइए—नवपत्त्र तथा कल्पिकाएँ प्रस्तुति हो रही हों। बीरे बीरे बाये बड़िए, ईकड़ो भाव है जिन्हें प्रकाश में लाया जा सकता है।

मैंने 'राजयोग' के लिए जो प्रतीक बनाया था उसे देखिए। 'कांग्रेसीन श्रीम एम्ब कम्पनी' ने यह पुस्तक प्रकाशित की है। आपको यह सम्बन्ध में पिक सकती है। राजयोग पर न्यूयार्क में जो व्याख्यान दिये थे वही इसमें है।

आयासी रविचार को मैं स्विट्जरलैण्ड था रहा हूँ और अरक्तार में इस्लैण्ड वापस आकर पुनः कार्य प्रारम्भ करूँगा। यदि सम्भव हो सका तो स्विट्जरलैण्ड से मैं बारबाहिक रूप से आपको कुछ श्रेष्ठ भेजूँगा। आपको भास्म ही होया कि मेरे लिए विद्याम अत्यन्त आवश्यक हो उठा है।

सुभाषाशी  
द्विधैकान्त्य

( श्रीमती ओकि बुक को लिखित )

सैन्य प्रेष स्विट्जरलैण्ड  
२५ जुलाई, १८९९

प्रिय श्रीमती बुक

कम से कम दो मास के लिए मैं जयपुर को एकत्रम भूक जाता जाइता हूँ और कठोर साधना करता जाइता हूँ। यही मेरा विद्याम है। पहाड़ों तथा बर्फ के दृश्य से मेरे हृदय में एक अपूर्व ध्यानि धी आ जाती है। यहाँ पर मुझे जैसी अच्छी नीद आ रही है, दीर्घ काल तक मुझे वैसी नीद नहीं आती।

सभी मित्रों को मेरा प्रार।

सुभाषाशी  
द्विधैकान्त्य

(श्री आलार्सिंगा पेरुमल को लिखित)

स्विट्ज़रलैण्ड,

६ अगस्त, १८९६

प्रिय आलार्सिंगा,

तुम्हारे पत्र से 'ब्रह्मवादिन्' की आर्थिक दुर्दशा का समाचार विदित हुआ। लन्दन लौटने पर तुम्हें सहायता भेजने की चेष्टा करूँगा। तुम पत्रिका का स्तर नीचा न करना, उसको उन्नत रखना, अत्यन्त शीघ्र ही मैं तुम्हारी ऐसी सहायता कर सकूँगा कि इस बेहूदे अध्यापन-कार्य से तुम्हें मुक्ति मिल सके। डरने की कोई बात नहीं है वत्स, सभी महान् कार्य सम्पन्न होंगे। साहस से काम लो। 'ब्रह्मवादिन्' एक रत्न है, इसे नष्ट नहीं होना चाहिए। यह ठीक है कि ऐसी पत्रिकाओं को सदा निजी दान से ही जीवित रखना पड़ता है, हम भी वैसा ही करेंगे। कुछ महीने और जमे रहो।

मैक्समूलर महोदय का श्री रामकृष्ण सम्बन्धी लेख 'दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी' में प्रकाशित हुआ है। मुझे मिलते ही मैं उसकी एक प्रतिलिपि तुम्हारे पास भेज दूँगा। वे मुझे अत्यन्त सुन्दर पत्र लिखते हैं। श्री रामकृष्ण देव की एक बड़ी जीवनी लिखने के लिए वे सामग्री चाहते हैं। तुम कलकत्ते एक पत्र लिखकर सूचित कर दो कि जहाँ तक हो सके सामग्री एकत्र करके उन्हें भेज दी जाय।

अमेरिकी पत्र के लिए भेजा हुआ समाचार मुझे पहले ही मिल चुका है। भारत में उसे प्रकाशित करने की आवश्यकता नहीं है, समाचार-पत्र द्वारा इस प्रकार का प्रचार बहुत हो चुका है। इस विषय में खासकर मेरी अब कुछ भी रुचि नहीं है। मूर्खों को बकने दो, हमें तो अपना कार्य करना है। सत्य को कोई नहीं रोक सकता।

यह तो तुम्हें पता ही है कि मैं इस समय स्विट्ज़रलैण्ड में हूँ और वरावर घूम रहा हूँ। पढ़ने अथवा लिखने का कार्य कुछ भी नहीं कर पा रहा हूँ, और करना भी उचित प्रतीत नहीं होता। लन्दन में मुझे एक महान् कार्य करना है, आगामी माह में उसे प्रारम्भ करना है। अगले जाडो में भारत लौटकर मैं वहाँ के कार्य को भी ठीक करने की कोशिश करूँगा।

सच लीगो को मेरा प्रेम। बहादुरो, कार्य करते रहो, पीछे न हटो—'नहीं' मत कहो। कार्य करते रहो—तुम्हारी सहायता के लिए प्रभु तुम्हारे पीछे खड़े हैं। महाशक्ति तुम्हारे साथ विद्यमान है।

शुभाकाक्षी,  
विवेकानन्द

(भी ई टी स्टर्डी को लिखित)

स्विट्जरलैंड

५ अगस्त १८९९

प्रिय स्टर्डी

आज सुबह प्रोफेसर मैक्समूजर का एक पत्र मिला; उससे पता चला कि भी रामकृष्ण परमहंस सम्बन्धी उनका लेख 'दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी' पत्रिका के अगस्त अंक में प्रकाशित हुआ है। क्या तुमने उसे पढ़ा है? उन्होंने इस लेख के बारे में मेरा अभिमत मांगा है। अभी तक मैंने उसे नहीं देखा है, अतः उन्हें कुछ भी नहीं लिख पाया हूँ। यदि तुम्हें यह प्रति प्राप्त हुई हो तो कृपया मुझे भेज देना। 'ब्रह्मवादिन्' की भी यदि कोई प्रति आती हो तो उसे भी भेजना। मैक्समूजर महोदय हमारी योजनाओं से परिचित होना चाहते हैं तथा पत्रिकाओं से भी उन्होंने अधिकाधिक सहायता प्रदान करने का वचन दिया है तथा भी रामकृष्ण परमहंस पर एक पुस्तक लिखने को वे प्रस्तुत हैं।

मैं समझता हूँ कि पत्रिकादि के विषय में उनके साथ तुम्हारा सीधा पत्र-व्यवहार होना ही उचित है। 'दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी' पढ़ने के बाद उनके पत्र का पचास लिख कर पत्र में तुमको उनका पत्र भेज देना तथा तुम देखोगे कि वे हमारे प्रयास पर कितने प्रसन्न हैं तथा पचासाध्य सहायता प्रदान करने के लिए तैयार हैं।

पुनरुक्त—आशा है कि तुम पत्रिका को बड़े आकार की करने के प्रयत्न पर मंजूरी भेंटि विचार करोगे। अमेरिका से कुछ जनराधि एकत्र करने की व्यवस्था हो सकती है एवं साथ ही पत्रिका अपने लोगों के हाथों ही रखी जा सकती है। इस बारे में तुम्हारी तथा मैक्समूजर महोदय की निश्चित योजना से अलग होने के बाद मैं अमेरिका पत्र लिखना चाहता हूँ।

सिद्धिम्बो महाशुभाः कलछायासमन्वितः।

यदि ईवात् फलं नास्ति छाया केन निवार्यते ॥

—'जिस वृक्ष में फल एवं छाया ही जली का आशय लेना चाहिए कदाचित् फल न भी मिले फिर भी उनकी छाया से ही कोर्न भी बचिष्ठ नहीं कर सकता। अतः मूल बात यह है कि महान् कार्य को हमी मावना से प्रारम्भ करना चाहिए।

शुभाशीषी  
त्रिवेकानन्द

बहरहाल, श्रीमती एनी बेसेन्ट ने अपने निवास स्थान पर मुझे—भक्ति पर बोलने के लिए—निमंत्रित किया था। मैंने वहाँ एक रात व्याख्यान दिया। कर्नल अल्कांट भी वहाँ थे। मैंने सभी सम्प्रदाय के प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए ही भाषण देना स्वीकार किया। हमारे देशवासियों को यह याद रखना चाहिए कि अध्यात्म के बारे में हम ही जगद्गुरु हैं—विदेशी नहीं—किन्तु, सासारिकता अभी हमें उनसे सीखना है।

मैंने मैक्समूलर का लेख पढ़ा है। हालाँकि छ माह पूर्व जब कि उन्होंने इसे लिखा था—उनके पास मजूमदार के पत्रों के सिवा और कोई सामग्री नहीं थी। इस दृष्टि से यह लेख सुन्दर है। इधर उन्होंने मुझे एक लम्बी और प्यारी चिट्ठी लिखी है, जिसमें उन्होंने श्री रामकृष्ण पर एक किताब लिखने की इच्छा प्रकट की है। मैंने उन्हें बहुत सारी सामग्री दी है, किन्तु भारत से और भी अधिक मँगाने की आवश्यकता है।

काम करते चलो। डटे रहो बहादुरी से। सभी कठिनाइयों को झेलने की चुनौती दो।

देखते नहीं वत्स, यह ससार—दुःखपूर्ण है।

प्यार के साथ,  
विवेकानन्द

(श्री जे० जे० गुडविन को लिखित)

स्विट्ज़रलैण्ड  
८ अगस्त, १८९६

प्रिय गुडविन,

मैं अब विश्राम कर रहा हूँ। भिन्न भिन्न पत्रों से मुझे कृपानन्द के विषय में बहुत कुछ मालूम होता रहता है। मुझे उसके लिए दुःख है। उसके मस्तिष्क में अवश्य कुछ दोष होगा। उसे अकेला छोड़ दो। तुमसे उसे किसीको भी उसके लिए परेशान होने की आवश्यकता नहीं।

मुझे आघात पहुँचाने की देव या दानव किसीमें भी शक्ति नहीं है। इसलिए निश्चिन्त रहो। अचल प्रेम और पूर्ण निःस्वार्थ भाव की ही सर्वत्र विजय होती है। प्रत्येक कठिनाई के आने पर हम वेदान्तियों को स्वतः यह प्रश्न करना चाहिए, 'मैं इसे क्यों देवता हूँ?' 'प्रेम से मैं क्यों नहीं इस पर विजय पा सकता हूँ?'

न्वामी त्त जो स्वागत किया गया, उनमें मैं अति प्रमत्त हूँ और वे जो अच्छा कार्य कर रहे हैं, उनमें भी। बड़े काम में बहुत समय तक लगातार और महान्



फुलरब—इरने की कोई बात नहीं है बस तथा अन्य वस्तुएँ सीम ही प्राप्त होंगी।

(श्री आशासिंघा पेशमस को लिखित)

स्विट्जरलैंड

८ अगस्त १८९६

प्रिय आशासिंघा

कई दिन पहले मैंने अपने पत्र में तुम्हें इस बात का आभास दिया था कि मैं 'ब्रह्मवादिन्' के लिए कुछ करने की स्थिति में हूँ। मैं तुम्हें एक या दो वर्षों तक ? स्वयं माह्वार वृंगा—अर्थात् साल में १ अथवा ७ पौड—यानी जितने से सी स्वयं माह्वार हो सके। तब तुम मुक्त होकर 'ब्रह्मवादिन्' का कार्य कर सकोगे तथा इसे और भी सफल बना सकोगे। शीघ्र मणि जम्बर और कुछ निज कोप इच्छता करने में तुम्हारी सहायता कर सकते हैं—जिससे छाई बादि की झीमठ पूरी हो जायगी। जरे से कितनी जामबनी होती है? क्या इस एजम से सेवकों को पारिभमिक देकर उनसे अच्छी सामग्री नहीं मिलवायी जा सकती? यह आनन्दमक नहीं कि 'ब्रह्मवादिन्' में प्रकाशित होनेवाली सभी रचनाएँ सभी की समस्त में आर्ये—परन्तु यह जरूरी है कि बेधमकित और सुकर्म की मायना—प्ररवा से ही लोग इसे लरीयें। सोय से नेय मपकज हिन्युजों से है।

यों बहुत सी बातें आवश्यक हैं। पहली बात है—पूरी ईमानदारी। मेरे मन में इस बात की रती सर शंका नहीं कि तुम लोगों में से कोई भी इससे उपासीन रहोगे। बल्कि आनन्दमिक मामलों में हिन्युजों में एक अजीब बिलारि देखी जाती है—बेतरतीब हिसाब-किताब और बेखिलसिधे का कारवार। दूसरी बात अहंम के प्रति पूर्ण निष्ठ—यह जानते हुए कि 'ब्रह्मवादिन्' की सफलता पर ही तुम्हारी मुक्ति निर्भर करती है।

इस पत्र (ब्रह्मवादिन्) को अपना इच्छेकता जमाओ और तब देखना सफलता किस तरह आती है। मैंने अमेरिजान्द को भारत से बुसा भेजा है। जासा है, अन्य संन्यासी की नांदि उसे देरी नहीं छोपी। पत्र पाठे ही तुम 'ब्रह्मवादिन्' के आनन्दमिक का पूरा सेवक-जोडा भेजो जिसे देखकर मैं बह खोच सकूँ कि इसके लिए क्या किया जा सकता है? यह यह रखी कि पवित्रता निस्वार्थ भावना और गृह की बजाआकारिता ही सभी सफलताओं के रक्षक हैं।

किसी वामिक पत्र की सपत—विदेश में असंभव है। इसे हिन्युजों की ही सहायता मिलनी चाहिए—जदि उनमें भले-बुरे का ज्ञान हो।

अथवा 'अन्धकारमय प्रकाश' के समान ही हैं। यदि ससार साधु होता तो यह ससार ही न होता। जीव मूर्खतावश असीम अनन्त को सीमित भौतिक पदार्थ द्वारा, चैतन्य को जड द्वारा अभिव्यक्त करना चाहता है, परन्तु अन्त में अपने भ्रम को समझकर वह उससे छुटकारा पाने की चेष्टा करता है। यह निवृत्ति ही धर्म का प्रारम्भ है और उसका उपाय है, ममत्व का नाश अर्थात् प्रेम। स्त्री, सन्तान या किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रेम नहीं, परन्तु छोटे से अपने ममत्व को छोड़कर, सबके लिए प्रेम। वह 'मानवी उन्नति' और इसके समान जो लम्बी चौड़ी बातें तुम अमेरिका में बहुत सुनोगे, उसके भुलावे में मत आना। सभी क्षेत्रों में 'उन्नति' नहीं हो सकती, उसके साथ साथ कहीं न कहीं अवनति हो रही होगी। एक समाज में एक प्रकार के दोष हैं तो दूसरे में दूसरे प्रकार के। यही बात इतिहास के विशिष्ट कालों की भी है। मध्य युग में चोर डाकू अधिक थे, अब छल-कपट करनेवाले अधिक हैं। एक विशिष्ट काल में वैवाहिक जीवन का सिद्धान्त कम है तो दूसरे में वेश्यावृत्ति अधिक। एक में शारीरिक कष्ट अधिक है, तो दूसरे में उससे सहस्र गुनी अधिक मानसिक यातनाएँ। इसी प्रकार ज्ञान की भी स्थिति है। क्या प्रकृति में गुस्त्वाकर्षण का निरीक्षण और नाम रखने से पहले उसका अस्तित्व ही न था? फिर उसके जानने से क्या अन्तर पड़ा? क्या तुम रेड इन्डियनो (उत्तर अमेरिका के आदिवासियों) से अधिक सुखी हो?

यह सब व्यर्थ है, निरर्थक है—इसे यथार्थ रूप में जानना ही ज्ञान है। परन्तु थोड़े, बहुत थोड़े ही कभी इसे जान पायेंगे। तमेवैक जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुच्य—उस एक आत्मा को ही जानो और सब बातों को छोड़ दो। इस ससार में ठोकरें खाने से इस एक ज्ञान की ही हमें प्राप्ति होती है। मनुष्य जाति को इस प्रकार पुकारना कि उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत—'जागो, उठो, और ध्येय की उपलब्धि के बिना रुको नहीं।' यही एकमात्र कर्म है। त्याग ही धर्म का सार है, और कुछ नहीं।

ईश्वर व्यक्तियों की एक समष्टि है। फिर भी वह स्वयं एक व्यक्ति है, उसी प्रकार जिस प्रकार मानवी शरीर एक ईकाई है और उसका प्रत्येक 'कोश' एक व्यक्ति है। ममष्टि ही ईश्वर है, व्यष्टि या अश आत्मा या जीव है। इसलिए ईश्वर का अस्तित्व जीव पर निर्भर है, जैसे कि शरीर का उसके कोश पर, इसी प्रकार इसका विलोम समझिए। इस प्रकार, जीव और ईश्वर परस्परालम्बी हैं। जब तक एक का अस्तित्व है, तब तक दूसरे का भी रहेगा। और हमारी इस पृथ्वी को छोड़कर अन्य सब ऊँचे लोको में शुभ की भाँसा अशुभ से अत्यधिक होती है, इसलिए वह समष्टिस्वरूप ईश्वर, शिवस्वरूप, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ

प्रयत्न की आवश्यकता होती है। यदि बोड़े से व्यक्ति असफल भी हो कार्य तो भी उसकी चिन्ता हमें नहीं करनी चाहिए। संसार का यह नियम ही है कि बनेक नीचे गिरते हैं, कितने ही पुनः आते हैं, कितनी ही अथवा कठिनाइयाँ सामने उपस्थित होती हैं, स्वार्थपरता तथा अन्य बुराइयों का मानव हृदय में बोर संघर्ष होता है। और सभी आध्यात्मिकता की अग्नि में इन सभी का विनाश होनेवाला होता है। इस समय में श्रेय का मार्ग सबसे दुर्लभ और पथरीला है। आदर्श की बात है कि इतने शीघ्र सफलता प्राप्त करते हैं, कितने शीघ्र असफल होते हैं यह आदर्श नहीं। सहस्रों ठोकर खाकर चरित्र का यत्न होता है।

मुझे अब बहुत ताबजी मालूम होती है। मैं बिरुकी से बाहर दृष्टि डालता हूँ मुझे बड़ी बड़ी हिम-नदियाँ दिखती हैं और मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मैं हिमालय में हूँ। मैं विस्फुलक खाता हूँ। मेरे स्नायुओं ने अपनी पुरानी शक्ति पुनः प्राप्त कर ली है और छोटी छोटी परेशानियाँ जिस तरह की परेशानियों का मुझे विक्रम किया है, मुझे स्पर्श भी नहीं करतीं। मैं बच्चों के इस खेल से कैसे विचलित हो सकता हूँ। साधु संसार बच्चों का खेल मान है—प्रचार करना सिखा देना तथा सभी कुछ। श्रेय से नित्यसंन्यासी को न हरेण्डि न कांक्षति—उसे सम्पत्ती समझो जो न श्रेय करता है, न इच्छा करता है। और इस संसार की छोटी सी कीचड़ मरी तलैया में जहाँ कुछ रोग तथा मृत्यु का चक्र निरन्तर चलता रहता है, क्या है जिसकी इच्छा की जा सके? त्यागाद् ध्यातिरनन्तरम्—जिसने सब इच्छाओं को त्याग दिया है वही मुन्दी है।

यह विद्याम—नित्य और सात्त्विक विद्याम—इस ऐतनिक स्वान में अब उसकी सकल मुझे मिल रही है। आत्मानं जेषु विजान्तीयात् जयमस्मीति पुरुषः। किमिच्छन् कस्य कानाम शरीरमनुत्तमरेत्।—एक बार यह जानकर कि इस आत्मा का ही केवल अस्तित्व है और किसीका नहीं किधौ चीज की या किसीके लिए इच्छा करने तुम इस शरीर के लिए कुछ उद्योगिये ?

मुझे ऐसा विदित होता है कि जिसकी वे शीघ्र 'कर्म' करते हैं, उसका मैं अपने हित्से का अनुभव कर चुका हूँ। मैं कर पाया अब निकलने की मुझे उत्कण्ठ बसिताना है। मनुष्याणां सङ्गेषु करिष्यन् प्रवृत्ति सिद्धये। यतस्तानपि सिद्धानां करिष्यान्मि वेति तत्त्वतः।—सहस्रों मनुष्यों में कोई एक कर्म को प्राप्त करने का यत्न करता है। और यत्न करनेवाले उद्योगी पुरुषों में बोड़े ही श्रेय तक पहुँचते हैं। इन्द्रियाणि प्रबाधेति हृदन्ति प्रसन्नं मनः—क्योंकि इन्द्रियाँ बलवती हैं और वे मनुष्य को नीचे की ओर खींचती हैं।

'सामु चतारं' मुनी जयन् और 'सात्त्विक यत्न' से सब 'उत्तम यत्न'

अथवा 'अन्वकारमय प्रकाश' के समान ही हैं। यदि ससार साधु होता तो यह ससार ही न होता। जीव मूर्खतावश असीम अनन्त को सीमित भौतिक पदार्थ द्वारा, चैतन्य को जड द्वारा अभिव्यक्त करना चाहता है, परन्तु अन्त में अपने भ्रम को समझकर वह उससे छुटकारा पाने की चेष्टा करता है। यह निवृत्ति ही धर्म का प्रारम्भ है और उसका उपाय है, ममत्व का नाश अर्थात् प्रेम। स्त्री, सन्तान या किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रेम नहीं, परन्तु छोटे से अपने ममत्व को छोड़कर, सबके लिए प्रेम। वह 'मानवी उन्नति' और इसके समान जो लम्बी चीड़ी बातें तुम अमेरिका में बहुत सुनोगे, उसके भुलावे में मत आना। सभी क्षेत्रों में 'उन्नति' नहीं हो सकती, उसके साथ साथ कहीं न कहीं अवनति हो रही होगी। एक समाज में एक प्रकार के दोष हैं तो दूसरे में दूसरे प्रकार के। यही बात इतिहास के विशिष्ट कालों की भी है। मध्य युग में चोर डाकू अधिक थे, अब छल-कपट करनेवाले अधिक हैं। एक विशिष्ट काल में वैवाहिक जीवन का सिद्धान्त कम है तो दूसरे में वेश्यावृत्ति अधिक। एक में शारीरिक कष्ट अधिक है, तो दूसरे में उससे सहस्र गुनी अधिक मानसिक यातनाएँ। इसी प्रकार ज्ञान की भी स्थिति है। क्या प्रकृति में गुहत्वाकर्षण का निरीक्षण और नाम रखने से पहले उसका अस्तित्व ही न था? फिर उसके जानने से क्या अन्तर पड़ा? क्या तुम रेड इन्डियनो (उत्तर अमेरिका के आदिवासियों) से अधिक सुखी हो?

यह सब व्यर्थ है, निरर्थक है—इसे यथार्थ रूप में जानना ही ज्ञान है। परन्तु थोड़े, बहुत थोड़े ही कभी इसे जान पायेंगे। तमेवैक जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुचथ—उस एक आत्मा को ही जानो और सब बातों को छोड़ दो। इस ससार में ठोकरें खाने से इस एक ज्ञान की ही हमें प्राप्ति होती है। मनुष्य जाति को इस प्रकार पुकारना कि उत्तिष्ठत जाप्रत प्राप्य धरान्निबोधत—'जागो, उठो, और ध्येय की उपलब्धि के बिना रको नहीं।' यही एकमात्र कर्म है। त्याग ही धर्म का सार है, और कुछ नहीं।

ईश्वर व्यक्तियों की एक समष्टि है। फिर भी वह स्वयं एक व्यक्ति है, उसी प्रकार जिस प्रकार मानवी शरीर एक ईकाई है और उसका प्रत्येक 'कोश' एक व्यक्ति है। समष्टि ही ईश्वर है, व्यष्टि या अश आत्मा या जीव है। इसलिए ईश्वर का अस्तित्व जीव पर निर्भर है, जैसे कि शरीर का उसके कोश पर, इसी प्रकार इसका विलोम समष्टि। इस प्रकार, जीव और ईश्वर परस्परावलम्बी हैं। जब तक एक का अस्तित्व है, तब तक दूसरे का भी रहेगा। और हमारी इस पृथ्वी को छोड़कर अन्य सब ऊँचे लोकों में शुभ की मात्रा अशुभ से अत्यधिक होती है, इसलिए वह समष्टिस्वरूप ईश्वर, शिवस्वरूप, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ

कहा जा सकता है। ये प्रत्यक्ष भुज हैं और ईश्वर से सम्बन्ध होने के कारण उन्हें प्रमाणित करने के लिए तर्क की आवश्यकता नहीं।

ब्रह्म इन दोनों से पने है और वह कोई विशिष्ट अवस्था नहीं है। यह एक ऐसी ईकाई है जो अनेक की समष्टि से नहीं बनी। यह एक ऐसी सत्ता है जो कोस से लकर ईश्वर तक सब में व्याप्त है और उसके बिना किसीका अस्तित्व नहीं हो सकता। वही सत्ता अथवा ब्रह्म वास्तविक है। जब मैं सोचता हूँ 'मैं ब्रह्म हूँ' तब मेरा ही यथार्थ अस्तित्व होता है। ऐसा ही सब के बारे में है। विश्व की प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र नहीं सत्ता है।

कुछ दिन हुए इण्डोनेशिया को मिलने की मुझे अकस्मात् प्रबल इच्छा हुई। धायर वह बुन्सी वा और मुझे भाव कट्टा होगा। इसलिए मैंने उसे सहानुभूतिपूर्ण पत्र लिखा। आज अमेरिका से खबर मिलने पर मेरी समझ में आया कि ऐसा क्यों हुआ। हिम-नदियों के पास से ठोड़े हुए पुष्प मैंने उसे भेजे। कुमारी बाल्डी से कहना कि अपना आन्तरिक स्नेह प्रदर्शित करते हुए उसे कुछ बत भेजें। प्रेम का कमी नाश नहीं होता। पिता का प्रेम अमर है सन्तान चाहे जो करे या भीमे भी हो। वह मेरा पुत्र जैसा है। अब वह बुज में है इसलिए वह समान या अपने माप से अधिक मेरे प्रेम तथा सहायता का अधिकारी है।

सुमाकाशी  
विश्वकामन्द

(पी ई टी स्टडी को लिखित)

ग्रेड होटल सत पी  
बीके सिव्द्वरतीठ  
८ अगस्त १८९९

महामास एवं परम प्रिय

तुम्हारे पत्र के साथ ही पत्रों का एक बड़ा पुलिका मिला। मैकामूलर न मुक्तकी जो पत्र लिगा है उसे तुम्हारे पास भेज रहा हूँ। मेरे प्रति उसकी बड़ी इया और गौरव्य है।

कुमारी मूलर का विचार है कि वे बहुत जल्द इंग्लैण्ड चली जावेंगी। तब मैं 'प्यान्टी वाप्रेस' के शरीर हान के लिए बर्न जा मरूंगा विगडे निग मैंने बादा किया था। यदि मैरियन इयति मुझे अपने गान के अपने का राडी हो। मेरे लकी में बीन आरोग्य और मूषमार्य तुम्हें पढ़ें ही पत्र मिले हुंका। गिरिपर इयति बड़ मरुदन और इण्डोनेशिया विन्नु उनी उदारता के साथ उराने का मुने

अधिकार नहीं। क्योंकि वहाँ का खर्च भयानक है। ऐसी दशा में बर्न कांग्रेस में शरीक होने का विचार त्याग देना ही मेरे विचार से सर्वोत्तम है, क्योंकि बैठक सितम्बर के मध्य में होगी जिसमें अभी बहुत देर है।

अतः जर्मनी में जाने का मेरा विचार हो रहा है। वहाँ की यात्रा का अन्तिम स्थान कील होगा, जहाँ से इंग्लैंड वापस आऊँगा।

वाल गगाधर तिलक (श्री तिलक) नाम है और 'ओरायन' उनकी पुस्तक का नाम है।

तुम्हारा,  
विवेकानन्द

पुनश्च—जेकबी की भी एक (पुस्तक) है—शायद उन्हीं पद्धतियों पर वह अनूदित है तथा उसके वे ही निष्कर्ष हैं।

पुनश्च—मुझे आशा है कि तुम ठहरने के स्थान और हाल के विषय में कुमारी मूलर की राय ले लोगे, क्योंकि यदि उनकी तथा अन्य लोगों की सलाह न ली गयी तो वे बहुत अप्रसन्न होगी।

वि०

कल रात कुमारी मूलर ने प्रोफेसर डॉयसन को तार भेजा और आज सबरे ९ अगस्त को तार का जवाब आ गया, जिसमें उन्होंने मेरा स्वागत किया है। १० सितम्बर को मैं कील में डॉयसन के यहाँ पहुँचनेवाला हूँ। तो तुम मुझसे कहाँ मिलोगे? कील में? कुमारी मूलर स्विट्ज़रलैंड से इंग्लैंड जा रही है, मैं सेवियर दम्पति के साथ कील जा रहा हूँ। १० सितम्बर को मैं वहाँ रहूँगा।

वि०

पुनश्च—व्याख्यान के विषय में अभी तक मैंने कुछ निर्धारित नहीं किया है। पढ़ने का मुझे अवकाश नहीं। बहुत सम्भव है कि 'सालेम सोसायटी' किसी हिन्दू सम्प्रदाय का सगठन है, झकिक्यो का नहीं।

वि०

(श्री ई० टी० स्टर्डी को लिखित)

स्विट्ज़रलैंड,  
१२ अगस्त, १८९६

प्रिय श्री स्टर्डी,

आज मुझे एक पत्र अमेरिका से मिला जिसे मैं तुम्हारे पास भेज रहा हूँ। मैंने उनको लिख दिया है कि मैं चाहता हूँ कि कम से कम वर्तमान प्रारम्भिक

कार्य में ध्यान केन्द्रित किया जाय। मैंने उनको यह भी सलाह दी है कि कई पत्रिकाएँ शुरू करने के बजाय 'ब्रह्मवादिन्' में अमेरिका में छिद्रित कुछ लेख कर काम शुरू करें और पन्द्रा कुछ बढ़ा दें जिससे अमेरिका में होनेवाला सर्ब निरस जाये। पता नहीं वे क्या करेंगे।

हम सोम अगले सप्ताह जर्मनी की तरफ रवाना होंगे। जैसे हम जर्मनी पहुँचे कुमारी मूलर इम्पैण्ड रवाना हो जायेंगी।

कैप्टेन तथा श्रीमती सेवियर और मैं कील में तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे।

मैंने अब तक कुछ नहीं सिखा और न कुछ पढ़ा ही है। अस्तुतः मैं पूर्व विषय में खड़ा हूँ। बिम्बा न करना तुमको खेब तैयार मिछेगा। मुझे मठ से इस वाक्य का पत्र मिला है कि बृचय स्वामी रवाना होने के लिए तैयार है। मुझे आशा है कि वह तुम्हारी इच्छा के उपयुक्त व्यक्ति होगा। वह हमारे संस्कृत के अच्छे विद्वानों में से है और जैसा कि मैंने सुना है उसने अपनी बर्षा की काशी सुधार की है। सारवानम्ब के बारे में मुझे अमेरिका से अक्षरों की बहुत सी कटारें मिली हैं। उनसे पता चलता है कि उसने वहाँ बहुत अच्छा काम किया है। मनुष्य के अन्दर जो कुछ है उसे निरक्षित करने के लिए अमेरिका एक अत्यन्त सुन्दर प्रविषय क्षेत्र है। वहाँ का वातावरण कितना सहानुभूतिपूर्ण है। मुझे मुश्किल तथा सारवानम्ब के पत्र मिले हैं। सारवानम्ब ने तुमको श्रीमती स्टर्डी तथा बच्चे को स्नेह भेजा है।

मुभाकांसी  
विश्वकालम्

(श्रीमती ओलि बुल को लिखित)

स्पूकनि सिव्द्वरलैण्ड

२३ अगस्त १८९६

प्रिय श्रीमती बुल

आपका अन्तिम पत्र मुझे आज मिला आपके भेजे हुए ५ पौंड की रसीद अब तक आपकी मिल चुकी हूँगी। आपने जो सदस्य होने की बात लिखी है, उस में ठीक ठीक नहीं समझना फिर भी किसी मन्दा की सम्बन्ध-शुकी में मेरे मायोस्ताग के सम्बन्ध में मुझे कोई आशा नहीं है। किन्तु इन दिनों में स्टर्डी का क्या अभिमत है मैं नहीं जानता। मैं इस समय सिव्द्वरलैण्ड में भ्रमण कर रहा हूँ। यहाँ न मैं जर्मनी जाऊँगा बाद में इम्पैण्ड जाना है तथा अगले जाड़े में जाऊँगा। यह जानकर कि सारवानम्ब तथा मुश्किल अमेरिका में अच्छी तरह से प्रचार-नायें

चला रहे हैं, मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। मेरी अपनी बात तो यह है कि किसी कार्य के प्रतिदान स्वरूप में उस ५०० पाँड पर अपना कोई हक कायम करना नहीं चाहता। मैं तो यह समझता हूँ कि मैं काफी परिश्रम कर चुका। अब मैं अवकाश लेने जा रहा हूँ। मैंने भारत से एक और व्यक्ति माँगा है, आगामी माह में वह मेरे पास आ जायगा। मैंने कार्य प्रारम्भ कर दिया है, अब दूसरे लोग उसको पूरा करें। आप तो देखती ही है कि कार्य को चालू करने के लिए कुछ समय के लिए मुझे रुपया-पैसा छूना पड़ा। अब मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मेरा कर्तव्य समाप्त हो चुका है। वेदान्त अथवा जगत् के अन्य किसी दर्शन अथवा स्वयं कार्य के प्रति अब मुझे कोई आकर्षण नहीं है। मैं प्रस्थान करने के लिए तैयारी कर रहा हूँ—इस जगत् में, इस नरक में, मैं फिर लौटना नहीं चाहता। यहाँ तक कि इस कार्य की आध्यात्मिक उपादेयता के प्रति भी मेरी अरुचि होती जा रही है। मैं चाहता हूँ कि मैं मुझे शीघ्र ही अपने पास बुला लें। फिर कभी मुझे लौटना न पड़े।

ये सब कार्य तथा उपकार आदि कार्य चित्तशुद्धि के साधन मात्र हैं, इसे मैं बहुत देख चुका। जगत् अनन्त काल तक सदैव जगत् ही रहेगा। हम लोग जैसे हैं, वैसे ही उसे देखते हैं। कौन कार्य करता है और किसका कार्य है? जगत् नामक कोई भी वस्तु नहीं है, यह सब कुछ स्वयं भगवान् हैं। भ्रम से हम इसे जगत् कहते हैं। यहाँ पर न तो मैं हूँ और न तुम और न आप—एकमात्र वही है, प्रभु—एकमेवाद्वितीयम्। अतः अब रुपये-पैसे के मामलो से मैं अपना कोई भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहता। यह सब आप लोगो का ही पैसा है, आप लोगो को जो रुपया मिले, आप अपनी इच्छा के अनुसार खर्च करें। आप लोगो का कल्याण हो।

प्रभुपदाश्रित, आपका

विवेकानन्द

पुनश्च—डॉक्टर जेन्स के कार्य के प्रति मेरी पूर्ण सहानुभूति है एव मैंने उनको यह बात लिख दी है। यदि गुडविन तथा सारदानन्द अमेरिका में कार्य को बढ़ा सकते हैं तो भगवान् उन्हें सफलता दे। स्टर्डी के, मेरे अथवा अन्य किसी के पास तो उन्होंने अपने को गिरवी नहीं रखा। 'ग्रीनएकर' के कार्यक्रम में यह एक भारी भूल हुई है कि उसमें यह छापा गया है कि स्टर्डी ने कृपा कर सारदानन्द को वहाँ रहने की (इंग्लैण्ड से अवकाश लेकर वहाँ रहने की) अनुमति प्रदान की है। स्टर्डी अथवा और कोई एक सन्यासी को अनुमति देनेवाला कौन होता है? स्टर्डी को स्वयं इस पर हँसी आयी और खेद भी हुआ। यह निरी मूर्खता है, और



कुछ भी नहीं। यह स्टडी का अपमान है, और यह समाचार यदि भारत में पहुँच जाता था मेरे कार्य में अल्पमत हानि होती। सीआयबिस मैंने उन विज्ञापना को टुकड़े टुकड़े कर फाड़कर माली में फेंक दिया है। मुझे आश्चर्य है कि क्या यह बड़ी प्रसिद्ध 'यांकी' आचरण है जिसके बारे में बातें करके अंग्रेज साय मना करते हैं? यहाँ तक कि मैं खुद भी जगत् के एक भी संन्यासी का स्वामी नहीं हूँ। संन्यासियों को जो कार्य करना उचित प्रतीत होता है उसे वे करते हैं और मैं चाहता हूँ कि मैं उनकी कुछ सहायता कर सकूँ—बस इतना ही उनसे मेरा सम्बन्ध है। पारिवारिक बन्धन स्त्री सोहे की साँकल में तोड़ चुका हूँ—जब मैं बर्मसंग की छोने की साँकल पहिनना नहीं चाहता। मैं मुक्त हूँ सदा मुक्त रहूँगा। मेरी अभिप्राया है कि सभी कोई मुक्त हो जायें—जायु के समान मुक्त। यदि म्यूमार्क बोस्टन सबका अमेरिका के अल्प किसी स्वस के निवासी बेवान्त जर्मा के लिए आग्रहशील हो तो उन्हें बेवान्त के आचार्यों को आबरपूरक ग्रहण करना उनकी बेबमाल तथा उनके प्रतिवासम की व्यवस्था करनी चाहिए। जहाँ तक मेरी बात है मैं तो एक प्रकार से अवकाश के चुका हूँ। जगत् की माटरबसाला में मेरा अभिनय समाप्त हो चुका है।

अवधीय  
विश्वकामन्द

(स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखित)

केक म्युकनि स्टिक्टूरसैय्य  
२३ नवस्त १८९६

प्रिय शशि

आज रामबाल बाबू का पत्र मुझे मिला जिसमें वे लिखते हैं कि बक्षिसेस्वर में भी रामकृष्ण के बाबिकोत्सव के दिन बहुत सी बेस्पार्यें वहाँ आयी थीं इसलिए बहुत से लोगों को वहाँ जाने की इच्छा कम होती है। इसके अतिरिक्त उनके विचार से पुस्तो के जाने के लिए एक दिन नियुक्त होना चाहिए और स्त्रियों के लिए छुट्टा। इस विषय पर मेरा निर्णय यह है

१ यदि बेस्पारो को बक्षिसेस्वर जैसे महान् तीर्थ में जाने की अनुमति नहीं है, तब वे और कहीं जायें। ईस्वर विशेषकर पाप्मियों के लिए प्रकट होते हैं पुण्यपातों से 'लिए' कन।'

२ किंग जाति जन विद्या और इनके समान और बहुत सी बस्तों के बेस्पारों को जो साम्राज्य नरक के द्वार हैं संघार में ही सीमाबद्ध रहने दो। यदि

तीर्थों के पवित्र स्थानों में ये भेदभाव बने रहेंगे तो उनमें और नरक में क्या अन्तर रह जायगा ?

३ अपनी विशाल जगन्नाथपुरी है, जहाँ पापी और पुण्यात्मा, महात्मा और दुरात्मा, पुरुष, स्त्री और बालक—विना किसी उम्र अथवा अवस्था के भेदभाव के—सबको समान अधिकार है। वर्ष में कम से कम एक दिन के लिए सहस्रों स्त्री-पुरुष पाप और भेदभाव से छुटकारा पाते हैं और परमात्मा का नाम सुनते और गाते हैं। यह स्वयं परम श्रेय है।

४ यदि तीर्थस्थान में भी एक दिन के लिए लोगों की पापप्रवृत्ति पर नियंत्रण नहीं किया जा सकता, तब समझो कि दोष तुम्हारा है, उनका नहीं। आध्यात्मिकता की एक ऐसी शक्तिशाली लहर उठा दो कि उसके समीप जो भी आ जायें, वे उसमें बह जायें।

५ जो लोग मन्दिर में भी यह सोचते हैं कि यह वेश्या है, यह मनुष्य नीच जाति का है, दरिद्र है तथा यह मामूली आदमी है—ऐसे लोगों की सख्या (जिन्हें तुम सज्जन कहते हो) जितनी कम हो उतना ही अच्छा। क्या वे लोग, जो भक्तों की जाति, लिंग या व्यवसाय देखते हैं, हमारे प्रभु को समझ सकते हैं ? मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि सैकड़ों वेश्याएँ आयें और 'उनके' चरणों में अपना सिर नवायें, और यदि एक भी सज्जन न आये तो भी कोई हानि नहीं। आओ वेश्याओ, आओ शराबियों, आओ चोरो, सब आओ—श्री प्रभु का द्वार सबके लिए खुला है। 'It is easier for a camel to pass through the eye of a needle than for a rich man to enter the Kingdom of God' (घनवान का ईश्वर के राज्य में प्रवेश करने की अपेक्षा ऊँट का सुई के छेद में घुसना सहज है।) कभी कोई ऐसे क्रूर और राक्षसी भावों को अपने मन में न आने दो।

६ परन्तु कुछ सामाजिक सावधानी की आवश्यकता है—हम यह कैसे रख सकते हैं ? कुछ पुरुष (यदि वृद्ध हो तो अच्छा हो) पहरेदारी का भार दिन भर के लिए ले लें। वे उत्सव के स्थान में परिभ्रमण करें, और यदि वे किसी पुरुष अथवा स्त्री की बातचीत या आचरण में अशिष्ट व्यवहार पाये तो वे उन्हें तुरन्त ही उद्यान से निकाल दें। परन्तु जब तक शिष्ट स्त्री-पुरुषों के समान उनका आचरण रहे, तब तक वे भक्त हैं और आदरणीय हैं—चाहे वे पुरुष हो या स्त्री, सच्चरित्र या दुश्चरित्र।

मैं इस समय स्विट्ज़रलैण्ड में भ्रमण कर रहा हूँ और प्रोफेसर डॉयसन से भेंट करने शीघ्र ही जर्मनी जानेवाला हूँ। वहाँ से मैं २३ या २४ सितम्बर तक

इंग्लैण्ड लौटकर आऊँगा और आपापी जाड़े में तुम मुझे भारत में पाओगे। तुम्हें और सबको मेरा प्यार।

तुम्हाण  
द्विबेकानन्द

(डॉ. नकुन्दा राव की लिखित)

स्विट्जरलैण्ड,  
२९ अगस्त १८९९

प्रिय नकुन्दा राव

मुझे तुम्हाण सब अभी मिला। मैं बराबर भूख रहा हूँ मैं आल्प्स के बहुत से पहाड़ों पर चढ़ा हूँ और येने कई हिम नदियाँ पार की हैं। अब मैं जर्मनी जा रहा हूँ। प्रोफेसर डॉयसन ने मुझे कौल जाने का निमन्त्रण दिया है। वहाँ से मैं इंग्लैण्ड आऊँगा। सम्भव है कि इसी रातों में मैं भारत लौटूँ।

मैंने 'प्रकृत भारत' के मुल-गुण्ट की डिजाइन की जिस बात पर आपसि की थी वह सिर्फ़ हमारा फूटपन ही नहीं था बल्कि इसमें अनेक बिजों की निरद्वेष भरमार भी है। डिजाइन गरल प्रतीनात्मक एवं सधियत होनी चाहिए। मैं 'प्रकृत भारत' के लिए लन्दन में डिजाइन बनाने की कोशिस करूँगा और तुम्हारे पास गे भेजूँगा।

मुझे बड़ा हर्ष है कि नाम अति सुन्दर रूप से चल रहा है। परन्तु मैं तुम्हें एक मन्त्राह भूंगा। भारत में जो नाम सामे में होता है वह एक दीप के बोग से सब जाना है। हमने अभी तक व्यावसायिक दृष्टिकोण नहीं विचरित किया। जाने वाणिज्य अर्थ में व्यवसाय व्यवसाय ही है, मित्रता नहीं जैनी कि हिन्दू बहादुर है नृदगी न होनी चाहिए। जाने बिम्बे जो हिमाव-विषाव हो वह बान ही नाम के लगना चाहिए और अभी एक कोर का पन रिगी दूसरे नाम न बसापि न जाना चाहिए, जाड़े दूसरे नाम भूग ही क्यों न रहना पड़े। यही है व्यावसायिक ईमानदारी। दूसरी बात यह है कि कार्य करने की बहुत शक्ति हानी चाहिए। जो कुछ तुम करन ही उग समय के लिए उम आनी तुम नकसी। उग समय उग वर्तिका का बनना ईसाक बना ला और मुझे गहरता जान होनी।

तुम उम वर्तिका के गवाहन के लक्षण दान के बाद इसी प्रकार भारतीय बन्धनी में—तीसरा लक्षण और कत्रद आँस में—भी बीजवर्ण तुम करी। भारतीय तुम्हारा है तुम्हारी है उग सब कुछ है। तुम्हें लेना जानना होगा है कि इतनाबन्धनी की वाणिज्यिक के लक्षण का साथ ही दिया है।

मेरे बच्चों को मर्घर्ष में कूदना होगा, ससार त्यागना होगा—तब दृढ नींव खड़ेगी।

वीरता से आगे बढ़ो—डिजाइन और दूसरी छोटी छोटी बातों की चिन्ता न करो—‘घोड़े के साथ लगाम भी मिल जायगी।’ मृत्युपर्यन्त काम करो—मैं तुम्हारे साथ हूँ, और जब मैं न रहूँगा, तब मेरी आत्मा तुम्हारे साथ काम करेगी। यह जीवन आता और जाता है—नाम, यश, भोग, यह सब थोड़े दिन के हैं। ससारी कीड़े की तरह मरने से अच्छा है—कहीं अधिक अच्छा है कर्तव्य क्षेत्र में सत्य का उपदेश देते हुए मरना। आगे बढ़ो।

शुभाकाक्षी,  
विवेकानन्द

(स्वामी कृपानन्द को लिखित)

स्विट्ज़रलैंड,  
अगस्त, १८९६

प्रिय कृपानन्द,

तुम पवित्र तथा सर्वोपरि निष्ठावान बनो, एक मुहूर्त के लिए भी भगवान् के प्रति अपनी आस्था न खोओ, इसीसे तुम्हें प्रकाश दिखायी देगा। जो कुछ सत्य है, वहीं चिरस्थायी बनेगा, किन्तु जो सत्य नहीं है, उसकी कोई भी रक्षा नहीं कर सकता। आधुनिक समय में तीव्र गति से प्रत्येक वस्तु की खोज की जाती है, इस समय हमारा जन्म होने के कारण हमें बहुत कुछ सुविधा प्राप्त हुई है। और लोग चाहे कुछ भी क्यों न सोचें, तुम कभी अपनी पवित्रता, नैतिकता तथा भगवत्प्रेरित के आदर्श को छोटा न बनाना। सभी प्रकार की गुप्त सस्थाओं से सावधान रहना, इस बात का सबसे अधिक ख्याल रखना। भगवत्प्रेमियों को किसी इन्द्रजाल से नहीं डरना चाहिए। स्वर्ग तथा मर्त्य लोक में सर्वत्र केवल पवित्रता ही सर्वश्रेष्ठ तथा दिव्यतम शक्ति है। सत्यमेव जयते नानृतम्, सत्येन पन्था विततो देवयान । —‘सत्य की ही जय होती है, मिथ्या की नहीं, सत्य के ही मध्य होकर देवयान मार्ग अग्रसर हुआ है’ कोई तुम्हारा सहगामी बना था न बना, इस विषय को लेकर माथापच्ची करने की आवश्यकता नहीं है, केवल प्रभु का हाथ पकड़ने में भूल न होनी चाहिए, वस इतना ही पर्याप्त है।

कल मैं ‘मॉन्ट रोसा’ हिमनद के किनारे गया था तथा चिरकालिक हिम के प्राय मध्य में उत्पन्न कुछ एक सदाबहार फूल तोड़ लाया था। उनमें से एक इस पत्र के अन्दर रखकर तुम्हारे लिए भेज रहा हूँ—आशा है कि इस पार्थिव जीवन के समस्त

हिम तथा बर्फ के बीच में तुम भी उसी प्रकार की आध्यात्मिक बुद्धि प्राप्त करोगे।

तुम्हारा स्वप्न बलि सुन्दर है। स्वप्न में हमें अपने एक ऐसे मानसिक 'स्तर' का परिचय मिलता है, जिसकी अनुमति वापस बचा में नहीं होती और कल्पना चाहे कितनी ही स्यासी क्यों न हो—जगत आध्यात्मिक सत्य बचा कल्पना के पीछे रहते हैं। साहस से काम लो। मानव जाति के कल्याण के लिए हम बचासाम्य प्रयास करेंगे। सेप सब प्रभु पर निर्भर है।

अधीर न बनो उतावली न करो। धैर्यपूर्वक एकनिष्ठ तथा शान्तिपूर्ण कर्म के द्वारा ही सफलता मिलती है। प्रभु सर्वोपरि है। बस हम जबस्य सफल होंगे—सफलता जबस्य मिलेगी। 'उसका' नाम बन्ध है।

अमेरिका में कोई आश्रम नहीं है। यदि एक आश्रम होता तो क्या ही सुन्दर होता। उससे मुझे न जाने कितना आनन्द मिलता और उसके द्वारा इस देश का न जाने कितना कल्याण होता।

द्विवेकानन्द  
द्विवेकानन्द

(श्री ई टी स्टर्डी को लिखित)

कीठ

१ सितम्बर, १८९६

प्रिय मित्र

आब्रिअरीफेसर डॉयसन के साथ मेरी मेट हुई। उनके साथ बर्षनीय स्वर्णों को बेचने तथा बैवान्त पर विचार-विमर्श करने में कल का सारा दिन बहुत ही अच्छी तरह बीता।

मैं समझता हूँ कि वे एक लड़ाकू अद्वैतवादी (A warring Advaitist) हैं। अद्वैतवाद को छोड़कर और किसी से वे निकल करना नहीं चाहते। 'ईश्वर' शब्द से वे आकर्षित ही रहते हैं। यदि उनसे सम्भव होता तो वे इसको एकदम निर्मूलक कर देते। मासिक पत्रिका सम्बन्धी तुम्हारी योजना से वे अत्यन्त आनन्दित हैं तथा इस बारे में तुम्हारे साथ कल्पन में विचार-विमर्श करना चाहते हैं। चीम ही वे बर्हा जा रहे हैं।

द्विवेकानन्द  
द्विवेकानन्द

(कुमारी हैरियेट हेल को लिखित)

एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स,  
विम्बलडन, इंग्लैण्ड,  
१७ सितम्बर, १८९६

प्रिय वहन,

स्विट्ज़रलैण्ड से यहाँ वापस आने पर अभी अभी तुम्हारा अत्यन्त शुभ समाचार मिला। 'चिरकुमारी आश्रम' (Old Maids Home) में प्राप्य सुख के बारे में आखिर तुमने अपना मतपरिवर्तन किया है, उससे मुझे बहुत ही खुशी हुई। अब तुम्हारा यह सिद्धान्त विल्कुल ठीक है कि नव्वे प्रतिशत व्यक्तियों के लिए विवाह जीवन का सर्वोत्तम ध्येय है, और जब वे इस चिरन्तन सत्य का अनुभव कर उसका अनुसरण करने को प्रस्तुत हो जायेंगे, उन्हें सहनशीलता और क्षमाशीलता अपनाती पड़ेगी तथा जीवन-यात्रा में मिल-जुल कर चलना पड़ेगा, तभी उनका जीवन अत्यन्त सुखपूर्ण होगा।

प्रिय हैरियेट, तुम यह निश्चित जानना कि 'सम्पन्न जीवन' में अन्तर्विरोध है। अतः हमें सर्वदा इस बात की सम्भावना स्वीकार करनी चाहिए कि हमारे उच्चतम आदर्श से निम्न श्रेणी की ही वस्तुएँ हमें मिलेगी, यह समझ लेने पर प्रत्येक वस्तु का हम अधिक से अधिक सदुपयोग करेंगे। मैं जहाँ तक तुमको जानता हूँ, उससे मेरी धारणा बनी है कि तुम्हारे अन्दर ऐसी प्रशांत शक्ति विद्यमान है, जो क्षमा तथा सहनशीलता से पर्याप्त पूर्ण है। अतः मैं निश्चित रूप से यह भविष्यवाणी कर सकता हूँ कि तुम्हारा दाम्पत्य-जीवन अत्यन्त सुखमय होगा।

तुम तथा तुम्हारे वाग्दत्त पति को मेरा आशीर्वाद। प्रभु तुम्हारे पति के हृदय में सर्वदा यह बात जाग्रत रखें कि तुम जैसी पवित्र, सच्चरित्र, बुद्धिशालिनी, स्नेहमयी तथा सुन्दरी सहधर्मिणी को पाना उनका सौभाग्य था। इतने शीघ्र 'अटलांटिक' महासागर पार करने की मेरी कोई सम्भावना नहीं है, यद्यपि मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि तुम्हारे विवाह में उपस्थित रहूँ।

ऐसी दशा में हम लोगों की एक पुस्तक में से कुछ अंश उद्धृत करना ही मेरे लिए उत्तम है 'अपने पति को इहलोक की समस्त काम्य वस्तुओं की प्राप्ति करने में सहायता प्रदान कर, तुम सर्वदा उनके ऐकान्तिक प्रेम की अधिकारिणी बनी, अनन्तर पौत्र-पौत्रियों की प्राप्ति के बाद जब आयु समाप्त होने लगे, तब जिस सच्चिदानन्द सागर के जलस्पर्श से सब प्रकार के विभेद दूर हो जाते हैं एव हम सब एक में परिणत होते हैं, उन्हें प्राप्त करने के लिए तुम दोनों परस्पर सहायक

उमा की तरह तुम जीवन भर पवित्र तथा निष्काम रहो तथा तुम्हारे पति का जीवन सिध वैसा उमापतिप्राप्त हो !

तुम्हारा स्नेहामीन माई  
बिबेकानन्द

(कुमारी मेरी इस को लिखित)

एयरली सॉज रिजवे पार्सन्स  
बिम्बस्वन इन्डियन  
१७ सितम्बर, १८९९

प्रिय बहन

स्विटजरलैण्ड में हो महीन तक पर्वतारोहण पद-यात्रा और हिमनदों का पृथ्वी देखने के साथ आज सम्पन्न पहुँचा। इससे मुझे एक काम हुआ—शरीर का व्यर्थ का मुटापा छँट गया और बदन कुछ पीड़ा बट गया। ठीक किन्तु उसमें भी शरीरियत नहीं क्योंकि इस जन्म में जो ठोस शरीर प्राप्त हुआ है, उसने अनन्त विस्तार की होड़ में मन को मात देने की ठान रखी है। अगर यह खँसा जाये रहा तो मुझे बस ही अपने शारीरिक रूप में अपनी व्यक्तिगत पहिचान खोनी पड़ेगी—कम से कम सब सारी दुनिया की निगाह में।

हैरियट के पत्र के श्रुत संवाद से मुझे जो प्रसन्नता हुई, उसे सख्तों से व्यक्त करना मेरे लिए असम्भव है। मैंने उसे आज पत्र लिखा है। खेद है कि उसके विवाह के अगसर पर मैं न था। सख्तों किन्तु समस्त धूमकामनाओं और आशीर्वाहों के साथ मैं अपने 'सूक्ष्म शरीर' से उपस्थित पहुँचा। और, अपनी प्रसन्नता की पूर्णता के निमित्त मैं तुमसे तथा अन्य बहनों से भी इसी प्रकार के समाचार की अपेक्षा करता हूँ।

इस जीवन में मुझे एक बड़ी तसीहत मिली है, और प्रिय मेरी मैं अब उसे तुम्हें बताना चाहता हूँ। वह है—'जितना ही ऊँचा तुम्हारा ध्येय होया उतना ही अधिक तुम्हें सन्तुष्ट होना पड़ेगा। कारण यह है कि 'संसार में' जबवा इस जीवन में भी आदर्श नाम की वस्तु की उपकल्पना नहीं हो सकती। जो संसार में पूर्णता चाहता है वह पागल है क्योंकि वह ही नहीं सकती।

सहीमें मे असीम तुम्हें कैसे मिलेगा? इसलिए मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि हैरियट का जीवन अरन्त मानवमय और सुखमय हुआ क्योंकि वह इतनी कल्पनाशील और भावुक नहीं है कि अपने को मूर्ख बना के। जीवन को सुमधुर बनाने के लिए उच्चमें पर्याप्त भावुकता है और जीवन की कठोर गुत्थियों

को, जो प्रत्येक के नागने आनी ही है, गुलजाने के लिए उगमे काफी समझदारी तथा कोमलता भी है। उनमें भी अधिक मात्रा में वे ही गुण मैककिटले में भी है। वह ऐसी लडकी है जो सर्वोत्तम पत्नी होने लायक है, पर वह दुनिया ऐसे मूढों की खान है कि इने-गिने लोग ही आन्तर्गिक मीन्द्र्य पर पाते हैं। जहाँ तक तुम्हारा जीर आइनावेल का मवाल है, मैं तुम्हें मच बताऊँगा और मेरी भाषा स्पष्ट है।

मेरी, तुम तो एक बहादुर अरब जैनी हो—ज्ञानदार और भव्य। तुम भव्य राजमहिषी बनने योग्य हो—शारीरिक दृष्टि से और मानसिक दृष्टि से भी। तुम किमी तेज-नरक, बहादुर और जोशिम उठानेवाले वीर पति की पादर्ववर्ती बन कर चमक उठोगी, किन्तु प्रिय बहन, पत्नी के रूप में तुम खराब में खराब सिद्ध होगी। सामान्य दुनिया में जो आराम में जीवन व्यतीत करनेवाले, व्यावहारिक तथा कार्य के बोझ से पिमनेवाले पति हुआ करते हैं, उनकी तो तुम जान ही निकाल लोगी। सावधान, बहन, यद्यपि किसी उपन्यास की अपेक्षा वास्तविक जीवन में अधिक रूमनिअत है, लेकिन वह है बहुत कम। अतएव तुम्हें मेरी नज़ाह है कि जब तक तुम अपने आदर्शों को व्यावहारिक स्तर पर न ले आ सको, तब तक हरगिज़ विवाह मत करना। यदि कर लिया तो दोनों का जीवन दुःखमय होगा। कुछ ही महीनों में सामान्य कोटि के उत्तम, भले युवक के प्रति तुम अपना सारा आदर खो बैठोगी और तब जीवन नीरस हो जायगा। बहन आइसावेल का स्वभाव भी तुम्हारे ही जैसा है। अन्तर इतना ही है कि किंडरगार्टन की अध्यापिका होने के नाते उसने धैर्य और सहिष्णुता का अच्छा पाठ सीख लिया है। सम्भवत वह अच्छी पत्नी बनेगी।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक कोटि तो उन लोगों की है जो दृढ़ स्नायुओवाले, शान्त तथा प्रकृति के अनुरूप आचरण करनेवाले होते हैं, वे अधिक कल्पनाशील नहीं होते, फिर भी अच्छे, दयालु, सौम्य आदि होते हैं। दुनिया ऐसे लोगों के लिए ही है—वे ही सुखी रहने के लिए पैदा हुए हैं। दूसरी कोटि उन लोगों की है जिनके स्नायु अधिक तनाव के हैं, जिनमें प्रगाढ़ भावना है, जो अत्यधिक कल्पनाशील हैं, सदा एक क्षण में बहुत ऊँचे चले जाते हैं और दूसरे क्षण नीचे उतर आते हैं—उनके लिए सुख नहीं। प्रथम कोटि के लोगों का सुख-काल प्रायः सम होता है और द्वितीय कोटि के लोगों को हर्ष विषाद के द्वन्द्व में जीवन व्यतीत करना पड़ता है। किन्तु इसी द्वितीय कोटि में ही उन लोगों का आविर्भाव होता है, जिन्हें हम प्रतिभासम्पन्न कहते हैं। इस हाल के सिद्धान्त में कुछ सत्य है कि 'प्रतिभा एक प्रकार का पागलपन है।'



इस कोटि के सोम यदि महान् बनना चाहें तो उन्हें बारे-स्यारे की बारी छड़नी होगी—मुझ के लिए मैदान छाक करना पड़ेगा। कोई बौद्ध नहीं—न पारस न जाता न बच्चे और न किसी वस्तु के प्रति आनन्द्यता से अधिक आसक्ति। अनुचित केवल एक 'भाव' के प्रति और उसीके निमित्त पीना-मरना। मैं इसी प्रकार का व्यक्ति हूँ। मैंने केवल वेदान्त का भाव ग्रहण किया है और 'मुझ के लिए मैदान छाक कर लिया है। तुम और आइशाबेक भी इसी कोटि में हो परन्तु मैं तुम्हें बधा देना चाहता हूँ मद्यपि है यह कट्टु सत्य कि 'तुम सोय करना जीवन व्यर्थ बीगट कर रही हो। या तो तुम सोय एक भाव ग्रहण कर लो, त्रिमिमित्त मैदान छाक कर लो और जीवन अर्पित कर दो या सम्पुष्ट एवं व्यावहारिक बनो आदर्श नीपा करो विवाह कर लो एवं 'सुखमय जीवन' व्यतीत करो। या तो 'मोग' या 'भोज'—मांसाहारिण सुख भोगो या सब त्याग कर योगी बनो। एक साथ दोनों की उपासना किसीकी नहीं हो सकती। भोगी या फिर कभी नहीं—नीम चुन लो। बहावत है कि 'जो बहुत लक्ष्मीय होता है उगके हाथ कुछ नहीं समझता। जब मध्ये दिस से वास्तव में और मंग के लिए कम-मंगल के लिए 'मैदान माफ करने' का संकल्प करो कुछ भी से लालचन या विज्ञान या सर्व अथवा साहित्य कुछ भी से लो और अपने शेष जीवन के लिए उगीका अपना ईश्वर बना लो। या तो मुग ही त्याग करो या मतामता। तुम्हारे और आइशाबेक के प्रति मेरी सम्पुर्ण निन्दा नहीं तुमने इसे चुना है न जो। मैं तुम्हें सुगी—जैसा कि हैरिपट मे ठीक ही चुना है—अथवा 'महान् देवता बनाता हूँ। भोजन अथवा श्रमण तथा साक्षात्कार अस्तुदान लेमी सम्पुर्ण नहीं कि जीवन को उतर हराक कर दो—विपरीत तुम मेरी। तुम एक उत्कृष्ट मस्तिष्क और पाण्डित्य में चुन लगने दे रही हो जिसके लिए जरा भी कारण नहीं है। तुममें महान् बल की आभासोत्पत्ति होनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि तुम मेरी इन बातोंका का अनुचित भाव में पक्ष्य करोगी क्योंकि तुम्हें मानना है कि मैं तुम्हें बल देत कर जो सम्बोधन करता हूँ बला ही या उगम भी अर्पित तुम्हें प्यार करता हूँ। इसी बात का मत करत करने के विचार का और जों जों अनुभव करता या रहा है जो जों इसे बता देने का विचार हो रहा है। हैरिपट मे का लोचन समाचार विना उगम हान् तुम्हें बल लय करने को प्रेरित हुआ। महान् की विचारित है। बने और सुगी होवे कर जों तक इन मन्त्रों में लय सुनना ही मन्त्रों के बला बेहर मनी हीन अथवा मैं तुम्हारे बारे में बल सुनना समझ करेता कि लय महान् कोई कर रही हो।

जबकी मैं इतनेका इतनेका के मेरी बेर करेता की। बने विचार है कि

तुमने मुना होगा कि वे जीवित जर्मन दार्शनिकों में सर्वश्रेष्ठ हैं। हम दोनों साथ ही इंग्लैंड आये और आज साथ ही यहाँ अपने मित्र से मिलने आये, जहाँ इंग्लैंड के प्रवास-काल में मैं ठहरनेवाला हूँ। संस्कृत में वार्तालाप उन्हें अत्यन्त प्रिय है और पाश्चात्य देशों में संस्कृत के विद्वानों में वे ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो उसमें वातचीत कर सकते हैं। वह अभ्यस्त बनना चाहते हैं, इसलिए संस्कृत के सिवा अन्य किसी भाषा में वे मुझसे बातें नहीं करते।

यहाँ मैं अपने मित्रों के बीच आया हूँ, कुछ सप्ताह कार्य करूँगा और तब जाडो में भारत वापस लौट जाऊँगा।

तुम्हारा सदैव सस्नेह भाई,  
विवेकानन्द

(श्री आलामिंगा पेरुमल को लिखित)

द्वारा कुमारी मूलर,  
एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स,  
विम्बलडन, इंग्लैंड,  
२२ सितम्बर, १८९६

प्रिय आलामिंगा,

मैक्समूलर द्वारा लिखित रामकृष्ण पर जो लेख मैंने तुम्हें भेजा था, आशा है मिला होगा। उन्होंने कही भी मेरे नाम की चर्चा नहीं की है—इसके लिए दुःखित मत होना। क्योंकि मुझसे परिचय होने के छ माह पूर्व उन्होंने यह लेख लिखा था। और, यदि उनका मूल वक्तव्य सही है तो फिर इससे क्या लेना देना कि किसका नाम उन्होंने लिया और नहीं लिया। जर्मनी में प्रोफेसर डॉयसन के साथ मेरा समय आनन्दपूर्वक कटा। इसके बाद हम दोनों साथ ही लन्दन आये और हमारी मित्रता घनिष्ठ हो गयी है।

मैं शीघ्र ही उनके सम्बन्ध में एक लेख भेज रहा हूँ। सिर्फ एक प्रार्थना है, मेरे लेख के पहले पुराने ढग का—‘प्रिय महाशय’ मत जोड़ा करो। तुमने ‘राजयोग’ पुस्तक अभी तक देखी है या नहीं, इस वर्ष के लिए मैं एक प्रारूप भेजने की चेष्टा करूँगा। मैं तुम्हें ‘डेली न्यूज’ में प्रकाशित रूस के जार द्वारा लिखित यात्रा-पुस्तक की समीक्षा भेज रहा हूँ। जिस परिच्छेद में उन्होंने भारत को अध्यात्म और ज्ञान का देश कहा है—उसकी तुम अपने पत्र में उद्धृत करके एक निबन्ध ‘इंडियन मिरर’ को भेज दो।

तुम ज्ञानयोग के व्याख्यान को खुशी से प्रकाशित कर सकते हो। और

इस कोटि के लोग यदि महान् बनना चाहें तो उन्हें बारे-ब्यारे की ज़रूरि कटनी होगी—मुझ के लिए मैदान साफ़ करना पड़ेगा। कोई बोझ नहीं—ब जोर म जाता न बच्चे और न किसी वस्तु के प्रति आवश्यकता से अधिक आसक्ति। अनुरक्ति केवल एक 'भाव' के प्रति और उसीके निमित्त जीना-भरना। मैं इसी प्रकार का व्यक्ति हूँ। मैंने केवल वेदान्त का भाव ग्रहण किया है और 'मुझ के लिए मैदान साफ़ कर लिया है। तुम और आइसाबस भी इसी कोटि में हो परन्तु मैं तुम्हें बता देना चाहता हूँ मद्यपि है यह कष्ट सत्य कि 'तुम लोग अपना जीवन व्यर्थ बीत कर रही हो। या तो तुम लोग एक भाव ग्रहण कर जो तन्निमित्त मैदान साफ़ कर लो और जीवन अर्पित कर दो या सन्तुष्ट एवं व्यावहारिक बनो आसर्ष नीचा करो विवाह कर लो एवं 'सुखमय जीवन' व्यतीत करो। या तो 'भोग' या 'भोग्य'—सांसारिक सुख भोगो या सब त्याग कर योगी बनो। 'एक साथ दोनों की उपरकम्बि किसीको नहीं ही सकती। जमी या फिर कमी नहीं—सीधे चुन लो। कहावत है कि 'जो बहुत सविशेष होता है, उसके हाथ कुछ नहीं लगता। अब सुन्दे दिख से वास्तव में और सदा के लिए कर्म-संधाम के लिए 'मैदान साफ़ करने' का संकल्प करो कुछ भी के लो वर्णन या विज्ञान या बर्म अथवा साहित्य कुछ भी के लो और अपने शेष जीवन के लिए उसीको अपना ईश्वर बना लो। या तो मुझ ही काम करो या महानता। तुम्हारे और आइसाबस के प्रति मेरी सहानुभूति नहीं तुमने इस चुना है न उसे। मैं तुम्हें सुखी—जैसा कि हीरियट ने ठीक ही चुना है—अथवा 'महान्' देखना चाहता हूँ। भोजन मद्यपान शृंगार तथा सामाजिक आनन्दइतन ऐसी वस्तुएँ नहीं कि जीवन को उनके हवाले कर दो—विशेषतः तुम मेरी। तुम एक उत्कृष्ट मस्तिष्क और पौष्टताओं में चुन लगने दे रही हो जिसके लिए खरा भी कारण नहीं है। तुममें महान् बनने की महत्वाकांक्षा होनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि तुम मेरी इन बटुनितियों को समुचित भाव से ग्रहण करोगी क्योंकि तुम्हें माकूम है कि मैं तुम्हें बहन कह कर जो सम्बोधित करता हूँ वैसा ही या उससे भी अधिक तुम्हें प्यार करता हूँ। इसे कताने का धेरा बहुत पहले से विचार का और ज्यों ज्यों अनुभव बढ़ता जा रहा है, त्यों त्यों इसे बता देने का विचार हो रहा है। हीरियट से जो हर्षमय समाचार मिला उससे इतना तुम्हें यह सब कहने को प्रेरित हुआ। तुम्हारे भी विवाहित हो जाने और सुखी होने पर, जहाँ तक इस संसार में कुछ सुख हो सकता है, मुझे बेहद खमी होगी अन्वया में तुम्हारे बारे में यह सुनना पसन्द कन्वैना कि तुम महान् कार्य कर रही हो।

जर्मनी में प्रीन्डर डॉपनन ने मेरी भेंट मजेदार थी। मुझे विश्वास है कि

सदा सहायता मिलती थी तथा जो मुझमें शक्ति एव उत्साह का संचार करता था। और कई हजार मील की दूरी के वावजूद वही मुखमंडल मेरे मनश्चक्षु के सम्मुख उदित हुआ, क्योंकि उस अतीन्द्रिय भूमि में दूरत्व का स्थान ही कहाँ है? अस्तु, तुम तो अपने शान्तिमय तथा पूर्ण विश्रामदायक घर लौट चुकी हो—परन्तु मेरे समक्ष प्रतिक्षण कर्मों का ताडव बढ़ता ही जा रहा है। फिर भी तुम्हारी शुभ-कामनाएँ सदा ही मेरे साथ हैं—ठीक है न?

किसी गुफा में जाकर चुपचाप निवास करना ही मेरा स्वाभाविक संस्कार है, किन्तु पीछे से मेरा अदृष्ट मुझे आगे की ओर ढकेल रहा है और मैं आगे बढ़ता जा रहा हूँ। अदृष्ट की गति को कौन रोक सकता है?

ईसा मसीह ने अपने 'पर्वत पर उपदेश' (Sermon on the Mount) में यह क्यों नहीं कहा—'जो सदा आनन्दमय तथा आशावादी हूँ, वे ही धन्य हैं, क्योंकि उनको स्वर्ग का राज्य तो पहले ही प्राप्त हो चुका है।' मेरा विश्वास है कि उन्होंने निश्चय ही ऐसा कहा होगा, यद्यपि वह लिपिवद्ध नहीं हुआ, कारण यह है कि उन्होंने अपने हृदय में विश्व के अनन्त दुःख को धारण किया था एव यह कहा था कि साधु का हृदय शिशु के अन्तःकरण के सदृश है। मैं समझता हूँ, उनके हजारों उपदेशों में से शायद एकाध उपदेश, जो याद रहा, लिपिवद्ध किया गया है।

हमारे अधिकांश मित्र आज आये थे। गाल्सवर्दी परिवार की एक सदस्या—विवाहित पुत्री भी आयी थी। श्रीमती गाल्सवर्दी आज नहीं आ सकी, सूचना बहुत देर से दी गयी थी। अब हमारे पास एक हॉल भी है, खासा बड़ा जिसमें लगभग दो सौ व्यक्ति अथवा इससे अधिक भी आ सकते हैं। इसमें एक बड़ा सा कोना है जिसमें पुस्तकालय की व्यवस्था की जायगी। अब मेरी सहायता के लिए भारत से एक और व्यक्ति आ गया है।

मुझे स्विट्जरलैण्ड में बड़ा आनन्द आया, जर्मनी में भी। प्रोफेसर डॉयसन बहुत ही कृपालु रहे—हम दोनों साथ लन्दन आये और दोनों ने यहाँ काफ़ी आनन्द लिया। प्रोफेसर मैक्समूलर भी बहुत अच्छे मित्र हैं। कुल मिलाकर इंग्लैण्ड का काम मजबूत हो रहा है—और सम्माननीय भी, यह देखकर कि वड़े वड़े विद्वान् सहानुभूति प्रदर्शित कर रहे हैं। शायद मैं अगली सर्दियों में कुछ अग्र्य मित्रों के साथ भारत जाऊँगा। यह तो बात हुई अपने वारे में।

उस धार्मिक परिवार का क्या हाल है? मुझे विश्वास है कि सब कुछ विल्कुल ठीक चल रहा है। अब तो तुम्हें फोक्स का समाचार सुनने को मिला होगा। मुझे डर है कि उसके जहाज़ी यात्रा शुरू करने के एक दिन पहले, मेरे यह कहने से कि तुम तब तक मेवेल से विवाह नहीं कर सकते, जब तक तुम काफ़ी कमाने न लगे,

डॉक्टर मन्बुन्दा राव भी उसे अपने 'प्रबुद्ध भारत' के लिए ले सकते हैं किन्तु सिर्फ़ सरस और सहज भाषणों को। उन व्याख्यानों को एक बार सावधानी से देखकर उसमें पुनरावृत्ति और परस्पर विरोधी बिचारों को निकाल देना है। मुझे पूरी आशा है कि लिखने के लिए अब अधिक समय मिलेगा। पूरी क्षिति के साथ कार्य में जुट रही।

समी को प्यार—

कुम्हार

विश्वकामन्द

पुनरुप—मेरे उद्यत होनेबासे परिच्छेद को रेखांकित कर दिया है। बाकी बचा किसी पत्रिका के लिए निरर्बक है।

मैं नहीं समझता कि अभी पत्रिका को मासिक बनाने से कोई काम होया— जब तक कि तुमको यह विश्वास न हो जाय कि उसका कलेक्टर मोटा होना। वैसे कि अभी है—कलेक्टर और सामग्री समी सामुची है। अभी भी एक बहुत बड़ा लेख पड़ा हुआ है, जो अभी तक चुआ नहीं गया है। मया—तुलसीदास कबीर और जानक तथा दक्षिण भारत के सन्तों के जीवन और कृति के सम्बन्ध में लिखना। इसे विद्वत्तापूर्ण शैली तथा पूरी जानकारी के साथ लिखना होया—बीछे डाले और अपकथरे डग से नहीं बसक मे पत्र को आबर्ष—वैशाख के प्रचार के अलावा भारतीय अनुसंधान और ज्ञानविषयाचार्यों का—मुख-मथ बनाना होगा। हाँ बर्म ही इसका आधार होगा। तुम्हें अच्छे लेखकों से निककर अच्छी सामग्री के लिए आग्रह करना होया तथा उनकी लेखनी से अच्छी रचना बसूळ करली होनी। समय के साथ कार्य में लगे रहो—

कुम्हार

विश्वकामन्द

(कुमाठी जीवैजिन मैकलिबॉर्ड को लिखित)

डा. कुमाठी मूरर,

एयरली कॉज रिजवे नार्थव

बिम्बसदन ईस्टव

७ अक्टूबर, १८९६

प्रिय जो

जुन अभी लखना के। और इजारे भी एकफल चुक ही गयी है। मेरा मत है कि उन परिचित मुर को चारों ओर डूँड रहा था जिसमें कभी निरुन्नाह की एक श्या तक नहीं रिगनी थी जो कभी परिचित नहीं होना था और जिससे मुझे

इसके लिए उसने महाकाक्षा से समस्त सुन्दर वस्तुओं का एक साथ आवाहन कर अपने शाश्वत मन में एकत्र किया और उनको एक चित्र की भाँति उत्कृष्ट तथा आदर्श रूप दिया। ऐसे दिव्य, ऐसे आश्चर्यजनक आदि रूप से उस सौन्दर्य राशि की रचना हुई।' (कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुन्तलम्)

'जो', 'जो' तुम वह हो, मैं केवल इतना और जोड़ देना चाहता हूँ कि उसी रचयिता ने समस्त पवित्रता, समस्त उदारशयता तथा अन्य समस्त गुणों को भी एकत्र किया और तब 'जो' की रचना हुई।

शुभाकाक्षी,

विवेकानन्द

पुनश्च—सेवियर दम्पति तुम्हें अपनी शुभकामनाएँ भेज रहे हैं। उनके निवासस्थान से ही मैं यह पत्र लिख रहा हूँ।

विवेकानन्द

(कुमारी एलेन वाल्डो या हरिदासी नामक एक शिष्या को लिखित)

एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स,

विम्बलडन, इंग्लैण्ड

८ अक्तूबर, १८९६

प्रिय वाल्डो,

स्विट्ज़रलैण्ड में मुझे पूर्ण विश्राम मिला एव प्रोफेसर पॉल डॉयसन के साथ मेरी विशेष मित्रता हो गयी है। वस्तुतः अन्य स्थानों की अपेक्षा यूरोप में मेरा कार्य अधिक सन्तोषजनक रूप से बढ़ रहा है तथा भारतवर्ष में इसका बहुत ज़्यादा प्रभाव पड़ेगा। लन्दन में पुनः कक्षाएँ चालू हो गयी हैं—आज तत्सम्बन्धी प्रथम व्याख्यान होगा। अब मुझे एक ऐसा सभागृह मिल गया है, जिस पर मेरा ही नियंत्रण है, उसमें दो सौ या उससे भी अधिक व्यक्ति बैठ सकते हैं।

यह तो तुम जानती ही हो कि अग्रेज लोग कितने दृढचित्त होते हैं, अन्य जातियों की अपेक्षा उन लोगों में पारस्परिक ईर्ष्या की भावना भी बहुत ही कम होती है और यही कारण है कि उनका प्रभुत्व सारे ससार पर है। दासता की प्रतीक खुशामद से सर्वथा दूर रहकर उन्होंने आज्ञा-पालन, पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ नियमों के पालन के रहस्य का पता लगा लिया है।

प्रोफेसर मैक्समूलर अब मेरे मित्र हैं। मुझ पर लन्दन की छाप लग चुकी है। 'र' नामक युवक के बारे में मुझे विशेष कुछ ज्ञात नहीं। वह बंगाली है तथा कुछ कुछ सस्कृत भी पढ़ सकता है। तुम तो मेरी इस दृढ़ धारणा से परिचित ही हो कि

बहु कुछ निराश हा गया था। क्या मेरेस अभी तुम्हारे यहाँ है? उससे मेरा प्यार कहना। तुम अपना वर्तमान पता भी मुझको लिखना।

माँ कैसे है? मुझे विश्वास है कि फ्रान्सिस पूर्ववत् पत्रके लरे साने की तरह है। अल्बर्ट की संपीत और भापाएँ सीख रही होंगी पूर्ववत् गूब हँसती होंगी और खूब खेब जाती हामी? हाँ आजकल फ्ल-बादाम ही मेरा मुख्य आहार है, एक के मुझे काफ़ी अनुकूल प्राप्त पड़ते हैं। यदि कभी उस अज्ञात 'उच्च शैलीय' बड़े डॉक्टर के साथ तुम्हारी मेट हो ता यह रहस्य उन्हें बतलाना। मेरी जर्नी बहुत कुछ घट चुकी है। जिस दिन मापन बना होता है, उस दिन अल्पस पीष्टिक भोजन करना पड़ता है। हासिस का क्या समाचार है? उसकी तरह के मधुर स्वभाव का कोई दूसरा बालक मुझे बिलामी नहीं दिया। उसका समग्र जीवन सर्वविध आसीर्बाद से पूर्ण हो।

मेरे सुना है कि परपुष्ट के मठबाद के समर्पण में तुम्हारे मित्र कोला भाषण बे रहे है? इतमें सन्नेह नहीं कि उनका साम्य विधेय अनुकूल नहीं है। कुमारी एम्प्रीड तथा हमारे मोपालन्द का क्या समाचार है? 'ज व व' गोष्ठी की क्या खबर है? और हमारी श्रीमती (नाम बाद नहीं है) कैसे हैं? ऐसा सुना जा रहा है कि हाल ही में आधा बहाव भरकर हिन्दू, बौद्ध मुसलमान तथा अन्य और न जाने कितने ही सम्प्रदाय के लोग अमेरिका जा पहुँचे हैं तथा महात्माओं की खोज करनेवालों ईसाई धर्म-संसारको जादि का दूसरा एक भारत में चुका है। बहुत खूब। सारतवर्ष तथा अमेरिका—ये दोनों बेस धर्म-उद्योग के लिए बने जात पड़ते हैं। किन्तु 'बो' सावधान। विधर्मियों की कूट खतरनाक है। श्रीमती स्टलिम से माध राखते में भेंट हुई। आजकल वे मेरे माधम सुनने नहीं जाती। यह उनके लिए उचित ही है क्योंकि अल्पविक बाधनिकता भी ठीक नहीं है। क्या तुम्हें उस महिला की याद है जो मेरी हर समा में इतनी बेर छे जाती थी कि उसको कुछ भी सुनने को न भिख्या वा किन्तु तुरन्त बाद मे वह मुझे फक्ककर इतनी बेर एक बातचीत में समाये रखती कि भूख से मेरे उबर में 'वाटरसू' का महावर्षाम छिड़ जाता था। वह मायी थी। लोग जा रहे हैं तथा और भी आर्मेपि। यह आत्म का विषय है।

रात बढ़ती जा रही है अत 'बो' बिदा—(स्युयार्क मे मी क्या ठीक ठीक अबब-काम्यवे का पालन करना आवश्यक है?) प्रभु गिरलर तुम्हारा कस्याव करें।

'मनुष्य के प्रवीण रचयिता ब्रह्मा को एक ऐसे निर्दोष रूप की रचना करने की इच्छा हुई जिसका अनुपम सौख्य सृष्टि की सुन्दरतम कृटियाँ में सर्वोत्तम हो।

इसके लिए उसने महाकाक्षा से समस्त सुन्दर वस्तुओं का एक साथ आवाहन कर अपने शाश्वत मन में एकत्र किया और उनको एक चित्र की भाँति उत्कृष्ट तथा आदर्श रूप दिया। ऐसे दिव्य, ऐसे आश्चर्यजनक आदि रूप से उस सौन्दर्य राशि की रचना हुई।' (कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुन्तलम्)

'जो', 'जो' तुम वह हो, मैं केवल इतना और जोड़ देना चाहता हूँ कि उसी रचयिता ने समस्त पवित्रता, समस्त उदारशयता तथा अन्य समस्त गुणों को भी एकत्र किया और तब 'जो' की रचना हुई।

शुभाकाक्षी,  
विवेकानन्द

पुनश्च—सेवियर दम्पति तुम्हें अपनी शुभकामनाएँ भेज रहे हैं। उनके निवासस्थान से ही मैं यह पत्र लिख रहा हूँ।

विवेकानन्द

(कुमारी एलेन वाल्डो या हरिदासी नामक एक शिष्या को लिखित)

एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स,  
विम्बलडन, इंग्लैण्ड  
८ अक्टूबर, १८९६

प्रिय वाल्डो,

स्विट्ज़रलैण्ड में मुझे पूर्ण विश्राम मिला एवं प्रोफेसर पॉल डॉयसन के साथ मेरी विशेष मित्रता हो गयी है। वस्तुतः अन्य स्थानों की अपेक्षा यूरोप में मेरा कार्य अधिक सन्तोषजनक रूप से बढ़ रहा है तथा भारतवर्ष में इसका बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ेगा। लन्दन में पुनः कक्षाएँ चालू हो गयी हैं—आज तत्सम्बन्धी प्रथम व्याख्यान होगा। अब मुझे एक ऐसा सभागृह मिल गया है, जिस पर मेरा ही नियंत्रण है, उसमें दो सौ या उससे भी अधिक व्यक्ति बैठ सकते हैं

यह तो तुम जानती ही हो कि अग्रेज लोग कितने दृढचित्त होते हैं, अन्य जातियों की अपेक्षा उन लोगों में पारस्परिक ईर्ष्या की भावना भी बहुत ही कम होती है और यही कारण है कि उनका प्रभुत्व सारे ससार पर है। दासता की प्रतीक खुशामद से सर्वथा दूर रहकर उन्होंने आज्ञा-पालन, पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ नियमों के पालन के रहस्य का पता लगा लिया है।

प्रोफेसर मैक्समूलर अब मेरे मित्र हैं। मुझ पर लन्दन की छाप लग चुकी है। 'र' नामक युवक के बारे में मुझे विशेष कुछ ज्ञात नहीं। वह बंगाली है तथा कुछ कुछ संस्कृत भी पढा सकता है। तुम तो मेरी इस दृढ धारणा से परिचित ही हो कि



विद्यार्थी काम-काज पर विद्यार्थी नहीं पायी उस पर मुझे कठई भरोसा नहीं। तुम उसे सैद्धांतिक विषयों की शिक्षा देने का अवसर प्रदान कर देना सकती हो किन्तु वह 'राजयोग' कमी भी न सिखा पाये। जो नियमित रूप से उसमें प्रशिक्षित नहीं उसके लिए इससे सिखाइ करना नितांत खतरनाक है। सारवानन्द के सम्बन्ध में कोई बर नहीं है, वर्तमान भारत के सर्वश्रेष्ठ योगी का आशीर्वाद उसे प्राप्त है। तुम क्यों नहीं शिक्षा देना प्रारम्भ करती हो? इस 'र' शब्द की अपेक्षा तुम्हारा दार्शनिक ज्ञान कहीं अधिक है। 'कृपा' की नोटिस निकालो तथा नियमित रूप से बर्नबर्न करो और व्याख्यान दो।

अनेक हिन्दुओं यहाँ तक कि मेरे किसी मुदमाई को अमेरिका में सफलता मिली है—इस संवाद से मुझे जो आनन्दानुभव होता है, उससे सहस्र गुना अधिक ज्ञानम् मुझे तब प्राप्त होगा जब मैं यह देखूँगा कि तुम लोगों में से किसीने इसमें हाथ बँटाया है। मनुष्य दुनिया को पीठना चाहता है किन्तु अपनी सम्पन्न के निकट परामित होता चाहता है। ज्ञानान्नि प्रवृत्त करो। ज्ञानान्नि प्रवृत्त करो।

पुभाकारी  
विश्वकालम्

(भीमती जोसि बुस को लिखित)

विश्वकालम् इम्पीय  
८ अक्तूबर, १८९६

प्रिय भीमती बुस

भीमती में प्रोफेसर जॉयसन के साथ मेरी भेंट हुई थी। कौक में मैं उनका बसिनि जा। हम दोनों एक साथ सम्पन्न आये थे तथा वहाँ पर भी कई बार उनसे मिल कर मुझे विश्वेव ज्ञानम् मिला। बर्न तथा समाज सम्बन्धी कार्य के विभिन्न बर्नों के प्रति यद्यपि मेरी पूर्ण सहानुभूति है किन्तु भी मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि प्रत्येक के कार्यों का विषय विमान होना नितांत आवश्यक है। वैदिक प्रचार ही हमारा मुख्य कार्य है। अन्य कार्यों में सहामता पहुँचाना भी इसी आधार का सहायक होना चाहिए। माता है कि आप इस विषय को सारवानन्द के हृदय में अच्छी तरह बुझता के साथ जमा दिये।

क्या आपने प्रोफेसर मैक्समूलर रचित भी रामहृदय सम्बन्धी लेख पढ़ा? यहाँ पर इम्पीय में प्रायः सभी लोग हमारे सहायक बनत जा रहे हैं। न केवल हमारे कार्यों का यहाँ पर विस्तार हो रहा है, बल्कि उनको सम्मान भी मिल रहा है।

पुभाकारी  
विश्वकालम्

(१८९६ ई० के अन्त में डॉ० बरोज़ की भारतव्यापी व्याख्यान-यात्रा के पूर्व 'इण्डियन मिरर' नामक पत्र में स्वामी जी का एक पत्र प्रकाशित हुआ था, जिसमें उन्होंने अपने देशवासियों को डॉ० बरोज़ का परिचय प्रदान करते हुए उनका उपयुक्त अभिनन्दन करने के लिए अनुरोध किया था। नीचे उसी का कुछ अंश दिया जा रहा है।)

लन्दन,

२८ अक्टूबर, १८९६

शिकागो विश्व मेला में सम्मेलनों की विराट् कल्पना को सफल बनाने के लिए श्री सी० बॉनी ने डॉ० बरोज़ को अपना सहकारी निर्वाचित कर सबसे उपयुक्त व्यक्ति पर ही कार्यभार सौंपा था, डॉ० बरोज़ के नेतृत्व में उन सम्मेलनों में धर्म-महासभा को जो महत्त्व प्राप्त हुआ था, वह आज इतिहास-प्रसिद्ध है।

डॉ० बरोज़ का अद्भुत साहस, अथक परिश्रम, अविचलित धैर्य तथा स्वभाव-सिद्ध भद्रता के फलस्वरूप ही इस सम्मेलन को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई थी।

उस आश्चर्यजनक शिकागो-सम्मेलन के द्वारा ही भारत, भारतवासी तथा भारतीय भावनाएँ ससार के समक्ष पहले से भी अधिक उज्ज्वल रूप से प्रकट हुई हैं एव इस स्वजातीय कल्याण के लिए उस सभा से सम्बन्धित अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा हम डॉ० बरोज़ के ही अधिक ऋणी हैं।

इसके सिवाय वे हमारे समीप धर्म के पवित्र नाम तथा मानव जाति के एक श्रेष्ठ आचार्य का नाम लेकर आ रहे हैं एव मेरा यह विश्वास है कि 'नेज़रथ के पैगम्बर' द्वारा प्रचारित धर्म की उनकी व्याख्या अत्यन्त उदार होगी तथा मन को उन्नत बनायेगी। ईसा की शक्ति का जो परिचय वे देना चाहते हैं, वह दूसरों के मत के प्रति असहिष्णु, प्रभुत्वपूर्ण और दूसरों के प्रति घृणापूर्ण मनोवृत्तिप्रसूत नहीं है। परन्तु एक भाई की तरह उन्नति-अभिलाषी भारत के विभिन्न वर्गों के सहयोगी भाइयों में सम्मिलित होने की आकांक्षा से प्रेरित होकर—वे जा रहे हैं। सबसे पहले हमें यह स्मरण रखना है कि कृतज्ञता तथा अतिथि-सेवा ही भारतीय जीवन का वैशिष्ट्य है, अतः अपने देशवासियों के समीप मेरा यह विनम्र अनुरोध है कि पृथिवी के दूसरे छोर से भारत जानेवाले इस विदेशी सज्जन के प्रति वे ऐसा आचरण करें जिससे उन्हें यह पता चल सके कि दुःख, दारिद्र्य तथा अवनति की स्थिति में भी हमारा हृदय, अतीत की तरह ही अर्थात् जब भारतवर्ष आर्यभूमि के नाम से प्रख्यात था एव उसके ऐश्वर्य की बात जगत् की सब जातियों की जिह्वा पर रहती थी, आज भी मित्रतापूर्ण है।

त्रिसने काम-काज पर विषय नहीं पायी उस पर मुझे इतई मरोसा नहीं। तुम उसे सैयान्तिक विषयों की सिखा देने का बजसर प्रवान कर देय सकती हो किन्तु वह 'उजबोध' कभी भी न सिखा पाये। जो निमयित रूप से उसमें प्रविशित नहीं उसके किए इससे बिसबाड़ करना निदान्त सतरनाक है। सारदानन्द के सम्बन्ध में कोई डर नहीं है, वर्तमान भारत क सर्वश्रेष्ठ योगी का बायीबाँध उसे प्राप्त है। तुम क्यों नहीं सिखा देना प्रारम्भ करती हो? इस 'र' बालक की अपेक्षा तुम्हारा दार्शनिक ज्ञान कहीं अधिक है। 'क्या' की मोटिस निकालो तथा नियमित रूप से बर्मबर्बा करो और व्याख्या करो।

बनेक हित्पुत्रों यहाँ तक कि मेरे किसी गुरुभाई को अमेरिका में सफसठा मिली है—इस संवाद से मुझे जो आनन्दानुभव होता है, उससे सहस्र गुना अधिक आनन्द मुझे तब प्राप्त होता जब मैं यह देखूँगा कि तुम लोगों में से किसीने इसमें हाक बँटाया है। मनुष्य दुनिया की जीतना चाहता है किन्तु अपनी सन्तान के निकट पराश्रित होना चाहता है। ज्ञानामि प्रवर्धित करो। ज्ञानामि प्रवर्धित करो।

सुभाषाक्षी  
विश्वेकानन्द

(श्रीमती मोति बूझ को लिखित)

विश्वेकानन्द इन्दीन्द्र  
८ जनवरी, १८९६

प्रिय श्रीमती बूझ

जर्मनी में प्रोफेसर डॉमसन के साथ मेरी में हुई थी। किस से मैं उनका जतिधि पा। हम दोनों एक साथ सन्धन थाये थे तथा यहाँ पर भी कई बार उनसे मिल कर मुझे विशेष आनन्द मिला। बर्म तथा समाज सम्बन्धी कार्य के विभिन्न अंगों के प्रति यद्यपि मेरी पूर्ण सहानुभूति है फिर भी मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि प्रत्येक के कार्यों का विशेष विभाय होना निदान्त आवश्यक है। वेदान्त-प्रचार ही हमारा मुख्य कार्य है। अन्य कार्यों से सहायता पहुँचाना भी इसी आदर्श का सहायक होना चाहिए। आशा है कि आप इस विषय को सारदानन्द के हृदय में अच्छी तरह बुझता के साथ जमा देंगे।

क्या आपने प्रोफेसर मैक्समूलर रचित श्री रामकृष्ण सम्बन्धी केस पढ़ा? यहाँ पर इन्दीन्द्र से प्राप्त सभी लोग हमारे सहायक बनते जा रहे हैं। न केवल हमारे कार्यों का यहाँ पर विस्तार हो रहा है, बल्कि जनकी सम्मान भी मिल रहा है।

सुभाषाक्षी  
विश्वेकानन्द

बाह्य स्वर्ग या राम-राज्य का अस्तित्व केवल कल्पना में ही है, परन्तु मनुष्य के भीतर इनका अस्तित्व पहले से ही है। कस्तूरी की सुगन्ध के कारण की व्यर्थ खोज करने के बाद, कस्तूरी-मृग अन्त में उसे अपने में ही पाता है।

बाह्य समाज सर्वदा शुभ और अशुभ का सम्मिश्रण होगा—बाह्य जीवन की अनुगामी उसकी छाया अर्थात् मृत्यु, सर्वदा उसके साथ रहेगी, और जीवन जितना लम्बा होगा, उसकी छाया भी उतनी ही लम्बी होगी। केवल जब सूर्य हमारे सिर पर होता है, तब कोई छाया नहीं होती। जब ईश्वर, शुभ और अन्य सब कुछ हममें ही है तो अशुभ कहाँ? परन्तु बाह्य जीवन में प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है और हर शुभ के साथ अशुभ उसकी छाया की तरह जाता है। उन्नति में अधोगति का समान अंश रहता है, कारण यह है कि अशुभ और शुभ एक ही पदार्थ हैं, दो नहीं, भेद अभिव्यक्ति में है—मात्रा में है, न कि जाति में।

हमारा जीवन स्वयं दूसरों की मृत्यु पर अवलम्बित है, चाहे वनस्पतियाँ हो, चाहे पशु, चाहे कीटाणु। एक बड़ी भारी भूल जो हम लोग बहुधा करते हैं, वह यह कि शुभ को हम सदा बढ़नेवाली वस्तु समझते हैं और अशुभ को एक निश्चित राशि मानते हैं। इससे हम तर्क द्वारा सिद्ध करते हैं कि यदि अशुभ दिन दिन घट रहा है तो एक समय ऐसा आयेगा, जब शुभ ही अकेला शेष रह जायगा। मिथ्या पूर्व पक्ष को स्वीकार कर लेने से हमारा तर्क अशुद्ध हो जाता है। यदि शुभ की मात्रा बढ़ रही है तो अशुभ की भी बढ़ती है। मेरी जाति की जनता की अपेक्षा मेरी आकाशाएँ बहुत बढ़ गयी हैं। मेरा सुख उनसे अत्यधिक है, परन्तु मेरा दुःख भी उनसे लाखों गुना तीव्र है। जिस स्वभाव के कारण तुम्हें शुभ के स्पर्श मात्र का आभास होता है, उसीसे तुम्हें अशुभ के स्पर्श मात्र का भी आभास होगा। जिन स्नायुओं द्वारा सुख का अनुभव होता है, उन्हींके द्वारा दुःख का भी, और एक ही मन दोनों का अनुभव करता है। ससार की उन्नति का अर्थ है सुख और दुःख—दोनों की अधिक मात्रा। जीवन और मृत्यु, शुभ और अशुभ, ज्ञान और अज्ञान का सम्मिश्रण—यही 'माया' कहलाती है—यही है विश्व का नियम। तुम अनन्त काल तक इस जाल में सुख और दुःख की खोज करो—तुम्हें बहुत सुख और बहुत दुःख दोनों मिलेंगे। यह कहना कि ससार में केवल शुभ ही हो, अशुभ नहीं, बालको का प्रलाप मात्र है। दो मार्ग हमारे सामने हैं—एक तो सब प्रकार की आशा को छोड़कर ससार जैसा है वैसा स्वीकार करके, दुःख की वेदना को सहन करें, इस आशा में कि कभी कभी सुख का अल्पांश मिल जाय करेगा। दूसरा मार्ग यह है कि हम सुख को दुःख का ही एक दूसरा रूप समझकर सुख की खोज को त्याग दें तथा सत्य की खोज करें—और जो सत्य की खोज करने का साहस रखते हैं, वे उसे नित्य अपने

(कुमारी मेरी हृद को मिलित)

१८ वेकोट पार्सन्स,  
वेस्टमिनिस्टर, लन्दन,  
१ नवम्बर, १८९९

मिय मेरी

'सोना और चांदी मेरे पास किंचित् मात्र नहीं है, किन्तु जो मेरे पास है वह मैं तुम्हें मुक्तहस्त दे रहा हूँ।—और वह यह ज्ञान है कि स्वर्ग का स्वर्गत्य रजत का रजतत्व पुंस्य का पुंस्यत्व स्त्री का स्त्रीत्व और सब वस्तुओं का सत्यस्वल्प परमात्मा ही है और इस परमात्मा को प्राप्त करने के लिए बाह्य ब्रह्म में हम जनार्दि कास से प्रयत्न करते आ रहे हैं, और इस प्रयत्न में हम अपनी कल्पना की 'विभिन्न' वस्तुओं—पुंस्य स्त्री बालक घरीर, मन पृथ्वी सूर्य चन्द्र तारे, संसार, प्रेम देव बन सम्पत्ति इत्यादि को और भूत राक्षस देवदूत देवता ईश्वर इत्यादि को भी—त्यागते रहे हैं।

सब तो यह है कि प्रभु हममें ही है, हम स्वयं प्रभु हैं—जो कित्य द्रष्टा सच्चा अहम् तथा अतीन्द्रिय है। उस ईश नाभ से देखने की प्रकृति तो केवल समय और बुद्धि को मष्ट करता ही है। जब जीव को यह ज्ञान हो जाता है, तब वह विषयों का आश्रय लेना छोड़ देता है और आत्मा की ओर अधिकारिक प्रवृत्त होता है। यही कर्म-विकास है अर्थात् अस्तबुद्धि का अधिकारिक विकास एवं बहिर्बुद्धि का अधिकारिक कोप। सर्वाधिक विकसित रूप मानव है क्योंकि वह मननशील है—वह ऐसा प्राणी है जो विचार करता है ऐसा प्राणी नहीं जो केवल इन्द्रियों से सम्बद्ध है। बर्मेसासन में इसे 'त्याग' कहते हैं। समाज का निर्माण विवाह की व्यवस्था सत्त्वान्-प्रेम हमारे शुभ कर्म शुद्धाचरण और नैतिकता से सब त्याग के विभिन्न रूप हैं। सब समाजों में हम लोगों का जीवन इच्छा पिपासा या कामना के दमन में ही निहित है। इच्छा अथवा मिथ्या आत्मा के इस परित्याग—स्वार्थ से निकलने की अभिलाषा कित्य द्रष्टा को ईश नाभ से देखने के प्रयत्न के विच्छद सपर्य के मित्र मित्र रूप तथा उनकी अवस्थाएँ ही संसार के मित्र मित्र समाज एवं सामाजिक नियम हैं। मिथ्या आत्मा के समवेन तथा स्वार्थनिग्रह का सबसे सरल उपाय है प्रेम तथा इसका विपरीत उपाय है द्वेष।

स्वर्ग-नरक तथा आकास के परे राज करनेवाले सासकों से सम्बद्ध अनेक कथाओं अथवा अर्थावस्थाओं के द्वारा मनुष्य को जलाने में बाधकर उसे आत्मसमवेन के लक्ष्य की ओर अग्रसर किया जाता है। इन सब अन्वयित्वार्यों से दूर रहकर अन्वयज्ञानी वाचना के त्याग द्वारा आत्मवृत्तकर इस लक्ष्य की ओर जाये सकता है।

बाह्य स्वर्ग या राम-राज्य का अस्तित्व केवल कल्याण में ही है, जो कि दुःख के भीतर इनका अस्तित्व पहले से ही है। कस्तूरी की गुणवत्ता के कारण ही, जो खोज करने के बाद, कस्तूरी-मृग अन्त में उसे अपने में ही पाता है।

बाह्य समाज सर्वदा शुभ और अशुभ का सम्मिश्रण होगा—बाह्य जीवन में अनुगामी उसकी छाया अर्थात् मृत्यु, सर्वदा उसके साथ रहेगी, और जीवन जितना लम्बा होगा, उसकी छाया भी उतनी ही लम्बी होगी। केवल जब सूर्य हमारे निर पर होता है, तब कोई छाया नहीं होती। जब ईश्वर, शुभ और अन्य सब कुछ हममें ही है तो अशुभ कहाँ? परन्तु बाह्य जीवन में प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है और हर शुभ के साथ अशुभ उसकी छाया की तरह जाता है। उन्नति में अवोगति का समान अंश रहता है, कारण यह है कि अशुभ और शुभ एक ही पदार्थ हैं, दो नहीं, भेद अभिव्यक्ति में है—मात्रा में है, न कि जाति में।

हमारा जीवन स्वयं दूसरों की मृत्यु पर अवलम्बित है, चाहे वनस्पतियाँ हो, चाहे पशु, चाहे कीटाणु। एक बड़ी भारी भूल जो हम लोग बहुधा करते हैं, वह यह कि शुभ को हम सदा बढ़नेवाली वस्तु समझते हैं और अशुभ को एक निश्चित राशि मानते हैं। इससे हम तर्क द्वारा सिद्ध करते हैं कि यदि अशुभ दिन दिन घट रहा है तो एक समय ऐसा आयेगा, जब शुभ ही अकेला शेष रह जायगा। मिय्या पूर्व पक्ष को स्वीकार कर लेने से हमारा तर्क अशुद्ध हो जाता है। यदि शुभ की मात्रा बढ़ रही है तो अशुभ की भी बढ़ती है। मेरी जाति की जनता की अपेक्षा मेरी आकाक्षाएँ बहुत बढ़ गयी हैं। मेरा सुख उनसे अत्यधिक है, परन्तु मेरा दुःख भी उनसे लाखों गुना तीव्र है। जिस स्वभाव के कारण तुम्हें शुभ के मार्ग मात्र का आभास होता है, उसीसे तुम्हें अशुभ के स्पर्श मात्र का भी आभास होगा। जिन स्नायुओं द्वारा सुख का अनुभव होता है, उन्हींके द्वारा दुःख का भी, जो एक ही मन दोनों का अनुभव करता है। ससार की उन्नति का अर्थ है सुख का दुःख—दोनों की अधिक मात्रा। जीवन और मृत्यु, शुभ और अशुभ, जान और न जान सम्मिश्रण—यही 'माया' कहलाती है—यही है विश्व का नियम। तन्त्र काल तक इस जाल में सुख और दुःख की खोज करो—तुम्हें बहुत जल्द ही दुःख दोनों मिलेंगे। यह कहना कि ससार में केवल शुभ ही है, सुख ही है, जो का प्रलय—गार्डन्स, मात्र है। दो मार्ग हमारे सामने हैं—एक तो सुख ही है, जो का प्रलय—गार्डन्स, ससार जैसा है वैसा स्वीकार करके, दुःख की खोज करो—एक तो सुख ही है, जो का प्रलय—गार्डन्स, कभी कभी सुख का अल्पांश मिल जायगा—एक तो सुख ही है, जो का प्रलय—गार्डन्स, को दुःख का ही एक दूसरा रूप समझकर खोज करो—और जो सत्य की खोज करो—एक तो सुख ही है, जो का प्रलय—गार्डन्स, दिन बाद यहाँ से प्र

में ही विद्यमान पाते हैं। फिर हमें यह भी पता लग जाता है कि वही सत्य किस प्रकार हमारे व्यावहारिक जीवन के भ्रम और ज्ञान दोनों रूपों में प्रकट हो रहा है— हमें यह भी पता लग जाता है कि वही सत्य 'आत्म' है, जो शुभ और अशुभ दोनों रूपों में अभिव्यक्त हो रहा है। साथ ही हमें यह भी पता लग जाता है कि वही 'सत्' जीवन और मृत्यु दोनों रूपों में प्रकट हो रहा है।

इस प्रकार हम यह अनुभव करते हैं कि ये सब बातें उसी एक अस्तित्व— सत्-चित्-आत्मत्व— सब चीजों के अस्तित्व स्वरूप भेद पदार्थ स्वरूप की भिन्न भिन्न प्रतिच्छायाएँ मात्र हैं। सब और केवल तभी बिना बुराई के भलाई करता सम्भव होता है क्योंकि ऐसी आत्मा में उस पदार्थ की विसृष्टि कि शुभ और अशुभ दोनों का निर्माण होता है, जान लिया है और अपने बंध में कर लिया है और वह अपनी इच्छानुसार एक या दूसरे का विकास कर सकता है। हम यह भी जानते हैं कि वह केवल शुभ का ही विकास करता है। यही 'जीवन्मुक्ति' है जो वेदान्त का और सब तत्त्व-ज्ञानों का अन्तिम अर्थ है।

मानवी समाज पर चारों बर्ण—पुरोहित, वैदिक व्यापारी और मजदूर बायीं बायीं से शासन करते हैं। हर शासन का अपना गौरव और अपना शोष होता है। जब ब्राह्मण का राज्य होता है, तब आनुवंशिक आचार पर संपूर्ण पूजकता रहती है—पुरोहित स्वयं और उनके बंधन नामा प्रकार के अधिकारों से सुसज्जित रहते हैं, उनके अतिरिक्त किसीको कोई ज्ञान नहीं होता, और उनके अतिरिक्त किसीको शिक्षा देने का अधिकार नहीं है। इस विधिष्ठ युग में सब विद्याओं की नींव पकड़ी है, यह इसका गौरव है। ब्राह्मण मन को उधत करते हैं, क्योंकि मन द्वारा ही वे राज्य करते हैं।

अग्नि शासन कर और अन्धामी होता है, परन्तु उनमें पूजकता नहीं रहती और उनके युग में कला और सामाजिक संस्कृति उत्थिति के सिद्ध पर क्लृप्त पायी है।

उसके बाद वैश्य शासन आता है। इसमें कुचकने की और शून्य बुराई की मीन शक्ति अत्यन्त शीघ्र होती है। इसका काम यह है कि व्यापारी सब बगल जाता है, इसलिए वह पहले दोनों युगों में एकत्र किये हुए विचारों को फैलाने में सफल होता है। उनमें अग्नि से भी कम पूजकता होती है, परन्तु सम्पत्ता की अवस्थिति आरम्भ हो जाती है।

अन्त में आयेगा मजदूरों का शासन। उसका काम होगा शीथिल मुक्तों का समान वितरण—और उससे हाथी हीमी कर्माभित् संस्कृति का किन्तु स्तर पर गिर जाना। साधारण शिक्षा का बहुत प्रचार होया परन्तु असामान्य प्रतिभावाली व्यक्ति कम होते आये।

यदि ऐसा राज्य स्थापित करना सम्भव हो जिसमें ब्राह्मण युग का ज्ञान, क्षत्रिय युग की सभ्यता, वैश्य युग का प्रचार-भाव और शूद्र युग की समानता रखी जा सके—उनके दोषों को त्याग कर—तो वह आदर्श राज्य होगा। परन्तु क्या यह सम्भव है ?

परन्तु पहले तीनों का राज्य हो चुका है। अब शूद्र शासन का युग आ गया है—वे अवश्य राज्य करेंगे, और उन्हें कोई रोक नहीं सकता। सिक्के का स्वर्ण अथवा रजतमान रखने में क्या क्या कठिनाइयाँ हैं, मैं यह सब नहीं जानता (और मैंने देखा है कि कोई भी इस विषय में अधिक नहीं जानता), परन्तु मैं यह देखता हूँ कि स्वर्णमान ने घनवानों को अधिक धनी तथा दरिद्रों को और भी अधिक दरिद्र बना दिया है। ब्राह्मण ने यह ठीक ही कहा था कि 'सोने के भी क्रॉस पर हम लटकाये जाना पसंद न करेंगे।' रजतमान हो जाने पर इस असमान युद्ध में गरीबों के पक्ष में कुछ बल आ जायगा। मैं समाजवादी हूँ, इसलिए नहीं कि मैं इसे पूर्ण रूप से निर्दोष व्यवस्था समझता हूँ, परन्तु इसलिए कि रोटी न मिलने से आधी रोटी ही अच्छी है।

और सब मतवाद काम में लाये जा चुके हैं और दोषयुक्त सिद्ध हुए हैं। इसकी भी अब परीक्षा होने दो—यदि और किसी कारण से नहीं तो उसकी नवीनता के लिए ही। सर्वदा एक ही वर्ग के व्यक्तियों को सुख और दुःख मिलने की अपेक्षा सुख और दुःख का बटवारा करना अच्छा है। शुभ और अशुभ की समष्टि ससार में समान ही रहती है। नये मतवादों से वह भार कंधे से कंधा बदल लेगा, और कुछ नहीं।

इस दुःखी ससार में सब को सुख-भोग का अवसर दो, जिससे इस तथाकथित सुख के अनुभव के पश्चात् वे ससार, शासन-विधि और अन्य झंझटों को छोड़कर प्रभु के पास आ सकें।

तुम सबको मेरा प्यार।

शुभाकाशी,  
विवेकानन्द

(श्री आलार्सिगा पेरुमल को लिखित)

१४, ग्रेकोट गार्डन्स,  
वेस्टमिनिस्टर, एस० डब्ल्यू०,  
११ नवम्बर, १८९६

प्रिय आलार्सिगा,

बहुत सभ्य है कि मैं १६ दिसम्बर या उसके दो एक दिन बाद यहाँ से प्रस्थान



कई। यहाँ से इटली जाऊँगा और वहाँ के कुछ स्थानों को देखने के बाद नेपुस में स्टीमर पर सवार हो जाऊँगा। कुमारी मूकर, श्री और श्रीमती सेवियर तथा मुहम्मद नामक एक युवक मेरे साथ चल रहे हैं। सेवियर बम्पति अम्माड़े में बसने जा रहे हैं और कुमारी मूकर भी। सेवियर भारतीय सेना में पाँच साल तक अफसर के पद पर थे। अब भारत के बारे में उन्हें काफ़ी जानकारी है। कुमारी मूकर बिरोसॉरिस्ट भी जिन्होंने असाय को गोद लिया। मुहम्मद अजैज है बिलक हाथ धीमेरूपि में तैयार की गयी टिप्पणियों से पुस्तिकाओं का प्रकाशन सम्भव हुआ।

मैं कोकम्बो से सर्वप्रथम मद्रास पहुँचूँगा। अन्य लोग अहमोड़े जायेंगे। वहाँ से मैं कलकत्ता जाऊँगा। जब मैं वहाँ से प्रस्थान करूँगा तब ठीक ठीक सूचना देते हुए पत्र लिखूँगा।

तुम्हारा शुभाकांक्षी  
विश्वकालम्

पुनश्च—'राजयोग' पुस्तक के प्रथम संस्करण की सभी प्रतियाँ बिक गयीं और द्वितीय संस्करण करने के लिए प्रेस में है। भारत और अमेरिका सबसे बड़े बाजार हैं।

वि

(श्रीमती बुल की कठिण)

ब्रेकोट मार्सेस  
बेस्ट मिनिस्टर,  
१३ नवम्बर, १८९९

शिव श्रीमती बुल

मैं चीन ही भारत के लिए प्रस्थान करनेवाला हूँ कदाचित् १९ दिसम्बर की। अमेरिका जाने से पहले मुझे एक बार भारत जाने की तीव्र अभिलाषा है और मैंने अपने साथ इन्डियन से कई मित्रों को भारत ले जाने का प्रयत्न किया है इसलिए चाहे मेरी कितनी ही इच्छा हो परन्तु अमेरिका हीठे हुए जाना मेरे लिए अहममम है।

निरन्तर ही डॉ. वेल्स अति उत्तम काम कर रहे हैं। उन्होंने मेरी और मेरे कार्य की जो सहायता की है, उसके लिए और उनके कृपाभाव के लिए कृतज्ञता प्रकट करने में मैं असमर्थ ना हूँ वहाँ का कार्य आयन्त मुन्दर कब से जाने बड़ रहा है।

तुम्हारा  
विश्वकालम्

(श्री आलासिगा पेरुमल को लिखित)

३९, विक्टोरिया स्ट्रीट, लन्दन,

२० नवम्बर, १८९६

प्रिय आलासिगा,

मैं इंग्लैण्ड से इटली के लिए १६ दिसम्बर को रवाना होऊँगा और नेपल्स से 'नार्थ जर्मन लाँयड एस० एस० प्रिन्स रीजेन्ट लिओपोल्ड' नामक जहाज से प्रस्थान करूँगा। जहाज आगामी १४ जनवरी को कोलम्बो पहुँचने-वाला है।

श्रीलंका में कुछ चीजें देखने की मेरी इच्छा है, वहाँ से फिर मद्रास पहुँचूँगा। मेरे साथ तीन अग्रज दोस्त हैं—कैप्टन तथा श्रीमती सेवियर तथा श्री गुडविन। श्री सेवियर और उसकी पत्नी अल्मोडा के पास हिमालय में एक मठ बनाने की सोच रहे हैं, जिसे मैं अपना 'हिमालय केन्द्र' बनाना चाहता हूँ। और वही पाश्चात्य शिष्यो को ब्रह्मचारी और सन्यासी के रूप में रखूँगा। गुडविन एक अविवाहित नवयुवक है। वह मेरे साथ भ्रमण करेगा और मेरे ही साथ रहेगा। वह सन्यासी जैसा ही है।

मेरी तीव्र अभिलाषा है कि श्री रामकृष्ण देव के जन्मोत्सव से पहले मैं कलकत्ता पहुँच जाऊँ। मेरी वर्तमान कार्य-योजना यह है कि युवक प्रचारको के प्रशिक्षण के लिए कलकत्ता और मद्रास में दो केन्द्र स्थापित करना है। कलकत्ते के केन्द्र के लिए मेरे पास पर्याप्त धन है। कलकत्ता श्री रामकृष्ण के कर्म-जीवन का क्षेत्र रह चुका है, इसलिए वह मेरा ध्यान पहले आकर्षित करता है। मद्रास के केन्द्र के लिए मैं आशा करता हूँ कि भारत से मुझे धन मिल जायगा।

इन तीन केन्द्रों से हम काम आरम्भ करेंगे। फिर इसके बाद बम्बई और इलाहाबाद में भी केन्द्र बनायेंगे। इन तीन स्थानों से, यदि भगवान् की कृपा हुई तो, हम भारत भर में ही नहीं, परन्तु ससार के प्रत्येक देश में प्रचारको का दल भेजेंगे। यह हमारा पहला कर्तव्य होना चाहिए। दिल लगाकर काम करते रहो। कुछ समय के लिए लन्दन का मुख्य कार्यालय ३९, विक्टोरिया स्ट्रीट में रहेगा, क्योंकि कार्य यहीं से होगा। स्टर्डी के पास सन्दूक भर 'ब्रह्मवादिन्' पत्रिका है, जिसका मुझे पहले पता नहीं था। वह अब इसके लिए ग्राहक बनाने के लिए प्रचार-कार्य कर रहा है।

चूँकि अब अग्रजों भाषा में भारत से एक पत्रिका आरम्भ हो गयी है, अब अब भारतीय भाषाओं में भी हम कोई पत्रिका आरम्भ कर सकते हैं। विम्बलटन की पुमारी एम० नोबल बड़ी काम करनेवाली है। वह मद्रास की दोनों पत्रिकाओं

के लिए प्रचार-कार्य भी करेगी। वह तुम्हें सिखेगी। ऐसे कार्य बीरे बीरे, किन्तु निश्चित रूप से आगे बढ़ेंगे। ऐसी पत्रिकाओं को अमुमायियों के छोटे से समुदाय द्वारा ही सहायता मिलती है। एक ही समय में उनसे अनेक कार्य करने की आशा नहीं करनी चाहिए। उनको पुस्तकें खरीदनी पड़ती हैं। इन्कैंड का कार्य बचाने के लिए पैसा एकत्र करना पड़ता है; यहाँ की पत्रिका के लिए ग्राहक ढूँढ़ने पड़ते हैं और फिर भारतीय पत्रिकाओं को खरीदना पड़ता है। यह बहुत ख्याली है। यह सिखा प्रचार की अपेक्षा व्यापार-कार्य अधिक जान पड़ता है। ऐसी स्थिति में तुम धीरे-धीरे रहो। फिर भी मुझे आशा है कि कुछ ग्राहक बन ही जायेंगे। इसके अलावा मेरे जाने के बाद यहाँ लोगों के पास करने के लिए काम होना चाहिए, नहीं तो सब क्रिया-कलाप मिट्टी में मिल जायगा। इसलिए बीरे बीरे यहाँ और अमेरिका में भी पत्रिका होनी चाहिए। भारतीय पत्रिकाओं की सहायता भारतवासियों को ही करनी चाहिए। किसी पत्रिका के सब राष्ट्रों में समान प्राय से अपनाये जाने के लिए, सब राष्ट्रों के सेक्टरों का एक बड़ा भारी निमाय रखना पड़ेगा जिसके माने हैं प्रतिवर्ष एक लाख रुपये का खर्च।

तुम्हें वह न भूझना चाहिए कि मेरे कार्य अन्तर्राष्ट्रीय है केवल भारतीय नहीं। मेरा तथा अमेरिका के दोनों का स्वास्थ्य अच्छा है।

सुभाषाजी

विनेकानन्द

(भी लाला बही साह की किञ्चित)

३९ विक्टोरिया स्ट्रीट, लन्दन

२१ नवम्बर, १८९९

प्रिय लाला जी

जबतकी तक मैं मद्रास पहुँचूँगा कुछ दिन समस्त क्षेत्र में खूब मेरी अन्वेषण करने की इच्छा है।

मेरे साथ मेरे तीन बड़े मित्र हैं, उनमें दो सेबियर सम्पत्ति अन्वेषण में निवास करेंगे। आपको शायद यह पता होगा कि वे मेरे सिध्द हैं एवं मेरे लिए हिमालय में वे एक मठ बनवायेंगे। इसीलिए मैंने आपको एक उपयुक्त स्थान ढूँढ़ने के लिए लिखा था। हमारे लिए एक ऐसी घुँटी पहाड़ी चाहिए, जहाँ से हिम-पृथ्व दिखायी देता हो। इसमें सन्देह नहीं कि उपयुक्त स्थान निर्वाचित कर आश्रम निर्माण के लिए समय चाहिए। इस बीच क्या आप मेरे मित्रों के रहने के लिए किराये पर एक छोटे से बँपके की व्यवस्था करने की हवा करेंगे? उसमें तीन

व्यक्तियों के रहने लायक स्थान होना आवश्यक है। बहुत बड़ा मकान नहीं चाहिए, इस समय छोटे से ही कार्य चल सकेगा। मेरे मित्र वहाँ पर रहकर आश्रम के लिए उपयुक्त स्थान तथा मकान की तलाश करेंगे।

इस पत्र के उत्तर देने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उत्तर मिलने से पहले ही मैं भारत की ओर रवाना हो जाऊँगा। मद्रास पहुँच कर मैं आपको तार से सूचित करूँगा।

आप सब लोगो को स्नेह तथा आशीर्वाद।

भवदीय,  
विवेकानन्द

(कुमारी मेरी तथा हैरियट हेल को लिखित)

३९, विक्टोरिया स्ट्रीट,

लन्दन,

२८ नवम्बर, १८९६

प्रिय वहनो,

चाहे जिस कारण से भी हो, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम चारो से ही मैं सबसे अधिक स्नेह करता हूँ एव मुझे अत्यन्त गर्व के साथ यह विश्वास है कि तुम चारो भी मुझसे वैसा ही स्नेह करती हो। इसलिए भारत रवाना होने से पूर्व तुम लोगो को यह पत्र स्वयं ही आत्मप्रेरित होकर लिख रहा हूँ। लन्दन में हमारे कार्य को जबरदस्त सफलता मिली है। अंग्रेज लोग अमेरिकनो की तरह उतने अधिक सजीव नहीं हैं, किन्तु यदि कोई एक बार उनके हृदय को छू ले तो फिर सदा के लिए वे उनके गुलाम बन जाते हैं। धीरे धीरे मैं उन पर अपना अधिकार जमा रहा हूँ। आश्चर्य है कि छ माह के अन्दर ही, सार्वजनिक भाषणों के अलावा भी मेरी कक्षा में १२० व्यक्ति नियमित रूप से उपस्थित हो रहे हैं। अंग्रेज लोग अत्यन्त कार्यशील हैं, अतः यहाँ के सभी लोग क्रियात्मक रूप से कुछ करना चाहते हैं। कैप्टन तथा श्रीमती सेवियर एव श्री गुडविन कार्य करने के लिए मेरे साथ भारत रवाना हो रहे हैं और उमका व्यय-भार भी वे स्वयं उठावेंगे। यहाँ पर और भी बहुत से लोग द्बन्ध प्रकार कार्य करने को प्रस्तुत हैं। प्रतिष्ठित श्री-गुरुपों के मस्तिष्क में एक बार किमी भावना को प्रवेश करा देने पर, उमें कार्य में परिणत करने के लिए वे अपना सब कुछ त्याग करने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं। और नवनें अधिक आनन्दप्रद समाचार (यह कोई माघारण बात नहीं) यह है कि भान्त में कार्य प्रारम्भ करने के लिए हमें आधिक महायता प्राप्त हो गयी है एव आगे चारु और भी प्राप्त होंगी। अंग्रेज जाति के मन्वन्व में मेरी धारणा पञ्जम्

एक बुद्धि है। अब मुझे यह पता चल रहा है कि अयोग्य जातियों की अपेक्षा प्रभु ने उन पर अधिक दया कर्मा की है। वे बृहमंजल्प तथा अत्यन्त मिष्टाशान हैं। साथ ही उनमें हादिक यज्ञानुभूति है—बाह्य उदासीमता का कबल एक आवरण रहता है। उसको टाड़ देना है, अब फिर तुम्हें अपनी पसन्द का व्यक्ति मिल जायगा।

इस समय कसकता तथा हिमात्म्य में मैं एक एक केन्द्र स्थापित करते जा रहा हूँ। प्रायः ७ फुट ऊँची एक समूची पहाड़ी पर हिमात्म्य-केन्द्र स्थापित जना। यह पहाड़ी गर्मी की ऋतु में घीठक तथा जाड़े में टंडी रहेगी। कैंपन तथा मीसटी सेवियर वहीं रहेंगे एवं यूरोपीय कार्यकर्ताओं का यह केन्द्र होगा क्योंकि उनको भारतीय रहन सहन अपनाने तथा निरामतप्त भारतीय समस्त भूमि में बसने के लिए बाध्य कर मार डालना नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ कि संकड़ों की संख्या में हिन्दू मुकद प्रत्येक सम्म बैस में जाकर बेरान्त का प्रचार करें और वहीं से नर-भारियों को एकत्र कर कार्य करने के लिए मारत भेजें। यह आशान प्रधान बहुत ही उत्तम होगा। केन्द्रों को स्थापित कर मैं 'जॉब का प्रत्य' में बर्षित उस व्यक्ति की तरह ऊपर नीचे चारों ओर भूमिमा।

आज यहीं पर पत्र को समाप्त करना चाहता हूँ—यहीं तो आज की डाक धरवाना न हो सकेगा। सभी ओर से मेरे कार्यों के लिए सुविधा मिलती जा रही है—सर्वत्र मैं अत्यन्त खुशी हूँ एवं मैं समझता हूँ कि तुम लोगों को भी मेरी तरह सुख का अनुभव होया। तुम्हें अनन्त कस्याज तथा सुख-शान्ति प्राप्त हो। अनन्त प्यार साथ —

सुनाकांठी  
विश्वकामन्द

पुनरुक्त—बर्मपाक का क्या समाचार है? वह क्या कर रहा है? उससे घेंट होने पर मेरा स्नेह कहना।

वि

१ Book of Job (जॉब का प्रत्य) बाइबिल के प्राचीन व्यवस्थान का अंशविशेष है। इसमें एक कथा इस प्रकार है, एक बार शैतान ईश्वर से मिलने गया। ईश्वर ने उससे पूछा कि यह कहाँ से आ रहा है। उत्तर में उसने कहा "इस पुमिबी के इधर उधर चलकर लमाकर तथा उसके ऊपर नीचे भूमता हुआ मैं आ रहा हूँ। यहाँ पर स्वामी जी ने इधर उधर भूमने के प्रलय में परिष्कारपूर्वक बाइबिल की उस घटना को लक्ष्य कर उक्त वाक्य का प्रयोग किया है।

( कुमारी जोसेफिन मैक्लिऑड को लिखित )

प्रेकोट गार्डन्स,

वेस्टमिनिस्टर एस० डब्ल्यू०, लन्दन,

३ दिसम्बर, १८९६

प्रिय 'जो',

तुम्हारे कृपापूर्ण निमन्त्रण के लिए अनेक धन्यवाद। किन्तु, प्रिय जो-जो, प्यारे भगवान् ने यह विधान किया है कि मुझे १६ तारीख को कप्तान तथा श्रीमती सेवियर एव श्री गुडविन के साथ भारत के लिए प्रस्थान करना है। सेवियर दम्पति मेरे साथ नेपुल्स में स्टीमर पर सवार होंगे। चूंकि चार दिन रोम में रुकना है, इसलिए मैं अल्बर्टा से विदा लेने जाऊंगा।

यहाँ अब कुछ चहल-पहल शुरू हो गयी है, ३९, विक्टोरिया के बड़े हाल में कक्षा लगती है, जो भर गया है, फिर भी और लोग कक्षा में शामिल होना चाहते हैं।

साथ ही, उस प्राचीन भले देश की पुकार है, मुझे जाना ही है। इसलिए इस अप्रैल में रूस जाने की सभी परियोजनाओं को नमस्कार।

मैं भारत में कर्म-चक्र का प्रवर्तन मात्र कर पुनः सदा रमणीय अमेरिका तथा इंग्लैण्ड इत्यादि के लिए प्रस्थान कर दूंगा।

मेवुल का पत्र भेज कर तुमने बड़ी कृपा की—सचमुच शुभ समाचार है। केवल थोड़ा अफसोस है तो बेचारे फॉक्स के लिए। चाहे जो हो मेवुल उससे बच गयी, यह बेहतर हुआ।

न्यूयार्क में क्या हो रहा है, इसके बारे में तुमने कुछ नहीं लिखा। आशा है वहाँ सब अच्छा ही होगा। बेचारा कोला ! क्या वह अब जीविकोपाजन में समर्थ हो पाया ?

गुडविन का आगमन बड़े मौक़े से हुआ, क्योंकि इससे व्याख्यानो का विवरण ठीक तौर से तैयार होने लगा जिसका प्रकाशन पत्रिका के रूप में हो रहा है। खर्च भर के लिए काफी ग्राहक बन गये हैं।

अगले मप्ताह तीन व्याख्यान होंगे और इस मौसम का मेरा लन्दन का कार्य समाप्त हो जायगा। यहाँ इस वक्त धूम मची है, इसलिए मेरे छोड़कर चले जाने को सभी लोग नादानों समझते हैं, परन्तु प्यारे प्रभु का आदेश है, 'प्राचीन भारत को प्रस्थान करो।' मैं आदेश का पालन कर रहा हूँ।

क्रैडिनसॅस माँ होसिस्टर तथा धन्य सबको मेरा बिना प्रेम तथा आशीर्वा  
 और वही तुम्हारे लिए भी।

तुम्हारा सुभाकाशी  
 विवेकानन्द

(कुमारी अस्वर्टा स्टाएगीज को लिखित)

१४ वेकोट गार्डेन्स

वेस्टमिनिस्टर, एच डब्ल्यू क्लब

३ दिसम्बर, १८९९

प्रिय अस्वर्टा

इस पत्र के साथ 'जो-जो' को लिखित मैकेक का पत्र भेज रहा हूँ। इसमें  
 उल्लिखित समाचार से मुझे बड़ी खुशी हुई और मुझे विश्वास है, तुम्हें भी होगी।

यहाँ से १९ टाटीज को भारत खाना हो रहा हूँ और नेपुस में स्टीमर पर  
 सवार हो जाऊँगा। अब कुछ दिन इटली में और तीन चार दिन रोम में रहूँगा।  
 बिदाई के समय तुमसे मिल कर बड़ी प्रसन्नता होगी।

कप्तान सेवियर और श्रीमती सेवियर दोनों मेरे साथ इंग्लैण्ड से भारत जा  
 रहे हैं और वे भी मेरे साथ इटली में रहेंगे। पिछली प्रीप्स अतु में तुम उनसे मिल  
 चुकी हो। कमम एक वर्ष में अमेरिका लौटने का मेरा इच्छा है और वहाँ से  
 यूरोप आऊँगा।

सप्रेम एवं आशीय  
 विवेकानन्द

(श्रीमती ओकि बुक को लिखित)

१८, विक्टोरिया स्ट्रीट,  
 क्लब

९ दिसम्बर, १८९९

प्रिय श्रीमती बुक

आपके इस आत्यन्त उदात्तापूर्ण काम के लिए कृतज्ञता प्रकट करना  
 अनावश्यक है। कार्य के प्रारम्भ में ही अधिक धन संग्रह कर मैं अपने को संकट  
 में डालना नहीं चाहता हूँ किन्तु कार्य-विस्तार के साथ साथ उस धन का प्रयोग  
 करते पर मुझे बड़ी खुशी होगी। अत्यन्त छोटे पैसाले पर मैं कहीं प्रारम्भ करना  
 चाहता हूँ। अभी तक मेरी कोई स्पष्ट योजना नहीं है। भारत के कार्यक्षेत्र में  
 पहुँचने पर वास्तविक स्थिति का पता चलेगा। भारत पहुँच कर मैं अपनी योजना

तथा उसे कार्य में परिणत करने के व्यावहारिक उपाय आपको विशद रूप से सूचित करूँगा। मैं १६ तारीख को रवाना हो रहा हूँ एव इटली में दो चार दिन रहकर नेपल्स से जहाज पकड़ूँगा।

कृपया श्रीमती वागान, सारदानन्द तथा वहाँ के अन्य मित्रों को मेरा स्नेह दीजियेगा। आपके बारे में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि सदा ही से मैं आपको अपना सर्वोत्तम मित्र मानता आया हूँ एव जीवन भर वैसे ही मानता रहूँगा। मेरा आन्तरिक स्नेह तथा आशीर्वाद ग्रहण करें।

शुभाकाक्षी,  
विवेकानन्द

(एक अमेरिकन महिला को लिखित)

लन्दन,

१३ दिसम्बर, १८९६

प्रिय श्रीमती जी,

नैतिकता का क्रमविन्यास समझ लेने के बाद सब चीजें समझ में आने लगती हैं।

त्याग, अप्रतिरोध, अहिंसा के आदर्शों को सासारिकता, प्रतिरोध और हिंसा की प्रवृत्तियों को निरंतर कम करते रहने से प्राप्त किया जा सकता है। आदर्श सामने रखो और उसकी ओर बढ़ने का प्रयत्न करो। इस ससार में विना प्रतिरोध, विना हिंसा और विना इच्छा के कोई रह ही नहीं सकता। अभी ससार उस अवस्था में नहीं पहुँचा कि ये आदर्श समाज में प्राप्त किये जा सकें।

सब प्रकार की बुराइयों में से गुजरते हुए ससार की जो उन्नति हो रही है, वह उसे धीरे धीरे तथा निश्चित रूप से इन आदर्शों के उपयुक्त बना रही है। अविकाश जनता को तो इस मद विकास के साथ चलना पड़ेगा, पर असाधारण लोगों को वर्तमान परिस्थितियों में इन आदर्शों की प्राप्ति के लिए अपना मार्ग अलग बनाना पड़ेगा।

जो जिस समय का कर्तव्य है, उसका पालन करना सबसे श्रेष्ठ मार्ग है, और यदि वह केवल कर्तव्य समझ कर किया जाय तो वह मनुष्य को आमक्त नहीं बनाता।

सगीत सर्वोत्तम कला है और जो उसे समझते हैं उनके लिए वह सर्वोत्तम उपानना भी है।



हमें अज्ञान और अधुम का नाश करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए, केवल यह समझ लेना है कि धुम की वृद्धि से ही अधुम का नाश होता है।

सुभाषाक्षी  
विदेकानन्द

(श्री फीचिस लेगेट को लिखित)

१३ दिसम्बर, १८९९

प्रिय फीचिस

तो गोपाल<sup>१</sup> बेसी झट्टर चारण कर पैदा हुए। ऐसा होना ठीक ही था— समय और स्थान के विचार से। आजीवन उस पर प्रभु की कृपा बनी रहे। उसकी प्राप्ति के लिए तीव्र इच्छा थी और प्रार्थनाएँ भी की गयी थीं और वह तुम तथा तुम्हारी पत्नी के लिए जीवन में बरदान स्वरूप बानी है। मुझे इसमें संशय नहीं है।

मेरी इच्छा थी कि चाहे यह रहस्य ही पूरा करने के ब्यापक है कि 'धातवात्म धिनु' के लिए प्राण्य मुनि उपहार का रहे है, मैं इस समय अमेरिका जा जाता। किन्तु सब प्रार्थनाओं और आशीर्वाहों से भरपूर मेरा हृदय वहीं पर है और झट्टर की अपेक्षा मन अधिक सक्रियताही होता है।

मैं इस महीने की १६वीं तारीख को रवाना हो रहा हूँ और मेक्सिको में स्टीमर पर सवार हो जाऊँगा। अल्बर्ट से रोम में अवश्य ही मिलूँगा।

पावन परिवार को बहुत बहुत प्यार।

सदा प्रभुपदाभित  
विदेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

होटल मित्रवाँ फ्लोरेंस  
२ दिसम्बर, १८९९

प्रिय रामानन्द

इन पत्र से ही तुम्हें यह भाव हो रहा होगा कि मैं जनी तक भागें में हूँ। स्वप्न छोड़ने से पहले ही तुम्हारा पत्र तथा पुस्तिका मुझे मिली थी। मजूमदार के पामरूपन पर कोई प्यान न देना। इसमें कोई संशय नहीं कि ईश्वर ने उनका विभाव

१ गोपाल का प्रयोग श्री कृष्ण के धिनु रूप के लिए किया जाता है; यहाँ पुत्र जन्म की प्रतीक्षा में पुत्री के जन्म का संकेत किया गया है।

खराब कर दिया है। उन्होंने जिस अभद्रोचित भाषा का प्रयोग किया है, उसे सुनकर सम्य देश के लोग उनका उपहास ही करेंगे। इस प्रकार की अशिष्ट भाषा का प्रयोग कर उन्होंने स्वयं ही अपने उद्देश्य को विफल कर डाला है।

फिर भी हम कभी अपनी ओर में हरमोहन अथवा अन्य किसी व्यक्ति को ब्राह्मसमाजियो या और किसीके साथ झगडने की अनुमति नहीं दे सकते। जनता इस बात को अच्छी तरह से जान ले कि किसी सम्प्रदाय के साथ हमारा कोई विवाद नहीं है और यदि कोई झगडा करता है तो उसके लिए वह स्वयं उत्तरदायी है। परस्पर विवाद करना तथा आपस में निन्दा करना हमारा जातीय स्वभाव है। आलसी, कर्महीन, कटुभाषी, ईर्ष्यापरायण, डरपोक तथा विवादप्रिय—यही तो हम वगालियो की प्रकृति है। मेरा मित्र कटकर अपना परिचय देनेवाले को पहले इन्हे त्यागना होगा। नहीं हरमोहन को कोई पुस्तक छापने की अनुमति देनी होगी, क्योंकि इस प्रकार के प्रकाशन केवल जनता को छलने के लिए होते हैं।

कलकत्ते में यदि सतरे मिलते हों तो मद्रास में आलार्सिगा के पते पर सौ सतरे भेज देना, जिसमें मद्रास पहुँचने पर मुझे प्राप्त हो सके।

मुझे पता चला है कि मजूमदार ने यह लिखा है कि 'ब्रह्मवादिन्' पत्रिका में प्रकाशित श्री रामकृष्ण के उपदेश यथार्थ नहीं हैं, मिथ्या हैं। यदि ऐसा ही है तो सुरेश दत्त तथा रामबाबू को 'इण्डियन मिरर' में इसका प्रतिवाद करने को कहना। मुझे यह पता नहीं है कि उन उपदेशों का संग्रह किस प्रकार किया गया है, अतः इस बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता हूँ।

सस्नेह तुम्हारा,  
विवेकानन्द

पुनश्च—इन मूर्खों की ओर कोई ध्यान न देना, कहावत है कि 'वृद्ध मूर्ख जैसा और कोई दूसरा मूर्ख नहीं है।' उन्हें चिल्लाने दो। अहा, उन बेचारों का पेशा ही मारा गया है। कुछ चिल्लाकर ही उन्हें सन्तुष्ट होने दो।

वि०

(श्री आलार्सिगा पेरुमल को लिखित)

प्रिय आलार्सिगा,

१४, ग्रेकोट गार्डन्स,  
वेस्टमिनिस्टर, लन्दन,  
१८९६

लगभग तीन सप्ताह हुए मैं स्विट्ज़रलैण्ड से लौटा हूँ, पर इसके पूर्व तुम्हें पत्र न लिख सका। पिछली ढाक से मैंने तुम्हें कील के पॉल डॉयसन पर लिखा एक लेख भेजा था। स्टर्डी की पत्रिका की योजना में अभी भी विलम्ब है।

बीसा कि तुम जानते हो मैंने सेंट जार्ज रोड स्थित भकान छोड़ दिया है। २९, बिकनोरिया स्ट्रीट पर एक सेल्डर हॉल हमें मिला गया है। ई टी स्टर्डी के माफ़्ट मेजम पर बिट्टी-गभी मुझ एक सारु तक मिला जाया करेगी। प्रेकोट गार्डन्स के कमरे मेरे तथा मात्र तीन सहीने के लिए आवे हुए स्वाभियों के आवास के लिए हैं। लन्दन में नाम धीग्रता सं बड़ रहा है और हमारी कक्षाएँ बड़ी होती जा रही हैं। इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं कि यह इसी रफ्तार से बढ़ना ही जायगा क्योंकि अर्थोन्नत लोग बड़ एवं निष्ठावान हैं। यह सही है कि मेरे छोड़ते ही इसका अधिकार तानाबाना टूट जायगा। कुछ बटित अवश्य होगा। कोई क्षमितावाली व्यक्ति इसे बहन करने के लिए उठ सकेगा होगा। ईस्वर जानता है कि क्या अच्छा है। अमेरिका में बेवान्त और योग पर बीस उपदेशकों की आवश्यकता है। पर ये उपदेशक और इन्हें यहाँ जाने के लिए धन कहाँ मिलेगा? यदि कुछ सच्चे और क्षमितावाली मनुष्य मिल जायें तो आशा संयुक्त राज्य इस वर्ष में जीता जा सकता है। वे कहाँ हैं? वहाँ के लिए हम सब सहमत हैं। स्वार्थी कामर, बेस भक्ति की केवलस मुझ से बकवास करतेवाले और अपनी कट्टरता तथा धार्मिकता के अभिमान से भूर।। मद्रासियों में अधिक स्फूर्ति और दृढता होती है, परन्तु वहाँ हर मूर्ख विवाहित है। ओफ विवाह! विवाह! विवाह! और फिर आवश्यक के विवाह का तरीका जिसमें लड़कों को जोत दिया जाता है। असासत गृहस्थ होने की इच्छा करना बहुत अच्छा है परन्तु मद्रास में बनी उसकी आवश्यकता नहीं है—बल्कि अविवाह की है।

मेरे बच्चे में जो चाहता हूँ वह है लोहे की लसों और प्रीसाइड के स्नायु बिनके भीतर ऐसा मत बास करता हो जो कि बच्च के समान पदार्थ का बना हो। बस पुरुषार्थ आचरणीय और ब्रह्मतेज। हमारे सुन्दर हनुहार लड़के—उनके पास सब कुछ है यदि वे विवाह नाम की कूर बेदी पर लखों की गिनती में बलिदान न किये जायें! हे भगवान्, मेरे हृदय का अन्धन सुनो। मद्रास तभी जाग्रत होवा जब उसने प्रत्यक्ष हृदय स्वल्प ही विवित्त मनुष्यक समाप्त को त्याग कर और कमर कस कर, बेस बेस में प्रमत्त करते हुए सत्य का संग्राम लड़ने के लिए तैयार होवे। भारत के बाहर का एक आपात भारत के अन्दर के एक लक्ष आवाजों के बराबर है। और, यदि प्रभु की इच्छा होनी तो सभी कुछ ही जायगा।

मिल मूलर ही वह व्यक्ति है जिसमें मैंने तुम्हें रुपये विकाने का बचन दिया था।

१. मद्राली शब्द का प्रयोग स्वामी जी ने सर्वत्र एक व्यापक संदर्भ में किया है जिसके अन्तर्गत लघुर्ध्व क्षमितावाली जा माने हैं।

मैंने उन्हें तुम्हारे नये प्रस्ताव के विषय में बतला दिया है। वे उसके बारे में सोच रही हैं। इस बीच मैं सोचता हूँ उन्हें कुछ काम दे देना उचित रहेगा। उन्होंने 'ब्रह्मवादिन्' और 'प्रबुद्ध भारत' का प्रतिनिधि बनना स्वीकार कर लिया है। इसके विषय में क्या तुम उन्हें लिखोगे? उनका पता है एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स, विम्बल्डन, इंग्लैण्ड। वही उनके साथ पिछले कई हफ्तों से मैं रह रहा था। लेकिन लन्दन का काम मेरे वहाँ रहे बिना संभव नहीं है। इसलिए मैंने अपना आवास बदल दिया है। मुझे दुःख है कि इससे मिस मूलर की भावनाओं को थोड़ी ठेस पहुँची है। लेकिन किया ही क्या जा सकता है! उनका पूरा नाम है मिस हेनरियेटा मूलर। मैक्समूलर के साथ गाढी मित्रता हो रही है। मैं शीघ्र ही ऑक्सफोर्ड में दो व्याख्यान देनेवाला हूँ।

मैं वेदान्त दर्शन पर कुछ बड़ी चीज़ें लिख रहा हूँ और भिन्न भिन्न वेदों से वाक्य संग्रह करने में लगा हूँ, जो कि वेदान्त की तीनों अवस्थाओं से सम्बन्ध रखते हैं। पहले अद्वैतवाद सम्बन्धी विचार, फिर विशिष्टाद्वैत और द्वैत से जो वाक्य सम्बन्ध रखते हों, वे सहिता, ब्राह्मण, उपनिषद् और पुराण में से किसीसे संग्रह करा कर तुम मेरी सहायता कर सकते हो। वे श्रेणीबद्ध होने चाहिए, शुद्ध अक्षरों में लिखे जाने चाहिए और प्रत्येक के साथ ग्रन्थ और अध्याय के नाम उद्धृत होने चाहिए। पुस्तक रूप में दर्शन शास्त्र को पश्चिम में छोड़े बिना पश्चिम से चल देना दयनीय होगा।

मैसूर से तमिल अक्षरों में एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी, जिसमें सभी १०८ उपनिषद् सम्मिलित थे। मैंने प्रोफेसर डॉयसन के पुस्तकालय में वह पुस्तक देखी थी। क्या वह देवनागरी अक्षरों में भी मुद्रित हुई है? यदि हो तो मुझे एक प्रति भेजना। यदि न हो तो मुझे तमिल संस्करण तथा एक कागज़ पर तमिल अक्षर और सयुक्ताक्षर लिखकर भेज देना। उसके साथ देवनागरी समानार्थक अक्षर भी लिख देना जिससे मैं तमिल अक्षर पहचानना सीख जाऊँ।

श्री सत्यनाथन्, जिनसे कुछ दिन हुए मैं लन्दन में मिला था, कहते थे कि 'मद्रास मेल' ने जो मद्रास का मुख्य एंग्लो इण्डियन समाचार पत्र है, मेरी पुस्तक 'राजयोग' की अनुकूल समीक्षा की है। मैंने सुना है कि अमेरिका के प्रधान शरीर-शास्त्रज्ञ मेरे विचारों पर मुग्ध हो गये हैं। उसके साथ ही इंग्लैण्ड में कुछ लोगों ने मेरे विचारों का मज़ाक उड़ाया है। यह ठीक ही है, क्योंकि इसमें सन्देह नहीं कि मेरे विचार नितान्त साहसिक हैं और बहुत कुछ उनमें से हमेशा के लिए अर्थहीन रहेंगे, परन्तु उनमें कुछ ऐसे सकेत भी हैं जिन्हें शरीर-शास्त्रज्ञ यदि शीघ्र ही ग्रहण कर लें तो अच्छा हो। फिर भी उसके परिणाम से मैं विल्कुल सन्तुष्ट हूँ। वे चाहे मेरी निन्दा

ही करें, पर चर्चा तो करें। यह मरा आदर्श-वाक्य है। इंग्लैण्ड में वेसक मत्र लोग हैं और बेहूदी बातें नहीं करते वैसे कि मैंने अमेरिका में पाया। और फिर इंग्लैण्ड के समाज सभी मिशनरी मिशनरताबसम्बी बर्ष के हैं। वे इंग्लैण्ड के घर जन बय से गृही आते। यहाँ के सभी धार्मिक भद्रजन इंग्लिश बर्ष को मानते हैं। उन मिशनरताबसम्बियों की इंग्लैण्ड में कोई पूछ नहीं है और वे तिष्ठित भी नहीं हैं। उनक बारे में मैं यहाँ कुछ भी नहीं सुनता जिनके विषय में तुम मुझे बार बार आगाह करते हो। उनको यहाँ कोई नहीं जानता और यहाँ बकवास करने की उनको हिम्मत भी नहीं है। भाषा है भार क नायक मद्रास में ही होये और तुम कुछपूर्वक हो।

रुते रहो मेरे बहादुर बच्चो! हमने अभी कार्य आरम्भ ही किया है। निराश न हो। अभी न कहो कि बस इतना काफ़ी है। जैसे ही अनुप्य परिषद में आकर दूसरे राष्ट्रों को बखता है उसकी आँखें खुल जाती हैं। इसी तरह मुझे अफ़िगानि बान्धुता मिल जाते हैं—केवल बातों से नहीं प्रत्यक्ष दिखाने से कि हमारे पास भारत में क्या है और क्या नहीं। मेरी कितनी इच्छा है कि कम से कम इस साल हिन्दू पूरे संसार का भ्रमण किये हुए होत।

प्रेमपूर्वक सदैव तुम्हाय

द्विवेकानन्द

(कुमाठी बस्वर्ट स्टारगीज को लिखित)

होटल मिमर्वा कुमोरेंस

२० दिसम्बर, १८९६

प्रिय भद्रजन

कल हम लोग रोम पहुँच रहे हैं। बूँद हम लोग रोम घात से देर से पहुँचने इतनी सम्मत्ता में परतों ही तुमसे मिलने के लिए आ सहुँगा। हम लोग 'होटल कान्निगेटल' में ठहरेगे।

तस्नेद और शाचीन

द्विवेकानन्द

(वी आर्नानिवा पेरजल को लिखित)

अमेरिका

१८९६

प्रिय आर्नानिवा

मन जानाएँ मैंने तुमको 'ब्रह्मचरिन्द' के सम्बन्ध से लिखा था। उपर्युक्त

विषयक व्याख्यानो के बारे में लिखना मैं भूल गया था। उनको एक साथ पुस्तकाकार प्रकाशित करना चाहिए। 'गुड ईयर' के नाम से न्यूयार्क, अमेरिका के पते पर उसकी एक सौ प्रतियाँ भेज सकते हो। मैं बीस दिन के अन्दर जहाज़ से इंग्लैण्ड रवाना हो रहा हूँ। कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा राजयोग सम्बन्धी मेरी और भी बड़ी बड़ी पुस्तकें हैं। 'कर्मयोग' प्रकाशित हो चुका है। 'राजयोग' का आकार अत्यन्त वृहत् होगा—वह भी प्रेस में पहुँच चुका है। 'ज्ञानयोग' सम्भवत इंग्लैण्ड में छपवाना होगा।

तुमने 'ब्रह्मवादिन्' में 'क' का एक पत्र प्रकाशित किया है, उसका प्रकाशन न होना ही अच्छा था। थियोसॉफिस्टो ने 'क' की जो खबर ली है, उससे वह जल भुन रहा है। साथ ही उस प्रकार का पत्र सम्यजनोचित भी नहीं है, उससे सभी लोगो पर छीटाकशी होती है। 'ब्रह्मवादिन्' की नीति से वह मेल भी नहीं खाता। अतः भविष्य में यदि कभी 'क' किसी सम्प्रदाय के विरुद्ध, चाहे वह कितना ही खब्ती और उद्धत हो, कुछ लिखे तो उसे नरम करके ही छापना। कोई भी सम्प्रदाय, चाहे वह बुरा हो या भला, उसके विरुद्ध 'ब्रह्मवादिन्' में कोई लेख प्रकाशित नहीं होना चाहिए। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि प्रवचको के साथ जानबूझ कर सहानुभूति दिखानी चाहिए। पुनः तुम लोगो को मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि उक्त पत्र (ब्रह्मवादिन्) इतना अधिक शास्त्रीय (technical) बन चुका है कि यहाँ पर उसकी ग्राहक संख्या बढ़ने की आशा नहीं है। साधारणतया पश्चिम के लोगो का इतनी अधिक क्लिष्ट सस्कृत भाषा तथा उसकी बारीकियों का ज्ञान नहीं है और न उनमें जानने की इच्छा ही है। हाँ, इतना अवश्य है कि भारत के लिए वह पत्र बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। किसी मतविशेष का समर्थन किया जा रहा हो, ऐसी एक भी बात उसके सम्पादकीय लेख में नहीं रहनी चाहिए। और तुम्हें यह सदा ध्यान रखना है कि तुम केवल भारत को नहीं, वरन् सारे ससार को सम्बोधित कर बातें कह रहे हो और तुम जो कुछ कहना चाहते हो, ससार उसके बारे में बिल्कुल अनजान है। प्रत्येक सस्कृत श्लोक का अनुवाद अत्यन्त सावधानी के साथ करना और जहाँ तक हो सके उसे सरल भाषा में व्यक्त करने की चेष्टा करना।

तुम्हारे पत्र के जवाब मिलने से पहले ही मैं इंग्लैण्ड पहुँच जाऊँगा। अतः मुझे पत्र का जवाब द्वारा ई० टी० स्टर्डी, हाई व्यू, कैवरशम्, इंग्लैण्ड के पते पर देना।

तुम्हारा,  
विवेकानन्द

(स्वामी जनेशानन्द को विहित)

द्वारा ई टी स्टर्डी  
हार्ड्यू कैबरसम् टीडिन इन्डोय  
१८९९

प्रेमास्पद

मेरा पहला पत्र मिला होगा। अब इन्डोय में मुझे पत्रादि उपयुक्त पत्र पर भेजना। श्री स्टर्डी को तारक बाबा (स्वामी विश्वकामन्द) जानते हैं। उन्होंने ही मुझे इन्डोय बुझाया है तथा हम दोनों मिलकर इंग्लैण्ड में आन्वाष्म बनाना चाहते हैं। नवम्बर महीने में पुनः अमेरिका जाने का मेरा विचार है। जहाँ वहाँ पर एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है, जो संस्कृत तथा अंग्रेजी साधन अंग्रेजी अच्छी तरह से जानता हो। मैं समझता हूँ कि इसके लिए शशि चारबा मन्ना तुम उपयुक्त हो। इन तीनों में से यदि तुम्हारा शरीर पूर्णतया स्वस्थ हो गया हो तो तुम्हीं भेजे जाना। मेरी राय में यही अधिक अच्छा होगा अन्यथा सख्त को भेजना। कार्य बेजक इतना ही है कि मैं बिना सिम्प-सेवकों को यहाँ छोड़ जाऊँ उन्हें भिन्नाना तथा भवान्त पढाना होगा और छोड़ा-बहुत अंग्रेजी में अनुवाद करना तथा बीच बीच में भाषण आदि भी देना पड़ेगा। कर्मका बाम्पले बुद्धि।—को जाने की आवश्यकता है, किन्तु वह मजबूत किये बिना सब कुछ व्यर्थ हो जायगा। इस पत्र के साथ एक चेक भेज रहा हूँ उससे कपड़े-कपड़े खरीद लेना। महेश्वर बाम् (मास्टर महाशय) के नाम चेक भेजा जा रहा है। गयाधर का सिम्पटी योग मठ में है उसी तरह का एक योग मेरु से रेंग लेना। काँसर कुछ उँचा होना चाहिए, जिससे बड़ा बड़ा पा सके। सबसे पहले एक आयत परम ओवरकोट की आवश्यकता है यहाँ पर अत्यधिक ठण्ड है। ओवरकोट के बिना जहाज में विशेष कष्ट होगा। द्वितीय श्रेणी का टिकट भेज रहा हूँ प्रथम श्रेणी तथा तृतीय श्रेणी में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

बम्बई पहुँचकर—मेसर्स किंग किंग एण्ड कम्पनी प्रोर्ट बम्बई ऑफिस में जाकर यह कहना कि 'मै स्टर्डी साहब का बाबनी हूँ' इससे वे तुम्हारे लिए इन्डोय टिकट का एक टिकट देंगे। वहाँ से एक पत्र उक्त कम्पनी को भेजा जा रहा है। मैतड़ी के राजा साहब को भी मैं एक पत्र इस भाग्य का लिख रहा हूँ कि उनके बम्बई के एजेंट तुम्हारी अच्छी तरह से देखभाल कर टिकट आदि की व्यवस्था कर दें। यदि इन १५ दिनों में उपयुक्त कपड़े-कपड़े की व्यवस्था न हो तो रायाल बाकी कपड़ों का इस्तफाम कर दे बाद में मैं उसे भेज दूँगा। इसके अलावा ५ रुपये पत्र खर्च के लिए रखना—ये भी रायाल से देने को कहना। मैं बाद में भेज दूँगा। तुनी

बाबू के लिए मैंने जो रुपया भेजा है, आज तक उसका कोई समाचार मुझे नहीं मिला। पत्र के देखते ही रवाना हो जाना। महेन्द्र बाबू से कहना कि वे मेरे कलकत्ते के एजेण्ट हैं। इस पत्र को देखते ही वे श्री स्टर्डी को यह उल्लेख करते हुए एक पत्र भेजें कि कलकत्ता सम्बन्धी हमें जो काम काज इत्यादि करने होंगे, वे उन कार्यों को करने के लिए प्रस्तुत हैं। अर्थात् श्री स्टर्डी मेरे इंग्लैण्ड के सेक्रेटरी हैं, महेन्द्र बाबू कलकत्ते के, आलार्सिंगा मद्रास के। मद्रास में यह समाचार भेज देना। सभी के आन्तरिक प्रयास के बिना क्या कोई कार्य हो सकता है? उद्योगिन पुरुषसिंह-सुपेति लक्ष्मी—‘उद्योगी पुरुषसिंह ही लक्ष्मी को प्राप्त करता है।’ पीछे की ओर देखने की आवश्यकता नहीं है—आगे बढ़ो। हमें अनन्त शक्ति, अनन्त उत्साह, अनन्त साहस तथा अनन्त बैर्य चाहिए, तभी महान् कार्य सम्पन्न होगा। दुनिया में आग फूंकनी है।

जिस दिन जहाज़ का प्रबन्ध हो, तत्काल ही श्री स्टर्डी को पत्र लिखना कि ‘अमुक जहाज़ में मैं आ रहा हूँ।’ अन्यथा लन्दन पहुँचने पर गडबडी होने की सम्भावना है। जो जहाज़ सीधे लन्दन आता हो, उसीसे आना, क्योंकि यद्यपि उससे आने में दो चार दिन की देरी हो सकती है, किन्तु किराया कम लगता है। इस समय हमारे पास तो धन अधिक नहीं है। समय आने पर लोगो को हम चारों ओर भेज सकेंगे। किमधिकमिति।

विवेकानन्द

पुनश्च—इस पत्र को देखते ही खेतडी के राजा साहब को लिखना कि तुम बम्बई जा रहे हो, अतः उनके एजेण्ट तुम्हें जहाज़ में बिठाने के लिए सहायता करें।

वि०

यह पता किसी डायरी में लिखकर अपने साथ रखना—किसी प्रकार गडबडी न हो।

(स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखित)

ई० टी० स्टर्डी का मकान,

हाई ब्यू, कैवरशम्, रीडिंग,

१८९६

प्रिय शशि,

मुझे स्मरण नहीं है कि मैंने अपने पूर्व पत्र में इसका उल्लेख किया है या नहीं, अतः इस पत्र द्वारा तुम्हें यह सूचित करता हूँ कि काली अपने रवाना होने के दिन अथवा उससे पूर्व श्री ई० टी० स्टर्डी को पत्र डाल दे, ताकि वे जाकर जहाज़ से उसे



किन्ना सम्ये। यह अन्वय सहर मनुष्यों का सागर है—इस पन्त्रह कलकत्ता इसमें इकट्ठे समा सकते हैं। अब उस प्रकार की व्यवस्था किये बिना पकवड़ी होने की सम्भावना है। आन में बरी न हो पत्र देखते ही उसे निकलन की कहना। सख्त की तरह आने में विकल्प नहीं होना चाहिए। और बाकी बातें स्वयं सोच-विचार कर ठीक कर लेना। काली को जैसे नी हो सीध भेजना। यदि सख्त की तरह आने में विकल्प हो तो फिर किसीक आने की आवश्यकता नहीं है—कुसमुस नीति-वाके आकृष्टी से यह कार्य नहीं हो सकता यह तो महान् रजोबुध का कार्य है। तमोबुध से हमारा वेच छाया हुआ है—जहाँ देखो वही तम रजोबुध चाहिए, उसके बाद सख्त यह तो अत्यन्त दूर की बात है।

सलेह  
नरेन

(कुमारी मेरी हेरु की किरित)

ईम्पकर,

प्रिंस रीजेन्ट क्लियोपोल्ड

३ जनवरी १८९०

प्रिय मेरी

तुम्हारा पत्र मिला जो अन्वय पहुँचाने के बाद रोम के सिंग्र प्रेंपिन किन्ना गया था। तुम्हारी कृपा की जो इतना अन्वर पत्र लिखा और उसका पत्र शब्द मुझे अच्छा लगा। यूरोप में बाघ-बन्द के विकास के विषय में मुझे कुछ मासूम नहीं। मेपुस्त से चार दिनों की भयावह समुद्र-यात्रा के पश्चात् हम जीव पोर्ट सहर के निकट पहुँच रहे हैं। जहाज अत्यधिक बोलावित हो रहा है, अतएव ऐसी परिस्थितियों में अपनी तरफ विचारवट के लिए तुमसे समा जाहवा हूँ।

स्वेड से एशिया महाद्वीप आरम्भ हो जाता है। एक बार फिर एशिया आया। मैं क्या हूँ? एशियाई, यूरोपीय या अमेरिकी? मैं तो अपने में व्यक्तियों की एक अजीब मिश्रणी पाता हूँ। तुमने परंपास के बारे में उनके जाने जाने तथा कार्यों के विषय में कुछ नहीं लिखा। पाँची की अपेक्षा उनके प्रति मेरी दिलचस्पी बहुत ज्यादा है।

कुछ ही दिनों में मैं कोलम्बो में जहाज से उतरनेवा और फिर लंडन को बोड़ा देखने का विचार है। एक समय पर जब लंडन की आकाश की कलह में भी अजिब की और उनकी राजधानी विचार की। राजधानी के परंपासवेय वा विस्तार समय एक ही वर्ष मील है।

लकावासी द्राविड नहीं हैं, बल्कि विशुद्ध आर्य हैं। ईसा के जन्म से ८ सौ वर्ष पूर्व बगाल के लोग वहाँ जाकर बसे और तब से लेकर आज तक लकावासियों ने अपना इतिहास बड़ा स्पष्ट रखा है। प्राचीन दुनिया का वह सबसे बड़ा व्यापार-केन्द्र था और अनुरावापुर प्राचीनो का लन्दन था।

पश्चिमी देशों के सभी स्थानों की अपेक्षा रोम मुझे ज्यादा अच्छा लगा और पाम्पियाई देखने के बाद तो तथाकथित आधुनिक सभ्यता के प्रति समादर की मेरी सारी भावना लुप्त हो गयी। वाष्प तथा विद्युत् शक्ति के अतिरिक्त उनके पास और सब कुछ था और कला सम्बन्धी उनके विचार तथा कृतियाँ तो आधुनिकों की अपेक्षा लाख गुनी अधिक थी।

कृपया कुमारी लॉक (Miss Locke) से कहना कि मैंने उन्हें जो यह बताया था कि मानव-मूर्ति-कला का जितना विकास यूनान में हुआ था, उतना भारत में नहीं, वह मेरी गलती थी। फर्ग्युसन तथा अन्य प्रामाणिक लेखकों की पुस्तकों में मुझे यह पढ़ने को मिल रहा है कि उड़ीसा या जगन्नाथ में, जहाँ मैं नहीं गया हूँ, ध्वसावशेषों में जो मानवीय मूर्तियाँ मिली हैं, वे सौन्दर्य तथा शारीरिक रचना-नैपुण्य में यूनानियों की किसी भी कृति की बराबरी कर सकती हैं। मृत्यु की एक महाकाय प्रतिमा है। उसमें मृत्यु को नारी के वृहदाकार अस्थि-पजर के रूप में दिखाया गया है, जिसके चमड़े पर तमाम झुर्रियाँ पडी हुई हैं—शरीर-रचना की वारीकियों का इतना सच्चा प्रदर्शन परम भयावह और बीभत्स है। मेरे लेखक का मत है कि गवाक्ष में निर्मित एक नारी-मूर्ति बिल्कुल 'वीनस डी मेडिसी' से मिलती जुलती है, इत्यादि। पर तुम्हें याद रखना चाहिए कि प्रायः सब कुछ मूर्ति-भजक मुसलमानों ने नष्ट कर डाला, फिर भी जो कुछ बचा है, वह यूरोप के तमाम भग्नावशेषों की तुलना में श्रेष्ठ है। मैंने आठ वर्ष परिभ्रमण किया, किन्तु बहुत सी श्रेष्ठतम कलाकृतियों को नहीं देखा है।

वहन लॉक से यह भी कहना कि भारत के वन-प्रान्त में एक मन्दिर के खण्डहर हैं और उसके साथ यदि यूनान के 'पार्थेनॉन' की समीक्षा की जाय तो फर्ग्युसन का मत है कि दोनों ही स्थापत्य कला के चरम बिन्दु तक पहुँच गये हैं—दोनों अपने अपने ढंग के निराले हैं—एक कल्पना में और दूसरा कल्पना एवं अलकरण में। बाद की मुगलकालीन इमारतों आदि में भारतीय तथा मुस्लिम कलाओं का सकर है और वे प्राचीन काल की सर्वोत्कृष्ट स्थापत्य कला की आशिक समता भी नहीं कर सकती।

तुम्हारा सन्नेह,  
विवेकानन्द

पुनश्च—संयोग स फुओरेंस में 'महर बर्ष' और 'छाहर पोप' के वर्णन हुए।  
इसे तुम जानती ही हो।

वि

(कुमारी मेरी हेत को सिद्धित)

रामनाड

सनिवार, ३ जनवरी १८९७

प्रिय मेरी

परिस्थितियाँ अत्यन्त आश्चर्यजनक रूप से मेरे लिए अनुकूल होती जा रही हैं। कोसम्बो में मैंने बहारा छोड़ा तथा भारत के दक्षिण स्थित प्रायः अन्तिम मूलस्थ रामनाड में मैं इस समय वहाँ के राजा का अतिथि हूँ। मेरी यात्रा एक बिरादर मुसूम के समान रही—बेमुमर जनता की सीढ़ी रोसनी मानपत्र बरीरह बरीरह। भारत की भूमि पर, जहाँ मैंने प्रथम परार्पण किया वहाँ पर ४ फुट ऊँचा एक स्मृति स्तम्भ बनवाया जा रहा है। रामनाड के राजा साहब ने अपना मानपत्र एक अत्यन्त सुन्दर नक्कामी किया हुए उसकी सोने के बड़े बॉक्स में रखकर मुझे प्रदान किया है। उमम मुझे 'परम पवित्र' (His Most Holiness) कहकर सम्बोधित किया गया है। मद्रास तथा कर्कटते में लोच बड़ी उत्कृष्टा के साथ मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं मानो सारा देश मुझे सम्मानित करने के लिए उठ खड़ा हुआ है। अठ मेरी तुम यह देख रही हो कि मैं अपने भाग्य के उच्चतम सिखर पर आरुढ़ हूँ। फिर भी मेरा मन सिद्धागो के उम निस्तम्भ विधान्तिपूर्व किर्तों की ओर बीड़ रहा है—फिरने सुन्दर विधामवापक गान्ति तथा प्रमपूर्व से से दिन! इसीलिए मैं जमी तुमको पत्र लिखने बीठा हूँ। आशा है कि तुम सभी अनुकूल तथा आनन्दपूर्वक होये। डाक्टर बरोड की अस्पर्धना करने के लिए मैंने कल्पन से अपने देशवासियों को पत्र लिखा था। उन लोगों ने अत्यन्त आनन्दगण के साथ उनकी अस्पर्धना की थी। किन्तु वे यहाँ के लोगों से प्रेरणा-संचार नहीं कर सके इसके लिए मैं खोपी गयी हूँ। कर्कटते के कार्यों में कोई नवीन मापना पैदा करना बहुत कठिन है। अब मैं तुम रहा हूँ कि डॉक्टर बरोड के मन में मेरे प्रति अनेक बारजाएँ उठ रही हैं। इसीका नाम तो संचार है।

माता जी पिता जी तथा तुम सभी को मठ प्यार।

मुन्दारा सेहबज

विश्वकालम्ब

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

मद्रास,

१२ फरवरी, १८९७

प्रिय राखाल,

आगामी रविवार को 'यस० यस० मोम्बासा' जहाज से मेरे रवाना होने की बात है। स्वास्थ्य अनुकूल न होने के कारण पूना तथा और भी अनेक स्थानों के निमंत्रण मुझे अस्वीकार करने पड़े। अत्यधिक परिश्रम तथा गर्मी के कारण स्वास्थ्य बहुत खराब हो चुका है।

थियोसॉफिस्ट तथा अन्य लोगो की इच्छा मुझे अत्यन्त भयभीत करने की थी, अतः उन्हें दो चार बातें स्पष्ट रूप से कहने के लिए मुझे बाध्य होना पडा था। तुम तो यह जानते हो कि उनके साथ सम्मिलित न होने के कारण उन लोगो ने अमेरिका में मुझे बराबर कष्ट दिया है। यहाँ पर भी उसी प्रकार के आचरण करने की उन लोगो की इच्छा थी। इसीलिए मुझे अपना अभिमत स्पष्ट रूप से व्यक्त करना पडा था। इससे यदि मेरे कलकत्ते के मित्रो में से कोई असन्तुष्ट हुए हो, तो भगवान् उन पर कृपा करे। तुम्हारे लिए डरने की कोई बात नहीं है, मैं अकेला नहीं हूँ, प्रभु सदा मेरे साथ है। इसके सिवाय और मैं कर ही क्या सकता था ?

तुम्हारा,

विवेकानन्द

पुनश्च—मकान तैयार हो गया हो तो उसे ले लेना।

वि०



313

314

## अनुक्रमणिका

- अष्टौ ८८-८, ११८, १३८, १८६,  
 १९२, २०५, २०८, २१८, ३००,  
 ३६८, ३८१, ३८९, जाति १६८,  
 २०८, २०६, ३९१, मात्रक ८८,  
 मित्र २०३  
 अश्वेजी नापा १०, ३८९, दीर्घी ९९  
 अकम्पर २२०  
 'अक्रामहन' २३६  
 'अज्ञा' (जन्मरहित) १२८  
 अर्जुन ३३५  
 अज्ञेयवाद १११  
 अज्ञेयवादियों ३१२  
 अटलान्तिक महामाग २०४, ३५२, ३७३  
 अणिमा २२६  
 अतीन्द्रियवाद ५३  
 अयववेद सहिता १९२, ३५१  
 अदृष्टवाद २४  
 अद्वैत १२८  
 अद्वैत तत्त्व २१९, ३२२  
 अद्वैतात्मक २८८  
 अद्वैत भाव १२९, १३२, १७४, ३२९  
 अद्वैतभावात्मक २२५  
 अद्वैतवाद २८-९, ५९, ८५, १२५-२६,  
 १३७, १४९, १७४-७५, २१८,  
 २३९, २६८, २८७-८८, २९४-  
 ९५, ३०३, ३०५, ३०७, ३०९,  
 ३१३-१८, ३२१-२३, ३२८, ३७२,  
 ३९९  
 अद्वैतवादी १३, २०, ३३, ५८, १२४-  
 २५, १२८-२९, १३४, १५५, १८१,  
 १९१, २१३, २१५-१८, २२७,  
 २३२, २३७-३८, २८७-८८, ३००-  
 १, ३०५-७, ३१४  
 अज्ञानम ज्ञान ३२, ज्ञान ३०२, मन्व  
 ३२०, पुनर्गत्या ४२, प्रतिभा ३,  
 मय ४५, विद्या ८५, मक्ति ९,  
 निष्ठा ५२  
 'अनाय' ९८, १८६  
 अनुनूति २६९, 'प्रत्यक्ष' २७०  
 अनुष्टुप छन्द ३२५  
 जन्मदृष्टि परायण ८८  
 अन्तिवोक २१५  
 'अन्वकारमय प्रकाश' २६३  
 अफगानिस्तान १८६  
 अफ्रीका ८८, १३८  
 अफ्रीकी ८८, १८६  
 अभाव मे भाव वस्तु का उद्भव २३  
 अभी ५७, १३२-३३, २१२, २७८  
 अभेदज्ञान २८  
 अभेदानन्द ३५१, ३६०, ३९०, ४०२  
 (देखिए काली)  
 अमिताचार २८०  
 अमरीकी १८६, २००, जाति २०४,  
 राष्ट्रो ३  
 अमेरिका ७, १४, ४१, ६६, ७४-५,  
 ८५-८, १०३-५, १०९, ११८,  
 १२१, १६२-६३, १६७, १७०,  
 १८३, २०४-५, २४१-४२, ३१८,  
 ३२२-२३, ३३२, ३३४, ३५१  
 ३५४, ३५८, ३६४-६७, ३७२  
 ३८०, ३८२, ३८८, ३९०, ३९३  
 ९४, ३९६, ३९८-४०२, ४०७  
 उत्तर ३६३  
 अमेरिकावासी १०४  
 अमेरिकी पत्र ३५९  
 अरब ९, ३७५

अरम्भनिवासी १६५  
 अरम्भप्रवासाद १  
 अरम्भती मज्ज २८९ म्याम २८९  
 अल्फोर्ट, कर्नल ३६१  
 अम्बर, मणि ३६  
 अम्बर, मुक्ताम्ब १ ४  
 अम्बर्टा ३८ ३९३ ३९६  
 अम्ब्राह्म २२  
 'अम्ब्राह्मी अम्बर' ३६१  
 अम्ब्रीका १ २४१ ३४३ ३५७ ३८८ ९  
 अम्ब्रीपनिपद् २२०-२२१  
 अम्ब्रीनाथी आमम्ब २६  
 'अम्ब्रीन' २३६  
 अम्ब्रीक १७  
 अम्ब्री २३८  
 अम्ब्रीकी प्रेम मक्ति १५४

आकेतिस पुपेरों (पा टि ) ९  
 आइसा वेस ३७५-७६  
 आकाश २९१  
 आक्यमक वृत्ति ७२  
 आक्यमडोर्ड ३९९  
 आकरम-सात्म २६ २८ ९ ४७ ७९,  
 ८५, १२६  
 आचार ६९-७०  
 आचार-सात्म ७९, ११२, १३६  
 आरम-सत्त्व २२३ २४७ २५७  
 आरम स्वस्म ५७  
 आरम स्वस्म ब्रह्म २३८  
 आरम वर्सन २७ विज्ञान ५७  
 आरमा २५-७ ३ ४३ ४६, ७७  
 ८१ ८५, ८९, ९५, ११३ (पा  
 टि ) ११६ ११९ १३१ १३४  
 १३७ १३९ ४१ १४८ ४९, १५७  
 १५९ १६१ १६५, १७६, १७८  
 ७९ १९ २१३ २१८, २२६  
 २२८, २३५, २३८, २४ २४६  
 ४७ २५६ २६५ ६६ २६८ ६९  
 २७१ २९ २९२ २९४ ३ १  
 ६ ६ ३ ८११ ३१५, ३२५-२६

३२८, ३३३ ४४ ४४६ ४७  
 ३७१ ३८४ ३८६ उत्सवा स्वस्म  
 ११ और मन १६  
 आध्यात्मिक अर्म्भबुद्धि ३३५ आदर्श  
 ७३ २ ९ २५२ आचार ३२८  
 आधिष्कारक २ उत्साम ५६, ६६  
 उपवेस १२४ उपाधेयता ३६७  
 अम्ब १४८ जीवन ११६ ज्ञान  
 १८, ३२ ११७ सत्त्व २ १ २७४  
 ३३१ तेज २४७ ज्ञान ३२  
 पुनरुत्थान ४२ प्रतिभाएँ ५६  
 महत्त्वाकांक्षाएँ २५७ राज्य ६७  
 अम्बस्वा ६६ धिमा १४६, १९४  
 २ ९ धक्ति ५९, १४६ सत्त्व  
 १४८, २१४ ३६२ ३७२ सत्त्वा  
 स्वेयम १८ संपत्ति ७३ अर्थ ९६  
 आध्यात्म धिमा ५२  
 आध्यात्मिकता ४९  
 आध्यात्मिकता जीवन रक्त १८१  
 आधुनिक मस्कृत २२  
 'आत्म' ३८६  
 आनुवंशिक संक्रमणवाद ८८  
 आध्यात्मिक बुद्धि २५१-५३  
 आरम्भक २८६  
 आरम्भेनिया ३१८  
 आर्य ९४ १४८ २३१ अर्म २४२  
 २५९, २९९ ३१८ ३२४ ३२७  
 ३४२ ४ ५  
 आर्म्बिर्च ९८, १५ २५७  
 अर्म्बिर्च २१  
 आसासिवा देवमक ३५९ ६ ३७७  
 ३८१ ३८७ ३८९, ३९७ ४  
 ४ ३  
 आत्मस ३७  
 आत्मस दोष २२ ७ २५२  
 आत्मिया ३२  
 आहार २२८ ३  
 आर्म्ब ७ ९, १७ ६३ ६६ ९९,  
 १ ३ ११८, १६५, १७ २ ५ ६

२४१, ३२०, ३५१-५२, ३५५-५६,  
३६४-७०, ३७३-७४, ३७७-७८,  
३८१-८२, ३८८, ३९०, ३९३-९४,  
३९९-४०३

इंग्लिय चर्च ९९

इटली ३८८-८९, ३९४-९५

'इण्डियन मिरर' ३७७, ३८३, ३९७

इतिहास, भारतीय ३५

इन्द्र २६, २९६, ३२५, ३२७

इन्द्रत्व २६

इन्द्रप्रनुष १७६

इलाहावाद ३८९

'इष्ट निष्ठा' ३०, ८०

इमरायल ८२

इस्लाम धर्म ६३, १४४

ई० टी० स्टर्डी ३५७-५८, ३६४-६५,  
३७२, ३९८, ४०१-३ (देखिए  
स्टर्डी)

ईरानियो २५३

ईशोपनिषद् (पा० टि०) २६८

ईश्वर तत्त्व २६

ईश्वरत्व ९५, १३५

ईश्वराराधन २७

ईश्वरीय शक्ति २७६

ईसा ३१, १०५-६, १७६, २५३, ३७९

ईसाई २५३, २५६, धर्म ८, १७, ६३,

७९, ८६, १०६, ११२, १३६,

१४४, १५८, २०४, मतावलम्बी

१६९, मिशनरी २२५

ईसा मसीह १४५, १५८

उडीमा ४०५

उत्तरी ध्रुव १८६

उपनिषद् ९, २०, ५७, ७१, ११६,

१२०, १२४-२५, १२७-३७, १३९,

१५५, २१५-१६, २१९-२३, २२५,

२७७, २८६-८७, ३२५, ३२८-२९,

३३३, ३४४, ३९९, अल्लोपनिषद्

२२०-२१,

ईशोपनिषद् २६८, उसमे द्वैतभाव

१३२, कठोपनिषद् ८९, १३०,

(पा० टि०) ८१३०, १७५-७६,

२१२, २७७, ३२८, ३३४, केनो-

पनिषद् (पा० टि०) १७५, मुड-

कोपनिषद् २८९, ३०१, (पा०

टि०) १३०, २२३, २६९, बृहदा-

ग्न्यकोपनिषद् (पा० टि०) ३०८,

विद्या १२६, श्वेताश्वतरोपनिषद्

३१२

उपामना १५, १५५-५६, गृह ८३,

पद्धतियाँ १५८

उमा ३७४

'उष्ण वरफ' ३६२

ऊर्जासधारणवाद ११

ऋग्वेद २९१, ३२५

ऋषि १३९, १४४, १४६-४९, १७२,

१८९, २२५, २२७, ३२७, ३३८,

३४३, ३४५

ए० कुलवीर सिंहम्, मन्त्री ४

एक सद्धिप्रा बहुधा वदन्ति १३, ८३

एकमेवाद्वितीयम् २३२

एकेश्वरवाद ८२

'एज' (घातु) २९१

एण्ड्रोज, कुमारी ३८०

एथेन्स २१५

एनी वेसेण्ट ३६१

एम० नोबल ( कुमारी ) ३६१, ३८९

एम० ई० नोबल ३३० (देखिए सिस्टर

निवेदिता)

एयरली लॉज ३७४, ३७६, ३७८, ३८१,

३९९

एशिया माइनर ११८

एसोटेरिक १०५

ऐग्लो इडियन ३९९

ऐग्लो-सैक्सन जाति ३३१-३२



बोकार १९६  
 'बोरामन' ३६५  
 भोक्ति बुझ भीमती ३५५-५६ ३६६,  
 ३८२, ३९४  
 भोस्व टेस्टामेण्ट ३८४

वीरंगजेव ९

कंबोर्बेटिव ८  
 कठोपनिषद् ८९ १३ (पा टि )  
 १३ १७५ ७६ २१२, २७७  
 ३२८ ३३४

कमंड ३७  
 कम्पाकुमाटी ११६  
 'करतकामसकवत्' ३४२  
 कर्नक मस्कोट ३६१ (रेखिए अस्कोट)  
 कर्नस पुष्पी ४६  
 'कमक' ३५६  
 कर्मकाण्ड २ १२४ १५५ १९४  
 २१२ २३४ ३५, २८५-८७ ३२५,  
 ३४४ वैदिक २१७

कर्मफल २८८  
 'कर्मपोन' ४ १  
 कर्मबाध १२  
 कर्मविधान २४-५  
 कर्म संभाम २७६  
 कर्म समष्टि २७६  
 कलकत्ता २ २ ३ २१५, २३६,  
 ३५१-५२, ३५९, ३८८-८९ ३९२,  
 ३९७ ४ ३४ ४ ६-७ मिबासी  
 २ ३ २१२

कल्मसुग २१ ३२ ३८, ६६  
 कल्प २२ ३  
 कल्पान्त २२ २६५  
 कल्पुटी मून ३८५  
 कर्हिमक ९६  
 काष्ट २३२ ३२५  
 कापिक टंभ ३४६  
 कावा १५  
 कात्तिबास २२२, ३८१

काठी ३५१ ४ ३४ (रेखिए  
 अमेदानम्ब)  
 कास्मीर २४८  
 किङ्गरगार्टन ३७५  
 कौल ३६४ ६६ ३७ ३७२, ३८२  
 ३९७  
 कुपमी १ ५  
 कुम्मकोनम् ७३  
 कुमार्पू २४२  
 कुमारिस मट्ट ३४८  
 कृपान २२५  
 कृपानम्ब ३६१ ३६५, ३७१  
 कृष्ण ९ १३७ १४४ ४५, १४९,  
 ५७ १६९ १७३ १७५, १८७  
 १९७ २२५, ३१९ ३२३ (रेखिए  
 श्री कृष्ण)  
 केनोपनिषद् (पा टि ) १७५  
 कैपिटोकाइन पहाड ६  
 कैपिटोल (पा टि ) ६ (रेखिए  
 कैपिटोकाइन)  
 कैवरसम ३५१ ३५७ ४ १-२  
 कोला ३८ ३९३  
 कोलम्बो १ ४ ७४ ९९ १ ३८८  
 -८९ ४ ४ ४ ६ मिबासी  
 कौपीनबाटी ९३  
 कम विकास १३४  
 कम विकासबाध ११२  
 कम सकीच १३४  
 कलाइन कॉर्ड ३१७  
 कालिक विज्ञानबाटी ३ १  
 कथिम-युव २२४ ३ ५  
 खेतरी ९७ २२४ ४ २-३  
 पंता ३४४ ३८४  
 पगावर ४ २  
 पगोस २७६  
 पानी ३११  
 पानी ४ ४  
 पाचपरम २६२

- गाल्सवर्दी ३५२  
 गीता २२, ३६, ५३, ८९, ९९, १०८,  
 ११९, १३७, १३९-४०, १४२,  
 १४५-४६, १५१, १५३-५७, १८६,  
 २०७, २२०, २३२ २८७, २९६-  
 ९७, ३१७, ३२३, ३३७, (पा०  
 टि०) २२, २९, ३६, ११९, १३९,  
 १५६, १६९  
 'ग्रीनएकर' ३६७  
 'गुडईयर' ४०१  
 गुडविन, जे० जे० ३६१, ३६६-६७,  
 ३८८-८९, ३९१, ३९३ (देखिए  
 जे०जे० गुडविन)  
 गुरखा रेजीमेण्ट २४६  
 गुरु गोविन्द सिंह २५७, २७०-७१  
 गोपाल ३९६  
 गोपी प्रेम १५२-५३  
 गौतम ३८६  
 ग्रेकोट गार्डेन्स ३८४, ३८७-८८ ३९३-  
 ९४, ३९७-९८  
 ग्रैण्ड होटल, बैले ३५७  
 'चड़ी' ३१०-११  
 चद्र २२३, २७७, २८४, २९१, ३१३,  
 ३२८  
 चद्रमा १३०, २४२  
 चट्टोपाध्याय, मोहिनीमोहन ३३२  
 चन्द्रलोक १३८  
 चिकित्सा शास्त्र १८२  
 चित्त २९३  
 'चिरकुमारी आश्रम' ३७३  
 चीन ७, ११७, १६९, २७२, ३३०,  
 ३३४  
 चुनी बाबू ४०२-३  
 'चिन्नापुरी अन्नदान समाजम्' १९८  
 चैतन्य १६०, १८४, २२८  
 छुआछूत ३२९  
 छूत-अछूत १६५  
 ७-२७  
 जगदम्बा ३४०  
 जगन्नाथ ४०५  
 जगन्नाथ जी १५८  
 जगन्नाथपुरी ३६९  
 'ज ज ज' गोष्ठी ३८०  
 जनक १३४  
 जनकत्व १३४  
 जफना १७-८  
 जम्मू २४८  
 जरथुस्ट्र ३८०  
 जर्मन १०, २९७, दार्शनिको ३७७  
 जर्मनी ७, ८५, ३२५, ३६५, ३६९  
 -७०, ३७६-७७, ३७९, ३८२  
 जाट ३४३  
 जाति, ऐंग्लो-सैक्सन ३३१-३२, तातार  
 ३५७, ब्राह्मण १५८, ब्रिटिश ३३१,  
 यूनानी ८१, १६४, रोमन १६९;  
 हिन्दू ३४-५, ७६-७, ९१, ९३,  
 १७७, २४६, ३२२  
 जाति-दोष २२९, २५१  
 जातीय जीवन १८३, धर्म १३३, मन  
 १८३  
 जानकी २४९  
 जानकीपति २४९  
 जापान ७, २७२, ३३०, ३३४  
 जापानी ७३  
 'जाँव का ग्रथ' ३९२  
 जावा (पा० टि०) १६९  
 जिहोवा ५०, २८१  
 'जीवन्मुक्ति' ३८६  
 जीवात्मा ११-२, २५-६, २९, १३०  
 १४७, १५५-५६, १७५, २२६-  
 २८, २३२, २६५, २९७, ३०२,  
 ३०४-५  
 जुपिटर देवता (पा० टि०) ६  
 जेकवी ३६५  
 जे० जे० गुडविन ३६१ (देखिए गुडविन)  
 जेन्द अवस्ता ९  
 जेन्दवेस्ता २२४  
 जेन्टिल साहव ९

विष्णु जी ३१९ ३८८  
 वीन १९ २४ ४६ वर्म १२६, १४४  
 मृगारो ३३७  
 'जो' ३५२ (वेसिए मॅक्सवॉड जोसेफिन)  
 ज्ञानकांड २  
 ज्ञानयोग ४  
 ज्योतिर्विज्ञान २३९

ट्रिप्लिकेन १६१  
 'निम्बुन' २८

डच १७ १८६  
 डॉपसन प्रोजेक्टर ३२५, ३६५, ३६९,  
 ७ ३७२ ३७६-७७ ३७९, ३८२,  
 ३९९ (वेसिए पॉड डॉपसन)  
 डिमोक्रैटिक बस ८  
 डेली म्यूज ३७७  
 डैम्बर ४ ४

डारा ३३९, ३४३

दंभ मन २२५  
 'दत्तमनि' १४५, २१७  
 दत्तानुसंपन्न १८  
 दम २२८-२९ (वेसिए दत्तानुसंपन्न)  
 दमिल १७ ३७ अक्षरों ३९९  
 दमीगुण २९८, ४ ४  
 दकं शास्त्र ३१३

दागार १५९, १८ जानि ३५७  
 दारुत शाशा ४ २ (वेसिए विश्वकामन्द  
 स्वामी)  
 दिग्गज १५८ १८६  
 दिग्गनी चौका ४ २  
 दिग्गक बाल नंगापर ३६५  
 दीर्घत्व ३८  
 दुग्नी ३४  
 दुग्नीराम कवि तमाद् २४१ ३७८  
 दुर्ग १८  
 दुग्गु ३७७  
 दीर्घदीपोनिकरु(ना टि) १७५, २१३

दिपिटक २२४ ३ ५  
 दिप्टुप ३२५  
 दिता २१  
 'द्वाम' ३३६  
 द्वामधि निरजन १३८

दियोसॉफिस्ट ३८८, ४ १, ४ ७  
 दियोसॉफिस्ट सोसायटी १ ३-५

दक्षिण बाह्या १८५  
 दक्षिणोत्तर ३६८  
 दम्पति सेविकर ३६४  
 दयानन्द सरस्वती २१९  
 दर्शन हिन्दू १८, ३४ वेदान्त २ १  
 २ ४ २१५ १६, २१८, २२  
 ३९९ बौद्ध २९५

दति १२९, २२२  
 दाहू ११४  
 दाग १९८  
 दारासिकोह ९, ३२५  
 दार्शनिक दत्त ३२ भाग ५, १६७  
 सिद्धान्त १०९ संप्रदायी २२  
 'दि नाइस्टीय संस्कृति' ३५८-५९  
 देवत्व २६, १७८  
 देवनागरी (संस्कृत) ३९९ भाषा  
 (संस्कृत) १५७

द्राविड १८ १८५ भाषा १८५  
 द्रीगरी १५२, १५४  
 द्रापर २१  
 द्वापरात्मक क्षेत्र ६७  
 देव राजा विनयकृष्ण बहानुर २  
 द्वैत भाव १२९, १५५, १७४ १८४  
 द्वैतमाहात्म्य २२५ देव १७४  
 द्वैतवाद ८९ १२६ १४९, १७४  
 २३९, २६८, २८८-८९, २९५  
 २९९ ३ १  
 द्वैतवाद्यात्मक ३ १ ३२२  
 द्वैतवादी १३ २ ३३ ८७ १२४  
 १२८-२७ ११४ १५६ १७४  
 १८१ २१५ १७ २२७ ३८७-८८

- ३००, ३०५, ३२२, ३४३-४४  
द्वैतात्मक १७४
- घनजय (पा० टि०) १५६
- घर्म ७६, १४८, १७५, ३१८, उस्त्याम  
६३, ११४, ईसाई ८, १७, ६३, ७९,  
८६, १०६, ११२, १३६, १४४,  
१५८, २०४, जैन १२६, १४४,  
बौद्ध १११-१२, १२४, १४४,  
१५८-५९, २४८, २७९, ३३७,  
३४६, ब्राह्मण १५८, यहूदी ३४४,  
यूनानी ३४४, वर्णाश्रम ३३०,  
विश्व ४१, २४५, वेदान्त १२४,  
३४४, सार्वभौम २०८, सेमेटिक  
३२६, हिन्दू ६२, ६६, ९६-७,  
१०७, ११०, १६३-६४, २०२,  
२१६, २४२, २४५, २५७, २७०,  
३३९-४०, ३४४, ३४७
- घर्मक्षेत्र ६२
- घर्म-महासभा ७, ५२, ६१, ९६, १००,  
२०३
- घर्मपाल २९२, ४०४
- घर्म राज्य २७०, विज्ञान ८५, शास्त्र  
३८४, संप्रदाय ८७, १९५ आचार्य  
४९
- घर्मानुष्ठान १७
- घार्मिक आदर्श ७५
- घृति ५
- ध्रुव २७८
- नजुन्दा राव, डॉ० ३५५, ३७०, ३७७
- नचिकेता १३९, २१२-१३, २२४, ३३४
- नमाज (पा० टि०) १५
- नरेन्द्र ४०४ (देखिए विवेकानन्द)
- नहुष २६
- नाजरथ १७६
- नानक ११४, २५७, ३७८
- नायडू, आर० के० ४००
- नार्थ जर्मन लायंड ३८९
- नारायण २८३, पूजा २८४
- नान्ति भावात्मक ३०७-८ (देखिए  
नेति-नेति)
- 'नगर' १०९
- निराकारवादी ३४३
- निरुक्त ३५१
- निर्गुण ईश्वरवाद १५१
- निर्गुण ब्रह्म २८, २०८, पुरुष २८
- निर्गुण ब्रह्मवाद २, ११, २९
- नित्य बुद्ध २३
- नित्य शुद्ध २३
- निवृत्ति मार्ग ४६
- निवेदिता, मिस्टर ३२०, ३३२ (देखिए  
सिस्टर निवेदिता)
- निष्काम कर्म १५४, प्रेम तत्त्व १५४
- नीग्रो ८९, १०९, जाति ८८
- 'नेजरथ के पैगम्बर' ३८३
- 'नेति-नेति' २२७, ३२८
- नेपाल ३४४
- नेपुल्स ३८८, ३९३-९६, ४००
- नैयायिक १६०
- न्याय २२०
- न्यूयार्क ३१८, ३५६, ३६८, ३८०,  
३९६, ४०१
- पचनद २५८
- पचलक्षण २१
- पजाव २१८, २४८, ३४४
- पतजलि १२७, २२६, २८६, २९७-९८
- पम्पियाई ४०५
- परपरा (सांस्कृतिक) ५
- परमात्म तत्त्व २५
- परमकुडी ५२, निवासी ५२
- परमहंस ४१ (देखिए रामकृष्ण)
- 'परम पवित्र' ४०६
- परमात्मा १४६, २२८, २३६, २६६,  
३०६-७, ३१४, ३५२, सगुण और  
निर्गुण २७
- परिणामवाद २९७
- 'पर्वत पर उपदेश' ३७९
- पहाड, कैपिटोलाइन ६, हिमालय ४२,

१९, ११६ १२ १६४ १७२  
 ७३ १७९ २१७ २४२ २४४  
 २७३ २८६ ३५४ ३६३ ३९  
 १९२ (पा टि) २४१  
 पाण्डि फेन्स मैक्सिमस ११२  
 पाइबामोरस ३२४  
 पाणिनि २२१  
 पाण्डुस्य योमसूत्र २९७ (पा टि) २२६  
 'पार्थिवान' ४ ५  
 पांडे हरिमाण २४६  
 पाम्बन ३४  
 पालु डॉयसन २९७ ३८१ (रेखिए  
 डॉयसन)  
 पार्थी २४३  
 पारसियों २५३  
 पाश्चात्य घन १५७ जम्बु १ १  
 जाति ४७ ८१ वसन ४४  
 वार्धनिक २९६ वेष १७-८,  
 ३५, ४१ ४४ ५२, ६ ७४ ७६,  
 ८६ ९६ ९८ १ ३ १ ८ १९८  
 ९९, २ १ २३ २९२ ३३३  
 ३३६ ३४१ ३७७ मायो २६६  
 विचारों २७७ विद्यान् ३४६-  
 ४७ विज्यों ३८९ सम्पत्ता ४६,  
 ३३१  
 पाश्चात्यबासी १७१  
 पासुपय १८१  
 'पाशवक' ५६  
 पी कुमारस्वामी ४  
 पूराण १२, २१ २, ७ १२५ २६ १३३,  
 १३८ १५ १७२, २१७ २२५,  
 २७९ २८१ ३४५, ४६ ३९९  
 पुनर्वन्मावाह २२५, ३४६  
 पुर्नगामी १७ १८६  
 पुण्डरीकानुसमान ११  
 पुण्डरीक पुस्त २७  
 पुरोहित-भरण ३ २  
 पूना ८ ७  
 पश्मल आलासिगा ३५९ ६ ३७७  
 ३८१ ३८७ ३८९ ३९७ (रेखिए

आसिया पेइमक)  
 पैरिया (बाइबल) ८९, ९४ १ ९-७  
 ११४  
 पीप (पा टि) ११२  
 पोर्ट सईद ४ ४  
 पीरामिक १२७ परंपराएँ १४३  
 'प्योरिटी कांसेस' ३६४  
 प्लेटी ३२४  
 प्लेटोनादियों ३२४  
 'प्रकृति का परिवर्तन' २२७  
 प्रक्षेपण ११ २९१  
 प्रच्छन्न बीज २१८  
 'प्रत्यक्षानुभूति' २६८  
 प्रत्यक्षभाव ५३  
 प्रक्य २३  
 प्रकृति मार्ग ४६  
 प्रज्ञाव २४८, २६२, २७८  
 प्राचीन संस्कृत १६४  
 प्राय २९१  
 प्रोटेस्टेंट ११२  
 प्रोफेसर डॉयसन २६५, ३६९ ३७  
 ३७६-७७ ३७९ ३८२ (रेखिए  
 पास डॉयसन)  
 प्रेम २८४  
 प्रेममन्त्रि (बाइबुकी) १५४  
 प्रिंस रीजेन्ट मिमीपीर ४ ४  
 प्रप्युसन ४ ५  
 'फाबर पोप' ४ ६  
 फ्रांस ९, १८ १९२, १७५  
 फ्रांसियों १९  
 फ्रांसीसी ३२५ माया ९  
 'क्रिमिकस' २७२  
 फ्रांस ७ ८५  
 फ्रांसीसी ९  
 फ्रांसिस ३८  
 फ्रीकिलसंस ३९४ ३९६  
 फ्रींसिस ३५३ (रेखिए फ्रींसिस सेमेट)  
 फ्रींसिस सेमेट ३५२, ३९६  
 'फ्रान्कोल हॉल' ४

वग देश २१७  
 वगला भाषा ३३९, लिपि ३३०  
 वगाल १०६-७, ११९, १६०, १६२,  
 २००, २१४, २१७-१८, २२७,  
 २३१, २३६, ३३०, ३३५, ३३९,  
 २४४, ४०५  
 वगाल, पूर्वी ३३९  
 वगाली १४, २०६, ३३३  
 बदरिकाश्रम २४२  
 बम्बई २३५, २५६, ३८९, ४०२  
 बरोज, डॉ० ३८३, ४०६  
 बलची १५९  
 'बलिष्ठ की अतिजीविता' १८९  
 बल्लभाचार्य २८७, सप्रदाय २३५  
 बुद्ध ७३, ११८, १४४-४५, १५८,  
 १७४, १८४, २३५, २९८, ३०५,  
 ३१९, ३३१ (देखिए बुद्धदेव)  
 बुद्धदेव ११२, १४६, १४८, १६०  
 बुद्धि २९३-९४  
 बृहदारण्यक (पा० टि०) १४६  
 बृहदारण्यकोपनिषद् ३०८, (पा० टि०)  
 ११६  
 बेबिलोन ३२६  
 बेबिलोनियन ८२, ३२६  
 बोधायन २१८, भाष्य २१९  
 बोनियो (पा० टि०) १६९  
 बेल्लुड मठ ३३६  
 बोस्टन ३६८  
 बैकुण्ठ ३०३  
 बॅरोज ७९, ११२ (देखिए बरोज)  
 बॅरेनो ४९  
 बौद्ध २४, ५६, ६३, १५९, २२५,  
 ३००-६, ३८०, दर्शनो २९५,  
 धर्म १११-१२, १२४, १५८-५९,  
 २४८, २७९, ३३७, ३४६, मंदिर  
 १५, १५८  
 ब्रह्म २३, ३०७, ३१२  
 ब्रह्मचर्य आश्रम ३३  
 ब्रह्मचारी १५१  
 ब्रह्मज्ञानी १४९

ब्रह्म-दर्शन १३१  
 ब्रह्मपुत्र ११६  
 'ब्रह्मवादिन्' (पत्रिका) ३५८-६०, ३६६,  
 ३८९, ३९७, ३९९, ४००-१  
 ब्रह्मसूत्रो १५२  
 ब्रह्मा २९२, ३८०  
 ब्रह्माण्ड १२, २८-९  
 ब्रह्माण्ड तत्त्व २५, १४१, २८८  
 ब्रह्माण्ड विज्ञान ११, २१  
 बाल गंगाधर तिलक ३६५  
 ब्राह्मण ७०, ८९, ९२-४, १५८-६०,  
 १६२, १८९-९०, १९२, १९८,  
 २०७, २३१, ३०४, ३२५, ३४४,  
 ३४८, ३५१, ३८६, ३९९, जाति  
 १८९-९०, धर्म १५८, युग ३८७  
 ब्राह्म समाज १०३  
 ब्राह्म समाजियो ३९७  
 ब्रायन ३८७  
 ब्रिटिश जाति १८७, ३३१, भूमि २०४;  
 शासन १८७, साम्राज्य ३५२  
 भक्ति २४८, २५७, अहैतुकी २७७,  
 ३५४  
 भक्तिमार्ग २४८  
 भक्तिवाद २७८  
 भगवत्प्रेम १५२  
 भगवद्गीता १५१ (देखिए गीता)  
 भर्तृहरि १२१-२२  
 भवितव्यतावाद २४  
 भागवत १४९, १७५  
 भागवतकार १५०  
 भाग्यवाद ३५३  
 भारत १२-३, १६, १९-२०, २८,  
 ३०, ३३, ३५-६, ४३, ४५-८, ५०-  
 १, ५४-७, ६६-८, ७५-६, ८१-३,  
 १०३-५, ११०-११, ११३, ११६-  
 १८, १२०-२१, १२४-२५, १२७-  
 ३४, १३६, १३८, १४६, १४९-  
 ५२, १५४, १५६, १५८-६१,  
 १६५-६७, १६९-७१, १७३,

१७७ २२१ २२, २२५, २२७-  
 २९ २६९ २४१ २४५, २५  
 २५७ २६१ २६४ २६८-७२  
 २७४ २७६, २८१ २८३-८४  
 २८६-८८ २९५, २९९ ३ ५,  
 ३१४ ३१७ ३१९ ३३ ३३२  
 ३३४ ३५, ३५४ ३५६, ३५९  
 ६ ३६६ ३६८ ३७ ३७७  
 ३७९-८ ३८३ ३८८-८९, ३९१  
 ९८ ३९८ ४ १ ४ ५ ६ पश्चिम  
 ३७८ (वेदिए भारतवर्ष) मूमि  
 २१५, २१६ माता १९३  
 भारतवर्ष ३ ७ २ ३५, ३७ ४१ ४३  
 ४७ ४९ ५ ५२ ५४ ५६ ७४  
 ८४ ९४ ९६ ९९, १ ६ ११५,  
 २४२-४३ २५१ २५८ ६९ २७३  
 २७५, २८१-८२ ३३१ ३३ ३४४  
 ३८०-८१ ६८३  
 भारतवासी १३ ४ ४६ ८६ १ ५,  
 ३२९ ३३१ ३३३ ३८३  
 भारतीय अनुसंधान ३७८ आदर्श १५  
 आयी १६४ २४१ इतिहास ३५  
 गणपना २८६ जनता १ जीवन  
 १ दर्शन ६१ ८५ कर्म १४८  
 कारियों १५ पत्रिकाओं ३ ९  
 भाषा १३५ मूमि ५३ मन १८३  
 २८६ मनोविज्ञान २२६ महर्षियों  
 १७८ मस्तिष्क १६४ राष्ट्र  
 १११ विचार १४५, ३२४ (बाष्पा  
 रिमक) ३३०-३५ विज्ञान १६४  
 विवाह २९९ वेदान्ती ३१३  
 विषय १६४ विद्ययी १११  
 माया भवेती १ ३८९ प्राविद्ध  
 १८५ बनका ३३ हिन्दी  
 २४६  
 माया विज्ञान ३०५  
 माया वैज्ञानिक १८५  
 माप्यकार १५५, १७४  
 मीरक गग ४५  
 भोग १७६

मौखिक प्रकृति ४५  
 मौखिकवाय ५, १७ ५३ ४ ५९ ६  
 ६२ ३ ६६ ६९ ८१ ११६,  
 १७१-७२, २७१-७२  
 मौखिकवासी २५, ५३ ४ ६ ६३  
 ६९ ११६ १९७  
 मौखिक विकासवाय २९७  
 मौखिक विज्ञान २९७  
 मंत्र इष्ट १७७  
 मकना (नगर) १५  
 मजूमदार २६१ ३९६ ९७  
 मणि व्यपार ३६  
 'मवर कर्म' ४ ६  
 मयुरा ६६-७  
 महास ९८ ९, १ २, १ ७ ११३  
 १४ १२४ १२७ १४१ १६३  
 १७१ १७८, १८५ १९४ ९६,  
 १९८ २३ २७७ ३५६ ३८८  
 ८९ ३९१ ३९७ ४ ४०३,  
 ४ ६-७  
 'महास मेक' ३९९  
 मध्य अफ्रीका ८८  
 मध्य मुनि २१७  
 मध्याह्न २१७ २८७-८८ ३२८-२९  
 मन २९३ ९४  
 मनु ४८ १६६ १९ २५७ २७३  
 मनुस्मृति १९ २५२ (पा टि )  
 ४८  
 मनोविज्ञान २२६ २९३  
 मन्वादि पुराणों २५४ स्मृतियों १४३  
 २२४  
 मन्मथ द्वीप ११८  
 मद्रासनिर्वाच लंघ (पा टि ) २५६  
 महाभाग ३२ ९३ १८६  
 महाभाष्य २२१  
 महाभाषा २३३  
 'मोहम्मद स्तोत्र' १४  
 महेंद्र बाबू ८ २ ३  
 ममोरा ३

- मातृभूमि १५, ४२, ४९, ५४, ९५, १०३,  
 २०३, २१२, २२५, २३५, २४१  
 मारगरेट, नोबल (कुमारी) ३३२  
 (देखिए निवेदिता)  
 मालावार १८७  
 मालावारी ८७  
 माया २२, २२७, २३३, २३८, २७९,  
 ३००, ३१०, ३१३, ३१९, ३३५,  
 ३८५  
 मायावाद १९१, २१८, २३२-३३  
 मिल्टन १२९, २२२  
 मिस मूलर ३३२  
 मित्र ३२४, ३२६  
 मुडकोपनिषद् २८९, ३०१, (पा०टि०)  
 १३०, २२३, २६९  
 मुक्ति २८, ३६, १५५, १७७, २२६,  
 २३३, (उपनिषदों के मूल मंत्र) ३६  
 मुगल १८०  
 मुमुक्षुत्व ३४१  
 मुसलमान १५, १९, ६३, ११४, १६०,  
 १८७, २५३, २५६, ३२२, ३३४  
 मुसलमानी १८८  
 मुहम्मद ३१, ६०, १४४-४५, २२०  
 मुहम्मद रसूलल्ला २२१  
 मुहम्मद साहब (पा० टि०) १५ (देखिए  
 मुहम्मद)  
 मूर्ति पूजा १५२, १५८  
 मूल तत्त्व ४, १८  
 मूलर, मिस ३३२, ३५२, ३६४-६६,  
 ३७७-७८, ३८८  
 मूल सत्य १५  
 मूसा के दम ईश्वरादेश २५३  
 मैबुल ३९३  
 मैबेल ३८०  
 मेरी ११२, ३७४-७६, ३८४, ३९१  
 मेरी हेल्, कुमारी ३७४, ३८४, ४०४,  
 ४०६  
 मेमर्स किंग-किंग एंड कंपनी ४०२  
 मेमर्स प्रिण्डले कंपनी ३५१  
 मेर्कैडिले ३७५  
 मैकममूलर २३२, ३२६, ३५८-५९,  
 ३६१, ३६४, ३७७, ३७९, ३८१-  
 ८२, ३९९  
 मैबेल ३९४  
 मैसूर ३९९  
 मोलोक १२, ८२  
 'मोलोक याह्वे' १३, ८२  
 मोरिया १०५  
 'मोलोक याव' ८२  
 मोहिनीमोहन चट्टोपाध्याय ३३२  
 यजुर्वेद (पा० टि०) ३४५, ३५१  
 यथार्थवादी ३१०  
 यम २१३, २२४ (देखिए यमराज  
 यमराज २८६  
 यहूदी १३, २८, ८२, ११३, २५६  
 २८१, ३५१, जाति १३, धर्म ३४  
 'यस० यस० मोम्बासा' ४०७  
 'याकी' ३६८  
 याग-यज्ञ २०, २२, १२४, ३४६  
 याज्ञवल्क्य २२४  
 याज्ञवल्क्यादि सहिताओ १४३  
 यास्क २५१  
 युग, कलि २१, ३२, ३८, ६६, त्रेता २  
 सत्य २१, ७०  
 युक्तिवाद ३१४  
 युक्तिवादी ३०२  
 युधिष्ठिर १५२  
 यूनान ६, ९, ६८, ११२-१३, १६  
 ६५, २१५, २३१, ४०५  
 यूनानी ८१, ११८, २५६, ३२४  
 (पा० टि०) २७२, जाति ८  
 १६४, धर्म ३४४, मेवा ८१  
 मभ्यता ३३१, साहित्य १०  
 यूरेगियन जाति ३२०  
 यूरोप ९, ४१, ५५, ७३, ७५-६, ८  
 ८७, ९३, १००-१, ११२, ११  
 १६२, १६५, १६७-६८, २०  
 २९२, ३००, ३२२ २३, ३२  
 ३४२, ३८१, ४०४-५, वाद ६



मूर्त्तियोग ३ १९ ३९ ८७ ४ ४  
 यूरोपीय २२२ सम्मता ४७  
 यौग १९४ ३७६, ३९८ सास्त्र ३३३  
 यौगाम्य ३८

रञ्जियुग १५१ २९८, ४ ४  
 रवि ३४  
 रासाय २९६, ४ २, ४ ७ (देखिए  
 ब्रह्मामन्य स्वामी)  
 'राजयोग' ३४९ ३५६ ३७७ ३८२,  
 ३८८, ४ १

राजा राममोहन पय २१  
 राजा रामकान्तदेव बहादुर २ ०  
 राजा २५५  
 राम ३४ १ ८ १४९५ १५७  
 २४९ (देखिए रामचंद्र)  
 रामचंद्र ४१

रामकृष्ण १६२, ३४७ ३५९ ३६१  
 ३६८ ३७७ ३८२, ३८९ ३९७  
 परमहंस ३, ४१ ११३ १६१  
 २ १ २ ६-७ २ ९ २२५ ३६  
 २३९, २४७ २५८

रामकृष्णामन्य ३५१ ३६८ ४ ३  
 (देखिए घण्टि)

रामचरित १५  
 रामदमाल बाबू ३६८  
 रामनाथपुरम् ४१  
 रामनाथ ३४ ३७ ४१ ४३ ६७ ४ ६  
 रामराज्य ३८५  
 राम बाबू ३९७  
 रामानुज ११२, ११४ १३४ १९  
 १७५, १७८, १८४ २१८ १९  
 २२७-२८ २३५, २३८ ३९, २८७-  
 ८९ (देखिए रामानुजाचार्य)

रामानुजाचार्य २१७ ३२८ २९  
 रामेश्वरम् ३८ ४१  
 रामसिद्धी २४८  
 राष्ठीय भाषायां १५९ श्रीराम १ ८  
 रिजवे गार्डम् ३७३-७४ ३७८ ३८१,  
 ३९९

रिपब्लिक बस ८  
 रस १५८, ३७७ ३९३ निवासी १५८  
 रूसी पुरातत्त्ववेत्ता १५८  
 रेड इन्डियनों ३६३  
 रेडिकल बस ८

रोम ९ ११२ ३ ० ३५२, ३९३-  
 ९४ ३९६, ४०४-५  
 रोमन क्रांतीक २५३ भाति १९९  
 रोम्यसमस्या ८

रुका १ (देखिए श्रीरुका)  
 रुकावासी ४ ५  
 रुदमी ४ ३  
 रुस्सीपति २४९  
 रुमिमा २२९  
 'रुद्रक ज्ञानिवासी' ३७२  
 रुदन २ १, ३२ ३५२-५३,  
 ३५५, ३५७ ३५९ ३७ ३७२  
 ३७७-७८, ३८१-८४ ३८९ ९६  
 ३९३ ९४ ३९६ ९६, ४ ३-६

'साय मैन प्रीन एंड कंपनी' ३५६  
 साँक कुमारी ४ ५  
 साँई नकाश ३१७  
 सासा बरीका २४३ ३५७ ३९  
 साहौर २८५ ३१९-२  
 सेनेट श्रीमती ३५६  
 सेक स्पूकनि ३६८ (देखिए स्पूकनि)

सेट मूस ३५६  
 सेरी वनस्पत्य २३  
 सेरीभिम धर्म २३ विनाम २३  
 सेरियर साहज ९  
 'सेरिय' १९४  
 सेरु १२६, ३२५, ३२७  
 साधिय्य नीति ४४-५  
 साधिय्यबाह ९९  
 सात्सायन ७१ १४८  
 साह, अत्रेय १११ बरित २८ ९  
 ५९, ८५, १२५-२६, १३७  
 १४९, १७४-७५, २१८, २३८

२६८, २८७-८८, २९४-९५, ३०३,  
 ३०५, ३०७, ३०९, ३१३-१८,  
 ३२१-२३, ३२८, ३७२, ३९९,  
 ऊर्जासिधारण ११, एकेश्वर ८२,  
 ८६, १२६, १४९, १७४, २३९,  
 २६८, २८८-८९, २९५, २९९,  
 ३००-१, विशिष्टाद्वैत १२६, २२८,  
 २३९, ३९९, शुद्धाद्वैत २१५, ससार  
 २२५  
 वानप्रस्थ ४६  
 वानप्रस्थी २०  
 वामाचार ३४६, तत्र २३१, ग्रथ  
 २३२  
 वाल्हो (कुमारी) ३६४  
 वाल्मीकि १५०  
 वाशिगटन ३१९  
 वाराणसी २१८  
 विकासवाद ११  
 विज्ञानवाद २९५  
 वित्तावाद ३२१  
 विद्यादान ३२  
 विनय कृष्णदेव बहादुर २००  
 विम्बलडन ३७-७४, ३७८, ३८१-३८२,  
 ३८९, ३९९  
 'विविधता मे एकता' ९८  
 विवेकचूडामणि २३६, ३१२, ३४१  
 विवेकानन्द ३, १७, ४१, ५२, ६०,  
 १६३, २०० (देखिए नरेन्द्र)  
 विशिष्टाद्वैत ३२८  
 विशिष्टाद्वैतवाद १२६, २२८, २३९,  
 ३९९  
 विशिष्टाद्वैतवादी २०, ८७, १२४-  
 २५, १८१, २१३, २१५-१६, २१८,  
 ३३३, ३४३  
 विशुद्धाद्वैतवादी २१७  
 विश्ववर्म ४१, २४५  
 विश्ववधुत्व-भावना ३४  
 विश्व ब्रह्माण्ड १६३, २८५  
 विश्वामित्र ३३३  
 'विषयान् विषवत् त्यज' ४५

विष्णु १३, २१८, २७३, ३४०  
 'वीनस डी मेडिसी' ४०५  
 वृन्दावन १५१-५२, १५४, विहारी  
 १५४  
 वेद ९, १८, २०, ७०, १०६, १२४-  
 २६, १२८, १४४, १४९-५०,  
 १७२, १७४-७६, १८८, २२५,  
 २३१-३२, २३४, २३६-३७, २६१,  
 २८५-८६, ३००, ३०५, ३१२,  
 ३२५, ३४४-४६, ३६४  
 वेद अर्चना ३४५, ज्ञान ३४५;  
 पाठ १४०, पाठी ९३, वाक्य  
 २२४  
 वेद व्यास १५४, १६९ (देखिए व्यास)  
 वेदान्त ९, ११, १७-२१, २३, २८,  
 ३०, ५४, ५८, ७०-७३, ७९-८१,  
 ८५, ९०-१, ९४, ९७-८, ११२,  
 ११५, १२५-२६, १४१, १४५,  
 १४८, १५९, १६५, १७१-७४,  
 २२९, २३२, २५७, २८५-८८,  
 २९५, २९७, ३१८-१९, ३२४,  
 ३४६, ३६७-६८, ३७८, ३८२,  
 ३८६, ३९२, ३९८-९९, ४०२;  
 उसका अर्थ (वेदों का अन्तिम भाग,  
 वेदों का चरम लक्ष्य) २०  
 वेदान्त दर्शन २०१, २०४, २१५-१६,  
 २१८, २२०, ३९९, धर्म २४,  
 ३३४, प्रचार ३८२, भाष्य २१९,  
 साहित्य २७७, सूत्र २२०  
 वेदान्तवादी ८८  
 वेदान्त सम्बन्धी ८२  
 वेदान्ताचार्य २०१  
 वेदान्तियो २२०  
 वेदान्ती १२५,  
 वेस्ट मिनिस्टर ३८७-८८, ३९३-९४  
 ३९४, ३९७  
 वेदोक्त १७, १४७-४८  
 वैदिक १९, १२५, प्राचीन २२१,  
 यज्ञी १५८ ज्ञान २४२, धर्म २४२,  
 व्याकरण २२१

## विश्वकालम्ब साहित्य

का कारण २३४ और व्यक्ति  
२३६ पश्चिमी २८२ पिछड़े  
हुए और पश्चिम के सोय २४२  
प्रत्येक उसकी एक विशिष्टता  
२५ भारतीय संसार के प्रति  
उनका सहित २३६ यूरोपीय २५५  
राष्ट्रीय क्षमता २६४ जीवन २६५  
पतन उसका असमी कारण २५८  
पाप २६ भावना सौती अंध  
विद्वान ३९ रोग ३७३ विचार  
की भाषा २३७

रासायनिक परिवर्तन १४२

रिजले मैनर ३७३

रीडिंग ३११ १२ ३२४ ३२६, ३४६  
४८ ३५१-५२ ३५५, ३७९ ३९६

स्त्र ११

'क्य' २९

रेचक ८५, १ १ १२०-२१ और  
पूरक ९२ -क्रिया ९५

रोम २९३

रोमन कौबोक्तिक २५१

रघू स्थित ४०५

संका १७८, ३१३ वहाँ का बुद्धमत  
२४९

संड मिस्टर २५९ श्री २८१

सम्बन्ध मानवीय १३

सहमीपति ३७

सह्य उसकी सिद्धि और मूर्ख ९६

सुख सच्चिदानन्द १ २ -स्पक

७२ सर्वोच्च ५३

जगत् ८१

जगत्मीनस ३८९

सम्बन्ध १४७ २३ २३६ ३७ २४२

२६२ २९ ३ ४ ३१५, ३३

३३२ ३३४ ३४२ ४३ ३४६ ४७

३५२ ३५५ ५६, ३५८ ३६ ६३

३ २ ४ २ ४ ५९

'अन्वय सीद्ध' २३६

कोक' कुमारी ३६५ बहू ३९६

'काई थी रामकृष्ण' ३२१

कोस एमिलिस १६७

काहोर ३६१

सीका २६८

सूचर १ ३

सयट एक ३ ३ एक एक थीमती

३४८ परिवार ३० फ्राइर

३३ फ्रांसिस ३३२ थी २८८

२० ३४२ ३६३ श्रीमती ३४८

३६४ ३८७

सैफसुवर्ग २८५, २९ २९२ थी

२७७-७८

बराहपुराण १

बदल ११

वस्तु अतीन्द्रिय १४७ अमूर्त १५८

अस्तित्वहीन १५३ उच्च स्तर और

उसका मापदण्ड १८९ उसका

संस्कार और प्रतिक्रिया १३२

उसका सच्चा अर्थ १२६ उसका

स्वभाव २२ उसकी बहुविध

अभिव्यक्ति १५१ एक समता ही

१८१ एक समय एक ही १५३

और आकाश ११७ और मन ११

-निष्ठ पक्ष १४७ प्रत्येक उसमें

विकास की क्षमता २५६ प्रत्येक

पासता की श्रुतता १३६ प्रत्येक

मौलिक १३५ बाह्य ६६ १२६

१३८ २२ बाह्य उसका

अस्तित्व १३२ बाह्य और बीच की

वस्तु १३३ बाहर की और-उसका

कारण १३३ सभाष से उत्पन्न

५८ साधारिक ५३ स्वरूप

सूक्ष्म उपकरण से निर्मित १ ६

वात्सल्य भाव ७

वाक अद्वैत २४६ २६ ३३६

३४८ ३८४ जायसे १३३

इच्छा ३४१ सम्भिकास ३४१

हीट १९१ ३३६ ३४८ मर्वाय

१३३ विकास २२

वामाचार ३१०, साधना ४००  
 वाराणसी ३६१  
 'वाल्डोर्फ-होटल' २९५  
 वाशिंगटन २३८, हाल १२२, १३१  
 वामना ३४१, अभिव्यक्ति का मूल  
 कारण ३४१, सामीरिक ४  
 विकास, उमकी पूरी प्रक्रिया १८१,  
 पुरातन का २५४  
 विकासवाद २२०  
 विक्टोरिया स्टीट २४४  
 विचार, अन्तर्मुखी २३६, अशुभ १०३,  
 आकाश-तत्त्व में परिणत १७०,  
 आहार में उत्पन्न १५४, उसका  
 आधार ८१, उमके ससार में  
 परिवर्तन २३३, एक प्रकार के  
 चित्र ९१, और ज्ञान ११८,  
 जनतांत्रिक २४०, -तरंग २९,  
 १०३, १३९, -नीव्रता १३४,  
 पवित्र, उसका अनुसरण ९३,  
 प्रत्येक, उसकी तीन अवस्थाएँ ९८,  
 प्राण का स्पन्दन ९८, -बुद्धि  
 २६, -शक्ति ५, १०२, १५१,  
 -सक्रमण १६९, साम्प्रदायिक  
 ३१८, स्वतंत्र १७१  
 विजय गोस्वामी ३१९  
 विज्ञान, आधुनिक १९३, आध्यात्मिक  
 १९१, इन्द्रियगोचर १४२,  
 उसका काम १७७, और ज्ञान  
 १३६, और मनोवैज्ञानिक धारणा  
 १९३, पार्थिव ११४, भौतिक  
 १४७, १९२, २२१, २३६,  
 ३४१, रासायनिक १४७, सर्व-  
 श्रेष्ठ ११४, स्वतः प्रमाण तथा  
 स्वयसिद्ध १८०  
 वित्तपन्हावाद १४३  
 विद्या, अध्यात्म ३८३, ३९५, अपरा  
 ६०, परा ६०, -बुद्धि ३५४  
 विद्याभ्यास ३६०  
 विद्युत् लोक ३८५  
 विधवा-विवाह २६२

विद्वान, नये युग का २५५  
 विधि, अवैज्ञानिक १२४, वैज्ञानिक  
 १२४, सार्वभौम १२४  
 विभिन्नता और एकत्व १५३  
 विमला ३०७-८  
 विमोक ३८-९ (देखिए इन्द्रिय-नियग्रह)  
 'विरह', उसकी परिभाषा ५४  
 विलियम स्टारगीज, श्रीमती ३३०  
 विलियम हटर, सर २४४  
 विलियम हैमिल्टन, सर १०१  
 विविधता, उसमें एकता की उपलब्धि  
 १९०  
 विवेक, उसका अर्थ ३८, २२७  
 विवेकचूडामणि २१ (पा० टि०), २३  
 (पा० टि०), २५ (पा० टि०)  
 विवेकानन्द, स्वामी ७९, १२२,  
 १४७, २२५-२६, २३६, २५८,  
 २६३, २६९, २७६-८०, २८४-  
 ८८, २९०, २९२-९३, २९५,  
 २९७, ३०२-५, ३१२, ३१४-  
 -१५, ३२५, ३२८-२९, ३३२,  
 ३३४-३५, ३३८, ३४२-४४,  
 ३४६-४७, ३४९, ३५१-५२,  
 ३५५-५९, ३६२-६६, ३६८-  
 ६९, ३७१, ३७३, ३७५-७७,  
 ३८०, ३८२-८३, ३८६-८८,  
 ३९०-९६, ४०३-४, ४०६-७,  
 उनका आदर्श ४०७-८, उनका  
 उपदेश, धर्म-विरोधी नहीं २२९,  
 उनका निजी अनुभव ३३६, उनका  
 मूलभूत ३४८, उनका सत्य, ईश्वर,  
 देश और समग्र विश्व ३३९, उनका  
 सरल और प्रेमपूर्ण ढंग २३५,  
 उनकी सफलता का कारण ३९१,  
 उनके कार्य की गूढ़ता ३८६, उनके  
 दर्शन का मूल तत्त्व २३०, उन्हें  
 राजनीति में विश्वास नहीं ३४६-  
 ४७, सत्य पर उनकी श्रद्धा २७६  
 विशिष्टाद्वैत २८३, २९५  
 विशिष्टाद्वैतवादी, उनका कथन ३३

विश्व अंतिम रूप से विख्या २४५  
 -इतिहास १९२ उसका चिन्तन  
 और ईश्वर ५६ उसका नियमन  
 २ ९ उसका निर्माण २०८  
 उसका निर्माण सृजन की समष्टि  
 से १५४ उसका विभाजन १५१  
 उसकी आत्मा ६ उसकी प्रत्येक  
 वस्तु, धर्म सङ्घ १९४ उसकी  
 व्याख्या २ ७ उसके प्रकृत्य एवं  
 प्रयोग की तुलना १९४ उसमें  
 इच्छा का अस्तित्व २ ८ उसमें  
 धर्म के विभिन्न रूप १८७ उसमें  
 वस्तु का अभ्ययन १५६ उसमें  
 धर्म और विभिन्न दृष्टिकोण  
 १५२ और बुद्धि २ ८ और  
 किन्तु १५५ और व्यक्ति २४५  
 कल्पना मात्र २४५ तथा ईश्वर  
 को समझने का उपाय २ ७  
 -धर्म-महासमा २२५, २३१  
 २३७ -अन्तुल्य २३४ -अन्तुल्य  
 उसकी बात का अधिकार ५१  
 ब्रह्ममय २४ -ब्रह्माण्ड २९, ७३  
 ३३१ -ब्रह्माण्ड उसकी उत्पत्ति  
 १ मगनाम् का श्लोक ६९ -भाव  
 १३७ -मन १५४ महान् पुस्तक  
 १९८ मैं हूँ ९१ वास्तव में एक  
 १८१ विविधता में एकत्व का  
 उदाहरण १५२ व्यक्त १७४  
 -व्यक्ति का धरीर ९१ -व्याप्ती  
 चेतना उसकी अभिव्यक्ति ३४१  
 -व्यक्ति ३६८ संपूर्ण एक  
 ऊर्जापुंज १५८ सहीम भावा में  
 किन्ना असीम मात्र ६८  
 विश्वात्मा १२ और ईश्वर तथा  
 विश्व १२ समुप ३८५  
 विश्व ज्ञान और धारणा १३ -ओम  
 ४६ ४९ -वासना ११३  
 किन्तु-दृष्टि ३३  
 किन्तुपुराण ८ (पा टि) ५३  
 (पा टि)

बुद्धावन ७३  
 वेद ३ २१ १४२ २४४ २६३  
 २६७ ३१ अगाधि और नित्य  
 २४६ अर्थात् ६ २७६ उनके  
 द्वारा नियम स्वामी और अपरि-  
 वर्तनशील २४६ उनमें निहित  
 ईश्वी धर्म ३४६ उसका विज्ञान  
 १३६ उसका सबसे प्राचीन भाग  
 २४४ उसकी प्रामाणिकता सदा के  
 लिए २५४ ऋक ६ १९५  
 (पा टि) ३२८ ३३८ और  
 वेदान्त ३२ यजु ६ साम ६  
 वेदान्त ३४ १९१ २११ २१५  
 २१७ २२८ २४९ २५८ २६  
 २८७ ३३४ ३५ ३७४ ३७७  
 ३९ ४ ३-४ उसका अर्थ  
 २४४ उसका विज्ञान १३६  
 उसके अनुसार चेतना २१५  
 उसके विना धर्म अन्वयिवाच  
 २५१ उसमें आध्यात्मिक आचार  
 २५२ उसमें समग्र धर्म २८३  
 -तत्त्व २२७ वर्धन २४३ २८७  
 वर्धन उसके तीस भाग २९५  
 वर्धन तीन स्तर में २८३ धर्म  
 उसका अर्थ २८३ धर्म सनातन  
 ३६ -आध्यात्मिक ६ छात्र २२७  
 धर्म धर्म का दार्ष्टिक धार २५१  
 धारणा-व्यक्ति का अमूर्त विज्ञान  
 २८८ -सुख ९ ३८  
 'वेदान्त एण्ड दि वेस्ट' १२२  
 वेदान्तवागीशङ्कृत धारकर भाष्य ३२७  
 'वेदान्तवाद' २८  
 'वेदान्त घोषाङ्गी धारि साजब मंडि-  
 प्रीनिय' १२२  
 वेदान्ती २१ २१२ २५१ २९८  
 आरसे २५६  
 वेदवेदिया साजब २३३  
 वेदो मीनसम्प ३८८  
 वेस्ट मिनिस्टर मण्ड २२७  
 वेदां

११२, आधार पर अतीन्द्रिय घटना १४७, आविष्कार १९३, क्रिया, सामान्य इन्द्रियगोचर १४९, जानकारी और व्यावहारिक उपयोग ११२, ज्ञान १९०, ३१६, धर्म १४३, पद्धति और ध्यान १३४, प्रतिभा, उसकी आवश्यकता ४०७, प्रदर्शन १४७-४८, प्रदर्शन, उसका अर्थ और खण्डन १४७-४८, रीति १३४, विधि १२४, विषय १४८, व्याख्या १४८, सत्य १९१ वैदान्तिक, प्राण ३८३, ब्रह्माण्ड-विज्ञान ३८४, सिद्धान्त ३८४ वैदिक अनुष्ठान, उसके लिए पत्नी आवश्यक २६६, अश्वमेघ यज्ञानुष्ठान ३०९, धर्मावलम्बी ४०, मत्र, उनके प्रति विश्वास २४६, मत्र, उसका पाठ, अर्थ-सहित, महत्त्वपूर्ण २४६, वाणी २४५, शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ ६०, सूक्त ३६८ वैयक्तिक चुवक १७१ वैराग्य ३२६, भक्तियोगी का स्वाभाविक ४६, और ज्ञानयोगी ४५, और विनय ३०६, साधना ४७ वैषम्यावस्था ३८ व्यक्ति, अनुभूतिसम्पन्न ३३८, अन्त-स्फुरणसम्पन्न १३४, अपढ और ईश्वर-धारणा २६, उसके लिए उपयुक्त आसन ११०, उसमें धर्म-ग्रहण की तैयारी और गुरु-आगमन २४, उसे अपना उद्धार, स्वयं २८९, ऐतिहासिक २४७, और उसकी जीवन-शक्ति का स्रोत ३९५, और दान १२५, और धर्म ३५-६, और मृतात्मा १५९, और विश्व २४५, चमत्कारी १३४, तत्पर, कर्मठ ३३४, तथा सिद्धि १२४, धर्मान्व ५, ३७४, निम्नतम, उससे भी सत्य की सीख २४८, पवित्रात्मा १०३,

प्रत्येक में शक्ति १२३, प्रत्येक, साक्षात् ब्रह्म २२९, प्राज्ञ ३०७, 'वल्लिष्ट, द्रष्टिष्ठ' ४१, बुद्धिमान, उसका उद्देश्य २३९, मूढ १९, विचारवान ३३५, विचारशील २२८, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान १९८, सिद्धि के शिकार १२४ व्यक्तित्व, उसका विकास आवश्यक ८१, उसकी विशेषता १७२, एक सत्य १७२, और नेता १७१ व्यवसाय, उसके लिए मनोयोग की आवश्यकता १७९ व्यवस्था, उसके भीतर जीवनी-शक्ति २५४, सामाजिक और राजनीतिक भलेपन पर टिकी २३४ व्यवस्थापिका सस्था, उसका निर्माण २५५ व्यावहारिकता, दृष्टि के अनुरूप १६१ व्यायाम, उसका अर्थ १६५, मानसिक या शारीरिक १६५, वेगयुक्त, हानिकारक १६४ व्यास ७, उनका कथन १२, उनकी दर्शन-पद्धति २०४, भाष्य ८ (पा० टि०), सूत्र ४ ब्रह्म, डॉ ३०० शंकर २४५, २५६, आचार्य १२, भगवान् ६ (देखिए शंकराचार्य) शंकर पाण्डुरंग ३८८ शंकरलाल, मा० ३११ शंकराचार्य ३३, उनके मतानुसार आहार ३९, और आहार शब्द की व्याख्या ३९, भगवान् ३२ शक्ति, अणिमादि १२-३, आकर्षण १८, आकर्षण और विकर्षण की १९३, आध्यात्मिक २३, इच्छा ४२, ८३, ८९-९०, ईप्सित १६४, ईश्वरीय ४९, उच्च ९४, उनका निरापद मार्ग १००, उगता अधि-ष्ठान १७३, उसका परिणाम ११, ८,

उसका संवात और पुनर्संवात  
 १९३ उसकी सञ्चयन अभिव्यक्ति  
 २२१ उसकी प्राप्ति १७ उसके  
 बिना बड़ पदार्य नहीं १९६ एक  
 प्राण की विभिन्न अभिव्यक्ति  
 ११८ एक संभावना १५७ और  
 ऊर्जा ११७ और पदार्थ १९६  
 और विवक्षा ३६९ और मुख  
 १७६ काम ८९ केन्द्रापसारी  
 १९६ मुख्य २४८ चित् ३८५  
 जीवनी १५९ जीवनी और एक-  
 मत्ता ८६ बीबी ३३७ निम्नतम  
 १९६ नैतिकता और पवित्रता ही  
 २३४ प्रकाशवायिनी १८  
 प्रवृत्त, नीतर की ८५  
 प्रवाह ९ १ -प्रवाह उसका  
 नाम 'ब्रह्म' ८६ -प्रवाह, स्वस्व  
 शरीर में ८८ प्रेरक ६७ १८९  
 बोन ८३ जीविक ३८४ मन  
 ९२ मल्ली ८९ मानसिक  
 ४२, १ ३ मानसिक उसका  
 नियंत्रण ८४ यौगिक, उससे उत्तर  
 १ यौगिक और काम-प्रवृत्ति  
 १ मन्त्र नहीं १ २ मन्त्र  
 १४ -संचार १८ २४ सबसे  
 अधिक सूक्ष्म में १७३  
 सर्वांग १९३ शरीर सूक्ष्म में  
 १७३ सूक्ष्म और कारण १७४  
 सूक्ष्मतम बोध-समता की ११८  
 सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और प्रकृति ११८  
 स्नायविक ९२  
 सव्य आरमाभिभाषित ९५ और माष  
 में नित्य संबंध ३ -व्यक्त चित्त  
 की भटकानेवाका महाबन २१  
 प्रतीकात्मक १२१ -ब्रह्म २९  
 मन के क्रियाशील बनने की विधि  
 १ ३  
 सरनामति सञ्ची ५९  
 सख् ३ ७ ३११ ३१३-१४  
 ३२४ ३२६ ३५ ३५२, ३७८,

३८८ ३९३ ३९७ ३९९, ४ ९  
 (देखिए सारबामन्द स्वामी)  
 शरीर १३, ५८ ९, ८२ १ ० ११९,  
 १५६, २६५, ३३९ ३४४  
 सम्मत्तर की ऊपरी फर्त ११९  
 उनका पुनर्मूलन प्राणायाम द्वारा  
 १२१ उसकी क्रिया का प्रभाव  
 मन पर ११ उसकी गति-विधि  
 १५१ उसकी प्रवृत्ति १ ३  
 उसकी सूक्ष्मतम क्रिया १११  
 उसके नाडीय प्रभाव का उद्भव  
 ९९ उसमें क्रियाशील प्राण का  
 नियंत्रण १५१ उसे बना करने  
 की शक्ति मनुष्य में १ २ उसे  
 बस में न करने से बुद्ध १९१  
 और इच्छा की अभिव्यक्ति २ ८  
 और मन ४२, १ ७ १५ और  
 मन से परे ९२ और माता-पिता  
 १९९ और मानसिक व्यवस्था  
 ११ -क्रिया १५४ छोटा सा  
 बर्ष ९१ द्वारा मन तक पहुँचना  
 ११ द्वारा मन साक्षित १५१  
 बाह्य अभिव्यक्ति ११९ मन का  
 बाह्य रूप ९२ मनुष्य का प्रमुख  
 मान २३६ रूप २९ विज्ञान  
 आधुनिक १९७ २ २ विभिन्न  
 सत्ता नहीं ११९ सूक्ष्म ३९, ११०-  
 ११ १९९ सूक्ष्म अपने विचार  
 द्वारा निमित्त २३९ स्तूक ११  
 १३ १९९ स्तूक बस ११  
 २१३ स्वस्थ और इन्द्रिय-संयम  
 की प्रतिष्ठा ४२ हमारा मार्ग  
 और यौगिक सहायता १६४  
 सखि ३ ७-८, ३१०-११ ३१३-  
 १४ २२४ २६, ३५ ३५२,  
 ३७८, ३८ ३८८, ४ १ ४ ८  
 (देखिए रामकृष्णानन्द स्वामी)  
 शंकर मान्य १३ (पा टि ) ३२ ३  
 (पा टि ) ३९ (पा टि )  
 ३२७

- शाक्त २८३  
शाण्डिल्य ४, उनके 'अनुरक्ति' शब्द की व्याख्या ८, -सूत्र ८, ५४ (पा० टि०), ३२४, ३२७  
शान्ति और प्रेम १८२, और सद्भावना २३२  
शापेनहॉवर २३२, उनका कथन २०४, उनका विचार २०४, उनकी भविष्यवाणी २३७, और बौद्ध का इच्छावाद ३४१  
शारीरिक अभ्यास, उसके तीन विभाग १०१, कष्ट, उसका परिहार १७४, परिवर्तन १२१, बल, नितान्त आवश्यक ४२  
शालग्राम-शिला २६६  
शास्ता ६७  
शास्त्र, उसका उद्गम १७७, उसका कथन ७, १०, १३३, ३१६, उसका शब्दजाल २१, उसकी आत्मा का ज्ञान और गुरु २१, -ग्रन्थ ६७, प्राचीन २२८  
शिकागो २२९, २३१, २३७, २५१, २५७, २७९-८०, २९३, २९६, ३०४, ३३०, ३४२, ३६५, ३९२, -वक्तृता ३६०, वहाँ की महासभा २५१  
शिक्षक, आध्यात्मिक और लौकिक २६१  
शिक्षा, उपयोगी २३, उसका अन्तर्-तम अंग, धर्म २६८, उसका आदर्श १५७, उसका ध्येय १७२, उसका रहस्य १७३, उसकी उपयोगिता १७३, और प्रगति, उसका उद्देश्य २२०, और विश्वविद्यालय २६२, और सस्कृति १३४, और सभ्यता ३४७, -दीक्षा २२७, ब्राह्मण-चाण्डाल, दोनों के लिए ३०९, -पद्धति ३७२, महान् २३३, महान् और जाति-भेद २३९, लोकोपयोगी २५२, सार्वजनिक ३७६  
शिक्षाण्टक ३५ (पा० टि०), ७५ (पा० टि०)  
शिव २९२, ३७८, भगवान् २५ 'शिव-सहिता' ३४०  
शिवानन्द २८४  
शिष्य २६३, उसका कर्तव्य ८१, उसकी परिभाषा १७, उसके लिए आवश्यक बातें २०, और अध्यवसाय २१, सच्चा १८  
शुद्धि, उसकी साधना में त्याग, श्रेष्ठ ४५  
शुभ २३, और अशुभ २९५, और अशुभ की भावना ३७२, और अशुभ विचार १०३, -विचार ३७१, -विचार और बीभत्सता की चरम सीमा ४०, विचार का उत्तराधिकारी १०३  
शेक्सपियर, उसका 'एज़ यू लाइक इट' २३ (पा० टि०)  
शैतान ५२, २२६, २८३, ३३१, ३४३, ३४५, उसकी उपासना, विकृत पाठ २४३  
'शैतान-पूजा' २७५  
शौच, आंतरिक ४०, उसके गुण, रामानुज के अनुसार ४०  
श्रद्धा, उसका मूल ५४, -भाव ७९  
श्रवण ७, -शक्ति १२४, १४०  
श्रीभाष्य ८  
श्रीमद्भागवत ११-२ (पा० टि०), २५ (पा० टि०), ५५ (पा० टि०), ७३  
श्रीराम, कमललोचन ३७  
श्रीश वावू ३२७  
श्रुत और श्रवण २०७  
श्रुति ७, ३२, उसका कथन ३८, ४१, और स्मृति ३३  
श्वास-क्रिया, उसका नियमन १२०, -प्रश्वास-क्रिया १२७  
श्वेताश्वतरोपनिषद् ३ (पा० टि०)



संस्कृत ३४१ अतिवैतन ३४२ वैतना-  
रहित ३४२ विनाज्ञानके अर्चन  
३४२ अर्चन वैतन ३४२  
संगठन उससे ही संकित ४ ९ उस  
प्राप्त करने का उपाय ३९५ १ ८  
संघीत -लोक १ ८ शास्त्रीय  
संघमित्रा २६८  
संघर्ष अज्ञान के कारण २२१ उसका  
सृजन अशीरता २२१  
संघात उसकी आवश्यकता २ ८  
समीचीन-संज्ञित १७  
संघे टाइम्स २३  
संघ महान् और भाषार्थ ८५  
सम्पाद्य २३४ २८९ ४ १ उसे वेद  
की स्वीकृति प्राप्त ३६७ और  
संगठन २३१ -सार्थ ३२१ अथ  
उसका अर्थ २३५  
संस्मृती २८१-८२, २९८ ३११  
३२३ ३२६ ३२८ ३३ ३४५  
४६, ३४८, ३६१ ६२, ३८१  
३८३ ३९१ ३९६ ३९९, ४०  
४ ५ और योगी २२७ पूर्व  
२३२ महान् २३२ अथ का अर्थ  
२३४ अथ ३९२ सम्प्रदाय  
३४७ हिन्दू २२६, २५७  
'संस्मृती का पीठ' ३३२  
सयम ४  
सचिवक १९७ मित्र अथय के लिए  
मित्र इन्द्रिय १९७  
सचेतन बाह्य ८५  
सचेतना उसका विभाजन और प्रमाण  
२१ और उरग १३३ और  
प्राण ८३  
संस्कार २ ५ अतीत के १६३  
उसकी साहचर्य-भाषि २ ७  
पूर्व और पूर्व भाग ११४ अथ  
का १२६  
संस्कृत अथ धर्म-मूर्ति १७७  
उसका विद्वान् ३४७ कदाचित्त  
२४१ कौय ३८८ ज्ञान ३६९

प्राथमिक उसकी शिक्षा ३९९  
भाषा ४९ ३४७ अथ १४१  
संस्कृत २४८ साहित्य ३९५  
संस्कृति लेखन और अज्ञानी २३२  
संसार, अन्धविश्वास की मूर्ति से अन्धकार  
४ ७ इन्द्रिय बुद्धि और मुक्ति का  
१८७ उसकी प्राचीनतम विचार  
प्राण २१२ उसके धर्म ४ ८  
उसके महान् उपदेष्टा का कथन  
७९ उसके मुख्य धर्म ३४ उसके  
समी धर्म की घोषणा १९ उसमें  
आध्यात्मिकता की बाढ़ २८ उसमें  
निश्चिन्त बुद्ध नैसर्गिक नहीं ३१९  
उसमें बुद्ध मूर्खता के कारण १६१  
उसमें ही प्रकार के मनुष्य ५२  
उसमें स्वार्थपरता की बाढ़ ५८  
एक पागलमाना ७५ एक अर्थ  
१५९ और ऐन्द्रिक बुद्ध १ ९  
अन्धमंगूर ५८ बुद्ध से परिपूर्ण  
१६१ अथमान ५६ न अन्ध  
न बुद्ध १६२ निरन्तर परिवर्तित  
१४६ परिष्करी २५८, २७५ बहु  
धर्म एक स्वप्न १५९ बाह्य १ ९  
मोक्षविज्ञानपूर्व १५ -अथ ७६  
आत्मत के प्रति सूक्ष्म १ ९ अथ  
और अनुभव का मिश्रण २९५ सुख  
और बुद्ध का मिश्रण २९५  
सहिता पुरानी संस्कृत में २४४ वेद  
का सबसे प्राचीन भाग २४४  
'संविद्यात्मन्' ३४१  
संश्लेष और बाह्य १८८  
सत्य ३२३  
सत् १९४ ३३५ धर्म १६०-६१  
चिन्तन ८९ प्रकृति उसके विप  
रीत कार्य ११३  
सत्ता अतीन्द्रिय २२ अथगीत १८८  
सत्य १३ १५३ अनुभव बाह्य प्राप्त  
१९२ आपातप्रतीयमान उसका  
कारण २४५ आत्मन्तर १९२  
आत्मन्तर अनुभूति बाह्य प्राप्त

१९२, ईश्वर विषयक और  
 आत्मविषयक १३६, उदात्त,  
 उसकी शिक्षा, पुराण का उद्देश्य  
 २४७, उमका प्रचार २७६,  
 उसकी खोज २४, उसकी  
 जय २३०, २७६, ३१८, उसकी  
 प्राप्ति, प्रथम कर्तव्य १९, उसकी  
 सीख, निम्नतम व्यक्ति से २४८,  
 उसके निम्न पाठ २४३, उसको  
 प्रकाशित करने की भाषा ३१९,  
 ऐतिहासिक और पुराण २४७,  
 और ज्ञान २०, और भगवत्प्राप्ति  
 की तीव्र आकांक्षा ८०, और शिव  
 २७७, केन्द्रीय दिव्यत्व की अभि-  
 व्यक्ति २३३, केन्द्रीय, भीतर का  
 ईश्वर २३३, दैवी, अपरिवर्तन-  
 शील २४६, परम १३८ (पा०  
 टि०), पूर्ण १९२, बाह्य १९२,  
 भौतिक, उसका समनुरूप १९२,  
 -लाभ २०७, वस्तु की नक़ल १६९,  
 वैज्ञानिक १९१, सनातन २०,  
 -समूह ३३६, सार्वभौमिक ११५,  
 स्वप्रकाश २०, स्वयप्रमाण २०,  
 २२९, -स्वरूप केन्द्र की त्रिज्याएँ  
 २३३

सत्ययुग, उसका आविर्भाव ३०९  
 सत्त्व, पदार्थ ३८-९, -शुद्धि ३९  
 सनातनी, अन्धविश्वास २६४, लोग  
 २६१, हिन्दू २६४  
 सन्तुलन-केन्द्र ३१६  
 सद्गुण और साहस ३८७  
 सदसद्विचार, उसका आनन्द २२७  
 सदानन्द, स्वामी ४०१  
 सच्चाटेरियन, कट्टर ३०५  
 सम्यता, अमेरिका २६१  
 समष्टि, इकाई ५६, ईश्वर ही ५६,  
 उसके माध्यम से विद्व-प्रेम समव  
 ५६, और व्यष्टि ५६, -क्रम २१७,  
 -शुद्धि २१६, ब्रह्माण्ड २१७, भक्त  
 का भगवान् ६७, भाव ५६,

-मन १५४, १७०, २१६, ३८४-  
 ८५, महत् २९, ३८५, सूक्ष्म और  
 स्थूल जड २१६  
 समन्वय और शांति २५८  
 समरिया देश ३८९  
 समाज, उसका मूल आधार, दोषजनक  
 १५७, उसकी पूजा और मूर्ति-पूजा  
 ८०, -व्यवस्था २३४, शिक्षित  
 ३३५, -सुधार २५०  
 समाजवाद २४३  
 समाजवादी ३४९  
 समाधि ८४, ९५, -अवस्था ९६,  
 -अवस्था, उसकी भूमिका १०७,  
 -अवस्था, सर्वोच्च २१३, उच्चा-  
 वस्था १२९, तथा द्रष्टा और साक्षी  
 १२९, -दशा १५६, धर्ममेघ ३३७,  
 स्वरूपशून्यता १३२  
 समाधिपाद ७ (पा० टि०)  
 'समुद्र-पीडा' ३६५  
 सम्प्रदाय, उदार-भावापन्न ३५, उसकी  
 उपयोगिता की सीमा २३५,  
 उसकी शक्ति का स्रोत १२९, और  
 भक्ति ३५, ब्रिटिश २३०, वैष्णव  
 १२६, सुधारवादी २६३, हठ-  
 योग २२६  
 सम्प्रदायवादी, सकीर्ण ३५  
 सम्मोहन १८१  
 सर्वभूत ५८  
 'सर्वव्यापी' २६  
 'सर्वशक्तिमान' २६  
 सहस्रद्वीपोद्यान २७७, २८७-८८, २९२,  
 २९५-९६, ३०२-३, ३३०, ३३२-  
 ३३, ३४२  
 सहस्रार ८५, ९४, १४०  
 सहारनपुर ३१२  
 सहिष्णुता ८०  
 मास्य ११, उमका दृष्टिकोण २००,  
 उमका पुरुष २१०, उसका मत  
 २०१, उमके अनुसार, अहकार  
 एक तत्त्व २११, उमके अनुसार

प्रकृति २ १ और प्रीक दार्ष्ट  
 निक विचार का समारंभ २ ३  
 और वेदान्त १९१ वार्त्तिक  
 १९३ २ १ २ ८ वार्त्तिक  
 और प्रकृति २ १ मतानुसार  
 बस्तु की सत्ता २ बावी २१  
 २१४ सर्वांगपूर्ण सामान्यीकरण  
 मही २१ -सूत्र २१२ (पा टि )  
 सांख्य दर्शन १९४ २११ २१४  
 १४१ उसके अनुसार आत्मा २१४  
 उसके अनुसार प्रकृति २११ उसके  
 अनुसार सत्त्व रज और तम ३८  
 उसके क्या दोष २११ उसे  
 समझने की सीढ़ी २ ३ जगत्  
 का सर्व प्राचीन वर्णन १९१  
 भारत की वर्धन प्रजापति की आचार  
 विद्या १९१ विरह-दर्शन का  
 आचार २ ३  
 साक्षात्कारिका ३४ ३७५  
 सांसारिक आकांक्षा ५९ बुद्ध उसका  
 कारण ११४ प्रेम ५५, ७५  
 बस्तु ५३ वासना ४ भुक्त ११२  
 स्वार्थ ४९  
 साधक ८ १८ आदर्श १८ उसके  
 किए एकनिष्ठा आनन्द ३७  
 और आत्मा के बन्धन ५३ और  
 आहार संबंधी नियम ३९ और  
 ब्रह्माण्ड का चिन्तन ३१ और  
 सत्ता भगवान् ६ और मध्य  
 प्रेम ६९ सकलताकासी और तीन  
 बातों की आवश्यकता ८  
 साधन उसमें परिश्रम ब्रह्मिक ५२  
 और विकास १७५ इन्द्रिय १७५  
 द्वारा ईश्वर-भक्ति का उदय ४२  
 -नियम ७ -यथ १८ भक्ति  
 १५  
 सत्कर्म उसका लक्ष्य ८४ उत्तम  
 सर्वोत्तम समय ८१ और सिद्धि  
 २१ -पञ्चति १५१ २२८  
 प्रजापति १

साधनात्मस्था १५  
 साधु, भाव २३ -महापुरुष ४  
 -संन्यासी ३ ८  
 साम्यात् ३ ७ ३१२ ३२ ३२२  
 ३२४ ३२६, ३७  
 सामवेद ६  
 साम्यवादी सिद्धान्त २५२  
 सामाजिक कल्याण ३३७ परिस्थिति  
 ३१७ व्यवस्था २४१ सयत्न,  
 राष्ट्रीय विचार की अभिव्यक्ति  
 २३९ समस्या १५६ समस्या  
 और हिन्दू जाति-मया ३४९  
 सुधार २४ २६० सुधार, उसकी  
 आवश्यकता २५४ स्थिति इंग्लैण्ड  
 की २५९  
 सामान्यीकरण और सुद्ध विचार २३५  
 साम्यावस्था १९३ २११ आदिम  
 १९३ और सृष्टि का अस्तित्व  
 १९३ पूर्व उसमें गति नहीं २ १  
 प्रकृति ३८  
 सार-तत्त्व और प्रेम २३८  
 सारवा ३ ३१३ ३१५ १६  
 ३१८ १९ ३२४ ३५ ३७८  
 ३८ (केलिए विमुक्तानाम्,  
 स्वामी)  
 सारवानन्द ४ ६-७ स्वामी ३६९  
 (केलिए भारत)  
 सारा सी बुद्ध भीमती ७९  
 'साहसी' ४ ८  
 सिंगापुरके मूनाकिमर २९३ (केलिए  
 किटी)  
 सिद्धहरिका २१२  
 सिद्धान्त ३९४ आधुनिक और आकाश  
 २ १ आधुनिकत्व ३५६ साम्  
 बावी २५२  
 सिद्धि अप्राकृत ९८ और ज्ञान १३  
 मनस्तापिक व्याधि के लक्षण  
 ९८ यौगिक १ ५ -ज्ञान १२  
 ४ ७  
 सिद्धि सर्वोत् २३७

निलवरलाक, श्री ३५६  
 मीता ३७  
 मीतापति २६८  
 मुकर्म ३८१  
 मुख और दुख-भोग २१३, दुखात्मक  
 अनुभव ४५, वृद्धिजन्य ४७, -भोग  
 १४, १४४, -सम्पदा ५९  
 सुधार, आदर्श २५४, आध्यात्मिक  
 ३३१, उमका अचूक मार्ग ९८,  
 प्रगतिशील २५४, सामाजिक २६२,  
 सामाजिक, उसकी आवश्यकता २५४  
 सुधारक, आधुनिक २५६, और यूरोपीय  
 लोग २६१  
 मुन्नह्ण्य, अय्यर, न्यायाधीश २५७  
 सुरेश ३२९, दत्त ३२७  
 मुपुम्णा ९९, १०१, १०४, १३९,  
 उसका ध्यान, लाभदायक ९४,  
 उसकी सर्वोत्तम विधि ९४, उसके  
 दो छोर पर कमल ९४, उसके  
 मूल में स्थित शक्ति १३८ (पा०  
 टि०), -पथ ९०, -मार्ग १००  
 सूक्ष्म और सयम ३९  
 सूडान २३६, २४१  
 सूत्रात्मा ९८  
 सूरज २० (देखिए सूर्य)  
 सूर्य ११, २०, २४, ५१, ७०, ११७,  
 १४८, १५३-५४, २१३, ३५९,  
 ४०७, और चन्द्र ७२, ८६, ८८,  
 (पिंगला) ८५, प्राच्य २२९,  
 -लोक ३८४  
 मृष्टि, अनादि ९, आत्मा के हित के  
 लिए १९८, उसका क्रम १९५-  
 ९६, उसका तथ्य १४६, उसका  
 सर्वश्रेष्ठ विद्यालय ३४३, उसकी  
 समष्टि से विश्व १५४, उसके  
 पीछे एकता २४३, और उपादान  
 २११, और प्रलय १९४-९५,  
 कर्ममय ६९, क्रम १९६, द्वारा  
 ईश्वर का अनुसंधान १४६,  
 -निर्माण ६९, -रचनावाद, उसका

सिद्धान्त १९८, -शक्ति, आदि  
 ३८४, सम्पूर्ण, उसके पीछे  
 एकता २४३  
 सेट जार्जस रोड ४०३, ४०५-८  
 सेन, केशवचन्द्र २४३  
 मेमिटिक जाति २८३  
 सेमेटिक लोग, उनमें नारी २६६  
 सेवियर, श्री और श्रीमती २६२-६३  
 सैन फ्रान्सिस्को १२२, १३१, १५१,  
 १६०  
 सैम ३७५, ३९६  
 सोम ११  
 सोलोमन, श्री एव श्रीमती ३६६  
 सौन्दर्य और महानता ५१  
 सौर-जगत् १९४  
 स्टर्डी २८४, ३४२, ३४७-५२,  
 ३५५, ३५८, ३७९-८०, ३८८,  
 ३९१, ई० टी० २७५-७६, ३११-  
 १२, ३२४-२६, ३३४-३५,  
 ३४०, ३४३-४४, ३४६, ३४८-  
 ४९, ३५२, ३५६, ३५८-५९,  
 ३६४-६५, ३६७, ३७३, ३७५,  
 ३८३, ३८७-८९, कट्टर वेदान्ती  
 ३२७, श्रीमती ३५८-५९, ३६४,  
 साहव ३२७  
 स्टारगीज़, अल्बर्टा ३०४, कुमारी  
 २९२, श्रीमती ३०३  
 स्टील, कुमारी ३७३  
 'स्टैन्डर्ड' ३५६  
 स्ट्रीट, डॉक्टर ३८३  
 स्त्री, उसका महत्त्व ३१७, उसकी  
 अवस्था-सुधार और जगत् ३१७  
 'स्त्री-गुरु' ३१७  
 स्थूल, उसका कारण सूक्ष्म में ११८  
 स्नायु-केन्द्र १९६  
 स्पेन्सर, हर्बर्ट २६०  
 स्फोट, अव्यक्त २९, ३०, ईश्वर के  
 निकटवर्ती ३०, ईश्वरीय ज्ञान की  
 प्रथम अभिव्यक्ति ३०-१, उसका  
 अर्थ २९, उसका एकमात्र वाचक

## त्रिवेदान्त साहित्य

मूल भित्ति १४५ उसकी संहि  
 ष्णता ४२ उसमें अन्तर्मानव की  
 रीति २६१ उसमें कामधायक  
 सवर्ष ९६ उसमें सीखने योग्य  
 बात ६३ एक स्पन्दन ११७  
 और भर्म ३७९ और मृत्यु ७८  
 ८५, १९५ मंत्रीर व्यापार २३६  
 जड़वत् और झूठ १४ ज्ञानमय  
 १६२ तथा स्वर्ग १३६ -ज्ञान  
 २६ शीघ्र ५९ शीघ्रक ८५  
 दूसरा की मलाई के लिए काम  
 करना ३३५ सामिक १३२  
 -नाटक २५५ -नाटक उसमें  
 शब्द प्रतीक का स्थान ४९ -यय  
 ८४ पापिक २३ -प्रमात १३४  
 प्रेम ही ३३२ योग-विद्यासंपूर्ण  
 १२२ भौतिकपरामर्श ४९  
 मरणोत्तर ११८ मिथ्या है ३७९  
 मृत्युस्वरूप अल्प स्तर का २६  
 मर्णात् कर्ममय ३७ मर्णात् त्याग  
 मय ३७ राष्ट्रीय ३३२ राष्ट्रीय  
 आध्यात्मिक ३३९ विस्तार ही  
 ३३३ व्यावहारिक ३८ ११४  
 -संघाम ९, १४ संघर्ष का नाम  
 ५९ सच्चा २६ सदा विस्तार  
 करना ही ३५५ सत्त्वा १३४  
 सम्पूर्ण एक व्यायामशाला २६  
 सम्मिश्रित व्यापार ५९  
 जीवन्त उसके सामान्य सङ्घम २ ४  
 तत्त्व १९८ शक्ति १९८ सत्य १९८  
 जीवन्मुक्त और संसार २६१  
 जीवार्त्मा १५१ १५८, १६७ १७३  
 १९९ ९७ २१७ २२०-२१  
 २२३ २५९, ३७५-७६ आत्म  
 मय २२१ उसका क्या स्वरूप  
 २२१ उसकी पूर्णता की स्थिति  
 होने पर २२३ उसकी पूर्णता  
 प्राप्ति २२३ उसके विस्तार की  
 आवश्यकता २२१ और ईश्वर  
 २८५ बाहरी स्तर पर २२८

धेन २८  
 वेस्टाइस ६७  
 वेस्य डॉ ३६४  
 वीक २१२ २२८  
 वीन और वीड २४३ भाषक  
 ३२८  
 वीनी ६२  
 वोसेफ ६  
 वोसेफिन बहन ३८८ डॉक १९  
 ज्ञान सतीश्रिय १५३  
 २८ आत्म्यस्तिक १ ७  
 उसके विग्रह १९९ उसका २  
 मात्र उपाय १५४ उसका ५  
 मात्र मूस्य २२९ और ७ १५  
 ८४ और कर्म १५१ शैतन्य ५  
 आदि तथ्य ११८ -ज्योति ११८  
 १५८ तत्त्व ३५, १६ शान ५  
 भीचे सारीरिक २  
 २८ ध्यान की शक्ति से १८१  
 पारमात्मिक २८ प्रत्यक्ष ७७५  
 मूकमूक कारण १५२  
 १५ बाहर से नहीं ३ शैशिक  
 १९५ मनुष्य का प्रकृत जीवन २८  
 मनुष्य में अन्तर्निहित ३ -मार्ग  
 ८१ मर्णात् ३३ -योग ६७ ९९  
 १६९-७ -योग उसकी शिक्षा  
 १५८ -योग और ईश्वरस्वरूप  
 की अनुभूति १७ -योगी १५३  
 योगी उसका प्रथम मार्ग ७२ रहस्य  
 १६४ -विचार १५१ वैज्ञानिक  
 ११५ -शक्ति १७ सास्त्र  
 १८४ सम्पूर्ण हममें निहित  
 १ ६ साधारण वस्तु विषय  
 ३३ -स्वरूप आत्मा ४  
 ज्ञानाशोक ३३८  
 ज्ञानी उसका अनुबोधन १५७  
 उसकी इच्छा १ ५ उसकी  
 पहचान १५७ और एकत्रानु  
 मुक्तिरूप योग १५१ तथा कर्मों  
 और वक्त ३१

- ज्यामिति, विज्ञान मे श्रेष्ठ २२६  
 ज्योति की मन्तान ३७५  
 ज्योतिर्विद् १५३  
 ज्योतिष ३५२  
 ज्योतिषी लोग ३६७  
 'ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनी' १११  
 टाउन हॉल ३१९, ३३१  
 टोटेन, श्रीमती ३२१ (देखिए ई० टोटेन)  
 ट्रान्सक्रिप्ट ३९२  
 डाइनेमो २७१  
 डाक्टर, नजुन्दा राव ३३६, राव ३३६  
 डाविन ११५  
 डिट्रॉएट २७३, ३५५  
 डिट्रॉएट फ्री प्रेस २७३  
 डियरवोर्न एवेन्यू ३२८, ३४३, ३५८, ३६४-६५  
 'डेगो' ३५३  
 डे, डॉ० ३८५  
 डेमोक्रेट २३९  
 तत्र-ग्रथ २३  
 तत्त्व, उपदेश १३३, जीवत १९८, ज्ञान ६५, १६०, २५४, ३६८, ज्ञानी १००, दर्शन १७५, दैवी २८५, पौराणिक १४५-४६, भौतिक २३२, वीरोचित ३०२  
 तत्त्वमसि १५८  
 तम, उसकी अभिव्यक्ति ११  
 तमोगुण ११  
 तर्क, उसके पथ मे वाषा १५२  
 तामसिक पुरुष १४  
 तारक दादा ३००, ३५२, ३५४, ३५७ (देखिए शिवानन्द स्वामी)  
 तितिक्षा, उसकी परिभाषा १००, उसकी प्राप्ति के लिए कार्य १००  
 तिब्बत १४७, २९६, ३७३  
 तीर्थयात्रा २५१  
 तुलसी ३००  
 तुलसीदास ३८१ (पा० टि०)  
 तुलसीराम ३६३, वावू ३०९  
 त्याग, उसका अर्थ १८६, २७८, उसकी परिभाषा १७९, उसकी महिमा १७६, उसकी सीमा कही नहीं १७६, उसके विना धर्म नहीं १८५, और आत्म-बलिदान २१२, और आध्यात्मिकता १३६, और मनुष्य १७६, और विवाह १७६, द्वारा अमृतत्व की प्राप्ति ३१३, निवृत्तिमुखी ९-१०, सच्चा १३  
 त्यागी और तेजस्विता ३१३  
 'त्राहि माम्' ३०७  
 त्रिगुणातीतानन्द, स्वामी ३७३ (देखिए सारदा)  
 'त्रिपुरमदभजन' ३७४  
 त्रिभुज, उसका तीसरा कोण २७६  
 थर्ड यूनिटेरियन चर्च २७२  
 थर्सवी, कुमारी ६५, ३८४, श्रीमती ३७८, ३८८  
 थियोसॉफिकल सोसायटी ३४६-४७  
 थियोसॉफिस्ट ३०७, ३३६, ३६९, ३७१  
 थेरेसा, सत २७५  
 दम और आहम्बर २७१  
 दक्षिणामूर्तिस्तोत्रम् १९९  
 दक्षिणी ध्रुव ३०१  
 दण्ड और पुरस्कार ९८, २७५  
 'दम', उसका अर्थ १००  
 दया ५१, एक हेतु १६३, और नि स्वार्थपरता के कार्यरूप मे ३५, दैवी सम्पत्ति ३५, मौलिक वस्तु नहीं १८२  
 दर्शन, उच्चतम कविता २२८, और धर्म ६१, -प्रणाली १११, प्राच्य ३, शास्त्र ६०, ११७, २१७, सार्वभौमिक १४१

बसवन्दी ३२  
 बसा और बसेस ७४  
 बति ८५  
 बार्थलिक ६१ मापा १४१  
 बाबू ३६३  
 बास ३३ उसमें सच्चा प्रेम संभव  
 नहीं ३३ बच् कार्य और उसका  
 बोध ३५  
 'बासों का बास' ३६  
 दिव्य प्रकाश उसका अनायास जाति  
 भाव १९  
 'दिव्य प्रेम' २१४ (पा टि )  
 दिव्य प्रेरणा २३६ (बेसिए अन्त-  
 स्फुरण)  
 दीनता और समर्पितत्व ३७८  
 दीवान भी ३२८ साहब ३ २,  
 ३२५ (बेसिए बेसाई, हरिदास  
 विहारीदास)  
 दुःख उसका उद्गम १६७ उसका  
 कारण ५१ और कष्ट १५५ और  
 श्लेष और भ्रम १६७ और मृत्यु  
 २५९  
 दुःखानुत्पन्न सुख ७८  
 दुनिया बच्चों का शिक्षादाक नहीं  
 ३ ९  
 दुराग्रह ५४ २३४ एक प्रकार का  
 रोम २३५ और दृष्टान्त ५४  
 और मर्यादा ५३ पूर्व सुधार  
 २३५ प्रेम का विरोधी ५५  
 दुराग्रही कई प्रकार के २३४-३५  
 दुराचार ३३५  
 दुर्बलता साधुता तथा सबलता ६३  
 दुर्भागिता उसके कारण अत्याचार ४  
 'दुर्भागिनी बर्मा' २३८  
 देवतागण उच्च अवस्थाप्राप्त विद्यमान  
 मानव २६१  
 देव-मानव ६ १५२ २४७  
 देवमाम मार्ग ३ ५ द्वारा प्राप्त गति  
 श्रेष्ठ ३५९ (पा टि )  
 देवालय ३८

देस ३७५ उसके लिए और की  
 आवश्यकता ३२३ -काल और  
 परिचाम ११९  
 देव-काल-निमित्त ६९ ७१ ११९  
 १७४  
 देवभक्ति सदा पक्षपाती १४१  
 देसाई, हरिदास विहारीदास ३ २  
 ३२५, ३२८  
 देह और प्राण ३७६  
 देवी उगमाद २५७ कार्य ३३  
 तत्त्व २८५ संपद २९५  
 धृष्ट-कीड़ा २२  
 इन्द्र और संघर्ष १४  
 द्विवेदी श्री ३२६  
 द्वय और कठिनाई २२१  
 द्वैत दुनिया में १६८ भाग १६८  
 द्वैतवाद १६७ २२८ २३९  
 द्वैतवादी उसका कथन २५८ धर्म  
 २ ५ स्तर २१७  
 धन और सीधर्म २६३  
 धर्म १६२ २१२, २३८, २६ ३ ४  
 ३२३ ३३८ अनुभूति की वस्तु  
 १५९ आचरण का २७४ इस्लाम  
 ७ १३६ ईश्वर के विधान की  
 शक्ति १३१ ईसाई ४७ ८६  
 १२६, १२८ १४६ १७१ १७६  
 २६५, ३४७ ३६८, ३८ ३८९  
 उदार, उसकी सृष्टि तथा अन्वयम  
 का १३८ उनका उच्चतम  
 स्वप्न १७१ उनका लक्ष्य एक  
 १६९ उनकी उत्पत्ति और अवगति  
 १२७ उसका अर्थ २४८ उसका  
 आरम्भ २८ ३७६ उसका  
 उद्देश्य २६९ उसका कार्य १५  
 उसका क्षेत्र १ ९ उसका चरम  
 आदर्श १३१ उसका द्वार १५  
 उसका पतन २ १ उसका पुरुष  
 द्वैत विवेचन २७३ उसका  
 बाह्यी भाग ३८ उसका बर्णन

तत्त्व ३१८, उसका सार २५८, उसका स्थूल भाग १४१, उसकी उपलब्धि और आरम्भ १३६, उसकी ओर झुकाव १०९, उसकी पकड़ १३४, उसकी परिणति, भारत में २७६, उसकी परिभाषा १५९, उसकी पूर्व तैयारियाँ २५१, उसकी रूपरेखा १५०, उसकी वर्तमान अवस्था १५०, २५०, उसकी शक्ति और मनुष्य १४०, उसकी शिशुशालाएँ २४८, उसकी सच्चाई ३४०, उसके उद्देश्य की सूक्ष्मता और क्रियाशीलता १३९, उसके ऊपर उत्तरदायित्व १३३, उसके क्षुद्रतम भेद, शाब्दिक २६०, उसके चरम लक्ष्य-प्राप्ति के साधन का नाम १६९, उसके नाम पर दूकानदारी वृत्ति ३८०, उसके पास सदेश २६५, उसके प्रचारक होने का इच्छुक ४२, उसके प्रतीक की उत्पत्ति, स्वाभाविक रूप से ४७, उसके बाह्य रूप २२५, उसके सबध में असाधारण बात १३४, उसके सबध में सार्वभौमिक लक्षण १४४, उसके समन्वय की चेष्टा, व्यर्थ १४७, उसके हीनतम रूप २५९, उसमें नामोपासना की कल्पना २४६, उसमें प्रबल जीवनी-शक्ति १२५, उसमें मुक्ति-लाभ की चेष्टा ८२, उसमें विद्वत्ता का स्थान नहीं २२८, उससे प्राप्त तीव्रतम प्रेम और ज्ञान १३९, उससे समाज का क्या लाभ २७०, और आत्मा १२९, और जापानी फूलदान २५०, और परमेश्वर १०१, और पात्र का आकार १४७, और मुक्ति १९७, और योग का रहस्य, व्यक्ति में २८१, -कार्य १६, -मथ १०६, १२७, १३६, १३८, १६०, १८२,

२३७, -चिन्तन और जीवन का उच्च स्तर १३९, -जगत् १३९, जरथुष्ट्र १२६, -जीवन, उसका रहस्य १२३, ज्ञात भाव से अग्रसर १३१, तथा कारण १४७, द्वारा कठोर शत्रुता और विद्वेष १२५, द्वारा घृणा और विद्वेष १२५, द्वारा दातव्य चिकित्सालय-स्थापना १२५, द्वारा भयकरता की सृष्टि १२४, द्वारा रक्त की नदी प्रवाहित १२५, द्वारा शक्ति को मान्यता ४९, ध्वजी १५०, न पथ में, न विवाद में २४८, परस्पर पूरक १३०, पवित्रता ही ४२, पारसी का १२६, पाश्चात्य ३१७, पुत्र का ३७, प्रचार १३१, -प्रचार, उसकी रूपरेखा १५१, -प्रचार और प्राच्य १२६, -प्रचारक ५, ९, ६१, १३२, ३४६, प्रत्येक, उनमें तीन भाग १४१, प्रत्येक, उनमें तीन मुख्य बात २४७, प्रत्येक, उसके पीछे आत्मा १२९, प्रत्येक, उसके विभाग ४७, प्राचीन १२६, प्राच्य ३६४, -प्रासाद ७९, -प्रेरणा १३९-४०, -प्रेरणा और मनुष्य-स्वभाव १४०, फैशन रूप में २५०, बौद्ध ३४६, ब्राह्मण २३७, -भाव ३५९, ३८५, -भित्ति ३३५, मत, उसकी विभिन्नता लाभदायक १७०, मत, सब सत्य १४७, मनुष्य के स्वभाव का अंग २७२, -मन्दिर, सार्वभौमिक १२४, -महासभा २३७, ३२६-२७, ३४२, मुसलमान १३४-३६, मुस्लिम २३७, मूल में सभी समान १७०, यथार्थ १५८, यहूदी १२५, -युद्ध २३, -राज्य १२८, -लाभ २५०, -लाभ, उसे करने की सम्भावना १३२, विभिन्न, उनमें सामजस्य कठिन १४१, विश्व १४५, विविध और सम्प्रदाय १४०, व्यावहारिक



१७१-७२, १७४-७६ व्यावहारिक उसकी परिभाषा १७९ व्यावहारिक उसकी व्याख्या १७७-७८ व्यावहारिक तथा ईसाई चारणा १८२ -शास्त्र १७१ २२, २९ -शिक्षा ३६६ संन्यास ३५५, ३६१ संसार के १२६ संसार के सभी समय १४७ संस्थापक १४३ सन्ना ११ सन्ना उसका आरम्भ ७१ सत मूगी ८६ सगलम अत्याचार पीड़ित ३३७ -समन्वय-समस्या १४१ समस्त अंतःअनुमति २२८ समस्त महान् शक्ति १२६ -सम्प्रदाय १२५, १३८ १५५ -सम्प्रदाय-समूह १२४ सर्वाधिक शान्तिवासी १२४ -साधन १६ शार्ङ्गनीन १६९, ३६२ शार्ङ्गीमिक १३१ १४३ शैवाणिक उसका क्या अर्थ १७१ शैवाणिक उसको पाना सरक १८२ स्व २३ हिन्दू १२६, १३६ १६ २३८ ३१७ ३३१ (पा टि ) ३३९ ३४८ ४९ ३५१ ३८

धर्मपाल ३४६ ४७  
 धर्मशास्त्रा २३ १४  
 धर्मान्ध २६४ उत्तरधामित्वहीन १४१  
 मानवता के ईमानदार ८६ सबसे निष्पट १४१  
 धर्मान्धता ३४ एक ममानक बीमारी १४१ द्वारा दुष्ट बुद्धि १४१  
 धर्मोन्नीयता ३६४  
 धर्मोपदेश १६, ३२७ ३५७ ३८  
 धर्मोपदेशक आचार्य १२  
 धार्मिक आन्धोत्व १८५ उत्साह २७४ उत्पत्ति ३३४ और आध्यात्मिक उत्पत्ति १६९ कार्य ११५ इन्द्र ६७ जीवन १३२, १७ तरब ३१७ चारणा २९५

मास्तिक धम्मी २४९ मुख्य ३२६ मठ-मसान्तर ३२३ विचार ४८ ३३३ विचारवादा २३७ विषय ३३८ व्यक्ति २३८, ३५१ राक्षस १४ सम्प्रदाय १८५, १८९  
 ध्यान १२३ अवस्था मन की ९७ उसकी प्राप्ति १८ उसकी प्राप्ति कर्म द्वारा ८८ उसकी शक्ति १८ उसकी शक्ति से अनिष्ट का निराकरण १७९ एकमात्र असस वस्तु ९७ क्या है १८ द्वारा भौतिक भावना से स्वतन्त्रता १२३ द्वारा सामर्थ्य १८ बस है १८ सबसे महत्त्वपूर्ण ९७ ध्येय-प्राप्ति १२२ मन को समित्त करना २२९ ध्यनि' १३ ध्रुव प्रवेश ३९४ ध्रुव सत्य ३३

नविकेता १६ १६२ ३३  
 नदी गंगा ११६ १२६ १६६ २९९ ३१९ फरात १२६  
 नन्दन बन ३२५  
 'नमोनायक्याय' १८७  
 नर-हीनार २ ६  
 नरक १९, ९६, १९६, २ ९ २०२ २३३ २५४ २७३ २८१ २८५ ३ -१ ३ ३ ३२४ -कुम्भ ६६ -विष ८५  
 नरक्यामी १३३  
 नरसिंह ३४२  
 नरसिंहाचारिकर, पी जी ३६८  
 नरेन्द्र ३१ ३१४ ३५४ ३६३ (वैशिष्ट विश्वकालम् स्वामी)  
 नव अवस्थान ११४  
 नवद्वीप २६१  
 नाम ७ उसकी उपासना २४६ उसकी नवचरणा ३७९ और देव-मानव

- २४७, और बोध अन्योन्याश्रित,  
 २४६, और यश १९५, ३३८, ३४८,  
 ३८७, और यश, उसकी नश्वरता  
 ३७९, और यश, उसकी प्रवल  
 आकाक्षा ३७०, और व्यक्ति २६२,  
 -प्रचार ३४०, -यश ८-९, ६०,  
 ९५, ९८, १८४, ३२३, ३५९,  
 -रूप ४८
- नारद २८८, ३८२  
 नारायण ५२  
 नारायण, हेमचन्द्र ३२५  
 नारी, उसका ईश्वर के प्रति प्यार २७३,  
 उसकी प्रकृति २७३, -कवि २०८,  
 कुलटा भी दिव्य माँ १८८, हिन्दू  
 २७३-७४
- नासदीयसूक्तम् १६६ (पा० टि०)  
 'नास्ति' १३  
 नास्तिक २०२, २५०, २७४, ३५६,  
 धार्मिक २४९
- नि स्वार्थ भाव ३४४  
 नि स्वार्थता, अधिक फलदायी ८,  
 उसकी उपलब्धि, प्रयत्न द्वारा ८४,  
 उसकी महत्तम शिक्षा ४२, और  
 सत्कर्म ८३, शक्ति की महान्  
 अभिव्यक्ति ८, हमारा लक्ष्य ८८
- नि स्वार्थपरता, उसका अर्थ ८२,  
 चरम लक्ष्य ८२
- 'निजत्व' ८३  
 'नित्यानित्यविवेक' १०५  
 निदिध्यासन १२३  
 निन्दा-स्तुति १७  
 'निम्न अह' ४१
- नियम ६९, २२०, उसकी परिभाषा  
 ६९, उसके सर्वव्यापी होने का अर्थ  
 ६९, प्राकृतिक २७२, शब्द का  
 अर्थ ६८, सनातन ६, सासारिक  
 १३२, सामाजिक ३४१, सार्व-  
 भौमिक ३३१, सीमाबद्ध जगत् मे  
 समव ६९
- 'नियम तत्त्व' ६८
- ३-२७
- नियोग ३५४  
 निरजन ३१९, ३५२, ३९१  
 निराशा, परम सुख ३८३  
 निराशावादी ५०, ६६, ८५-६, वृत्ति  
 १०४  
 निर्गुण ईश्वर २१६, पक्ष २१६,  
 सत्ता २१६  
 निर्वाण ८९  
 निवृत्ति, उसका अर्थ ६०, उसकी पूर्णता  
 ६०, नैतिकता एव धर्म की नीव  
 ६०, -मार्ग ७१, -मुखी त्याग  
 ९-१०
- निष्क्रिय अवस्था १४  
 नीग्रो ३२९, ३६२  
 नीति और धर्म ३२६, -शिक्षा ३७  
 नीतिशास्त्र ८२-३, १११, १२०,  
 २११, २५८, हिन्दू १६  
 'नीतिसाधन-समिति' ३६४  
 नेगेन्सन, कर्नल ३४६  
 'नेति', 'नेति' ७१
- नैतिक, ८३, विधान ५९, ८३, शिक्षा  
 ५०, शिक्षा, उसका लक्ष्य ८२  
 नैतिकता, उसका सार २०६, उसकी  
 एकमात्र परिभाषा ८३  
 न्याय, उसकी भाषा मे १५२  
 न्यूटन ४  
 न्यूयार्क १२८, १८०, २०५, २१०,  
 २४३, २५५, २९८, ३०४-५,  
 ३१८, ३२५, ३३१-३२, ३३८-  
 ४१, ३५३, ३६४-६५, ३६९,  
 ३७३, ३७७-७८, ३८१, ३८४,  
 ३८५ (पा० टि०), ३८६, ३८८,  
 ३९०, ३९२, कोषागारस्वरूप  
 ३९४, वीर भौतिकतावादी ३०७,  
 शहर ३६४, संयुक्त राज्य का  
 मस्तक तथा हाथ ३०४, ससार मे  
 सबसे बनी ३५३, स्टेशन ३६४
- पंचभौतिक देह १५०  
 पजाव ३५७, ३६२

पर्वबलि ११४  
 पतिव्रता स्त्री ४२  
 पद्यप्रदर्शक ज्योति १३२  
 पदार्थ उसके चेतन तत्त्व १९५ अथ  
 १७७ २५९ ३७६ रासायनिक  
 ३५२  
 पद्धति सार्वजनीन १६९  
 परब्रह्म २२  
 परब्रह्म-सहिष्णुता १३८  
 परमार्थ १८७ रामकृष्ण ३५२  
 परमार्थ देख ३ १ ३५४ ३८१  
 (देखिए रामकृष्ण)  
 परमात्मा ४४ ९८ १ ७ ११  
 १५१ १५८ १६९ २३५ २५  
 २६८ ३४६ ३४९ ३७०-७१  
 ३७६, ३७९ ३८१ और  
 जीवात्मा १९७ गतिमान करने  
 वाली शक्ति २५५ अन्तः प्रभु १५८  
 परमानन्द २५१  
 परमेश्वर ८६, १ ७ ११ ११६  
 ११९ १२२, १६४ १६८ २४६  
 २४८ ४९, २५१-५४ उसका  
 स्वरूप प्रतीक २४६ प्राप्ति १६३  
 २४७ २५ वास्तविक सत्ता  
 १६७ समुच्च २४३ सर्वत्र विद्य  
 मान २४७ सर्वव्यापी २४५  
 सर्वशक्तिमान २५२ (देखिए ईश्वर)  
 परावैतना २६२  
 परस्पर भूमि का विषय ११  
 'परीक्ष चिकित्सा' ३८४  
 परोपकार ३ ९, ३३६ उसकी इच्छा  
 ५१ बाल और शाला ५१ पुष्प  
 ६ ३९ वही जीवन ३३३  
 पत्रहाटी बाबा ४५ (पा टि )  
 २७८ उनमें विषय भाव ७९  
 पवित्र पुरप २४६ पुस्तक २४४  
 मैत्री २ २  
 पवित्रता ५८ अनन्तर ३४४ एवं  
 अन्वयसाय ३५ और सतीत्व  
 ४२ सर्वप्रथम बर्म ४२

पशुत्व-भाव ७७  
 पश्चिम उत्तका अन्वयसाय-बाधित्य  
 २३९ और पूर्व में अन्तर २३९  
 वही अर्थ जाना क्रिसम २३९ वही  
 के लोम और अन्वयसाय २३९  
 पश्चिमी ईसाई २३८ देश ४ राष्ट्र  
 और ईश्वर प्रेम का आधार २७४  
 राष्ट्र और डॉक्टर की पूजा २७४  
 रिवाज ३७ विचारभाषा २३८  
 पसाडेमा १२४  
 पौष पाखंड ३६  
 पाप ८, ३५, ७४ १६२ ६३ १९८,  
 २४४ २५९ २६१ ३९१ और  
 पानी तथा कुपग्रह ५५ कुष्ण पर्व  
 जाना ३९ मम ही सबसे बड़ा  
 ३७९ -ओवन ३ ७  
 पानी तथा पुष्पात्मा ३९४  
 पारसी १२६ २ ५  
 पार्लोविक और इन्ध २५४  
 पार्थिव उसकी परिभाषा २३ जीवन  
 २३ वस्तु २३१  
 पार्वती १९  
 पाषाण भाषा ३१९  
 पाश्चिक प्रकृतिवादा ४२ भाव ४२  
 पारवात्य और प्राच्य के आदर्श ३१७  
 देश २४९ ३ ९, ३१७ देश  
 उनकी बाह ११८ देश उसका  
 प्रवाल अन्वय ९६ देश और सामा  
 जिक तथा आर्थिक उन्नति ३१७  
 देशवासि १३ १२६ देशवासी ३ ४  
 देशवासी उनकी संस्कृति का  
 रहस्य ३२८ देश वही अद्भुत  
 शक्ति और शक्ति का विकास ३ ८  
 देश वही की स्थिरता के लक्षण ३ ८  
 देश वही के लोग और 'मोम ३ ८  
 बर्म ३१७ भाषा ३७२ महाशक्ति  
 का विकास ३ ८ राष्ट्र ३३२  
 विचार ३६६ विवाह प्रथा ३ ६  
 वस्तुवि १ ६  
 'पियका' ११६

'पिता' २७५  
 पित्तू ३२१  
 पिशाच विद्या ३०६  
 पीक, श्रीमती ३८७-८८  
 पीर-पूजा २२५  
 'पीलिया गोग' १६५  
 पुण्य ८, १६२, अनश्वर है ३४४  
 पुनरावर्तन की प्रवृत्ति ६८  
 पुरस्कार, अथवा दण्ड ७८, और दण्ड  
 २५२-५३  
 पुराण २८०, पुरुष १६२-६३,  
 -साहित्य १४१  
 पुरुष तथा नारी, दोनो आवश्यक ३०१,  
 मुक्त, उसका लक्षण ३०९ (पा०  
 टि०)  
 पुरुषार्थी १५१  
 पुरोहित ८, १५१, और पैगम्बर मे  
 अन्तर २२४, कट्टरपथी, उसका  
 कारण १३१, -प्रपञ्च ३३४, ३४५,  
 रुद्धिवादी शक्ति के प्रतीक २२४  
 पुस्तक, उसमे जीवत शक्ति नहीं १९८,  
 -प्रकाशन ३१०  
 पूजा, उसका अर्थ २८२, २९९, उसका  
 आरम्भ २१५, उसका प्रतीकात्मक  
 रूप २२७, उसके रूप २२६,  
 औपचारिक, एक आवश्यक अवस्था  
 २६८, -पद्धति १४१, -पाठ  
 ३४८, पीर २२५, वृक्ष २२५,  
 सर्प २२५ (देखिए उपासना)  
 पूजागृह २५२  
 'पूर्ण जीवन', स्वविरोधात्मक ५९  
 पूर्णत्व, प्रकृति से ढका १०६, -प्राप्ति  
 ६५  
 पूर्व, वहाँ धर्म, व्यवसाय २३९, वहाँ  
 धर्म की व्यावहारिकता २३९  
 पूर्वावस्था, उसकी ओर प्रतिगमन और  
 पतन ९३  
 पृथ्वी, उसके धर्म और समाधान १२९-  
 ३०  
 पेट्रो ३२५

पेरिस १११  
 पेरीपेटिक क्लव २३७  
 पैगम्बर, उनकी दो श्रेणियाँ ८९,  
 शक्ति के प्रतीक २२४  
 'पैत्रिक धर्म' १४०  
 पौराणिक, अभिव्यक्ति और भाव  
 २१०, कथा १४७, कहानी १४२,  
 तत्त्व १४१, १४५, १५५, भाग  
 १४१, व्याख्या २०६, सावंभौमिक  
 १४६  
 प्यार, उसके साथ भय नहीं २५३  
 'प्यु' २३९  
 प्यूरिटन और मुसलमान १३७  
 प्रकाश २०६, अशुभ को नहीं जानता  
 २०८, उसका अस्तित्व ९४, उसकी  
 उपलब्धि ४६, और अधकार १७६,  
 और कम्पन १७८, सबसे है १९६  
 प्रकृति १०, ५७, ७७, ८८, १०५,  
 २१२, २३१, २४९, २५९, २६४,  
 २६६-६७, २७०, अनुभूत २१०,  
 आसुरी ६०, उसका अन्तिम ध्येय  
 ८३, उसका कथन १८०, उसका  
 धर्म, क्रियाशीलता २१०, उसका  
 भीषण प्रभाव १०३, उसकी चाहना  
 १८०, उसकी विजय, कार्य का प्रति-  
 मान १८२, उसके अस्तित्व का  
 प्रयोजन ३२, उसके इशारो पर  
 व्यक्ति १७९, उसमे साम्यावस्था  
 १२०, उससे सबकी सहायता ६३,  
 उसे विशेषत्व-प्रकाशन की स्वाधी-  
 नता ३६७, और जीवात्मा २१७,  
 और बुद्धि २१४, चंचल और परि-  
 वर्तनशील ३७५, तम, रज, सत्त्व  
 से निर्मित ११, प्रत्येक, उसका  
 अपना मार्ग १८०, बाह्य ५९,  
 लडाकू, उसमे रज या क्रियाशीलता  
 ७९, सनातन, और ईश्वर २२०,  
 समस्त, आत्मा के लिए ३२, सम्पूर्ण,  
 उसका चीत्कार १७४, साधु ६०  
 प्रगति और विगति ७०

प्रचारक उत्साही का दल ३७२  
 प्रचार-कार्य १३१ -कार्य और प्राथ्य  
 १२६  
 'प्रतिष्ठा' १०५  
 प्रतिदान ३५  
 प्रतियोगिता क्लक का नियम २७२  
 प्रतिरोध १३४ और धर्म का प्रसन्न  
 १३  
 प्रतीक उनका विशेष कारण ४८ उसकी  
 आकषण-शक्ति २२७ और अनु-  
 ष्ठान २७५ और बाह्य अनुष्ठान  
 २४३ और विधि २५१ कर्म  
 काष्ठीय ४८ क्रॉस पर कटके  
 महापुरण का ४८ क्लक पीपल  
 पर प्रसन्न २२७ क्लक सुपरिचित  
 २२६ इतिहास्य मात्र नहीं ४८  
 बर्ष ४८ विधान उसका निर्माण  
 क्लकम उपाम से नहीं ४८ धर्म ४८  
 प्रतीकवाद २२६  
 प्रतीकोपासना २४४  
 प्रत्यक्षानुभूति १ ९  
 प्रत्यक्षवाद ११९  
 'प्रसन्न भारत ३८६  
 प्रसन्न ७५, १३४ २१६ २३३ ३  
 ३१९ ३३८, ३६८, ३९४ अन्त-  
 यामी १६५ वर्षा ३७ विष्णु  
 १६५ प्रेममय २५२ सतत  
 कर्मशील विधाता ८ सत्यवपी  
 २७९ सर्वव्यक्तिमान ८  
 प्रसन्न-काम १५  
 प्रसन्न परित्र का ३६९ पवित्रता का  
 ३६९ सम्पूर्ण व्यक्तित्व का ३६९  
 प्रयोगशाळा १५३  
 प्रसन्न ८६ ७  
 प्रसन्न ६ उसका धर्म ६ और  
 निष्ठा ६ और पद्धति १३९  
 -मार्ग ७२  
 प्राचीन व्यवस्था १ ८  
 प्राथ्य उसकी अवगति का कारण ३२५  
 और पाठशास्त्र के कारण ३१७

प्राप्ति उसका परित्र ३७२ ज्ञान  
 १५ इस और धर्म १२६  
 ३१७ ३६४ धर्म उसके गुण  
 ३१८ लोग उनका नाम १२६  
 समाज ३१७  
 प्राथ्य उसका महत्त्व ११७ उसकी  
 अभिव्यक्ति ११६ उसकी क्रिया  
 ११७ उसके सर्वोच्च स्पन्दन का  
 कार्य ११७ बन्धक-सक्ति ११७  
 द्वारा ईशाना-विमला का कार्य ११७  
 मस्तिष्क द्वारा विचार-रूप में बहिर्गत  
 ११७ विद्यत् शक्ति ११७  
 प्राणायाम ९७ १२२, ११५ १७  
 उसका महत्त्व उद्देश्य ११६  
 प्रार्थना प्रगति के प्रथम साधन २६२  
 -स्तुति १३७  
 प्रीति परम साध्य ३६ (पा टि )  
 प्रेतोपासना ३ ७  
 प्रेम सर्वत्र २७६ असीम २५६  
 आकर्षक मानवीय २५६ इष्ट  
 को वेष्टता है २७६ ईश्वर की  
 स्वामी पाठ २७ ईश्वर है  
 २८१ उच्चतम २६९, २७६  
 उस पर आधारित पद्धति २७५  
 उसका अस्तित्व है २५१ उसका  
 आदर्श और प्रेमी २५४ उसका  
 आरम्भ २८८ उसका उद्देश्य  
 २५६ उसका कर्मण २८५ उसका  
 पहला चिह्न २७९ उसका प्रकाश  
 २५६ उसका प्रतिदान १५६  
 उसका प्रतीक निकोच २७९ उसका  
 महत्त्व २८१ उसका कर्मण २५१  
 ५२ उसकी अनन्त महिमा २८५  
 उसकी अभिव्यक्ति समझ नहीं  
 २७७ उसकी असाध्य-साथिनी  
 शक्ति ३२३ उसकी पहचान  
 २८५ उसकी पाँच अवस्थाएँ  
 २६२ उसकी प्रसन्न २८२ उसकी  
 महानता और मुक्ति २६३ उसकी  
 विविध अभिव्यक्तियाँ २५६ उसकी

शक्ति द्वारा इन्द्रिय परिष्कृत २७०, उसके आरम्भिक क्षण २८५, उसके त्रिकोण का कोण २८०, उसके द्वारा उपासना २६८, २७९, उसके लिए ईश्वर-पूजा में विश्वास २३९, उसके लिए प्रेम २६२, २६९-७०, उसके सब आदर्श २८६, उसमें इन्द्रियाँ तीव्र २७७, एकमात्र उपासना ३३१, एव श्रद्धा ३५९, और अनुभव २७०, और उपासना २६२, और गूंगा मनुष्य २९०, और ज्ञान २६६, २८१, और दूकानदारी २५२, और भक्ति २४३, और भौतिक भावना २६९, और शक्तिसमूह १५४, और सहानुभूति ३३१, कभी निष्फल नहीं ३२३, कभी मांगता नहीं २७९, केवल प्रेम के लिए २७६, गहनतम २८६, गुण और अवस्था के अनुसार २९१, चिरन्तन २१५, दिव्य मिलन में २६२, दैवी २७५, नि-स्वार्थ २१०, ३३०, निम्नतम २७७, पति और पत्नी का २६९, पारस्परिक २७७, प्रश्न नहीं करता २७९, प्रेम तथा प्रेमास्पद २५७, बड़ा सपना १०२, बन्धनरहित ३०१, बिना स्वाधीनता के नहीं ३३, भय नहीं जानता २७७, भिखारी नहीं २७९, भीख नहीं मांगता २७७, -मय पुरुष, उसकी क्रिया १०७, महान् है १७२, मातृवत् २६९, मानव २७०, मानव, अन्योन्याश्रित २७०, मानव-संबन्ध में दुर्लभ २७०, मानवीय २५७, २७७, २८८, मित्र का २६९, यथार्थ ३३, वही परमेश्वर २५५, वही प्रेम का उपहार २५७, वही सर्वोपरि २९२, वास्तविक, उसका आरम्भ २६२, विश्वव्यापी १६८,

'शात' २६९, शान्तिमय २७५, शाश्वत १८४, शुद्ध, उसका उद्देश्य नहीं २६२, सच्चा १६८, २७३, २७७, सच्चा, उसकी प्रतिक्रिया ३४, सच्चा, उससे अनासक्ति ३४, सच्चा और सहानुभूति २३५, सदा द्रष्ट २७७, सदा देता है २५२, २७९, सदा ही सर्वोच्च आदर्श २५३, सर्वोच्च और अनुभव २६९, सर्वोत्तम अनुभूति २९०, सर्वोपरि २८९, २९१, सात, अनन्त तत्त्व २३२-३३, -माघना ३४, स्वय अनादि, अनन्त बलिदान २८५, स्वय ईश्वर २८०

प्रेमी, और प्रेमी पात्र २६५, कल्पना से अतीत २५४

प्रेय-मार्ग १६२

प्रेरणा, उच्च प्रेम की १३, दिव्य २३६, -शक्ति ८८, सर्वोत्कृष्ट ५१, स्वत स्फूर्त ३२७

प्रेसविटेरियन १२८, गिरजा ३४७  
प्रोटेस्टेंट ईसाई और बाह्य अनुष्ठान २४३, और कैथोलिक चर्च २२७, और गिरजाघर २४४, पथवाले २४४

प्रोटेस्टेंटवाद २२७, २७८

प्लीमाथ ३४६

प्लेग २९९

फरात १२६

फर्स्ट यानिटेरियन चर्च २१२

फर्स्ट स्ट्रीट ३२४

फार्मर, कुमारी ३४१, ३६४, ३८२, ३८४, ३८७

फिलाडेलफिया ३१८, ३२१, ३२४

फिलिपाइनवासी १२८

फिलिप्स, कुमारी २९७, ३६५

फिस्कल २९८

'फैरिसी' १७०

फ्रांसिस डेमेट, पी ३९  
 फ्रांसीसी १११ १२  
 फरारिक डमकस ३२१  
 बंगाल १८६ ३३ ३५२, ३६२,  
 ३६६, ३७४ ३८१  
 बंमाली २९८ कहावत ३ ३  
 बनर्जी कासीचरण ३१५  
 बन्धन ३२५ ७१ २, ८७ ८९, १ ५,  
 १ ९ १७४ २५९ उससे मुक्त  
 होने का उपाम ७१ रुपी चीन्हा  
 \* सामाजिक ३१७  
 बपतिस्मा उसका अर्थ १९७ सच्चा  
 १९८  
 बम्बई २९९, ३२ ३२८, ३४५,  
 ३६६  
 बरोज डॉ ३४२ ३६९  
 बल और ब्या ३५  
 बसराज बाबू ३५१  
 बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' ३४६  
 बहुत्व में एकत्व ३६ (पा टि )  
 बहुविधाइ १३२  
 बाइबैलियाइन कथा २६६  
 बाइबिल १२७ १३८, १७२ १९८  
 २२४ २४४ २४६ २७३-७४  
 बामुद्राम ३१३ १४ ३१९  
 बाळक जन्मजात-आधाबाबी २०५  
 बूक ६५ ६ बूक उनकी परीक्षा  
 और सफलता ६६  
 बाबाजी ३ ४ डॉ ३७१  
 बास्टिमोर ३१८ २१ ३२४  
 बाइबल अनुच्छान २४४ अनुच्छान  
 उसके अन्तराल में कल्पना २४६  
 उपचार २४३ अन्त २५४ रूप  
 और अनुच्छान १९८ वस्तु, उसमें  
 सहीपन २५४  
 बिद्यप १९६  
 बुद्ध ६, ९, ३१ ७८ ९, १२२ १३८  
 १७८, २४६, ३२४ आदर्श कर्म  
 योगी ९ और ईसा ७ और

कर्मयोग की शिक्षा ८९ ज्ञानी ३१  
 भगवान् ११२ मत १७६ महान्  
 दार्शनिक ९ सर्वप्रथम सुधारक  
 ९९ सामंजस्य-भाव के सर्वश्रेष्ठ  
 उदाहरण ९  
 बुद्धि अन्तःस्फुरण नहीं १ ७ उसकी  
 अन्तिम परि १ ८ उससे प्राप्त  
 सुख और इन्द्रिय १७५ और विद्वता  
 १ ७ तर्क के क्षेत्र में १ ६ मनुष्य  
 में १५२ -शक्ति १५२ सुसंस्कृत  
 और परिणाम १ ८  
 'बुद्धि से अतीत शान्ति' ७१  
 बूढ़ भीमती ३१४ ३२१ ३४१  
 ३६४ ३७८-८ ३८२, ३८६,  
 ३८८-८९, ३९२ (देखिए भीष्म  
 बूढ़ भीमती)  
 बृहदारण्यकोपनिषद् २५५ (पा टि )  
 २६३ (पा० टि )  
 बेकन स्ट्रीट २९६ ९७ ३१४  
 बेबिबोनियन २ ५  
 बेक कुमारी ३७७  
 बेल्जेवुयें होटल २९५ ९६ ३१४  
 बैकुण्ठनाथ साम्याक ३८१  
 बैन्की भीमती २९५  
 बैटल स्ट्रीट ३४  
 बोस्टन १ ४ २९५ ९८ ३१४  
 ३२५, ३६९ नमर १८४ 'बाइबली  
 का सहर' ३ ४ विद्या-बनौ का  
 प्रभाव स्वान ३ ४  
 'बोस्टन ड्राम्सक्रिप्ट' २९५  
 बीड ७ १२६, १३८ प्रत्य ३१९  
 बापि ३३१ अर्थ उसके नीति  
 उत्प ३४६  
 बीडिक आगत्य उसकी ध्यात्म्या १७५  
 ज्ञान १९५ बुद्धिकोष २२६  
 विकास २४५ ध्यामाम १ ९  
 सहायता २८ ९  
 बड़ा ६१ १३२, १८८ २१९ १७  
 २६२ -चिन्ता ३ ६ -ज्ञान  
 १७ निर्गुण २५८ -यद १५५

परम १७४, पूर्ण १६७, सगुण  
 २५८-५९, सर्वव्यापी २१६  
 ब्रह्मचर्य १६, ३०७  
 ब्रह्मचारी ३३७  
 ब्रह्मसूत्र ११० (पा० टि०)  
 ब्रह्मा-विष्णु ३१३ (पा० टि०)  
 ब्रह्माण्ड ७०, १६०, १७३, १९४-९५,  
 २१६, २६६, २७८, २८२, २८५,  
 उसका आधार २२०, उसका  
 कारण २२०, उसका सर्जक  
 २२०, उसके धारणकर्ता २६३,  
 पिता का राज्य २६७  
 ब्राह्मण २०९, ३०३, उपदेशक २३७,  
 धर्म २३७, धर्मग्रन्थ २३७, निर्धन  
 ३६  
 ब्राह्म समाजी २९८  
 ब्रुकलिन ३६४-६५, ३७५, ३७७  
 भक्त ६१, २८३, ३५६, उसके साथ  
 भगवान् का योग १५१, -सन्ध्यासी,  
 उसकी परिभाषा २८८  
 भक्ति २२, २५९, ३०१, ३४०, ईश्वर  
 के प्रति अनुराग २८७, उसका मार्ग  
 २६२, २९१, उसका मुख्य कारण  
 २८९, उसका स्वरूप अनिर्वचनीय  
 २९०, उसकी प्राप्ति की आवश्यक  
 बातें २९२, उसके इच्छुक की पह-  
 चान २९०, एक उच्चतर वस्तु  
 २५९, और उपासना २४३, और  
 ज्ञान ६१, ३६५, कर्म से ऊँची  
 २८८, गुरु में ३४९, द्वारा इच्छा  
 का तिरोभाव २८७, द्वारा मनुष्य  
 अमर और सतुष्ट २८७, द्वारा  
 योग २६४, द्वारा हानि नहीं  
 २९१, परा २५६, प्रगाढ २५७,  
 प्रेम का अमृत २८७, मार्ग ८१,  
 सबधी आवश्यक बातें २८९,  
 -सम्प्रदाय १४९, साधन और  
 साध्य, दोनों २८८, स्वयं अपना  
 फल २८८

भक्तियोग ६७, १५५-५६, १६९,  
 २४१, २६२, उसकी शिक्षा १५६  
 भगवत्प्राप्ति ९४  
 भगवत्प्रेम ४२  
 भगवद्गीता १३, २९, ३९, ८९  
 भगवद्भावना १७०  
 भगवदवतार ३१३ (पा० टि०)  
 भगवदाराधना १५४  
 भगवान् ७५-६, ७९, ९४, १०८, १२८,  
 १३२-३३, १३६-३८, १५१, १५८,  
 १६९-७०, १७२, १७८, १८५,  
 २५६-५७, २५९, २६२, ३२३,  
 ३४८, ३५३, ३६५, ३६९-७०,  
 ३७४, ३७६, ३८७, ३९४, आत्मा  
 की आत्मा १५७, उनकी ओर ले  
 जानेवाले मार्ग १७०, उसका  
 विराट् स्वरूप २९९, जगत् के पिता  
 १५७, नारायण २९९, पथप्रदर्शक  
 १५७, पालक १५५, प्राणों के प्राण  
 १५७, प्रेममय १४९, माता १५७,  
 सृष्टिकर्ता १५७ (देखिए ईश्वर)  
 भय, उन्नति में ईर्ष्या का ३८३, और  
 लाभ २११, गुण से खल का ३८३,  
 ज्ञान रहने से अज्ञान का ३८३,  
 दुर्बलता का चिह्न २४, वन से  
 दारिद्र्य का ३८३, रूप में बुढ़ापे  
 का ३८३, शरीर से मृत्यु का ३८३  
 भर्तृहरि ३८१  
 भलाई, और बुराई सापेक्षिक शब्द  
 २१८, दूसरे की ३०० (देखिए  
 शुभ)  
 भवनाथ ३६३  
 भवसागर १४९  
 'भागवत' ३७४  
 भारत १६, २५, ४७, ७८, ९६, १००-  
 २, १११, ११३-१७, १२६, १३२,  
 १५०, २१०, २२२, २२७, २३४,  
 २३७, २३९-४०, २७४-७५, २९५,  
 २९७, ३००-१, ३०३, ३१४,  
 ३१६-२०, ३२३-२९, ३४२-४५,



३४७ ३४९-५ ३९६ ३७०-७२,  
 ३७४ ३८२ ३८७ ३८९ ३९२  
 ९३ उसका उत्थान ३३७ उसका  
 धर्म और यूरोपीय समाज ३३४  
 उसका अभिव्यक्त सङ्घमिति पर  
 ३३६ उसकी लोकमिति १९  
 उसके अन्वय-पतन का कारण ३९७  
 उसके उठने के सुमोन ३३७  
 उसके महान् आवर्त १३६ उसमें  
 एक कदावर्त ८५ उसमें बाल-भाव  
 का अष्टीकरण ३७ उसमें धर्म के  
 प्रति समझ ३ ३ उसमें पौराणिक  
 अभिव्यक्ति का प्रभाव २१ उसमें  
 सैवान की भारथा नहीं २ ७  
 बिरकास से दुःख का भोक्ता ३३७  
 मध्य ३३४ वहाँ अभिप्रेक्षा  
 २३९ वहाँ अतिथि का महत्त्व ३६  
 वहाँ के इरीम ३२ वहाँ के नी-  
 जमान की प्रकृति और अंग्रज ३३४  
 वहाँ धर्म की परिणति २७६ वहाँ  
 माँ सबसे ऊपर २१ (विशिए  
 भारतवर्ष)  
 माख्तवर्ष ३८ ४५, ६५, १२६ १४७  
 २५६, ३१६ ३२२, ३३४ उसकी  
 अन्वयि का प्रभाव कारण ३३१  
 धर्मप्रवण या अन्तर्मुख ३१७  
 वहाँ की अष्टवसोरी १४३  
 माख्तवसोरी १११  
 भारतीय आदर्श २२२ किसान २३९  
 अर्थम १८ मन्त्र २२९ माया  
 २७७ मन ९६ वस्तु ३७५  
 संत २७५ समाचारपत्र ३४३  
 साम्राज्य २७९ हिन्दू २९८  
 मान अनाद्यन्त १५५ ईस्वीय ६१  
 और कवि १३७ और वास्तविक  
 कार्य ११५ हीन-हीन एक बीजाठी  
 ३ ९ मातृवीय १३६ मुक्त ७९  
 साधारणिक ६२ सामु ६१ सार्व  
 धमिक ३६ सार्वभौमिक १४७  
 स्वाधीन ७२

मानुक उसका आदर्श १४९  
 माया अंग्रेजी तथा वेधीय ३७२ आर्थ  
 संस्कृत १९ आत्मकारिक १२१  
 पाकी ३१९ भारतीय २७७  
 मनोवैज्ञानिक ६  
 माप्य और दर्शन ३६६  
 मिष्ठाटन २७९  
 भुक्ति-भुक्ति ३ १  
 मूनीस ३५२  
 मूर्तीवासना १४७  
 'मैयमावहीन प्रेम' २७९  
 भोक्ता उसकी परिभाषा १६३  
 मोम ३ ८ उसकी भावना के साथ  
 स्वार्थ ७४ और ज्ञानमय जीवन  
 १६२ और प्रकृति १७९ शब्द  
 मंगुर, दुनिया के १६८ -विच्छास  
 ३५३  
 मोतिक आकर्षण ३४ भावस्यकता  
 २८ इच्छा २३२ क्रिया ९७  
 पद-वस्तु १६७ उत्पन्न २३२ पर  
 मानु ८६ प्रयति ९६ भावना  
 और प्रेम २६९ विमान ५६ ११५  
 १५६ शास्त्र १२९ धाम्नी १५  
 सम्मता ३३४  
 भौतिकवाद १७२  
 भौतिकवादी १७७  
 भाव-प्रेम ३२९  
 मंत्र वैतम्य शब्द के दो भिन्न अर्थ  
 २ ४ -संज्ञ २४६ ताजिक २ ४  
 -शास्त्री २ ४  
 मन्त्रपुर, अंग्रेज ११३ धर्मन ११३  
 मन्त्रमन्त्र ३५८  
 मणि अम्बर ३६९ ३८५  
 मन्त्र-अन्वयिक १२७  
 मन्त्र वर्ष २९५, ३२०-२१ ३२५,  
 ३४१ ३७७  
 मन्त्र टेम्पल ३४१  
 माता २९५, २९७-९८ ३१ ३४२  
 ३४५, ३४८-५ ३५२, ३५५

३५७, ३५९, ३६३, ३६६, ३७२,  
 -वाले ३११, ३१३, -वासी ३२२  
 मद्रासी, युवक ३८६, लोग २९८,  
 शिष्य ३३२  
 मधुकरी की प्रथा १८६  
 मन संयोग, उसका अर्थ १५१  
 मन, अचेतन का नियंत्रण १२१, उसका  
 लक्ष्य २३२, उसका सूक्ष्म रूप  
 २६७, उसकी अभिव्यक्ति ५,  
 उसकी क्रिया, बाह्य तथा आन्तर  
 ९९, उसकी वहिर्मुखी गति ९,  
 उसके कई स्तर १३७, एक इन्द्रिय  
 ३०, एक झील के समान १८०,  
 और अशुभ विचार ३१, और इन्द्रिय  
 १००, और घात-प्रतिघात ४, और  
 प्रवचना १९४, और प्राण से काम  
 ३९२, और संस्कार ३१, १४९,  
 चेतन ही अचेतन का कारण १२१,  
 तथा तन का नियंत्रण और प्रकृति  
 १८२, बँधा हुआ ५६, बहुत चंचल  
 १८०, प्रत्येक, उसका अपना शरीर  
 २६७ प्रभाव तथा तनाव ५६,  
 विचारशील १६७, समष्टि-मन  
 का अंश १६७, सूक्ष्म स्तर से बना  
 २६७  
 मनन ६६-७  
 मनरो स्ट्रीट २७२  
 मनस्तत्त्व-विश्लेषण १५०  
 मनु १८६, ३७९, उनका मत ३८३  
 मनुदेव २०६, २१०  
 मनुष्य, अधिकांश नास्तिक २४९,  
 अशुभ से ऊँचे १९४, आत्मा की  
 शक्ति द्वारा विजयी १८२, आदर्श,  
 उद्देश्य की प्रतिमूर्तिस्वरूप १३५,  
 इन्द्रियलोलुप १७२, ईश्वर-प्रेम  
 का आकांक्षी २६९, ईश्वर-प्रेम  
 का इच्छुक २६९, उनका धर्म  
 सबधी भ्रम २४५, उसका अंतिम  
 लक्ष्य ३, उसका अपना आदर्श १५,  
 उसका अपना विश्वास और ईश्वर

१३, उसका आश्रयी स्वभाव और  
 दुःख १८१, उमका कर्तव्य १२,  
 १५-६, ३९, १४८, उसका कर्तव्य,  
 अन्याय का प्रतिकार १४, उसका  
 गुण और अवस्था ११२, उसका  
 चरित्र और दुःख-क्लेश २९, उसका  
 चरित्र, संस्कार की समष्टि ३०,  
 उसका दृष्टिकोण, नियमित ३९,  
 उसका दृष्टिक्षेत्र २००, उसका  
 ध्येय ८८, उसका प्रकृत स्वभाव  
 १६९, उसका प्रतिरोध और पाप  
 १३, उसका प्रतिरोध न करने का  
 कारण १३, उसका प्रेम, आरोपित  
 २७०, उसका मन और शरीर  
 २६७, उसका मूलमंत्र १३८,  
 उसका लक्ष्य २६७, उसका विकास,  
 स्वभावानुसार १६९, उसका  
 विश्वास और ईश्वर २७१, उसका  
 सच्चा स्वरूप ११८-१९, उसका  
 सत्य से सत्य में गमन १३०, उसका  
 सांसारिक भाव ७२, उसका  
 स्वभाव और शारीरिक सहायता  
 २९, उसका स्वरूप ७३,  
 उसकी अच्छाई का कारण १२०,  
 उसकी अमरता ११८, १६५,  
 उसकी आत्मा और शक्ति ६४,  
 उसकी आध्यात्मिक उन्नति का रूप  
 १४८, उसकी इच्छा-शक्ति का  
 प्रकाश ६, उसकी इन्द्रिय-भोग की  
 लालसा तथा ईश्वर २०१, उसकी  
 उन्नति का उपाय ४३, उसकी  
 उपासना २३२, उसकी गुलामी  
 और स्वतन्त्रता की इच्छा १०५,  
 उसकी जन्मजात-पवृत्ति २९,  
 उसकी दृष्टि और संसार २५४,  
 उसकी देह सबधी मान्यता ३१२ (पा०  
 टि०), उसकी प्रकृति ४९, २२६,  
 उसकी प्रकृति के अनुसार पवृत्ति  
 २६४, उसकी प्रज्ञा १०७, उसकी  
 प्रथम महान् साधना ९७, उसकी

प्रकृति के अनुसार विभाजन ८१  
 उसकी भूख ३३ उसकी मुक्ति  
 २१३ उसकी शक्ति की सम्पन्नता  
 अभिव्यक्ति १४ उसकी शरय ईदने  
 की प्रक्रिया १८४ उसकी स्वार्थ  
 परता और एकात्मता २३४ उसके  
 अध्ययन का विषय ९३ उसके  
 क्लेश का अंत २९ उसके चरित्र  
 का नियमन और वस्तु ३५ उसके  
 निर्गुण ग्रहण करने का प्रयत्न २४३  
 उसके लिए महान् की पूजा २७२  
 उसके साथ मनुष्य-आदि का योग  
 १५१ उसके स्वभाव का अंग  
 धर्म २७२ उसमें ईश्वर-प्राप्ति की  
 विधा २४८ उसमें ईश्वरी का प्रवेश  
 २७१ उसमें एकत्व ही सृष्टि  
 विधान १६ उसमें पुष्ट बुद्धि १४१  
 उसमें बीबी सम्पत् २५७ उसमें  
 दो प्रकार की वृत्ति १४ उसमें  
 धर्म और परमेश्वर के प्रांत सदा  
 १ १ उसमें भेद का कारण ८७  
 उसमें युक्तिसयत विवश २३६  
 उसमें विषय विद्यमान २७८ उसमें  
 सबसे निष्कपट धर्मान्व १४१ उसे  
 तीन वस्तुओं की बकरत २७१, एक  
 मसीम वृत्त ११९ और अन्तःप्रेरणा  
 ३८७ और अपनी प्रकृति तथा  
 आदर्श २६५ और अधुम १९४  
 और आत्म-वेतना ११९ और  
 आमास १८१ और ईश्वर संबंधी  
 विचार २१२ और कर्म न करने  
 का कारण १५५ और कर्मशीलता  
 १५५ और चेतना २२५ और  
 जीवन के विभिन्न भाग २५७  
 और धर्म ३२३ और धर्म प्रेरणा  
 की शक्ति १४ और परमेश्वर  
 १ ४ और पशु २३१ ३२, २५९  
 और मानव रूप में परमेश्वर-पूजा  
 २४८ और विचार का अधिकतम अनु  
 वार २३२ और विविध प्रेरणा ७

और शक्ति ७ मूंगा और प्रेम २९०  
 -आदि ९ १४५ -आदि उसका  
 वर्तमान इतिहास १२७ -जीवन  
 ७२, ७६ ज्ञानी १९ तथा अस्वा  
 मायिक संघर्ष और मूना १६  
 तथा कर्मफल और वर्तमान कर्म ७  
 तथा कर्मशीलता १४ तथा चिन्तन  
 १२८ तथा प्रतीक और अनुष्ठान  
 २७१ पुर्बल ३२३ पुर्बल और  
 आत्मा ३ ९ दो का परिचय  
 २ ६ ठारा धर्म का स्वीकार्य ३१३  
 नाड़ी प्रधान २ ६ निम्नतम १५३  
 पवित्रतम ८९ प्रकृति का गुणधर्म  
 १ ५ प्रत्येक उसके आदर्श की  
 मित्रता १५ भविष्य का २१५  
 श्रीजी म्यात्र और अक्षय्य जन्मी  
 १२९ शैतिकपराम्यन २८३  
 मनुष्य में भेद १३ युक्तिवादी  
 १३७ विज्ञानवेत्ता ३५४ -विष्णु,  
 विरोधाभासी २७ संबंधी सिद्धा  
 न्त २१४ सबसे सुखी कौन १ ३  
 सुख-सुख की समष्टि मान ५  
 स्वयं से पीड़ित १ १  
 'मनुष्य-विष्णु' २७  
 मनुष्यत्व उसका समूर्त भाग १४४  
 उसकी विद्यमानता १ ४  
 मनुसंहिता २ (पा टि )  
 मनोविज्ञान ६८ ११४ १५ २८  
 यूरोपीय ६९ व्यावहारिक १२  
 सन्धा १२१  
 'ममी' १४६ (पा टि )  
 मरमन (mormon) १३२  
 महा मा जनकी संपत्ति कठिन २८९  
 वैदिक्यमान ज्योति १९६  
 महादेव ३ ९  
 महान् आनुति ७६ उसकी परिभाषा ५  
 'महानता' ११२  
 महाविर्दान तथा १६  
 महापुरुष उनकी मित्रता तथा विष्णु  
 ३५१; उन्हें विचार-शक्ति मान

- ७९, और भगवान् १४९, द्वारा उदात्त भाव का संग्रह ७९, शान्त, अमुखर और अज्ञात ७९, शुद्ध सात्त्विक ७८, सर्वश्रेष्ठ ७८
- महाभारत ४४
- महामाया ३५६
- महावैराग्य ३०६
- महाशक्ति ३५६
- महिम चक्रवर्ती ३६१
- माँ ३८१, उसकी छाया २०९, उसकी लीला २०८, २१०, उसके गुण २०८, उसके प्रति समर्पण और शान्ति २११, उसके लीला-सखा २०८, गोलाप ३०१, ३०९, ३११, गौरी ३०१, ३०९-१०, ३६१, दुखो मे दुख २०९, योगेन ३०१, ३६१, विश्व की निष्पक्ष शक्ति २१०, सारा २९७, सुखो का सुख २०९
- माता, उसका कर्तव्य ४२
- माता जी ३१० (देखिए सारदा देवी)
- मातृदेवी, उसकी भावना से प्रेम-प्रारम्भ २६२
- मातृ-पूजा उच्चतम वर्ग में प्रचलित २१०, उसका उद्देश्य २०६, एक विशिष्ट दर्शन २१०, -विचार का जन्म २१०
- मादक-द्रव्य-निषेध २३५
- मानव-जाति, उसका चरम लक्ष्य ३, -प्रकृति २१४, -प्रेम में पाँच अवस्था २६९, -प्रेम, सदा अन्योन्याश्रित २७०, मन के स्तर और प्रकार १३३, वास्तविक ५, श्रेणीबद्ध संगठन ११, -समाज, -स्वभाव, उसकी कमजोरी ४१ (देखिए मनुष्य)
- 'मानव-निर्मायक धर्म' २२८
- मानवात्मा ८१, अनन्त १७३
- माया ११८, २१५-१६, २५८, २९०, ३७५
- मार्ग, कर्म ८१, ज्ञान ८१, निवृत्ति, ७२, प्रवृत्ति ७२, भक्ति ८१, योग ८१
- मार्सेल्स १११
- मिथ्याचार १५
- मिनियापोलिस २३७, जर्नल २३७ 'मिरर' ३७३
- मिशनरी, ईसाई ३४३, पत्रिका ३४२, पाखड़ी ३०७, लोग ३४९
- मिन्न देश १२८, १४६ (पा० टि०), -वासी ८४
- मिस्त्री, प्राचीन २०५
- मीराबाई २७३ (पा० टि०), द्वारा ईश्वर-प्रेम का प्रचार २७३, रानी २७५
- मुडकोपनिषद् १५८ (पा० टि०)
- मुकर्जी, प्यारीमोहन ३३१
- मुक्त २६१, होने में सहायक प्रक्रिया ७५
- मुक्तावस्था ६९-७०
- मुक्ति ७३, ८१, ८७, ९३, ९६, १११, १७२, २३०, २५६, २६७, २८८, ३००, ३३५, ३३७-३८, उसका अर्थ ३१, उसकी इच्छा २६९, उसकी खोज और दृष्टि-भेद ८२, उसके मार्ग पर मनुष्य १८८, उसके लिए सघर्ष ८१, उसको प्राप्त करने का उपाय ७१, और जगत् का कल्याण १८५, और सिद्धि ३४०, कर्म और प्रेम में २१३, कर्मयोग का लक्ष्य ८०, -कामना ३३७, तथा भक्ति ३००, नैतिकता तथा निस्वार्थता की नींव ८२, पूर्ण १७४, पूर्ण निस्वार्थता द्वारा प्राप्त ८३, प्रकृति से १८२, लक्ष्य २२२, -लाभ २२, ७०, -लाभ, उसकी इच्छा ३१, ८३, -लाभ, उसके लिए सघर्ष ८१, -लाभ, उसे करने का धर्म ८३, -लाभ, भक्ति में समर्थ ३००

मुसोपाध्याय यज्ञोत्तर ३१९  
 'मुमुक्षु' १०५ उसका जर्म १०  
 'मुनी मत्-कु-बाय' २६  
 मुवाकियट, सिगाराविमू ३ ४ ३४  
 (रेसिपि किडी)  
 मुसलमान ३८ १२५ २६ १३४  
 १३८ २२५ २२८ २४४  
 ३३ ३३४ ३७ उनका  
 बोलभाषन १४३ उनकी  
 संस्था-बुद्धि १२५ उसका प्रकार  
 १३६ उसका सार-तत्व १३६  
 और प्रोटेस्टेंट ईसाई २४३ और  
 बौद्ध १२७ और विश्वबन्धुत्व  
 १४३ जर्म १३४ ३६ जर्मनीस  
 २४४  
 मुसलमानी ज़रमाबाज ३६७  
 मुस्लिम जर्म २३७  
 मुहम्मद २७२ २७४  
 मूर्ति और प्रतिमा २२६  
 मूर्ति-पूजा २४५ उसका रहस्य १८८  
 उसके मार्ग २२५  
 मूर्तिपूजक २४५  
 मूसर, कुमाठी ३२३  
 मूसा ४७ १ ८  
 मूयजस १ २  
 मृत्यु उसकी निघाती २२९ और  
 जीवन १६८ छेप ३३२ भ्रम  
 है ३७९ सकोब ३३२, ३३५  
 सर्मन है १७७ स्वार्थपरता ही  
 ३३३  
 मृत्युमूय जीवन ७८  
 म फ्राजर २३५  
 मेडिसन स्त्रोवर कम्पर्ट होक २४३  
 मयर लॉर्ड २७१  
 मेरठ ३१९  
 मैरी हेल् २९५ ९६ ३ ६ कुमाठी  
 ३२१ ३२४ ३४ ४१ ३७८  
 मेकराज ३१४  
 मै १ ७४ १९५ अर्द्धाठी १५८  
 'और मैरा' ७४-५, ८२ 'मैरी यू

२ ६ -मन ७९ 'मन हूँ' ११७  
 सरीर हूँ ११७ सात्री हूँ ९७  
 मैन्सिबॉर्ड कुमाठी ३९  
 मैसूर ३४८ नरेश ३८६  
 मोस-काम ३७  
 मौलीक देवठा २ ५  
 म्लेच्छ ३२४  
 मंग कुमाठी ३२२  
 मनुबोध संहिता ३६८ (पा टि)  
 मन्न उसका महत्त्व १६ उसकी बलि  
 ३५७ प्रत्येक की बलिबा १६  
 मुमि ३६  
 यज्ञोत्तर मुसोपाध्याय ३१९  
 यम १६ १६४ ३ ७ ३५४ ३७४  
 यमपुरी ३५९  
 यथ और कीर्ति १७  
 यहूदी ६७ १४२, २ ५, २७७  
 इतिहास २२४ उनकी सत्या  
 १२५ पाति १९९ जर्म १२५  
 राजपि २५६ विचार-संपत्ति का  
 निर्माण २२४  
 'याकी' २९६, ३८५  
 युक्ताहार, उसका जर्म १८३  
 युक्तिवाद १५६  
 युनानी ८६ और रोमन ८४  
 यूनिटेरियन २६४ जर्म २३७ २७३  
 यूरोप ४ १११ १२६ १४७,  
 २ ५, ३ २, ३४३ ३४५, ३५२  
 ५३ -माया ३१०  
 यूरोपियन प्लान ३१४  
 यूरोपीय मनाबिज्ञान १९ समाज  
 तथा भारत का जर्म ३३४  
 'योक' (yoke) उसका जर्म १६९  
 योग ४३ ४५, १५१ २८ उसका  
 ध्येय ३१ उसका साधन १५१  
 उनकी बलिम अवस्था १२२  
 उसकी प्रीतिक क्रिया ७ उसकी  
 सजापि और भाजा २३२  
 उसकी विधि का प्रत्य और सम्मान

१२२, उसके आभ्यन्तरीण मूल-  
भाव १५३, उसके विभिन्न प्रकार  
१६९-७०, उसके सहायक १२२,  
एकत्वानुभूतिरूप १५१, कर्म ६७,  
१५४, १६९, कर्म के माध्यम  
से १५१, निष्काम ६७, ज्ञान  
६७, भक्ति ६७, १५५-५६,  
१६९, भगवान् के भीतर से १५१,  
मनुष्य को पूर्ण बनाने में समर्थ  
६७, मार्ग ८२, रहस्यवाद द्वारा  
१५१, राज १५१, १५३, १६९,  
२६४, २८८, विभिन्न, उनमें  
विरोधी नहीं ६६, शब्द, उसकी  
उत्पत्ति १६९, शब्द, उससे तात्पर्य  
१५१, -साधन १५१, -साधना  
१२२, -साधना और अनासक्ति ७५  
योगक्षेम ३४८  
योगभ्यास ४३-४  
योगी ७८, ११७, १५०, २८०,  
२८३, उनका मत ११६, उसका  
कथन १८२, उसका लक्ष्य १८२,  
उसकी पहचान १२१, उसके लिए  
जीवात्मा, परमात्मा का योग  
१५१, और चित्त की एकाग्रता  
१२१, और सत्य की उपलब्धि  
१२१, कर्म १५१, ज्ञान १५१,  
भक्ति १५१, महान् २८३, राज  
१५१, सर्वोच्च १५३  
योगवाशिष्ठ रामायण ३८२  
योगेन ३१३-१४, ३१९, ३५४, माँ  
३०१, ३६१  
'योग्यतम की अतिजीविता' १२६  
योजना, संगठित और प्रचार-कार्य ३५२  
रक्तमेघ १२९  
रघुवर ३६२  
रज, उसकी कर्मशीलता ११  
रमावाई ३८६  
रसायनविद् १५३  
रहस्यवाद १५१, २८१

रहस्यवादी २६४  
राहट, प्रोफेसर २९७, ३२४  
राखाल २९८, ३५७, ३९१  
राग-द्वेष १३९  
राजपूताना १८८, ३२०, ३४५,  
३५७, ३६२-६३  
राजयोग १६९, २८८, उसका आलोच्य  
विषय १५४, और ईश्वरीय अनुभूति  
१७०, और शारीरिक व्यायाम  
३६४, मनस्तत्र का विषय १५३  
राजसकर्मी ७९  
राम ३७१  
राम बाबू ३६२  
रामकृष्ण (एक व्यक्ति) ३६३  
रामकृष्ण २६१, २९८, ३१०, ३११-  
१२ (पा० टि०), ३२०, ३३०,  
३३७-४०, ३५६-५७, ३६१,  
३६३, ३७३, ३८५, ३९१, उनका  
जीवन, ज्योतिर्मय दीपक ३३९,  
उनका श्रेष्ठत्व ३१३ (पा० टि०),  
उनकी लीला-सहस्रमिणी ३१०  
(पा० टि०), उनकी सन्तान  
३४४, उनके शिष्य की विशेष-  
षता ३४४, गुरुदेव १९४, जीव-  
न्मुक्त और आचार्य २६१, ज्ञान  
के उदाहरणस्वरूप ३३९, -तनय  
३५८, परमहंस २५२, परम-  
हंस देव २९८, परमहंस देव,  
उनका आविर्भाव ३०१, -महोत्सव  
३५१, यतिराज १८५, स्वयं  
अपनी पुस्तक २२८  
रामकृष्णानन्द ३१९, स्वामी ३५१,  
३५८, ३९१ (देखिए शशि)  
रामदयाल बाबू ३०९-१०, ३७३-७४  
रामदादा ३६१  
रामनाड ३४८  
रामलाल ३६३  
रामानुज ३३५  
रामेश्वर ३००  
राव, डॉ० नजुन्दा ३३६

राष्ट्र ३३६ उसका अपना जीवन-  
 ब्रत १३५ उसका निर्माण उपाधि  
 प्राप्त व्यक्ति से नहीं ३३  
 उसका निर्माण पतनान से नहीं  
 ३३ उसकी रक्षा ३७ उसके  
 जीवन में मुख्य प्रवाह ३३८

राष्ट्रीय आध्यात्मिक जीवन ३३९  
 जीवन ३३२ मर्म १४१ भाग  
 १३६  
 रिपब्लिकन २६६  
 रीति-नीति ३१७ -रिवाज २९ ४  
 ३३१  
 स्र २११  
 सहाय ३७३  
 रूप २२५ २६ और अनुष्ठान  
 २६६ और सम्प्रदाय २६९  
 और सिद्धान्त २६९  
 रोमन ८४ ८६, १४८ २८४ ३८६  
 कैथोलिक २६४ कैथोलिक धर्म  
 २८२

रुका ३१९  
 सक्षमी ३ ८  
 उच्च उसकी प्राप्ति के साधन १६९  
 सखनठ २९८ ३५७  
 सन्ध ११४ १८ ३१९ ३२३  
 सौंके बहुत ३८८  
 सादू ३५२  
 सामा २९६ ९७  
 साक्षा मोक्षिय सहाय ३५  
 साँस एधिकिध १११  
 सिम प्रतीक १८२ और सिक्रेमेण्ट  
 १४३  
 सिमिडी ३१६, ३२ बहुमिया बंध  
 ३२  
 सनक सर जॉन १४३  
 सेनेट भी ३९३  
 सैन्ट्सबर्न २९७ ३६४ ३८१ ३८५  
 -८६ स्थान २९५ भी ३८३  
 (शैक्षिय कृतान्त)

संक्रियन २७२  
 'सोकमठ' ३७८  
 सदन और इन्द्र २ ६  
 सर्ज-विभाग ३६७  
 वस्तु, उसका साम्य है १८६ अस्मिर  
 १ ६ उच्चतम ३७ उसका  
 उपार्जन ६ उसका प्रत्यक्ष ९९  
 उसका सार-सारा २८८ उसके मर्म  
 तक पहुँचना कठिन २१२ उसमें  
 विस्तार की प्रकृति ८१ ऐहिक  
 ९७ और जीवन २१९ और  
 बुद्धि २६४ और उच्च १७४  
 बुद्धमान २५८ बुद्धिकोण से  
 देखी जानेवाली ७८ पाषिब  
 २ १ २३-३१ प्रत्यक्ष उसके  
 किए तीन बर्षों ९९ प्रत्येक  
 उसका निरन्तर स्थित्यन्तर १ ६  
 प्रत्येक एक बरस १७३ बाह्य  
 १६४ २५४ भौतिक जड़  
 १६७ विजातीय १ १ विद्यमान  
 एक ११७ सहीम १३४ साँसा  
 रिक ३४ १७५  
 बहुमियाबंध किमिडी ३२  
 बादेवी ३७४  
 बाद अद्वैत ३ ७ बाबर्ष २२५  
 ईश १६७ भौतिक १७२  
 बाममार्गी ३ ८  
 बाधिगतन ३१८ ३२०-२२, ३२४  
 ३८८  
 बासना उससे बाचना में बुद्धि २  
 और कोष २८९ और सरीर  
 २ तथा हियाँ ३८३ भोग  
 से युक्त नहीं २ वस्तु २  
 बिचार ११७ बहुम ३१ उसका  
 प्रथम कथान १२९ उसकी शक्ति  
 व्यक्ति के माध्यम से २७१  
 एकाग्रता २३२ और कर्मणा ६९  
 और प्रेय २७८ और मत की  
 एकाग्रता २३२ और मनुष्य १४६

और वायुमण्डल ५७, और वैचित्र्य १२८, और सस्कार ३०, -चेतन १२१, तथा शब्द ४९, २६७, -तरंग ५६, ३५५, पश्चिम तथा पूर्व की तुलना २३८, पार्थिव १९५, -प्रणाली ३६८, मूर्त तथा प्रतीक २४३, व्यापारी, हिसाब-किताब करनेवाले १८८, -शक्ति ६७, १६७, शुभ ३१, सहानुभूति का ५९

विजय वावू ३११

विज्ञानवाद ११९

विज्ञानवादी, पुरातन १७८

विज्ञानशास्त्र १६९

'विदेशी शैतान' ४०

विदेह, उसका अर्थ ६५, राजा ६५

विद्वत्ता, उसका मूल्य नहीं २२९,

और तर्क १९७, और पुस्तक

३७०, और वृद्धि १०७, प्रगति

की शर्त नहीं १९७

विधवा-विवाह २३४

विवि, उपासना २९९, और प्रतीक

२५१, -विधान ७०

विराट् और स्वराट् २९९

विरोचन ३०८

विलासमयता, उसकी ज़रूरत ३३४

विवाह, और व्यभिचार-त्याग १७६,

-प्रथा ७७

विविधता, उसका अर्थ ३६७, जीवन

का चिह्न २२९

विवेकचूडामणि १२ (पा० टि०)

विवेकानन्द, स्वामी ४५ (पा० टि०),

१७०, १८७, २०५, २१२, २३७-

३८, २७२-७३, २९५-९८, ३०१-४,

३१४-१६, ३१८, ३२०-२२, ३२४

-२५, ३२८, ३३१-३२, ३३६, ३३८-

४३, ३४६, ३५०-५१, ३५६, ३५८,

३६५, ३७१, ३८१-८२, ३८४-८६,

३८८-९०, ३९४, अद्भुत व्यक्तित्व

३२७, अपनी अन्तरात्मा के प्रति

ईमानदार ३७९, आत्म-तत्त्व के चिन्तक ३१५, उनका मुक्ति ही एकमात्र धर्म ३८०, उनका व्यक्तित्व और दर्शन ३८०, उनकी कार्य-प्रणाली ३६७, उनकी प्रकृति ३२२, उनकी समस्त कार्य-योजना ३६८, तूफानी हिन्दू ३५९, त्यागी सन्यासी ३२२, देवी अधिकार-सम्पन्न वक्ता ३२७, धर्म-महासभा में महानतम व्यक्ति ३२७, ब्राह्मण उपदेशक २३७, राजनीतिज्ञ नहीं ३५१, सत्य की शिक्षा देने के सकल्पी ३६९, हिन्दू उपदेशक २१२, हिन्दू सन्यासी ३२७

विशेषाधिकार ३६७

विश्व, उसकी आत्मा सत्य है १६४,

उसकी द्रष्टव्य क्रिया ११६, उसके

अपरिहार्य व्यापार ७३, उसमें आत्मा

एक १६७, उसे गतिमान करने-

वाली शक्ति २५५, एक परिवर्तन-

शील पिण्ड १०६, एक प्रतीक

२४४, जगत् १५२, प्रेम की अभि-

व्यक्ति मात्र २५५, ब्रह्माण्ड २५६,

ब्रह्माण्ड, जड़ द्रव्य का सागर ११७,

मानो परमेश्वर का स्थूल प्रतीक

मुक्ति के लिए २४६, लहर और गर्त

के सदृश ११३, शुभ और अशुभ

का सघात २११, सधर्म का परि-

णाम ८१, समस्त, उसमें एकता

तथा अखण्ड सत्य १६८, सम्पूर्ण,

एक शरीर १६७

विश्वब्रधुत्व और साम्य १४४

विश्वात्मा २१७, अनन्त है १६७,

उसका अश १६७

विश्वास-भक्ति ३६३

विपमता, सृष्टि की नीव ८६

विपय-भोग १०५, १३६, २९१

विपयीकरण २५९, उसका प्रयास

२५९

विषुवतरेखीय उष्ण देश ३९४



विष्णु २४८ भक्त २४२  
 वीर उद्योग अर्ध २०९ उद्योग उद्योगी  
 पहलवान ३२४  
 वीररथ मापी ३२६ ३२८  
 बुद्ध और प्रस्ताव-पूजा २२५-पूजा  
 २२५  
 बेंड हॉस २१२  
 बेद २३ ३८ ४७ १३८ १६२, १६६  
 २ ४ २ ६ ३ ३३९ ३६६  
 उद्योग कथन ३८० उद्योगी मूलभूत  
 शिक्षा १६६ और वेदान्त ३९  
 प्राचीन २१ रूप समुद्र ३१३  
 (पा टि )  
 वेदान्त १६ १८७ २११ ३२४  
 ३४९-५ ३०२ उद्योगी मत  
 ३५९ दर्शन ४४ १६९, धर्म  
 उद्योगी उद्योगी तत्त्व ८१ नैतिकता  
 से उद्योग १८८ सूत्र उद्योगी प्रणेता  
 ६५  
 वेदान्त 'एंड दि वेस्ट' २१४ (पा  
 टि )  
 वेदान्ती १ ३ ७ अर्थ २५९  
 उद्योगी धार धर्म १९१  
 वेदशास्त्र १७५  
 वैज्ञानिक आधिपत्य २० प्रजाती ७  
 वैदिक शक्ति २ ९  
 वीर भाव ३५  
 वैराग्य ७४ २५९ २९९  
 वैराग्यप्रत्यक्षम् ३८१ (पा टि )  
 ३८३ (पा टि )  
 वैराग्य १४५, १४८ जीवन का विह्वल  
 १२८ भाव ८३  
 वैराग्य मत ३ ०  
 व्यक्ति 'उद्योग ३ ३ उद्योगी धार  
 धर्मिया १८९ उद्योगी सम्प्रदाय  
 २३२ उद्योगी आदर्श की कल्पना  
 और पूजा २५४ उद्योगी जीवन  
 में वर्तमान १६ उद्योगी माध्यम से  
 विचार की शक्ति २७१ उद्योगी  
 तीन शक्ति ११ उद्योगी शक्ति

की भाव १९१ एकात्मवादी  
 १ और राष्ट्र ३३०; और  
 स्वयं-अनुभूति की भाव १९१ कर्म  
 से परे ७२ जंगली ११३ जीवन  
 अर्थ करने की उद्योग ६१ ज्ञान  
 के आसक्त से सम्पन्न १७८ धर्म  
 गृही २१ धर्म ८८ धार्मिक  
 उद्योगी विजय अर्थ ३५१ निष्ठा  
 ज्ञान १४३ भावना-धील २७१  
 योगप्रिय १५ योगमार्गी १४९  
 विचारशील तथा मतमेव १२९  
 साहित्यिक ७९ सामंजस्यपूर्वक  
 २६४ स्वतंत्र ७६ (वैदिक-अनुभूति)  
 व्यक्ति उद्योगी महत्त्व २२९ और  
 जीवन २२९ और सामाजिक  
 जीवन २२९ प्राप्त करने का प्रयास  
 २२९ समस्त उद्योगी का रहस्य  
 २६१  
 व्यक्ति-भाव ८२  
 व्यक्ति-वादी ८२  
 व्यक्ति-व्यक्ति १९७  
 व्याप ४४ 'नीता' ४४  
 'व्यापि' ६८  
 व्यापक और संगीत २३४  
 व्यावहारिक धर्म का तीसरा अर्थ  
 १७१ प्रयोजन १४९  
 व्यास ६५, १८७ वेद ६५ उद्योगी  
 सूत्र के प्रणेता ६५  
 यूनान बंधु ३२१  
 संकर ९ १ ३३२ ३८१  
 संकराधर्म १२९ ३३५  
 शक्ति अनुभूति और ज्ञान २१  
 शक्ति ३१२ अनुभव ३१  
 अगाध्य-आधिनी ३२३ अहितकारी  
 ३६१ आध्यात्मिक १३१  
 इच्छा ७५ उद्योगी कथन २११  
 उद्योगी विचार आध्यात्मिक ३ १  
 उद्योगी विचार २ ६ उद्योगी  
 विचार में प्रथम स्थान २१

उसकी परिभाषा ११८, उसकी बड़ी अभिव्यक्ति ८, उसके सघर्ष होने से गति १२८, उसके साथ वल का विचार २११, और धर्म के बाह्य रूप २२४, कल्याणकारी ३६१, केन्द्रगामी १३९, केन्द्राभि-मुखी ७३, केन्द्रापसारी ७३, १३९, खल की २०७, जीवत १९८, दैवी २६१, द्वारा गति-शील जड ११८, निर्माणशील, उसका उद्भव किस प्रकार ८६, प्रवल आत्मा की ३१२ (पा० टि०), प्राकृतिक १३१, प्रेरक १९, मन ७५, मानसिक १९४, विश्वव्यापी २१०, शुभ ३१०, सत की २०७, सब घटना के पीछे २०६, सर्वत्र व्यक्त २०८, सर्वत्र है २०६, स्त्री है २०८ 'शक्तिमान' २७५

शब्द, उसको प्रकट करने के प्रतीक ४८, और आनुषंगिक भाव ४८, और भाव स्वभावतः अविच्छेद्य ४८, और विचार अन्योन्याश्रित २४६, द्वारा भक्ति २६७, पवित्र और रहस्यमय २६७, -प्रतीक ४८, प्रत्येक विचार का अक्ष २६७, मनुष्य के उच्चतम भाव का शरीर २६७, शक्ति, उसका परिचय ४९, शक्ति, उसका महत्त्व ४९ 'शम', उसकी परिभाषा १००, और 'दम' ९९-१००

शरत् ३११, ३५४ (देखिए सारदानन्द) शरीर १८, ७६, ८४, ९५, ११३, ११८, १२३, १६३, १६६, १७६-७८, १९२, १९४, २६७, २६९, २८४, अध्ययन का विषय ९३, आत्मा का केन्द्र २२१, उसका निर्माण ९४, उसके प्रति दृष्टिकोण २८३, उससे आसक्ति, दुःख का कारण १२३, उससे ऊँची वस्तु

का अनुभव २३२, उसे आत्मा समझने का भ्रम १९५, और मन ७१, २१७, और मस्तिष्क २१८, और वासना २००, जड २५१, जीर्ण २२१, नवीन २२१, बाह्य ७५, मन का स्थूल रूप २६७, -विज्ञान ३२, शत्रु और मित्र ९७, स्थूल स्तर से बना २६७, स्वयं से छोटा जगत् १६७, स्वयं सबसे बड़ा रोग २२२ (देखिए देह)

शशि ३०५, ३१०-११, ३५१, ३५७-५८, ३९१ (देखिए रामकृष्णानन्द स्वामी)

शाब्दिल्यसूत्र ३८२  
'शात' प्रेम २६९  
शांति, शाश्वत, उसका पथ १६२  
शा, अक्षय कुमार ३२३  
शास्त्र ग्रन्थ, आधुनिक २६७, -पाठ ३४९, मतवाद मात्र ३३९

शिकागो २३४, २३७, २७२, २९५, ३०२, ३२०-२१, ३२५, ३२८, ३४१, ३४३, ३५०, ३५३, ३५८, ३६३-६५, ३६८, ३८७, महामेला ४०, ट्रिब्यून ३१८, हेरल्ड २७२

शिक्षक २९६, पुरोहित और पैगम्बर २२४

शिक्षा, उसका जनता में प्रचार और नाश ११३, और परिवेश १३०, नैतिक, उसका लक्ष्य ८२, -प्रसार ११३, बौद्धिक, उच्चतम १०६, सच्ची, उसका प्रथम लक्षण १५३

शिल्पकला और ईश्वरोपासना १३७

शिव २४८, ३९४, चिदानन्दस्वरूप ३०९

शिवोऽहम् ३०९-१०

शिक्षु, नाडी प्रधान मनुष्य २०६

शिक्षुशाला १७२, २४८, ३८८

शिष्य, उसका गुरु में विश्वास आवश्यक १९५, उसकी गुरु के प्रति पूजा १९९, उसकी पूर्णता और मुक्ति-

प्राप्ति २०३ उसकी सहज-शक्ति  
 १९३ उसके नियंत्रण में इन्द्रिय  
 १३३ उसके लिए आवश्यक पाठ  
 १९२-९३ २० २०३ और  
 विषयता का अधिकारी १९३;  
 वही मूक का उत्तम अधिकारी २९३  
 'शिव्यत्व' १९  
 सूक्ष्म ६५  
 सुजाचारवादी २३५  
 सुम ३ ५ ८ २ ५ २ ७ २११  
 उसके करने की प्रेरणा ईश्वर २१९  
 और मनुष्य १७४ १९४ २०७  
 २१ २१९ और मनुष्य आत्मा  
 के लिए बंधनस्वरूप २९ और  
 मनुष्य उनके बन्धन परिणाम २९  
 और मनुष्य उसकी चारपा  
 २ ६ और मनुष्य उसकी परस्पर  
 अनुभूति २१८ और मनुष्य  
 नर्तिया के समान १७४ और  
 मनुष्य-शक्ति ५७ और मनुष्य  
 शक्ति की समष्टि ८५ और मनुष्य  
 में निहित उद्देश्य १७५ कर्म  
 १६, १२ कर्म उसका फल  
 २९ कामना १३ कार्य ५८  
 २९२ कार्य करने का भाष्यम  
 २७१ फल ५७-८, ३३७  
 वस्तु, उसकी समष्टि ८४ वस्तु,  
 उसके प्रति लाकसा भ्रम १९४  
 संस्कार ३१  
 सुबाधुम १३९  
 संतान ४४ ९६, ९८ १८२, २ ५  
 २१२ २१९ बहुकारुणी १८९  
 और बुद्धिमान १ ७  
 'सिद्धोपदेश' १४९  
 स्वाम ३७१  
 मन्त्र उसकी परिभाषा १ १ और  
 शक्ति ११ शक्ति १५१  
 १५८ ३४९  
 मन्त्र ६६ उसका अर्थ १८७ एवं  
 ५ ६७

'श्री रामकृष्ण की जीवनी' ३१७  
 श्रेय उसका मार्ग १६२  
 श्वेताश्वतरोपनिषद् २२ (पा टि)  
 २२२ (पा टि०)  
 संयुक्त उसकी आवश्यकता ३८७  
 उसमें मनुष्य ३८७  
 संगीत-सम्बन्धी ३९२  
 संघ उसकी आवश्यकता ३७२  
 संघर्ष आध्यात्मिक १२४ उसकी  
 उत्पत्ति २६ उसके लिए निष्पन्न  
 ९७ एक बड़ा पाठ ९६ जीवन में  
 कामनामक ९६  
 संत उसकी शक्ति २ ७ और पापी  
 २ ७ २११ और शहीद २२७  
 वेरेठा २७५ विवर्कत २२६  
 संन्यास १६, २४ १८४ ३५५ ३६१  
 उसका अर्थ २८७ -ग्रहण करने से  
 पूर्व २९६ -जीवन २७ ३२६  
 -नर्म ३५५  
 संन्यासी २४ २६-७ ४३, ४५  
 १३१ १८८, ३ १ ३७९, ३८१  
 आदर्श ३७ उनका अर्थ १  
 उनके लिए मित्रता और प्रेम-बन्धन  
 ३७९ उसका कर्तव्य १८५  
 उसका जीवन १८४ उसका धनी  
 से नास्ता नहीं १८५ उसका  
 मत सम्मन्धान नहीं १८४ उसका  
 कर्म १८५ उसकी परिभाषा  
 २८८ उसके लिए भिक्षा-भूति  
 १८६ ३५९ और गृहस्थ १८७  
 ३६१ और संन्यासिनी २८२  
 पन्नाई ३६१ वेदशीर्ष ३८ शब्द  
 का अर्थ १८४ शब्द १८५  
 सम्मन्धान १८५  
 संयुक्त राज्य ३२९  
 संघाट, अर्थवत् १६५ शक्ति मयानक  
 कुस्वप्न ३८ मन्त्र बलीत  
 का इतिहास १७६ अपने कर्म  
 द्वारा पाने का अधिकारी

६४, उसका इतिहास २१३, २७१, ३५१, उमका उपकार, स्वयं व्यक्तित्व का ४९, उमका ज्ञान-लाभ, मन से ४, उसका दृष्टान्त ५३, उसका ध्वंस और चरम साम्य १४६, उसका नियम ३३२, उसका मुख्य धर्म १२५, उसकी गति २१८, उसकी प्रकृति ८५, उमकी वस्तु प्रतीकरूप में ४७, उसके कार्य का सर्वोत्तम उपयोग ७३, उसके दुख को बढ़ाते जाना १८२, उसके द्वारा उपायना का आरम्भ और परिणति २१५, उसके प्रति उपकार का अर्थ ८४, उसके लिए अग्नि का उदाहरण ६६, उसके लिए अभिशापस्वरूप २३६, उसके प्रति ऋणी ५४, उसमें आश्चर्य की बात १०३, उसमें एकांगी शिक्षक २१५, उसमें कठिन बात १७, उसमें दुख का मूल ३, उसमें पूर्ण सतुलन सम्भव नहीं ८७, उसमें बुराई क्यों २३०, उसमें भलाई-बुराई, सब जगह २१८, उसमें सम्प्रदाय की सख्या १२७, उसमें हँसी की अपेक्षा आँसू २०७, ऐंद्रिक १९५, और तीव्र इच्छा २०१, और दया १८२, और प्रकृति ४१, और स्वर्ग, इन्द्रिय से बँधे १९२, कर्मबहुल ७३, -चक्र ८४, -चक्र, उससे छूटने का उपाय ६२, चरित्र-गठन के लिए ५४, झूठा दृश्य-जाल १५८, -त्याग ३३७, न अच्छा, न बुरा ५०, प्रतीक है ४७, भोग के लिए नहीं ६४, माँ की लीला २१०, -यत्र ८८, रूपी क्षीरसागर १०७, -ब्यूह ५८, सत्य नहीं है १९१, सुख-दुख से बना २०५, -स्वप्न ७२, स्वयं पूर्ण ५०

संस्कार ३, ३२, अशुभ ३०, उसका नाश, शुभ द्वारा ३१, उसकी परिभाषा ३०, उसके द्वारा मनुष्य का चरित्र निर्मित ३०, बुरा, उसकी उत्पत्ति का कारण और व्यक्ति ३०, मनुष्य की जन्मजात-प्रवृत्ति २९, -समष्टि ८७, सु, और सत्कार्य की प्रवृत्ति ३१

संस्कृत, आर्य भाषा १६०, उसमें 'जाति' का अर्थ ३६६, उसमें दो शब्द ६०, कवि ६०, कहावत ११८, दर्शन ४८, पाठशाला ३११

सहिता, यजुर्वेद ३६८ (पा० टि०)

सतयुग ८५-७, २३४

सतयुगी, धर्म ८६, भावना ८६

सत् २२, ६०, १५६, १६६, २०७, २११, और असत् ५७, २०३, ३९४, कर्म १७, ८८, कार्य ३०, ६२, ७५, ७८, ८२, ८९, १३७, ३०१, ३०३, ३३०, ३८३, चिन्तन ३०, पुरुष ३८, यथार्थ ३३, वस्तु ११८, संस्कार ३०, सर्वोच्च फल ६०, सिन्धु १५६ (देखिए शुभ)

सत्कर्मी, स्त्री और पुरुष २२६

सत्ता, अद्वितीय निरपेक्ष ११९, अनन्त ७०, १९५, असीम ७०, २१४, निरपेक्ष २५९, निर्गुण २१६, विराट् १४५

सत्य ६६, २९२, अद्भुत २४६, अनन्त १३४, अनश्वर ३४४, अन्तरस्थ ३७८, उच्चतम १९६, उच्चतम, उसके ज्ञान की प्राप्ति २०२, उच्चतर १३०, ३६६, उसका आविष्कार परमाणु-विषयक १०८, उसका प्रभाव, अनन्त ३६९, उसका स्वरूप १०९, उसकी उपलब्धि और योगी १२१, उसकी जय अवश्य ३२३, उसकी तुलना ३७८, उसकी परिभाषा

उसका अस्तित्व १९ उसकी सीमा ४ उसकी सीमा में ही चिन्तन २७१ उससे परे जाने का उपाय २७१ और प्रकृति ६३ और बुद्धि से परे २८५ और व्यक्ति २८७ कर्मभ्यता ४ प्राण अणु २८ प्राण व्यापार १६३ अणु २३ पतित सुख और प्राणी १९९ नियंत्रण १४६ पाँच ४६ ५७ ६५, २६९, २८५ मोम १४६ मन और बुद्धि ५४ मकार्षी १ ९ आस्तिक २३ विकास ५५ विषय १३६ सीमाबद्ध १६० १८ सुख ६८ १६९, १७६ २६८ २७ सुख और बौद्धिक सुख २७ २७४ सुख और माया ७६ सूक्ष्म २९

इन्द्रियातीत तन्मय २४६  
इष्ट वैश्वता निर्गुण २८६  
इस्मिन् मेम ३८५  
इस्त्वाम २४ २४९ धर्म २७८

ईश्वर ४४ तरंग २२२ सिद्धान्त ४४  
ईशो ४८ (पा टि )  
ईश-स्वरूपार २५९ पूजन २६  
ईशोपनिषद् १५ (पा टि ) १५२,  
१५७-५८ (पा टि ) ३३७  
ईश्वर २४ ६१ ६४ ६९ ८९ ९४  
१ ९ ११९, १२४ १४५, १५५,  
१७९ १९९, २ ५-८ २१  
२१४ २२१ २२८ २३ २५६,  
२७४-७५, २८४ ३ ३२  
३२३-२४ ३२६ ३३३ ३३७  
अज्ञात और ज्ञात नहीं ८९ अनेक  
८८ अनन्त अस्मिन् १५८ अनन्त  
गुण का मापदण्ड २ ४ अनन्त ज्ञान  
१५८ अनन्त सत्ता १५८ अनन्त  
सर्वप्रतिमान ६७ अन्वेषक २५८  
अपरिणामी और अजर ६२ मार्फ  
अज्ञान २२२ आत्मा के आकर्षण  
का क्षेत्र २ ७ इन्द्रिय-बुद्धि से

परे २८५ उपादान कारण २ ८  
१ उसका ज्ञान और सेमेटिक  
धर्म २३७ उसकी इच्छा १८१  
उसकी उपासना और अभ्यक्त आत्मा  
३४ उसकी उपासनास्वरूप प्रकृति  
२९६ उसकी कृपा २४९ उसकी  
वी धारा २८४ उसकी धारणा  
भाषा २९५, २९७ उसकी परि  
२६५, २८१ उसकी पूजा २६  
उसकी प्रत्यक्ष उपलब्धि ४१ उसकी  
प्राप्ति तर्क से नहीं १६६ उसकी  
बाणी ६३ उसकी समुच्चय १७९  
उसकी समुच्चय धारा से निर्गुण धारा  
१८ उसकी सत्ता २८१ उसके  
अस्तित्व में विश्वास २ ३ उसके  
चिन्तक २३२ उसके नाम में महान्  
नाम २५३ उसके प्रति विकासशील  
भाव २५८ उसकी पापा चरम  
उद्देश्य २२९ उसकी समुच्चय रूप में  
पूजनेवाले २६ उसमें निहित बुद्धि  
१ १ उससे प्राबुर्भूत विषय २ ९  
एक उपास्य १८६ एवं कारण  
१६७ और अहितवाच ९६ और  
कुर्वर ३५२ और ईशवाणी ९६  
और धन ३५ और पूजा तथा धर्म  
१९१ और मानवीय अभिव्यक्ति  
२६ और सैतान १८८ और  
सृष्टि २ ८ अन्तरात्मा ३८  
कारण २ ८ केवल प्रेम के लिए  
२ ८ चिन्तन से भी भयता २९  
चिन्तन २ १ चेतन और  
धारण २ ९ चैतन्यस्वरूप ३ १  
जगत् का केन्द्रस्वरूप १५८ जगत्  
का समष्टिस्वरूप ६ जगत् के  
वासिधर्मा ७१-ज्ञान २३१  
२३३ तथा व्यक्ति और हित  
वर्तन २३२ तथा स्वर्ग २५५-वर्तन  
१५ १५३ इच्छवादी ९७  
बुद्धि ३२७ ईशवाणी का ९६  
धर्ममय २९८-धारणा ६७ २९३

नि स्वार्थ पुरुष ६७, नित्य २०४, नित्य ज्ञाता ८९, नित्य विपयी ८९, नित्य शुद्ध ६२, निर्गुण ९४, २८६-८७, २८९, निर्गुण और मनुष्य १८०, निमित्त कारण २०८, २१०, निर्विशेष, उसकी उपासना का माध्यम २८९, परम इच्छामय ३०३, पूर्ण आनन्द १५८, पूर्णत्व १३१, प्रकृत ६२, प्रकृति मे व्याप्त २३२, प्रकृतिस्थ ८३, -प्राप्ति २३४-३५, प्रेममय और सर्वशक्तिमान ६५, वहु जीवात्मा के रूप से २९९, -बुद्धि १५३-५४, बुद्धियुक्त १०४, भक्ति २६२, भय का प्रतीक ३८९, मनुष्य के साथ अभिन्न ८९, महिमा-मय, अपरिणामीस्वरूप २९७, मानवीय २०४, यथार्थ आत्मा ८९, रूप १५४, रोग दूर करने की शक्ति ३८९, वाद, सगुण १८६, विश्व का सर्जक और शासक २०४, विश्व की आत्मा १८१, विश्वव्यापी बुद्धि १०६, १२६, विश्व से परे २३२, विश्वातीत २३२, शब्द की महिमा १०७, शाश्वत २६६, सबधी अन्त-मुखी जिज्ञासा २३७, सबधी धारणा ६२, ६५, ७१, सबधी धारणा और अद्वैतवाद ८९, सबधी सिद्धान्त २००, सगुण ५८, ६८, ९६-७, २०४, २५९-६०, २८७-८८, सगुण और मन १७३, सगुण का ज्ञान और वेदान्त ५९, सत्, मनुष्य की महान् कृति २६०, समी आत्माओं की आत्मा १८१, २०९, समष्टिस्वरूप ३०१, समुद्ररूपी २६०, सर्वशक्तिमान ३२९, सर्वशक्तिशाली २६६, सविशेष २८८-८९, सृष्टि का निमित्त तथा उपादान कारण २१०, सृष्टि का रचयिता २०४, २०८, सूक्ष्म इन्द्रिय से अधिक

समीप २९०, स्रष्टा ही नहीं, सृष्टि भी २१०, स्वतः सिद्ध २९७, स्वयं विश्व २१०, स्वाधीन २९४

ईश्वरत्व १८१

ईश्वरीय पुरुष ३६६, विधान ३६५, सत्ता १०९

ईर्ष्या १३६, २१३, ३३९, ३५१-५२, और सन्देह का परित्याग ३२४, राष्ट्रीय चरित्र का धब्बा ३२९

ईसप की कहानी १५५

ईसा ७, ५५, १२६, १५२, १६७, १७६, २२९, २४१, २५४, २५८, ३००, ३६१, ३८६ (पा० टि०), -मानव ८, १०५-६

ईसाई १०५, १६७, १८२, २०३, २५८, २७९, ३३८, ३६४-६५, और समृद्धिशाली राष्ट्र ५०, कट्टर और मिशनरी ३७१, कट्टरपथी शत्रुभावपन्न ३९३, दावा २७८, दोस्त २७९, धर्म ५०, १८२, २३१, २४०, २४९, ३४०, धर्मा-वलम्बी राष्ट्र की ममृद्धि का कारण ५०, धर्मोपदेशक ३५०-५१, भूमि २२८, महिला ३१३, मिशन ३३९, मिशनरी ३११, ३४० (पा० टि), राष्ट्र ५०, लोग १७२, ३६२, वैज्ञानिक ३८६, वैज्ञानिक सम्प्रदाय ३८७ (पा० टि०), ३९३, सज्जन ३७८

ईसावेल ३७९, मैर्क्किडली, कुमारी ३४४, ३४६, ३९१

ईसामसीह ९७, १५५, २३१, २३३, २४०, २९०, ३२४, ३६०

ईस्ट इन्डिया ३५९

उड, श्री ३८७

उत्तरमीमामा २०३

उत्तरी ध्रुववासी १८८

उत्थान और पतन १०२, -पतन २०२ उन्नति, और अवनति १८२, और दुख-

सुख की बीबिका ५२ और विकास  
 ५१ और बुद्धि १२३ नैतिक भाव  
 की और मनुष्य का संग्राम ६३  
 उपकार २६६ उसका संकुचित अर्थ ४  
 उपनिषद् ४४ ६ ९५, १४२, २ ३  
 २४१ ३२९ अस्तित्व १०८  
 आधुनिक ४३ १७८ ईस १५  
 १५२ (पा टि ) १५७-५८ (पा  
 टि ) ३३७ उनका कवन १४१  
 उसका अस्तित्व १८ उसका  
 केन्द्रीय भाव १७३ उसका ज्ञानभाग  
 और संकटाचार्य ९४ उसका नीति  
 भाग और बुद्धि ९४ उसकी कथा  
 का तात्पर्य १७९ उसके सम्पन्न से  
 काम १७८ उसमें विचार भाग  
 ९४ और गीता १७८ और बर्धन  
 १८ कठ ९५ (पा टि ) १४  
 (पा टि ) १५९, १६१ १७८  
 २१४ (पा टि ) ३ १ (पा  
 टि ) छात्रोप्य ८९ प्राचीन ९४  
 १५ प्राचीनतर १७८ मुष्क  
 २९९ (पा टि ) खेतासुतर  
 ४४ ५८ (पा टि ) १ ७  
 (पा टि ) २८४ (पा टि )  
 ३३७  
 उपमान ११६  
 उपवीमिता उसका आधार १९६  
 उसका चरम बिन्दु २७ और  
 भाष्यारिभङ्गा १९९ और नैतिक  
 नियम १ ६ बुद्ध बुद्धिकोण  
 १९९ मध्य की बनीटी नहीं  
 १६  
 उपवीमितावादी १९६ १९८ अविदेशी  
 २६ आपार १९९ और गमात्र  
 १९७ नास्तिक २९९ नियम तथा  
 गमात्र की स्थिति १ ७ नास्तिक  
 १७४  
 उपासना भाष्यारिभङ्ग ५७ उपवीमिता  
 ११८ और निमित्त कारण १ १  
 विज्ञानोपवीमिता ११८

उपासक उसकी क्रमोन्नति का स्वीकार्य  
 ६१ और उपास्य ६२  
 उपासना शैव ५८ -भारता २८९  
 निबिधेय की २८९ पूर्वज की  
 आत्माओं की २९२ प्रतीक ५८  
 मृत-मेत की २९४ मृत व्यक्ति  
 की २९२  
 उपास्य शैवता तथा मृत पूर्वज ८२  
 ऊर्ध्व भी ३ ७  
 ऊर्ध्व उसका परिष्कार २६६ संवा-  
 रणवाद १ ५  
 ऋग्वेद ५ प्राचीन १३४ संहिता १९२  
 ऋचा १९४  
 ऋषि १६८ २७७ ३ १ उनका  
 सत्यानुसंधान १७२ उसका अर्थ  
 २४१ उसकी परिभाषा १९४  
 अस्तित्व ५८ तथा नियम का आवि-  
 षकार २४२ प्राचीन ७९४  
 विचारों का द्रष्टा २४१  
 एकरत्न २१३ उसका भाव २४ उसकी  
 और १४६ उसकी स्रोत २१,  
 २३८ उसकी प्राप्ति २३८  
 उसकी रसा ९४ ऊर्ध्व-नीच में  
 १५७ और मन २८ अस्तित्व में  
 १५७ शैवता और मनुष्य में  
 १५७ भर-भारी में १५७ भाव  
 २८४ भासक २८ वस्तु के  
 अस्तित्व में १५७ आस्तिक  
 नहीं (बौद्ध मतानुसार) २८  
 एकरत्नद्वयी पुरुष १५७  
 एकरत्नद्वितीय ८७  
 एकरत्नवाच ८२ २३२ गूढक भाव  
 का आगम ८३  
 एहविन आर्नस्ट १५९  
 एही धीमती ३८७  
 'एविकल कल्चर मीमांसना' ३०१  
 एवम् २६४

एनिसक्वाम ३४१, ३५५, ३५८,  
३८४, ३८६, ३९१

एनी वेसेन्ट, श्रीमती ३०९

एलिया २३१

एलोहिम (Elohim) २३१

एवाँन्स्टन ३९१

एगिया २०४, ३११, वासी २३१

'एगिया की ज्योति' १९४, २५७

ऐक्य, उसकी प्राप्ति २३८

ॐ, वेद मे उसकी महिमा १७०

'ओडिन' देवता १६९

ओलि बुल, श्री ३९१, श्रीमती ३९१

ओल्ड, श्री ३७६

'कट्टर' ३११, पादरी ३४२

कट्टरता ५६

कठोपनिषद् ९५ (पा० टि०), ११३  
(पा० टि०), १४० (पा० टि०),  
१५९, १६१, १७८, २१४ (पा०  
टि०), उसकी भाषा १७८

कथा, नचिकेता और यम की १६१-  
६५, माया और नारद की ७५-६,  
रोम के घनी की १६९, सिंह और  
भेड की १८, २३६, २६०-६१,  
हरिण और कुत्ता की १५५

कथा-नायक २४०

कनाडा ३३४

कन्फ्यूशस १९७

कन्याकुमारी ३३८

कबीला, उसका देवता ६३, उसका  
रक्षक ६३, और प्रेम ६३

कबीलीय भाव ६४

'कर्मशियल एडवर्टाइज़र' ३४३

कर्ण-यन्त्र और श्रवण ज्ञान ११०

कर्तव्य-भाव ६४

कर्नल आल्कट ३८२, हिगिन्सन  
३४७, ३९०

कर्म, अशभ २७, उसका परिणाम

२२९, उसका फल ११४, १२०,  
उसकी महत्ता २७, -काण्ड २५३,  
२५९, -काण्ड और वाह्याचार  
२४०, क्रियमाण २१९, दोष  
१२०, पाप २०९, पुण्य २०९,  
पूर्व और विचार १५१, प्रारब्ध  
२१९, फल ११८, १४०, १५४,  
१५७, भूमि, सर्वश्रेष्ठ स्थान  
२७, सस्कार ११७, सत्  
और उसकी शक्ति का क्षय  
२७

कलकत्ता ३३३-३४, ३४२, ३४४-४५,  
३५४, ३६२, ३७५, ३७७, ३७९-  
८१, ३८३ ३९४

कलचिस ४८ (पा० टि०)

कल्प २२, २६

कविता, उसके द्वारा अन्त स्फुरण  
९४, और विज्ञान ९४

काम और काचन ३५०, और क्रोध  
और लोभ ७, -वासना १५८  
'काम के आदमी' ५६

कारण, उच्चतम, आदिम और दूरवर्ती  
परिणाम २८२, उसका स्थूल  
रूप मे आविर्भाव १०२, उसमे कार्य  
की सभावना निहित २८२, और  
कार्य अभिन्न १०३, कार्य के भीतर  
वर्तमान १०३, निमित्त १०१,  
परिवर्तित रूप मे कार्य २०८,  
शृंखला २८२

कारणता का सिद्धान्त २५५

कार्य, असत् १२१, उसकी परिभाषा  
१८, उसके करने की समर्थता  
१५३, उसके दो अश ९२, उसके  
लिए कारण अपेक्षित २०५, और  
कारण १०१, और कारण मे मौलिक  
भेद नहीं १२४, और विचार १८,  
१५१, कारण का रूपान्तर मात्र  
१०३, २८२, कारण का व्यक्त  
रूप १२४, कारण से मित्र नहीं  
१०२, २०८, पूर्ववर्ती कारण



कौ आबुति मात्र २८२ प्रवृत्ति  
 ६७ एत् १२१  
 कार्य-कारण ११ नियम ८६ २१६,  
 २१९, २२२ क्मी पीवार ७४ बाव  
 १ ८५ ६, ९ १२९ २२२  
 सम्बन्ध १२९ ३ १८४ (देखिए  
 निमित्त)  
 कास, आत्मा में अवस्थित ११२  
 उसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं ९  
 उसकी उत्पत्ति ११२ उसकी  
 बारणा ९ और विचार ११२  
 रेश और निमित्त ९ दो बटनाओं  
 पर निर्भर ९ मन की अवस्था  
 पर निर्भर ९ मूढ ९ सर्व  
 संहारक ७६  
 कासी ३४८ (देखिए अनेकानन्द)  
 काशीकृत्य ३६२  
 काशी १४२ ४३ २९७  
 किडी (सिगागरेकु मुहासिर) ३२१  
 ३२५, ३५८, ३७८ ३९४  
 कृष्ण ७५ २५३ ३२४ ३२९,  
 ३६ ९१ मयवान् ६१  
 कृष्णस्थानी अम्बर ३५७  
 कुक एव सन्ध ३९३ कम्पनी ३१  
 ३५५  
 कुमारी आर्षर स्मिन् ३८९ ईसाबेल  
 मेककिडली ३८४ ३४६ फर्नाडी  
 ३८९ फिलिप्स ३८५ मेरी हेल  
 ३३३ ३४१ ३७२ ३८५  
 सीराब ३१३ स्टॉकहूम ३८६  
 हेरियट हेल ३८५ हेलेन मॉरल  
 ३४१ हौ ३८७ ३९ ३९२  
 कुरान २३५, २४२ सरीऊ २७९  
 कुसुकार २ १८७-८७ ३७७  
 उसका फल १५ (देखिए जन्म  
 विषयास)  
 केनिल्वर्ष ३९  
 केन्निज ३९२ बुनिवसिटी ३४६  
 केदावचम सन ३५४ (पा टि )  
 ३७६

कंडमस ४८ (पा टि )  
 कंबोस्वि ३४  
 कंटरबेरी ३१४  
 कोरा ३८७ स्टॉकहूम ३९  
 'कोरिनथियन सन्धे' ३१७  
 कर्मों ८६ प्रश्न का अर्थ ८७ माया  
 में नहीं ४९  
 कमविकसित बीज ही मूल १२४  
 कमविकास १३४ ५ ९२ उसकी  
 प्रक्रिया १२६ उसकी प्रक्रिया  
 में अमूम-निवारण १३६ उसकी  
 व्याख्या १२४ उसके पूर्व कम  
 संकोच १२४ उसके साथ कम-  
 संकोच की प्रक्रिया ८ और कम  
 संकोच ८ १२३ उत्प १२६  
 प्रक्रिया ११६  
 कमविकासवाद ९१ १ ३४ १७६  
 उसकी व्याख्या १२३ उसके पहले  
 कमसंकोच १२३ कमी मूम से  
 नहीं १२३ (देखिए विकासवाद)  
 कमविकासवादी ७ १ ४ विद्यान् ७  
 कमविकासशील मूलाका १ ४  
 कमसंकोचित १ ७ मूल ही बीज १२४  
 कमसंकोच ८ १ ३-४ १२३ २४  
 उसकी परिभाषा १२३ उसके  
 साथ कमविकास की ११६ तथा  
 कमविकास-उत्प १२६ प्रक्रिया  
 ११६ बाव १७६  
 काइस्ट, बीसस २७२  
 क्रिया-कलाप और बाह्य अनुष्ठान  
 १८३  
 क्रियाकाण्ड १८८  
 'क्रियेयान' २ ८  
 क्रियेय ३२९ कर्मों का उपदेशक ३२९  
 मांसमोनी ३२८  
 काइ व्यष्टि ३  
 खगील विद्या २१९ ३६६  
 खेतड़ी ३१३ ३१७ ३४१ ३४३  
 ३५३ ३५६, ३९३

गगातट ६,५९  
 गठिया की बीमारी और जीवन के  
 विरुद्ध भाव ४९  
 गणितशास्त्र १२३, २५१  
 गणितीय और निरपेक्ष निश्चय १२६  
 गणितीय क्रम ५२, ६५, १७५, और  
 ज्यामितीय क्रम ५२, ६५, १७५  
 गतिशील (dynamic) २२  
 गति, मसार की और माया ५०,  
 सर्वत्र मापेक्ष १२  
 गन्धर्व लोक १४२  
 गर्नसी, कुमारी ३८६, डॉ० ई० ३७८  
 गाँधी जी ३४५, वीरचन्द्र ३०९  
 गाँड १४८, २४३ (देखिए ईश्वर)  
 गार्गी ३६१  
 गिरीशचन्द्र घोष ३३४, ३४४  
 गीता ७८, ९५, ३०२ (पा० टि०),  
 ३२९, ३७३ (पा० टि०),  
 उपनिषदों से सगृहीत पुष्प-गुच्छ  
 १७८ (देखिए भगवद्गीता)  
 गीति-काव्य १७९  
 गुह्यकार्ष्ण ११५, २०३, २८१,  
 उमका नियम ११, उसका सिद्धान्त  
 २४२, २८०, शक्ति ७४  
 गुरुदेव ३२२, ३३३, ३३६, ३३८-  
 ३९, ३४४, ३४९, ३५२, ३५६  
 (देखिए रामकृष्ण)  
 गैलीलियो २४२  
 गोपाल ३५३  
 गौतम बुद्ध ३९५  
 ग़डी, श्रीमती ६८  
 ग्रन्थ और धर्म २३४, द्वारा ईश्वर  
 सृष्टि नहीं २३४, मनुष्य की रचना  
 का वहिर्गमन २७९, महान्,  
 उसकी प्रेरणा, ईश्वर २३४  
 (देखिए पुस्तक)  
 ग्रीक ६०, ६५ (पा० टि०), २३१,  
 पौराणिक साहित्य ४८ (पा० टि०)  
 ग्रीनेकर ३८४, ३९१, सराय ३८५  
 ग्लैडस्टोन, भारत का ३५३

घृणा ७८, १६८, ३१०, -भाव ९२  
 'घृणित कीड़ा' ३३७  
 घोष, गिरीशचन्द्र ३३४, ३४४

चक्रवात, उससे आवागमन का एक  
 दृष्टांत २१७-१८  
 चण्डी ३५१ (पा० टि०)  
 चन्द्र २२, ३१, ३३, ६३, ८२, १०२,  
 १३१-३२, १३९, १४१, १५७,  
 २१२, २८५, ३५१, -सूर्य ४२, लोक  
 २६-७, ३५, ४५  
 चरित्र, अवतार ५८, ऋषि ५८, और  
 सस्कार २१७, -गठन ३२६, देव  
 ५८, -निर्माण १९९, प्रेत ५८,  
 महात्मा ५८

चाण्डाल ३३७-३८, ३५७  
 चारुचन्द्र वावू ३९३  
 चार्वाक, उसके अनुसार धर्म ६९  
 'चिकित्सा' ३८७  
 चित् २८२  
 चित्तवृत्ति, उसकी साधना देह से आरम्भ  
 २५६

चित्र, उससे अधिक आनन्द १५३  
 चिन्तनधारा, आधुनिक २८१  
 चिन्तन-शक्ति ८, शरीर में व्यक्त ८  
 'चिन्तनशून्य प्रमाद' २७८  
 चीन ८, १९१, ३७१, वाले १९२  
 चीनी २५७  
 चेतन और अचेतन स्तर २७२  
 चैतन्य ३६०, राज्य ३८९  
 चौम्बक १६०  
 च्यापन, श्रीमती ३८६

छान्दोग्य उपनिषद् ८९  
 छुआछूत ३१६, मार्ग ३६३  
 छूतमार्ग ३३७

जगत्, ४१, १०२-३, अशत शुभ  
 और अशुभ १३८, अन्तर १५९,  
 अव्यात्म ३१, अपरिणामी आश्रय

२९ अविद्यामय १५८ आध्या-  
त्मिक ८५, २६४ आनन्दमय १५४  
आमुषी १५४ इन्द्रिय २८, २६४  
ईश्वर का शरीर २९ उसका अर्थ  
भाव ३९ ३ उसका उपकार  
१९ उसका उपादान और निमित्त  
कारण १७ उसका केन्द्रस्वरूप  
१५८ उसका प्रत्येक अणु अणु  
से सम्बन्ध ८६ उसकी अनन्त शक्ति  
मनुष्य के भीतर २ उसकी उत्पत्ति  
का प्रश्न ८ उसकी रीति ५१  
उसकी मुक्ति में विभाम और रूप  
८ उसकी वस्तु-बर्ण की अवि-  
श्वसित ७ उसकी सृष्टि १५९  
उसके आचार्य ७१ उसके परे  
तत्त्व २६८ उसके प्रति अनासक्ति-  
भाव ११४ उसके रहस्य-मीमांसा  
की चेष्टा ७४ उसके नियम में  
मानव-वाचना १५ उसमें अस्मत्  
और बुद्ध का कारण १८  
उसमें बुद्ध-भाव विद्यमान १४८  
उसमें परिणाम और अपरिणाम  
३ उसमें स्थित नष्ट भाव ११४  
एक कारागार ७७ एक बीमत्स  
प्रहास १७६ एक रमभूमि ११४  
एकस्वरूप ३ और ईश्वर १५  
और कर्म ३६ और जीवन १४५  
और ज्ञान ३६ और पदार्थ १२५  
और मनुष्य ७३ और मानव  
१७५ और क्षुभ अक्षुभ ५४ गौतम  
२८८ अङ्ग ११ ३१ ८५, १५९,  
१६२ अङ्गता अज्ञान से पूर्ण ७२  
जात १६ जात और बोध २६४  
तथा बोधोपपन्न प्रवृत्ति १९  
बुद्ध २९ बुद्धमान ३४ ईश  
ज्ञान का फल ३ न आशावादी  
न निराशावादी १३८ मस्तर  
३ ५ माम-व्यात्मक २८७  
नित्यता और स्थिरता नहीं २९  
पंचेन्द्रियघात ३ पदार्थ स्वतंत्र

नाही ८७ परिणामहीन ३०  
परिवृत्तमान २८ प्रपञ्च २२,  
२९, १०७ १३४ प्रवाह २९४  
पूज-माता से उका मुर्दा १७३  
बहि ११६ बहुत्वपूर्ण ७२ १११  
बाह्य ३ १ ८ १३४ १३८  
१४१ १५९ ६१ बाह्य उसमें  
असीम वस्तु की शोभ १३४  
बाह्य और मानव-बुद्धि २५२  
बुरे-भले का मिश्रण १३९ ब्रह्म  
का एक विशेष रूप ९१ ब्रह्माण्ड  
१ १ १ ३ १ ६ भौतिक  
१९७ २८७ मन की अणुमूर्ति और  
पदार्थ सत्ता ४४ (पा टि )  
मनो ३१ १६१ मिथ्या १५  
वस्तु ३ विचार १२९, २३७  
बैचिन्मय १३ श्रुतला ६६  
सत्त्व की एक छाया मात्र १७६  
समस्या १६१ सहीन १५ सापेक्ष  
२८६ सूक्ष्म ८५ १ ३ स्वप्न  
सा ११४ (देखिए संसार)

अणुब्रह्माण्ड ३८८  
अज्ञान ३७९  
अज्ञान ही ३३१  
अज्ञानता की महिमा ३ ३  
अङ्ग उसका अनुकरण और माया ७४  
और भेदन २३८ २८३ और ब्रह्म  
९३ तत्त्व ९ १ ५, ११७ १२३  
पदार्थ १३५, २८३ २९२ परमाणु  
१३५, २८३ २९२ -रूप प्राप्ति की  
उत्पत्ति १८५ वस्तु १११ सिद्धांत  
२६१  
अङ्गबाह ६९, १८५ और आत्मबाह  
१८५  
अङ्गबाही ६८ ९, ११८ १२६ अज्ञ १६७  
अङ्गता और अज्ञान ७२  
अज्ञान एवं स्वाधीनता १७९  
अज्ञान उसकी अज्ञानता और बोध  
बर्ण ६४ उसकी उत्पत्ति नष्ट  
उपपत्ति ३६१ विचारहीन ३४९

जनसमूह, उनके दुःख-कष्ट ५१  
 जन्म और मरण २०६, २१८  
 जन्म और मृत्यु १३०, -मृत्यु १०५,  
 १८२, -मृत्यु प्रकृति में ३३  
 जन्मजात-प्रवृत्ति ११५, २७२, इच्छा  
 का भ्रष्टभाव ११६, उसका तत्त्व  
 ११६, और दिव्य स्फुरण २७२,  
 कार्य का क्रम-सकुचित भाव ११६  
 जप-माला ३५०  
 जरा-मरण २१०  
 जर्मन दार्शनिक १७५  
 जर्मनी ५४, प्राचीन १९२, भाषा  
 २०२  
 जीवनमुक्त, उसकी परिभाषा ३६  
 जात-पात ३२१, ३५१  
 जाति, दुर्बल १७५, -श्रया ३६५,  
 भेद ३११, ३२५-२६, ३२९, -भेद,  
 अर्थगत ३६८, यूरोपीय ९५,  
 विभिन्न और ईश्वर सबधी सिद्धांत  
 २३२, सबल १७५, सेमेटिक  
 २२७, हिन्दू ९५ (देखिए राष्ट्र)  
 जातीय जीवन ५५, दोष ३३९  
 जॉन हेनरी राइट, प्रो० ३०७, ३४४,  
 ३४७, ३५३, ३५८  
 जापान ३७१  
 जार्ज ३८२  
 जार्ज डब्ल्यू० हेल० ३१४, ३१९, ३३४,  
 ३७२, ३७८  
 जिउस देवता ४८ (पा० टि०)  
 जिहोवा ६१-२, ६४, १४८, २४३,  
 २७९  
 जी० डब्ल्यू० हेल, श्रीमती ३८१  
 जीव ५७, २२२, ईश्वर की दया का  
 अधिकारी १२०, क्षुद्र ३४८,  
 परिणामी १२, प्रातिभासिक और  
 यथार्थ ११, मर्त्य १४३, -विज्ञान  
 २६५, व्यावहारिक १५, -शरीर,  
 उच्चतर या निम्नतर ११९,  
 -हिंसा २०७  
 जीवन २८०, अनन्त सागर ७६,

अभिव्यक्ति का रूपविशेष १२९,  
 आनन्दपूर्ण और क्रियाशील १५४,  
 उसका अर्थ ५७, उनका एक और  
 नाम १२९, उसका क्रम २२१,  
 उसका चिह्न ३८३, उसका नियम  
 १०२, उसका मूलभूत सिद्धांत  
 २६५, उसका लक्ष्य ९२, २५४,  
 उसका वास्तविक रहस्य १४५,  
 उसकी अन्तरात्मा १४५, उसकी  
 उन्नति का साधन ३२१, उसकी  
 दो स्थितियाँ २२३, उसकी  
 व्यर्थ वासना १७६, उसकी सभा-  
 वना वीजाणु में १२४, उसके अग-  
 स्वरूप ५७, उसके पीछे मृत्यु  
 १२९, उसमें एकत्व नहीं २८,  
 उसे ईश्वर से अनुप्राणित करने का  
 प्रयास १५४, एक कठोर सत्य १४०,  
 एक महान् सुयोग ३९०, और  
 आनन्द १४७, और जगत् ७९,  
 और जगत् दुःखमय १४८, और  
 मृत्यु ७८, १२९, और विचार  
 ६१, और व्रत १२३, जातीय ५५,  
 -दृष्टि १४४, नैतिक १६८, पचे-  
 न्द्रियगत १४८, पचेन्द्रियग्राह्य  
 पाशविक ३४५, प्रकृत १७६,  
 -बल ही भवरोग की दवा १८९,  
 भावी १२३, भौतिक १४८,  
 महान्, उसका लक्ष्य, ज्ञान २७०,  
 मृत्युहीन ५३, वर्तमान, विगत  
 का परिणाम २१८, विराम नहीं  
 जानता ४७, -व्रत ३०७, शाश्वत  
 २६९, -सप्राप्त १२२, सत् और  
 असत् का सम्मिश्रण ४६, -समस्या  
 की वास्तविक मीमांसा १३१-३२,  
 सांसारिक ७८, सामाजिक ८१,  
 सेवापूर्ण १५४  
 जीवाणु कोश ११७-१८  
 जीवात्मा २६, ८१, ९१, १६१, १८१,  
 २०४, २३३, उसका अमरत्व

१२२ उसका सक्रोध और विवास  
 १८१ उसकी स्वाधीनता ११९  
 और ईदवर ८३ और धर्मस्त्री  
 बिमान २५२  
 बीबिमार ८, १ ४-५ उच्चतम मानव  
 की कममकुण्डित अवस्था १०५  
 निम्नतर १२४  
 बीसत आइस्ट २७२  
 जूनामङ्क ३३४ (पा टि) ३५३  
 जे ज वैष्णवी धीमती ३४३  
 जे स्पेल ३ ७  
 जन्तु ३ १११  
 जनी बहल ३८४  
 जिन धर्म ३०९ प्रतिनिधि ३१३  
 जैमल ४८ (पा टि)  
 ज्ञान ८७-८ और ज्ञय जगद् २६४  
 ज्ञान ५६ २६२ २\* अतीन्द्रिय  
 १९६ जनस्य ९८ अनुभव से  
 जल्पन १२२ अनुभव से प्राप्त  
 ११५ अमृत २५३ अस्तित्व या  
 मानस्य ११२ आत्मा के स्वल्प  
 ११२ आकाश ३९६ उच्चतम  
 ८ उमता ब्रह्मास १९ उमका  
 अर्थ २४४ २७५, २८१ उमका  
 कमनी आणय २८३ उमता धन  
 ४६ उमता छ्द्राव ९८ उमता  
 कन १५ उमता वीर २५१  
 २७२ उमती उन्नति १६ उमती  
 क्या जापोपिता १५ उमती  
 कुमती व्याख्या २८१ उमती  
 कृति और मन की शक्ति ३२  
 उमती प्रिया ११ उमती बिना  
 कृति अवस्था ६ ६ एक विम्व  
 अवस्था १५ और अनुभव का  
 बहुर १९६ और अनुभव लय  
 २८७ और आनन्द ६६ और  
 आनन्द अन्तःप्रकाशित ८ और  
 प्रमत् १६ और प्रमत् अनुभव  
 १६६ और प्रमत् ८ और  
 दर्शिका १९ और धर्म ११५

कर्मोपेय कर्मिकरुण का पर्याय २८१  
 कङ्क का घम नहीं ११ तथा  
 मुख मुक्ति की ओर २५४  
 मुख और मुख का ४९ बर्ता का  
 ६ ब्रह्म का २९ द्वारा आनन्द  
 प्राप्ति २७ धार्मिक उसका  
 अंतिम सख २७५ परम २७७  
 परम और आनन्द २७ पूर्वोक्त  
 तथा लाभ १६ प्राप्ति २१४  
 बुद्धि का आधार ११ भक्ति  
 और याग ३६३ मीठिक १६  
 मानव उसका आद्यम २३८  
 मानवता संबंधी २३७ मानवीय  
 ६६ १२३ मानवीय उमती  
 सीमा ६७ मानवी कुम्हार ३५  
 मार्ग का गुण और अवगुण ३२५  
 मिथ्या ३४ या छद्म प्रमत्ता ११६  
 योग १४३ रूप का ६७ रूप  
 पक्षि १२ लाभ १४ सौमिक  
 २८ सौमिक तथा धार्मिक  
 २७७ विज्ञान बाह्य २७८  
 विभिन्न धर्मप्रणो म २५९ विषय  
 ११ वैज्ञानिक ९८ २७५  
 गण्ड का अर्थ ८८ गारुड २७१  
 सखा २९१ सर्मा १४ गांवा  
 रिक ७७ मापेन ३२ नामकस्य  
 पूर्ण अनुभव १२२ -सूय १  
 स्वप्रकाश ११०-१२  
 ज्ञानी उमक किं नच आनन्दकम्  
 १५७ पुण्य १३३ १४१  
 'श्रेय' ८८  
 उपाधिर्णय क्रम ५२ ६५ १७९  
 उपाधिर्णय ६४ १ परार्थ १  
 उपाधिर्णय ६ २७७  
 हांसल पुत्र १७७ हा ३२२  
 निरुक्त ७ ११६  
 निर्गतरु ३८४  
 टैना छद्म ३ ७ धीमती ३१३  
 टैनाम का मय १५ ९

'उन्न लॉ प्लेनी' ३८४  
 टफगिन, रेडी ३७१  
 डॉ० ई० गनमी ३७८  
 डाइनेमो २२०  
 छाप्रना देवी ३१८  
 डॉयमन, प्रोफेसर २०२  
 टारविन ७  
 टिट्रॉएट ३३०, ३३२-३३, ३३९-  
 ३४० (पा० टि०), ३४१, ३४३,  
 ३५८, ३८१, ३८३, ३८६, मिगि-  
 गन ३४३  
 डियरवॉर्न एवेन्यू ३१३-१४, ३१९,  
 ३२५, ३३४, ३५२-५३, ३५८,  
 ३७२, ३७४, ३७७, ३८०,  
 ३८२  
 तत्त्व, अतीन्द्रिय १६७, अमिथ २५५,  
 जड ९, ज्ञान ३३६, परम १६५,  
 २१६, २३३, २४५, परमार्थ  
 १६५, परलोक १६५, प्रकृत  
 १८०, बुद्धि २५५  
 तत्त्वमसि १७, ४२, ८९, १३१, २८४  
 तर्क और विचार १६६, -शास्त्र २८८  
 तारक दादा २६२ (देखिए स्वामी  
 शिवानन्द)  
 तिव्रत १३६  
 तिर्यग्जाति १००  
 तीर्थकर ३२९  
 'तुम' १४, ३०, २१३  
 तुलसीदास ३७२  
 'तू' २५९, २८४, २८९  
 'तू ईश्वर है' ८९  
 त्याग १७६, उसका प्रकृत अर्थ १५३,  
 उसकी माँग १९६, उस पर नैति-  
 कता आघारित १९५, उससे  
 विभिन्न धर्मों का सामजस्य २०१,  
 और नैतिक विधान १९५, नीति-  
 सहिता का मूलमन्त्र १७६, पूर्णता-  
 प्राप्ति का साधन ५५  
 त्यागी साधु ३७०

त्रियोनॉपिकल मानायटी ३८२ (पा०  
 टि०)  
 त्रियोनॉफिन्ट ३७६, ३९३, हिन्दू  
 ३८२  
 धेमागी देश ४८ (पा० टि०)

दण्ड-पुस्कार १२०  
 दर्शन, आधुनिक १८५, उमकी उप-  
 योगिता १७३, और तर्क ९५,  
 और धर्म २४९, क्रिया १०९  
 दर्शनशास्त्र ५३-४, २९९, ३३८,  
 उमका मत १६९-७०, और प्रकृति  
 ३००  
 दानव और देवता ६७  
 दानव-पूजा २९४, -योनि २७  
 दार्शनिक, आधुनिक १२८, एव  
 महर्षि, उनका विश्वास २३१,  
 जर्मन १७५, पण्डित ४४, भाषा  
 ४४, मिद्धात १७५  
 दिव्य प्रेरणा २७३, स्फुरण २७२  
 (देखिए अन्त स्फुरण)  
 दिव्यातर (Transfiguration) २७२  
 दीवान जी ३६७, साह्व ३६५-६६  
 दुःख, उमका आगमन, वासना से १७४,  
 उसकी उपयोगिता १५१, उसकी  
 न्यूनता के लिए कर्म ५४,  
 उमसे शिक्षा १५१, और  
 अशुभ ५६, और ज्यामितीय क्रम  
 १३७, और सुख, परस्पर आश्रित  
 ५१-२, -कष्ट और घनवान ५१,  
 गठिया के समान १७४, -भोग  
 ५२, १४१, भोग, उसके भीतर  
 गरिमा १५१, -सुख और पशु  
 ६७-८  
 देव ३४, और असुर ३०१, चरित्र  
 ५८, जीवन ३७, -दासी ३३७,  
 -देह २७, -मानव १०५, २८४,  
 ३६७, -शरीर २६-७  
 देवता, उनके कार्य के उद्देश्य और  
 जिज्ञासा ६४, नीतिपरायण ६४,

प्राचीन ६४ संबंधी वारणा और  
 प्रकृति ८२  
 वैदिक ४२ प्राप्ति १३४ विभिन्न  
 पद का नाम मात्र १३४  
 विद्यमान २७  
 संबोधनात्मक २३१  
 संबोधनात्मक ८२  
 वेद्य \* आकार-उत्पत्ति का उपादान  
 १३५ उसका अस्तित्व ९  
 उसकी मूल्य का विज्ञान ५३ और  
 काष्ठ ४५, ९ २ १ और  
 काल माया के भीतर १३५  
 काल और निमित्त ४५ वर्षों का  
 १४ १४६  
 वेद्य-काष्ठ-निमित्त १०-१ ३१ ४६,  
 ८५ ६, ८९ ९ उसकी समष्टि  
 १ उसके नियम ६७ उसके  
 भीतर विशेषत्व ९ छाया  
 संप्रदा ९१  
 वेदाई, हरिदास विहारीदास ३२९ ३६४  
 वेद्य, आत्मा नहीं है ११ और मन ३  
 १७१ स्वरूप २५ (केलिए शरीर)  
 वैद्य या भाष्य २३  
 वैद्यी कृपा २४४ प्रेरणा २७२, २७४  
 वैदिक कष्ट ३८९  
 वीर्य उसका कारण ७  
 वन्द्य और संबन्ध ४ १३१  
 द्विवेदी मन्दिनाथ ३१३  
 वृत्त अचरणा २३३ तत्त्व १३८  
 भाव १३५, १३७ मिथ्या १३५  
 वृत्तवाह ९६, २ ४ २१२, २१४  
 १५ अपरिमाणित १८  
 वृत्तवादात्मक धर्म ९७  
 वृत्तवादी ३२३ ६ १८९-८८  
 २ ४ २ ९ उनका कथन ९६  
 उनका दृष्टिकोण ९६ उनका मत  
 २३ उनका विभिन्न सिद्धांत ९ ६  
 उनकी अधिक संख्या का कारण  
 ९६ उनकी ईस्वरसंबन्धी माय्यता  
 २ ४ उनकी आत्मा २ ८ और

अद्वैतवादी २५ भाग मिथ्या ३  
 धर्म २ ५ धर्म की लोक-प्रियता  
 का कारण ९७ धर्म प्राचीन ९३  
 धारणा १३५ पदके निरामय तथा  
 अहितावादी २ ७ भाव और  
 धर्मत् ३  
 धन तथा विकास ३६८  
 धर्म ५८ १४४ १९४ ९५, २ ५,  
 २८२, ३३७ ३८४ -अभ्ययन  
 १३३ २२८, २४३ -अनुयायी  
 २५८ -अन्वता ५५, २४१  
 -अन्वता का सूत्रपाठ २४१ -अभ्यु  
 दय और निःश्रेयस की सिद्धि ३२७  
 -अवच्छिन्नी २ ७ आत्म संघ  
 ३१६ -आचरण १७४ आत्मज्ञान  
 ही २४७ आत्मसाधक २१  
 इन्द्रियातीत भूमिका की वस्तु  
 २६१ २७१ इच्छाम २७८  
 ईसाई ५ १८२, २४ २४९  
 उदार, उसकी शक्ति २  
 उनका स्वीकार्य २२८ उनकी  
 शोषणा २७५ उनकी सत्यता २२८  
 उनमें तथ्य और धर्म १४९  
 उसका अन्वित्वास ७ उसका  
 धर्म वा परिभाषा ३२८ उसका  
 आत्ममूलक सिद्धांत १९१  
 उसका आचार पितर-भूषा और  
 भीम १९२ उसका आत्म  
 ६३ उसका आधिर्भाव प्रकृति  
 -भूषा से १९१ ९२ उसका उद्देश्य  
 ५८ उसका उपदेश ७९ उसका  
 एकमात्र पद ५ उसका एकमात्र  
 धर्म १५४ २५२, २७१ ३२८  
 उसका नाम आत्मा से ३२८  
 उसका शोध २७१ ९८ -८१  
 २८४ उसका पठन २४१ उसका  
 परम ज्ञान का दाय २७७ उसका  
 परमोद्देश्य २३४ उसका प्रत्य  
 शीकरण और उपाय २४८ उसका

प्रमाण, मनुष्य-रचना की सत्यता पर २७९, उसका प्रादुर्भाव २३२, उसका प्रारंभ ७८, १६८, १९१, उसका भाव ६४, उसका मूलस्रोत २७४, उसका यथार्थ आरंभ ५४, उसका यथार्थ विज्ञान २५१, उसका लक्ष्य एक ३०२, उसका वास्तविक बीज १९३, उसका विकास १९१-९२, उसका व्यावहारिक पक्ष २४८, उसका सार ३९, १६७, उसका सार-तत्त्व २३९, उसकी अभिव्यक्तियाँ और मूल धर्म तत्त्व ७०, १८२, २४३, उसकी आवश्यकता २०१, उसकी उत्पत्ति २५४, उसकी उदारता और महत्ता का परिचायक ६९, उसकी उपयोगिता २६९, उसकी एक स्वर से घोषणा ५, उसकी क्षमता २६९, उसकी तीन अवस्थाएँ २४०, उसकी नींव ३२७, उसकी पवित्रता एवं पूर्णता २०९, उसकी भित्ति ७९, उसकी मान्यता २५५, उसकी रूपरेखा ३२०, उसकी विनष्टता के प्रति भय २२७, उसकी शक्ति १९१, उसकी शिक्षा ३७०, उसकी शिक्षा, अनुभव-माध्यम से २५१, उसके गुण १९१, २०९, उसके विषय में महत्त्वपूर्ण प्रश्न २५५, उसके शाश्वत तत्त्व २७८, उसमें अद्भुत शक्ति २००, उसमें विश्वास और प्रत्यक्ष अनुभूति ३९, उसमें स्वाधीनता ७०, उसे न मानने से दुराई ३३८, एक, और साधना अनेक २५३, एकमूत, उसका सदेश २२७, एक सूत्र में मोती के समान २५२, एक ही आधार पर आधारित २३३, एवं देश ३४३, और अवर्ण ९४, १६८, और आन्तरिक मनुष्य १९८, और आनन्दमय जगत्

१५४, और ईश्वर १६८, और ईश्वर की धारणा ६१, और दोषारोपण ३११, और प्रेरणा-शक्ति १९१, और बुद्धि २७९-८०, और मानव-जाति १९१, और युग ६, और विशुद्ध विज्ञान १९८, और समाज ६८, और सिद्धांत १९४, २८५, -कार्य १८८, कुसस्कारपूर्ण ३६९, -गुरु २४६, २४९, २७५, ३२३, -गुरु एवं विचारक २७२, -गुरु तथा मार्ग २५०, -ग्रन्थ ५, १६७, २००, २०३, २१३, २४६-४७, २४९, २५९, २७९, -ग्रन्थ, उसका ज्ञान २३४, -ग्रन्थ को गढ़ते हैं २३४, ग्रहणशील होना चाहिए २००, चार्वाक के अनुसार ६९, -जगत् ७०, जैन ३०९, ज्ञान तथा दर्शन २०३, तत्त्व १६६, १७४, तत्त्वज्ञ १०६, तत्त्वत एक २२८, तथा आध्यात्मिकता १९७, तथा रोटी-कपडे की समस्या २६९, दूत २७९, द्वैतवादात्मक ९७, द्वैतवादी, प्राचीन ९३, निम्नतम ५८, निरर्थक २७८, पुराना और नया केन्द्र ३६६, -प्रचारार्थ सन्यासी ३९५, -प्रणाली १८३, -प्रतिनिधि ३६७, प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय १६६, प्राचीन ६१, १०८, वौद्ध ९४, १८३, २४०, २४९, २५७, ३०८, ३९५, ब्राह्मण १९४, भगवत्प्राप्ति ही २५३, भविष्य का ९४, -भाव ७०, -भाव, आदिम ६२, मत ५३, २९४, ३२६, मत और मन्त्रदाय-समूह ३००, मत, श्रेष्ठतम ३००, -महामाता ३०७-९, ३१२, ३१४, ३१९, ३४२-४३, ३५१, ३८३, मानव-मस्तिष्क की आवश्यकता २०८, मूलत एगिया से निम्न २३१,



मूल्य सभी एक २३५ स्त्री  
 विज्ञान २५२ -साम ३६२  
 लोकप्रिय २०८ वर्तमान उत्सवा  
 हावा १९४ वर्तमान जीवन की  
 वस्तु २०४ वर्तमान में मनुमति  
 २४६ विज्ञान ५१ विज्ञान और  
 अन्वेषक-पद्धति २०८ विज्ञान और  
 उसमें निश्चयत्व का अभाव २५१  
 विषय २४९ विस्वास ३१२  
 विश्वास की वस्तु नहीं होने और  
 बनने की २०६ -विषयक हमारे  
 विचार २५५ वेदान्त ६८  
 -मास्त्र हिन्दू ३ २ संघ २ २  
 -संघ और राष्ट्रवादी २५१  
 संघटित जनता मत और सत्ता  
 पक्ष १९४ सुन्ने २३५ सतीत्व  
 ५५ सत्य की ओर में २६८  
 सनातन ३१६, ३४३ -समा ३७५  
 ७६ सभी सत्य ३२४ समाज-  
 सुधारक से उसका मतलब नहीं  
 ३२८ सम्पूर्ण मानव-जीवन में  
 परिष्कार २६९ सम्प्रदाय २८९  
 २९१ सर्वश्रेष्ठ प्रेरक शक्ति  
 १९९ सर्वोच्च लोक का २५४  
 -साक्षात्कार ही एकमात्र मार्ग २४६  
 सामान्य केन्द्रीय भित्ति ७९ सार्व-  
 भौम २३४ ३२६ सिद्धांत  
 मस्तिष्क की बात नहीं २३४  
 स्वभावतः पवित्र २ ९ स्वार्थो-  
 न्मूलक ही २५४ हिन्दू ३ ९,  
 ३२८ ३४३ ३६२ ३६६ ३९५  
 जर्मपाठ ३१३ ३३६ ३५६  
 यमधर्म ३७ ३२६  
 बारता अभीसनी अताबी उत्तरार्द्ध  
 की ९३ प्राचीन और वर्तमान  
 ६१ -साम २ ४  
 धार्मिक अनुभव २४७ अनिष्पत्ति  
 २ १ आरम्भी २४६ आर्य  
 २ उपदेश ९७ उपासना  
 २६९ उपासना ३८६ उर्वरता

२ २ उसके लिए कुछ प्रतिष्ठा  
 ७९ उसके होने का अर्थ २४६  
 एकता का सम्बन्ध १९१ शेष  
 २४३ अन्व २४७ चिन्तन १९९  
 २ २ ३३१ चेतना २४१  
 जीवन ३६ तत्त्व २०४ तत्त्व  
 २४७-४८ नियम २ पद्धति  
 २५८ परिभाषा १ ६ पुस्तक  
 २५९ प्रकृति २७२ प्रकिया  
 २३७ प्रकृति की विधि २३७  
 बनने के लिए उपाय २४८ माव  
 ३२ ३२३ भूरा २३७ सहर  
 ३६६ वाद-विवाद २५२ वास्त  
 विक ७९ विकास ९६ १९१  
 विचार २ २४१ २६४ ३१९  
 विचार-समूह ३६ व्यक्ति १७४  
 विद्या २५१ ३६९ उद्विग्न २५१  
 संस्कार २४८ सत्ता ३४ सत्य  
 २७५ सिद्धान्त २४२ सोपान और  
 मानव-मस्तिष्क २ स्वर्णता ६८  
 ७ स्वाधीनता और भारत  
 ६९  
 धार्मिक एवं अधार्मिक विचार ३७८  
 धार्मिक जीवन ३७८  
 धार्मिकता उसकी परत २३५  
 'धार्मिक हत्या' ३७८  
 'धर्मों की सहानुभूति' ३९  
 ध्यान तथा एकाग्रता २५६  
 धर्म और विषय १९६  
 धर्म-कर्म १ ९  
 धर्म-विज्ञान २६५  
 धर्मवेदा १६१ १६३ ६५, १७  
 धर्म ३३४ ८५, २९४ २९८ ९९,  
 ३३७ ३६३ समका द्वार ३३७  
 धर्मपु २६  
 धर्मसिंह ३५५, ३८९, ३९३  
 धर्मसिंहधारिण, गाय बहादुर ३७१  
 धर्मसिंहधर्म ३१ ३१२  
 धर्म ३३४ (केलिए विश्वकामन्द)

नव व्यवस्थान १५५, २२९, २३२, २८४  
 नाज्जरथ २४९, २७२, २९०  
 नाम और रूप ३०, ९१, २११, और  
 शरीर २११, भ्रमात्मक है ३१,  
 -यश ३१०, ३१२, ३१८, वस्तु  
 सबधी मन की धारणा ९१  
 नाम-रूप ३१, ३७, उसकी माया ३१,  
 उसमे भेद ३१  
 नायक, आदर्श २४०, पुराण के महान्  
 नैतिक पुरुष २४०  
 नारद २७७, और माया की कथा  
 ७५-६  
 'नारियो के अधिकार' २५८  
 नारी, उसकी पूजा ३३७, देवी स्व-  
 रूपा ३१८, घर का आधार-स्तम्भ  
 ३१७ (देखिए स्त्री)  
 नावेंवासी, उनकी स्वर्ग सबधी धारणा  
 १६९-७०  
 नाश का अर्थ १०१  
 नास्तिक ६८, ९७, २३४, २७५,  
 आधुनिक २०२ (देखिए अनी-  
 श्वरवादी)  
 निमित्त ८५-६, और जीवन ५५,  
 कारण १०१ (देखिए कार्य-कारण)  
 नियम, उसका अर्थ २६१, उसका पालन  
 २६१, उसका पालन और मनुष्य-  
 प्रकृति २९४, एकत्व का १३८,  
 और प्रतीक २३५, और भविष्य  
 १२५, गणितीय क्रम १३७,  
 ज्यामितीय क्रम १३७, प्राकृतिक  
 १५२, २६१, प्राकृतिक और  
 मानव-जाति ५९, भौतिक १९४,  
 सामाजिक १९६  
 नियात्रा ३३५  
 निरञ्जन ३६१  
 निरपेक्ष ब्रह्मसत्ता ८७  
 निराशावाद ४७, १३७, और आशा-  
 वाद, अतिवादी दृष्टिकोण २६७  
 निराशावादी ४६, ५०, ५२, ५७,  
 दृष्टिकोण २६७-६८

निरीश्वरवादी ९३ (देखिए नास्तिक)  
 निर्गुण, इष्ट देवता २८६, उसके विना  
 सगुण नही २८७  
 निर्वाण, अवस्थाविशेष १८३  
 निर्वाणषट्कम् १९० (पा० टि०)  
 निर्विकल्पावस्था १९४  
 निर्विशेष २८७, उसका बोध २८७,  
 उसकी उपासना और परिणाम  
 २९०  
 निवृत्ति, उससे धर्म का आरम्भ ६३  
 नीति, उसका अर्थ १७६, और दया-  
 धर्म १७६  
 नीतिपरायण और सामाजिक प्रतिष्ठा  
 १६८  
 नीतिशास्त्र १९५-९६, २६५, ३७८,  
 उसका आदर्श १९६, उसका  
 क्षेत्र १९७, उसका मूलतत्त्व २३९,  
 उसका सम्पूर्ण विधान १९६, उसकी  
 पृष्ठभूमि २३९, और आध्या-  
 त्मिकता २१४  
 नीति-सहिता, उसका तात्पर्य १५,  
 उसका मूलमंत्र १७६  
 'नेता' ३९४  
 नेत्रपट (retina) २३, १२७  
 नेफेल ४८ (पा० टि०)  
 नैतिक विधान १९५, सतोष ३५२  
 नैतिकता, उसका अर्थ ९२, उसका  
 विकास २३९, उसकी भित्ति २३९,  
 और पवित्रता २४०, सर्वोच्च ९७  
 नैयायिक प्रक्रिया १८७  
 न्याय-युक्ति ३९  
 न्यूटन २४२, २८०, उसका आवि-  
 ष्कार २४२  
 न्यूयार्क २१, ९९, १०८, ३३०, ३४१-  
 ४२, ३४४, ३४६-४७, ३५५,  
 ३५८, ३७५, ३७८-७९, ३८६,  
 ३९१, प्रदेश ३८५, वासी ३९२  
 'न्यूयार्क सन' ३४३  
 पंचभूत, उसकी समष्टि ८

पबिन्द्रिय ६५, २८७  
 पण्डित दार्शनिक ४४  
 पण्डे-पुरोहित २४६  
 पद्मार्थ उसकी अवस्था २५ उसका  
 अस्तित्व का कारण १७२ और  
 परमाणु १२५ कारणीभूत १२७  
 पद्म २२ ज्योतिर्मय १ देह  
 १ दुग्ध २२ रासायनिक ३५७  
 सान्त १३  
 परमेश्वर और ईश्वर ३३३  
 परम तत्व १६५, २१६  
 परम पिता २८९  
 परमहंस २६  
 परमाणुवादी २ ४ उनका अनुसार  
 प्रकृति २ ४  
 परमाणु-सिद्धांत २ ४  
 परमात्मा २१४ २३४ २३७ २९  
 ३२२ ३३३ ३६८ ३९  
 परमानन्द १९८ ९९ २ ६, २७०-७१  
 परमार्थतत्व १६५ विज्ञान १६६  
 परमेश्वर २६ ३५२ ३५५  
 परब्रह्मत्व १६ भाव ३२  
 परापूर्वा ३  
 पराशक्ति ४६  
 परियामी पीप १२  
 परिचायक प्रचारक ३१८  
 परीपकार १५, २ ६ ३१२ उससे  
 पुष्प ३३७  
 पवित्रता और मुक्ति का प्रश्न १८६  
 एवं पूर्णता २३३  
 पद्म-मानव ५९  
 पश्चिम और पूर्व में अन्तर ३६४  
 पश्चिमी घेस ३२५ राष्ट्र ३२५  
 पौष्टिक, पामर, श्रीमती ३७१ ३९१  
 पाठशाळा निःसुत्त ३६६  
 पादरी १३९  
 पाप २ ३३ १३१ १५१ ३ ६  
 २ ९ २१४ २२९, २३८ ३ ३  
 ३२६ ३३३ ३५४ ३७८ -अस्या  
 चार १९ उसका प्रादुर्भाव २३

भीर अपवित्रता २९६ और  
 दुष्कर्म २७९ -कर्म २ ९ -ताप  
 २७८ ३ २ -ताप और कसप १९  
 परपीडन ३ ३३७ प्रकृति १८  
 भय ही ३५७  
 पामर, श्री ३३०-३२ ३४१ श्रीमती  
 ३७१ ३ १ सेनेटर ३८३  
 पारमार्थिक व्यापार और कर्म १६६  
 सत्ता १२  
 पारसी ६  
 पार्लियन्ट १६३  
 पॉल करस डॉ ३८१ ३८३  
 पॉल संत ३  
 पाश्चिक जीवन ६५  
 पाश्चात्य और भारत में धार्मिक कृष्टि  
 कोम २५८, २६१ और हिन्दू  
 की जीवन-कृष्टि १४४ भाषि  
 १७९ तथा भारत में अंतर ३१५  
 बर्षान २३८ देश १४५, १७९,  
 २ २, २७१ ३६९ वेसवासी  
 ३६८ सोम १४४ बासी ३६८  
 विचारक २६ संस्थान १७  
 पितर-पूजा उससे धर्म की उत्पत्ति और  
 भीम १९२ और भारत १९२  
 और हिन्दू १९२  
 'पिता में एकत्व' २५९  
 पितृपाल २७  
 पुष्प २५४  
 पुत्रत्व २२९  
 पुनर्जन्म ३३ ११३-१४ १६ उसका  
 सिद्धांत २२९ और आत्मा की  
 स्वतंत्रता २२९  
 पुनर्जन्मकार ११३ १४ उसका नियम  
 ११३ उसके बिना ज्ञान अशंभव  
 ११४ और जीवात्मा की स्वा  
 भीनता ११९ नैतिक उत्पत्ति का  
 उद्घाटक ११३  
 पुरस्कार और बंध २७  
 पुराण आरंभ काल में २३९ उसके  
 नायक २४ उसमें धर्म का

भावना २३९, और आत्मा में लिंग  
या जाति-भेद ३२७, और आदर्श  
२४०, और सिद्धांत २४०, पथी  
३०७, प्रभावशाली २४०  
पुरुष, अनन्त ३९, पूर्णस्वरूप ३२,  
साधु ३४, सिद्ध ३४  
पुरोहित ६९, २७८, ३१८,  
उनके अत्याचार ३११, और  
समाज-सुधार ३२८, -सम्प्रदाय ६८  
पुरोहिती शक्ति और विदेशी विजेता  
३६९  
पुलर्मन, श्रीमती ३८४  
पुस्तक, आन्तरिक २५१, उससे आत्मा  
की सृष्टि नहीं २३४, तथा औप-  
चारिकता २५३, दार्शनिक ४२,  
वाह्य २५१, मात्र मानचित्र २४७  
(देखिए ग्रंथ)  
'पुस्तकें' २५३  
पूजा-अर्चना १८३, -पद्धति २५९  
पूना ३१३  
पूर्ण पुरुष १७५, मानव १०६,  
स्वरूप पुरुष ३२  
पूर्णता, उसका अर्थ १७५, उसका मार्ग  
३३२  
पूर्वजन्म, उसका अस्तित्व ११३  
पृथ्वी, उसकी उत्पत्ति १०४  
पेरिस ३१०  
पेलियस ४८  
पैगम्बर २४२-४३, उसका तात्पर्य  
२४४, और वेदान्त २४९-५०,  
वनने के लिए प्रशिक्षण-केंद्र २४३,  
वनाने का महान् कार्य २४४,  
विशिष्ट तत्त्व की साकार प्रतिमा  
२४६, सिद्ध २४७  
पैशाचिक उपाय ५०, काण्ड १५०,  
घटना ६५, मानव-प्रकृति ५१,  
रीति ५०, हिन्दू ५६  
पोप, धर्म के ११४, विज्ञान के ११४  
पौराणिक कथा ७, ६५ (पा० टि०),  
२३१, भाषा ७, युग और सम्म्यता

का उपाकाल ३, साहित्य, ग्रीक  
४८ (पा० टि०)  
प्यारीमोहन ३४९  
प्रकाश, उसका दर्शन २५३, और अन्ध-  
कार ५९, ६६, और छाया २९५,  
और ज्ञानस्वरूप ७२, किरण २४,  
१२७  
'प्रकृत मनुष्य' १३  
प्रकृति ३५, ४६, ७३, ७७, ९२, १३९,  
१८३, १८६, २०५, २४२, २६०,  
२९५, ३२१, अचेतन और जड  
७४, अनन्त का सीमावद्ध भाव  
९२, अपने कार्य में एकरूप १००,  
आत्मा के सम्मुख ३२, आत्मा के  
सम्मुख गतिशील २१९, आन्तरिक  
१९७, २३७-३८, उपादान २०४,  
उसका आधारस्वरूप १३०, उसका  
ज्ञाता २९७, उसका नित्यत्व २०४,  
उसका नियमन १९७, उसका परि-  
णाम ३३, उसका बन्धन ५८-९,  
उसका भविष्य और भूत १२६,  
उसका विरोध ५९, उसका सौंदर्य  
और महिमा १०८, उसकी अभि-  
व्यक्ति १२६, उसकी नियमावली  
१००, २९४, उसकी भावमूलक  
शक्ति ३१९, उसकी शक्ति का  
मानवीकरण १९३, उसकी सहायता  
से ब्रह्मदर्शन १५८, उसके ऊपर  
उठने के लिए सघर्ष १९७, उसके  
गुलाम ७४, उसके द्वन्द्व से परे  
२५३, उसके नियम का पालन  
२६१, उसके पीछे आत्मा १३०,  
उसके प्रभु २९५, उसमें एक नियम  
का राज्य ११६, उसमें जन्म-  
मृत्यु ३३, उसमें विकास की प्रक्रिया  
१०४, उसमें शक्ति २०३, एव  
जीवात्मा से पृथक् ईश्वर २०४, और  
देशकालातीत सत्य १४, और  
विविधता ८४, और वेदान्ती द्वैत-  
वादी २०४, तथा आत्मा २०९,

बैबी २३६ परम सुन्दर १५८  
परिवर्तन की परिणामी २९  
बाह्य ९५, २३७-३८ मौलिक  
२९६ मनुष्य का उद्देश्य मही  
१९७ मानव १२२ १९७ मान  
वीय २६ स्त्री पुस्तक २१२  
व्यक्त २ ३ व्यक्त का परिचय  
और विषय ८१ सारमत २२८  
संबन्धी चारपा ८२ ससीम और  
मनुष्य का ज्ञान ९२ हिंदीसे सृष्टि  
१२६

प्रगति उसका चरमतम विकास २१  
उसका पथ २७५  
प्रणाली और नियम १  
प्रतीक उसका विकास २४  
प्रत्यक्षकारी १६६  
प्रत्यक्षानुभूति ३८४ १९५ ६६,  
१६८ और धर्म १६६ धर्म का  
सार १९ सत्य की २४४  
प्रत्यक्षीकरण २४८  
'प्रमुख मारत' ३९५  
प्रभु ७५, १२६ १३९ २६२, ३२३  
३२५ ३३५, ३९६ उसका संसार  
२६७ प्रत्यक्ष मानव हृदय में १२  
सर्वसमाधीन २३ सर्वव्यापी १५१  
प्रसन्न ५ ६ उसकी कथा ६  
प्रकृति वलीत के कर्म का परिणाम  
२३ और इन्द्रिय ६५ और  
निष्कृति ६३ और संयम ६४  
पारमार्थिक ३५८ समस्त कर्म का  
मूल ६३  
प्रपञ्च महासागर ३५५  
प्राचीन कथा १४८ बेवता ६४  
प्राचीन तथा नव व्यवस्थान १८३  
प्राचीन व्यवस्थान ६१  
'प्राच्य इतिहासोक्ति' ३१७  
प्राच्य विद्वान १४६ दर्शन और धर्म  
१८८ हय १८५ धार्मिक भाव  
३ -नामी मानव ३१७  
प्राण ४ २१७ उनका प्रभाव

और जगत्-सृष्टि २२ उसका  
स्वल्प १४५ और आत्मा २५  
-कर्मण से विश्व-उत्पत्ति २ ३  
उत्पत्ति ४४-५ महासक्ति की धर्म  
व्यक्ति २२ मूल २२

प्राणायाम उसका उच्च २५६  
प्रतापचन्द्र मजूमदार ३ ९  
प्रतिद्वन्द्विता उसका सिद्धांत २६६  
प्रार्थना-विधि २८९  
प्रेत-चरित ५८  
प्रेतारत्ना १९२  
प्रेम २६२, २७१ अश्रुमूत और माया  
७५ उसकी अनन्त शक्ति ७१  
और कबीकीय भाव ६४ और  
आगतिक प्राणी ३७३ और मान  
वता ६३ सुप्र २७१ तथा कबीका  
६३ तथा निष्कपट शक्ति ३९६  
तथा मानव-व्यक्ति ४१ भाव ३४८  
-सागर २८९  
'प्रेम तेजस्विता स्वाधीनता' ३८८  
श्रेय और श्रेय १६५  
प्रेरणा चेतन से प्राप्त २७२ बैबी  
२७२ सहज ११६  
प्रेसबिटेरियन ३४४ पुरोहित ३७८  
प्रीट श्रीमती ३९  
प्लाइमाउथ ३९  
प्लेटो ९४  
फल कर्म का ११४ पूर्व अनुभूति का  
११६ समष्टिमूल ११४  
फ्रावर पीय २४७ ३७९  
क्रिस्त श्रीमती ३८७  
फिरिफ्ल ३९ ९१ लैडिंग ३७८  
फिलिप्स कुमारी ३८५  
फैनी हार्टसी ३ १  
फोनीयाक ३७६  
फोरम ३४५  
फोन उनके निवास २५८ उसकी  
व्यक्ति २७७  
फोडीसी विद्वान् ३८५

फ्रिक्सस ४८ (पा० टि०)

पलंग ३२२

वगाल ३२२, ३२५, ३३४ (पा० टि०)

वगाली ३७८, कहावत ३४९, ३६१

वचन ३७, ४८, ७८, ९५, १३१,

१७५, २०६, २१८-१९, २५३,

२५७, २६०, २९३, २९५, अनै-

तिकता का ९५, उसकी कारणीभूत

प्रकृति २९७, उसकी धारणा

२९५, और मुक्ति २९५, नैतिक,

उसकी धारणा २९६, प्रकृति का

५८, मुक्त ६९, ससार का ५५

बन्धुत्व, उसकी भावना २०१

वम्बई ३९३

वरोज, डॉ० ३०९, ३१९, ३४३, ३७५,

३८०, जे० एच० ३८३, प्रेसी-

डेंट ३३६

वर्मी २५७

वर्वर देश १४५

वलिदान और बडा काम ३५६

वहिशत २७८ (देखिए स्वर्ग)

बहुईश्वरवादी ३२६

वाइबिल १६८, १७५, १८२-८३,

२२९, २३१, २३५, २४२, २४६,

२७९, २८४, २९०

वाँनी, श्री, उनके गुण ३१९

वालक, क्रमसकुचित मनुष्य १२३

वाल-विवाह ५५

वालाजी ३८२, ३९४

विम ३५५

विमला ३६२-६३

वीज, उसमें उद्भिद् की सृष्टि १०१,

और सृष्टि १००-३

बुद्ध ७, ४७, ९३, १२६, १७६, १९४,

२२७, २५८, २७६, ३००, ३२४,

३२९, और ईसा २४१, भग-

वान् ६९, महान् ९७, -मानव

८, १०६ (देखिए बुद्धदेव)

बुद्धदेव ६९, ७८, ९३-४, ३११, ३६०-

६१, उनका अद्भुत प्रेम और  
हृदय ९४

बुद्धि २३, १२७, उसका आदि तत्त्व

२८०, उसकी अभिव्यक्ति १०५-

६, उसकी देवी २७७, उसकी

परिभाषा २७२, उसके सहारे

अस्तित्व का अनुभव १११, उससे

आशय २८०, एव मनन १४३,

और जड १११, और सस्कृति

१४९, क्रमसकुचित १०४, जगत्

की अन्तिम वस्तु १०५, पहले

क्रमसकुचित, फिर क्रमविकसित

१०६, विश्वजनीन का नाम ईश्वर

१०६, विश्वव्यापी १०६-७

वेकन स्ट्रीट ३५१

वेविलोन ६, १९१-९२

वेबिलोनियावासी २३१

वैग्ली, परिवार ३९१, श्रीमती ३३२,

३४१, ३४६, ३५८, जे० जे० ३८३

बोधिवृक्ष ७८

बोस्टन २७३, ३०७, ३३०, ३३२,

३४५, ३४७-४८, ३५१, ३५५,

३५८, ३७५, ३८१, ३८७, ३९१-

९२, निवासी ३९२

'बोस्टन ट्रान्सक्रिप्ट' ३९२

बौद्ध २८, ४४, ६८, ३८२, ३९५,

अर्वाचीन २५७, आदि २५७,

उनकी प्रमुख प्रार्थना ३३३, उनकी

मान्यता २५५, और जैन २०२,

और नास्तिक ७१, और नैतिक

नियम १९४, दक्षिण सम्प्रदाय के

प्रतिनिधि १९४, दर्शन २८,

दार्शनिक ४४, धर्म १८३, २४०,

२४९, २५७, ३९५, धर्म, उसके

अनुयायी २५५, लोग २९, २०७,

सम्प्रदाय १८५

बौद्धिक अन्वेषण २७८, अवस्था १९४,

आनन्द ५५, २७०, चिन्तन १९४,

प्रगति, उसका मूलस्रोत २६८, श्रद्धा

९३, सुख २७०

ब्रह्म २६ ९३ ९५, १२६, १४२,  
 १४४ १४८ १७ १८३ २१३  
 २१६, २२ २४३ २५९ २८२  
 २८४ अमल ९ अपनी सत्ता  
 का आधार ८७ उसमें देस-का-  
 निमित्त नहीं ८७ एकमेवारीवी  
 यम् ८७ और जगत् ९१ १४२  
 और विषय २२ और विषयी  
 ९२ ज्ञान सहाय ३६३ सर्वज्ञ  
 १४२ १५६ नित्य पूर्ण १७१  
 निर्गुण पूर्ण ७२ त्रिविधेष उसकी  
 चरम अभिव्यक्ति २८८ बुद्धि  
 १५५ भाष ८४ १५३ भाष  
 निर्गुण ९७ लोक २३-७ ३२ ३६  
 १४२ नहीं जगत् ८५ दास्यत  
 २६९ संबंधी विभिन्न मत और  
 मूलमूल तत्त्व ८ सत्ता निरपेक्ष  
 ८७ सत्ता पूर्ण ८९ स्वल्प ४  
 १५ १९ २९९  
 'ब्रह्म की जानना' ८७  
 ब्रह्मचर्य १७ -सतकारण ३१६  
 ब्रह्मचर उसकी अभिव्यक्ति ३२८ और  
 पशुत्व २२३  
 ब्रह्ममय १७  
 ब्रह्माण्ड २२ २९, ४२ १ २ ३  
 १६-६१ १७१ १८२ २११  
 २२८ २८८ बलिक २१२  
 ईश्वर के शरीर जैसा १८१ उसमें  
 मुक्ति २९७ जगत् १-०-१  
 १ ६ ब्रह्म २१४ २९४ विविध  
 १२५ विषय १ ५, ११३ १८३  
 ३ १ मूकम १ ३ २१४ २३  
 २६४ स्वल्प १  
 ब्रह्माण्ड १७ श्वायी ३६७  
 ब्राह्म समाज १ ९ ३४३ ३५४ ३७५  
 ब्राह्मण १ ७६४ ३११ ३२,  
 ३३७ ३६२ ब्रह्म १ ४ भाग ४४  
 भाष वेद का १४२  
 और धीका ३४१ ३४५, ३८४  
 ईश्वर धीपुत्र ३ १

भक्ति २ ४ उसके पुत्र और जन्मपुत्र  
 ३२५ भक्त तथा भगवान् एक  
 २६२  
 भगवत्कृपा ३९३  
 भगवत्सेवा ३५  
 भगवद्गीता १७८ २२९ अन्तिम  
 उपनिषद् १७८ (केलिए गीता)  
 भयवान् ४ ९३ ९८ १२ १२६  
 १३६, १३९ १५२, १८६, २५२-  
 ५४ २६२ २९९ ३ ३१२,  
 ३२०-२१ ३२८ ३४२, ३५  
 ३५६, ३६५, ३६७ ३७८-८  
 भयम २५९  
 'भयानक विद्यार्थी' ३१८  
 भर्तृहरि ३३६ राजा ३५४ नीति-  
 शतकम् ३५  
 भागवत और पुण्य ३९  
 भाष्य उसका नाम ४ और ईश्वर  
 ११९ और कामु ११९  
 भाष्य २१ ४१, ५८ ९३४ ९६,  
 ९७, १४२ १७२, १८७ २ २  
 ४ २ ७-८ २५८, २६१ ३ ९,  
 ३१२, ३१६ ३१९ ३२१ २३  
 ३२५, ३३१ ३३५ (पा टि )  
 ३३९ ४३ ३४५ ४६ ३४९,  
 ३५२, ३५४-५६, ३५७-६४  
 ३६७ ३६९, ३७-७१ ३७५,  
 ३७७ ३८ ३ ५ ९६ उत्तर  
 ३११ उसकी अकीम-समस्या  
 ३४५ उसकी बेटी ५६ उसकी  
 स्थिति ३३७-३९ उसमें प्रकथित  
 विविध धर्म २ २ और पाश्चात्य  
 में अन्तर ३८, ७ और समाज  
 मुवायक ४९ शक्ति ३३७ ३४  
 परिचय ३६ मा ३६८ भाषा  
 ३२९ नहीं प्रकथित जानि पा नीति पर  
 आधाधार ३३७ नहीं के समाज  
 मुवायक ३११ नहीं पामिक  
 श्वाधीनता ६८ शानी ३३९  
 (केलिए आत्मदर्श)

भारतवर्ष १७, ६८-७०, ९३-४,  
९६, १२३, १४२, १६१, १६७,  
२०८, २२८, २४०, ३११, ३२५,  
३३७, उसके अनर्थ की जड  
३६९

भारतीय एव अमेरिकन ३४५, चिन्तन-  
घारा २०२, दर्शन ६८, २०२-३,  
२१४, दर्शन, उसका विकास-क्रम  
२१४, दार्शनिक १३, २१-२,  
द्वारा भारत की उन्नति सभव ३२९,  
धार्मिक चिन्तन २०२, धार्मिक  
विचार-समूह ३६०, नारी ५६,  
पत्र ३७४, पुराण ७, मत १८१,  
महिला ३७१, वायुमण्डल ३११,  
ममाचारपत्र ३१४, ३९३, साधु  
१७

भाव, उसकी समष्टि और नाम ६४,  
पौराणिक या रूपक १८१,  
भ्रमात्मक, स्वामित्व का १५३,  
साहचर्य-विधान १०६, सूक्ष्म  
से स्थूल मे १२५, स्वर्गीय १५३  
भावना और आदि मानव ६२, और  
इन्द्रिय १५२

भाषा, अलकारपूर्ण १६१, और मात्रा  
का तारतम्य ७, जर्मन २०२,  
पौराणिक ७, यूनानी ३०८,  
लौकिक १०९, वैदिक १००,  
संस्कृत १०, १२८

भूत-प्रेत ५८, -योनि २७

भेद-ज्ञान ३००, -ज्ञान और अशुभ  
१६, -भाव १४६

भोग-वासना ११४, १६५, १७४,  
-विलास १५४, ३७०, विषय  
१६५, सबकी धारणा १३७,  
सामग्री १६२

भौतिक, अन्वेषक, उसकी प्रवृत्ति  
२८५, कार्यकलाप २२०, घटना  
१२६, जगत् २५१, २८७, द्रव्य  
२१६-१७, निधि २६८, पदार्थ  
२३७, प्रकृति २९६, प्रगति २६८,

रूपाकार १२५, वस्तु २६५,  
वाद ९३-४, २२७, २३०, वाद  
और भोग-विलास ३२२, वादी  
२२, २३०, विज्ञान २२, २४२,  
२५१, २६५, २७७, २९१, शास्त्र  
१९५, २६५, शास्त्री २८१,  
साधन और जगत् २००

भौतिक कोष' ११८

भौतिकी वेत्ता १६६

अम ६०, उससे अम की उत्पत्ति  
२१३, और वादल का दृष्टान्त  
२१३

भ्रान्ति और मनुष्य ३३

मत्र, उसका द्रष्टा १९४, विशेष व्यक्ति  
की सम्पत्ति नहीं २४१, शब्द का  
अर्थ २४१

मगल १३९ (देखिए शुभ)

मक्का २४९

मजदूर तथा पूंजीपति ३६८

मजूमदार ३५४, प्रतापचन्द्र ३०९,  
महाशय ३३५

मणिलाल द्विवेदी ३१३

मत और प्रणाली १८१, और सम्प्रदाय  
का अपना महत्त्व २३४, मन का  
व्यायाम और बुद्धि की कसरत  
१८१, शिक्षा और मनुष्य पर परि-  
णाम १८९

मतान्व और कट्टर ७०

मदर चर्च ३४१, ३४५, ३७९, ३८७  
मद्रास ३४३, ३५३, ३७४, ३८१,  
३८३, ३९५

मद्रासी वन्धु ३७७, शिशु ३७६,  
शिष्य ३१९, ३७४, लोग ३७६

मन, अनेक बार जन्म-ग्रहण ११८;  
आत्मा के हाथ यत्र १२८, आत्मा  
नहीं ११-२, ११०, उच्चतर सत्ता  
२२, उसका आधार १०, उसका  
नियामक १५८, उसका व्यक्तित्व  
और ईश्वर १७३, उसका सत्कार



५१ उसका स्वभाव १२  
 उसकी अनिर्वायता ११ उसकी  
 प्रकृति १३ उसकी शक्ति और  
 शरीर १८ उसकी सीमा और  
 विषय ८७ उसकी सृष्टि १२  
 उसके कार्य पूर्वनिर्भूति के फल  
 ११७ उसके द्वारा उपयोगी उपा  
 दान ग्रहण ११८ उसके द्वारा ब्रह्म  
 वस्तु सचीम ८७ उसके पीछे  
 आत्मा २४ उसके संस्कारों की  
 छाया ११७ उसमें ही संस्कारवास  
 ११८ एक प्रकार के परिणाम  
 का नाम ८५ और आत्मा २४  
 २१६ और बाह्य वस्तु का प्रभाव  
 १११ और बुद्धि २४ ५४ ११  
 और मस्तिष्क १८९ और व्यर्थ  
 तर्क १६६ और शरीर ११४  
 और संस्कार ११ कमी निर्बल  
 कमी सबल ११ तथा इन्द्रिय  
 २ १ यंत्र मात्र १२८ बाह्यक  
 ११ शरीर का विरोधी नहीं  
 २३८ शरीर में विधीन २३८  
 संस्कार-सूत्र्य और ब्रह्मा ११५  
 सतत परिणामशील विचार प्रवाह  
 २८ सर्वव्यापी २३

ममता और मिथिप्यासन १८

मनस्त्वत्त्व ९५

मनु महर्षि ६ ३१५ १६

मनु ३१५, ३३७ (पा टि )

मनुष्य भक्तानी २६ अनाप्त सत्ता  
 का आभाव मात्र १५ अनुभूति  
 की अमष्टि केकर उसका अर्थ  
 ११६ अन्धा १६७ अपना  
 उत्तरदाता २ ५ ६ अपना भाग्य  
 निर्मिता १२ अमन्य २९६  
 भावित ११७ भाषुनिक ५५,  
 २३७-३८ आन्तरिक १९८  
 उनम कमी १६८ उनका अमरत्व  
 और कामता १४६ उनका अमल  
 म्य ३६ उनका आत्मा के प्रति

विश्रोह ३ ३ उसका आदर्श  
 १५६ उसका इतिहास १४ उसका  
 चक्षुष्य १९९ उसका चक्षुष्य प्रकृति  
 नहीं १९७ उसका कर्तव्य १७६  
 उसका कष्ट और कल्याण बेपटा  
 १२ उसका केन्द्र १६१ उसका  
 शोभा हुआ राज्य १८३ उसका  
 ज्ञान १८ १७ १२२ उसका  
 ज्ञान नाम और नैतिकता का  
 विकास २३९ उसका वेदत्व और  
 पशुत्व २४५ उसका बर्म आत्मा  
 में २५२ उसका ध्येय मुक्ति  
 २६१ उसका परम ज्ञान २७  
 उसका प्रकृत स्वरूप १-११३  
 ११२ उसका प्रकृत ९९ उसका  
 ब्रह्मभाव १८५ उसका मय से  
 मुक्त होना सक्य ८३ उसका  
 भ्रम २१२ उसका मन १ ८  
 उसका पदार्थ 'व्यक्तित्व' १३  
 उसका वस्तु के लिए सर्व  
 २५६ उसका वास्तविक प्रेम ४  
 उसका विकास और शक्ति की  
 अभिव्यक्ति २४ उसका शरीर  
 २४ उसका सत्य १२ उसका  
 सबसे बड़ा प्रयोजन १६ उसका  
 समग्र जीवन स्वाधीनता हेतु २९३  
 उसका स्वभाव १९८ उसका  
 स्वरूप १४ उसकी अमल की  
 शक्ति २६३ उसकी असमर्थता  
 १९८ उसकी आकांक्षा १९३  
 उसकी आत्मा १३ १३४ २५२  
 उसकी आत्मा अनुभवकर्ता छास्ता  
 एवं लप्ता १२९ उसकी आत्मा  
 कार्य-कारणवाद से परे १२ उसकी  
 आत्मा की अन्तरात्मा ८९ उसकी  
 आत्मा की व्याख्या २४ उसकी  
 आत्मा व्यष्टि में २४ उसकी  
 आवश्यकता १९७ उसकी ज्ञाना  
 १ ६; उसकी इच्छा ब्रह्म ३७  
 उसकी इन्द्रिय की रूप २५ उसकी

ईश्वर सबधी धारणा २६०, उसकी उत्पत्ति १०३, उसकी एकता और आस्था २८३, उसकी कोटि ३४, उमकी चिन्ता और मुक्ति ११, उसकी ज्ञानक्षेत्र मे सफलता २७०, उसकी दृष्टि १००, उसकी धारणा ६३, उसकी प्रेम की पहचान ३६०, उसकी भूल ३३, उसकी महानता के लिए तीन बातें ३२४, उसकी मृत्यु इच्छानुसार ५, उसकी विचारधारा ९९, उसकी सत्य तथा धर्म के हेतु चेष्टा ७९, उसकी सफलता और प्रयत्न १५६, उसकी सबसे बडी मिथ्या बात ३४, उसकी स्थिति, धर्म की बदौलत २६९, उमकी स्थूल देह और मन ११२, उसकी स्वाभाविक दुर्बलता ११९, उसकी हताशा और ईश्वरीय वाणी ७८, उसके अध्ययन के विषय २३७, उसके आदर्श नायक २४०, उसके आन्तरिक स्वरूप की जिज्ञासा १५९, उसके ईश्वर को देखने की दृष्टि २६०, उसके चारो ओर १००, उसके ज्ञान होने पर ३४, उसके द्वारा आत्मा का विषयीकरण २६०, उसके द्वारा विश्लेषण १०८, उसके पीछे यथार्थ पुरुष ६२, उसके भीतर कष्ट से छुटकारा पाने का रास्ता २५६, उसके भीतर स्वर्ग का राज्य २३३, उसके शाश्वत सगी २२७, उसके सत्य का ज्ञान ३९, उसके सामने दुख का प्रतीक १९५, उसके सुखो होने की इच्छा ४, उसके स्वरूप-प्राप्ति मे साधना २५९, उसमे अनन्त शक्ति २०, उसमे जगत् की महाशक्ति २०, एक अपरिवर्तनशील तत्त्व २५५, एक इकाई २५५, और अन्वेषण १९३, और अपरिमित

शक्तिवाला आदर्श १९५, और असतुलन २१०, और आध्यात्मिक प्रदीप २३६, और ईश्वर २६०, और जगत् ३, और धर्म का विकास १९१, और धर्म तथा सत्य-प्राप्ति का पथ ७९, और नियम २९३, और नीतिसगत भाव ६४, और नैतिक भाव की उन्नति ६३, और पशु तथा उसमे अन्तर ६७-८, २६८, २७०, और पूर्ण आदर्श १४, और प्रकृति ७४, ३२४, और बीजाणु १०३, और बौद्धिक श्रद्धा की आवश्यकता ९३, और भ्रान्ति ३३, और महान् सत्य ४१, और मृत्यु-भय की विजय-प्राप्ति १३, और सच्चि के अनुसार आदर्श २५२, और शरीर सबधी सिद्धान्त २१, और 'सस्कार' २५, २१७, और ममाज १४, और स्थूल देह ५, और स्वतन्त्रता ३२१, और हृदय-ग्रन्थि १४४, कमजोर पौधा २१०, कर्म का शाश्वत फल नही २०७, किसे कहा जाता है १९७, क्रमविकसित वालक १२३, क्रम-विकास का परिणाम ७, चिन्तनशील और जगत्-समस्या १६०, चैतन्य-स्वरूप ३०१, जगली ५१-२, २९६, जगत् का ईश्वर १३१, जगत् की आत्मा १३२, जगत् की एकमात्र सत्ता १३१, जगत् मे सर्वश्रेष्ठ प्राणी २७, जन्म की प्रक्रिया २६, जाति का स्वभाव १९८, जाति की चेतना का अग २४२, जाति के परिव्राता ४७ (देखिए बुद्ध), -जीवन ३७, जीवन भर पहली मे आवद्ध ६६, ज्योतिस्वरूप १४०, तथा आदर्श का चुनाव २५२, तथा इन्द्रिय, उसका प्रश्न २७१, तथा जगन्नियन्ता, अभिन्न २८८, तथा धार्मिक विचार

मीर स्रमता २६४ तथा मया  
 विचार और असंतुलन २१  
 तथा प्रेम और श्रेय १६५ तथा  
 महत्त्वपूर्ण प्रश्न २५५ तथा मान  
 सिक संवेदन २५५ तथा विरवात  
 २५६ तथा व्यक्तिगत विशेषता  
 २५२ विषय है २४४ इष्टा २४४  
 द्वारा असत् कर्म और संकोचन  
 १८१ द्वारा ईश्वर ज्ञातव्य ३२३  
 निर्गुण और निर्गुण ईश्वर १८  
 निर्गुण पुरुष निष्पाप उसकी अब  
 गति ५ नीतिपरायण क्यों ९५  
 परिणामता परिवर्तनशील २५५  
 पापी और द्रष्ट ३४ पापवी  
 प्रकृतिकाके ५१ पूर्ण मीर वासना  
 २२२ पूर्णतम १४ पूर्णस्वरूप  
 १४ प्रकृत ३७ -प्रकृति २९३  
 प्रकृति का विरोधी ५९ ब्रह्म ५८  
 ब्रह्मज्ञान १५५ भौतिक पदार्थ से  
 निर्मित २३७ महीन मही है  
 ३३१ मुक्त स्वभाव १४ २९३  
 मुक्त है ३७ मृत्यु के पास उसकी  
 बसा १७०-७१ यथार्थ एक अज्ञान  
 मत्तास्वरूप ३५ वर्तमान काल में  
 १७४ विद्रोही और मरक का  
 अज्ञितत्व २९४ व्यष्टि २४ सर्व  
 श्रेष्ठ ११७ साधारण १९८  
 सीमा से अकड़ा ५८ स्वभाव से  
 मुक्त १८४ स्वरूप ११  
 अनुपपन्न और देवत्व १८१ ९२  
 'मनुष्यी का स्वामी' ३३४  
 मनाविमान २३  
 मनीषित और विचार ५७ और  
 मनीषिताकारी ३४  
 अद्विज और नगर ६ -अद्विज २७४  
 मनीषिता और मान ३६ और मय  
 ३६  
 मनेन्या उगता वाग्म्य ३६०  
 मन्त्रिता एवं दृष्टव १४ और बुद्धि  
 २७ और लीला ८

महाज्ञान उसकी पिपासा ७३  
 महात्मा उसकी जीवनी और नियम  
 २४८ -चरित्र ५८  
 महापुरुष ७५ अनुभव के माध्यम  
 २४७ उनके गुण और सुख मनु  
 १४ और जानकायी ७१  
 कल्याण के प्रेरक २४१ तथा  
 पैगम्बर २४ ४१ प्राचीन और  
 बेदान्त दर्शन ७१  
 महासक्ति उसकी अभिव्यक्ति २२  
 'महामोक्षा' ३७१  
 महावीर ७९  
 महिम ३५३  
 महिमा-कल्प ३४८  
 महत्त्वज्ञ स्यापरत्न ३८  
 माता धर्मना गुलाम ७५  
 मानव ३८८  
 मान और मय १६१  
 'मानव-कल्पन' ३३  
 'मानव का अधिकार' २५८  
 मानव-अर्थ अनुभूय अबसर २८  
 अनुभूत स्विति २८ महान् कैन्द्र  
 २८ -मनु २८४  
 मानवता उसका स्वरूप २६८ उसका  
 विशिष्ट अंग २८  
 मानवात्मा २२९ ईश्वर का अंध मान  
 १२९ उसका उपभोग्य ५५  
 पूजा के लिए सर्वश्रेष्ठ मंदिर १४२  
 मानवी भावा और उत्तर ६  
 मानवीय अज्ञानता २८३  
 मानसिक चरित्ररसक ३८७  
 माया ६३ ४ ५२ ५९ ६६-७ ७३  
 ८०-१ ८३४ ९ १ १३७  
 १४ १५१ १५३ उसका साधा  
 रण भाव ६७ उसका स्वामी ६७  
 उसकी धारणा ६ उसकी परि  
 ज्ञाता ५ उसकी व्याख्या ५२  
 ५७ उसके अर्थान ५५ उसके  
 भाग ७७ उत्तर मानव व्यक्तित्व  
 ७६ उगय न बीजा न बनी ४५

उसमे मनुष्य-जन्म और जीवन ६६, ७७, उसमे। अतीत आत्मा ७८, १८४, उसे ही प्रकृति समझो ४४, और आसक्ति ४७, और इन्द्रिय ७४, और इन्द्रिय-सुख ७६, और जड का अनुकरण ७४, और नारद ७६, और प्रकृति के गुलाम ७४, और प्रेम ७५, और बन्धन ४८, और मृत्यु ४९, तत्त्व ४३, त्रिगुणमयी ७८, देश-काल, उसके भीतर १३५, द्वारा व्यक्ति-सृजन तथा पार्थक्य वीघ ३१, -प्रपञ्च ८३, 'अम' नहीं ६०, महेश्वर ४४, वाद ४३-४, ५०, ५५, ६२, १८१, वाद, यथार्थ ४३, वादी, उसका कथन १८३, विशेष सिद्धान्त नहीं ६०, विषयक धारणा ४३, ससार का तथ्यात्मक कथन ६०, ससार की वस्तु-स्थिति का वर्णन मात्र ५२

मार ७९

मार्ग, वास्तविक १५४, सच्चा, अत्यन्त कठिन १४४

मार्स (मंगल) देवता ४८ (पा० टि०)

मासाचुसेट्स ३३९ (पा० टि०)

मित्र, हरिपद ३१४

मिथ्या और पाखण्ड ७८

मिनियापोलिस ३१३

मिल्स कम्पनी ३८७

मिल्स, श्रीमती ३८६, ३९१

मिशनरी ३८१, लोग ३५५, ३६४, ३७५, ३८०

मिशिगन एवेन्यू ३०७, भाषण ३३०

मिस्त्र ६, १९१, २३०, वासी १९१-९२

मुक्त पुरुष, उसका स्वरूप ८०

मुक्ति ३७, ८२, २१०, २३४, २५७, २९४-९५, ३६९, आत्मा का जन्म-गत स्वभाव ३७, आत्मा की अन्त-रात्मा ८३, ईश्वरस्वरूप २९६,

उसका अनुसन्धान २९६, उसका अर्थ १८४, उसका उपदेश ७९, उसका उपाय २९८, उमका पथ ३०१, उसका भाव ८२, उसका मार्ग ३५२, उसका मार्ग नैतिकता ९५, उसकी अदम्य आकांक्षा २९७, उमकी धारणा ९७, २९६, उसकी प्राप्ति २७, उसकी भावना ८०, उसके लिए सघर्ष और व्यक्ति २२१, और ईश्वर ५७, और उज्ज्वल अग्नि २९६, और ज्ञान २९६, और भक्ति ३६३, और स्वाधीनता २९६, तत्त्व २९८, मनुष्य का ध्येय २६१, मनुष्य में सदैव वर्तमान २९६, -लाभ २६-७, २९४, २९९, लाभ और प्रकृति पर आविष्टपत्य २९६, सुख-दुःख का अतिक्रमण २९८, ही यथार्थ स्वाधीनता २९६

मुण्डकोपनिषद् २९९ (पा० टि०)

मुदालियर, सिगारवेलू ३२५ (देखिए किडी)

मसलमान १६७, १८३, २०३, २४०, २४९, २५८, २७८-७९, ३३८, ३६५, सिपाही १७

मुहम्मद १८३, २५८, ३००, ३३८, ३६६

मूर्ति-पूजा ३२३, ३३६, ३६५

मूसा ७, २४१

मृत्यु, उसका रहस्य १५९ (पा० टि०), उसकी महिमा ४८, और जीवन १२९, प्रकृत सत्ता की अभिव्यक्ति १८२, -मय १३, रूपी तथ्य ४७, सत्रका लक्ष्य ४७, -हीन जीवन ५३ मेरी हेल्, कुमारी ३३३, ३४१, ३८४-८५ 'मैं' १४-५, ३०, १७६-७७, २१३, २८९, २९१

'मैं और मेरा' २०७

'मैं नहीं तू' १९५

'मैं-पन' १२७

'मैं वही हूँ' २६०

मैत्रयुवेक श्रीमती ३३२  
 मैक्स मूलर २ २ ३१३  
 मैत्रिक सैलर्न ३५७  
 मैडिसन ३१३  
 'मैडोना' २३१  
 मैथिली ३३१  
 मंगूर ३४३ ३६८ ३७१ ३७४ ३८२  
 ३९३ ३९५  
 मोक्ष २ ६-७ २३४ उसकी परिभाषा  
 २६८ प्राप्ति २ ७ २२  
 मोमेरी डॉ ३१३-१४  
 मन्त्र १६१ १२ उसकी शक्ति १६४  
 और आकाश १४ कर्वा १६१  
 कर्म १६३ सर्वश्री ज्ञान १६३  
 मन्वार्थदात्र ४४  
 मम १६२, १६४ ६६, १७ १७२  
 (देखिए मम देवता)  
 मम देवता १६२ मित्र के सासनकर्ता  
 १६२  
 ममप्राप्ति २ ६  
 मङ्गली ५, १६३ २३१ २४९, २७९,  
 २९३ उसकी परम्परा २३१  
 उसकी विशेषता २३७ और ईसाई  
 १९४ प्राचीन ६१ लोम २२९  
 मुद्गलोप उसमें मरणा श्रेयस्कर ७९  
 मुनिष्ठिर, राजा ४९  
 मुनाम २३ २६४ (देखिए प्रीक)  
 मुनामी भाषा ३ ८  
 'मुनिवर्धन द्रुम' ३८६  
 यूरोप ८७ ९४ २ ४ २४१ ३१०-१२  
 ३६१ उसका उद्धार, बुद्धि  
 परक बर्मे पर ९४ बर्मी बर्मे कुठि  
 सकीर्ण ७  
 यूरोपियन विदेशी ३४  
 यूरोपीय जाति ९५ शार्पनिक ११५  
 राजपरिहार ३७१ लीग ३१  
 २५९ वैज्ञानिक आधुनिक ४५  
 योगज्ञान १४३ राज १४३  
 योगी १४३ मुक्तपुरुष १ ५

यौगिक पदार्थ उसका शब्द १२९  
 नियम के राज्य क अन्तर्गत १२९  
 रसायनशास्त्र १६६ २४३ २४७  
 २६५ २७५, २७८ और प्रकृति  
 पुस्तक २५१ वेता १६६  
 रसायनशास्त्री २४७ २७५, २८१  
 रहस्यवादी २५१ (देखिए अतीन्द्रिय  
 वादी)  
 राष्ट्र के एक ३८१ डॉ ३ ८  
 प्रोफेसर ३४५ ४६ ३९१  
 राजा ३६२ (देखिए ब्रह्मानन्द स्वामी)  
 राजपूताना ३४१ ३५६  
 राजप्रासाद ४७  
 राजयोग १४३  
 राजा साहब (रामनाथ) ३८२  
 राम ३२९  
 रामहृष्य ३२६ ३२९, ३४८ ३६  
 ३६३ ईश्वर के अकार ३६  
 उनका जीवन और उपदेश ३२६  
 उनका महत्त्व ३६१ उनकी विशेष  
 बात ३६ -जन्मोत्सव ३४९  
 परमईश ३२२, ३५९, ३७७  
 भयवान् ३३४ (पा टि)  
 समन्वयपूर्ण जीवन ३२६  
 रामब्रह्मानन्द स्वामी ३३४ (देखिए  
 सधि)  
 रामब्याक बाबू ३६२  
 रामनाथ ३१२, ३४३ ३८२  
 रामपार्ट दो ३९३  
 राममोहन राम ३११  
 रामायण ३७२  
 राज बहादुर नरसिंहाचारियर ३७१  
 राष्ट्र उसका बनी होना अन्य की शक्ति  
 २६३ उसकी भावी शक्ति ३२१  
 उसकी महानता के लिए तीन  
 आवश्यक बातें ३२४ परिचयी  
 ३२५ भारतीय उसके उद्धार का  
 उपाय ३२५ भारतीय जीपड़ी में  
 बसा ३२१ हिन्दू ३२४

राष्ट्रीय जीवन ३१८, मृत्यु २६१  
रामायनिक द्रव्य ३२१, सामग्री ३६५,  
३६९

'रिव्यू ऑफ रिव्यूज़' ३४५

रिस डेविड्स ३१३

रीति-रिवाज ५६, ३२९, ३८३

रूप ९१, -आकृति १२५,

और आकार २०४

रूपक-कथा और प्रतीक २२९

रेवरेण्ड आर० ए० ह्यूम ३३९ (पा०-  
टि०)

रोटी, रुपया और वस्त्र २६९

रोमन २३१, कैथोलिक २८९

लका ३१३

लदन ७३, ८५, १५९, ३१३, ३७६

(देखिए लन्दन)

लन्दन ३, ४३, १३३, १४८, १७८, १९१

'ललितविस्तर' ४७

लाग हाउस फार्म ३३१

लीन ३३१, ३४६, क्लव ३४१

लीम एबॉट ३४७

लेमेल, सर ३४५

लोकाचार १९७

'लोकायत दर्शन' ९३

'वयोवृद्ध बालक-सभ' ३३०

वरुण १३४

वर्ण-व्यवस्था ३११

वस्तु, अचल २४, अनन्त काल से १०४,

अपरिणामी २९, इन्द्रिय विषयक

१९८, उसका आदि और अन्त

१०१, उसका आभ्यन्तरिक सत्य

१५८, उसका मर्म १४५, उसका

वास्तविक स्वरूप १३३, उसकी

उत्पत्ति देश-काल मे १३५,

उसके अन्तराल मे एकत्व भाव

१२३, १५७, उसके दो विभिन्न

रूप १३५, उसके मर्म की खोज

१४५, उसके स्वरूप की व्याख्या

१३१, उसमे ईश्वर-बुद्धि १५४,

उससे आत्मा, पृथक् २३९,

एकता की ओर २३९, एक ही,

दुःख-सुख का कारण १३५, और

अज्ञानी प्राणी २३९, और ज्ञान-

लाभ १४, काम्य ५५, १३३,

चलनशील २४, जड १११,

जीवित २९२, तथा नियम १३०,

तरंग की भाँति १०४, दृश्य ३०,

नाम-रूपयुक्त १२३, परमाणु

की सहति मात्र १०, परमाणु के

समवायविशेष १२५, प्रकृति २८२,

सयोगजनित और पाप २४४,

समानधर्मी २८०, सर्वव्यापी एक

३०, ससीम १२, सासारिक २८९,

स्थिर २४

वाद्य संगीत २२८

वाल्डोर्फ ३४६, होटल ३४६

वार्शिंगटन एवेन्यू ३८३

वासना, उसकी शक्ति १७५, उससे

दुःख १७४, उसे पूर्ण करने की

शक्ति १७४, -त्याग, उसका क्या

अर्थ १५१-५२, सासारिक १५३

विकास ५४, उसका सार २८२,

उसकी पहली शर्त ६९

विकासवाद २८४, उसका सिद्धान्त

२८२ (देखिए क्रमविकासवाद)

विचार, असत् १२१, और कार्य ३२०,

और काल ११२, और जड पदार्थ

२८३, कार्य-प्रवृत्ति का नियामक

१५६, दार्शनिक १३४, १८६,

धर्म विषयक २५५, नया २१०,

परिवर्तनशील २५५, मानवीय

भावात्मक ३२४, -शक्ति २४१,

शक्ति, उससे आकाश और प्राण की

उत्पत्ति २२, सत् १२१, -सागर

२८३

विज्ञान, आधुनिक २२, ४४, ९५, २८३,

उसका अध्यापक ९५, और अध्या-

त्म-तत्त्व १४६, और कविता ९४,

और प्रम १४ वर्षा १४५  
 जगत् २८४ भौतिक २२ -वाव  
 ४४ -बाबी १६६  
 बिल-मोह १६५  
 बिद्या अपरा २७७ वान ३३८  
 बिद्युत्सोक २६  
 बिषयी ३ ८  
 बिषय-संगठन ३६६  
 बिषि-निषय सामाजिक ३८६  
 बिबिधता उसमें एकता २७५ और  
 प्रकृति ८४  
 बिबेकानन्द ३ ७-८, ३१ ३१२  
 ३१४ ३१७ ३१९ ३२१ ३३  
 ३४ ३३९, ३४ (पा टि)  
 ३४१ ४२, ३४४ ३४६ ४८,  
 ३५१ ५५, ३५८-५९ ३६३ ३६८  
 ३७१-७२ ३७४ ३७८-७९ ३८४-  
 ८५ ३९०-९२, ३९६  
 बिबिधार्थ २ ८ -बाबी २ ९  
 २१५ सम्प्रदाय २ ८  
 बिबेपाधिकार ७  
 बिबन उसका अस्तित्व २३९ उसका  
 इतिहास २७१ उसका उपकार  
 २६१ उसका प्रयोजन २६७  
 उसका समष्टिक्रम अचक २८८  
 उसके मूल में अचीम की भावना  
 २६३ उसमें ब्रह्म सत्य २१६  
 और अस्तित्व का बरतक २६७  
 -कविता १५३ -कविता २१३  
 न अकृता न कुरा २६७ प्रपंच  
 २९९ ब्रह्माण्ड ३७ ३ १ ब्रह्मा  
 ण्डस्वरूप ३७ भौतिक तथा धैतन  
 २३९ -महाभारत ३८३  
 बिबवाग्मा २९ ९१  
 बिबवास उनमें मुक्ति ३२५ और  
 अन्वृष्टि ३२५ और अद्या ३५७  
 बिबय ८ अनुभूति २३ इतिहासीन  
 १९४ उसकी अर्थमिता १९९  
 जान की प्रक्रिया ११ भाग ३  
 १३७ १६ -७ १७३ -मीप

वासना १७४ -सबेदना ११०  
 -सुख १७६  
 बिपयी और वहा २२  
 'बिपयीकरण' ८८  
 'बिपयीकृत' ८८ ९  
 बीरबन्द गाँधी ३ ९  
 बुन्दावम ३७४  
 बेब ४३-४ ६३ ४ १३३ ३४ १४२,  
 १७ १७२ १७७ १८१ २३५,  
 २३८ २४३ २५६ २५९, २७७  
 ३२३ ३२९ उनकी बीपया २५९  
 उनकी परम पिता २१४ उसका  
 अक्षयन १७८ उसका परम रहस्य  
 ३२७ उसका प्राचीन नाम १६३  
 उसका ब्राह्मण नाम १४२ उसका  
 महत्त्व १७२ उसका संहिता नाम  
 १६२ उसकी विज्ञाना आत्मा से  
 २३७ उसमें ईश्वर संबंधी ज्ञान  
 २ ३ उसमें की महिमा १७  
 उसमें महान् पिता २४२ अपि  
 द्वारा रचित १९४ द्वारा जगत्  
 सृष्टि १७२ पवित्र और विज्ञान  
 ३६९ बुद्धिसंगत अंस २५९  
 बिबिध अर्थों में प्रतिपादित २५९  
 -बेदांत ३६ शाश्वत २ ३  
 २४२ शाश्वत आप्त वाक्य २ ३  
 समस्त ज्ञान का केन्द्र १७२ समस्त  
 ज्ञान की समष्टि २५९  
 बेदांत ४३ ४ ५३ ६ ६६, ८१-७  
 ८९, ९३-४ ११९ ४ १४८-५  
 १५२, १५७ १६७ १७१ १७९  
 १८२ १८८, २१९ २१४ २३९,  
 २४८ ४९, २५७-५८ २८२, २८८,  
 २९३ ३५५ अर्थ ८५, १८७  
 २१७ उनका आध्यात्मिक विज्ञान  
 ६ उसका आत्म ८१ उनका  
 उद्देश्य ६१ उनका कथन १३७  
 १३९, १४२, १४९ १५३-५४  
 १९ २४६ उनका कथन्य ३१  
 ८ उनका शेष २६१ उनका

दृष्टिकोण ५७, उसका पहला कार्य १३८, उसका पहला सिद्धान्त २४७, उसका प्रारम्भ १५१, उसका मत १७०-७१, १८६, उसका मूल १६८, उसका सिद्धान्त २४६, उसकी भाषा ५७, उसकी शिक्षा ८३, १३९, १५०, उसके ईश्वर विषयक विचार २९६, उसमें, वैराग्य का अर्थ १५०, उसमें सिद्धान्त जीवित २४०, और अद्वैत ६०, तथा प्राच्य दर्शन और धर्म १४४, दर्शन २७, ५२, ७१, २५९, दर्शन, असली २०८, दर्शन और वाद ५२, दर्शन का आदि-अन्त २२१, दर्शन का उद्देश्य २१, दर्शन पर तीन व्याख्यान २०२-३, -धर्म ६८, २८४, धर्म की तीन अवस्थाएँ २४०, मत २५, ३६, ५९, -वादी ४५, व्यक्ति पर आधारित नहीं २४०, सभी धर्मों में सर्वाधिक साहसी ६८

वेदान्ती १४८, १६७, २१४, उनका मत तथा मान्यता २०३, उनके प्रमुख भेद २०३, उसका लक्ष्य ३६, द्वैतवादी २०४, मनीषी १८२, लोग १८३

वैज्ञानिक, आधुनिक ९३, ११६, तथा वाह्य पुस्तक २५१, सिद्धान्त, आधुनिक २१

वैदिक, दर्शन ४५, दार्शनिक ४५, भाषा १००, वाक्य, प्राचीन ९९, विचारक ४५, साहित्य ४३, साहित्य और प्राचीन आचार-व्यवहार १७९

वैराग्य और वैदिक नीति १६५, चूडान्त १५०

व्यक्ति, अज्ञानी १४४, अपने कष्ट का उत्तरदायी २३०, असाधु ३४, ३७२, अस्वस्थ ३५३, उनके गुरु तथा धर्म मन्त्री इच्छा २४९, २-७८

उसका जन्मसिद्ध अधिकार २४४, उसका जीवन-दर्शन और विचार-स्वतन्त्रता २१५, उसका तत्त्वज्ञान १३२, उसका प्रभाव, सवेग पर २४१, उसका भेद, प्रकारगत ८२, उसकी दुःख-प्रतिकार की चेष्टा १४८, उसकी परख ६०, उसके अभ्यन्तर से धर्मोदय २६४, उसके कार्य और विचार की छाया २१७, उसके भीतर स्वर्ग-राज्य १५२, उसके लिए देश का स्वरूप अनजान ९०, और धार्मिक सस्कार २४८, और विचार-प्रभाव ३३, और विश्व की मूलभूत एकता २४९, और सयोग २४४, चिन्तनशील ११३, १८८, जगली १३६, ज्ञानी १७२, तथा राष्ट्र और व्यक्तिभाव ३३८, तीन तत्त्व से निर्मित २१६, दानी ८२, दिशाहीन ४७, धर्मान्ध ५६, ७१, धर्मार्थी २५१, धार्मिक १७४, धैर्यवान और न्याय-पथ ३५०, पवित्र ४०, पूर्ण और उनकी आकांक्षा में अन्तर २२३, पूर्ण, जीवनमुक्त के लिए ३२, प्रत्येक, एक एक अलग मन ३२, प्राच्य ३१०, भावुक २४८, महा-अवम १८२, विचारशील १०३, विभिन्न स्वभाववाले और साधना २४८, विशाल हृदय ९८, शुद्ध स्वभाव १८३, साधु ४०, ३७२, स्वभावतः मुक्त १८३ (देखिए मनुष्य)

व्यक्तित्व १२-३, १५, २९४, अनन्त १३, आपातप्रतीयमान १५, उसके अभाव का परिज्ञान २३९; उसको प्राप्त करने के लिए सधर्म १३, शुद्ध ५३, -भाव १२, मामाजिक ३११

व्यष्टि भाव ९६, -मनुष्य २४

व्यापार, नैतिक जगत् का १६१, पात्र-



'शिकागो हेरल्ड' ३४३

शिक्षा, उसका अर्थ ३२८, उसका फल ६३, उसके अवगुण २०, उनके प्रसार की आवश्यकता ३६६, एव धर्म ३२२, और गरीबी ३७०, और सगठन ३७०, -प्रणाली १८९, बडी, भगवान् की २५२, -लाभ ३२०, सामना करने की २९८

शिव १८९-९०, और महत् १९९

शिवनाथ शास्त्री, पंडित ३५४

शिवमहिम्नस्तोत्र ३१८ (पा० टि०)

शिवानन्द, स्वामी ३५९ (देखिए तारक दादा)

शिवोद्द १३१, १८६, १९०, ३८८

शुभ ४७, ५२, १३७, -अशुभ, विश्व के अंग २८६, उसका परिणाम ५१, उसका साधन ४६, उसकी मनोज्ञता २६५, और अशुभ २७, ३८, ५१-४, १७१, २०६, २८५-८६, २९०, और अशुभ का मूल्य बराबर ५७, और अशुभ पृथक् सत्ता नहीं ५३, कर्म २७, ५६, -देवता १३८

शून्य, उससे वस्तु की उत्पत्ति नहीं १०४  
शून्यवादी ४-५

शैतान ३३, १५५, १८१, १८९, २०५,

और धर्म १८७, जगत् ३३

शैलोपदेश १६७, २७९

श्रद्धा, बौद्धिक ९३

श्रवण १८, -क्रिया १०९

श्रीघर ३०९

श्री माताजी ३३९

श्रुति, ग्रन्थ २३५, वाक्य १४०,

विषयक धारणा १७२

श्रेय और प्रेय १६५

श्रेष्ठ पुरुष, उनकी पूजा २९३

श्वेताश्वतरोपनिषद् ४४, ५८ (पा० टि०), १०७ (पा० टि०), २८४ (पा० टि०), ३३७

सकट और प्रलोभन १५५

सगठन, उसका राज ३८२

सघर्ष २२०, शाश्वत, उसकी अभिव्यक्ति २२०

मत, उनका जीवन-चरित्र और साधना २४८, और आन्तरिक पुस्तक, २५१, और द्रष्टा २४९, पॉल ३००, महात्मा २८९

सन्यास ३३३, ३५४

सन्यासी ९३, १८८, ३३८, ३५२, ३९५, और महात्मा १७, और सम्राट् १०८, नि स्वार्थ परोपकारी ३३८, मच्चा ३५४

सयम, उसकी भावना और ममाज ६४  
सयमी पुरुष १३६, ३७२

सयोजक (adhesive) १०१

सवेग, उसका सबघ बुद्धि से अधिक इन्द्रिय से २४१, और व्यक्तित्व २४१

सवेदक नाडी १२७

सशयवादी २७१, २७३

ससार, इन्द्रिय, बुद्धि और युक्ति का २६३, उसका तथ्यात्मक कथन ६०, उसका वन्वन ५५, उसका शाब्दिक अर्थ २२०, उसकी परिभाषा ६६, उनके सभी मतों में सर्वनिष्ठ भाव १८१, उसमें प्रतिद्वंद्विता १७६, और धर्म ७९, और प्रयोजन का अर्थ ८१, और स्वर्ग २११, क्षेत्र १५५, चमत्कार की आशा में २९३, -त्याग २२१, न अच्छा, न बुरा २६७, परिदृश्यमान १४६, भयावह ३३३, -वृक्ष १४२, व्यावहारिक स्तर पर १७५, शुभ और अशुभ ५२, ६२, मापेक्ष २८८, मुख और आराम का उपासक २९८, मुख-दुःख का मिश्रण ५३ (देखिए जगत्)

'समार माया है' ४४

सम्प्रा २१७, २१९, उसकी व्याख्या २५-६, और पुनर्जन्मवाद ११५,

मासिक और धर्म १६६ बुद्धि राज्य  
का १६१ मनोव्रतम् का १६१  
ध्यास ३३७  
ध्याससूत्र ३२९  
व्रत-वासन १६१

संकर ९८ (देखिए संकराचार्य)  
संकराचार्य ९४ मगवान् ४४  
शक्ति आकार एवं भौतिक इन्द्रिय २१६  
मान्तरिक उसकी प्रेरणा २५६  
इच्छा १२४ उसका पुनारी ३१५  
उसकी अभिव्यक्ति १ उसकी  
उपासना ३६१ उसकी रूप ३६१  
उसकी ध्यास्या ९ और भाष्यारम्भिक  
आवर्ष १९९ और ज्ञान २६ और  
मृत ३५ और महिमा ३ ३  
और शरीर ९ किमासीक २९  
गुरुवाकर्षण ७४ विस्तार ८९,  
१२७ जगन्मयी सर्वध्यायी १२९  
आगतिक १ ७ ज्ञानस्वरूप १२  
तथा नीतिपरामर्श ३४ बुद्धि की  
और सुख-योग की ५२ हाथ शक्ति  
प्राप्ति १ ५ धारा संसार का उद्धार  
३६१ धर्म की १९१ प्रतिक्रिया  
१२७ प्राकृतिक १९१ भौतिक  
१२७ मानसिक और उपचार  
३८६ विचार २२ १२७ शास्त्र  
२५३ ३२५ शिवात्मक २ १  
सुप्त एवं असुप्त ५४ संवृत्ति १२४  
शरीर ५, ८ २४ ३४ ३८ ६२ ६६  
७६ ९१ १ ७ ११६ ११८  
१२६ १३४ १५६ १६२, १७१  
१८४ ८५, १९२ ३ २ ४ २२२  
आत्मा का आवरण २१६ आत्मा  
रिक्त ११ उसका अन्त होने पर  
१ ८ उसका अर्थ ११७ उसका  
प्रकाशण मन से ११२ उसका  
राज्य ११ उसकी गति ८६  
उसकी रसा १६ उसकी रचयित्री  
१२७ उसमें उत्पत्ति और अवनति

११ एक अर्थ में निरव रूप १२५  
एक परिणाम ८५ और आत्मा  
२२९ और इच्छा ८३ और मन  
२४-५७ २८ ३० २१७-१८ और  
मन का संघ ११ और मन  
परिकर्तनधीन ११ और विचार  
२८७ और शक्ति ९ और सिद्धांत  
२१ कभी आत्मा नहीं १२७  
-मठन ११९ अन्त मीमांसक नहीं  
२११ ज्ञान-प्रकाश करने में असमर्थ  
१२८ ज्योतिर्मय १ मन्त्र  
२२८ परिवर्तित पर आत्मा नहीं  
२२१ पूर्व कर्म जन्म ३६  
मन का विरोधी नहीं २३८ मन में  
बिम्बित २३८ मनस्व प्राम्ति ३५  
मृत १९२ रसा १५१ रच  
१७२ वैज्ञानिक १२७ सतत  
परिणामधीन जड़ प्रवाह २८  
सूक्ष्म २५ ६, ११ ११२, ११९,  
१३ सूक्ष्म और संस्कार २५  
स्वप्न २३ ११ ११२, ११९,  
१२९ स्वप्रकाश नहीं १११  
(देखिए देह)

सर्वज्ञ श्रीमती ३४१  
शक्ति ३३४ ३४९, ३६२ ६३  
(देखिए रामकृष्णमठम्)  
शक्ति सम्प्राप्त ३४८  
शक्ति उसका अर्थ ३१५  
शक्तिपूर्वक ८६  
शास्त्र उसका तात्पर्य २४२  
शास्त्र और पुराण ५  
शास्त्री शिवनाथ पंथित ३५४  
शिकागो ३ ७-९ ३१३ १४ ३१९,  
३२२, ३२५, ३३२, ३३४ ३५,  
३४२-४३ ३४६ ४७ ३५२-५४  
३६४ ३६८, ३७१-७२, ३७४  
३७७ ३८३ ३८६ ३९  
'शिकागो इन्टीरिबर ३४४  
शिकागो इन्स्टिट्यूट ३४३  
'शिकागो हिंडील्' ३२२

'शिकागो हेरल्ड' ३४३  
 शिक्षा, उसका अर्थ ३२८, उसका फल ६३, उसके अवगुण २०, उसके प्रसार की आवश्यकता ३६६, एव धर्म ३२२, और गरीबी ३७०, और सगठन ३७०, -प्रणाली १८९, बडी, भगवान् की २५२, -लाम ३२०, सामना करने की २९८  
 शिव १८९-९०, और महत् १९९  
 शिवनाथ शास्त्री, पंडित ३५४  
 शिवमहिम्नस्तोत्र ३१८ (पा० टि०)  
 शिवानन्द, स्वामी ३५९ (देखिए तारक दादा)  
 शिवोद्द १३१, १८६, १९०, ३८८  
 शुभ ४७, ५२, १३७, -अशुभ, विश्व के अग २८६, उसका परिणाम ५१, उसका साधन ४६, उसकी मनोज्ञता २६५, और अशुभ २७, ३८, ५१-४, १७१, २०६, २८५-८६, २९०, और अशुभ का मूल्य बराबर ५७, और अशुभ पृथक् सत्ता नहीं ५३, कर्म २७, ५६, -देवता १३८  
 शून्य, उससे वस्तु की उत्पत्ति नहीं १०४  
 शून्यवादी ४-५  
 शतान ३३, १५५, १८१, १८९, २०५, और धर्म १८७, जगत् ३३  
 शैलोपदेश १६७, २७९  
 श्रद्धा, बौद्धिक ९३  
 श्रवण १८, -क्रिया १०९  
 श्रीघर ३०९  
 श्री माताजी ३३९  
 श्रुति, ग्रन्थ २३५, वाक्य १४०, त्रिषयक धारणा १७२  
 श्रेय और प्रेय १६५  
 श्रेष्ठ पुरुष, उनकी पूजा २९३  
 श्वेताश्वतरोपनिषद् ४४, ५८ (पा० टि०), १०७ (पा० टि०), २८४ (पा० टि०), ३३७

सकट और प्रलोभन १५५

सगठन, उसका राज ३८२  
 सघर्ष २२०, शाश्वत, उसकी अभिव्यक्ति २२०  
 मत, उनका जीवन-चरित्र और साधना २४८, और आन्तरिक पुस्तक, २५१, और द्रष्टा २४९, पॉल ३००, महात्मा २८९  
 सन्यास ३३३, ३५४  
 सन्यासी ९३, १८८, ३३८, ३५२, ३९५, और महात्मा १७, और सम्राट् १०८, नि स्वार्थ परोपकारी ३३८, सच्चा ३५४  
 सयम, उसकी भावना और समाज ६४  
 सयमी पुरुष १३६, ३७२  
 सयोजक (adhesive) १०१  
 सवेग, उसका सबघ बुद्धि से अधिक इन्द्रिय से २४१, और व्यक्तित्व २४१  
 सवेदक नाडी १२७  
 सशयवादी २७१, २७३  
 ससार, इन्द्रिय, बुद्धि और युक्ति का २६३, उसका तथ्यात्मक कथन ६०, उसका बन्धन ५५, उसका शाब्दिक अर्थ २२०, उसकी परिमाणा ६६, उनके सभी मतों में सर्वनिष्ठ भाव १८१, उसमें प्रतिद्वंद्विता १७६, और धर्म ७९, और प्रयोजन का अर्थ ८१, और स्वर्ग २११, क्षेत्र १५५, चमत्कार की आशा में २९३, -त्याग २२१, न अच्छा, न बुरा २६७, परिदृश्यमान १४६, भयावह ३३३, -वृक्ष १४२, व्यावहारिक स्तर पर १७५, शुभ और अशुभ ५२, ६२, मापक २८८, मुख और आराम का उपासक २९८, मुख-दुख का मिश्रण ५३ (देखिए जगत्)  
 'मनार माया है' ४४  
 मन्वार २१७, २१९, उनकी व्याख्या २५-६, और पुनर्जन्मवाद ११५,

और शक्ति का समवेत फल २६  
 पूर्व उसका अतिशय प्रभाव १७३  
 पूर्व और प्राचीन ११५ मौक्तिक  
 ११७ मन का ११७ मन में ही  
 वास ११८ मानव-स्वभावमुच्चम  
 २९४ मामनिक ११७  
 संस्कृत उसके प्राचीन ग्रन्थ ६३ माया  
 १ १२८  
 संहति-शक्ति (adhesion) १२४  
 संहिता ६ श्रुतेश्च १९२  
 सकाम माय २६  
 सन्धेति २६४ २७२ और बाह्य २६४  
 सन्धिदानव्य-सामर २८४  
 सत्वगुण ५  
 सती स्त्री १३६  
 सदीत्य वाति की जीवनी शक्ति ५६  
 धर्म ५५  
 सत् १८, ४६ ५३ ९९ १ ५, २८ २८२  
 ३ २ अमूर्त १९५ और अज्ञान  
 १८२ और असत् १६८ कर्म  
 ३२४ कर्म उसका मूल आधार १५  
 कर्म उसके फल का मोक्ष २७  
 कल्पना तथा दृश्य चिन्तन ३८९  
 कार्य २७ १२१ पश्चार्थ २५५  
 -विचार १२१ शाश्वत २८५  
 स्वल्प ईश्वर २८५  
 सत्-चित्-ज्ञानत्व १८२  
 सत्ता अपरिणामी २९, ३५ अपरिमेय  
 २ ९ २११ अनीम ५४ ईश्वर  
 शीघ्र १ ९ केवल एक ३१  
 अक्षरानीत ३ निरवेष ५४ निर्विक  
 तथा सगुण १९५ पारमार्थिक  
 १२ प्रहृष्ट १८२ सादक २११  
 मार्गमौक्तिक उसकी विवेचना ९५  
 मध्य आत्म्यल्लरिफ ६ ईश्वर का  
 महान् नाम २५३ उच्चतम १७  
 ७७ ४ उसका लाघात्कार और  
 उदात्त ३८ उगाहास्वल्प २१३  
 उसकी उदात्त ३५ उसकी शक्ति  
 ५ उसकी शक्ति और मानवता

२७ उसकी जानकारी १८ १४९,  
 २१३ उसकी जीवन में परिपक्व  
 २ उसकी प्रत्यक्षानुभूति २४४  
 उसकी महत्ता और समान १६  
 उसकी शिखा १८८ उसके अम्यास  
 का साक्ष्य १८ उसके सामन की  
 विधि २३८ और अज्ञान १५२  
 और प्राचीन श्रुति ९४ और  
 मरीचिका ३६ और मिथ्या-मिथ्या  
 का प्रश्न ६६ मात ७१ तथा  
 उच्चतर आदर्श ६५ द्वारा बल-  
 प्राप्ति ६५, १८८ निरवेष ५१  
 प्रेरणाशक्ति २६२ मयबध्नापि  
 का फल २५३ महान् ४२ मयार्थ  
 ११ सनातन १५, १ ९ सर्वोच्च  
 १७ ९७ सार्वभौमिक ५  
 सबाधार, उसकी शक्ति में विपदा ३२४  
 सनत्कुमार २७७  
 सनातन धर्म ३४३ सत्य १५  
 सन्ध्या-बन्धन ६  
 सम्मता एवं शिखा ३६४  
 समवर्तन १५  
 सम-धर्मावलम्बी ३८२  
 समष्टि और आत्मा २४ भाव ९६  
 मन और ईश्वर २४ शीघ्र १२३  
 समाज उसकी प्रकृति १८ और धर्म  
 ३८ बाह्य ३४३ व्यक्ति के समूह  
 का नाम १९७-मुबार ३२७  
 ३५४ मुबारक ४९, ३६५  
 सरस्वती ३ ९, ३१७  
 सर्व-भूजा २९२  
 सर्वेश्वरवादी ३२६  
 सविशेष ईश्वर २८८  
 शनीम बस्तु १२  
 महान् प्रेरणा ११६  
 महिष्मता उसकी आश्चर्यता ६४  
 और लौकिक मय ७१ और मंत्री  
 वर्ती शीघ्र ७१  
 मार्य ग्याम और मीमांसा २ ३ -वादी  
 १२८

सांसारिक जीवन ७९, जीवन की परि-  
भाषा ७८, भोग और प्राणी २२१,  
लोगो का कथन ७८  
साधना, उसकी विधि का अनुसन्धान  
२४९, और प्रार्थना २५८, और  
व्यक्ति २४८  
साधु, अद्भुत १४६, -असाधु १८७,  
-चरित ५८, -ब्राह्मण ३१६, -महात्मा  
७१  
सान्त ३५, ८५, ३०२, पदार्थ १३  
सान्यास ३५३, शशि ३४८  
सापेक्ष तत्त्व २८६  
सामाजिक उन्नति में निहित एकत्व  
७०, कुरीति ३२९, गति और मुक्त  
भाव की अभिव्यक्ति ८१, जीवन  
८१, तनाव और युद्ध २२०,  
विघ्न ३२८, विषय ३२८, व्य-  
क्तित्व ३११, श्रृंखला की उत्पत्ति  
६४, सम्बन्ध २७४, सम्मान  
२८३, स्वतन्त्रता ६८, ७०  
सामान्यीकरण, उसका सिद्धान्त २८२,  
उसकी चरम परिणति २८४,  
-प्रक्रिया २८६, सर्वोच्च और ईश्वर  
तथा मनुष्य २८८  
सामुद्रिक सर्प की कहानी २४५  
साम्प्रदायिक कट्टरता २४१  
साम्यभाव ५६  
साम्यावस्था २९, २२०, मौलिक  
२२१  
सारदानन्द स्वामी ३५३  
सार्वभौमिक, उसकी खोज ०१, नित्य  
मुक्त ९५, नित्यानन्द और नित्य  
सत्ता ९५, वस्तु का सत्य ९५,  
वस्तु की अन्तरात्मा ९५, सिद्धान्त  
१६१  
साहस, उसके प्रकार १७  
सिगाराबेलू मुदालियर ३२५  
सिद्धान्त, आकाशविषयक ४४, आत्मा-  
मूलक १९, आध्यात्मिक २४२,  
और दर्शन ३५, भौतिक २४२,

मानसिक २४२, विकासमूलक  
१९१, सार्वभौमिक १६१  
सुख, इन्द्रिय ६८, उसका ज्ञान और  
दुःख ४९, उसकी अपेक्षा दुःख अधिक  
क्यों ६५, उसकी खोज और  
नश्वरता १६, और गणितीय क्रम  
१३७, और दुःख का मिश्रण ५३,  
और स्वच्छन्दता ५०, -दुःख १३८,  
२०६, -दुःख, उसकी धारणा १६९,  
दुःख, प्रत्येक की धारणा अलग  
१६९, दुःखहीन ५३, -प्रवणता  
और दुःख ५२, -भोग ५१, -भोग,  
उसके भीतर गरिमा १५१, शारी-  
रिक और ज्ञानानुशीलन ४९,  
मांसारिक ३१९, -सुविधा २७०  
सुधारक ४९, आधुनिक ३२१  
सुब्रह्मण्य अथ्यर ३५७  
सुवर्ण लोम ४८  
सूर्य १७, २२, ३१, ३३, ६३, ८१-२,  
९९, १०२, १०७, १११, १२०,  
१३०-३३, १३९-४१, १५७-५८,  
१६७, २१२, २१७, २१९, २३१,  
२६३, २८३, २८५, २९७, २९९,  
३२७, उदय २७२, -किरण १००,  
-मण्डल २९४, -रश्मि २६, -लोक  
२६, -वशी ६३  
सृष्टि, उसका अभिन्न रूप २९०, उसका  
रचयिता २०४, उसका रहस्य  
२९१, उसके पूर्व की अवस्था १०२,  
उसके साथ एकरूप २९०, उससे  
एकत्व का अनुभव २८४, और आत्मा  
३६९, और उपादान २०४, और  
बीज १००-३, और मानव-मस्ति-  
ष्क १०९, -कार्य २०८, -चक्र २०३,  
मानवात्मा की २५६, -रचनावाद,  
प्राचीन १०५, रूपाकार की २१६,  
सघात मात्र २५, सम्पूर्ण का आगम  
और विलय २०३  
मेन, केशव ३७६, केशवचन्द्र ३५४  
(पा० टि०)

सेनटर पामर ३८३  
 सेमेटिक वाति २२७ बर्म में ईश्वर  
 का ज्ञान २३७  
 सेनबीर्न कुमारी ३१४  
 सीम रस १४  
 सीरज कुमारी ३१३  
 सोड्रूम २ १८६, २४३ २५९ ९  
 २८९ ९ अपरिचर्तगधीम २९  
 घाएवत २९  
 स्कोडेमेबिया १९२  
 स्टोक कम्पनी २६१  
 स्टोकहम कुमारी ३८६  
 स्टोडन वार्सिक ३७२  
 स्टोन श्रीमती ३८४  
 स्ट्रुटर ३ ७  
 स्तोम-माठ १६४  
 स्त्री और स्वामी ५६ वाति की वास्त  
 बिक बसा ३७१  
 स्मितिपीम (static) २२  
 स्मिथ श्रीमती ३४१ ३४६  
 स्वाम ३७१  
 स्वामी २५७  
 स्वयम्भू १३३  
 'स्वाग्यसिद्धि' १८३  
 स्वर्ग १४ २६ ३२-५, ३७ ८१ ८५,  
 ९३ ९६ ७ ११९, १३४ ३५,  
 १४२ ४५ १६२-६३ १६८ ६९  
 १७४ ७५, १८२, २ ६, २११  
 २३२ ३३ २६८ ३ २ ३ ३६९  
 उमका राज्य व्यक्ति में १५२  
 काम २७ द्वार २९८ -नरक  
 ३२ १४४ -प्राप्ति १६४ मल की  
 कमबीटी का मतीक २६८ लोक  
 ३५ बाह १६३  
 'स्वापीन इच्छा' ३७  
 स्वापीनता उद्योग अनुसंधान मनुष्य  
 द्वारा २९३ उमका प्रकार ६९  
 उमका माव २५५ उमका माव और  
 ईश्वर ५८ उमकी प्राप्ति चरम  
 कथय २९३ उममें विमान की

सत्यति और सत्यति ७० और  
 मुक्ति की जाकासा २९३ और  
 बिकास ६९ मपार्क २९६ -काम  
 २९४  
 स्वामी अमदानन्द ३४८ ब्रह्मानन्द  
 ३६२ रामकृष्णानन्द ३३४  
 सिवामन्द ३५९ सारवानन्द ३५९  
 स्वाम्यस्फोट ३७९, ३८४ ३८६  
 हुससे ७ ११४  
 हुबरत मुहम्मद १८३  
 'हम बय है' ८  
 'हम मुक्त हैं' ३७  
 'हमारा स्वर्गस्व पिता' ९७  
 हरमोहन ३५१  
 हरि ३६२  
 हरिदास बिहारीदास बेसई ३२२-  
 ३३४ ३६४  
 हरिपद मित्र ३१४  
 'हस्तक्षेप मत करो' ३३  
 हार्बर्क ३४६ विद्वद्विधात्म्य २०८  
 ३४७ ३८१  
 हिडोवा १२६  
 हिदा ६७  
 हिगिग्नन कर्मक ३४७ ३९  
 हिन्द महासामर ३६  
 हिन्दुस्तान २४९ २७३  
 हिन्दू १४४ २४२ २४९, ३३८, ३६५  
 उमका मत २२ उमका सिद्धांत  
 २६४ कट्टर ३३८ शरीर ३६८  
 वाति ५५, ९५ ३२५ दर्शन में  
 ईश्वर और व्यक्ति २३२ वार्सिक  
 ४५ ३ ३ बर्म ३ ९, ३२८  
 ३४ ३४३ ३६२ धर्मशास्त्र  
 और वेद २ २ पवित्रा ३७५  
 मापीन १९२ बीडिक ६१ बार्  
 ३६४ राष्ट्र ३२४ राष्ट्र, उमकी  
 अवनति का कारण ३९४ २५  
 रीति ३८७ लक्ष्मी ३१९ लोग  
 २१ १७२ बित्रीपी १७ वास्त